

પ્રાપ્તિ સ્થાન  
શ્રી અભાઈ સ્થાનકવાસી  
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ  
શ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ

\*

બીજી આવૃત્તિ	પ્રત ૧૦૦૦
વીર સવત	૨૪૮૪
વિક્રમ સવત	૨૦૧૪
ઇન્દ્રી સન્	૧૯૫૮

\*

મુદ્રક અને મુદ્રણસ્થાન  
જયતિનાથ દેવચંદ મહેતા  
જય ભારત પ્રેસ,  
ગરેડી આક્રવા રોડ  
શાક મારકીટ પાસે, રાજકોટ

## प्राक्ग्रथन

रोग से आक्रान्त मनुष्य के लिये जैसे औषध सेवन नितान्त आवश्यक है, उसी प्रकार भवरोग से सतप्त प्राणियों के लिये सामायिक आदि क्रियायें आवश्यक हैं। क्यों कि विना इनके आत्मामें निर्मलता नहीं आ सकती, और अनिर्मल आत्मा कभी भी भवरोग से मुक्त नहीं हो सकता।

ये सामायिक आदि मनुष्यों के लिये अवश्यकर्तव्य होने के कारण आवश्यक कहलाते हैं, और इनका ग्रथन इस आगममें किया गया है अतः यह आगम भी 'आवश्यक' कहलाता है।

इस 'आवश्यक सूत्र' की परमोपयोगिता देखकर पूज्यश्री घासीलालजी म सा. ने इस पर, संस्कृतमें विस्तृत प्रस्तावना सहित 'मुनितोषणी' नामक टीका लिखी है। यह टीका अत्यन्त सरल होने के कारण साधारण संस्कृतज्ञों के लिये भी सुबोध है। सर्वसाधारण के लाभार्थ इस टीकाका हिन्दी और गुजराती भाषा में अनुवाद भी किया गया है। इस लिये सभी वर्ग के जिज्ञासुओं के लिये यह उपादेय है।

इस आवश्यकसूत्र की प्रथम आठिका प्रकाशन श्री श्वे. स्था जैन शास्त्रोद्धार समिति (राजकोट) ने सन् १९५१ ई में किया था। प्रथम आठिका की सभी प्रतियाँ वितरित हो चुकी हैं, अतः इस सूत्र की यह द्वितीय आठिका प्रकाशित की गयी है। आत्मार्थी जन इससे पूर्णतया लाभ उठावें यही हमारी आकांक्षा है।

निवेदक

मगनलाल उगनलाल शेट

मानद मंत्री,

श्री अ भा श्वे स्था जैनशा समिति  
राजकोट.

## એક અપીલ

આપ ગરછપતિ હો કે સઘપતિ હો  
સાધુ મહાત્મા હો કે શ્રાવક હો

પરતુ

આ શુભકાર્યમા મદદ કરવાની આપની ચોકકસ ફરજ છે  
કારણ કે આપણી સમાજના ઉત્થાનના આવા ભગીરથ  
કાર્યમા આપનો જોડલો વધુ સહકાર મળશે તેટલુ  
કાર્ય વહેલુ પૂર્ણ થશે

ઘડી ઘડી આવા સતનો ભેટો થવો દુર્લભ છે

૩૨ સૂત્રો જલ્દીથી તૈયાર કરાવી લેવાય તેની કાળજી રાખવાની છે

અને તેથીજ આપશ્રીને અપીલ કરવામા આવી છે

સમગ્ર સમાજનુ કાર્ય થતુ હોય ત્યા સામ્રદાયકનાદ

કે પ્રાતવાદ નજ હોવો જોઈએ

31. १०,००० आपनार आद्य सुरभीश्री,  
सभितिना प्रमुष, दानवीर शेठश्री



शेठ शातिलाद भगणदासबाध  
अभदावाह





શ્રી-વર્ધમાન-અમણ-સઘના આચાર્યશ્રી

પૂજ્ય આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ

આ પે લ

સ મ મ તિ પ ત્ર



ઉ પ રા ત

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ-રચિત

બીજા સૂત્રોની ટીકા માટે તેઓશ્રીના મતબ્ધે



તે મ જ

અન્ય મહાત્માઓ, મહાસતીજીઓ, અઘતન-પદ્ધતિવાળા કોલેજના પ્રોફેસરો

તે મ જ

શાસ્ત્રજ્ઞ આવકોના અભિપ્રાયો

ઠે શ્રીન લોજ પાસે  
ગરેડીયા કુવારાડ  
રાજકોટ સૌરાષ્ટ્ર

શ્રી અખિલ ભારત શ્વે સ્થા. જૈન-  
શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ.

( श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र )

॥ श्रीवीरगौतमाय नमः ॥

### सम्मति-पत्रम्

मए पडियमुणि-हेमचदेण य पडिय मूलचन्दवासवारापत्ता  
 पडिय-रयण-मुणि-घासीलालेण विरइया सकय-हिंदी-भाषाहिं जुत्ता  
 सिरि-दसवेयालिय-नाम सुत्तस्स आयारमणिमजूसा वित्ती अवलो-  
 इया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सदाण अइसयजुत्तो अत्थो  
 वण्णिओ विउजणाण पाययजणाण य परमोवयारिघा इमा वित्ती  
 दीसइ ! आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्व उल्लेहो कडो,  
 तथा अहिंसाए सख्व जे जहा तथा न जाणति तेसिं इमाए वित्तीए  
 परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाण फुडरूवेण वण्णाण  
 कड, तथा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसय-  
 जुत्ता सिज्झइ ! सकयछाया सुत्तपयाण पयच्छेओ य सुवोहदायगो  
 अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठव्वा । अम्हाण समाजे  
 एरिसविज्ज-मुणिरयणाण सव्भावो समाजस्स अहोभग्ग अत्थि, किं ?  
 उत्तविज्जमुणिरयणाण कारणाओ जो अम्हाण समाजो सुत्तप्पाओ,  
 अम्हकेर साहिच्च च लुत्तप्पाय अत्थि तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ  
 जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो  
 निव्वाण पाविहिइ अओह आयारमणि-मजूसाए कत्तुणो पुणो  
 पुणो घन्नवाप देमि- ॥

वि स १९९० फाल्गुन-  
 शुक्लपयोदशी मङ्गले  
 (अलवर स्टेट)

इइ-

उवज्झाय-जइण मुणी,आयारामो  
 (पचनईओ)

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामजी  
महाराज तथा न्याय व्याकरण के ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७  
श्री हेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनो महात्माओंका दिया हुआ  
श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

### सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण सवच्छर २४५८ आसोई  
(पुण्णमासी) १५ सुक्कारो लुहियाणाओ ।

मए मुणिहेमचदेण य पडियरयणमुणिसिरि-वासीलालविणिम्मिया सिरिउवा-  
सगसुत्तस्स अगारधम्मसजीवणीनामिया वित्ती पडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवत्त  
सुया, समीईण, इय वित्ती जहाणाम तहा गुणेवि धारेइ, सच्च, अगाराण तु इमा  
जीवण (सजमजीवण) दाई एव अत्थि । वित्तिरुत्तुणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जु-  
सेलीओ फुडीरुओ, अहय उवासयस्स सामण्णविसेसवम्मो, णयसियवायवाओ,  
कम्मपुरिसट्ठवाओ, म्मणोवासयस्स धम्मदढत्ता य, इच्चादविसया अरिंस फुडरीइओ  
वण्णिया, जेण रुत्तुणो पडिहाए सुट्ठुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि  
सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाण-भरहवासस्स य कत्तुणा विसय-  
प्पयारेण चित्त चित्तित्त, पुणो सक्कयपाटीण, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए  
भासीण य परमोवयारो कडो, इमेण रुत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एय रुज्ज  
परमप्पससणिज्जमत्थि । पत्तेयजणस्स मज्झत्थिभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव  
लाहप्पय, अविउ सावयस्स तु (उ) इम सत्थि सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो  
अणेगकोडीसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं, अच्चतपरिस्समेण जइणजणतोवरि असीमो-  
वयारो ऋडो, अहय सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि,  
जेरिंस पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावाओ  
पुरिसक्कारपरक्कमवाओ य अवस्समेव दसणिज्जो, त्रिंरहुणा इमीसे वित्तीए पत्तेय-  
विसयस्स फुडसदेहिं वण्णण कय, जइ अन्नोवि एव अम्हाण पमुत्तप्पाए समाजे विज्ज  
भवेज्जा तथा नाणस्स चरित्तस्स तहा सघस्स य खिण्ण उदयो भविस्सइ, एव ह मत्ते ॥

भवईओ—

उवज्जाय—जइणमुणि—आयाराम,—पचनईओ,

## सम्मतिपत्र

(भाषान्तर)

श्री वीर निर्वाण स० २४५८ आसोज  
शुक्ला (पूर्णिमा) १५ शुक्रवार बुधियाना

मैंने और पंडितमुनि हेमजन्दजीने पंडितरत्नमुनिश्री घासीलाल-  
जीकी रची हुई उपासकदशाग सूत्रकी गृहस्थधर्मसजीवनी नामक टीका  
पंडित मूलचन्द्रजी व्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम  
तथागुणवाली-अच्छी बनी-है। सच यह गृहस्थोके तो जीवनदात्री-  
सयमरूप जीवनको देनेवाली ही है। टीकाकारने मूलसूत्र के भावको  
सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है ?  
और विशेष धर्म क्या है ? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे  
बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप कर्म-पुरुषार्थ-वाद और श्रावकको  
धर्मके अन्दर दृढ़ता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण  
इसमें भलीभाँति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती  
है। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रमण भगवान् महावीरके समय जैनधर्म  
किस जाहोजलाली पर था ? और वर्तमान समय जैन धर्म किस  
स्थितिमें पटुचा है ? इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया  
है ! फिर सस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंको  
भी पुरा लाभ होगा, क्योंकि टीका सस्कृत है उसकी सरल हिन्दी  
करदी गई है। इसके पढ़नेसे कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि  
वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका  
यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको भग्यस्थ भावसे पढ़ने  
वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें श्रावको (गृहस्थों) का  
तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः टीकाकारको कोटिश धन्यवाद दिया  
जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैन जनताके ऊपर असीम  
उपकार किया है। इसमें श्रावकके चारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढ़ने  
योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा  
मोक्षका अधिकारी होता है। तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार-

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कदातक कहें इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुसप्राय (सोई हुईसी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान चारित्र तथा श्रीसधका शीघ्र उदय होगा, ऐसामै मानता हूँ—

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पजावी.



इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८  
श्री भागचन्दजी महाराज तथा प मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी  
महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशाज्ञ सूत्रके  
प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज कृत श्री उपासकदशाज्ञ सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे आपने बड़े परिश्रम व पुरुषार्थसे तैयार किया है सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्ति-योकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढकर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढनेसे हमको अत्यानन्द हुआ, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे—यह एक हमारे लिये बड़े गौरवकी बात है।

वि. स १९८९ मा आश्विन  
कृष्णा १३ चार भौम लाहोर

श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र की 'अनगार धर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर  
 जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय  
 जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका  
 सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१.

मैने आचार्यश्री घासीलालजी म द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽमृत वर्षिणी' टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनि श्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त श्रवण किया ।

यह नि.सन्देह कहना पडता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी म ने बडे परिश्रम से लिखी है । इसमें प्रत्येक शब्दका प्रामाणिक अर्थ और कठिन स्थलो पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें है । मूल स्थलोंको सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी सस्कृतज्ञ पाठकों को लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है ।

मै स्वाभ्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूँगा कि वे वृत्तिकारके परिश्रम को सफल बनाकर शास्त्रमें दीर्घ अनमोल शिक्षायों से अपने जीवनको शिक्षित करते हुए परमसाभ्य मोक्षको प्राप्त करेंगे ।

श्रीमान्जी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्ट द्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इसपर आचार्य-श्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे है पहुंचने पर समाचार दें ।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म ठाने ६ सुख शान्तिसे विराजते हैं । पूज्य श्री घासीलालजी म सा ठाने ४ को हमारी ओरसे वन्दना अर्जकर सुखगाता पूर्ण ।

पूज्य श्री घासीलालजी म जी का लिखा हुआ (विपासूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते है इसलिये १ कॉपी आप भेजने की कृपा करें, फिर आपको वापिस भेज दूँगे । आपके पास नहीं हो तो जहा से मिले वहासे १ कॉपी जरूर भिजवाने का कष्ट करें, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करें । योग्य सेवा ग्रिसते रहें ।

लुधियाना ता ४-८-५१

निवेदक  
 प्यारेलाल जैन

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर - उपाध्याय - पण्डित - मुनि  
श्रीआत्मारामजी महाराज (पजाव) का आचाराङ्गसूत्र की  
आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मति-पत्र।

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्रीघासीलालजी (महाराज)की बनाई हुई  
श्रीमद् आचाराङ्गसूत्र के प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका  
सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका-न्याय सिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध  
है। तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रम से अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी  
उचित रूप से मालूम होता है।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं,  
तथा प्रौढ विषयों का विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक  
प्रतिपादन अधिक मनोरञ्जक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवाद  
के पात्र हैं।

मैं आशा करता हूँ कि-जिज्ञासु महोदय इसका भलीभाँति  
पठन द्वारा जैनागम-सिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को  
हर्षित करेगे, और इसके मनन से दक्ष जन चार अनुयोगों का  
स्वरूपज्ञान पावेगे। तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमों  
के विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान  
उपकार कर यशस्वी बनेंगे।

त्रि स २००२ }  
मृगसर सुदि १ }

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम  
लुधियाना (पजाव)

—: ❁ :—

शुभमस्तु ॥

बीकानेरवाला समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी शेठिआनो अभिप्राय  
❁

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बड़ा उपकारका कार्य है।  
इससे जैनजनता को काफी लाभ पहुँचेगा।

(ता. २८-३-५६ ना पत्रमाथी)



॥ श्रीः ॥

जैनागमचारिधि- जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-  
महाराजना पञ्चनद-(पजाव)स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-  
मर्थबोधिनीनामरुटीकायामिदम्-

### सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थ-  
बोधिनीनाम्नी सस्कृतवृत्तिरूपयोगपूर्वरु सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इय  
द्वि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्य प्रकटयति । श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितु  
यः प्रयत्नो व्यग्रायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते । यथा चेय वृत्तिः  
सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि । अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदममीप्सु-  
भिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्येषु प्रयत्तमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-  
दर्शन-चारित्र्याणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आशासे श्रीमदाशुकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषा विदुषा मनस्तोपाय  
जैनागमसूत्राणा सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थ सरलाः  
सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तास्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च “मुनिवरस्य परिश्रम सफलयितु सरला सुबोधिनीं चेमा  
सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्य सुयोग्या हसनिभा पाठकाः ।”  
इत्याशास्ते—

विक्रमान्द २००२ }  
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा }  
लुधियाना. }

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः ।

ऐसेही —

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी  
श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि —

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टि-  
गत हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वांग-  
सुन्दर एवम् का उपकारक है ।

निरयावलिकामूत्रका सम्मतिपत्र  
 आगमवारिधि-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य-पूज्यश्री  
 आत्मारामजी महाराजकी तरफ का आया हुआ  
 सम्मतिपत्र

लुधियाना. ता ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत गुलाचन्द्रजी पानाचदजी । सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला ! निरयावलिका विषय पूज्यश्रीजीका स्वास्थ्य ठीक न होने से उनके शिष्य प. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मति पत्र लिख दिया है आपको भेज रहे हैं ! कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ? !

भवदीय.

गुजरमल बलवतराय जैन

॥ सम्मतिः ॥

(लेखक जैनमुनि प श्री हेमचन्द्रजी महाराज)

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृत हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादसहित च श्रीनिरयावलिकामूत्र मेधाविनामल्पमेधसा चोपकारक भविष्यतीति सुदृढ मेऽभिमतम्, सस्कृतटीकेय सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति । सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्वोधपद-व्याख्यायुतत्वाच्च टीकैषा सस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञाना महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् सभावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर पूज्यश्री घासीलालजी महाराजाना परि श्रमोऽय प्रशसनीयो धन्यवादाहार्त्तश्च ते मुनिसत्तमा । एवमेव श्री-समीरमल्लजी श्री कन्हैयालालजी मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाध्य, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादाहार्त्तः स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमदिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोपोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतर स्यात् । यतोऽस्यावश्यकतां सवऽप्यवेपकविद्यासोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्यास्याध्ययनायापनेन लेखकनियोजकमहोदयाना परि चिन्तयिष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।

॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि- जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-  
महाराजना पञ्चनद-(पजाव)स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-  
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-

### सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थ-  
बोधिनीनाम्नी सस्कृतवृत्तिरूपयोगपूर्वक सकलाऽपि स्पष्टिष्यमुखेनाऽश्रावि मया, इय  
दि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्य प्रकटयति । श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितु  
यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो धन्यवादानर्हन्ति ते । यथा चेय वृत्तिः  
सरला सुगोधिनी च तथा सारवत्यपि । अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदममीप्सु-  
भिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्येषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-  
दर्शन-चारित्र्याणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आशासे श्रीमदाशुक्तविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषा विदुषा मनस्तोपाय  
जैनागमसूत्राणा सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्य सरला  
सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विधाय तास्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च “मुनिवरस्य परिश्रम सफलयितु सरला सुगोधिनी चेमा  
सूत्रवृत्ति स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्य सुयोग्या हसनिभा पाठका ।”  
इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२ }  
श्रावणकृष्णा प्रतिपदा }  
लुधियाना }

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः ।

ऐसेही —

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी  
श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि :—

श्रीमान की की हुई टीकावाला उपासकदशाग सेवक के दृष्टि-  
गत हुआ, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वांग-  
सुन्दर गद्यम् उचकोटि का उपकारक है ।

(१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रों के ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी डोसी.

(११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक धीयुत् माधवलालजी

.. . . .

ता २५-११-३६

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासक दशाग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ शुख शांती में विराजमान हैं आपके वहा विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछे आपने उपासकदशाग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिवरों की सम्मती मगाई उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराज ने फरमाया है कि वर्तमान में स्थानकवासी समाज में अनेकानेक विद्वान मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचने का साहस जैसा घासीलालजी महाराज ने किया है वैसा अन्य ने किया हो ऐसा नजर नहीं आता दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों हैं संस्कृत प्राकृत हिन्दी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं जैन समाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढे यही शुभ कामना है आशा है कि स्थानकवासी सघ विद्वानों की कटर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

\*

आगरा से:—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्धवक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैन समाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण  
महान विद्वान सतोए तेमज विद्वान श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी छे  
तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे

- (१) लुधियाना-सम्बत् १९८९, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, श्रुतज्ञान के भडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य श्री मुनि हेमचन्दजी महाराज
- (२) लाहौर-वि० स० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित रत्न श्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डित रत्न श्री १००७ श्री त्रिलोकचन्दजी महाराज
- (३) खिचन से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८ श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज
- (४) वालाचोर-ता. १४-११-३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न श्री १००८ श्री शतावधानीजी श्री रतनचन्दजी महाराज
- (५) बम्बई-ता १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री कवि नानचन्द्रजी महाराज
- (६) आगरा-ता १८-११-३६, जगत् बल्लभ श्री १००८ श्री जैन दिवाकर श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी श्री प्यारचन्दजी महाराज
- (७) हैद्राबाद (दक्षिण) ता २५-११-३६ का पत्र, स्थिवरपदभूषित भाग्यवान पुरुष श्री ताराचन्दजी महाराज तथा प्रसिद्ध वक्ता श्री १००७ श्री सोभागमलजी महाराज
- (८) जयपुर-ता २६-११-३६ का पत्र, सप्रदाय के गौरवर्धक शात-स्वभावी श्री १००८ श्री पूज्य श्री खूनचन्दजी महाराज
- (९) अम्बाला-ता २९-११-३६ का पत्र, परम प्रतापी पनाब केशरी श्री १००८ श्री पूज्य श्री रामजी महाराज

- (१०) सेलाना-ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रों के ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी डोसी.
- (११) खीचन-ता. ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत् माधवलालजी

.. ० ..

ता २५-११-३६

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासक दशाग सूत्र तथा पत्र मिला यहां विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांती में विराजमान हैं आपके वहां विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी बन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछे आपने उपासकदशाग सूत्र के विषय में यहां विराजित मुनिवरों की सम्मती भगाई उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराज ने फरमाया है कि वर्तमान में स्थानकवासी समाज में अनेकानेक विद्वान मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचने का साहस जैसा घासीलालजी महाराज ने किया है वैसा अन्य ने किया हो ऐसा नजर नहीं आता दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों हैं सस्कृत प्राकृत हिन्दी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं जैन समाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढे यही शुभ कामना है आशा है कि स्थानकवासी सघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखें शेष शुभ

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

\*

आगरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्धवक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चौधमलजी महाराज व पंडितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्द जी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचन से लिखते हैं कि:-

उन पंडितरत्न महाभाग्यवत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-  
तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ।

परन्तु :-

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढ़ा है बहुत सराहना की  
है वास्तव में ऐसे उत्तम व सबके समझाने योग्य ग्रन्थों की बहुत  
आवश्यकता है और इस समाज का तो ऐसा ग्रन्थ ही गौरव बढ़ा  
सकते हैं-ये दोनो ग्रन्थ वास्तव में अनुपम है ऐसे ग्रन्थरत्नों के  
सुप्रकाश से यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकार में दीपावली का  
अनुभव करती हुई महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई  
अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी।

-: ❁ :-

ता २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला श्री श्री १००८ पंजाब केशरी पूज्य श्री काशी-  
रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया। आपकी भेजी हुई  
उपासकदशाङ्ग सूत्र तथा गृहधर्मकल्पतरु की एक प्रति भी प्राप्त  
हुई। दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी  
हुई हैं, ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवाये की बड़ी आवश्यकता है।  
इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है। आपका  
यह पुरुषार्थ सराहनीय है।

आपका

शशिमूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाई स्कूल

अम्बाला शहर

शान्त स्वभावी वैराग्य मूर्ति तत्व वारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासक दशाङ्गजी को देखा । आपने फरमाया कि पण्डित मुनि घासीलालजी महाराज ने उपासक दशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखने में बड़ा ही परिश्रम किया है । इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोंकी सशोधक पूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होने से भगवान निग्रन्थो के प्रवचनों के अपूर्व रस का लाभ मिल सकता है



वालाचोर से भारतवर्ष शतावधानी पण्डित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि :-

उत्तरोत्तर जोता मूल सूत्रनी सस्कृतटीकाओ रचवामा टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्यो छे, जे स्थानकवासी समाज माटे मगरुरी लेवा जेबु छे, बली कराचीना श्री सघे सारा कागलमा अने सारा टाइपमा पुस्तक छपावी प्रगट कर्यु छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बजावी छे.



बम्बई शहर में विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है ।



खीचन से स्थविर क्रिया पात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पण्डितरत्न मुनि सम्रथमलजी महाराज श्री फरमाते हैं कि-विद्वान महात्मा पुरुषोक्ता प्रयत्न सराहनीय है क्या जैनागम श्रीमद् उपासक दशाङ्ग सूत्र की टीका, एव उसकी सरल सुबोधनी शुद्ध हिन्दी भाषा बड़ी ही सुन्दरता से लिखी है ।





શ્રમણ સઘના પ્રચાર મત્રી પબ્બ ઠેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચંદ્ર મહારાજ જેઓશ્રી રાજકોટમા પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને માટે મળેલો અભિપ્રાય

\*

શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્ર વારિધિ પડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજદ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈન સમાજ તેમા ખાસ કરીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની જાડને મજબુત કરવાવાળું છે

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમા યથાશક્તિ લોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ બગીરથ કાર્ય જલ્દીથી જલ્દી સ પૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે

\*

દરીયાપુરી સ પ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

## સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીર ગિરી સાર ધીર

પૂજ્ય પાદ જ્ઞાન પ્રવરશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા પડિતશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ આદિ થાણા છગી સેવામા-

અમદાવાદ શાહુપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમા હશે નિરતર ધર્મધ્યન ધર્મારાધનમા લીન હશે.

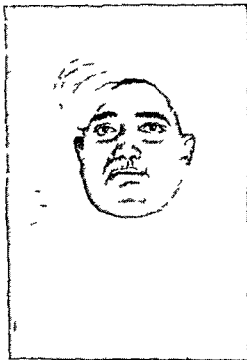
સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરીત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકાલિક તથા આચારાગ એક એક ભાગ અહીં છે ટીકા ખૂબ સુદર, સરળ અને પડિતજનોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે સાથે સાથે ટીકા વીનાના મુજ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો આવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે અને પૂજ્ય આચાર્ય ગુરુદેવને આપે મોતીયો ઉતારાઓ છે અને સાડ છે એજ

આસો શુક ૧૦, મગળવાર તા ૨૫-૧૦-૫૫

પુન પુન શાતા ઇચ્છતો,  
દયા મુનિના પ્રણિપાત

\*

૩૧. ૬,૦૦૦ આપનાર આદ્ય સુરક્ષીશ્રી,



(સ્વ) શેઠ હરખચંદ હાલીદામ વાડીયા

ભાણુવડ

શ્રમણ સઘના પ્રચાર મત્રી પબ્બ કેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચંદ્ર મહારાજ જેઓશ્રી રાજકોટમા પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને માટે મળેલો અભિપ્રાય

\*

શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્ર વારિધિ પડિતરાજ સ્વામીશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજદ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈન સમાજ તેમા ખાસ કરીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની જડને મજબુત કરવાવાળું છે

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમા યથાશક્તિ લોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દીથી જલ્દી સ પૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે

\*

દરીયાપુરી સ પ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઇશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબના

## સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીર ગિરી સાર ધીર

પૂજ્ય પાદ જ્ઞાન પ્રવરશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા પડિતશ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ આદિ થાણા છત્રી સેવામા-

અમદાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રજ્ઞિપાત

આપ સર્વે થાણાઓ સુખ સમાધિમા હશે નિરતર ધર્મધ્યન ધર્મારાધનમા લીન હશે

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરીત થાય એવી ભાવના છે દશવૈકલિક તથા આચારાગ એક એક ભાગ અહીં છે ટીકા ખૂબ સુદર, સરળ અને પડિતજનોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે સાથે સાથે ટીકા વીનાના મુળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તેા શ્રાવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે અને પૂજ્ય આચાર્ય ગુરુદેવને આખે મોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સાડ છે એજ

આસો શુદ્ધ ૧૦, મગળવાર તા ૨૫-૧૦-૫૫

પુન પુન શાતા ઇન્છતો,  
દયા મુનિના પ્રજ્ઞિપાત.

\*

દરીયાપુત્રી મ પ્રદાયના પકિત રત્ન ભાઈચંદ્ર મહારાજનો અભિપ્રાય  
શ્રી

રાણપુર તા ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનમવર પકિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિમુનિવરોની  
વિભા આપ સર્વ સુખ સમાધીમા હયો

સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ સુદર થઈ રહ્યું છે તે જાણી અત્યંત આનંદ આપના  
પ્રીત થયેલા ફેટલાક સૂત્રો જોયા સુદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ કરતી  
કા પકિતરત્નોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ ત્વરિત પૂર્ણ થાય  
ને ભાવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામા સાધનભૂત થાય એજ અર્થર્થના

લી પકિતરત્ન ણાજપ્રણયારી  
પૂ શ્રી ભાઈચંદ્ર મહારાજની  
આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનિના  
પાયવદન સ્વીકારયો

\*

તા ૧૧-૫-૫૬  
વીરમગામ

ગરહાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સ પ્રદાયના  
માર્ગી, ક્રિયાપાત્ર, પકિતરત્ન, મુનિશ્રી અમરચમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા ૧૧-૨-૫૬ના પત્રથી ઉઠિત

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના દમ્બક જે સૂત્રોનું લખાણ સુદર  
મરણ લાપમા વાય છે તે આદિત્ય પકિત મુનિશ્રી અમરચમલજી મહારાજ,  
ય એણે મળવાને માટે સૂત્રોને જોઈ ગ્રંથના નથી છતા જેટલુ આદિત્ય જેથું  
તે જાહુ જ સાડ અને મનન સાથે લખાણે છે તે લખાણુ ગ્રાસ આજ્ઞાને  
રૂપ લાગે તે આ આદિત્ય દમ્બક પ્રદાણુ જોયોને ત્યજવા યોગ્ય છે આમ  
નકવાસી અમાજની તરફ, પ્રજ્ઞાપત્તા આંન કલમણુની રદના ગ્રાજ્ઞાનુદ્ધને કે  
માર્ગ શ્રી અપૂર્વ ચરિત્રમ હઈ અમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે

લી. દીપાનશાસ્ત્ર મુશ્કીણજી માહુ  
તા ૧૧-૫-૫૬

-

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને ઝોમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારવાર અભિનંદન છે શાસનનાયક દેવ તેમના શરિરાદીને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે

ૐ અસ્તુ

ચાતુર્માસ સ્થળ લીળડી  
આ ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરુ

લિ  
સદાનદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

\*

### શ્રી વર્ધમાન સપ્રદાયના પૂજ્ય શ્રી પુનમચ દ્રજી મહારાજનેા અભિપ્રાય

શાસ્ત્ર વિશારદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે આગમો ઉપરની તેમની સસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણીજ સુદર છે સસ્કૃત રચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે શુભોચી સુકત છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સસ્કૃત રચનાની કદર કરવી જોઈએ અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ

આવા મહાન કાર્યમા પડિતરતન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલોકિક છે તેમનું આગમ ઉપરની સસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથ કાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ

તા' ૨૨-૪-૫૬ રવિવાર  
મહાવીર જયતિ

મુનિ પૂર્ણચ દ્રજી

\*

### ખભાત સપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનેા અભિપ્રાય

લખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાતીલાલભાઈ મગળદાસભાઈ

પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત જ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મુા અમદાવાદ

અમે અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ વિમા આપની સમિતિ દ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીના સૂત્રોમાથી ઉપાસક દશાગ સૂત્ર, આચારાગ સૂત્ર, અનુત્તરોપપાતિક સૂત્ર,

## લીબડી સ પ્રદાયના સદાનદી મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાગદેવે-જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થ કર નામ ગોત્ર ણાધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે જ્ઞાન પ્રચાર કરનાર, કરવામા સહાય કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર જ્ઞાનાવર્ણિય કર્મને ક્ષય કરી-કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે શાસ્ત્રજ્ઞ-પરમ શાન્ત, અને અપ્રમાદિ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાશના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમા પણ કરી રહ્યા છે તે માટે તેઓશ્રી અનેકશ ધન્યવાદના અધિકારી છે વદનિય છે- તેમની જ્ઞાન પ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાનપ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે તેમજ- શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમા સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે

એ સમિતિના કાર્યકરોને મારી એક સૂચના છે કે -

શાસ્ત્રોદ્ધારક પ્રવર પડિત અપ્રમાદિ સ ત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ કરી રહેલ છે તેમા સહાય કરવા માટે-પડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે તેને પહોંચી વળવા માટે સાફ સરણુ ફંડ જોઈએ એના માટે મારી એ સૂચના છે કે - શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો,-જે બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા જે ત્રણ જણાએ જુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર અને કચ્છમા પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે

જો કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે વ્યાપારીઓ, ધધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બન્યા છે છતાં જે સભાવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નીકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે

આર્થિક અનુકુળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ન્યા સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં સુધીમા એમની જ્ઞાન શક્તિનો જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો કદાચ સૌરાષ્ટ્રમા વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઈચ્છા થતી હોય તો શાન્તિભાઈ શેઠ જેવાએ વિનતી કરી અમદાવાદ પધરાવવા અને ત્યાં-અનુકુળતા મુજબ જે-ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઈએ

ચોડા વખતમા જ્ઞમજ્ઞેધપુરમા શાસ્ત્રોદ્ધાર કમીટી મળવાની છે તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને જોમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરિરાદીને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે  
ૐ અસ્તુ

ચાતુર્માસ સ્થળ લીબડી  
સા ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ શુક્ર

લિ  
સદાનદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

\*

### શ્રી વર્ધમાન સપ્રદાયના પૂજ્ય શ્રી પુનમચ દ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્ર વિશારદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે ને માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે તેમજ આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે આગમો ઉપરની તેમની સસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણીજ સુદર છે સસ્કૃત રચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી સુકત છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સસ્કૃત રચનાની કદર કરવી જોઈએ અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ

આવા મહાન કાર્યમાં પડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે તેમનું આગમ ઉપરની સસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથ કાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ

તા ૨૨-૪-૫૬ રવિવાર

મહાવીર જયતિ

મુનિ પૂર્ણચ દ્રજી

\*

### ખલાત સપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લાખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાતીલાલભાઈ મગળદાસભાઈ

પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભાગત શ્રવે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

સુ. અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ વિમા આપની સમિતિ દ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીના સૂત્રોમાથી ઉપાસક દયાગ સૂત્ર, આચારાગ સૂત્ર, અનુત્તરોપપાતિક સૂત્ર



દશવૈકલિક સૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયા તે સૂત્રો સ્વસ્કૃત હિંદી અને ગુજરાતી ભાષા  
ઓમા હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ધણુજ લાભદાયિક છે તે  
પ્રાચ્યન ધણુજ સુદર અને મનોરજન છે આ કાર્યમા પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અઘાત  
પુરુષાર્થે કાર્ય કરે છે તે માટે વારવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે આ સૂત્રોથી સમાજને  
ધણુ લાભનું કારણ છે

હસ સમાન યુદ્ધીવાળા આત્માઓ સ્વપરના લેદથી નિખાલસ ભાવનાએ  
અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ  
લેવા જેવું છે માટે દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરૂ છુ કે આ સૂત્રો પોતપોતાના  
ઘરમા વસાવાની સુદર તકને ચૂકશેો નહિ કારણુ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરપરા  
ને પુષ્ટીરૂપ સૂત્રો મળવા બહુ મુશ્કેલ છે આ કાર્યને આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય  
કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમા મહાન નિર્જારાનું કારણુ જોવામા આવે છે  
તે બદલ ધન્યવાદ એજ

લી ગારદાબાઈ સ્વામી

ખલાત સ પ્રદાય

\*

બરવાળા સ પ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોઢીબાઈ  
સ્વામીનો અભિપ્રાય

ધ ધુકા તા ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મગજદાસબાઈ  
પ્રમુખ અં ભાં પ્રવેં સ્થાં જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ  
સુ રાજકોટ

અત્રે બિરાજતા શું શુંના બહાર મહાસતીજી વિદુષી મોઢીબાઈ સ્વામી  
તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિ ઠાણુ બન્ને સુખચાતામા બિરાજે છે આપને સૂચન છે  
કે અપ્રમત અવસ્થામા રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેગવી ધર્મધ્યાન કરશેજી એજ આશા છે

વિશેષમા અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના  
રચેલા સૂત્રો બાઈ પોપટ ધનજીબાઈ તરફથી એટ તરીકે મળેલા તે સૂત્રો તમામ  
આઘોડિપાન વાચ્યા મનન કર્યા અને વિચાર્યા છે તે સૂત્રો સ્થાનકવામી સમાજને  
અને વીતરાગ માર્ગની પૂજાજ ઉન્નત જનાવનાર છે તેમા આપણી ધરદા એટલી  
ન્યાય રૂપથી ભરેલી છે તે આપણા મમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવુ છે હમ સમાન

આત્માઓ જ્ઞાન ઝરણાઓથી આત્મરૂપ વાડીને વિકત્રીત કરશે ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન ભવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છે. આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સ પૂર્ણ કાર્ય પુરૂ કરાવશે તેવી આશા છે.

એજ લિ ઝરવાળા સપ્રદાયના વિદ્વંધી

મહાસતીજ મોઘીબાઈ સ્વામી

ના ફરમાનથી લી ખોડીદાસ ગણેસભાઈ-ધધુકા

સ્થાનકવાસી જૈન સઘના પ્રમુખ

\*

અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન  
પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સપ્રદાયના મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મહાગજ જૈનશાસ્ત્રોના સમ્કૃત ટીકાખંડ, ગુજરાતીમા અને હિન્દીમા ભાષાતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમા વ્યાસ થયેલા છે શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયા છે તે હુ જોઈ શક્યો છુ, મુનિશ્રી પોતે સમ્કૃત, અર્ધમાગધી હિન્દી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે, એ એમનો ટુકો પરિચય કરતા સહજ જણાઈ આવે છે શાસ્ત્રોનુ સપાદન કરવામા તેમને પોતાના, શિષ્યવગનો અને વિશેષમા ત્રણ પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે, તે જોઈ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પડિતોનો સહકાર મેળવી આપી મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ ણતાળ્યુ છે સ્થાનકવાસી મનાજમા વિદ્વતા ઘણી એછી છે તે દિગ્ગજર, મૂર્તિપૂજક પ્રવેતાગર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમા આવતા હુ વિરોધના ભય વગર, કહી શકુ પૂ મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સપ્રદાયમા પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે સસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારા આપવામા આવ્યા છે ભાષાં શુદ્ધ છે એમ હુ એકસ કહી શકુ છુ ગુજરાતી ભાષાતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલા છે મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજ શ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાતરોને વાચનાલયમા અને કુટુંબોમા વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે

પ્રતાપગજ, વડોદરા

કામદાર કેશવલાલ હિમતરામ,

એમ એ

દશવૈકલિક સૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોયા તે સૂત્રો સંસ્કૃત હિંદી અને ગુજરાતી ભાષા  
ઓમા હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણું જ લાભદાયક છે તે  
પ્રાચ્યન ધણું જ સુદર અને મનોરજન છે આ કાર્યમા પૂજ્ય આચાર્યશ્રી જે અઘાત  
પુરુષાર્થે કાર્ય કરે છે તે માટે વારવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે આ સૂત્રોથી સમાજને  
ઘણું લાભનું કારણ છે

હવે સમાન યુદ્ધીવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાઓ  
અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ  
લેવા જેવું છે માટે દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરૂ છું કે આ સૂત્રો પોતપોતાના  
ઘરમા વસાવાની સુદર તકને ચૂકશે નહિ કારણુ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપર પરા  
ને પુષ્ટીરૂપ સૂત્રો મળવા બહુ મુશ્કેલ છે આ કાર્યને આપશ્રી ત્યા સમિતિના અન્ય  
કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમા મહાન નિર્જરાનું કારણુ જોવામા આવે છે  
તે બદલ ધન્યવાદ જોજ

લી ગારદાબાઈ સ્વામી

ખલાત સ પ્રદાય

\*

ખરવાળા સ પ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોઘીબાઈ

સ્વામીને અભિપ્રાય

ધ ધુકા તા ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મગજદાસબાઈ

પ્રમુખ અં ભાં ૨૧૦ સ્થાં જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

સુ રાજકો

અત્રે બિરાજતા શું શુંના બહાર મહાસતીજી વિદુષી મોઘીબાઈ સ્વામી  
તથા હીરાબાઈ સ્વામી આદિ ઠાણા બન્ને સુખઘાતામા બિરાજે છે આપને સૂચન છે  
કે અપ્રમત અવસ્થામા રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશેજી એજ આશા છે

વિશેષમા અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના  
સ્વેચ્છા સૂત્રો બાઈ પોપટ ધનજીબાઈ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલા તે સૂત્રો તમામ  
આઘોડિપાન વાચ્યા મનન કર્યા અને વિચાર્યા છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને  
અને ધીતરાગ માર્ગની ખૂબજ ઉન્નત બનાવનાર છે તેમા આપણી શ્રદ્ધા એટલી  
ન્યાય રૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ લેવા જેવું છે હવે સમાન

આ સૂત્રો જોતા પહેલીજ નજરે મહારાજશ્રીને સસ્કૃત, અર્ધભાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઈ આવે છે એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી આપણે જાણીએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટિના છે તેની વસ્તુ ગભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે આટલા ગહન અને સર્વશ્રાદ્ધ સૂત્રોનું ભાષાતર પૂ ધાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટિના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણા અહોભાગ્ય છે યત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલા સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાતર દરેક જાણુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણુસ, સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યા છે મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સકળાયેલા જોઈએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કદવના કરી શકાય તેમ છે તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે અને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે

પ્રો. રમિકલાલ કસ્તુરચંદ ગાંધી

એમ એ એલ એલ બી

ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ

રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

\*

સુખઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સલામતે વિનાસર કોન્ફરન્સ તથા

સાધુ સ મેલનમાં મોકલાવેલ ઠગવ

હાલ જે વખતે શ્રી જ્વેતાબર સ્થાનકવાસી જૈન સઘ માટે આગમ-સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાત્મકાર્યોએ આ વાત દીર્ઘ દ્રષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમાં લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પડિતરત્ન શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદી અધિવેશનમાં સર્વાત્મતે સાહિત્ય મત્રી નીજ્યા છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે આ ભા જ્વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચાર મત્રીશ્રી

## મુખ્યની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોના અભિપ્રાય

મુખ્ય તા ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાતીલાલ મગળદાસ

પ્રમુખ શ્રી અખિલ ભારત યૈ સ્થા નૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,  
રાજકોટ

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકલિક આવશ્યક, ઉપાસકદશાગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયા આ સૂત્રો ઉપર સસ્કૃતમા ટીકા આપવામા આવી છે અને સાથે સાથે હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાતરો પણ આપવામા આન્યા છે, સસ્કૃત ટીકા અને ગુજરાતી તથા હિન્દી ભાષાતરો જોના આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એકસરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે આ સૂત્ર ગ્રંથોમા પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વતા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે ગુજરાતી તથા હિન્દીમા થયેલા ભાષાતરમા ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોધપાત્ર છે એથી વિદ્વદ્જનન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સતોષ આપે એવી એમની લેખિનીની પ્રતીતિ થાય છે ૩૨ સૂત્રોમાથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયા છે બીજા ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઈ ગયા છે આ બધા જ સૂત્રો ન્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન સૂત્ર-સાહિત્યમા અમૂલ્ય સપત્તિરૂપ ગણાશે એમા સશય નથી આચાર્યશ્રી આ મહાન કાર્યને જૈન સમાજનો-વિશેષત સ્થાનકવાસી સમાજનો સપૂર્ણ સહકાર સાપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

પ્રો રમણુલાલ ચીમનલાલ શાહ

સેટ એવિયર્સ કોલેજ મુખ્ય

પ્રો તારા રમણુલાલ શાહ

સોશીયા કોલેજ, મુખ્ય.

\*

રાજકોટની ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો

અભિપ્રાય.

જયમહાલ

નગનાથ પ્લોટ

રાજકોટ, તા ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પ મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈન સમાજ માટે એક એવા કાર્યમા વ્યાપ્ત થયેલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકલિક, શ્રી વિષ્ણુકથા વિ એ જોયા

આ સૂત્રો જોતા પહેલીજ નજરે મહારાજશ્રીનો સસ્કૃત, અર્ધભાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઈ આવે છે એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અનભી નથી આપણે જાણીએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટિના છે તેની વસ્તુ ગભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે આટલા ગહન અને સર્વશાસ્ત્ર સૂત્રોનું ભાષાતર પૂ ધાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટિના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણા અહોભાગ્ય છે યત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલા સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાતર દરેક જ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ, સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યા છે મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સકળાયેલા જોઈએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કંપના કરી શકાય તેમ છે તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પડિતોનો મહકાર મળ્યો છે અને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ધરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે

મો. રસિકલાલ કરતુરચ્ચ દ ગાધી

એમ એ એલ એલ બી

ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ

રાજકોટ ( સૌરાષ્ટ્ર )

\*

સુખઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સલામતે લિનાસર કોન્ફરન્સ તથા સાધુ સ મેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખતે શ્રી શ્રવેતાળર સ્થાનકવાસી જૈન સઘ માટે આગમ-સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાતુભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દ્રષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમાં લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પડિતરત્ન શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદહી અધિવેશનમાં સર્વાતુમતે સાહિત્ય મત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની હેખરેખ નીચે આ લા શ્રવે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચાર મત્રીશ્રી

## મુખ્યની બે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુખ્ય તા ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેક શાંતીલાલ મગજદાસ

પ્રમુખ . શ્રી અખિલ ભારત શ્રે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,  
રાજકોટ

પૂજ્યાચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકલિક આવશ્યક, ઉપાસકદશાગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયા આ સૂત્રો ઉપર સસ્કૃતમા ટીકા આપવામા આવી છે અને સાથે સાથે હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાતરો પણ આપવામા આન્યા છે, સસ્કૃત ટીકા અને ગુજરાતી તથા હિન્દી ભાષાતરો જોતા આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના એકસરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે આ સૂત્ર ત્રયોમા પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વતા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે ગુજરાતી તથા હિન્દીમા થયેલા ભાષાતરમા ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોધપાત્ર છે એથી વિદ્વજ્ઞન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સતોષ આપે એવી એમની લેખિનીની પ્રતીતિ થાય છે ૩૨ સૂત્રોમાથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયા છે બીજા ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઈ ગયા છે આ બધા જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન સૂત્ર-સાહિત્યમા અમૂલ્ય સપત્તિરૂપ ગણાશે એમા સશય નથી આચાર્યશ્રી આ મહાન કાર્યને જૈન સમાજનો-વિશેષત સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

પ્રો રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ

સેટ એવિયર્સ કોલેજ મુખ્ય

પ્રો તારા રમણલાલ શાહ

સોશીયા કોલેજ, મુખ્ય

\*

રાજકોટની ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસર સાહેબનો

અભિપ્રાય

જયમહાલ

જગનાથ પ્લોટ

રાજકોટ, તા ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાચાર્ય પ મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈન સમાજ માટે એક એવા કાર્યમા વ્યાપ્ત થયેલા છે કે જે સમાજ માટે ગદુ ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલા આચારાગ, દશવૈકલિક, શ્રી વિષ્ણુકથુત વિ એ જોયા

નવાઈ નથી અને પૂ શ્રી ઘાસીલાલજીના ળનાવેલા સૂત્રો જોતા સૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ પાસેથી રાખેલી તે ળરાળર ક્ષણભૂત થયેલ છે

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશ્ન સા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે

આ સૂત્રો વિઘાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે વિઘાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય હિન્દી વાચકને હિન્દી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આણુ સૂત્ર સરળતાથી સમજાય જાય છે

કેટલાકોને એવો ળમ છે કે સૂત્રો વાચવાનું આપણુ કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ આ ળમ તદ્દન ખોટો છે ખીજા કોઈપણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતા સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ બ મહાવીરે તે વખતથી લોક ભાષામા (અર્થ માગધી ભાષામા) સૂત્રો ળનાવેલા છે એટલે સૂત્રો વાચવા તેમજ સમજવામા ઘણા સરળ છે

માટે કોઈ પણ વાચકને એનો ળમ હોય તો તે કાઢી નાખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચુ જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને ચૂકવુ નહિ એટલુ જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલા સૂત્રોજ વાચવા

સ્થાનકવાસીઓમા આ શ્રી સ્થા જ્ઞેન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેણુ કોઈ પણ સસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી સ્થા જ્ઞેન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે ખીજા છ સત્રો લખાયેલ પડયા છે, જે સૂત્રો-અનુયોગદ્ધાર અને ઠાણાગ સૂત્રો-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમા તૈયાર થઈ જશે તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામા આવશે

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા જધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમના સૂત્રો ઘરમા વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ

‘જ્ઞેન સિદ્ધાંત’ પત્ર - મે ૧૯૫૫



૧થા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે અને છેલ્લામા છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સિટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ એ એ પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સંમેલન તથા કોન્ફરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે અને તેમના કામને જ્યાં જ્યાં અને જે જે જરૂર પડે-પડિતની અને નાણાની-પોતાની પાસેના ફંડમાથી અને બહાર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઇચ્છા ધરાવે છે

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કોન્ફરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કાંઈ ત્રુટી હોય તે પ ૨ શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજની સાનિધ્યમા જઈ બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો આ કામને ટલે ચઢાવવા જેવું કોઈપણ કામ સત્તા ઉપરના અધીકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે જોવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે

(સ્થા જૈન પત્ર તા ૪-૫-૫૬)

\*

### સ્વતંત્ર વિચારક અને નિહર લેખક 'જૈન સિદ્ધાંત'ના તત્ત્વીશ્રી શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમા બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમા મને લખેલું કે—

“આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સપ્રદાયમા મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મ સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જોવામા આવતા નથી લાખી તપાસને અતે મે મુનિ શ્રી ધાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે”

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા આવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શીક્ષા વાચના લેતા, તેમ જ્ઞાન ચર્ચા પણ કરતા એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી યથાર્થ જ હોય એમા

નવાઇ નથી અને પૂ શ્રી ઘાસીલાલજીના બનાવેલા સૂત્રો જોતા સૌ કોઇને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવામી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ પામેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઇ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય હિન્દી વાચકને હિન્દી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય જાય છે

કેટલાકોને એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાચવાનું આપણું કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે બીજા કોઈપણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતા સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ બ મહાવીરે તે વખતથી લોક ભાષામાં (અર્થ માગધી ભાષામાં) સૂત્રો બનાવેલા છે એટલે સૂત્રો વાચવા તેમજ સમજવામાં ઘણા સરળ છે

માટે કોઈ પણ વાચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને ચૂકવું નહિ એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલા સૂત્રોજ વાચવા

સ્થાનકવાસીઓમાં આ શ્રી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બીજા છ સૂત્રો લખાયેલ પડયા છે, બે સૂત્રો-અનુયોગદ્ધાર અને ઠાણાગ સૂત્રો-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે

તૈયાર સૂત્રો જઠ્ઠી છપાઈ જાય એમ ઇચ્છીએ છીએ અને સ્થા બધુએ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમના સૂત્રો ધરમા વસાવે એમ ઇચ્છીએ છીએ

‘જૈન સિદ્ધાન્ત’ પત્ર - મે ૧૯૫૫

## શ્રુત ભક્તિ

( પૂ આચાર્ય શ્રી ઈશ્વરલાલજી મે સા ની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર )

દ સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા ૨૩-૬-૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય, જ્ઞાન દિવાકર પ મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ ચરમ તીર્થ કર્ ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર અનુપમ ન્યાય સુકૃત, પૂર્વાપર અવિરોધ, સ્વપર કયાણકારક, ચરમ શીતળ વાણીના ઘોતક એવા શ્રી જિનાગમ પર પ્રકાશ પાડે છે તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પડિત છે અને જિન વાણીનો પ્રકાશ સસ્કૃત, ગુજરાતી અને હિન્દીમા મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ સાથે પ્રકાશમા લાવે છે એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે

ભ૦ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરદેહ ગણુધર મહારાજોએ શ્રુત પરપરાએ સાચવી રાખ્યો શ્રુત પરપરાથી સચવાતુ જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવદિગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લીપુર-વળામા તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઠ કર્યો આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે તે અર્ધ માગધી પાલી ભાષામા છે અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મ ભાષા છે તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા મુમુક્ષુ શ્રાવક શ્રાવિકાઓ, મુખપાઠ કરે છે, પરંતુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે

જિનાગમ એ આપણા શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે એ આપણી આખો છે તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણી સૌની-જૈન માત્રની ફરજ છે તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજવવા માટે આપણા સદ્ભાગ્યે જ્ઞાન દિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે સત્સકલ્પ કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતી દ્વારા જ્ઞાન પરખ વહેતી કરી છે આવા અનુપમ કાર્યમા સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમા વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે

ભ૦ મહાવીરને ગણુધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શુ ફળ પ્રાપ્ત થાય છે ? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે અને તેઓ સસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ ગેળવે છે અને સસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતા મોક્ષ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે

આવા જ્ઞાન કાર્યમા મૂર્તિપૂજક જૈનો, દિગભરો અને અન્ય ધર્મીઓ હજારો અને લાખો રૂપીયા ખર્ચે છે હિન્દુ ધર્મમા પવિત્ર મનાતા મ્રથ ગીતાના મેકઠો નહિ પણ હજારો ટીકા મ્રથો દુનિયાની લગભગ સર્વ ભાષાઓમા પ્રગટ થયા છે ઈસાઈ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મશાસ્ત્રના ઘાઈળલના પ્રચારાર્યે તેનું જગતની સર્વ ભાષાઓમા ભયાતર કરી, તેને પડતર કરના પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-

સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે મુસ્લીમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનું અર્થ અનેક ભાષાઓમાં ભાષાતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે આપણે પૈસા પરનો મોઢા ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવા જોઈએ અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઈએ આવા પવિત્ર કાર્યમાં સાપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઈએ અને શુદ્ધ આશયથી યતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઈએ સમિતિના નિયમાનુસાર રૂ. ૨૫૧૫ બરી સમિતિના સભ્ય બનવું જોઈએ ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના મુકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાન પ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણાવું જોઈએ

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-ભગવાનની એ મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહ મેશ તરપર રહેવું જોઈએ જેથી પરમ શાન્તિ અને શુભ સિદ્ધિ મેળવી શકાય (૨થા જૈન તા ૫-૭-૫૬)

શ્રી અ ભા ૨વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના પ્રમુખશ્રી વગેરે

રાણપુર

પરમ પવિત્ર સૌન્દર્યની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાન્ત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજના પુનિત પગલા થયા છે ત્યારથી ઘણા લાખા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણિય કર્મના પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઈ રહ્યો છે અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અર્પૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમે સર્વમે ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ ટપે છે અને તે સમન્વય છે કે સાધુજી ઇટે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ તે બહુધા સાતમે અપ્રમત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે એવા અપ્રમત માત્ર પાત્ર-માત્ર માધુઓ જો સ્થાનકવાસી જૈન સમાજમાં હોય તે સમાજનું શ્રેય થતા જરાએ વાર ન લાગે સમાજ કાશમાં સ્થા જૈન સપ્રદાયનો દિગ્વ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે પ ણ વો દિન

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને મ્હારી એક નમ્ર સૂચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધા વસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાવે તેવી છે તેમને ગામેગામે વિહાર કરવા અને શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરવું તેમાં ઘણી શારીરિક-માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે તે કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાના શ્રાવકો ભકિતવાળા હોય, વાડાના રાગના વિપથી અલીપ્ત હોય એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યા સુધી સ્થીરતા કરી શકે એના માટે પ્રબંધ કરવો જોઈએ ધીન્દ કોઈ એવા સ્થળની અનુકુળતા ન મળે તેા છેવટ અમદાવાદમાં યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડતા કરી અપાય તે વધુ સાફ મ્હારી આ સૂચના પર ધ્યાન આપવા ફરી યાદ આપુ છું ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સહકાર્યના સહાયકોને મારા અભિનંદન પાડવું છું તે સ્વીકારશોજી

શ્રી સદાનંદી જૈનમુનિ છાગલાલજી

## “ જૈન સિદ્ધાંતના ” તત્ત્વીશ્રીનો અભિપ્રાય.

સ્થાનકવાસીઓમા પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાઠનારી આ ઝોકની ઝેક સસ્થા છે અને ઝોના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતિ કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિન્દી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાડવા એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ ઝેક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવ સૂત્રો બહાર પડી ચૂક્યા છે, હાલમા ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો લખાઈ ગયા છે અને જ બુદ્ધાંત પ્રત્તિષ્ઠિ તથા નદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યા છે

હાલમા મત્રી શ્રી સાકરચંદ બાઈચંદ સમિતિના કામમા જ તેમનો આગ્રહ વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમની ખત માટે ધન્યવાદ

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પંડિત મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની, તેના બહાર પડેલા સૂત્રો ધરમા વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામા આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ત્રણ અઢા કર્ણ ગણાય

ભગવાને કહ્યું છે કે પઠમ ગાણ તઓ દયા પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મને યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાચવાજ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેના ભાવાર્થ યથાર્થ સમજવો જોઈએ

એટલા માટે આ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા જૈને પોતાના ધરમા વસાવવાજ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા જૈન આ સૂત્રો વાંચી એ ખાસ જરૂરનું છે

“ જૈન સિદ્ધાંત ” ડીસેમ્બર-૫૬



## શ્રી ઉપાશકે દશાગ સૂત્રને માટે અભિપ્રાય.

મૂળ સૂત્ર તથા પૂ મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ બનાવેલ સસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત

પ્રકાશક-અ બા શ્રવે સ્થાનકવામી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ, ગરેડીઆ કુવા શાક, શ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ ખીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) કદ પાકુ પુકું જેકેટ સાથે અને ૧૯૫૬ કિમત ૮-૮-૦

આપણા મૂળ ખાર અગ સૂત્રોમાનું ઉપાશકદશાગ એ સાતમું અગ સૂત્ર છે, એમા ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો શ્રાવકોના જીવનચરિત્રો આપેલા છે તેમા પહેલું ચરિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે

આનંદ શ્રાવકે જૈન ધર્મ અગીકાર કર્યો અને ખારવ્રત ભગવાન મહાવીર પાસે અગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધા તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે તેની અતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકલોકસ્વરૂપ, નવતરવ, નરક દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે

આનંદ શ્રાવકે ખાર વ્રત લીધા તે ખારે વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે તે જ પ્રમાણે ખીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામા અરિહત્ત ચેઙ્ગ્યાઈ શબ્દ આવે છે મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહત્ત તનુ ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સબધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામા અનેક રીતે પ્રમાણે આપી સાબિત કરેલ છે અને અરિહત્ત ચેઙ્ગ્યાઈ નો અર્થ સાધુ થાય છે તે બતાવી આપેલ છે

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ, નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજ્યવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાચવું જોઈએ એટલું જ નહિ પણ વારવાર અધ્યયન કરવા માટે ધરમા વસાવવું જોઈએ

પુસ્તકની શરૂઆતમા વર્દ્ધમાન શ્રમણ સઘના આચાર્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સમતિ પત્ર તથા ખીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સમતિ પત્રો આપેલા છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે

“જૈન સિદ્ધાંત” નવન્યુઆરી, ૫૭



## “ જૈન સિદ્ધાંતના ” તત્ત્વીશ્રીનો અભિપ્રાય.

સ્થાનકવાસીઓમા પ્રમાણ્યૂત સૂત્રો બહાર પાઠનારી આ એકની એક સસ્થા છે અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતિ કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિન્દી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાડવા એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ એક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવ સૂત્રો બહાર પડી ચૂક્યા છે, હાલમા ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો લખાઈ ગયા છે અને જ બુદ્ધીય પ્રજ્ઞા તથા નદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યા છે

હાલમા મત્રી શ્રી સાકરચંદ બાઈચંદ સમિતિના કામમા જ તેમનો આજો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમની ખત માટે ધન્યવાદ

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વ્યોવૃદ્ધ પंडित મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે એ ઉપકારનો બદલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી

પરંતુ આ સમિતિના એમ્બર બની, તેના બહાર પડેલા સૂત્રો ઘરમા વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામા આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ત્રણ અઠા કર્ચ ગણાય

ભગવાને કહ્યું છે કે પઠમ ણાણ તઓ દયા પહેલુ જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મને યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાચવાજ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ યથાર્થ સમજવો જોઈએ

એટલા માટે આ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા જૈને પોતાના ઘરમા વસાવવાજ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાજ સમાયેલું છે અને મત્રી સહેલાઈથી વાચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા જૈન આ સૂત્રો વાચી એ ખાસ જરૂરનું છે



આ સાલે પૂન્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સુશિષ્ય 'પ મુનિશ્રી કન્હૈયા લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે- ચાતુર્માસ ગિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોની મેમ્બરો કરવા માટે અધ્યાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા ખાતવી રહ્યા છે અને અત્યાર મુખીમા મુખર્ષ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઇફ મેમ્બર ખની ગયા છે અને મુખર્ષમા લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે ઇચ્છવા યોગ્ય છે શ્રીમત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમા તેમજ મોજશોખના કામોમા તેમજ વ્યવહારિક કામોમા વાપરી રહ્યા છે તો આવા શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમા રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાયે અને ખટલામા ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયખેરી ખની જશે જેનું વાચન કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રઆજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.



સેક્ટો સર્ટીફિકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલા

કેટલાક તાબા અભિગ્રાથો

## શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તત્ત્વીસ્થાનેથી ( જૈનજ્યોતિ ) તા. ૧૫-૯-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમાં અમદાવાદ સુકામે સરસપુરના સ્થા જૈન ઉપાશ્રયમાં ગિરાજમાન છે તેઓશ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂજા જ અત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં મણુ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલા શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીના સૂત્રોની ટીકા જેમ અને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ રેવી રહેલ છે સ્થા જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ અને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી પૂજ્યશ્રી અમુલખમણીજી મહારાજે બત્રીસે શાસ્ત્રો ઉપર હિન્દી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલ ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિન્દી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણા શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયા પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂયગઠાગ સૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાગની હિન્દી ટીકા લખેલ પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી બ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા તેનો હિન્દી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે અશા બધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધા છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય તે માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધ યવાદને પાત્ર છે

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના રૂા ૨૫૧૭ બરીને લાઇફ મેમ્બર થનારને શાસ્ત્રો તમામ, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી ભેટ મળે છે આ રીતે એક પથ અને ઠો કાજ બન્ને રીતે લાભ થાય તેમ છે રૂા ૨૫૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતના શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રભાવના કરવાનો ધર્મલાભ પણ મળે છે

૧) આ સાથે 'પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી 'મહારાજના' સુશિષ્ય 'પ. મુનિશ્રી કન્હૈયા-  
લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાંતુર્માસ ગિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના  
મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે અને  
અત્યાર સુધીમા મુળદ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઇફ  
મેમ્બર બની ગયા છે અને મુળદમા લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે  
ધારણવા યોગ્ય છે શ્રીમત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમા તેમજ  
મોજશોખના કામોમા તેમજ વ્યવહારિક કામોમા વાપરી રહ્યા છે તો આવા  
શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમા રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાશે  
અને બદલામા ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે જેનું વાચન  
કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રઆજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.

શતાવધાની મુનિશ્રી જયતિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર “સ્થાનકવાસી જૈન” તા ૫-૯-૫૭ના અકમા છપાવેલ છે જે નીચે મુજબ છે

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમા ફેરફાર હોઈ શકે ખરા ?

તા ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે બિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ મ સા સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને જાણ કરવા સારૂ લખુ છું

‘શાસ્ત્રોનું કામ એક ગહન વસ્તુ છે અપ્રમાદી થઈ તેમા અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રોનું જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનું કાર્ય સફળતાથી થાય છે આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમા બિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે શાસ્ત્ર લેખનનું આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમા અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શકાઓ થાય છે તેમા શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમા ફેરફાર થાય છે ? કરવામા આવે છે ? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે, કેમકે અમુક મુનિરાજો તરફથી પ્રગટ થયેલા સૂત્રોના મૂળ પાઠમા ફેરફાર થયેલા છે જેથી આ કાર્યમા પણ સમાજને શકા થાય

પણ ખરી રીતે જોના, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાત્રી આપવામા આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમા પ્રગટ થયેલા આગમોના મૂળ પાઠમા જરાપણ ફેરફાર કરવામા આવેલ નથી અને ભવિષ્યમા જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમા ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોંધ લ્યે

હી

શતાવધાની શ્રી જયત મુનિ-અમદાવાદ

डा. परपू आपनार गाद्य सुरभीश्री,



डोडा श्री हर गो वी द साध ने चं द  
गज दोट



# “શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુક પરિચય”

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સમ્પ્રદાય છે કે જેણે અત્યાર સુધીના તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધા છે સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજાં કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે

આ પ્રમાણે આ સ્થાનકવાસી મહાન પ્રગતિ પ્રાપ્તિ પ્રાપ્ત છે તેનો ટુક પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાચી જઈ સર્વ સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને આ સ્થાનકવાસી યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હજી વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થાનકવાસી જોઈને ખોટા બણગા પુકનારી સ્થાનકવાસી કોઈ કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે વયોવૃદ્ધ હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજી સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજા કોઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શકાભર્યું છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન ઉપકારનો કિંચિત્ બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામાં પાછો હોઈ તેમ નથી એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

“જૈનસિદ્ધાન્ત” પત્ર એપ્રિલ ૧૯૫૭



# “શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય”

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સમ્પ્રદાય છે કે જેણે અત્યાર સુધીમા તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધા છે સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઇ ચૂક્યા છે

આ પ્રમાણે આ સમ્પ્રદાયે મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામા આપેલ છે તે વાચી જઈ સર્વ સ્થા જૈન ભાઈબહેનોએ આ સમ્પ્રદાયને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હજી વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા કેન્દ્રસ્થ જેમ ખોટા બાણગા પુકનારી સમ્પ્રદાયની કેઈ કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે વયોવૃદ્ધ હોવા છતા તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજી સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજા કોઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શકાભર્યું છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત્ત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામા પાછો હોઈ તેમ નથી એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

“ જૈનસિદ્ધાન્ત ” પત્ર ઓક્ટોબર ૧૯૫૭



## શ્રી દશવૈકલિક તથા ઉપાસક દશાગ સૂત્રો ।

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ-થયેલા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત બે સૂત્રો જૈન ધર્મ પાળતા દરેક ઘરમાં હોવા જ જોઈએ તે વાચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવધ અને એધણિય સેવા શ્રમણ પ્રત્યે બંધવી શકે છે વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અધશ્રદ્ધાએ શ્રમણ વર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે પરંતુ ‘કલ્પ શુ અને અકલ્પ શુ’ એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામાં ઘસડી રહ્યા છે અને શ્રમણ વર્ગની પ્રાય કુસેવા કરી રહ્યા છે તેમાથી બચી લાભનું કારણ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની ફરજ છે

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ શાસ્ત્રોદ્ધારનું અનુવાદન ત્રણ ભાષામાં રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપિયા ૨૫૫૭ લરી મેન્ગર ચનારને રૂા ૪૦૦-૫૦૦ લગભગ ની કીંમતના બત્રીસે આગમો રૂા મળી શકે છે તો તે રૂા ૨૫૫૭ લરી મેન્ગર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવકઘરે મેળવવા જોઈએ બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે તો તે લાભ પોતાની નિર્જીરા માટે પુન્યાનુંબધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે ઉપરોક્ત બે સૂત્રોની કીંમત સમિતિ કલ્ક જોછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રીમત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીંમતે, મદત અથવા પૂરી કીંમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ઘરમાં વસાવી શકે

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ-ઉપરની મૂચનાને અમે આવકારીએ છીએ આવા સૂત્રો દરેક ઘરમાં વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાચવા યોગ્ય છે તત્રિ-

“ રત્નચૈત ” પત્ર

તા. ૧-૧૦-૫૭

૩૧ ૫,૦૦૧ આપનાર આદ્ય મુરખીશ્રી,



(૨૧) શે ઠ ધા ર સી ભા ઈ જી વ જી ભા ઈ  
સો ભા પુ ૦



પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં

બનાવેલાં સૂત્રો

કાશ્મીર થી કન્યાકુમારી

તેમજ કરાંચી થી કલકત્તા

સુધી

દરેક સ્થળે હોગથી વચ્ચાય છે

કારણ કે

આવી રીતે શાસ્ત્રો તૈયાર કરવાનું અનોખું કાર્ય  
હજી મુગો કોઈ કરી શક્યું નથી

\*

શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમાજ

ઉપરાંત

શ્રી દેરાવાસી અપ્રદાયના મહાન આચાર્યશ્રી રામવિજયસૂરીજી  
તથા અન્ય મુનિવરોએ

તેમજ

તેરાપથી મહાસભા કલકત્તાવાળાએ આ સૂત્રો અપનાવ્યા છે

\*

દેશ-પરદેશના મેમ્બરો સૂત્રો વાચી જૈન ધર્મના શ્રુતજ્ઞાનનો અણમોલો  
લાભ લઈ રહ્યા છે

હમણાજ લડનની ઈન્ડિયા ઓપીસ લાઈબ્રેરીએ આ સૂત્રો મગાવ્યા છે

\*

આપ રૂપીઆ ૨૫૧-૦-૦ મોકલી મેમ્બર તરીકે નામ નોંધાવી હપ્તે હપ્તે  
લગભગ રૂપીઆ પાચસો સુધીની કિંમતના શાસ્ત્રો વિના મૂલ્યે મેળવી શકો છો

વધુ વિગત માટે લખો

૪ શ્રીન લોજ પાસે,  
ગરેડીઆકુવા રોડ  
રાજકોટ

મંત્રિ

શ્રી અખિલ ભારત શ્વે સ્થા. જૈન  
શાસ્ત્રોદ્ધાર મંમિતિ

# आवश्यकसूत्रस्य विषयानुक्रमणिका

	विषय	पृष्ठ
१	प्रस्तावना	१ - ४०
२	नमस्कारमन्त्रव्याख्या	४१- ६७
३	सामायिकम्	६८-११७
४	चतुर्विंशतिस्तवः	११८-१४५
५	वन्दना	१४६-१५६
६	प्रतिक्रमणम्	१५७-२८५
७	कायोत्सर्गः	२८६-२९९
८	प्रत्याख्यानम्	३००-३२२
९	हिन्दीपरिशिष्ट	३२३-३२८
१०	गुजराती परिशिष्ट	३२९-३३५

इति



॥ श्री वीतरागाय नमः ॥



जैनाचार्य-जैनधर्म-दिव्याकर-पूज्यश्री घासीलालजीमहाराजेन

आवश्यकसूत्रस्य मुनितोपण्याख्या व्याख्या वितन्यते—

इह हि जन्मजरामरणाऽऽविव्याधिजनितदुःखपटलसकुले क्षणक्षण-  
विलक्षणव्यवहारेऽनन्तविस्तारेऽसारेऽपि सारवदाभासमाने ससारे सर्व एव  
प्राणिनः सुखप्राप्तिं दुःखाभिहर्तिं च कामयमानाः सदरीदृश्यन्ते, किन्तु सुख-  
दुःखोत्पत्तिकारणज्ञानमन्तरेण तन्न भवत्यतो दुःखहेतुभूतान् 'मिथ्यात्वा-  
ऽविरति कपाय-प्रमादा ऽशुभयोग-हिंसाऽऽरम्भेर्ष्या-राग-द्वेषप्रभृत्यन्तः-शत्रुसमूहान्

श्री आवश्यकसूत्र की मुनितोपणी नामकी व्याख्या की हिन्दी—  
प्रस्तावना

जन्म-जरा-मरण-आधि-व्याधि के दुःखों से भरे हुए,  
प्रतिक्षण विलक्षण व्यवहार वाले, असार होने पर भी सार सहित  
मालूम होने वाले इस अनन्त ससार में, सब जीव सुख चाहते हैं और  
दुःख का नाश करना चाहते हैं। किन्तु जब तक सुख और दुःख  
के कारणों का ज्ञान न हो, तब तक सुख की प्राप्ति और दुःख का  
नाश नहीं हो सकता। इसलिये मिथ्यात्व, अविरति, कपाय, प्रमाद,  
अशुभ योग, हिंसा, आरम्भ, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि दुःखों के

प्रस्तावना

आ अपिल ससार, जन्म, जरा, मरण, आधि, अने व्याधिइय दुःखी  
बरेलो छे, प्रतिक्षण अलित स्वइयथी दृश्यमान थाय छे, तो पणु आवा क्षण  
लशुर जगतमा सर्व लोको सुखनी वाञ्छना राणे छे अने दुःखना नाशनी  
आकाक्षा धरावे छे

परतु ज्या सुधी वास्तविक सुख दुःखनु भूणकारण न जणाय त्या सुधी  
सुखनी प्राप्ति अने दुःखना नाश थयो असंभवित छे अटला भाटे दुःखना  
कारणभूत मिथ्यात्व अविरति (सासारिकसुखभाथी न निवर्तवुं) कपाय  
(होषमानभायालोअ) प्रमाद (सत्कार्येभा आणस राणयो) अशुभयोग  
(मनवथन कथाने जोठी रीते प्रवर्ताववा) हिंसा, आरल (पोताना सुख भाटे

સમ્યગ્ વિજ્ઞાય તન્નાશો સત્યેવ દુઃખાદ્વિમુક્તાત્માનઃ સાન્દ્રાનન્દસન્દોહસન્દાનિતા મોક્ષલક્ષ્મીમધિગન્તુમર્હન્તિ । તદેવ લક્ષ્મીકૃત્ય સમસ્તજાગતિરુજન્તુજાતદ્વિતાય પરમકારુણિકેન ઘીતરાગેણ ભગવતા શ્રીમહાવીરેણાઽવિતથપથશ્રૂતાભ્યા સમ્યગ્જ્ઞાન ક્રિયાભ્યામેવ સકલસુખનિદાનમોક્ષપ્રાપ્તિઃ પ્રતિપાદિતા ।

સમ્યગ્જ્ઞાન હિ નાઽઽત્મશુદ્ધિમન્તરેણ કદાપિ સમ્ભવતિ, આત્મશુદ્ધિશ્ચ ક્રિયા વિના સર્વથેવાઽસમ્ભવિની, નદ્યોપધિસેવન વિના રોગોપશ્યાદિજ્ઞાનમાત્રેણાઽઽ-

કારણ અન્તરગ શત્રુઓં કો ખલીખાંતિ જાનકર, નાશ કરને પર હી દુઃખ સે છુટકારા પાને વાલે અનન્ત અવિનાશી આત્મિક આનન્દ યુક્ત-મોક્ષ લક્ષ્મી કો પ્રાપ્ત હોતે હીં । ઈસી કારણ સમસ્ત સસારી, પ્રાણિયોં કે હિત કે લિયે, પરમ દયાલુ, ઘીતરાગ ભગવાન્ શ્રી મહાવીર ને સમ્યગ્જ્ઞાન ઔર સમ્યક્ ક્રિયા સે હી મોક્ષ કી પ્રાપ્તિ હોના વતલાયા હૈ ।

સમ્યગ્જ્ઞાન આત્મા કી શુદ્ધિ કે વિના કદાપિ નહિં હો સકતા, ઔર આત્મા કી શુદ્ધિ વિના ક્રિયા કે ચિલકુલ અસમ્ભવ હૈ । વિના ઔષધ સેવન કિયે, કેવલ જાન લેને સે આરોગ્ય કી પ્રાપ્તિ નહીં

અન્ય જીવેને હણવા ) ઈર્ષ્યા, રાગ, દ્રેષ, આદિ અતરગ શત્રુઓને બાણી તેના નાશ કરવાથીજ અવિનાશી આત્મિક સુખની પ્રાપ્તિ થાય છે

એટલા માટે સમસ્ત પ્રાણીઓના હિત માટે પરમરૂપાણુ મહાવીરદેવે સમ્યક્જ્ઞાન, અને સમ્યક્ ક્રિયાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ બતાવી છે

એકાત જ્ઞાન કે એકાત ક્રિયાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ થતી નથી ઋધિ-મુની એએ કહ્યું છે કે

‘ જ્ઞાનક્રિયાભ્યામ્ મોક્ષ ’

અર્થાત્-સમ્યક્ જ્ઞાન અને ક્રિયાથીજ મોક્ષની પ્રાપ્તિ થઈ શકે છે

જેમ ગાડીવાનને અમુક રસ્તાની માહિતી છે પણ જો તે રસ્તે બળદને દોરીને નહિ લઈ બંધ તે તે સ્થળે ગાડીવાન પહોચી શકતો નથી, તેવી રીતે મોક્ષરૂપી નગરમા પહોચવાનો રસ્તો બળદો પણ તે બાણી તથારૂપ ક્રિયા ન થાય તે ઇન્દ્રિત સ્થળે પહોચી શકાતુ નથી. તેમ જ્ઞાન મેળવવા છતાં યથાયોગ્ય ક્રિયા ન થાય તે આત્મિક સુખની પ્રાપ્તિ થવી અશક્ય છે

रोग्यलाभः, किन्तु रोगनिदानज्ञानपूर्वकतदीयौषधिसेवनेनैव, तथैव न क्रिया विना ज्ञानमात्रेण पापक्षयः समस्ति भवितुम्, अपितु ज्ञानपूर्वकक्रियैवेति ।

किञ्च मोक्षस्याव्यवहितकारणमपि क्रियैव, सत्यपि केवलज्ञाने पूर्णयथाख्यातचारित्ररूपक्रियाया अभावे मोक्षाभावात्, तद्भावे च तद्भावात्, अतः सम्यक्चारित्ररूपायाः क्रियायाः सद्भावं एवाऽर्जितस्य कर्मणो निर्जरणसंभवेन

हो सकती। हाँ, जब रोग के कारण का और औषध का ज्ञान हो जायगा तब यदि औषध का सेवन किया जाय तो रोग मिट सकता है। इसी प्रकार क्रिया के बिना अकेले ज्ञान से ही कर्मों का क्षय नहीं हो सकता, बल्कि ज्ञानपूर्वक क्रिया से होता है।

दूसरी बात यह है कि मोक्ष का अव्यवहित कारण क्रिया ही है, क्योंकि केवलज्ञान के हो जाने पर भी पूर्ण यथाख्यात चारित्र रूप क्रिया के अभाव से मोक्ष नहीं होजाता। जब पूर्ण यथाख्यात चारित्र हो जाता है तब तत्काल ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। अतः सम्यक्चारित्र रूप क्रिया से ही पहले षडे हुए कर्मों की निर्जरा होकर अन्त में समस्त

वेम रोगनुं निदान नष्टया पठी औषधनु यथानियम सेवन न थाय तो रोग नतो नथी तेम सासारिक दुःखनु ङरषु सम्यक् प्रकारे नष्टया छत्ता ले ते दुःखना निवारषु इप सुक्रिया न थाय तो दुःखने अत आवतो नथी अेटला न भाटे ज्ञान अने क्रिया अे णक्षेनी आवश्यक्ता अे आ उलय पढने अत्रेणमा knowledge and action नोलेन अने अेकशन कहे अे

भीजे शास्त्रीय द्वापले अे अे अे के केवण ज्ञान (Perfect knowledge परेक्केट नोलेन) थया पठी पषु पूषु यथाख्यात (Perfect परेक्केट) आरित्रना अलावथी आत्मा सिद्धगतिने पाभतो नथी

सम्यक् आरित्र अेटले सम्यक् क्रियाइप वहन आ सम्यक् क्रियाइप वहनथी आत्मा पोताना कर्मोनी निर्जरा (छूटकारो) करे अे आ निर्जरा करता करता पोतानी गक्ति वधारे प्रभाषुमा डेणवे अे आटवी शक्ति डेणवना डेवण ज्ञान थाय अे छत्ता असुक कर्मोनी सत्ता रडी नवाथी, आत्माने ते कर्मोनी निर्जरा भाटे धषु वधारे प्रभाषुमा शक्ति वधारवानी आवश्यक्ता नष्टाय अे आवा प्रकारनी नेशणध क्रियाइप वहनने लेने शास्त्रकारो 'यथाख्यातआरित्र' ना



કૃત્સ્ત્રકર્માત્યન્તવિમુક્તસ્યાઽઽત્મનોઽસદ્ગતયા અપગતલેપવન્ધાઽલાયૂઘ્ત્, વન્ધચ્છેદા-  
દેરણ્ઢવીજવદ્ ઝર્ગતિસ્વભાવાદગ્નિશિલાયચ સ્વયમેવાઽઽલોકાન્તમૂર્વગમન-  
મુપપદ્વતે ।

ઇત્ય ચામિનવપાપકર્માઽસમ્યવ્ધાય ચિરકાલપ્રવૃત્તમિથ્યાત્વાઽવિરતિ-  
કપાય-પ્રમાદ-યોગાદિજનિતકર્મકલાપપ્રણાશાય ચ સમ્યકૃત્શ્રદ્ધાન-સમ્યગ્જ્ઞાન-  
વહ્નિરપિ નિરન્તર સમ્યકૃચારિત્રાઽઽચારણપરાયણૈરેવ ભવિતવ્યમિતિ નિર્ણયે  
તાદૃશચારિત્રપવિત્રકર્મપ્રતિપાદકમિદ- 'ભાવાવશ્યકસૂત્ર' સાદરમાલોક્યાઽના-

કર્મોસે સર્વથા છૂટ કર આત્મા નિસ્સગ હોને સે, જિસકા લેપ પાની કે  
યોગ સે છૂટ ગયા હો એસી તૂંબી કી તરહ, વધ કા વિનાશ હો જાને સે  
એરણ્ઢ કે વીજ કી ભાંતિ, ઝર્ધ્વગમન કરને કા સ્વભાવ હોને સે અગ્નિ  
કી લૌ કી નાઈ સ્વય હી લોક કે અન્ત તક ઝર્ધ્વગમન કરતા હૈ ।  
ઇસલિયે નવોન કર્મો કા વન્ધ રોકને કે લિયે તયા ચિરકાલ સે લગે  
હુણ મિથ્યાત્વ અવિરતિ પ્રમાદ કપાય યોગ સે ઉત્પન્ન હોને વાલે કર્મો કે  
સમૂહ કા નાશ કરને કે લિયે સમ્યગ્દૃષ્ટિ ઓર સમ્યગ્જ્ઞાની જનો કો  
ભી સમ્યક્ ચારિત્ર મે પરાયણ રહના ચાહિયે । યહ નિશ્ચય હો જાને  
પર ઇસ પ્રકાર કે ચારિત્રરૂપ પવિત્ર કર્તવ્ય કો પ્રતિપાદન કરને  
વાલા યહ 'આવશ્યક' નામક શાસ્ત્ર આદર કે સાથ પઢ કર શીઘ્ર હી

નામે યોગ્યે છે આ ક્રિયારૂપ વહન છેવટનું વહન છે, અને આ વહન પ્રાપ્ત થયે  
સર્વ કર્મોના ક્ષય થવો નોંધવો, જે સર્વ કર્મોના ક્ષય થયે અનંત આત્મિક સુખ  
ઉદ્ભવે છે

જેમ લેપ લગાડેલ તુળીપાત્ર પાણીના યોગથી લેપમાથી મુક્ત થાય છે  
ને જેમ તે તુળીપાત્ર પાણીની સપાટીએ તરે છે તેમ આત્મા કર્મરૂપી રજથી  
ચારિત્ર વડે મુક્ત થઈ સસારની સપાટી પર રહે છે, જેને અંગ્રેજીમાં Surface of  
the world (સરદેશ યોડ્ ધી વર્ડ) કહે છે

નવા કર્મોના બંધનની રૂકાવટ માટે અને લાણા વખતથી વ્યાપ્ત એવા  
મિથ્યાત્વ અવિરતિ, પ્રમાદ, કપાય અને યોગથી ઉત્પન્ન થતા કર્મોના  
નાશને માટે સમ્યક્ દૃષ્ટિ અને સમ્યક્ જ્ઞાનીઓએ પણ સમ્યક્ ચારિત્રમાં પરાયણ  
રહેવું નોંધવું

यासतो ब्रह्मिणि स्वकीयाऽऽव्ययैर्गुणैः विज्ञाते तदनुष्ठानाय प्रवृत्तव्यमुभयलोक-  
साधनसामग्रीसकलनचातुरीचणैर्विचक्षणैः ।

अस्मिन् शास्त्रे निम्नोक्ताः क्रियाः प्रतिपादिताः— (१) सामायिकम्  
(सावययोगनिवृत्तिः), (२) चतुर्विंशतिस्तवः (२४ जिनस्तुतिः), (३) वन्दनम्  
(गुरुवन्दना), (४) प्रतिक्रमणम् (प्रायश्चित्तम्), (५) कायोत्सर्गः, (६) प्रत्या-  
ख्यान च ।

या साभीष्टाऽन्यानभीष्टभूता क्रिया सा साध्यरूपत्वान्नाऽमन्दाऽऽनन्द

सरलता पूर्वक आवश्यक क्रियाएँ जान कर इह-लोक-परलोक को  
साधन करने की सामग्री इकट्ठी करने में कुशलजनों को उनके अनुष्ठान  
करने में प्रवृत्ति करना चाहिए ।

इस शास्त्र में निम्न-कही हुई क्रियाओं का प्रतिपादन किया  
गया है—(१) सामायिक (सावय योग की निवृत्ति) (२) चतुर्विंशति  
स्तव (२४ जिनस्तुति) (३) वन्दना (गुरुवन्दना) (४) प्रतिक्रमण  
(प्रायश्चित्त) (५) कायोत्सर्ग और (६) प्रत्याख्यान ।

जो क्रिया अपने इष्ट और दूसरे के अनिष्ट के लिये की  
जाती है, वह सावयरूप होने से अनन्त अनुपम आत्मिक आनन्द

उपरोक्त निश्चय से आरिद्रूप पवित्र कर्तव्यने प्रतिपादन करवाया  
आवश्यक सूत्रनु सभ्यज्ञानी अने सभ्यदृष्टि लोकोसे मादर पठन करवुं नोष्ठये,  
अने सूत्रोक्त क्रियानु यथोचित अनुष्ठान अवश्य थवु नोष्ठये

सदरहुं शास्त्रमा नीचे प्रमाणे क्रियाओंनु प्रतिपादन कर्तुं छे (१) सामायिक  
(सावय कार्यनी निवृत्ति) (२) अतुर्विंशतिस्तवन-२४ तिर्यंकरानी स्तुति  
(३) वन्दना (गुरुवन्दना) (४) प्रतिक्रमण=थध गजेल पापइय क्रियाओंने नोष्ठ  
जयी अने इरीथी तेवा प्रकारनी क्रिया नहि करवानु प्रतिपादन करवु अने थजेल  
पाप नदल इदय पूर्वक पश्चात्ताप करवो (५) कायोत्सर्ग (कायानो व्युत्सर्ग करवो  
कायाना अगोपागने स्थिर राणवानी क्रिया) (६) प्रत्याख्यान-(पश्यणालु-अमुक  
कार्यो करवानी षधी करवी)

ये क्रिया पोताना इष्ट अने अन्यना अनिष्ट भाटे कराय छे ते  
पापकारी होवाथी अनुपम आत्मिक सुण प्राप्त करवानारी नथी परतु आत्माने

સન્દોહસજનનાય પ્રમપતિ, પ્રત્યુતાઽધોગતિનયનાયૈવ જાયતે । યા તુ સ્વકલ્યાણ-  
પ્રાર્થનપૂર્વક-સમસ્તજન્તુજાતશાતામિલાપર્ગમિતા, મૈત્રી પ્રમોદ-કારુણ્ય માધ્યસ્થ્ય-  
ભાવનારૂપજાગરયોત્તરોત્તર-વૈરાગ્યવૃદ્ધિકારિણી, સૈવ નિરવગ્રરૂપતયા વાસ્ત-  
વિકાઽઽત્માનન્દાસ્વાદસમ્પાદિકા ભવતીત્યસ્યાઃ પઙ્કિઘાઽઽવશ્યકરૂપક્રિયાયા  
સાધુ-સાધ્વી શ્રાવક-શ્રાવિકાણામુભયકાલમવશ્યકરણીયત્વાદિદ-‘ ભાવાવશ્યક ’-  
મિતિ કથ્યતે, યથોક્તમ્—

કો દેને વાલી નહી, વલ્લિક અધોગતિ મેં લેજાને વાલી હૈ । જો અપને  
કલ્યાણ કી પ્રાર્થના કે સાથ સમસ્ત પ્રાણિયોં કે કલ્યાણ કી ઠ્ઠ્ઠા  
સે યુક્ત, મૈત્રી, પ્રમોદ, કારુણ્ય, માધ્યસ્થભાવના-રૂપ જાગૃતિ સે  
ઉત્તરોત્તર વૈરાગ્ય વઢાને વાલી હોતી હૈ, વહી ક્રિયા સચ્ચે સુખ કા  
આસ્વાદન કરા સકતી હૈ । છહ પ્રકાર કી યહ આવશ્યક ક્રિયા  
સાધુ સાધ્વી શ્રાવક ઓર શ્રાવિકા કો ઢોનોં સમય અવશ્ય હી  
કરને યોગ્ય હૈ, ડસલિયે ડસે ‘આવશ્યક’ કહતે હૈ । કહા ઢી હૈ—

અધોગતિમા વહન કરનારી છે

ને તેમજ પરકલ્યાણ કરવાના ઇરાદાપૂર્વક મૈત્રી, પ્રમોદ, કારુણ્ય  
અને માધ્યસ્થ્ય ભાવનારૂપ ક્રિયાનું આચરણ કરવામા આવે તો તે ભાવનાના  
પ્રસાદથી આત્મા ઉત્તરોત્તર વૈરાગ્યમય થાય છે, એટલુજ નહી, પણ અતુલ્ય સુખને  
આસ્વાદન અગીકાર કરી શકે છે મહાત્માઓએ કહ્યું છે કે —

સત્વેષુ મૈત્રીં શુષ્ણિષુ પ્રમોદ કિલ્લષ્ટેષુ શ્રવેષુ દયાપરત્વમ્,  
માધ્યસ્થ્યભાવ વિપરીતવૃત્તી, સદા મમાત્મા વિદધાતુ દેવ

અર્થાત્—દરેક શ્રવે તરફ મૈત્રીભાવ રાખવા, દરેક વ્યક્તિમા શુષ્ણ શોધીને  
તેની તરફ આનંદિત થલુ, ડુ ખી શ્રવે તરફ કૃપાદષ્ટિ રાખવી, વિપરીત આચરણ  
કરનારી વ્યક્તિઓ તરફ મધ્યસ્થભાવે નેવું

ઉપરોક્ત ચાર પ્રકારની ભાવના ને ક્રિયારૂપે અગીકાર થાય તો શાશ્વત  
સુખ તરફ અનુકંમે વહન થાય છે

છ પ્રકારની આવશ્યક ક્રિયા સાધુ સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકાએ અવશ્ય  
આચરવા યોગ્ય છે, તે આવશ્યકતાને લઈ મજકુર સૂત્ર-સિદ્ધાંતને આપણે  
‘ આવશ્યક સૂત્ર ’ નામે ઓળખીએ છીએ

“समणेण सावएण य, अवस्सकायव्व ह्वइ जम्हा ।

अतो अहोणिसस्स य, तम्हा ‘आवस्सय’ नाम ॥१॥” इति ।

यच्च सूत्रमिदमावश्यकमित्यारयायते, तत्प्रतिपाद्य-प्रतिपादकाऽभेदाऽभिप्रा-  
यादित्यत्रान्तव्यम् । आवश्यक हि नैवोपयोगमन्तरा केवल शुरुवद्-आरट्यमान  
सम्यक्तया फलप्रद, किन्तु सोपयोग स्वात्मनि तद्गतविषयपरिणमनपूर्वक विधीय-  
मान सङ्घोक्तोत्तरफलप्रदमत एवेद-लोकोत्तरभावावश्यकमिति रुध्यते ।  
यथोक्त भगवता—

“जण्ण इमे समणे वा समणी वा सावए वा साविया वा तच्चित्ते तम्मणे  
तल्लेस्से तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदद्वोउत्ते तदप्पियकरणे तव्भावणाभाविए

समणेण सावएण य, अवस्सकायव्व ह्वइ जम्हा ।

अतो अहोणिसस्स य, तम्हा ‘आवस्सय’ नाम ॥

इन क्रियाओं को ‘आवश्यक’ कहने का कारण बतलाया जा  
चुका है । किन्तु इस सूत्र को भी आवश्यक कहते हैं । वह इसलिये कि  
यहाँ प्रतिपाद्य-जिसका प्रतिपादन किया जाय (आवश्यक), और  
प्रतिपादक (शास्त्र) के अभेद की विवक्षा है ।

विना उपयोग लगाये तोतारटन्ती कर लेने से आवश्यक का  
वास्तविक फल नहीं होता, किन्तु उपयोग के साथ, उनके विषय को  
आत्मा के साथ एकमेक करते हुए जो आवश्यक किया जाता है  
वही लोकोत्तर फल देने वाला लोकोत्तर भावावश्यक कहलाता है ।  
भगवान् ने कहा है—

“जण्ण इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविया वा

जे कोळ पणु किया उपयोगपूर्वक आचरवामा आवे तो ज तेनु वास्त  
विक इण प्राप्त थरु राके छे गाजी ‘पेडा पोपटलार्थ रागराम’ ते सूत्र अनुसार  
पोपटीआ शाननी भाइक सुपथी गोली जवु, तेथी काळ अर्थ सरतो नथी जे  
उपयोग अने भावपूर्वकज आवश्यक कियाज्जेनु आचरणु थाय तोज तेथी उप  
लक्षित आनद प्राप्त थाय छे

भगवाने कहु छे के—

‘जे कोळ साधु साध्वी, श्रावक श्राविका तच्चित्ते तन्भये, तद्वेसे, तदध्य

મન્દોદ્દેશજનનાય પ્રભવતિ, પ્રત્યુતાડધોગતિનયનાયૈવ જાયતે । યા તુ સ્વકલ્યાણ-  
પ્રાર્થનપૂર્વક-સમસ્તજન્તુજાતશાતાભિલાપગર્મિતા, મૈત્રી-પ્રમોદ-કારુણ્ય માધ્યસ્થ્ય-  
ભાવનારૂપજાગરયોત્તરોત્તર-વૈરાગ્યવૃદ્ધિકારિણી, સૈવ નિરવગ્રરૂપતયા વાસ્ત-  
વિકાસસ્તમાનન્દાસ્વાદસમ્પાદિકા ભવતીત્યસ્યાઃ પઙ્કિષ્ઠાસવશ્યકરૂપક્રિયાયા  
સાધુ સાધ્વી-શ્રાવક-શ્રાવિકાણામુભયકાલમવશ્યકરણીયત્વાદિદ- 'ભાવાવશ્યક' -  
મિતિ કથ્યતે, યથોક્તમ્—

કો દેને વાલી નહી, વલ્કિ અધોગતિ મે લેજાને વાલી હૈ । જો અપને  
કલ્યાણ કી પ્રાર્થના કે સાથ સમસ્ત પ્રાણિયોં કે કલ્યાણ કી ઈચ્છા  
સે યુક્ત, મૈત્રી, પ્રમોદ, કારુણ્ય, માધ્યસ્થ્યભાવના-રૂપ જાગૃતિ સે  
ઉત્તરોત્તર વૈરાગ્ય બઢાને વાલી હોતી હૈ, વહી ક્રિયા સચ્ચે સુખ કા  
આસ્વાદન કરા સકતી હૈ । છહ પ્રકાર કી યહ આવશ્યક ક્રિયા  
સાધુ સાધ્વી શ્રાવક ઓર શ્રાવિકા કો દોનોં સમય અવશ્ય હી  
કરને યોગ્ય હૈ, ઈસલિયે ઈસે 'આવશ્યક' કહતે હૈ । કહા મી હૈ—

અધોગતિમા વહન કરનારી છે

જો તેમજ પરકલ્યાણ કરવાના ઇરાદાપૂર્વક મૈત્રી, પ્રમોદ, કાંઈક  
અને માધ્યસ્થ્ય ભાવનારૂપ ક્રિયાનુ આચરણ કરવામા આવે તો તે ભાવનાના  
પ્રસાદથી આત્મા ઉત્તરોત્તર વૈરાગ્યમય થાય છે, એટલુજ નહી, પણ અતુલ્ય સુખનો  
આસ્વાદન અગીકાર કરી શકે છે મહાત્માઓએ કહ્યું છે કે —

સત્ત્વેષુ મૈત્રીં શુણિષુ પ્રમોદ કિલષ્ટેષુ ભવેષુ દયાપરત્વમ્,

માધ્યસ્થ્યભાવ વિપરીતવૃત્તૌ, સદા મમાત્મા વિદધાતુ દેવ

અર્થાત્—દરેક ભવે તરફ મૈત્રીભાવ રાખવા, દરેક વ્યક્તિમા શુણ શોધીને  
તેની તરફ આનંદિત થવું, દુઃખી ભવે તરફ કૃપાદૃષ્ટિ રાખવી, વિપરીત આચરણ  
કરનારી વ્યક્તિઓ તરફ મધ્યસ્થભાવે જોવું

ઉપરોક્ત ચાર પ્રકારની ભાવના જો ક્રિયારૂપે અગીકાર થાય તો શાન્ત  
સુખ તરફ અનુક્રમે વહન થાય છે

છ પ્રકારની આવશ્યક ક્રિયા સાધુ સાધ્વી, શ્રાવક અને શ્રાવિકાએ અવશ્ય  
આચરવા યોગ્ય છે, તે આવશ્યકતાને લઈ મજકુર સૂત્ર-સિદ્ધાંતને આપણે  
'આવશ્યક સૂત્ર' નામે ઓળખીએ છીએ

“समणेण सावएण य, अवस्सकायव्व ह्वइ जम्हा ।

अतो अहोनिस्सस्स य, तम्हा ‘आवस्सय’ नाम ॥१॥” इति ।

यच्च सूत्रमिदमावश्यकमित्याख्यायते, तत्प्रतिपाद्य प्रतिपादकाऽभेदाऽभिप्रायादित्यत्रान्तव्यम् । आवश्यकं हि नैवोपयोगमन्तरा केवलं शुरुवद्-आरट्यमान सम्यक्तया फलप्रदः किन्तु सोपयोग स्वात्मनि तद्गतविषयपरिणमनपूर्वकं विधीयमान सङ्गोत्तरफलप्रदमत एवेद-लोकोत्तरभावावश्यकमिति रुध्यते । यथोक्तं भगवता—

“जण्ण इमे समणे वा समणी वा सावए वा साविया वा तच्चित्ते तम्मणे तट्ठेस्से तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तव्भावणाभाविए

समणेण सावएण य, अवस्सकायव्व ह्वइ जम्हा ।

अतो अहोनिस्सस्स य, तम्हा ‘आवस्सय’ नाम ॥

इन क्रियाओं को ‘आवश्यक’ कहने का कारण यतलाया जा चुका है । किन्तु इस सूत्र को भी आवश्यक कहते हैं । वह इसलिये कि यहाँ प्रतिपाद्य-जिसका प्रतिपादन किया जाय (आवश्यक), और प्रतिपादक (शास्त्र) के अभेद की विवक्षा है ।

विना उपयोग लगाये तोतारटन्ती कर लेने से आवश्यक का वास्तविक फल नहीं होता, किन्तु उपयोग के साथ, उनके विषय को आत्मा के साथ एकमेक करते हुए जो आवश्यक किया जाता है वही लोकोत्तर फल देने वाला लोकोत्तर भावावश्यक कहलाता है । भगवान् ने कहा है—

“जण्ण इमे समणे वा समणी वा सावओ वा साविया वा

ने केईं पणु क्किया उपयोगपूर्वकं आवश्यकमा आवे तो न तेतु वास्तविकं इण प्राप्तं थं यके छे जादी ‘पढे पोपटबाई रान्तराम’ ते सूत्र अनुसार पोपटीआ ज्ञानणी भाइक सुपथी गोली नु, तेथी कां अर्थ सरती नथी ने उपयोग अने भावपूर्वकं आवश्यकं क्कियाओनु आवश्यकं थाय तो न तेथी उपलक्षित आनंद प्राप्त थाय छे

लगवाने कह्यु छे के—

‘ने केईं साधु साध्वी, श्रावक श्राविका तच्चित्ते तन्मये, तलेसे, तदध्य

अण्णत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे उभओकाल आगस्सय करेति, सेत्त लोगुत्तरिय भावावस्सय ॥”

नन्वेव तर्हि उपयोगादिक विनाऽऽवश्यक न कर्तव्यमिति नोद्भावनीयम्, वीतरागमार्गे क्रियाया विरक्ति (हिंसादित्याग) रूपत्वात्, सत्यौपधसेवनवदावश्यक सर्वेषा कर्तव्यमेव, यथाऽयथाविधानमपि सेव्यमान सत्यौपधमारोग्यायैव प्रभवति, तद्वत्-पथ्याऽपथ्यादिविचारणा-तदनुकूलवर्चना-पूर्वक सेव्यमान तु तदेवौपध समधिकगुणान् प्रदर्शयति ।

तच्चित्ते तम्मणे तल्लेस्से तदज्झवसिए तत्तिव्वज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तदप्पियकरणे तव्भावणाभाविए अण्णत्थ कत्थइ मण अकरेमाणे उभओ काल आवस्सय करेति, से त्त लोगुत्तरिय भावावस्सय ॥”

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि, यदि उपयोगपूर्वक आवश्यक करने से ही अलौकिक फल की प्राप्ति होती है, तो क्या बिना उपयोग के आवश्यक करना ही नहीं चाहिए ? लेकिन बात ऐसी नहीं है। वीतराग के मार्ग में क्रियाएँ विरक्ति (हिंसा आदि के त्याग) रूप हैं, इसलिए सत्य औपध के समान उनका सेवन अवश्य करना चाहिए। बिना पथ्य के सत्य औपध का सेवन करने से कुछ न कुछ आरोग्य लाभ होता ही है। और यदि पथ्य अपथ्य का विचार रख कर उसके अनुसार प्रवृत्ति की जाय तो अधिक लाभ होता है। इसी प्रकार उपयोग पूर्वक आवश्यक करने से समस्त कर्मों की निर्जरा होती है,

वसाञ्जे तद्दुष्णावे आवस्सयक क्किया करेशे तो निश्चयपण्णे लोकोत्तरत्वावने प्राप्त करेशे ।

अर्हि आ प्रश्न उपस्थित थाय छे के के उपयोग अने भावपूर्वक आवश्यक कियाम्णे करवाभा आवे तोऽ अलौकिके इजानी प्राप्ति थाय छे, तो इरी प्रश्न थाय छे के विना उपयोगे आवश्यक किया न करवी ? प्रत्युत्तरभा वज्जावे छे के साकर अधाराभा प्राय तो पणु भिदाश आवे छेऽ अने प्रकाशभा विचार - करीने आस्वाहन लेता लेता ते साकर भवाय तो अनेशे आनद अने शारीरिक वृद्धि थाय छे आ उपरथी ज्येभ समन्वय छे के उपयोग पूर्वक साकर न भवाय तो पणु तेना भिदाश शुभु वतो नधी तेभऽ आवश्यक कियाम्णे कदाथ उपयोगपूर्वक न करवाभा आवे

उपयोगादिपूर्वकं हि क्रियाऽनुष्ठानं सर्वकर्मनिर्जराकरं भवति, यः कश्चिदुपयोगादिविरहितोऽपि क्रियानुष्ठाने प्रयत्नस्तस्यापि यदा कदाचिन्सम्यक्क्रियाविदधानं कमपि दृष्ट्वा तीव्रवैराग्यप्राप्त्या यथार्थवैराग्यस्य क्षणमात्रमध्यवसायेन सर्वकर्मनिर्जरासंभवस्तस्मादावश्यकं करणीयमेव सर्वेषामिति निर्विवादम् ।

पठध्ययनात्मकस्याऽऽवश्यकस्य द्वितीयं नाम 'प्रतिक्रमण' मित्यस्ति तत्र किं कारणम् ? उच्यते प्रतिक्रमणशब्दः प्रायश्चित्तपर्यायो वर्तते । प्रायश्चित्तं हि पापप्रक्षयस्य प्रधानकारणमस्ति यथा विप्रिधोपस्करपरिष्कृतमपि व्यञ्जनादिक

और यदि उपयोग के बिना करे तो भी संभव है कि कभी दूसरों को सम्यक् प्रकार क्रिया करते देख कर उसे तीव्र वैराग्य की प्राप्ति हो जाय और तीव्र वैराग्य क्षण भर भी हृदयमें टिक जाय तो बड़ा पार हुआ समझिए । इसलिये सभी को नित्य प्रति आवश्यक करना आवश्यक है ।

आवश्यक सूत्र के छह अध्ययन है । इसका दूसरा नाम प्रतिक्रमण है । इसका कारण यह है—प्रतिक्रमण का अर्थ है प्रायश्चित्त । प्रायश्चित्त पाप के प्रक्षय का प्रधान कारण है । यदि अनेक प्रकार के मसालों से युक्त भी व्यञ्जन (साग तथा दाल आदि) हैं, परन्तु उनमें लवण न होवे तो वे स्वादु नहीं होते, अपितु फीके लगते हैं । इसी

तो पणु ते क्रियाञ्चोभा रूढेल अहिंसा, सवर, कार्योत्सर्ग वदन आदि शुष्णेने। क्षाम छे न, पणु ले आवश्यक क्रियाञ्चो उपयोग अने लावपूर्वक आथर वामा आवे तो प्रकाशमा भवाञ्चेल साकरनी भाकेक अलौकिक अने अनुपम आनंद प्राप्त करावे छे अने समस्त कर्मोनी निर्जरा थाय छे

ले दोष उपयोग वगर क्रिया करे तो पणु अवे। सभव छे के अन्यने इस प्रकारे क्रिया करतो जेध तेने तीव्र वैराग्यनी प्राप्ति थाय अने अे तीव्र वैराग्य अेक क्षणुभर हृदयमा स्थिर थाय तो लवणमणु ने। अत आवे, अेम समञ्जु, तेथी प्रत्येक लव्यने उमेश आवश्यक करवे। नइरी ठे

आवश्यक सूत्रना छ अध्ययन छे तेनुं भीणु नाम प्रतिक्रमण छे, अने तेनुं कारणु अे छे के प्रतिक्रमणुने अर्थ प्रायश्चित्त छे, अने प्रायश्चित्त अेटले पापने। विशेष प्रकारे क्षय करवानुं मुख्य कारणु अेम विविध भशालाथी



लक्षणमन्तरेण न सुखादाहं तथा तपश्चर्या-गुरुस्तुति-प्रत्यारयानादिका सर्वाऽपि क्रिया प्रायश्चित्त (पश्चात्तापरूप) विना नैव नितान्तसुखफल प्रापयितुं क्षमा, तद्विषयक प्रतिक्रमणारय चतुर्थमध्ययनमस्मिन्नस्तीत्यस्य शास्त्रस्य 'प्रतिक्रमण' मिति नामान्तर जातम् ।

यद्यपि सम्यक्तिगर्तनिपतिताना प्राणिना यदा तदा येन केन चित्प्रकारेण पापपङ्कलेपो दुर्निवार्यस्तथापि तस्य पापस्य तत्क्षणमेव पश्चात्तापेनाऽऽलोचना क्रियेत चेत्तदा भुक्ततत्क्षणवान्तविषयत् तदुदयेऽपि जीवः पापजनिततीव्रदुःखभाग् न भवेत्, तत्क्षणकृतप्रायश्चित्तेन दुःखनिदानकर्मणा प्रकृतिस्थित्यनुभाग प्रदेश-

प्रकार तपश्चर्या, गुरुस्तुति, प्रत्यारयान आदि समस्त क्रियाएँ प्रायश्चित्त (पश्चात्ताप रूप) के विना आत्मीय-आनन्दप्रद नहीं होतीं । यह पश्चात्ताप-प्रतिक्रमण इस शास्त्र में प्रतिपादित किया गया है, अतएव इस समूचे सूत्र का भी नाम प्रतिक्रमण पड गया है ।

इस ससाररूपी खड्गे में गिरे हुए जीव कभी न कभी, किसी प्रकार पापकर्मरूपी कीचड में फँस ही जाते हैं । ऐसी अवस्था में यदि तत्काल ही उस पाप कर्म का पश्चात्ताप करके उसकी आलोचना कर ली जावे तो खाये हुए विष को तत्काल वमन कर देने की तरह उस पाप कर्म के उदय होने पर भी तीव्र दुःख नहीं भोगना पडता । क्योंकि तत्काल प्रायश्चित्त कर लेने से उसके अनुभाग

वारपुर साक-दाण निभक (सभरस) ना अभावे स्वादिष्ट जनतु नथी अने नीरस लागे छे तेम तपश्चर्या, श्रु स्तुति, पन्थभाष्य विगेरे क्रियाओ प्रायश्चित्त वगर आत्मिक आनद आपनार थछ शकती नथा आ प्रतिक्रमणुं आ शास्त्रमा प्रतिपादन करवाभा आवे छे ओथी आ आभा सूत्रनु नाम प्रति कभलु पडी गथु छे

आ ससार इप भाडाभा पडी गयेल एव क्यारे न क्यारे डोडने डोड पापकर्म इप डीचडभा इसाथ नय छे ओथी अवस्थाभा जे तत्काल ते पापकर्मनु पश्चात्ताप करीने आलोचना करवाभा आवे तो ओथी रीते भवाथ गथेलु अरनु तरत वमन करवाभा आवे तो, तेनी विधातक असर थती नथी तेथी रीते ते पाप कर्मने उदय उपस्थित थता तेनु तीम इ थ लोगवतु पडतु

वन्त्रेषु न्यूनत्व-शिथिलत्वसम्भवात् । यथा तत्कालविरचितभिर्यादीना तद्गत-  
सन्धिवन्धशिथिलीकरणे तत्पातने च नैव प्रयासबाहुल्यमपेक्ष्यते किन्तु काल-  
प्राचुर्ये सति तत्पातने तच्छिथिलीकरणे च प्रचुरपरिश्रमाऽपेक्षासम्भवस्तथैव  
दुःखहेतुभूतकर्मणा तद्विषये तत्क्षणे एव यदि पश्चात्तापः क्रियेत तर्हि नैव तानि  
भविष्यत्काले स्वोदयेऽपि प्रभूतदुःखप्रदानि जायेरन् प्रत्युताऽऽत्मा लघुकर्मत्वात्  
ऊर्ध्वगामी सञ्जायेत । यथा मखलीपुत्रो गोशालकः पश्चात्तापप्रायश्चित्तेन स्वकृत-  
घनकर्माणि क्षपयित्वा द्वादशे देवलोकं देवत्वमवाप, एव प्रसन्नचन्द्रराजर्षिः  
सप्तमनरकप्रापकाणि कर्माणि वदुध्वाऽपि पश्चात्तापेन घनघातकर्मविनाशनपूर्वक

वध आदि में न्यूनता और शिथिलता हो जाती है । जैसे तत्काल घनाई  
हुई दीवार को ढीली करने या गिराने में अधिक परिश्रम नहीं करना  
पडता, किन्तु बहुत दिनों बाद उसे ढीली करने या गिराने में बहुत  
परिश्रम करना पडता है । वैसे ही दुःख के कारण भूत कर्म (कार्य) का  
उसी दिन, उसी क्षण ही पश्चात्ताप कर लिया जाय तो उसके उदय  
आने पर वह अधिक दुःखदायक नहीं होता, बल्कि आत्मा लघुकर्मी  
होकर ऊर्ध्वगामी बनता है । मखलीपुत्र गोशालक पश्चात्ताप-प्रायश्चित्त  
करके, किये हुए घोर कर्मोंको पश्चात्तापसे नाश कर बाहरवें देवलोक में  
देव हुआ । राजर्षि प्रसन्नचन्द्र सातवें नरक में पहुँचानेवाले कर्मोंको  
मन के परिणामोंसे घाँघ करके भी पश्चात्ताप के द्वारा घनघातिकर्मों

नहीं कारणके पापनुं तात्कालिक प्रायश्चित्त करवाथी तेना अनुबाग-अध वगेरेमा  
भदता आधी नय छे जेवी रीते नवी अणुली दिवालने तात्कालिक ढीली करवामा  
अने पाठवामा विशेष परिश्रमनी जर पडती नधी परतु तैयार थया भाद धणु  
दिवसे पछी तेने ढीली करवा भाटे अने पाठवा भाटे धणुपरिश्रम करवे पडे छे  
जेवी रीते हु अना कारणरूप थयेल पापकर्मनुं तेज दिवसे तेज क्षणे प्रायश्चित्त  
करवामा आवे तो ते पापकर्मने उदयविपाक आये उदय के विपाक विशेष  
प्रमाणमा हु अदायक बनता नधी, परतु आत्मा कर्मथी हुणयो अनी उच्यगति  
देवगतिमा नय छे मभवीपुत्र गोशालक पोते करेला घोर पाप कर्मनुं प्राय  
श्चित्त करी पश्चात्तापथी पापकर्मने उदयने नाश करी गारमा देवलोके देव थया  
राजर्षि प्रसन्नचन्द्रे मनना दुष्ट परिणामे वडे सातमी नरके पडोयाठनार पाप



वन्त्रेषु न्यूनत्व-शिथिलत्वसमवात् । यथा तत्कालविरचितभित्त्यादीना तद्गत-  
सन्धिवन्धशिथिलीकरणे तत्पातने च नैव प्रयासवाहुल्यमपेक्ष्यते किन्तु काल-  
प्राचुर्ये सति तत्पातने तच्छिथिलीकरणे च प्रचुरपरिश्रमाऽपेक्षासम्भवस्तथैव  
दुःखहेतुभूतरुर्मणा तद्विवसे तत्क्षणे एव यदि पश्चात्तापः क्रियेत तर्हि नैव तानि  
भविष्यत्काले स्वोदयेऽपि प्रभूतदुःखप्रदानि जायेरन् प्रत्युताऽऽत्मा लघुरुर्मत्वात्  
ऊर्ध्वगामी सञ्जायेत । यथा मखलीपुत्रो गोशालकः पश्चात्तापप्रायश्चित्तेन स्वकृत-  
घनकर्माणि क्षपयित्वा द्वादशे देवलोके देवत्वमवाप, एव प्रसन्नचन्द्रराजर्षिः  
सप्तमनरकप्रापकाणि कर्माणि वद्ध्वाऽपि पश्चात्तापेन घनघातरुर्मविनाशनपूर्वक

वध आदि में न्यूनता और शिथिलता हो जाती है । जैसे तत्काल बनाई  
हुई दीवार को ढीली करने या गिराने में अधिक परिश्रम नहीं करना  
पडता, किन्तु बहुत दिनों बाद उसे ढीली करने या गिराने में बहुत  
परिश्रम करना पडता है । वैसे ही दुःख के कारण भूत कर्म (कार्य) का  
उसी दिन, उसी क्षण ही पश्चात्ताप कर लिया जाय तो उसके उदय  
आने पर वह अधिक दुःखदायक नहीं होता, बल्कि आत्मा लघुकर्मी  
होकर ऊर्ध्वगामी बनता है । मखलीपुत्र गोशालक पश्चात्ताप-प्रायश्चित्त  
करके, किये हुए घोर कर्मोंको पश्चात्तापसे नाश कर बाहरवें देवलोक में  
देव हुआ । राजर्षि प्रसन्नचन्द्र सातवें नरक में पहुँचानेवाले कर्मोंको  
मन के परिणामोंसे बाँध करके भी पश्चात्ताप के द्वारा घनघातिकर्मों

नथी कारणके पापनु तात्कालिक प्रायश्चित्त करवाथी तेना अनुभाग-अथ वगेरेभा  
मदता आवी नथ छे जेवी रीते नवी थलेली दिवालने तात्कालिक ढीली करवामा  
अने पाडवामा विशेष परिश्रमनी जर पडती नवी परतु तैयार तथा गाढ धरु  
दिवसे पछी तेने ढीली करवा भाटे अने पाडवा भाटे धरुपरिश्रम करवे पडे छे  
जेवी रीते दु गना कारणरुप थलेल पापकर्मनु तेन दिवसे तेन क्षणे प्रायश्चित्त  
करवामा आवे तो ते पापकर्मने उदयविपाक आवे उदय छे विपाक विशेष  
प्रभाषुभा हु प्रहायक बनता नथी, परतु आत्मा कर्मथी हुणवे गनी उच्चगति  
देवगतिमा नथ छे मथवीपुत्र गोशालक पोते करेला घोर पाप कर्मनु प्राय  
श्चित्त करी पश्चात्तापथी पापकर्मना उदयने नाश करी गारभा देवलोकें देव तथा  
राजर्षि प्रसन्नचन्द्रे मनना हुष्ट परिष्णामे वडे सातमी नरके पडोथाउठार पाप

सद्यः केवलाऽऽलोकमासाद्य मोक्षमगच्छत्, तत एव पापप्रायश्चित्तस्य प्राधान्ये नाऽस्य नामापि 'प्रतिक्रमण' मिति जातम् ।

नन्वेव प्रतिमक्रणस्य ( पडावश्यकाम्भस्य ) पापनिवर्तकत्वे प्रमाणिते प्रतिक्रमणवेत्तुणा तन्नाशोपायज्ञातत्वात्पापाचरणप्रवृत्तिर्न शङ्कावहा नापि परिहार्येति चेन्मैवम्—यथा कस्यचित्पापार्थे विपापहरणौषध वर्तते तेन किं विप भक्ष्यते? एव वस्त्रधावनोपयोगिक्षारादिसामग्रीसद्भावेऽपि रजक, किं स्ववस्त्राणि पङ्कादिलेपेन

को नष्ट करके, केवलज्ञान पाए और मोक्ष को प्राप्त हुए । पाप के प्रायश्चित्त की प्रधानता के कारण इस शास्त्र का नाम 'प्रतिक्रमण' है ।

यदि कोई यह तर्क करने लगे कि जब छह अध्ययन रूप प्रतिक्रमण करने से ही पापों से छुटकारा मिल जाता है तो जो प्रतिक्रमण के जानने वाले हैं वे पापों में प्रवृत्ति करने से क्यों झिझकेगें और क्यों पापों का त्याग करेगें? क्योंकि उन्हें पापों से छुटकारा पाने का उपाय मालूम है, जब चाहेंगे तब प्रतिक्रमण करके उनसे छुट्टी पा लेंगे । ऐसा विचार करना भी ठीक नहीं है । क्योंकि जिसके पास विप उतारने की ओषधि होती है, वह जान-बूझकर कभी विष खाता है? क्या कपड़े साफ करने के लिये साबुन क्षार आदि पदार्थ जिनके पास मौजूद होते हैं, वे लोग कभी जान बूझकर अपने कपड़े कीचड़ में लथेड लेते हैं? क्या कोई समझदार

कर्मों का धेरा डालता छटा प्रायश्चित्त द्वारा ते सयर् धनघाती कर्मोंना नाश करी देवग्नज्ञान प्राप्त करी मोक्ष प्राप्त कर्यो पापना प्रायश्चित्तनी प्रधानताना कारण्ये आ शास्त्रतु नाम प्रतिक्रमण्यु छे

जे कोछु ओवो तर्क उठावे के न्यारे छ अध्ययन रूप प्रतिक्रमण्यु करवाथी पापभाथी मुक्त थाय छे तो जेओ प्रतिक्रमण्यु न्णनाराओ छे तेओ पापभय प्रवृत्ति करवाथी शा भाटे पाछा डठे? अथवा पाप कर्मोंना त्याग शा भाटे करे? तेओने तो पापभाथी मुक्ति भेगववानो उपाय हाथमा छे, न्यारे छंछा करे त्यारे प्रतिक्रमण्यु करी मुक्ति भेगवी शके आवो तर्क उठावो ठीक नथी, कारण्यु के जेनी पासे जेर उतारवानी ओषधि छे तेओ न्णणी गुञ्जिने करी जेर पाय छे? वणी जेओनी पासे कपडा साइ करवा भाटे साण्यु, क्षार वगेरे पदार्थो छे तेओ

मलिनीकरोति ? यद्वा गृहे बहुव्ययः सम्मार्जन्यः सन्तीतिकृत्वा किं बहिःप्रदेशा-  
दानीय वृल्यादिकं गृहे विक्षिप्यते? अपितु न, किन्तु यदि प्रमादादिवशादनभिज्ञ-  
तया वा विषभक्षणानि कृत भवेत्तर्हि तत्प्रयोगेण तन्निवारणमभिमत विपश्चिता  
तदेव श्रेयस्करं च, अन्यथा तादृशानुचिताऽऽचरणविख्यापितमौर्ख्यस्य निन्दा-  
दुःखादिभागित्वं समासादितं भवत्यतो नैव भावनीयं जैनेन्द्रप्रवचनानुशीलनशीलैः।

तच्च प्रतिक्रमण पञ्चधा भवति—(१) दैवसिक, (२) रात्रिक, (३) पाक्षिक,  
(४) चातुर्मासिक, (५) सावत्सरिकं चेति ।

यह विचार करके कि घर में बहुतेरी सम्मार्जनिगा-(बुआरियां) पडी हैं,  
बाहर से कूडा कचरा इकट्ठा करके घरमें फैलाता है ? नहीं, कदापि  
नहीं । हाँ, प्रमाद वगैरे या अनजान में विष का भक्षण हो जाय तो उस  
दवा का प्रयोग करके उसका प्रतिकार करना समझदारी है, और इसी में  
भलाई है । अन्यथा अपने अनुचित आचरण से मूर्खता प्रगट होगी और  
निन्दा तथा दुःख का पात्र बनना पडेगा । इसलिये जिनेन्द्र भगवान् के  
प्रवचन रूपी प्रशाम पीयूष (अमृत) के पिपासुओं को ऐसी भावना मन में  
न लानी चाहिए ।

प्रतिक्रमण पाँच प्रकार का है—१ दिवस सम्बन्धी २—रात्रि सम्बन्धी  
३—पाक्षिक (पखवाडा) सम्बन्धी ४—चातुर्मास—सम्बन्धी ५—सवत्सर—

शुद्धि लेने के लिये पोताना कपडा काढवना नाभी गद्दा डरे छे ? घरमा साक्षुशी  
करवा भाटे धुली सावरणी छे अवे। अथवा केछि समझदार मनुष्य करी शुद्धि  
लेवने के लिये पोताना घरमा कयरो अकेछे करये ? नहि, केछिपि नहि छे, केछि  
अभाइथी अथवा अज्ञान दशाभा विष आवामा आवे तो तेना उतारने  
प्रयोग करीने विषना प्रतिकार करवे, तेज परी समझ छे अने तेज शिष्ट राह  
छे आ समझनु अनुसरण न करे तो पोताना अयोग्य आचरणथी पोतानी  
भूपाई लेवने छे, अने पोताने निन्दा अने दुःख पात्र बननु पडे छे  
आतेज लेने द्रव्य भगवानना प्रवचन इय शान्त अमृतना पान करनारामे आमा  
आशिष्ट भावना आववी न लेवे, आवो कुतर्क आववे न लेवे

प्रतिक्रमण पाँच प्रकारना छे—(१) दिवस—सम्बन्धी (२) रात्रि—सम्बन्धी (३)  
पाक्षिक—सम्बन्धी (४) चातुर्मास—सम्बन्धी (५) सवत्सर—सम्बन्धी दिवस द्वायान

સઘઃ કેવલાઽઽલોકમાસાઘ મોક્ષમગચ્છત્, તત એવ પાપપ્રાયશ્ચિત્તસ્ય પ્રાધાન્યે નાઽસ્ય નામાપિ 'તિક્રમણ' મિતિ જાતમ્ ।

નન્વેઽ પ્રતિક્રમણસ્ય ( પહાવશ્યકાત્મકસ્ય ) પાપનિવર્ત્તકત્વે પ્રમાણિતે પ્રતિક્રમણવેરુણા તન્નાશોપાયજ્ઞાતત્વાત્પાપાચરણમટ્ટચિન્નિ શઙ્કાવદા નાપિ પરિદાયેતિ ચેન્મૈવમ્—યથા કસ્યચિત્પાશ્વે વિપાપહરણૌપધ વર્તતે તેન કિં વિપ મહ્યતે ? એવ વત્તધાવનોપયોગિજ્ઞારાદિસામગ્રીસદ્ભાવેઽપિ રજકઃ કિં સ્વવચ્છાણિ પઙ્કાદિલેપેન

કો નટ કરકે, કેવલજ્ઞાન પાણ ઓર મોક્ષ કો પ્રાપ્ત હુણ । પાપ કે પ્રાયશ્ચિત્ત કી પ્રધાનતા કે કારણ ઇસ શાસ્ત્ર કા નામ 'પ્રતિક્રમણ' હૈ ।

યદિ કોઈ યહ તર્ક કરને લગે કિ જબ હહ અધ્યયન રૂપ પ્રતિક્રમણ કરને સે હી પાપોં સે છુટકારા મિલ જાતા હૈ તો જો પ્રતિક્રમણ કે જાનને વાલે હૈ વે પાપો મે પ્રવૃત્તિ કરને સે ક્યો ઝિજ્ઞકેગેં ઓર ક્યોં પાપોં કા ત્યાગ કરેગે ? ક્યોંકિ ઉન્હેં પાપોં સે છુટકારા પાને કા ઉપાય માલૂમ હૈ, જબ ચાહેંગે તબ પ્રતિક્રમણ કરકે ઉનસે છુટી પા લેંગે । ઁસા વિચાર કરના ઓક નહી હૈ । ક્યોંકિ જિસકે પાસ વિપ ઉતારને કી ઓપધિ હોતી હૈ, વહ જાન-બૂઝકર કઓમી વિપ ઁવાતા હૈ ? ક્યા કપડે સાફ કરને કે લિયે સાબુન ક્ષાર આદિ પદાર્થ જિનકે પાસ મૌજૂદ હોતે હૈ, વે લોગ કઓમી જાન-બૂઝકર અપને કપડે કીચડ મેં લથેડ લેતે હૈ ? ક્યા કોઈ સમઝદાર

કરોં ણાધેલ હતા છતા પ્રાયશ્ચિત્ત દારા તે સર્વ ઘનઘાતી કરોંનિ નાશ કરી કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી મોક્ષ પ્રાપ્ત કરોં પાપના પ્રાયશ્ચિત્તની પ્રધાનતાના કારણે આ શાસ્ત્રનું નામ પ્રતિક્રમણ છે

જો કોઈ એવો તર્ક ઉઠાવે કે જ્યારે છ અધ્યયન રૂપ પ્રતિક્રમણ કરવાથી પાપમાથી મુક્ત થાય છે તો જ્યો પ્રતિક્રમણ બાહુનાશ્યો છે તેઓ પાપમય પ્રવૃત્તિ કરવાથી શા માટે પાછા હુકે ? અથવા પાપ કરોંનિ ત્યાગ શા માટે કરે ? તેઓને તો પાપમાથી મુક્તિ મેળવવાનો ઉપાય હાથમા છે, જ્યારે ઇચ્છા કરે ત્યારે પ્રતિક્રમણ કરી મુક્તિ મેળવી શકે આવો તર્ક ઉઠાવવો ઠીક નથી, કારણ કે જોની પાસે એર ઉતારવાની ઓપધિ છે તેઓ બાહી યુઝીને કદી એર ખાય છે ? વળી જ્યોની પાસે કપડા સાફ કરવા માટે સાબુ, ક્ષાર વગેરે પદાર્થો છે તેઓ

सम्पादनेऽपि सर्वे पर्वमहोत्सवादितिथिषु खण्डखाद्यघृतपूरा-ऽप्रप लपनश्रीप्रभृतीन् विशिष्टान् भोज्यपदार्थसभारान् सम्पादयन्ति । यथा वा लोके लोका अनुदिन भवन समार्जयन्तोऽपि दीपावल्यादिपर्वसु तत इतः कोणकादिगताऽज्ञातसरूलाव-  
करसमार्जनेन सविशेष गृहगतकचवरादिशुद्धिं विदधतीति सुप्रसिद्धमेव, उक्तञ्चात्र

“जह गेह पडदिवस पि सोहिय, तहवि पक्खसधीसु ।  
सोहिज्जइ सविसेस, एव इह यावि नायव्व ॥ १ ॥”

घेवर, मालपूआ, लपसी आदि विशिष्ट पक्वान तैयार किये जाते हैं, अथवा जैसे लोग प्रतिदिन मकान की सफाई करते हैं तो भी दीपावली आदि त्योहारों पर अच्छी तरह कोने-आतर तक झाड उहार कर सफाई करते हैं, वैसे ही दैवसिक और रात्रिक प्रतिक्रमण कर लेने पर भी अनाभोग (अनजाने) लज्जा मन्दपरिणाम आदि कारणोंसे या अज्ञान के कारण यदि पूरी शुद्धि न हो तो पाक्षिक आदि प्रतिक्रमणों में, लगे हुए उन-उन अतिचार-अनाचार का स्मरण करने से विरक्ति (हिंसा आदि के त्याग) की अधिक भावना होती है और भलीभाँति पाप की शुद्धि हो जाती है। कहा भी है—

“जह गेह पडदिवस पि सोहिय, तहवि पक्खसधीसु ।  
सोहिज्जइ सविसेस, एव इह यावि नायव्व ॥ १ ॥”

गनाववामा आवे छे तेम छता पणु तडेवार अने उत्सवना द्विसे भीर, माल पुवा, लापसी, मीलाथ वगेरे पक्वान तैयार करवामा आवे छे, अने जेवी रीते मनुष्ये उभेशा पोताना मकाननी सद्धि राजे छे तो पणु दिवाणी वगेरे तडेवादे उपर विशेष प्रकारे भूखे भायेथी पणु साक्षुशी करे छे, जेवीर रीते देवसिक अने रात्रिक प्रतिक्रमण करी लेता अण्णु पणु, शरमथी मह परिणाम आदि कारखेथी अथवा अज्ञानथी जे पापेनी पूर्ण शुद्धि न होय तो पाक्षिक वगेरे प्रतिक्रमणोमा भूतकाणमा लागेला अतिचार अनाचार (पापे) ना स्मरण करवायी हिंसा वगेरेना त्यागनी अधिक भावना नगृत थाय छे, अने स पूर्ण पणु इडी रीते पापनी शुद्धि थाय छे कहुयु पणु छे—

“जह गेह पडदिवसपि सोहिय, तहवि पक्खसधीसु  
सोहिज्जइ सविसेस, एव इह यावि नायव्व ॥ १ ॥



तत्र दिवससजातपापस्य दैवसिकेन, रात्रिसजातपापस्य रात्रिकेण, एव पक्ष चतुर्मास सवत्सरसजातपापस्य क्रमात् पाक्षिकेण चातुर्मासिकेन सावत्सरिकेण प्रतिक्रमणेन शुद्धिर्विधातव्या भव्यभावनशीलैः ।

ननु प्रतिक्रमणस्य दैवसिक-रात्रिकोभयभेदेनैव सर्वपापप्रलयद्वारा शुद्धि-सम्भवः, प्रतिदिवससजातपापस्य दिनान्ते दैवसिकेन, रात्रिकृतस्य च रात्र्यन्ते रात्रिकेण प्रतिक्रमणेन शुद्धिसभवात्, किं पुनः पाक्षिक चातुर्मासिक सावत्सरिक-प्रतिक्रमणैः प्रयोजनम् ? इति चेदत्रोच्यते-लोके यथोभयकाल प्रतिदिवसमशनादि-

सम्बन्धी । दिन में लगे पापों की दैवसिक से, रात्रिमें लगे हुए पापों की रात्रिक से, इसी प्रकार पक्ष, चतुर्मास और सम्बत्सर (वर्ष) में लगे हुए पापों की शुद्धि क्रमशः पाक्षिक चातुर्मासिक और सावत्सरिक प्रतिक्रमण से भव्य जीवों को करनी चाहिए ।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि प्रतिक्रमण के दैवसिक और रात्रिक भेद ही ठीक हैं । इन्हींके द्वारा समस्त पापों से छुटकारा पाया जा सकता है । दिनमें जो पाप लगेंगे उनकी दिन के अन्तमें किये जाने वाले दैवसिक प्रतिक्रमण से और रात्रि में लगे हुए पापों की रात्रिके अन्त में किये जानेवाले रात्रिक प्रतिक्रमण से शुद्धि हो जाएगी । फिर पाक्षिक, चातुर्मासिक और सावत्सरिक प्रतिक्रमणों की क्या आवश्यकता है ? इसका समाधान यह है—कि जैसे लोकरूढ्यवहार में प्रतिदिन दो बार भोजन बनाया जाता है, फिर भी त्योहार और उत्सव के समय खीर,

थम्बेला पापोनु देवसिकथी, रात्रिमा थम्बेला पापोनु रात्रिकथी, आ प्रभाणे पथ वाडिया, चातुर्मास अने सवत्सर दरभ्यान थम्बेला पापोनी शुद्धि अतुड्कमे पाक्षिक चातुर्मासिक अने सावत्सरिक प्रतिक्रमणथी लव्य एवोअे करवी लोड्कमे

अर्ही अेक अेवो प्रश्न उठे छे के प्रतिक्रमणना देवसिक अने रात्रिक लेड योअ्य छे अने अेनाधीज सभअ पापोथी मुक्त थज शके छे दिवस दरभ्यान जे पाप थय तेनी शुद्धि दिवसने अते देवसिक प्रतिक्रमणथी अने रात्रि दरभ्यान थम्बेला पापोनी शुद्धि रात्रिने अते रात्रिक प्रतिक्रमणथा थाय छे, तो पछी पाक्षिक चातुर्मासिक अने सावत्सरिक प्रतिक्रमणो करवानी शी जरूर छे ?

आ तर्कनु समाधान अे छे के लेवी रीते लोक वडेवारमा जे वार लोअन

कृतातीचारविस्मरणादिदोषवाहुल्यमसङ्गः, ततः दैवसिकादिप्रतिक्रमणमवश्य-  
मेवानुष्ठेयम् । अन्यदपि श्रूयताम्—

यथा कोऽपि मृदुलपल्वितकलम्बः प्रचण्डमार्तण्डाऽऽतपेन म्लानो न केवल-  
मेकवारसलिलसिञ्चनेन किन्त्वनेकशः सलिलसेकेन पूर्वावस्थामाप्नोति तथैवाऽ-  
त्राऽपि बोध्यम् । अन्यच्च—

पूर्वं तु आत्मसयमे तीव्रोपयोगस्याऽखण्डपरिणत्याऽविचलावस्थया पापलेपोऽ-  
सभाव्यः, यदि प्रमादादिना पापसपर्कस्तदा तत्क्षण एव पश्चात्तापादिना तस्य

पाप की विशुद्धि के लिए दैवसिकादि प्रतिक्रमण अवश्य करना  
चाहिए । फिरभी उदाहरण यह है ।

जैसे लहलहाता हुआ पौधा धूपसे मुरझा जाय तो एक बार  
जल सींचने से ही हराभरा नहीं हो सकता ! बारम्बार जल सींचने  
की आवश्यकता होती है । इसी प्रकार व्रतरूपी पौधा अतिचाररूपी  
धूपसे मुरझा गया तो उसे पूर्वावस्थामें बारम्बार प्रतिक्रमणरूप जल-  
सिञ्चन की आवश्यकता है अत एव दैवसिक रात्रिक आदि सभी  
प्रतिक्रमण करने योग्य हैं । अथवा—

प्रथम तो चाहिए कि तीव्र उपयोग की अखण्ड परिणति और  
अविचल अवस्था द्वारा पापका लेप भी न लगने दें । यदि प्रमादा-

अनेक दोषोना प्रसंग आवे छे अे कारण्णुथी उपर कडेवाभा आवेला पापनी  
विशुद्धिने भाटे दैवसिकादि प्रतिक्रमण्णु अवश्य करवु न्नेछ्छे इरी पणु साभणे !

नेवी रीते लीलाछम रहेला छेउवाओ (वृक्षना छेउवा) तापथी तदन  
सूकाछ नय तो अेक वभत पाणी सीञ्चन उरवाथी ते लीलाछम नेवा थर्ष  
शकता नथी, परन्तु ते छेउवाओने वारवार पाणीनु सीञ्चन करवानी आवश्यक  
छ्ना रहे छे अे प्रभाणे मत्तन्वपी छेउ अतिचार इपी तापथी तदन सूकाछ गया  
तो तेने पूर्वे ने स्थितिमा छ्ता तेवी स्थितिमा लाववा भाटे वारवार प्रतिक्रमण्णु इप  
पाणीनु सिञ्चन करवानी आवश्यकता छे अेटला भाटे दैवसिक रात्रिक आदि सर्व  
प्रतिक्रमण्णु करवा योग्य छे अथवा—

प्रथम तो धंरुछे के तीव्र उपयोगनी अण्ड परिणति अने अविचल  
अवस्था द्वारा पापना लेप पणु लागवाञ्च नहि देवे। न्नेछ्छे परन्तु न्ने के

तथैव प्रतिवासर दैवसिकरात्रिकप्रतिक्रमणमुभयकालमावश्यककरणे ऽपि अनाभोगलज्जामन्दपरिणामादिकारणप्रशेनाऽनभिज्ञतया वा यदि सम्यक्शुद्धिर्न जायेत तदा तेन पाक्षिकादिषु तत्तदतिचारस्मरणेन समधिकरौराग्यभावनापुरस्सरा पापशुद्धिः समीचीना भवति, ततः पाक्षिकादिप्रतिक्रमणमपि करणीयमेवेति सिद्धम् ।

अस्तु तावत्, किन्तु सावत्सरिकप्रतिक्रमण यत्र कर्तव्यत्वेन विहितं तत्र किमन्यैर्दैवसिकादिभिः प्रयोजनम् ? सप्तसरसञ्जातपापव्रातानां सवत्सरान्ते सावत्सरिकप्रतिक्रमणेन क्षय स्यादेवेति चेत्, उच्यते—दैवसिकादिप्रतिक्रमण विधानेन सत्रः—सलग्नमलमलिनस्योर्ध्वतवह्ववत्सयःकृतपापपरिशुद्धिः सत्र एव सजायते, तेन च चारित्रशुद्धिर्विशिष्टतरा भवति, कालातिक्रमे सति प्रतिक्रमणेन

अतः पाक्षिक आदि प्रतिक्रमण भी अवश्य करना चाहिये ।

प्रश्न—जब सावत्सरिक प्रतिक्रमण करने का विधान कर दिया तो दैवसिक आदि प्रतिक्रमण की क्या आवश्यकता है ? वर्ष भरमें जो पाप लगेंगे उनका वर्षके अन्तमें सावत्सरिकप्रतिक्रमणसे क्षय हो ही जायगा ।

उत्तर—यह है कि जिस प्रकार कपड़े पर लगे हुए दाग को तत्काल धोनेसे वह साफ हो जाता है उसी प्रकार दैवसिकादि प्रतिक्रमण करनेसे लगे हुए पापकी तत्काल परिशुद्धि हो जाती है, जिससे चारित्रशुद्धि अत्यन्त विशिष्ट होती है । समय के बीत जाने पर जो प्रतिक्रमण किया जाय तो लगे हुए दोषों का विस्मरण हो जाना आदि अनेक दोषों का प्रसंग आता है, अतः ऊपर की ऊपर

भाटे पाक्षिक वगैरे प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिये

प्रश्न - क्या सावत्सरिक प्रतिक्रमण करवाना निर्देश करवाना आये। छे तो पछी देवसिक, रात्रिक प्रतिक्रमण करवानी शी जरूर छे ? वर्ष दरम्यान के पापों थाय तेनु निवारण वर्षने अते सावत्सरिक प्रतिक्रमण करवाथी थउ नय छे

उत्तर—ये छे के—बेवी रीते कपडा उपर लागेला उधने तत्काल धोथ नाभवाथी ते कपडु साइ थउ नय छे ते प्रभाणु दैवसिकादि प्रतिक्रमण करवाथी के ठोथ पाप लागेला डोय तेनी तत्काल शुद्धि थथ नय छे नेना वडे चारित्र शुद्धि अत्य त विशुद्ध थथ नय छे समय वीती गया पछी के प्रतिक्रमण कर वामा आवे तो के कथ होयो लागेला हे य तेनु विस्मरण (भूली जलु) थलु आदि

सुकृदिवसे एतावदेतावद्द्रव्य दास्यामी”ति तेनाऽस्माद्ऋणदानदिवसात्पर पञ्चमे मामि सकुसीदसकृलद्रव्यशोभन भविष्यतीति, तत्राऽधमर्णस्य नाय भावस्तिष्ठति यदन्तिमसमये पूर्णं सत्येव मया सर्वं प्रदेयमिति किन्तु यथाऽवसर शीघ्रमेव ऋणविशोधनाया मया प्रयासः कर्तव्य इति, अतो यदि नियमितसमयात्प्रागेव ऋण विशोभ्येत तदाऽधमर्णस्य महती शोभा सजायते । प्रथमे नियतसमये ऋण-विशोधने साधारणी शोभा, द्वितीये मज्जमा, तृतीये किञ्चिद्गना, चतुर्थे न्यूना, एव पूर्णं पञ्चमे मासि तु सकुसीद सर्वं द्रव्यमवश्यमेव देय येन व्यवहारो न भ्रुष्टयेत् । किन्तु पूर्णं ऽप्यवधौ यत्रधमर्णः साकूलेन ऋण न परिशोधयेत् तदाऽवश्य व्यव-

किरतचन्दी कर दी कि- “मैं इतने इतने दिनोंमें इतना इतना ऋण चुका कर इतने दिनोंमें ऊरिन हो जाऊँगा।” ऐसी दशामें किसी भले कर्जदार का यह भाव नहीं होता कि जब किरतचन्दी का समय पूरा होगा तबही हम सब चुका देंगे, किन्तु जितना जल्दी हो सकता है पहली वार ही ऋण चुका देना चाहेगा, तो तदनुसार यदि नियमित किरत के समयसे पहले ही ऋण पूरा चुका दे तो उसकी ससार में शोभा होती है। अगर दूसरी किरत पर सब ऋण चुका दे तो कुछ कम शोभा होती है, एव तीसरी किरतपर चुकावे तो उससे कम, चौथीवारमें उससे भी कम शोभा होती है। आखिर पाचवी वार चुकाना तो उसको मिलकुल लाजिमी है। यदि इस समयभी न चुकावेगा तो साख शोभामें हानि और

हुप्तानी भूदत षाधी दीधी डे - “हु अमुक द्विवसोभा अमुक-अमुक चुकावीने आटला द्विवसोभा मुकत थछ न्छश” आवी न्थितिमा डोछ पछु समजदार देणुदारनी ओवी लावना थती नथी डे न्यारे भूदत षधीनेा समय पूशे थशे त्यारेर हु सर्व प्रकारनुं करर चुकावी आपीश ? परतु नेटलु वडेलु करर चुकावी शकाथ तेटदी उतावणथी करर चुकववा णततु करशे तो ससारमा तेनी शोला देभाशे अथवा तो भील मुदत उपर तमाम करर चुकावी आपशे तो प्रथम करता शोला थोडी ओछी देभाशे त्रील भूदत उपर चुकवशे तो भील करता पछु शोला ओछी, चोथी भूदत पर चुकवशे तो तेथी पछु ओछी शोला देभाशे छेवटे पाचमी भूदत पर करर चुकावतु ते तो कररदार भाटे ओकदम अथोग्य छे तो पछु ने ते

नाशो विधेयः । तत्क्षण एव पश्चात्तापाभावे दिवसान्ते रात्र्यन्ते पक्षान्ते चतुर्मासान्ते च क्रमेण प्रतिक्रमणेन पापक्षयो विधातव्यः । यदि च प्रगाढप्रमादादिवशात् पूर्वोक्तसमयेषु पश्चात्तापादि समाचरित न भवेत् तदा सवत्सरान्ते तद्वश्यमेव शुद्धान्तःकरणेन सवत्सरसमुद्भूतपापानि स्मार स्मार प्रतिक्रमणमवश्यमाचरणीयम्, अन्यथा पापाना वज्रलेपायितलमेवाऽऽपद्येत । अत्र दृष्टान्तः—

यथा केनचिन्नरेण ऋणविशोधनसमयो नियतीकृतो यथा—“अहं ममूका-

दिवश पापका सपर्क हो जाय तो उसी क्षण पश्चात्तापादि द्वारा उसका नाश कर देना चाहिये । अगर उस वक्त पश्चात्तापादि न हो सका तो दिन, रात्रि, पक्ष, एव चतुर्मास के अन्तमें अनुक्रम से प्रतिक्रमण द्वारा पाप का क्षय कर देना जरूरी है, यदि प्रगाढ प्रमाद आदिके कारण पूर्वोक्त समय चूक गया हो अर्थात् पूर्वनिर्दिष्ट समयमें अतिचार शोधन नहीं किया गया हो तो सवत्सर (वर्ष) के अन्तमें तो मनुष्यको शुद्धअन्तःकरण हो कर वर्षभर के लगे हुए पापों को याद कर-कर के प्रतिक्रमण अवश्य करनाही चाहिये । ऐसा न किया जाय तो लगे हुए पाप वज्रलेप जैसे हो जावेंगे, अर्थात् पाप से अपने को छुडाना मुश्किल पडेगा । इस पर दृष्टान्त कहते हैं—

जैसे किसी मनुष्यने ऋण चुकाने के लिए पाच द्वार की

प्रमाद आदि दोषोना वश थवाथी पापनो सपर्क थल जय तो तेन समये पश्चात्तापादि द्वारा तेनो नाश करी देवे जेधजे अथवा तो ते समये पश्चात्तापादि न करी शक्य तो दिवस, रात्रि, पक्ष, जे प्रमाद्ये चतुर्मासना अन्तमा अनुकमथी प्रतिकमणु द्वारा पापनो नाश करी देवे जेधजे, जे नइरी वस्तु छे

जे विशेष, जलवान प्रमाद आदिना कारणे आगण जे समय कइयो छे ते भूली नवाय तो, अर्थात् आगण कहेला समये प्रतिकमणुनी किया नहि गनी शके तो सवत्सर (वर्ष)ना अतमा मनुष्येजे शुद्ध अत करणु थधने जेक वर्ष सुधीमा जे पाप लागेला होय तेने याद करीने प्रतिकमणु अवश्य करवुन जेधजे जे प्रमाद्ये करवामा न आवे तो लागेला पाप वज्रलेप जेवा थध नशे, अर्थात्-पापथी पोताने जयवानु मुश्किल थध पउथे ते भाटे दृष्टात कहे छे के —

भानी लेशोके —केध मनुष्यने ऋणु-(दिलु-करन)चूकाववा भाटे पाय

मुरुदिवसे एतावदेतावद्रव्य दास्यामी”ति तेनाऽस्माद्ऋणदानदिवसात्पर पञ्चमे मामि सकुसीदसकूलद्रव्यशोधन भविष्यतीति, तत्राऽधमर्णस्य नाय भावस्तिष्ठति यदन्तिमसमये पूर्णे सत्येव मया सर्वं प्रदेयमिति किन्तु यथाऽवसर शीघ्रमेव ऋणविशोधनाया मया प्रयासः कर्तव्य इति, अतो यदि नियमितसमयात्प्रागेव ऋण विशोधयेत तदाऽधमर्णस्य महती शोभा सजायते । प्रथमे नियतसमये ऋण-विशोधने सागरणी शोभा, द्वितीये मध्यमा, तृतीये किञ्चिद्दूना, चतुर्थे न्यूना, एव पूर्णे पञ्चमे मासि तु सकुसीद सर्वं द्रव्यमवश्यमेव देय येन व्यवहारो न त्रुटयेत। किन्तु पूर्णे ऽप्यवधौ यद्यऽमर्णः साकल्येन ऋण न परिशोधयेत् तदाऽवश्य व्यव-

किरतयन्दी कर दी कि- “मै इतने इतने दिनोमें इतना इतना ऋण चुका कर इतने दिनोमें जरिन हो जाऊँगा।” ऐसी दशामें किसी भले कर्जदार का यह भाव नहीं होता कि जब किरतयन्दी का समय पूरा होगा तबही हम सब चुका देंगे, किन्तु जितना जल्दी हो सकता है पहली बार ही ऋण चुका देना चाहेगा, तो तदनुसार यदि नियमित किरत के समयसे पहले ही ऋण पूरा चुका दे तो उसकी ससार में शोभा होती है। अगर दूसरी किस्त पर सब ऋण चुका दे तो कुछ कम शोभा होती है, एव तीसरी किरतपर चुकावे तो उससे कम, चौथीवारमें उससे भी कम शोभा होती है। आखिर पाचवी बार चुकाना तो उसको निलकुल लाजिमी है। यदि इस समयभी न चुकावेगा तो साख शोभामें हानि और

हुप्तानी भूदत गाधी हीधी डे - “हु अमुक द्विवसोभा अमुक-अमुक चुकावीने आटला द्विवसोभा मुकत थछ न्छश” आवी स्थितिमा डोछ पञ्च समन्वहार देवुहारनी ओवी भावना थती नथी डे न्यागे भूदत गाधीने समय पूरा थथे त्पारेण हु सर्व प्रकारनु करण चुकावी आपीश ? परतु नेटलु वडेलु करण चुकावी शक्य तेटली उतावणथी करण चुकववा णानतु करथे तो ससारमा तेनी शोभा देभाशे अथवा तो णील मुदत उपर तभाभ करण चुकावी आपथे तो प्रथम करता शोभा थोडी ओछी देभाशे त्रील भूदत उपर चुकवथे तो णील कन्ता पञ्च शोभा ओछी, चोथी भूदत पर चुकवथे तो तेथी पञ्च ओछी शोभा देभाशे छेवटे पाचमी भूदत पर करण चुकावतु ते तो करणहार भाटे ओकहम अथोय्य छे तो पञ्च ने ते

हारस्त्रुटयेत प्रतिष्ठाहानिश्च जायेत, राजद्वारे सातिशय दण्डनीयश्च भवेत् । एव  
प्रतिक्रमणविषयेऽपि बोद्धव्यम् ।

ननु इयमावश्यकक्रिया श्रावकश्राविकाणा सर्वेषामेव करणीयेति तु  
युक्तम् गृहस्थत्वेन तेषा पापसभवात्, जिनेन्द्रशासनप्रतिपालकाना साधूना तु  
सर्वसावद्ययोगनिवृत्त्यभ्युपगमेन मनोवाक्यमृत्ययो विशुद्धा एव भवन्ति कथं  
पुनस्तेषा पापसभवो येन दैवसिद्धादिप्रतिक्रमणैस्तेषामपि तच्छुद्धिः कर्तव्या  
भवेत् ? इति चेदत्रोच्यते—

यथा तालरुनियन्त्रितरुपाटावरुद्धगृहेऽपि येन केनचित्प्रकारेण रजः-

लोकनिन्दा होगी, तथा न्यायालयमे दण्ड पावेगा । यही बात प्रतिक्रमण  
के विषयमें समझना चाहिए ।

प्रश्न यह है कि आवश्यक क्रिया सब श्रावक श्राविकाओ को  
तो करनी चाहिये, क्योंकि वे गृहस्थ हैं और गृहस्थ होने से पाप लगने की  
संभावना है, किन्तु जिनेन्द्र भगवान के शासन का पालन करने वाले  
साधु और साध्वी तो सावद्य के सर्वथा त्यागी होते हैं, उनके मन  
वचन और काय की प्रवृत्ति विशुद्ध ही होती है, इन्हें पाप कैसे लग  
सकता है कि जिसके कारण दैवसिद्ध आदि प्रतिक्रमण करके उन्हें  
भी पाप की शुद्धि करना आवश्यक हो ? ।

इसका समाधान यह है कि जैसे विलकुल बन्द मकान में

सभये पशु करण चूकावी नहिं शके तो प्रतिष्ठानी हानि साथे लोकनिन्दा थये  
तेमन् न्यायनी अहालतभा दड थये, अण प्रभाण्णु प्रतिक्रमणुना विषयभा सभण्णु  
नेधये

आ आवश्यक क्रिया सर्व श्रावक श्राविकाओये तो करवीण्णु नेधये  
कारण्णु के ते गृहस्थ छे, अने गृहस्थ होवाथी पाप लागवानो सभव छे, परन्तु  
जिनेन्द्र भगवानना शासननु पालन करनारा साधु अने साध्वी तो सावधना  
सर्वथा त्यागी होय छे, तेमना मन, वचन अने कायानी प्रवृत्ति विशुद्धण्णु होय  
छे तेमने पाप केवी रीते लागी शके छे ? के ने कारण्णुथी दैवसिद्ध आदि प्रति  
क्रमण्णु करीने तेमण्णु पशु पापनी विशुद्धि करवी ण्णु करी होय ?

तेनु समाधान अे छे के --ने प्रभाण्णु अेकदम णध करेला मकानभा पशु

प्रवेशो जायत एव तथैवैतेषा सम्प्रति यथाख्यातचारित्रासम्भवात् साधूनामपि प्रमादसम्भवाच्च सूक्ष्ममादरातिचारसम्भव एव, एतदेवाऽभिप्रेत्य—‘प्रथमान्तिमजिन-साधूनामुभयकाल प्रतिक्रमणमवश्यमेव कर्तव्यमिति भगवताऽऽज्ञप्तम्, तथा चोक्तम्—

“सपडिकमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।  
मज्झिमयाण जिणाण, कारणजाए पडिकमण ॥१॥” इति ।

(भाव नि.)

अपि च अतिचारसम्भवाभावेऽपि प्रतिक्रमणकरणेन तज्जनिताऽऽत्मशुद्धेः प्रावल्य त्वस्य सम्भवति तृतीयवैयर्थ्यपधिवत्, यथा—

भी किसी न किसी प्रकार धूल घुस ही जाती है वैसे ही साधुओं के पूर्ण यथाख्यात चारित्र न हो सकने से और प्रमाद का अस्तित्व होने से सूक्ष्म या स्थूल अतिचार लग ही जाते हैं । इसी लिए जिनेश्वर भगवान की आज्ञा है कि—प्रथम और अन्तिम तीर्थकरो के साधुओं को उभयकाल प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए ।

कहा भी है—

सपडिकमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।  
मज्झिमयाण जिणाण, कारणजाए पडिकमण ॥१॥

(आ. नि)

दूसरी बात यह है कि अतिचार न लगने पर भी प्रतिक्रमण करने से तज्जन्य आत्मशुद्धि की प्रचलता अवश्य होती है । तीसरे वैद्य की

डोढ़ने डोढ़ प्रकारे धूण घुसी नय छे तेवीन रीते साधुओने पूर्ण रीते यथाख्यात चारित्र नडि डोढ़ शकवाथी अने प्रभाटनु अस्तित्व डोवाथी सूक्ष्म अथवा स्थूल अतिचार लागीन नय छे अटला भाटे जिनेश्वर भगवाननी आज्ञा छे डे प्रथम अने अन्तिम तीर्थ करेना साधुओअे णन्ने समय प्रतिक्रमण अवश्य करलु लेछअे—

डधु छे डे -

सपडिकमणो धम्मो, पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स ।

मज्झिमयाण जिणाण, कारणजाए पडिकमण ॥ १ ॥ (आ. नि)

भील बात अे छे डे —अतिचार नडि लागे तो पधु प्रतिक्रमण करवाथी



हारस्त्रुटयेत प्रतिष्ठाहानिश्च जायेत, राजद्वारे सातिशय दण्डनीयश्च भवेत् । एव  
प्रतिक्रमणविषयेऽपि बोद्धव्यम् ।

ननु इयमावश्यकक्रिया श्रावकश्राविकाणा सर्वेषामेव करणीयेति तु  
युक्तम् गृहस्थत्वेन तेषा पापसभवात्, जिनेन्द्रशासनप्रतिपालकाना साधूना तु  
सर्वसावद्ययोगनिवृत्त्यभ्युपगमेन मनोवाकायप्रवृत्तयो विशुद्धा एव भवन्ति कथं  
पुनस्तेषा पापसभवो येन दैवसिक्कादिप्रतिक्रमणैस्तेषामपि तच्छुद्धिः कर्तव्या  
भवेत् ? इति चेदत्रोच्यते—

यथा तालकनियन्त्रितरूपाटावरुद्गृहेऽपि येन केनचित्प्रकारेण रजः-

लोकनिन्दा होगी, तथा न्यायालयमे दण्ड पावेगा । यही बात प्रतिक्रमण  
के विषयमे समझना चाहिए ।

प्रश्न यह है कि आवश्यक क्रिया सब श्रावक श्राविकाओ को  
तो करनी चाहिये, क्योंकि वे गृहस्थ हैं और गृहस्थ होने से पाप लगने की  
सभावना है, किन्तु जिनेन्द्र भगवान के शासन का पालन करने वाले  
साधु और साध्वी तो सावद्य के सर्वथा त्यागी होते हैं, उनके मन  
वचन और काय की प्रवृत्ति विशुद्ध ही होती है, इन्हें पाप कैसे लग  
सकता है कि जिसके कारण दैवसिक्का आदि प्रतिक्रमण करके उन्हें  
भी पाप की शुद्धि करना आवश्यक हो ? ।

इसका समाधान यह है कि जैसे बिलकुल बन्द मकान मे

सभये पणु करण थूकावी नहिं शके तो प्रतिष्ठांनी हानि साथे लोकनिन्दा थये  
तेमन् न्यायनी अदालतभा दंड थये, अण् प्रभाण्णु प्रतिक्रमणुना विषयभा सभण्णु  
नेधये

आ आवश्यक क्रिया सर्व श्रावक श्राविकाओये तो करवीण्णु नेधये  
कारणु के ते गृहस्थ थे, अने गृहस्थ होवाथी पाप लागवानो सभव थे, परन्तु  
जिनेन्द्र भगवानना शासननु पालन करनारा साधु अने साध्वी तो सावद्यना  
सर्वथा त्यागी होय थे, तेमना मन, वचन अने कायानी प्रवृत्ति विशुद्धण्णु होय  
थे तेमने पाप डेवी रीते लागी शके थे ? के ने कारणुथी दैवसिक्का आदि प्रति  
क्रमणु करीने तेमण्णु पणु पापनी विशुद्धि करवी न्णरी होय ?

तेनु समाधान अे छे के -? प्रभाण्णु अेकदम णध करेला भकानभा पणु

नाशयति, रोगभावेऽपि सेवित सदाऽऽगन्तुकाऽऽतङ्कान् निवारयति शरीरकान्तिं  
सर्वर्द्धयति, रसायनस्यास्याऽपराप्यद्भुतचमत्कारजननी शक्तिर्विद्यते यदस्य सेवने  
पुनः रोगशङ्काऽपि न सम्भवतीति”। राजा च तत्सर्वं निगम्य तृतीयवैद्योपदिष्ट-  
मेवौषधं तनयाय प्रादापयत् । एव साधुभिरप्यात्मनीनमेतादृशं क्रियौषधं सेवनीयं  
येन तद्गतकर्मरोगसंक्षयपूर्वकमागन्तुं कर्मरोगावरोधपुरस्सरमात्मशुद्धिः सजायते ।  
अनेन दैवसिद्धादिक्रमपि प्रतिक्रमणं साधूनामप्यवश्यमासेव्यम्, पापसद्भावे  
तत्क्षयस्य तदभावे चाऽऽत्मिकविशुद्धेरवश्यम्भावात् ।

और अद्भुत है । ऐसी दवा और कहीं नहीं मिल सकती । यह  
शारीरिक रोगोंको जडसे नष्ट कर देती है और रोग न होने पर  
आगे आने वाले रोगोंको रोकती है, तथा शरीर की कान्ति बढ़ाती  
है । इसमें एक और चमत्कार यह है कि इसका सेवन कर लिया  
तो भविष्यमें आने वाले रोगों की आशंका ही नहीं रहती ।” राजाने  
यह सब सुनकर तीसरे वैद्य की रसायन ही अपने लडके को दिलवाई ।  
साधुओंको भी ऐसी क्रिया रूपी औषध का सेवन करना  
चाहिये कि जिससे लगे हुए कर्मोंका नाश और आगामी कर्मोंका निरोध  
हो कर आत्मशुद्धि हो । अतएव साधुओंको दैवसिद्ध आदि प्रतिक्रमण  
अवश्य करना चाहिए, क्योंकि इससे पाप लगने पर उसका नाश  
होता है और पाप न भी लगा हो तो आत्मशुद्धि अवश्य होती है ।

रसायणु षीने केछ स्थणे मणी शकतु नथी आ रसायणु शारीरिक रोगोने  
जड-भूणथी नष्ट करी शके छे अने रोग न होय अने ते रसायणुने उपयोग करवाभा  
आवे तो षीने रोगोने थता अटकावे छे तथा शरीरनी कान्ति वधादे छे, अने  
तेमा अेक षीने अमत्कार अे छे के-तेनु सेवन करवाभा आवे तो भविष्यभा रोग  
थवानी शकान् रहैती नथी राज्जअे आ सर्व वात साभणी त्रीने वैद्यनी दवा  
(रसायणु) न चोताना पुत्रने अपावी

साधुअेअे पणु अेवी क्रियारूपी अेषधीनु सेवन करवु नेछअे के  
नेनाथी लागेला कर्मेनि नाश थाय अने आगामी कर्मेनि निरोध (अटकाव)  
थधने आत्मशुद्धि थाय अेटला कारणथी साधुअेअे दैवसिद्ध आदि प्रतिक्रमण  
अवश्य करवु नेछअे, कारणके पाप लागे तो पणु तेना नाश थध नय छे अने  
पाप नहि लाग्या होय तो आत्मशुद्धि अवश्य थाय छे

કશ્ચિન્નરપતિર્વિદ્યાન્ આહૂય પ્રોક્તવાન્- “યદ્ ભવદ્વિસ્તથા વિધીયતા  
 યથા મમ પ્રાણપ્રિયસ્યાદ્વિતીયસ્ય તનયસ્ય શરીરે આયત્યા રોગસ્પર્શોઽપિ ન  
 સમવેત્” ઇત્યાઋણ્ય તન્મધ્યાદેકો વૈદ્યઃ સમમ્બધાત્- “મત્પાર્શ્વે એવિધ  
 રસાયન વિચ્રતે યદ્ રોગસદ્ભાવે સેવિત સત્ તત્ક્ષણમેવ ત નાશયતિ, રોગા-  
 ભાવે તત્સેવન તુ નૂતનરોગોત્પત્તયે જાયતે” ઇતિ । દ્વિતીયેનોક્તમ્- “મદૌષધ  
 રોગસદ્ભાવે ત વિનાશયતિ, રોગાભાવે તત્સેવને તુ ન કશ્ચિદ્ગુણ દોષ વા પ્રદર્શયતિ” ।  
 તદનન્તર ત્તીયો વૈદ્ય સામોદમવાદીત્- “હે રાજન્ ! અતિપ્રશસ્યમદ્શ્રુત વ મમ  
 રસાયન, નચૈતાદ્દગ્રસાયનમન્યત્ર ક્વાપ્યુપલભ્યતે, યદિદ દેહસ્થિતાનાતઙ્કાન્ સમૂલ

ઔષધિ કી તરહ્ । કિસી એક રાજાને વૈદ્યોં કો બુલાકર કહા- “આપ  
 લોગ કોઈ એસા ઉપાય કીજિએ કિ મેરે પ્રાણોંસે મી પ્યારે લડકે કો  
 મવિપ્યમે રોગ છૂ મી ન સકે ।” રાજાકી વાત સુનકર એક વૈદ્ય બોલા-  
 “મેરે પાસ એસી દવા હૈ કિ રોગ હોને પર ઉસકા સેવન કિયા જાય તો  
 પલભરમે ઉસ રોગ કો મિટા દેતી હૈ, ઓર રોગ ન હોને પર સેવન  
 કિયા જાય તો નવીન રોગ ઉત્પન્ન કર દેતી હૈ ।” દૂસરે વૈદ્યને કહા-  
 “મેરે પાસ એસી દવા હૈ કિ રોગ હો તો ઉસે ફૌરન દવા દેતી હૈ  
 ઓર રોગ ન હો તો ન કુછ ગુણ કરતી હૈ ન અવગુણ ।” હસકે  
 વાદ તીસરે વૈદ્ય પ્રસન્નતાસે ઘોલે- “મહારાજ ? મેરી દવા અતિ પ્રશસનીય

તત્તન્મન્ય આત્મશુદ્ધિની પ્રબલતા અવશ્ય થાય છે ત્રીજા વૈદ્યની ઔષધિ પ્રમાણે  
 ઉદાહરણનો ખુલાસો એ છે કે-કેઈ એક રાજાએ વૈદ્યોને ઘોલાવીને કહ્યું કે-  
 આપ લોક કેઈ એવો ઉપાય કરો કે મારા પ્રાણથી અધિક બહાલા પુત્રને  
 ભવિષ્યમા રોગ સ્પર્શ પણ ન કરી શકે ? રાજાની આ પ્રમાણે વાત સાલગીને  
 એક વૈદ્ય ઘોલ્યો કે- “મારી પાસે એવું રસાયણ છે કે-રોગ થાય તો તે રસા  
 યણનું સેવન કરવામા આવે તો એક પલમા તે રસાયણ રોગને મટાડી શકે છે,  
 અને રોગ ન હોય છતાય સેવન કરવામા આવે તો નવો રોગ ઉત્પન્ન કરી આપે  
 છે બીજા વૈદ્યે કહ્યું કે-મારી પાસે એવી દવા છે કે રોગ હોય તો એકદમ તેને  
 દગાવી દે છે, અને રોગ ન હોય અને દવાનો ઉપયોગ કરાય તો નથી શુભ કરતી  
 કે નથી અવશુભ કરતી ત્યાર પછી ત્રીજા વૈદ્યે પ્રસન્નતાથી કહ્યું કે મહારાજ !  
 મારી પાસે જે રસાયણ છે તે ગહુજ વખાણવા યોગ્ય અને અદ્ભુત છે, આનું

यथा न खलु कोऽपि “श्रावकोऽयम्” इति ज्ञात्वा अभक्ष्यमकल्प्य वा किञ्चिदपि वस्तु समर्पयति, श्रावककुलोत्पन्नत्वेनैव तस्याऽकल्प्यवस्तुजातत्यागित्वप्रसिद्धेः, तथैवाऽत्रापि ज्ञातव्यम् ।

उत्तर-अव्रती हो या व्रती, प्रतिक्रमण सबको पूरा करना चाहिए इसमें कोई दोष नहीं आसकता, क्योंकि अव्रती प्रतिक्रमण करेगा तो प्रतिक्रमण का महत्त्व समझनेसे व्रत नहीं ग्रहण करनेका उसे पश्चात्ताप होगा तथा “व्रत ग्रहण करने की क्या जरूरत है ? इनमें क्या घरा है ?” इत्यादि मिथ्या श्रद्धा का पश्चात्ताप होगा, इससे अन्तःकरणमें निर्मलता आदि अनेक आत्मगुण प्रकट होंगे। इसलिए, तथा व्रतधारी को ग्रहण किये हुए व्रतों में लगनेवाले अतिचारोंका, तथा यदि उसने पूरे व्रत न लिये हों तो नहीं लिये हुए व्रतोंको ग्रहण करने में किये हुए प्रमाद और व्रत विषयक विपरीत श्रद्धा के विषयमें पश्चात्ताप होगा इसलिए व्रती या अव्रती सबको प्रतिक्रमण करना ही चाहिए, क्योंकि अव्रती भी श्रावक है और श्रावक होनेसे ही उन्हें प्रतिक्रमण करने का अधिकार ही जाता है ।

उत्तर—अव्रती ( व्रत धारण नहीं करना ) होय अथवा व्रती ( व्रत धारण करना ) होय ये सौंये पूरेपूरे प्रतिक्रमण करवु नैऽये, अने ये प्रभावे करवाभा होऽ प्रकारने होय आवी शकते नहीं कारण के अव्रती प्रतिक्रमण करशे तो प्रतिक्रमणनुं महत्त्व समझवाथी व्रत ग्रहण नहीं करी शकये तेने पश्चात्ताप थशे तथा ‘ व्रत ग्रहण करवानी शु जरूर छे ? तेभा शु लाल छे ? ’ वगेरे जोडी श्रद्धाने पश्चात्ताप थशे अने ते पश्चात्ताप करवाथा अत करणुभा निर्मलता आदि अनेक आत्मगुणो प्रकट थशे, ये माटे तथा व्रतधारीये ने व्रतो धारण करेला हशे ते व्रतोभा ने ने अतिआशे लागी शकें छे ते अतिआशेने तथा कदाय पूरा व्रतो ग्रहण नहीं कर्या होय तो आन सुधी व्रत-ग्रहण नहीं करवाभा कहेला ने प्रमाद तेमज व्रत विषेनी विपरीत श्रद्धा ते विषे पश्चात्ताप थशे, ओटला माटे व्रती अथवा तो अव्रतीये प्रतिक्रमण करवु नैऽये अव्रती पणु श्रावक छे अने श्रावक होवाथीज तेने प्रतिक्रमण करवाने अधिकार भणीज नथ छे

ननु पूर्वं यदभिहितम्—“साधु साध्वी श्रावक-श्राविकाणामिदं षडध्ययनात्मकमावश्यकमवश्य करणीय” मिति तदप्रतिनामप्रतिना वा ? इति जिज्ञासाया प्रत्यागितसाधारण्येन सर्वेषामेव तेपा तत्करणीयमिति सिध्यति सूत्रे प्रतिपदोक्ततया तत्तन्नामाऽनुपादानात्, परं तदन्तर्वर्ति प्रतिक्रमणार्थं चतुर्थमध्ययनं तु प्रतिसलयाचारशुद्धिमेव प्रतिपादयति ततस्तत्करणमप्रतिनामयोग्यमेव, व्रतिष्वपि भिन्नं प्रतधारिणो भवन्तीति कथं तेपामिदं सपूर्णमध्ययनं युज्यते ? इति चेद्, अत्रोच्यते—अप्रतिनो प्रतिनो वा भवन्तु नाम तथाऽपि न कोऽपि दोषलेशः समुदेतुक्ष्मः, अप्रतिना तद्ग्रहणं तच्छूद्धाविपर्यासादिविषयकं, प्रतिना गृहीतेषु व्रतेषु सलयातिचारात्मकः अगृहीतानां चावशिष्टव्रतानां तद्ग्रहणप्रमाद-तच्छूद्धाविपर्यासादिविषयकश्च पापपश्चात्ताप, करणीय एव, श्रावकत्वेनैव तेपा तत्करणाधिकारात्।

प्रश्न—आपने पहले कहा है कि—यह षडध्ययनरूप आवश्यक साधु साध्वी श्रावक और श्राविकाओंको अवश्य करना चाहिए, क्योंकि सूत्रमें ‘व्रतीको करना चाहिए या अव्रतीको?’ ऐसा विशेष कथन नहीं किया गया है, इससे मालूम होता है कि व्रती और अव्रती दोनोंको ही करना चाहिए, किन्तु इसमें चौथा अध्ययन प्रतिक्रमण का है वह व्रतोंमें लगे हुए अतिचारोकी शुद्धि के लिए किया जाता है। ऐसी अवस्थामें अव्रती जीव प्रतिक्रमण करके शुद्धि किस की करेगा ! अब रहे व्रती सो उनमें भी कोई किसी व्रतका धारी होता है, कोई किसी व्रतका, उन सब के लिए एकही प्रतिक्रमण (पूरा का पूरा) कैसे उपयुक्त हो सकता है !

प्रश्न—आपे प्रथम कछु ठे—आ छ अध्ययनरूप आवश्यक साधु साध्वी अने श्रावक-श्राविकाओंमें अवश्य करवा जेठमें, कारण के सूत्रमा प्रतधारीओंने करवा जेठमें के अव्रतीओंने ? जेवु विशेष कथन कहेवाभा आबु नथी तेथी जेठु शक्य छे के—व्रती अने अव्रती सौमें आवश्यक करवु जेठमें, परन्तु तेमा जेथु अध्ययन प्रतिक्रमणु ठे ते प्रतोभा लागेला अतिचारेनी शुद्धिने भाटे कहेलु छे, जेवी अवस्थामा अव्रती जेवोमें प्रतिक्रमण करवु व्यर्थ छे, ज्यारे तेओंने प्रतज नथी तो प्रतिक्रमणु करीने शुद्धि केनी करथे ? जेवे व्रती विषे कहेवानु रहु तो तेमा केठ कथा प्रतना धारी अने केठ कथा प्रतना धारी जेथ छे, जे सर्व भाटे जेकज प्रतिक्रमणु केवी रीते उपयोगी थलु शके ?

यथा न खलु कोऽपि “श्रावकोऽयम्” इति ज्ञात्वा अभक्ष्यमकल्प्य वा किञ्चिदपि वस्तु समर्पयति, श्रावककुलोत्पन्नत्वेनैव तस्याऽकल्प्यवस्तुजातत्यागित्वप्रसिद्धेः, तथैवाऽत्रापि ज्ञातव्यम् ।

उत्तर—अव्रती हो या व्रती, प्रतिक्रमण सबको पूरा करना चाहिए इसमें कोई दोष नहीं आसकता, क्योंकि अव्रती प्रतिक्रमण करेगा तो प्रतिक्रमण का महत्त्व समझनेसे व्रत नहीं ग्रहण करनेका उसे पश्चात्ताप होगा तथा “व्रत ग्रहण करने की क्या जरूरत है ? इनमें क्या धरा है ?” इत्यादि मिथ्या श्रद्धा का पश्चात्ताप होगा, इससे अन्तःकरणमें निर्मलता आदि अनेक आत्मगुण प्रकट होंगे। इसलिए, तथा व्रतधारी को ग्रहण किये हुए व्रतो में लगनेवाले अतिचारोंका, तथा यदि उसने पूरे व्रत न लिये हो तो नहीं लिये हुए व्रतोंको ग्रहण करने में किये हुए प्रमाद और व्रत विषयक विपरीत श्रद्धा के विषयमें पश्चात्ताप होगा इसलिए व्रती या अव्रती सबको प्रतिक्रमण करना ही चाहिए, क्योंकि अव्रती भी श्रावक है और श्रावक होनेसे ही उन्हें प्रतिक्रमण करने का अधिकार हो ही जाता है ।

उत्तर—अव्रती ( व्रत धारण नहि करनार ) होय अथवा व्रती ( व्रत धारण करनार ) होय ओ भौये पूरेपूङ्ग प्रतिक्रमण करवु जेअये, अने ओ प्रभाणु करवाभा जेअ प्रकारनेो होय आवी शकतो नथी कारणु के अव्रती प्रतिक्रमण करशे तो प्रतिक्रमणनु महत्त्व समझवाथी व्रत अहणु नथी करी शकये। तेने पश्चात्ताप थशे तथा ‘व्रत अहणु करवाणी शु जरु छे ? तेमा शु लास छे ?’ वगेरे जोटी श्रद्धानेो पश्चात्ताप थशे अने ते पश्चात्ताप करवाथा अत करणुमा निर्मलता आदि अनेक आत्मगुणो प्रगट थशे, ओ भाटे तथा व्रतधारीओ जे व्रतो धारणु करेला हशे ते व्रतोमा जे जे अतिचारो लागी शके छे ते अतिचारोनेो तथा कदाच पूरा व्रतो अहणु नहि कर्या होय तो आज सुधी व्रत-अहणु नहि करवाभा कहेलो जे प्रमाद तेमज व्रत विषेनी विपरीत श्रद्धा ते विषे पश्चात्ताप थशे, ओटला भाटे व्रती अथवा तो अव्रतीओ प्रतिक्रमणु करवु जेअये अव्रती पणु श्रावक छे अने श्रावक होवाथीज तेने प्रतिक्रमणु करवानेो अधिकार मणीज नय छे

યદ્વા—“અલ્પિંદિત સૂત્રમુચારણીય” મિત્યનુશાસનાત્, સૂત્રેઽક્ષરમાત્રસ્યાપિ  
 હીનતયાઽધિકૃતયા પ્રોચારણે “હીનાક્ષર અચક્ષર” इत्यादिना ज्ञानाऽऽज्ञातना  
 ऽऽख्यापनाच्च सूत्रमखण्डमेव पठनीयम्, अन्यथा यद् यद् व्रतं गृहीतमस्ति तत्तद्विषय  
 कपाठमेव तस्मान्निस्सार्य पठने तु हीनाक्षरात्यक्षराग्रनेकदोषाः सम्भवन्ति  
 सर्वेषां तादृशयोग्यताया असम्भवात् । सत्यामपि योग्यतायामेवकरणेऽन्येषां  
 मीर्ष्यादिसम्भवः ‘यद्दृग्मप्येव कथं न करोमी’ ति, तेन च यथोक्तसूत्रशैल्य  
 विश्वससम्भवात्, तत्तत्पाठवैपम्याच्चाऽतिशयेनातिचारसम्भवस्तस्मात् सर्वैरखण्डतयै  
 सूत्रोच्चारण करणीयमिति सिद्धम् ।

अथवा शास्त्रों में कहा गया है कि—‘अल्पिंदिता सूत्रमुच्चारणीयम्  
 अर्थात् सूत्र अल्पिंदिता बोलना चाहिए । इस कथन से यह सिद्ध  
 कि खण्डित सूत्र बोलना ठीक नहीं है । जिसने जो व्रत लिया  
 वह यदि उसी व्रतका पाठ निकाल कर पढ़े तो ‘हीनाक्षर’ ‘अत्यक्षर’  
 आदि बोलने के अनेक दोष लगेंगे । क्योंकि सबमें ऐसी योग्यता  
 नहीं होती कि वे उस-उस पाठ को शुद्ध रीति से निकाल कर प  
 सकें । जिन थोड़े से व्यक्तियों में ऐसी योग्यता है वे यदि ऐसा करें  
 तो दूसरे अज्ञान जन उनका अनुकरण करने लगेंगे । क्योंकि अधिकांश  
 लोग अनुकरणप्रिय होते हैं । इससे उपरोक्त सूत्र-पठन-शैली में  
 बहुत बाधा पहुँचेगी । अतएव श्रुतपठन के अतिचार टालने के लिए  
 आवश्यकता है कि सूत्र अल्पिंदिता पढ़ा जाय ।

अथवा शास्त्रोभा कहेલુ છે કે —

“અલ્પિંદિત સૂત્રમુચારણીયમ્” અર્થાત્ સૂત્ર અખંદિત બોલવુજ નેહ્યમે-  
 વાક્યથી એ સિદ્ધ થાય છે કે ખંદિત સૂત્ર બોલવુ તે ઠીક નથી જેણે જે વ્રત લીધું છે  
 તે ને એજ વ્રતનો પાઠ કાઢીને વાચે તો “હીનાક્ષર અત્યક્ષર” આદિ અનેક દો  
 ભાગશે, કારણ કે સર્વમા એવી યોગ્યતા નથી કે તે સર્વ પાઠનો શુદ્ધ રી  
 ઉચ્ચારણ કરી શકે જે થોડીએક વ્યક્તિઓમા એવી યોગ્યતા છે તે ને એ પ્રમા  
 કરશે તો બીજા અજ્ઞાણમા માણસો તેનું અનુકરણ કરવા લાગી જશે

કારણ કે મોટા ભાગના માણસોને અનુકરણ પ્રિય છે તે કારણથી ઉપ  
 કહેલ સૂત્ર-પઠન-શૈલીમા બહુજ હરકત આવશે એ કારણથી શ્રુત અભ્યાસ  
 અતિચાર નિવારણ માટે જરૂર છે કે સૂત્ર અખંદિત વાચવુ

अस्त्वेव दोषप्रतिविधान तथापि स्वाध्यायजन्य ज्ञानावरणीयकर्मक्षयकर महत्फल त्वव्रतिनामग्यनिवार्यमेव । उक्तञ्च उत्तराध्ययनसूत्रे—

“सज्ज्ञाएण भते ! जीवे किं जणयइ ? गोयमा ! सज्ज्ञाएण नाणावरणिज्ज कम्म खवेइ” इति । एव चाऽव्रतिनामपि तत्कर्तुं युज्यत एवेत्यलम् ।

### सामायिकम् (१)

ननु ‘सामायिकाख्यमन्ययन’-मित्यत्र कः सामायिकशब्दार्थः ?

समस्य=समभावस्य आयः=लाभो यस्मिन् तत् समाय तदेव सामायिकम्,

रही अव्रती जीवों की बात सो प्रतिक्रमण करने से उन्हें ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयरूप स्वाध्यायजन्य महत्फल होगा ही । उत्तराध्ययन में कहा भी है—“सज्ज्ञाएण भते ! जीवे किं जणयइ ? गोयमा ! सज्ज्ञाएण जीवे नाणावरणिज्जं कम्म खवेइ ।” अर्थात्—श्री गौतमस्वामीने पूछा—“प्रभो ! स्वाध्याय से जीव को क्या फल मिलना है ?” भगवान बोले—“गौतम ! स्वाध्याय से जीव ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय करता है ।” अतः प्रतिक्रमण अव्रती जीवों को भी करना ही चाहिए ।

### सामायिक (१)

प्रश्न—सामायिकाध्ययन आप कहते हैं, सो ‘सामायिक’ शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर—जिसमें सम-समताभाव का, आय-लाभ हो, उसे

इसे अव्रती एवोनी बात कहीअे तो ते प्रतिक्रमण करवाथी तेने ज्ञानावरणीय कर्मना क्षयरूप स्वाध्यायजन्य महान् फल थयेअे उत्तराध्ययन सूत्रमा कहु छे डे— “सज्ज्ञाएण भते ! जीवे किं जणयइ ? गोयमा ! सज्ज्ञाएण जीवे नाणावरणिज्जं कम्म खवेइ” अर्थात्—श्री गौतम स्वामीअे पूछथु “प्रभो ! स्वाध्यायथी एवोने शु फल भणे छे ? भगवाने कहु डे गौतम ? स्वाध्यायथी एव ज्ञानावरणीय कर्मने क्षय करे छे आ करणथी प्रतिक्रमण अव्रती एवोअे पण करु न् नोअेअे

### सामायिक

प्रश्न—सामायिकाध्ययन आप कहे छे ते ‘सामायिक’ शब्दने अर्थ शु छे ?

उत्तर—जेमा सम-समता लावने आय-लाभ होय तेने सामायिक कहे छे



यद्वा—“अखण्डित सूत्रमुच्चारणीय” मित्यनुशासनात्, सूत्रेऽक्षरमात्रस्यापि हीनतयाऽधिकृतया प्रोच्चारणे “हीनाक्षर अक्षर” इत्यादिना ज्ञानाऽऽज्ञातनाऽऽख्यापनाच्च सूत्रमखण्डमेव पठनीयम्, अन्यथा यद् यद् व्रतं गृहीतमस्ति तत्तद्विषय-कपाठमेव तस्मान्निस्सार्यं पठने तु हीनाक्षरात्यक्षराग्रनेकदोषाः सम्भवन्ति, सर्वेषां तादृशयोग्यताया असम्भवात् । सत्यामपि योग्यतायामेवकरणेऽन्येषां मीर्ष्यादिसम्भवः ‘यदहमप्येव कथं न करोमी’ ति, तेन च यथोक्तसूत्रशैल्या विभ्रवसम्भवात्, तत्तत्पाठवैपम्याच्चाऽतिशयेनातिचारसम्भवस्तस्मात् सर्वैरखण्डतयैव सूत्रोच्चारण करणीयमिति सिद्धम् ।

अथवा शास्त्रों में कहा गया है कि—‘अखण्डित सूत्रमुच्चारणीयम्’ अर्थात् सूत्र अखण्डित बोलना चाहिए । इस कथन से यह सिद्ध है कि खण्डित सूत्र बोलना ठीक नहीं है । जिसने जो व्रत लिया है वह यदि उसी व्रतका पाठ निकाल कर पढ़े तो ‘हीनाक्षर’ ‘अत्यक्षर’ आदि बोलने के अनेक दोष लगेंगे । क्योंकि सबमें ऐसी योग्यता नहीं होती कि वे उस-उस पाठ को शुद्ध रीति से निकाल कर पढ़ सकें । जिन थोड़े से व्यक्तियों में ऐसी योग्यता है वे यदि ऐसा करेंगे तो दूसरे अज्ञान जन उनका अनुकरण करने लगेंगे । क्योंकि अधिकांश लोग अनुकरणप्रिय होते हैं । इससे उपरोक्त सूत्र-पठन-शैली में बहुत बाधा पहुँचेगी । अतएव श्रुतपठन के अतिचार टालने के लिये आवश्यकता है कि सूत्र अखण्डित पढ़ा जाय ।

अथवा शास्त्रोमा कहेलु उं उं —

“अखण्डित सूत्रमुच्चारणीयम्” अर्थात् सूत्र अखण्डित बोलना चाहिये—आवाक्यथी में सिद्ध थाय उं उं अखण्डित सूत्र बोलना ते हीक नहीं जेहे जे व्रत लीधु उं ते जे जे व्रतने पाठ काढीने वाचे तो “हीनाक्षर अत्यक्षर” आदि अनेक दोष लागशे, कारण उं सर्वमा जेवी योग्यता नहीं उं ते सर्व पाठने शुद्ध रीति उच्चारण करी शकें जे थोडीजेक व्यक्तिजोमा जेवी योग्यता उं ते जे जे प्रमाण करशे तो भीज अन्याया भाषसे तेनु अनुकरण करवा लागी जशे

कारण उं मोटा लागना भाषसेने अनुकरण प्रिय उं ते कारणथी उपर कहेल सूत्र-पठन-शैलीमा गहुँ उं करकत आवशे जे कारणथी श्रुत अभ्यासना अतिचार निवारण भाटे जर उं उं सूत्र अखण्डित वाच्य

“चउवीसत्थएण भते ! जीवे किं जणयइ ? गोयमा ! चउवीसत्थएण दसणविसोहिं जणयइ ।” इति ।

दर्शनशुद्ध्या च जीव आत्मस्वरूप लभते, यथा भृङ्गगृहस्थितः कीटविशेषः स्वस्यौघदशायामपि तच्छब्ददृढसंस्कारेण भृङ्गता प्रतिपद्यते तथैव जीवोऽपि भक्त्युद्वेगेण परम्परया शुद्धस्वरूप लभतेऽतो द्वितीयमावश्यकं चतुर्विंशतिस्तवाख्यमस्ति । २ ।

चाहिये । इससे वीतराग प्रभु में जीव की भक्ति होती है । भक्ति से दर्शन की विशुद्धि होती है ।

कहा भी है “चउवीसत्थएण भते ! जीवे किं जणयइ ? चउवीसत्थएण दसणविसोहिं जणयइ ।”—अर्थात् श्री गौतम स्वामीने पूछा— भगवन् ! चतुर्विंशतिस्तव का जीव को क्या फल होता है ? भगवान् ने उत्तर दिया—दर्शनविशुद्धि होती है । दर्शनविशुद्धि से आत्मा को शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होती है । जैसे भौरे के घर में रहा हुआ कीड़ा अपनी ओघदशा में भी उसके शब्द के दृढ संस्कार से भौरा बन जाता है, उसी प्रकार जीव चतुर्विंशतिस्तव द्वारा परम्परा से अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है । अतः दूसरा चतुर्विंशतिस्तव है ।

### चतुर्विंशतिस्तव (२)

सामायिक पछी बोवीम जिनेन्द्र देवोनी स्तुति करवी ओधओ, ओ वडे वीतराग प्रभुमा एवोने लडित थाय छे, अने लडितथी दर्शननी विशुद्धि थाय छे

कहु पछु छे डे— चउवीसत्थएण भते ! जीवे किं जणयइ ? चउवीसत्थएण दसणविसोहिं जणयइ । अर्थात् श्री गौतमे पूछ्यु—भगवन् ! चतुर्विंशतिस्तव (स्तवन्) करवायी एवने शुद्ध थाय छे ? भगवाने उत्तर आप्यो डे दर्शनविशुद्धि थाय छे दर्शनविशुद्धिथी आत्माने शुद्ध स्वरूपनी प्राप्ति थाय छे नेवी रीते भमरीना धरमा रडेवो कीडा पोतानी ओघदशाभा पछु तेना शब्दना दृढ संस्कारथी भमरी णनी नय छे नेने ‘कीट लृगी न्याय कडे छे’ ते प्रभाळु एव चतुर्विंशतिस्तवथी परम्परथी पोताना शुद्ध स्वरूपने प्राप्त करे छे तेथी णीणु स्थान चतुर्विंशतिस्तवनुं डे

अर्थात् प्राणिमात्रे समभावपूर्वक सावग्रव्यापारविरतिसम्पादकम् , उक्तञ्च—  
“सामाहण भते ! जीवे किं जणयइ ? सामाहण सावज्जजोग  
विरइ जणयइ”

समभावेन चित्तस्थैर्यं भवति, तस्मिंश्च सत्येय सकलाः क्रिया यथोक्तविधिना  
सम्पद्यन्ते, तस्मात् प्रथममिदं सामायिकाध्ययनमुपन्यस्तम् ।

### चतुर्विंशतिस्तवः (२)

तदनन्तरं चतुर्विंशतिजिनस्तुतिः कर्तव्या, सा च जीवस्य परमात्मनि  
सद्भक्तिं जनयति, तथा च दर्शनशुद्धिः सजायते, उक्तञ्च—

समाय कहते हैं और उसीको सामायिक कहते हैं। अर्थात् प्राणी-  
मात्र में समता धर कर समस्त सावद्य व्यापार का त्याग करना।  
कहा भी है—“सामाहण भते ! जीवे किं जणयइ ? सामाहण  
सावज्जजोगविरइ जणयइ।” अर्थात् श्रीगौतम स्वामीने पूछा प्रभो !  
सामायिकसे जीव को क्या फल होता है ! भगवान् ने उत्तर दिया—  
‘हे गौतम ! सामायिक से सावद्य योग की निवृत्ति होती है और  
समभाव उत्पन्न होता है, समभाव से चित्त में स्थिरता आती है,  
और चित्त की स्थिरता से ही समस्त क्रियाएँ विधि के अनुसार  
सम्पादित होती हैं। अतः पहले-पहल सामायिक अध्ययन कहा गया है।

### चतुर्विंशतिस्तव (२)

सामायिक के अनन्तर चौबीस जिनेन्द्रों की स्तुति करनी

अर्थात्—प्राणी मात्रमा समताभाव राणीने समस्त सावद्य (पापभय) व्यापारने  
त्याग करवे।

उद्यु पद्यु छे डे — “सामाहण भते ! जीवे किं जणयइ ? गोयमा !  
सामाहण सावज्जजोगविरइ जणयइ”

अर्थात्—श्री गौतम गणधरे पूछ्यु डे छे प्रभो ! सामायिक करवाथी एवने  
शु इण थाय छे ? भगवाने उत्तर आभ्ये डे छे गौतम ! सामायिक करवाथी सावद्य  
योगनी निवृत्ति थता समभाव उत्पन्न थाय छे अने समभावथी सावद्य क्रियानी निवृत्ति  
थाय छे, तेथी चित्तमा स्थिरता आवे छे, अने चित्तनी स्थिरताथी समस्त क्रियाभ्ये  
विधि-अनुसार प्राप्त थाय छे अये करवथी प्रथम सामायिक अध्ययन छेडेलु छे

“चउवीसत्थएण भते ! जीवे किं जणयइ ? गोयमा ! चउवीसत्थएण दसणविसोहिं जणयइ ।” इति ।

दर्शनशुद्ध्या च जीव आत्मस्वरूप लभते, यथा भृङ्गगृहस्थितः कीटविशेषः स्वस्यौघदशायामपि तच्छब्ददृढसंस्कारेण भृङ्गता प्रतिपद्यते तथैव जीवोऽपि भक्त्युद्रेकेण परम्परया शुद्धस्वरूप लभतेऽतो द्वितीयमावश्यकं चतुर्विंशतिस्तवा-रयमस्ति । २ ।

चाहिये । इससे वीतराग प्रभु में जीव की भक्ति होती है । भक्ति से दर्शन की विशुद्धि होती है ।

कहा भी है “चउवीसत्थएण भते ! जीवे किं जणयइ ? चउवीसत्थएण दसणविसोहिं जणयइ ।”—अर्थात् श्री गौतम स्वामीने पूछा— भगवन् ! चतुर्विंशतिस्तव का जीव को क्या फल होता है ? भगवान् ने उत्तर दिया—दर्शनविशुद्धि होती है । दर्शनविशुद्धि से आत्मा को शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होती है । जैसे भौरे के घर में रहा हुआ कीड़ा अपनी ओघदशा में भी उसके शब्द के दृढ संस्कार से भौरा बन जाता है, उसी प्रकार जीव चतुर्विंशतिस्तव द्वारा परम्परा से अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करता है । अतः दूसरा चतुर्विंशतिस्तव है ।

### चतुर्विंशतिस्तव (२)

सामाधिक पछी बोवीम जिनेन्द्र देवोनी स्तुति करवी लेछ्छे, ये वडे वीतराग प्रभुमा एवोने लकित थाय छे, अने लकितथी दर्शननी विशुद्धि थाय छे

कहु पद्य छे डे — चउवीसत्थएण भते ! जीवे किं जणयइ ? चउवीस-त्थएण दसणविसोहिं जणयइ । अर्थात् श्री गौतमे पूछ्यु—भगवन् ! चतुर्विंशतिस्तव (स्तवन) करवाथी एवने शुद्ध थाय छे ? भगवाने उत्तर आभ्ये डे दर्शनविशुद्धि थाय छे दर्शनविशुद्धिथी आत्माने शुद्ध स्वरूपनी प्राप्ति थाय छे लेवी रीते लभ रीना धरमा रडेवो डीडा पोतानी ओघदशाभा पद्य तेना शण्डना दढ संस्कारथी लभरी लनी नय छे लेने ‘डीट लृगी न्याय कडे छे’ ते प्रमाणे एव चतुर्विंशतिस्तवथी परम्परथी पोताना शुद्ध स्वरूपने प्राप्त करे छे तेथी लील्य स्थान चतुर्विंशतिस्तवनु डे

### વન્દનમ્ (૩)

પાપપર્યાલોચન તુ વન્દનપૂર્વક ગુરુસમક્ષમેવ કરણીયમિતિ તૃતીય વન્દના  
સ્વમધ્યયનમુક્તમ્ । વન્દનકેન ઠિ જીવસ્યોચ્ચગોત્રાદિમ્બો જાયતે, તથોક્તમ્—

“વદણણ ભતે ! જીવે કિં જણયઈ ? વદણણ જીવે નીયાગોય સ્વેઈ  
ઉચ્ચાગોય કમ્મ નિવધઈ, સોહમ્મ ચ ણ અપ્પહિહયઆણાફલ નિવત્તેઈ દાહિણભાવ  
ચ ણ જણયઈ” ઇતિ વન્દનાસ્વ તૃતીયમધ્યયનમુક્તમ્ ।

### વન્દના (૩)

પાપ કી આલોચના વન્દનાપૂર્વક ગુરુ કે સામને હી કરની  
ચાહિય, યહ વાત વતાને કે લિયે તીસરા વન્દના નામક અધ્યયન  
હૈ । વન્દના સે ઉચ્ચ ગોત્ર કા વન્ધ તથા અન્યાન્ય ફલ હોતે હૈ ।  
કહા મી હૈ—“વદણણ ભતે ! જીવે કિં જણયઈ ? વદણણ જીવે  
નીયાગોય સ્વેઈ ઉચ્ચાગોય કમ્મ નિવધઈ, સોહમ્મ ચ ણ અપ્પહિહય  
આણાફલ નિવત્તેઈ, દાહિણભાવ ચ ણ જણયઈ” અર્થાત્ ગૌતમસ્વામી  
ને પૂછા—પ્રભો ! વન્દના સે જીવ કો વ્યા ફલ હોતા હૈ ? ભગવાન  
ને ઉત્તર દિયા—વન્દના સે નીચ ગોત્ર કા ક્ષય હોતા હૈ, ઉચ્ચ ગોત્ર  
કા વન્ધ હોતા હૈ, સૌભાગ્ય ઓર અપ્રતિહત આજ્ઞા ફલ કો પ્રાપ્ત  
કરતા હૈ, તથા દાક્ષિણ્ય (અનુકૂલતા) કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । યહ તીસરા  
અધ્યયન હુઆ ।

### વદના (૩)

પાપની આલોચના વદનાપૂર્વક ગુરુની સમીપેજ કરવી જોઈએ, એ વાત  
બતાવવા માટે ત્રીજી વદના નામક અધ્યયન છે વદના વડે કરીને ઉચ્ચ  
ગોત્રનો બધ તથા અન્યાન્ય ફળ પ્રાપ્ત થાય છે કહ્યું છે કે—

વદણણ ભતે ! જીવે કિં જણયઈ ? વદણણ જીવે નીયાગોય સ્વેઈ ઉચ્ચાગોય  
કમ્મ નિવન્ધઈ, સોહમ્મ ચ ણ અપ્પહિહય આણાફલ નિવત્તેઈ, દાહિણભાવ ચ ણ જણયઈ”  
અર્થાત્ શ્રી ગૌતમ સ્વામીએ પૂછ્યું—હે પ્રભો ! વદના કરવાથી છવને શુ ફલ થાય છે ?  
ભગવાને ઉત્તર આપ્યો—ગૌતમ ? વદના કરવાથી નીચ ગોત્રનો ક્ષય થાય છે, અને ઉચ્ચ  
ગોત્રનો બધ થાય છે, સૌભાગ્ય અને અપ્રતિહત આજ્ઞા ફલને પ્રાપ્ત કરે છે તથા  
દાક્ષિણ્ય (અનુકૂલતા) ની પ્રાપ્તિ થાય છે આ ત્રીજી અધ્યયન થયું

## प्रतिक्रमणम् (४)

वन्दनानन्तर पापप्रायश्चित्त कर्त्तव्यतयोल्लिखित, दिवसे रात्रौ वा यथा कथञ्चित् कोऽप्यतिचारः सलग्नस्तत्प्रकाशन-तदनुतापन तन्निन्दादिविधानेन प्रतिक्रमण विधेय भव्यैः, अनेन व्रतगतच्छिद्राच्छादन जायते, तेनाऽऽगन्तुकाऽऽस्रव-जलमात्मनि न प्रविशतीत्यादि बहुविध फल जीरो लभते, तथा चोक्तम्—

“पडिक्रमणेण भते ! जीवे किं जणयइ ? पडिक्रमणेण वयच्छिदाइ  
पुण जीवे निरुद्धासवे असवलचरित्ते अट्टसु पवयणमायासु

(४)

रने का विधान किया गया है।  
भी अतिचार लगा हो  
उसकी निन्दा आदि  
प्रतिक्रमण करने से  
वाला आस्रव  
पाता। इत्यादि  
रते ! जीवे किं  
नेउहे पुण जीवे  
वउत्ते अपुहत्ते

अथवा रात्रीमे  
नेने पश्चात्ताप  
तिष्ठमणु करवाथी  
आस्रवइथी जल  
म थाय छे,

३६

अपुहत्ते

पिहेइ,  
वउत्ते

### વન્દનમ્ (૩)

પાપપર્યાલોચન તુ વન્દનપૂર્વક ગુરુસમક્ષમેવ કરણીયમિતિ તૃતીય વન્દના-  
રુચ્યમધ્યયનમુક્તમ્ । વન્દનકેન हि जीवस्योच्चगोत्रादिवन्धो जायते, तथोक्तम्—

“વદ્વણણ મત્તે ! જીવે કિં જણયઈ ? વદ્વણણ જીવે નીયાગોય સ્વેઈ  
ઉચ્ચાગોય કમ્મ નિવધઈ, સોહમ્મ ચ ણ અપ્પહિહ્યઆણાફલ નિવત્તેઈ દાહિણભાવ  
ચ ણ જણયઈ” ઇતિ વન્દનારુચ્ય તૃતીયમધ્યયનમુક્તમ્ ।

### વન્દના (૩)

પાપ કી આલોચના વન્દનાપૂર્વક ગુરુ કે સામને હી કરની  
ચાહિએ, યહ વાત વતાને કે લિયે તીસરા વન્દના નામક અધ્યયન  
હૈ । વન્દના સે ઉચ્ચ ગોત્ર કા વન્ધ તથા અન્યાન્ય ફલ હોતે હૈં ।  
કહા મી હૈ—“વદ્વણણ મત્તે ! જીવે કિં જણયઈ ? વદ્વણણ જીવે  
નીયાગોય સ્વેઈ ઉચ્ચાગોય કમ્મ નિવધઈ, સોહમ્મ ચ ણ અપ્પહિહ્ય  
આણાફલ નિવત્તેઈ, દાહિણભાવ ચ ણ જણયઈ” અર્થાત્ ગૌતમસ્વામી  
ને પૂછા-પ્રમો ! વન્દના સે જીવ કો ક્યા ફલ હોતા હૈ ? મગવાન  
ને ઉત્તર દિયા-વન્દના સે નીચ ગોત્ર કા ક્ષય હોતા હૈ, ઉચ્ચ ગોત્ર  
કા વન્ધ હોતા હૈ, સૌભાગ્ય ઓર અપ્રતિહત આજ્ઞા ફલ કો પ્રાપ્ત  
કરતા હૈ, તથા દાક્ષિણ્ય (અનુકૂલતા) કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । યહ તીસરા  
અધ્યયન હુઆ ।

### વદના (૩)

પાપની આલોચના વદનાપૂર્વક ગુરુની સમીપેજ કરવી જોઈએ, એ વાત  
ખતાવવા માટે ત્રીજી વદના નામક અધ્યયન છે વદના વડે કરીને ઉચ્ચ  
ગોત્રનો બંધ તથા અન્યાન્ય ફળ પ્રાપ્ત થાય છે કહ્યું છે કે—

વદ્વણણ મત્તે ! જીવે કિં જણયઈ ? વદ્વણણ જીવે નીયાગોય સ્વેઈ ઉચ્ચાગોય  
કમ્મ નિવન્ધઈ, સોહમ્મ ચ ણ અપ્પહિહ્ય આણાફલ નિવત્તેઈ, દાહિણભાવ ચ ણ જણયઈ”  
અર્થાત્ શ્રી ગૌતમ સ્વામીએ પૂછ્યું-હે પ્રમો ? વદના કરવાથી જીવને શુ ફલ થાય છે ?  
મગવાને ઉત્તર આપ્યો-ગૌતમ ? વદના કરવાથી નીચ ગોત્રનો ક્ષય થાય છે, અને ઉચ્ચ  
ગોત્રનો બંધ થાય છે, સૌભાગ્ય અને અપ્રતિહત આજ્ઞા ફલને પ્રાપ્ત કરે છે તથા  
દાક્ષિણ્ય (અનુકૂલતા) ની પ્રાપ્તિ થાય છે આ ત્રીજી અધ્યયન થયું

प्रतिक्रमणम् (४)

वन्दनानन्तर पापप्रायश्चित्त कर्त्तव्यतयोल्लिखित, दिवसे रात्रौ वा यथा कथञ्चित् कोऽप्यतिचारः सलग्नस्तत्प्रकाशन-तदनुतापन तन्निन्दादिविधानेन प्रतिक्रमण विधेय भव्यैः, अनेन व्रतगतच्छिद्राच्छादन जायते, तेनाऽऽगन्तुकाऽऽस्रव-जलमात्मनि न प्रविशतीत्यादि बहुविध फल जीवो लभते, तथा चोक्तम्—

“पडिक्रमणेण भते ! जीवे किं जणयड ? पडिक्रमणेण वयच्छिड्दाइ पिहेइ, पिहियवयच्छिडे पुण जीवे निरुद्धासवे असवलचरित्ते अट्टसु पवयणमायासु

प्रतिक्रमण (४)

वन्दना के बाद प्रायश्चित्त करने का विधान किया गया है। दिन मे या रात मे किसी भी प्रकार जो कोई भी अतिचार लगा हो उसे प्रकट करके, उसका पश्चात्ताप करके तथा उसकी निन्दा आदि करके भव्य जीवों को प्रतिक्रमण करना चाहिये। प्रतिक्रमण करने से व्रतों में लगे हुए दोष मिट जाते हैं। आगे आने वाला आस्रव रूपी जल आत्मा रूपी नौका मे प्रवेश नहीं कर पाता। इत्यादि अनेक लाभ होते हैं। कहा भी है—“पडिक्रमणेण भते ! जीवे किं जणयड ? पडिक्रमणेण वयच्छिड्दाइ पिहेइ, पिहियवयच्छिडे पुण जीवे निरुद्धासवे, असवलचरित्ते अट्टसु पवयणमायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिण विहरइ।”

प्रतिक्रमण (४)

वन्दना पछी प्रायश्चित्त करवानुं विधान करेले छे दिवसमा अथवा रात्रीमे केथ पणु प्रकारने जे अतिचार लाग्ये होय ते प्रकट करीने तेने पश्चात्ताप करीने तथा तेनी निन्दा करीने लव्य लुव्येमे प्रतिक्रमणु करवु जेथमे प्रतिक्रमणु करवाधी प्रतोभा लागेला दोषानुं निवारणु थाय छे, आगज आववावाणा आभ्वइपी जल आत्माइपी नौकाभा प्रवेश करवा पामता नथी इत्यादि अनेक लाभ थाय छे, कहु छे के -

पडिक्रमणेण भते ! जीवे किं जणयड ? पडिक्रमणेण वयच्छिड्दाइ पिहेइ, पिहियवयच्छिडे पुण जीवे निरुद्धासवे असवलचरित्ते, अट्टसु पवयणमायासु उवउत्ते अपुहत्ते सुप्पणिहिण विहरइ।



उवउत्ते अपुहत्ते सुपणिहिण विहरड" ।

तस्मादिदं प्रतिक्रमणारय चतुर्थमावश्यकमभिहितम् ।

कायोत्सर्गः (५)

पूर्वक्रियया मानसिकी वाचिकी च शुद्धिः सञ्जाता, तदनन्तरं कायिकी शुद्धिरावश्यकतीति कायमर्थान्कायममत्वं त्यक्त्वाऽऽत्मन्येव रमणं जायते तेन

हे भदन्त ! प्रतिक्रमण करने से किम फल की प्राप्ति होती है ? हे गौतम !—प्रतिक्रमण, व्रतों के छिद्रों को रोकता है, व्रतों के छिद्र रुकजाने से जीव आस्रवरहित होता है, आस्रव रुक जाने से चारित्र्य निर्मल होता है, चारित्र्य निर्मल होने से अष्टः प्रवचनमाता में उपयोगवान् (समिति गुप्ति के आराधन में सावधान) होता है, जिससे समय में तत्परता होती है, और मन, वचन, काया के योग असद्मार्ग से रुक जाते हैं, अतएव वह समाधिभावयुक्त हो कर विचरता है ।

यह प्रतिक्रमण नामक चौथा अध्ययन हुआ ।

कायोत्सर्ग (५)

पहले की क्रियाओं से मानसिक और वाचिक शुद्धि हुई ।

हे भदन्त ! प्रतिक्रमण करवायी क्या इणनी प्राप्त थाय छे ?

हे गौतम ? प्रतिक्रमण प्रतीना छिद्रोने शक्ये छे प्रतीना छिद्रो शक्यं न्वाधी एव आस्रवरहित थाय छे आस्रव शक्यं न्वाधी चारित्र्य निर्मल थाय छे अने चारित्र्य निर्मल होवाधी आठ प्रवचनमा उपयोगवान् (समिति गुप्तिनी आराधनामा सावधान) गने छे, तेही समयमा तत्परता वधे छे अने मन वचन कायाना योग असत्य मार्गधी शक्यं न्य छे जेही ते समाधिभाववाणो थं विशे छे

आ प्रतिक्रमण नामनुं शैथु अध्ययन थयु

कायोत्सर्ग

प्रथमनी क्रियाओ वडे मानसिक अने वाचिक शुद्धि थं तेना पछी कायिक शुद्धि करवी न्इरनी छे काया धर्मना आधार तथा निमित्त त्थारे गनी शक्ये

टि. १—पाच समिति और तीन गुप्ति मिलकर आठ प्रवचनमाता है ।

चातीतप्रत्युत्पन्नप्रायश्चित्तविशुद्ध्यादिभिः प्राणी सुखी भवति, उक्तञ्चात्र—

“काउसग्गेण भते ! जीवे किं जणयइ ? काउसग्गेण तीयपडुप्पन्न-  
पायच्छित्त विसोहेइ, विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे निब्बुयहियए ओहरियभरुव्व-  
भारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहसुहेण विहरइ” ।

इत्यतोऽस्य पञ्चमाऽयनस्य ‘कायोत्सर्ग’ इति नाम ।

इसके पश्चात् कायिक शुद्धि करना आवश्यक है । काय धर्म का आधार और निमित्त तब ही बन सकता है जब उसमें आत्मीयता-ममता न रहे । शरीर में ममता न होने को ही कायोत्सर्ग कहते हैं । यह कायोत्सर्ग धर्मसाधक होने से कायिकशुद्धिरूप है । अतएव कायिकशुद्धि करने के लिये कायोत्सर्ग नामक पाँचवाँ अऽयन कहा गया है । इससे अतीत अनागत तथा वर्तमान—कालीन प्रायश्चित्त की विशुद्धि आदि होती है और इससे आत्मा सुखी होती है ।

कहा भी है—“काउस्सग्गेण भते ! जीवे किं जणयइ ? काउसग्गेण तीयपडुप्पन्नपायच्छित्त विसोहेइ, विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे निब्बुयहियए ओहरियभरुव्वभारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहसुहेण विहरइ ।”

हे भगवन् ! काउस्सग ( कायोत्सर्ग ) करने से किस फलकी प्राप्ति होती है ! हे गौतम ! कायोत्सर्ग से अतीत अनागत और

छे डे—अन्तरे कथाभा आत्मीयता—ममता न रहे, अटले डे शरीरभा ममता-रहितपणु तेनेअ कायेत्सर्ग कडे छे ते कायेत्सर्ग धर्मसाधक होवाथी ते कायिक शुद्धिरूप छे अटला माटे कायिक शुद्धि करवा अर्थे कायेत्सर्ग नामनु पाथसु अऽयन कळु छे तेथी अतीत अनागत अने वर्तमान कालनी प्रायश्चित्तविशुद्धि वगेरे थाय छे, अने तेथी आत्मा सुभी थाय छे

अथु पणु छे डे — “काउस्सग्गेण भते ! जीवे किं जणयइ ? काउसग्गेण तीयपडुप्पन्नपायच्छित्त विसोहेइ, विसुद्धपायच्छित्ते य जीवे निब्बुयहियए ओहरियभरुव्वभारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहसुहेण विहरइ ।”

हे भगवान् ! काउस्सग ( कायोत्सर्ग ) करवाथी क्या कृपणी प्राप्ति थाय छे ? हे गौतम ! कायोत्सर्गथी अतीत अनागत अने वर्तमानभा लागेला अतिआशेनी

### પ્રત્યાખ્યાનમ્ (૬)

પ્રત્યાખ્યાન નામ ઇચ્છાનિરોધઃ । સર્વાઃ ક્રિયાઃ સ્વીકૃતાશ્ચેતર્હિ ઇચ્છા-  
નિરોધોઽપ્યવશ્ય કરણીયઃ । સુવર્ણાદિભૂષણાનામુજ્જ્વલીકરણક્રિયેવ પ્રત્યાખ્યાન  
મિદ વિશિષ્ટાત્મશક્તેરાપ્કરણાય પ્રભવતિ, અતો યથાશક્તિ પ્રત્યાખ્યાન  
કરણીયમેવ, આસ્રવદ્વારનિરોધાદિવિશિષ્ટફલપ્રતિપાદકમ્, ઉક્તશ્ચ—

પચ્ચક્ષાણેણ ભતે ! જીવે કિં જળયઈ ? પચ્ચક્ષાણેણ આસવદારાઈ  
નિરુભઈ, પચ્ચક્ષાણેણ ઇચ્છાનિરોદ્ જળયઈ, ઇચ્છાનિરોદ્ગણ ણ જીવે સન્વદ્વેષ્ટ

વર્તમાન મે લગે હુણ અતિચારોં કી શુદ્ધિ હોતી હૈ ઓર હૃદય  
વિશુદ્ધ હોતા હૈ, હૃદય વિશુદ્ધ હોને સે આત્મા કર્મભાર સે હલકા  
હોકર પ્રશસ્તધ્યાનયુક્ત વનતા હૈ, ઓર સમાધિભાવમે વિચરણ  
કરતા હૈ ।

### પ્રત્યાખ્યાન (૬)

પ્રત્યાખ્યાન ઇચ્છા કે નિરોધ કો કહતે હૈં । જવ પૂર્વોક્ત સર્બી  
ક્રિયાઈ સ્વીકાર કરલીં તો ઇચ્છા કા ભી નિરોધ અવશ્ય કરના ચાહિણ ।  
જૈસે સફાઈ કરને સે સોનેકે આભૂષણ કી ઉજ્જ્વલતા બઢતી હૈ, વૈસે  
હી પ્રત્યાખ્યાન સે આત્મા મેં વિશિષ્ટ શક્તિ કા પ્રાદુર્ભાવ હોતા હૈ ।  
અતણવ આશ્રવ દ્વાર કે નિરોધ આદિ વિશિષ્ટ ફલકો દેને વાલા  
પ્રત્યાખ્યાન કરના હી ચાહિણ । કહા ભી હૈ—“પચ્ચક્ષાણેણ ભતે !  
જીવે કિં જળયઈ ? પચ્ચક્ષાણેણ આસવદારાઈ નિરુભઈ, પચ્ચક્ષાણેણ  
શુદ્ધિ થાય છે અને હૃદય વિશુદ્ધ ણને છે હૃદય વિશુદ્ધ થવાથી આત્મા કર્મભારથી  
હલકો થઈ પ્રશસ્તધ્યાની ણને છે અને સમાધિભાવમા વિચરણ કરે છે

### પ્રત્યાખ્યાન (૬)

ધરિયાને નિરોધ કરવો તેને પ્રત્યાખ્યાન કહે છે, જ્યારે પૂર્વ કહેલી  
તમામ ક્રિયાઓને સ્વીકાર કરી લીધો તો પછી ધરિયાને નિરોધ પણ અવશ્ય  
કરવો નોંધએ જેવી રીતે સફાઈ કરવાથી સોનાના આભૂષણોની ઉજ્જ્વલતા વધે છે, તેવીજ  
રીતે પ્રત્યાખ્યાનથી આત્મામા વિશિષ્ટ શક્તિ ઉત્પન્ન થાય છે એટલા માટે આસ્રવ-  
દ્વારના નિરોધ આદિ વિશિષ્ટ ફલને આપવાવાળા પ્રત્યાખ્યાન વ્રતને કરવું જ  
નોંધએ કહ્યું છે કે — “પચ્ચક્ષાણેણ ભતે ! જીવે કિં જળયઈ ? પચ્ચક્ષાણેણ

त्रिणीयतण्हे सीडभूए विहरइ ।”

इति पष्ठमावश्यक प्रत्याख्यानारुख्य समुपन्यस्तम् ।

एतद्धि पडध्ययनात्मरुमावश्यक (प्रतिक्रमण) सर्वेषामुभयकाल करणीय-  
मेव । तत्रापि साधूनामनिवार्यतया कर्त्तव्यमेतत् । यथाऽतिस्वच्छवस्त्रेषु कालि-  
मापातशङ्का, अनिना च लुण्टाकाद्यातङ्को विशेषरूपेण जज्जन्यते तथैव, शुद्धचारित्र-

इच्छानिरोह जणयइ, इच्छानिरोहगए ण जीवे सच्चदब्बेसु चिणीयतण्हे  
सीडभूए विहरइ ।”

हे भदन्त ! पचक्खाण (प्रत्याख्यान) करने से किस फल की प्राप्ति होती है । हे गौतम ! प्रत्याख्यान करने से आत्मवद्धार रुक जाते हैं और इच्छा का निरोध होता है, इच्छा के निरोध से आहारादि में तृष्णा रुक जाती है, और तृष्णावरोध से आत्मा बाह्य तथा आभ्यन्तरिक सन्ताप से रहित होती है ।

यह प्रत्याख्यान नामक छद्दा आवश्यक हुआ ।

ये उहाँ आवश्यक यद्यपि सभी को उभय काल करना चाहिए, तो भी साधुओं के लिये उभय काल करना अनिवार्य है । जैसे अत्यन्त स्वच्छ कपड़े पर धब्बा लगने की आशंका रहती है या धनवानों को लुटेरों का डर विशेष रूप से रहता है, उसी प्रकार

आसवदारारु निरुभइ, पचक्खाणेण इच्छानिरोह जणयइ, इच्छानिरोहगए ण जीवे सच्चदब्बेसु चिणीयतण्हे सीडभूए विहरइ ।”

हे भदन्त ! पचक्खाण (प्रत्याख्यान) करवाथी क्या इलनी प्राप्ति थाय छे ? हे गौतम ! प्रत्याख्यान करवाथी आसवदारु रोकथ नय छे अने इच्छानिरोध थाय छे, इच्छानिरोधथी आहारादिमा तृष्णा रोकथ नय छे तेमज तृष्णावरोधथी आत्मा बाह्य आभ्यन्तरिक सन्तापथी रहित थथ नय छे

आ प्रत्याख्यान नामनुं छट्ठु आवश्यक पूर्ण थयु

आ छ आवश्यक ने डे सर्वने उलय काण करवा लेधजे, तो पद्य साधुजो माटे तो अने काण करवु अनिवार्य छे नेम डे स्वच्छ कपडा उपर अथ लागवानी शक रहे छे अथवा तो धनवाने लुटेराने लय विशेष रहे छे तेवी रीते शुद्ध-चारित्र धारी ज्ञान आदि शुद्धी विभूषित साधुजोने पापने लय गहुन रहे छे ने माटे

### પ્રત્યાખ્યાનમ્ (૬)

પ્રત્યાખ્યાન નામ ઇચ્છાનિરોધઃ । સર્વાઃ ક્રિયાઃ સ્વીકૃતાશ્ચેત્તર્કિં ઇચ્છા-  
નિરોધોઽપ્યવશ્ય કરણીયઃ । સુવર્ણાદિભૂષણાનામુજ્જ્વલીકરણક્રિયેવ પ્રત્યાખ્યાન-  
મિદ વિશિષ્ટાત્મશક્તેરાવિષ્કરણાય પ્રભવતિ, અતો યથાશક્તિ પ્રત્યાખ્યાન  
કરણીયમેવ, આસ્રવદ્વારનિરોધાદિવિશિષ્ટફલપ્રતિપાદકમ્, ઉક્તશ્ચ—

પચ્ચક્ષાણેણ ભત્તે ! જીવે કિં જળયઈ ? પચ્ચક્ષાણેણ આસ્રવદારાઈ  
નિરુભઈ, પચ્ચક્ષાણેણ ઇચ્છાનિરોહ જળયઈ, ઇચ્છાનિરોહગણ જીવે સવ્વદવ્વેષ્ટ

વર્તમાન મે લગે હુણ અતિચારોં કી શુદ્ધિ હોતી હૈ ઓર હૃદય  
વિશુદ્ધ હોતા હૈ, હૃદય વિશુદ્ધ હોને સે આત્મા કર્મભાર સે હલકા  
હોકર પ્રશસ્તધ્યાનયુક્ત વનતા હૈ, ઓર સમાધિભાવમેં વિચરણ  
કરતા હૈ ।

### પ્રત્યાખ્યાન (૬)

પ્રત્યાખ્યાન ઇચ્છા કે નિરોધ કો કહતે હૈં । જબ પૂર્વોક્ત સમી  
ક્ષિયાઈ સ્વીકાર કરલી તો ઇચ્છા કા મી નિરોધ અવશ્ય કરના ચાહિણ ।  
જૈસે સફાઈ કરને સે સોનેકે આભૂષણ કી ઉજ્જ્વલતા વઢતી હૈ, વૈસે  
હી પ્રત્યાખ્યાન સે આત્મા મે વિશિષ્ટ શક્તિ કા પ્રાદુર્ભાવ હોતા હૈ ।  
અતણવ આશ્રવ દ્વાર કે નિરોધ આદિ વિશિષ્ટ ફલકો દેને વાલા  
પ્રત્યાખ્યાન કરના હી ચાહિણ । કહા મી હૈ—“પચ્ચક્ષાણેણ ભત્તે !  
જીવે કિં જળયઈ ? પચ્ચક્ષાણેણ આસ્રવદારાઈ નિરુભઈ, પચ્ચક્ષાણેણ

શુદ્ધિ થાય છે અને હૃદય વિશુદ્ધ બને છે હૃદય વિશુદ્ધ થવાથી આત્મા કર્મભારથી  
હલવે થઈ પ્રશસ્તધ્યાની બને છે અને સમાધિભાવમા વિચરણ કરે છે

### પ્રત્યાખ્યાન (૬)

ધ્ચિન્નાનો નિરોધ કરવો તેને પ્રત્યાખ્યાન કહે છે, જ્યારે પૂર્વ કહેલી  
તમામ ક્રિયાઓનો સ્વીકાર કરી લીધો તો પછી ધ્ચિન્નાનો નિરોધ પણ અવશ્ય  
કરવો ભોધએ જેવી રીતે સફાઈ કરવાથી સોનાના આભૂષણોની ઉજ્જ્વલતા વધે છે, તેવીજ  
રીતે પ્રત્યાખ્યાનથી આત્મામા વિશિષ્ટ શક્તિ ઉત્પન્ન થાય છે એટલા માટે આસ્રવ-  
દ્વારના નિરોધ આદિ વિશિષ્ટ ફલને આપવાવાળા પ્રત્યાખ્યાન પ્રતને કરવું જ  
ભોધએ કહ્યું છે કે — “પચ્ચક્ષાણેણ ભત્તે ! જીવે કિં જળયઈ ? પચ્ચક્ષાણેણ

तदानीं धर्ममन्तरेण नान्यः कोऽपि तस्य शरणीभूय तदार्त्तं दूरयितुं प्रभवति । तस्मिन् क्षणे स पूर्वकृतातिचारादीनि स्मार स्मार बहुधा पश्चात्ताप विधत्ते ।

अङ्कुरतामापादितः कालान्तरेण दृढमूलश्च पापवृक्षः पश्चाद्दुरुत्पाटनीयो भवति, अतः पूर्वं वीजमेव न वपनीयमिति प्रथमा बुद्धिमत्ता ।

यदि कथञ्चिद्गुणमपि भवेत् तर्हि तत्क्षण एव तन्मूलोन्मूलनाय प्रयत्न-नीयमिति द्वितीया ।

एवमपि नो चेत्तर्हि पश्चात्तापादिना तच्छैथिल्य त्ववश्य विधेयम्, येन प्रवृद्धोऽपि दुःखफलकः पापवृक्षो निस्सारत्वेन कालान्तरे दुःखलक्षणकटुफलं जन-

हुआ समस्त ससार में शरण खोजता है तब धर्म के सिवा और कोई भी शरण नहीं होता, न कोई उसकी चिल्लाहट मिटा सकता है । उस समय वह पहले किए हुए अतिचार आदि का स्मरण कर-करके अत्यन्त पश्चात्ताप करता है ।

अकुरित हुआ तथा कुछ कालमें दृढ जड़वाला होकर वह पापवृक्ष फिर बड़े कष्टसे उखाड़ने योग्य होता है, इसलिए वीज न होना पहली श्रेणी की बुद्धिमत्ता है । यदि असावधानी से बोया गया हो तो तत्काल समूल उखाड़ने के लिए प्रयत्न करना दूसरे दर्जे की बुद्धिमत्ता है । यदि यह भी न हो सके तो पश्चात्ताप आदि करके उसे शिथिल तो अवश्य कर देना चाहिए, जिससे कि दुःखरूप फल देनेवाला पापवृक्ष निस्सार होजाने के कारण

रभा शरणने शोधे छे त्यारे धर्म विना णीणु डोर्ध शरणु नथी थतु तेभन तेना लयने धर्म विना डोर्ध मटाडी शकतु नथी ते समये तेणु प्रथम करेला अतिचारे आदिनु मभरणु करी करीने अत्यन्त पश्चात्ताप करे छे

अकुरित थयेल तथा थोडा समयभा दृढमूलवाणु णनीने ते पापवृक्ष इरीने मोटा कष्टथी उणडी शडे तेपु थर्ध लय छे अटला भाटे प्रथम णीनरूपे थवा न देवु ते पडेदी श्रेणीनी बुद्धिमत्ता छे जे असावधानताथी णीन वावी देवाभा आण्यु डोय तो तत्काल मूलसहित उणोडी नाथवानो यत्न करेवो ते णीणु श्रेणीनी बुद्धिमत्ता छे जे प्रभाणु न णनी शके तो पश्चात्ताप आदि करीने ते पापने शिथिल तो अवश्य करवु न जेधजे के जेथी करीने दु णरूप दल आपनावाणु पापवृक्ष

ધારિણા જ્ઞાનાદિગુણગણશાલિના સાધૂના સાતિશય પાપમય જાયતે, અતસ્તદ્ગુણો પાયમ્ભૂતે કર્મણિ તેપામપ્રધાનદાનમાવશ્યકમિત્યત્ર તેપા પ્રતિક્રમણવિધિરુપદર્શિતઃ, અતોઽસ્ય 'સાધુપ્રતિક્રમણ,-સા-આવશ્યક' ચેતિ નામપ્રેય જાતમિતિ ॥

અસ્ય હેતુમર્થે ચ સમ્યગ્વગમ્ય સ્વસ્વપાપાના સક્ષયાય શૈથિલ્યાપાદનાય ચ સર્વૈરેવ ભવ્યભાવનશીલૈર્ભવ્યૈઃ પ્રયતનીય, યતો વીતરાગપ્રણીતતયા સર્વપ્રાણિના તત્પાલન શ્વોવસીયસાધાયકમિતિ ।

इह खलु निखिले जगतीतले जीवो यदाऽधिकाऽधिकाऽऽधिव्याधि वाधाविक्रान्तःकरणः 'त्रायस्व त्रायस्वे' -ति समाक्रोशन् शरण गवेपयति,

શુદ્ધ-ચારિત્રધારી, જ્ઞાન આદિ ગુણોં સે વિભૂષિત સાધુઓં કો પાપોં કા બહુત ડર રહતા હૈ । અતઃ ઉન્હેં રોકને કી ક્રિયા મેં સાધુઓં કો સાવધાન રહના બહુત આવશ્યક હૈ । પ્રસ્તુત સૂત્ર મેં સાધુઓં કે પ્રતિક્રમણ કી વિધિ બતાઈ ગઈ હૈ, ઇસલિએ ઇસકા નામ 'સાધુ-પ્રતિક્રમણ' ઓર 'સાધુ-આવશ્યક' હૈ ।

આવશ્યક કા હેતુ ઓર અર્થ સમ્યક્ રીતિસે જાનકર અપને-અપને પાપોં કા ક્ષય કરને અથવા શિથિલ કરને કે લિએ સર્મી ભવ્યપ્રાણિયોં કો પ્રયતન કરના ચાહિએ, ક્યોં કિ યહ પ્રતિક્રમણ વીતરાગ પ્રણીત હોને સે સબ પ્રાણિયોં કો ઇસ પ્રતિક્રમણ કરને રુપ વીતરાગ કી આજ્ઞા કા પાલન કરના કલ્યાણ કા સાધક હૈ ।

જીવ આધિવ્યાધિ આદિ વાધાઓં સે અત્યન્ત વ્યાકુલ હૃદય હોકર જબ "બચાઓ, બચાઓ, રક્ષા કરો" ઇસ પ્રકાર ચિલ્લાતા

પાપોને શેકવાની કિયામા સાધુઓએ સાવધાન રહેવુ ઘણુ જ જરૂરી છે પ્રસ્તુત સૂત્રમા સાધુઓના પ્રતિક્રમણની વિધિ બતાવી છે એટલા માટે તેનું નામ "સાધુ પ્રતિક્રમણ" અને "સાધુ-આવશ્યક" છે

આવશ્યકનો હેતુ અને અર્થ સમ્યક્ રીતે બાણી કરીને પોતાના પાપનો ક્ષય કરવા અથવા શિથિલ કરવા માટે સૌ ભવ્ય પ્રાણીઓએ પ્રયતન કરવો જોઈએ, કારણ કે આ પ્રતિક્રમણ વીતરાગપ્રણીત હોવાથી સર્વ પ્રાણીઓએ આ પ્રતિક્રમણ રૂપ વીતરાગની આજ્ઞાનું પાલન કરવુ તે કલ્યાણનું સાધક છે

જીવ આધિ-વ્યાધિ આદિ બધી પીડાઓથી અત્યન્ત-વ્યાકુલ-હૃદય થઇને જ્યારે "બચાવો! બચાવો! રક્ષા કરો!" એ પ્રભાણે ભય પામતો થકો સમસ્ત સસા

तदानीं धर्ममन्तरेण नान्यः कोऽपि तस्य शरणीभूय तदाच्च दूरयितुं प्रभवति । तस्मिंश्च क्षणे स पूर्वकृतातिचारादीनि स्मार स्मार बहुधा पश्चात्ताप विधत्ते ।

अङ्कुरतामापादितः कालान्तरेण दृढमूलश्च पापवृक्षः पश्चाद्दुस्तपाटनीयो भवति, अतः पूर्वं बीजमेव न वपनीयमिति प्रथमा बुद्धिमत्ता ।

यदि कथञ्चिदुत्तममपि भवेत् तर्हि तत्क्षण एव तन्मूलोन्मूलनाय प्रयत्नीयमिति द्वितीया ।

एवमपि नो चेत्तर्हि पश्चात्तापादिना तच्छैथिल्य त्ववश्य विधेयम्, येन प्रवृद्धोऽपि दुःखफलकः पापवृक्षो निस्सारत्वेन कालान्तरे दुःखलक्षणकटुफले जन-

हुआ समस्त ससार में शरण खोजता है तब धर्म के सिवा और कोई भी शरण नहीं होता, न कोई उसकी चिल्लाहट मिटा सकता है । उस समय वह पहले किए हुए अतिचार आदि का स्मरण कर-करके अत्यन्त पश्चात्ताप करता है ।

अकुरित हुआ तथा कुछ कालमें दृढ जडवाला होकर वह पापवृक्ष फिर बड़े कष्टसे उखाड़ने योग्य होता है, इसलिए बीज न होना पहली श्रेणी की बुद्धिमत्ता है । यदि असावधानी से बोया गया हो तो तत्काल समूल उखाड़ने के लिए प्रयत्न करना दूसरे दर्जे की बुद्धिमत्ता है । यदि यह भी न हो सके तो पश्चात्ताप आदि करके उसे शिथिल तो अवश्य कर देना चाहिए, जिससे कि दुःखरूप फल देनेवाला पापवृक्ष निस्सार होजाने के कारण

रमा शन्युने शोधे छे त्यारे धर्म विना भीणु कौर्छ शरणु नथी यतु तेभञ्ज तेना लयने धर्म विना कौर्छ भटाडी शकतु नथी ते समये तेणु प्रथम ऽरेला अतियारे आदिनु स्मरणु करी करीने अत्यन्त पश्चात्ताप करे छे

अङ्कुरित थयेल तथा थोडा समयमा दृढमूलवाणु गनीने ते पापवृक्ष करीने मोटा कष्टथी उभडी शडे तेषु थर्छ नय छे ज्येदला भाटे प्रथम भीञ्जपे थवा न देवु ते पडेली श्रेणीनी बुद्धिमत्ता छे जे असावधानताथी भीञ्ज वावी देवामा आव्यु होय तो तत्काल मूलसहित उभेडी नाभवानो यत्न करयो ते भीणु श्रेणीनी बुद्धिमत्ता छे जे प्रभाणु न गनी राके तो पश्चात्ताप आदि करीने ते पापने शिथिल तो अवश्य करवु न् जेथजे के जेथी करीने दु भञ्ज इल आपवावाणु पापवृक्ष



यितु न प्रभवेत् प्रत्युत समूल शीर्येत । एव चाऽऽत्मनो निस्सहायाऽवस्था  
माभूदित्येतदर्थं प्रतिक्रमणमेव शरणीकुर्वाणैः क्रियाऽऽचरणपरायणान्त'करणैरवश्य  
भवित्तव्य भव्यैः, येन ऐहिकाऽऽमुष्मिकसुखान्यनुभवितुमर्हताऽधिगम्येत ।

प्रतिक्रमणाऽपरपर्यायमिदमावश्यकमवश्यमनुष्ठेय निजव्रतमखण्डीकर्तुंका  
मेन साधुना । अनुष्ठानं चेदमितिकर्तव्यतापरिज्ञानमन्तरेणाऽसम्भवि,  
तच्च (इतिकर्तव्यतापरिज्ञानं) गूढार्थकानां सूत्राणां सरलव्याख्ययैव सम्भवति  
सुकुमारमतीनामिदानीन्तनजनानाम् ।

दुःखरूपी कडुवा फल देने में समर्थ न हो सके, थल्लिक शिथिल  
होता जाय ।

आत्मा निस्सहाय न हो इसलिए प्रतिक्रमण की शरण में  
जानेवाले भव्यो को अन्तःकरणसे क्रिया करने में परायण अवश्य  
होना चाहिए, जिस से इस लोक और परलोक-सम्बन्धी सुखों की  
प्राप्ति हो सके ।

यह प्रतिक्रमण, दूसरा नाम आवश्यक अपने व्रतों को  
अखण्डित रखने वाले साधु को अवश्य करना चाहिए । यह  
अनुष्ठान कर्तव्यज्ञान के बिना नहीं हो सकता । आजकलके अल्प-  
बुद्धिवालों को कर्तव्यज्ञान तब ही हो सकता है, जब गूढ अर्थवाले  
सूत्रों की सरल व्याख्या कर दी जाय ।

निस्सार थर्ध नय, नेथी इ ष इपी कडवा इण आपवा समर्थ थर्ध शके नहि अने  
शिथिल थर्ध नय

आत्मा नि सहाय न थर्ध नय अटला भाटे प्रतिक्रमणुना शरणुमा नवा  
वाणा लव्य लुवेअे क्रिया करवाभा परायणु अत करणुवाणा अवश्य थवु नोथुअे,  
नेथी आ लोक अने परलोक सष धी सुषेानी प्राप्ति थर्ध शके

आ प्रतर्किक्रमणु के नेनु नाम आवश्यक छे तेने पीताना व्रत इष गणुने  
अपडित व्रत धारणु करवावाणा साधुअेअे अवश्य करवु नोथुअे

आ अनुष्ठानं कर्तव्यज्ञानं विना थर्ध शकतु नथी आणकालना अल्पबुद्धि  
वाणाअेअे कर्तव्यज्ञानं त्यारेण थाय छे के न्यारे गूढ अर्थवाणा सूत्रेानी सरल  
व्याख्या करी आपवाभा आवे

यद्यप्यस्य प्रतिक्रमणस्य भूयस्यो व्याख्या लोचनगोचरतामश्नन्ति, किन्तु सूक्ष्मेक्षिकया निसमीक्षितास्तु ताम् नैकाऽपि सरला मन्दमतिबोधजनिका च व्याख्या समुपलभ्यते, अतः कोमलबुद्धीनामनायासेन झटित्यर्थाऽवबोधसंजननाय मया सूत्राऽऽशयाऽनुसन्धानपुरस्सर 'मुनितोपणी'—नामवेया टीकेय विरचिता । एतस्या प्रायो विषयास्तु प्रमाणीभूतेभ्यः शास्त्रेभ्यः सगृहीता एव, नह्यसगृह्य विषयान् अत्रत्वे प्राचीनाना महर्षीणामभिप्राय प्रकटीकर्तुं पटिष्ठः कोऽपि भूमिष्ठ उप-

यद्यपि प्रतिक्रमण की बहुतेरी टीकाएँ (व्याख्याएँ) दृष्टि-गोचर होती हैं, किन्तु उनमें मन्दमतिवाले भव्यों को बोध करानेवाली सरल व्याख्या कोई नहीं है, इसलिए कोमल बुद्धिवालों को विना विशेष परिश्रम के शीघ्र अर्थ-ज्ञान कराने के लिए मैंने सूत्रों का आशय ध्यानमें रखकर इस आवश्यक सूत्र की मुनितोपणी नामकी टीका बनाई है, इस टीकामें विषयों का सग्रह प्रामाणिक शास्त्रों से किया गया है, क्योंकि विना विषयों के सग्रह किये प्राचीन महर्षियोंका अभिप्राय प्रकट करने में आजकलके विद्वान्

जो के प्रतिक्रमणी धर्णीय टीकाओं (व्याख्याओं) जेवाभा आवे छे परन्तु ते सर्व टीकाओंभा मरु मतिवाजा लव्य छेवोने गोध थय थके तेवी सरल व्याख्या केछ जेवाभा आवती नथी जेवो मनभा विचार करीने केमलबुद्धिवाजाओंने विना विशेष परिश्रमे शीघ्र अर्थज्ञान करववा मे सूत्रेना आशयने ध्यानभा राभीने आ आवश्यक सूत्रनी मुनितोपणी नामनी टीका बनावी छे

आ टीकाभा विषयेने सग्रह प्रामाणिक शास्त्रोभाथी करवाभा आव्ये छे, कारण के विषयेने सग्रह कर्था विना प्राचीन महर्षियोंना अभिप्राये

યિતુ ન પ્રભવેત્ પ્રત્યુત સમૂલ શીર્યેત । એવ ચાઽઽત્મનો નિસ્સહાયાઽવસ્યા  
માભૂદિત્યેતદર્થે પ્રતિક્રમણમેત્ર શરણીકુર્વાણૈઃ ત્રિયાઽઽચરણપરાયણાન્ત ઋણૈરવશ્ય  
ભવિત્તવ્ય ભવ્યૈઃ, યેન એહિકાઽઽપ્તિમ્કમુલ્લાન્યનુભવિતુમર્હતાઽધિગમ્યેત ।

પ્રતિક્રમણાઽપરપર્યાયમિદમાઽશ્યકમવશ્યમનુષ્ઠેય નિજત્રતમસ્વઠ્ઠીકર્તુકા  
મેન સાધુના । અનુષ્ઠાન ચેદમિતિર્કર્ત્તવ્યતાપરિજ્ઞાનમન્તરેણાઽસમ્ભવિ,  
તત્ત્વ (ઇતિકર્ત્તવ્યતાપરિજ્ઞાન) ગૂઢાર્થકાના સૂત્રાણા સરલવ્યાખ્યયૈવ સમ્ભવતિ  
સુકુમારમતીનામિદાનીન્તનજનાનામ્ ।

દુઃસ્વરૂપી કઢુવા ફલ દેને મેં સમર્થ ન હો સકે, ઘલ્કિ શિથિલ  
હોતા જાય ।

આત્મા નિસ્સહાય ન હો ઇસલિએ પ્રતિક્રમણ કી શરણ મેં  
જાનેવાલે ભવ્યો કો અન્તઃકરણસે ક્રિયા કરને મેં પરાયણ અવશ્ય  
હોના ઇચ્છિએ, જિસ સે ઇસ લોક ઓર પરલોક-સમ્બન્ધી સુખોં કી  
પ્રાપ્તિ હો સકે ।

યહ પ્રતિક્રમણ, દૂસરા નામ આવશ્યક અપને વ્રતોં કો  
અસ્વઠ્ઠિત રક્ષને વાલે સાધુ કો અવશ્ય કરના ઇચ્છિએ । યહ  
અનુષ્ઠાન કર્ત્તવ્યજ્ઞાન કે વિના નહીં હો સકતા । આજકલકે અલ્પ  
બુદ્ધિવાલોં કો કર્ત્તવ્યજ્ઞાન તત્ત્વ હી હો સકતા હૈ, જબ ગૂઢ અર્થવાલે  
સૂત્રોં કી સરલ વ્યાખ્યા કર દી જાય ।

નિસ્સાર ઘર્થ જાય, જેથી હ ષ ડ્વી કડવા ડ્વી આપવા સમર્થ ઘર્થ શકે નહિ અને  
શિથિલ ઘર્થ જાય

આત્મા નિ સહાય ન ઘર્થ જાય એટલા માટે પ્રતિક્રમણના શરણુમા જવા  
વાળા ભવ્ય જીવોએ ક્રિયા કરવામા પરાયણુ અત કરણુવાળા અવશ્ય થવુ જોઇએ,  
જેથી આ લોક અને પરલોક સખ ધી સુખોની પ્રાપ્તિ ઘર્થ શકે

આ પ્રતિક્રમણુ કે જેનુ નામ આવશ્યક છે તેને પોતાના વ્રત ડ્વી ગણીને  
અખ ડિત વ્રત ધારણુ કરવાવાળા સાધુઓએ અવશ્ય કરવુ જોઇએ

આ અનુષ્ઠાન કર્ત્તવ્યજ્ઞાન વિના ઘર્થ શકતુ નથી આજકાલના અતપબુદ્ધિ  
વાળાઓને કર્ત્તવ્યજ્ઞાન ત્યારેજ થાય છે કે જ્યારે ગૂઢ અર્થવાળા સૂત્રોની સરલ  
વ્યાખ્યા કરી આપવામા આવે

॥ वीतरागायनमः ॥



॥ अथाऽऽवश्यकसूत्र सटीकम् ॥

सिरिवद्धमाणदेव, जिणणाह कम्मपडलमलरहियं  
भीमभवगहणविब्भम,—भयत्तमणजीवमग्गणेयार ॥१॥  
लद्धिमत महातेय, जिणसासणदीवयं ।  
चउण्णाणसमावन्न नच्चा गणहर वरं ॥२॥  
सदत्थसारसजुत्त, घासीलालो मुणी वर्ड ।  
वित्तिमावस्सयस्साह, कुणेमि मुणितोसणिं ॥३॥

कर्ममलसे रहित, ससाररूप भयङ्कर अटवी में परिभ्रमण के भय से व्याकुल भव्य जीवों को मोक्षमार्ग पर लाने वाले जिनेश्वर श्री चर्द्धमान स्वामीको ॥ १ ॥ तथा—जिनशासनके प्रदीपक, चार ज्ञान के धारक, 'आमोसहि' आदि लब्धियों<sup>१</sup> को धारण करने वाले, महा तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ श्री गणवर भगवान को नमस्कार करके ॥ २ ॥ मैं घासीलाल मुनि आवश्यक सूत्र की शब्दार्थसारगर्भित मुनि-तोपणी नामक टीका को करता हूँ ॥३॥

कर्ममल विनाश, ससाररूपी लयकर अटवीमा परिभ्रमण करवाना लयथी व्याकुल भव्य लोकोने मोक्षमार्गमा लाववावाणा जिनेश्वर श्रीचर्द्धमान स्वामीने (१) तथा जिनशासनना प्रदीपक, चार ज्ञानि धारण करवावाणा, "आमोसहि" वगेरे लब्धिओने धारण करवावाणा, भडान तेजस्वी सर्वश्रेष्ठ श्री गणुधर भगवानने नमस्कार करीने (२) हु घासीलाल मुनि आवश्यकसूत्रनी शब्दार्थसारगर्भित मुनितोपणी नामनी टीका यथाशुद्धिथी करे हु (३)

<sup>१</sup> लब्धि स्पष्ट करने से ही सब प्रकार की व्याधियों का दूर हो जाना, इत्यादि प्रकार की आत्मशक्ति को लब्धि कहते हैं ।

<sup>२</sup> लब्धि=पुर्ण करवा मात्रथीन दरेक प्रकारना श्रेयो हर थर्ध लय, आवा प्रकारनी आत्मशक्तिने लब्धि कहे छे

लभ्यते, तथापि यथाशक्ति पर्यालोच्य जैनागमसिद्धान्तानुसारेण कतिपये वि  
अत्र स्पष्टीकृत्य प्रदर्शिताः सन्ति ।

समर्थ नहीं हो सकते ! तो भी कितनेक विषय अपनी शक्ति  
अनुसार विचार कर जैनसिद्धान्तानुसार स्पष्ट कर के दिखत  
गये हैं ।

प्रगट करवाना आश्चर्यजनक विद्वानो समर्थ थई शकता नथी तो पक्ष के  
विषय पोतानी शक्ति-अनुसार विचार करी जैनसिद्धांतानुसार स्पष्ट क  
पताव्या छे

‘सुतो’=कृत्वा<sup>१</sup> । अथवा ‘तिसुतो’ इति पाठमाश्रित्य ‘त्रि कृत्वः’<sup>२</sup> इति सस्कृतम्, तथा च सति आदक्षिणप्रदक्षिणमिति क्रियाविशेषणतया समर्थनीयम् । ‘वदामि’= वन्दे=वाचा स्तौमि रत्नाधिक, ‘नमसामि’-नमस्यामि=प्रणमामि-कायेन नम्रीभवा-मीत्यर्थः । “सकारेमि”-सत्करोमि अभ्युत्थानादिना, “सम्माणेमि”-सम्मान-यामि वस्त्रभक्तादिना, कीदृशम् रत्नाधिकमित्याह-“कृष्ण”-कल्याणम्-कल्यो=मोक्षः कर्मजनितसकलोपाधिरहितत्वात् तम् आ=समन्तान्नयति=प्रापयतीति, अथवा कल्येन=ज्ञानदर्शनचारित्र्यलक्षणेनाऽऽरोग्येण आणयति=जीवयति-ससारमोहजाल-नलज्वालामालावलीढान् मृदान् प्राणिनः प्रशमयतीति वा कल्याणम् । “मगल”

पूर्वकं स्तुति करता हूँ, तीन बार उठ-बैठ पांच अंग झुका कर नमस्कार करता हूँ, अभ्युत्थान आदि से सत्कार करता हूँ, वस्त्र भक्त (अन्न) आदि से सम्मान करता हूँ, क्योंकि आप कल्याणस्वरूप हैं, अर्थात् कल्य=मोक्ष को देने वाले, अथवा कल्य=ज्ञानदर्शन चारित्र्यरूप आरोग्य से जन्मजरामरणसताप-सतप्त भव्य जीवों को अपने सदुपदेश-द्वारा शान्ति देने वाले हैं, और मङ्गलस्वरूप हैं, क्योंकि ससार के

नभावीने नमस्कार ३३ छु अभ्युत्थान विगेरेथी सत्कार ३३ छु वस्त्र भक्त (अन्न) विगेरेथी सम्मान ३३ छु कारण्डे आप कल्याणस्वरूप छे, अर्थात् कल्य=मोक्ष आपवा वाणा अगर कल्य=ज्ञानदर्शन चारित्र्यरूप आरोग्यथी, जन्म, जरा, मृत्युना दुःखथी तपेला भव्य जिवोने पोताना सहृदयदेशद्वारा शान्ति आपवावाणा छे अने मगल

१ कृत्वे’-त्यस्य ‘सुतो’ इत्यर्पत्वात् । न च ‘तिसुतो’ इत्यस्य ‘त्रि कृत्व’ इति सस्कृतमिति वाच्यम्, सुजन्ताकृत्वसुचो दुर्लभत्वात् । ‘तिसुतो’ इति पाठेऽपि द्वित्रिचतुर्भ्यः सुचा कृत्वसुचो बाधात्, उत्थितायाः प्रदक्षिणमित्यस्य सकर्मकक्रियाऽऽकाङ्क्षाया दुष्परिहरत्वाच्च । २- आर्पत्वाकृत्वसुच एव समाधानात् ।

२-‘चित्ती सज्ञाने’ इति धातोः ‘स्त्रिया क्तिन्’ (पा० ३। ३। ९४) इति भावे क्तिन् ।

३-वर्णहृदादित्वाद्वाह्यणादेराकृतिगणत्वाद्वा स्वार्थे ‘प्यञ्’ ‘यस्येति च’ (पा० ६। ४। १४८) इतीकारलोपः, अत्र पक्षे ‘चेइय’ इत्यर्पत्वात् । यद्वा ‘चिञ् चयने’ इत्यस्मादेव प्राग्बत् क्तिनादीं चैत्यमिति । धातूनामनेकार्थत्वाच्चोक्तोऽर्थः । दृष्ट हि परिचिनोतीत्यादीं चिञो ज्ञानार्थकत्वम् । उपसर्गाणां धो-तन्त्वमभिमेत्य धातूनामेव तच्चदर्थप्रतिपादनत्वसिद्धान्तात् ।

इह पठभ्ययनात्मक श्रमणावश्यकं प्रारिप्तं, यस्यादौ पञ्चनमस्कारात्मकं मङ्गल वक्ष्यमाणेभ्यो हेतुभ्यो नियमेन कर्तव्यमिति तदर्थं गुरोराज्ञा ग्रहीतव्या, सा च वन्दनापूर्विकेति प्रथमं गुरुवन्दनोच्यते—

॥ मूलम् ॥

तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण वदामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासामि मत्थएण वंदामि ॥ सू० १ ॥

॥ उाया ॥

त्रि. कृत्वा आदक्षिणप्रदक्षिणं वन्दे नमस्यामि सत्करोमि सम्मानयामि कल्याण मङ्गल दैवत चैत्य पर्युपासे मस्तकेन वन्दे ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

ति=त्रिः, त्रीन्<sup>१</sup> वारानित्यर्थः । आयाहिणपयाहिण=अञ्जलिपुट वद्ध्वा त वद्धाञ्जलिपुट दक्षिणकर्णमूलत आरभ्य ललाटप्रदेशेन वामकर्णान्तिकेन चक्राकार त्रि. परिभ्राम्य ललाटदेशे स्थापनरूपम् आदक्षिणप्रदक्षिणम् ।

यहा पर छह अध्ययनवाला श्रमणावश्यक सूत्र प्रारम्भ करना है, जिसके आदि में आगे कहेजाने वाले हेतुओं से पञ्चनमस्काररूप मङ्गल करना जरूरी है, अतएव उसके लिए गुरु महाराजकी आज्ञा लेनी चाहिए, वह आज्ञा वन्दनापूर्वक ही ली जाती है, इसलिए पहले गुरुवन्दना कहते हैं—

‘तिक्खुत्तो’ इत्यादि । हे गुरुमहाराज ! मैं अञ्जलिपुटको तीन वार दाहिने हाथ की ओर से प्रारम्भ करके फिर दाहिने हाथ की ओर तक घुमाकर अपने ललाट प्रदेश पर रखता हुआ प्रदक्षिणा

अर्द्धि छ अध्ययनवाणा श्रमणावश्यक सूत्र प्रारम्भ करतु छे जेनी शङ्कातमा आगण कडेवाभा आवनार डेतुओथी पथ-नमस्काररूप मगल करतु जरतु छे, ते भाटे शुद्ध मङ्गलराजनी आज्ञा लेवी जेधजे ते आज्ञा वन्दनापूर्वक न देवाय छे, ते भाटे प्रथम शुद्धवन्दना कडे छे

‘तिक्खुत्तो इत्यादि’ हे शुद्ध मङ्गलराज ! अञ्जलिपुटने (जे हाथजेडीने) त्रय वधत नमणा हाथ तरङ्गी आर लीने इरी नमणा हाथ सुधी इस्वीने पोताना ललाटप्रदेश उपर राषीने प्रदक्षिणापूर्वक स्तुति कर्इ छे त्रय वधत उठी जेसी अने पाथ अग

१—‘द्वित्रिचतुर्भ्यः सूत्र’ इति क्रियाऽभ्यासवृत्तिगणने सूत्र ।

इमा पट्टिका त्रिरुच्यर्थं त्रिर्वन्दना च विधाय गुरोः सकाशात्सविनय पडा-  
वश्यकऽऽद्या याचेत, तदनु—“इच्छामि ण भते ! तुभेहिं अब्भणुत्ताए समाणे  
देवसिय पडिकमण ठाएमि, देवसियनाणदसणचरित्तवअड्यारचितणट्ट करेमि  
काउस्सग्ग” इति पट्टिका पठित्वा नमस्कारमन्त्रोच्चारणपूर्वकमावश्यक समारम्भ-  
णीयमिति नमस्कारमन्त्रमाह—

॥ मूलम् ॥

णमो अरिहताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो  
उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूण ॥ सू० २ ॥

॥ छाया ॥

नमः अरिहद्भ्यः, नमः सिद्धेभ्यः, नमः आचार्येभ्यः, नम उपाध्यायेभ्यः,  
नमो लोके सर्वसाधुभ्यः ॥ सू० २ ॥

इस (तिक्खुत्तो के) पाठ को तीन बार पढ़कर एव तीन बार  
ऊठ बैठ कर पचाग-नमन-पूर्वक वन्दना करके विनयपूर्वक गुरुसे  
आवश्यक-प्रतिक्रमण करने की आज्ञा मागे। बादमें ‘इच्छामि ण भते’  
का पाठ पढ़कर पहले नमस्कार-मन्त्रोच्चारणपूर्वक आवश्यक का  
आरम्भ करना चाहिए, अतएव पहले नमस्कार मन्त्र कहते हैं—

‘नमो अरिहताण’ बार घनघातिक कर्मों का नाश करके  
अनन्त केवलज्ञान केवलदर्शन को प्राप्त करने वाले, अरिहन्त को  
नमस्कार हो। यहाँ नमः शब्द का अर्थ नमस्कार होता है, वह दो  
प्रकार का है—(१) द्रव्यनमस्कार और (२) भावनमस्कार। उनमें

आ तिकखुत्ता ना पाठने त्रयु वपत्त बाणीने तथा त्रयु वपत्त उठी वेसीने पचाग  
नमनपूर्वक वदना करीने विनयपूर्वक शुद्धेव पासेधी आवश्यक-प्रतिक्रमण करवानी  
आज्ञा भागवी पछी ‘इच्छामि ण भते’ ने पाठ बाणीने प्रथम नमस्कार मन्त्रोच्चारण  
पूर्वक आवश्यकने आरंभ करवे जेधजे, जे भाटे प्रथम नमस्कार मन्त्र कडे छे  
‘नमो अरिहताण’ बार घन घातिक कर्मोंने नाश करीने अनन्त केवलज्ञान केवलदर्शनने  
प्राप्त करवावाणा अरिहन्त भगवानने नमस्कार थाय अहिं नमः शब्दने अर्थ

१ महीभावावर्थाकात् नमृधातीरीणादिकेऽसिप्रत्यये ‘स्वरादिनिपातमव्ययम्’  
(१-१-३७) इति पाणिनिवचनेनाव्ययत्वम्।



म=भयसम्बन्धि बन्धन, तन्नियन्धन दुःखं या गालयति=नाशयतीति, यद्वा मद्गयते=प्राप्यते स्वर्गो मोक्षो याऽनेनेति मद्गः=धर्मः, त ल्हाति=पृच्छातीति मद्गलः=श्रुतचारित्रधर्मधारकस्तम् । “देवय” देयतैव देयत धर्मदेवमित्यर्थः । ‘चेइय’ चैत्यम्, चेतन चित्तिः=सम्यग्ज्ञानम्, तदेव चैत्यम् । चैत्यशब्दस्य ज्ञानार्थकत्वशुक्त बोधप्राप्तये कुन्दकुन्दस्वामिनाऽपि—

बुद्ध ज बोहतो, अप्पाणं वेइयाइ अण्ण च ।

पचमहवयसुद्धं, णाणमय जाण चेदिहरं” ॥ इति ।

राजप्रश्रीयसूत्रे मलयगिरिभिरपि—“कल्लाण मगल देवय चेइय”

इत्यस्य व्याख्याया—‘कल्याण’—कल्याणकारित्वात्, मगल—दुरितोपशमनकारित्वात्, देवत=देव त्रैलोक्याधिपतित्वात्, चैत्य—सुप्रशस्तमनोहेतुत्वा’—दिति । भागवते तु चैत्यशब्देन न केवल ज्ञानमेव, अपितु पूर्णज्ञानवानात्मा गृहीतोऽस्ति, तथाहि—“अहङ्कारस्ततो रुद्रश्चित्तचैत्यस्ततोऽभवत्” (तृतीय स्कन्धे. पञ्चशतितमे अ’याये श्लो. ६१) इति, विराड् रूपस्य ब्रह्मणो हृदयात् अहङ्कार उत्पन्नस्तस्माद्बुद्धस्तथा चित्तमुत्पन्न, चित्ताच्च चैत्य इत्यर्थः । चैत्यः=क्षेत्रज्ञः, इति तट्टीकाया श्रीधरस्वामी । ‘क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः’ इत्यमरः । एवमेवात्रैव स्कन्धेऽध्याये च (श्लो० ७०) प्रोक्तम्—“चित्तेन हृदय चैत्य. क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा । विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत” इति तदस्यास्तीति चैत्यस्तः सम्यग्ज्ञानवन्तमित्यर्थः । चैत्यशब्दो नानार्थकः स चेहाऽपप्रश्चितोऽपि प्रसङ्गादन्यत्र निरूपयिष्यते । ‘पञ्जुवासामि’ पर्युपासे=सविधि सेवे । “मत्थएण वदामि’ मस्तकेन=मस्तक नमयित्वेत्यर्थः, वन्दे=अभिवादये ॥ सू० १ ॥

दुःखोंका अन्त करनेवाले हैं, अथवा मद्ग-मोक्ष प्राप्ति के साधनभूत श्रुतचारितरूप धर्म को धारण करने वाले, एव धर्मदेवस्वरूप है, और चैत्य अर्थात् ज्ञानवान् हैं, अतएव मनवचन काय से मैं आपकी सेवा तथा शिर झुकाकर वन्दना करता हूँ ॥ सू० १ ॥

स्वर्ष्ये छे, कार्ष्ण्ये के ससारना हु भोने अत लाववावाणा छे । अथवा मग्ग=मोक्ष-प्राप्तिना साधनभूत श्रुत-चारित्र्य धर्मने धारण्य करवावाणा अट्ठे के धर्मदेव स्वर्ष्ये छे, अने चैत्य अर्थात् ज्ञानवाणा छे । अट्ठे भन वचन अने कायाथी हु आपनी सेवा अने मस्तक नभावीने वन्दना कर छु (सू० १)

१ अर्श आदित्वादच् ।

प्रातिहार्यरूपायाः<sup>१</sup> सेवायाः शाश्वतिकनिरतिशयसुखस्य चार्हति=योग्या भवन्तीत्य-  
हन्तस्तेभ्यः<sup>२</sup> । अथवा 'अरहद्भ्यः<sup>३</sup>' इतिच्छाया, रागादिनिदानभूतप्रकृष्टविषय-  
सम्पन्नेऽपि वीतरागत्वादिरूप भाव न रहन्ति=न त्यजन्तीत्यरहन्तस्तेभ्य इत्यर्थः ।  
'अरुहताण' इति पाठे 'अरोहद्भ्यः'<sup>४</sup> इतिच्छाया, इह पक्षे प्रक्षीणस्त्रिलक्ष्मणीजतया  
रुदाऽप्यनुत्पद्यमानेभ्य इत्यर्थः, यदुक्तमौपपातिकमूत्रे—“वीयाण\* अग्निदृढाण,  
पुणरवि अकुरुप्पत्ती ण भवइ, एवामेव सिद्धाण कम्मवीए दइढे पुणरवि जम्मुप्पत्ती  
न भवइ” इति । भगवन्तोऽहन्तोऽपि हि क्षित्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायपदक

भव्यो को निर्भय मार्ग बताकर शिवपुरी में पहुचाने वाले, अथवा  
भव्यजनों से किये जानेवाले गुणवर्णन अभिवादन आदि के तथा  
इन्द्रादिक देवताओं से किये हुए अष्टमहाप्रातिहार्यों से युक्त और  
शाश्वतिक निरतिशय सुख को पानेवाले, या (अरहद्भ्यः)=रागादिके  
कारणभूत प्रकृष्ट विषयों का सबन्ध रहते हुए भी वीतरागत्वरूप  
अपने स्वभाव को कभी नहीं छोडने वाले, अथवा (अरोहद्भ्यः)  
कर्मबीज के दग्ध होजाने के कारण फिर से कभी जन्म नहीं लेने  
वाले अरिहन्तों को नमस्कार हो ।

युक्त अने शाश्वतिक निरतिशय सुखने भेगववावाणा, अथवा (अरहद्भ्यः) रागादिना  
कारणभूत उत्कृष्ट विषयानो सगन्ध रहता थका यहु वीतरागत्व रूप पोताना स्वइपने  
क्यारेय नही छोडनार, अथवा अरोहद्भ्यः कर्मबीज णणीववाना कारणे इरीथी डेअ  
वपत जन्म नहि लेवावाणा अरिहंतोने नमस्कार हो।

अरिहंत भगवान स्वय पटकायनी रक्षा करता करता थीजने 'मा हण मा हण'  
आवा प्रकारने उपदेश देवावाणा तथा अथ कर भवपर पराथी उत्पन्न थयेल

१ अशोक्वृक्ष\* सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासन च ।

मामण्डल दुन्दुभिरातपत्र, सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥१॥

२ योग्यतार्थकादकर्मकात् 'अर्ह' धातोर्लटः शत्रादेश\* ।

३ त्यागार्थक-'रह'-धातोः शत्रन्तस्य नञा समास\* ।

४- प्रादुर्भावार्थकस्य रहधातो शत्रन्तस्य नञा समास आर्पत्वाद्गुणा-  
भावश्च । व्याख्यानान्तराणि सभवन्त्यपि क्लिष्टत्वादनुपयुक्तत्वाच्चोपेक्षितानि ।

\* छाया-वीजानामग्निदग्धाना पुनरप्यङ्कुरोत्पत्तिर्न भवति, एवमेव  
सिद्धाना कर्मबीजे दग्ने पुनरपि जन्मोत्पत्तिर्न भवति ।

## ॥ टीका ॥

‘णमो अरिहताण, नमोऽरिहद्भ्यः=घनघातिकर्मचतुष्टयहन्तभ्यः । अत्र ‘नमः’ शब्दस्य द्रव्य (हस्तपादादिपञ्चाङ्ग)-भाय (मानादि)-सङ्कोचार्थं कृनिपातरूपत्वान्मानादित्यागपुरस्सरशुद्धमनःसन्निवेशपूर्वकः पञ्चाङ्गनमस्कारोऽस्त्वित्यर्थः । नमस्कार्यानाह-‘अरिहताण’ इत्यादिना ।

‘अरिहद्भ्यः’ अरीन्=ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीयाऽन्तरायरूपाणि घातिकर्माणि घ्नन्ति=नाशयन्तीत्यरिहन्तः तेभ्यः । ‘अरहताण’ इति पाठे ‘अर्हद्भ्यः’ इतिच्छाया, अत्र पक्षे विकृतभयपरम्पराऽटवीपर्यटनपरिश्रान्तिनितान्तकान्त प्राणिजात निर्भयमार्गप्रदर्शनेन तदिष्टा निर्वृति (मोक्ष)-पुरीं नेतु, यद्वा भव्यजनकर्तृकगुणवर्णनाऽभिवादानादे सुरनिकरसम्पादिताऽशोकाद्यष्टक-

द्रव्यनमस्कार दो हाथ दो घुटने एक शिर, इन पाच अगों को झुकाना । भावनमस्कार-मान आदि का परित्याग करना ।

ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय, इन घातिकर्मरूप शस्त्रों का नाश करने वाले, अथवा (अर्हद्भ्यः) भयङ्कर ससाररूप अटवी में बार-बार भ्रमण करने से व्याकुल

नमस्कार थाय छे ते के प्रकारना छे-(१) द्रव्य नमस्कार अने (२) लाव नमस्कार अनेमा द्रव्यनमस्कार के हाथ के धुटी अके साथ आ पाथे अगोने झुकाववा लावनमस्कार, मान विगेरेने परित्याग करवे।

ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय अने अन्तराय आ घातिक कर्मरूप शस्त्रकेने नाश करवावाणा, अथवा ‘अर्हद्भ्यः’ लयकर ससाररूप अटवीमा बार बार भ्रमण करवाथी व्याकुल अव्येने निर्भयमार्ग गतावीने शिवपुरीमा पहोआउवावाणा, अथवा अव्य लोकैथी कराअेला शुशुवर्षन अभिवादन विगेरेना तथा ध्वादिह देवताअेअे करेला अष्टमहाप्रातिहार्यैथी

१ निरुक्तोक्तरीत्या सत्यादिशब्दवत्पृषोदरादित्वात्साधना बोध्या । उक्तञ्च-“वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च, द्वौ चापरी वर्णविकारनाशौ । धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविध निरुक्तम्” इति, “यावतामेव धातूना लिङ्ग रुढिगत भवेत् । अर्थश्चाप्यभिप्रेयस्य, - स्तावद्भिर्गुणविग्रह ” इति च ।

प्रातिहार्यरूपायाः<sup>१</sup> सेनायाः शाश्वतिकनिरतिशयसुखस्य चार्हति=योग्या भवन्तीत्य-  
र्हन्तस्तेभ्यः<sup>२</sup> । अथवा 'अरहद्भ्यः'<sup>३</sup> इतिच्छाया, रागादिनिदानभूतप्रकृष्टविषय-  
सम्बन्धेऽपि वीतरागत्वादिरूप भाव न रहन्ति=न त्यजन्तीत्यरहन्तस्तेभ्य इत्यर्थः ।  
'अरुहताण' इति पाठे 'अरोहद्भ्यः'<sup>४</sup> इतिच्छाया, दृढ पक्षे प्रक्षीणग्लिहिलकर्मवीजतया  
रुदाऽप्यनुत्पद्यमानेभ्य इत्यर्थः, यदुक्तमौपपातिकमूत्रे—“वीयाणः अग्निदग्धाण,  
पुनरपि अकुरूपत्ती ण भवइ, एवामेव सिद्धाण कम्मसीए दइढे पुनरपि जम्मपुत्ती  
न भवइ” इति । भगवन्तोऽर्हन्तोऽपि हि क्षित्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकायपदक

भव्यों को निर्भय मार्ग बताकर शिवपुरी में पहुचाने वाले, अथवा  
भव्यजनों से किये जानेवाले गुणवर्णन अभिवादन आदि के तथा  
इन्द्रादिक देवताओं से किये हुए अष्टमहाप्रातिहार्यों से युक्त और  
शाश्वतिक निरतिशय सुख को पानेवाले, या (अरहद्भ्यः)=रागादिके  
कारणभूत प्रकृष्ट विषयों का सम्बन्ध रहते हुए भी वीतरागत्वरूप  
अपने स्वभाव को कभी नहीं छोडने वाले, अथवा (अरोहद्भ्यः)  
कर्मबीज के दग्ध होजाने के कारण फिर से कभी जन्म नहीं लेने  
वाले अरिहन्तों को नमस्कार हो ।

युक्त अने शाश्वतिक निरतिशय सुखने भेगववावाणा, अथवा (अरहद्भ्यः) रागादिना  
कारण्यथी उत्कृष्ट विषयेना सम्बन्ध रहता थका पणु वीतरागत्व रूप येताना स्वइपने  
क्यायेय नही छोडतार, अथवा अरोहद्भ्यः कर्मबीज गणीत्वाना कारणे इरीथी केछ  
वप्यत जन्म नहि लेवावाणा अरिहंतोने नमस्कार हो।

अरिहंत लगवान स्वय पट्टकायनी रक्षा करता करता भीजने 'मा हण मा हण'  
आवा प्रकारने उपदेश देवावाणा तथा लय कर लवपर पराथी उत्पन्न थयेल

१ अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासन च ।

भामण्डल दुन्दुभिरातपत्र, सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥१॥

२ योग्यतार्थकादकर्मकात् 'अर्ह' धातोर्लट्. शत्रादेशः ।

३ त्यागार्थक- 'रह'-धातोः शत्रन्तस्य नञा समासः ।

४- प्रादुर्भावार्थकस्य रुहवातो शत्रन्तस्य नञा समास आर्पित्वाद्गुणा-  
भावश्च । व्याख्यानान्तराणि सम्भवन्त्यपि क्लिष्टत्वाद्नुपयुस्तत्वाच्चोपेक्षितानि ।

\* छाया-बीजानामग्निदग्धाना पुनरप्यङ्कुरोत्पत्तिर्न भवति, एवमेव  
सिद्धाना कर्मबीजे दग्धे पुनरपि जन्मोत्पत्तिर्न भवति ।

रक्षन्तरतदर्थे 'मा हण मा हण' इत्यादिवाक्यैः सर्वानुपदिशन्ति भीष्मभवपरम्परो-  
द्भूतप्रभूतभीतिभूमभीरुभूताऽद्भुतानन्दसन्दोहकन्दलीयमानाऽपुनरावृत्तिविशिष्टनिर्-  
तिपुर्ययितथपथ प्रदर्शयन्तीति चैषा नमस्करणीयत्वमर्हताम् ।

'णमो सिद्धाण' इति, नमः सिद्धभ्यः, असेत्सुः=साधनीयाऽखिलकार्यसाधनेन  
परिनिष्ठितार्था अभूवन्निति, असेधिषु=शाश्वतिकृतयाऽपवर्गम् अनन्तचतुष्टयरूप  
मङ्गल च प्रापन्निति या सिद्धाः ॥<sup>२</sup> सिद्धत्व च सिद्धाना न दीपनिर्वाणवदभावरूप  
किन्तु सद्भावस्वरूपमत एव चक्रवर्त्यादिमनुष्यानाभ्याऽनुत्तरविमानपर्यन्तैर्देवैरपि

अरिहन्त भगवान स्वय पट्टकाय की रक्षा करते हुए दूसरों  
को 'मा हण मा हण' इस प्रकार का उपदेश देने वाले, तथा भयङ्कर  
भवपरम्परासे उत्पन्न महाभय के कारण व्याकुल भव्यों को अलौकिक  
आनन्द के मूलभूत, पुनरावृत्ति (आवागमन)-रहित मोक्षपुरी के  
पवित्र मार्ग को दिखलाने वाले हैं, अतएव ये नमस्कार के  
योग्य हैं (१) ।

'नमो सिद्धाण' समस्त कर्तव्यों की सिद्धि होने के कारण  
कृतकृत्य, तथा शाश्वतिक मोक्षसुख और अनन्तचतुष्टयरूप मङ्गल  
को प्राप्त हुए सिद्धों को नमस्कार हो ।

सिद्धों का सिद्धत्व दीपक बुझ जाने की तरह अभावस्वरूप  
नहीं, किन्तु सद्भावस्वरूप है, अतएव मनुष्यों में चक्रवर्ती से लेकर

महालयना कारुण्यी व्याकुल लव्योने अलौकिक आनन्दना भूणभूत, पुनरावृत्ति  
(आवागमन)-रहित मोक्षपुरीना पवित्र मार्गने पताववावाणा छे, अटले अ  
नमस्कार करवाने योग्य छे

'नमो सिद्धाण' सकल कार्यनी सिद्धि होवाथी कृतकृत्य तथा शाश्वतिक मोक्ष  
सुख अथवा अनन्त-चतुष्टयरूप भगवने प्राप्त करेला सिद्धोने नमस्कार हो ।

सिद्धोनु सिद्धत्व दीपकना ठरी जवानी जेभ अभावस्वरूप नहि पणु सहलाव  
स्वरूप छे अटला भाटे मनुष्योभा अक्षवर्तीथी लधने अनुत्तर विमान सुधी देवता  
ओने पणु दुर्लभ तथा धीण्त सुषोनी अपेक्षाअे अेना सुषो अनन्त गणु छे, कारुण्य

१-'पिधु सराद्धो' इत्यस्मादनितो दैवादिकात्, 'पिध गत्याम्'  
इत्यस्मात्सेतो भौवादिकात्, 'पिधु शास्त्रे माङ्गल्ये च' इत्यस्माद्देवो भौवादिकाद्वा  
कर्तारि क्त. । व्युत्पत्त्यतराणि यथामत्यूहनीयानि ।

सुदुर्लभ सुखान्तरानन्तगुणित भवति तेषां सुख, सर्वकालसमयावच्छिन्नतया सभावितमनन्तवर्गवर्गवर्गित लोकालोकाकाशयोरनन्तप्रदेशेषु परिपूर्णतयाऽनन्तमपि कदाचित्स्याद्देवादिसुख, तथापि न जातु सिद्धसुखेन तुलाधृत, तस्यापरिच्छिन्नपरिमाणतया क्वचिदपि समावेशभावात् । तच्चोक्तमौपपातिक्रमूत्रे—

“ णवि\* अत्थि माणुसाणं, तं सोक्ख णवि य सब्बदेवाण ।

ज सिद्धाण सोक्ख, अब्बावाहं उवगयाणं ॥ १३ ॥

ज देवाण सोक्ख, सब्बद्धापिण्डिय अणतगुण ।

ण य पावइ मुत्तिसुह, णताहि वग्गवग्गूहि ॥ १४ ॥

सिद्धस्स सुहो रासी, सब्बद्धापिण्डिओ जइ हवेज्जा ।

सोऽणतवग्गभइओ सब्बागासे ण माइज्जा ॥ १५ ॥” इति ।

अनुत्तर विमान पर्यन्त देवों को भी दुर्लभ, तथा अन्य सुखों की अपेक्षा इनका सुख अनन्त गुण है, कारण यह कि देवादिकों के सुख कदाचित् सर्वकाल में स्थायी अनन्त वर्गों के भी वर्गों से गुणित तथा लोक-अलोकस्वरूप दोनों आकाशों के अनन्त प्रदेशों में भरपूर होकर अनन्त भी हो जायँ तो भी सिद्धों के सुखों की धराधरी नहीं हो सकती, क्योंकि अपरिमित होने से सिद्धों के सुख अपार है ।

ये छे डे देवादिङ्काणा सुभेो क्खयित् सर्वङ्काणमा स्थायी अनन्त वर्गोणा पणु वर्गोथी शुद्धित तथा लोका-अलोकरूप णन्ने आकाशेणा अनन्त प्रदेशेणा भरपूर थइने अनन्त पणु थइ नय ते पणु सिद्धेणा सुभेोनी धराधरी थइ शकती नयी, काश्यु डे अपरिमित होवाथी सिद्धेणा सुभ अपार छे

\* नाप्यस्ति मनुष्याणा तत्सौरय नापि च सर्वदेवानाम् ।

यत्सिद्धानां सौख्यम्, अब्बावाधमुपगतानाम् ॥१३॥

यदेवानां सौरय, सर्वाद्धापिण्डितमनन्तगुणम् ।

न च प्राप्नोति मुश्नितसुख, अनन्ताभिर्वर्गवर्गिताभि (अद्धाभिः) ॥१४॥

सिद्धस्य सौख्यराशिः, सर्वाद्धापिण्डितो यदि भवेत् ।

सोऽनन्तवर्गभक्तः सर्वाकाशे न मायात् ॥ १५ ॥ इतिच्छाया ।

एतेनैव नमस्करणीयत्वमपि सिद्धाना सिद्धम्, अविनाशरानन्तज्ञानदर्शन  
सुखवीर्याक्षयस्थितिप्रभृतिप्रगुणगुणगणगुम्फिताद्गतया ध्यानादिब्रह्माद्यास्मा  
नन्दोद्रेकोद्भावकत्वेनोपकारित्यात् ।

‘नमो आयरियाण’ इति, नम आचार्येभ्यः, आ=समन्तात् मर्यादया वा  
चर्यन्ते परिचर्यन्ते शिष्यादिभिरित्याचार्याः<sup>१</sup> । आचार=ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्यरूप  
ग्राहयन्तीति, आचिन्वन्ति=ग्रहयन्ति शिष्याणा ज्ञानादीनीति, आचारयन्ति=सम्पा  
दयन्ति शिष्यैरागमोक्तविधीनिति वाऽऽचार्याः<sup>२</sup> । अथवा आ=मर्यादया चरन्ति=  
गच्छन्तीति, आचारैर्वा चरन्तीत्याचार्याः<sup>३</sup> । यद्यपि शिल्पाचार्य-कलाचार्य-

सिद्धों को इसलिये नमस्कार किया गया है कि ये अपने  
अविनाशी अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य,  
अनन्त अक्षय स्थान आदि उत्कृष्ट गुणोंसे आत्मानन्द के उद्भावक  
होकर भव्य जीवों के उपकारक हैं । (२)

‘नमो आयरियाण’ आ=मर्यादापूर्वक शिष्यों से सेवित अथवा  
शिष्यों को ज्ञान दर्शन चारित्र तप तथा वीर्यरूप आचार की शिक्षा  
देनेवाले, या उनके ज्ञानादि आचार को बढ़ानेवाले, अथवा ज्ञानाचार  
आदि की मर्यादामें चलनेवाले आचार्य को नमस्कार हो ।

यों तो शिल्पाचार्य कलाचार्य और धर्माचार्य के भेदसे

सिद्धोंने ज्येष्ठता भाटे नमस्कार करवाभा आवेले छे के ज्येष्ठताना अविनाशी  
अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त सुख, अनन्तवीर्य, अनन्त अक्षय-स्थान विगेरे उत्तम  
गुणोत्थी आत्मिक आनन्दना उद्भावक थधने लोच्य ज्येष्ठता भाटे उपकारक छे

(२) ‘नमो आयरियाण’ ‘आ’=मर्यादापूर्वक शिष्योत्थी सेवाज्येष्ठता अथवा शिष्योत्थी  
ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप तथा वीर्यरूप आचारनी शिक्षा देवावाणा अथवा  
तेभना ज्ञानादि आचारने बधारवावाणा अथवा ज्ञानाचार विगेरेनी मर्यादाभा  
यालवावाणा आचार्यने नमस्कार थाय

ज्येष्ठता भाटे शिल्पाचार्य कलाचार्य अने धर्माचार्यना ज्येष्ठता आचार्यना

१ आहुपसर्गपूर्वकात् चरधातो कर्मणि ण्यत् उपधावृद्धि ।

२ सत्यादिशब्दयन्त्रिरुक्तोक्तरीत्या पृषोदरादिपाठात्पदसिद्धिः ।

३ आहुपसर्गपूर्वकात् चरधातोर्गङ्गुलकात्कर्त्तरि ण्यत्प्रत्यय ।

धर्माचार्यभेदेनाऽऽचार्यत्रैविध्यतथाऽप्यर्हत्सिद्धसाहचर्यान्नमःपदसान्निध्याच्चात्र धर्माचार्याणामेव ग्रहणम् । तत्र च सूत्रार्थज्ञातृत्वार्थवाचकत्व-गच्छमेधीभूतत्व-गणचिन्तारहितत्व-स्त्रीकथा-राजकथा-देशकथा-भक्तकथा-सम्यक्त्वशैथिल्य-कथावर्जकत्व, तथा नवविधब्रह्मचर्यगुप्तिधारकत्व-पञ्चेन्द्रियसवरणकारकत्व-कषायचतुष्टयरहितत्व-पञ्चमहाव्रतोपेतत्व- पञ्चविधाचारपालकत्व- पञ्चसमितिसमित्व-गुप्तित्रयगुप्तत्वरूपपट्टत्रिशङ्कुणवच्च, सारणा-वारणा-धारणा - नोदना-प्रतिनोदनावच्च च । तत्र सारणा=विस्मृतसामाचारिकेभ्यो मुनिभ्यः, 'मुने! भवतेद

आचार्य के तीन भेद हैं, तो भी 'अरिहत' 'सिद्ध' तथा 'नमो' पद के साहचर्य से यह पर धर्माचार्य का ही ग्रहण है । जो सूत्रार्थ को जाने, शिष्यों को प्रवचन का मर्म समझावे, गच्छमें मेढी (खलिहान का खभा) समानहो, गण की चिन्ता से रहित हो, सम्यक्त्व को शिथिल करनेवाली कथा का वर्जन करे, तथा नौ वाङ् ब्रह्मचर्यधारण (९), पांच इन्द्रियों को जीतना (१४), चार कषायो का परित्याग (१८), पांच महाव्रतों (२३) और पांच आचारों का पालन (२८) पांच समिति (३३) और तीन गुप्तियों का धारण (३६), इन उत्तीस गुणों से तथा सारणा, वारणा, धारणा, चोयणा, पडिचोयणा से युक्त हो ।

उनमें सारणा-प्रमादवश सामाचारीमें भूले हुए मुनिको

त्रयु लोढ छे तो पणु 'अरिहत' 'सिद्ध' तथा 'नमो' पदना साहचर्यधी अर्द्धिया धर्माचार्यनुं न अहण छे नेओ सूत्रना अर्थने नहणे शिष्येने प्रवचननुं रुत्थ्य समनने गच्छमा मेधि समान गणुनी चिंताधी रहित होय सम्यक्त्व शिथिल थाय ओवी कथानुं वर्जन करे तथा नववाड ब्रह्मचर्यनुं पालन, (९) पांचे धर्द्धियेने छतपी (१४) थारे कषायेने त्याग (१८) पांच महाव्रतो (२३) तथा पांच आचारानुं पालन (२८) पांच समिति (३३) अने त्रयु गुप्तिओनुं धारणु करवु आ छत्रीस (३६) गुणुधी तथा सारणा, वारणा, धारणा, चोयणा अने पडिचोयणाधी युक्त होय

तेमा सारणा=प्रमादधी सामाचारीमा भूलेला मुनिने योग्य ज्ञान आयवु

१ धर्माचार्यत्वम् ,



सम्यदनानुष्ठितमेव कर्त्तव्य'— मित्यादिरीत्योपदेशदानम् । वारणा=कुसङ्गति  
 प्रभृतिप्रवृत्तशिष्यमतिपेधनम् 'एव न कदापि कर्त्तव्य'—मिति, इयच्च द्विविधा  
 द्रव्यतो भावतश्च, यथा कथितप्रौढचिन्तित्सको त्रिचिन्तित्सकान् काँश्चिद्रोगिणो  
 वारयति—'युष्माभिरोपभ्यनुकूलपथ्याहारादिना वर्त्तितव्यमितरथा रोगो दुश्चि  
 कित्स. स्या'-दिति, इम चिन्तित्सकद्वितोपदेश प्रेम्णा श्रुत्वा ये तथा पथ्येन वर्त्तन्ते  
 ते ततो रोगान्मुक्त्वा सुखिनो भवन्ति, ये च जिह्वालोलुपिनो वैश्वचनमनाहत्य  
 यथारुचि विदधते ते तेनैवाऽपथ्यसेवनेन गददलितदेहा निरुपाया मृत्युमुख प्रविशन्ति,

उचित शिक्षा देना । वारणा=अकृत्य सेवनसे रोकना । यह दो  
 प्रकारकी है । (१) द्रव्यवारणा और (२) भाववारणा, उनमें  
 द्रव्यवारणा जैसे—कोई वैद्य रोगी को कहता है—'अमुक दवामें  
 अमुक अमुक वस्तु पथ्य है इसका सेवन करो और अमुक अमुक  
 वस्तु कुपथ्य है इसे छोड़ो, नहीं तो रोग दूर नहीं होगा' इत्यादि,  
 जो रोगी वैद्य के इस वचन को हितबुद्धि से सुनकर इसके अनुकूल  
 पथ्य सेवन करता है वह उस रोग से मुक्त हो कर सुख को  
 प्राप्त करता है, और जो वैद्य के वचन का अनादर कर अपनी  
 इच्छासे वर्त्तता है वह नाना प्रकार के कष्टों को भोगता हुआ  
 मृत्यु तक को भी प्राप्त हो जाता है ।

वारणा=नहिं करवा लायक कामथी शैकवु ते जे प्रकारनी छे (१) द्रव्यवारणा अने  
 (२) भाववारणा

द्रव्यवारणा— जेभ केछ वैद्य शैकीने कहे के 'अमुक दवाभा अमुक वस्तु  
 भावा लायक छे तेनु सेवन करे अने अमुक वस्तु भावा लायक नहीं तेथी तेने  
 छोडा नहितर रोग भटथे नहिं' विगेरे, जे दही वैद्यनु आ वचन हित-बुद्धिथी  
 साभणीने तेने अनुकूल योग्य पथ्यनु सेवन करे छे ते तेना शैकी छुनीने  
 सुख भेगवे छे, अथवा जे वैद्यनु वचन पाज्या विना पोतानी भरल प्रमाणे  
 वर्ते छे ते अनेक प्रकारना दु भोने भोगवतो थके मृत्यु सुधी पछोथी नथ छे

१ वारणा ।

२ सशयालन ।

सैषा द्रव्यचारणा, भाववारणा तु दृष्टान्तस्यैवोपनयो यथा—कौशित्कर्मरोगग्रस्तो-  
स्ततो मुक्तिरामान् प्राणिन आचार्यवैद्यो वारयति—‘युष्माभिः सर्वदा प्रवच-  
नौपधग्रहणपूर्वकं ज्ञानाचारादिपथ्यसेवकं भवितव्यमितरथा प्रमादादिरोगोऽय  
दुश्चिक्त्सि’ स्या’दिति, तेषु ये तथा ज्ञानाचारादिपथ्यपालनेन वर्तन्ते ते तस्मा-  
द्रोगाद्विमुच्य सुखमश्नुवते, ये चेन्द्रियारामाः कामभोगादिरूपमपथ्य न त्यजन्ति  
ते भूयो भूयो जन्म-जरा-मरणानि प्राप्नुवन्तीति । धारणा=विषयान्तरनिवृत्ति-  
पुरस्सर मनसः सयममार्गे स्थिरीकरणम् । नोदना (चोयणा)=सामाचारीतो बहिः  
प्रवर्त्तमानाना सामाचारी पालयितु प्रवर्त्तना । प्रतिनोदना (पडिचोयणा) च

भाववारणा-दृष्टान्त का उपनय स्वरूप है, जैसे कर्मरोगसे  
पीडित मोक्षाभिलाषी प्राणियोंको आचार्यरूप वैद्य उपदेश देते है-  
‘इस प्रवचनरूप औपध में ज्ञानाचार आदि पथ्य है इस का सेवन  
करना चाहिये और विषय भोगादि कुपथ्य है उसे छोडना चाहिये,  
अन्यथा कर्मरोग का मिटना असम्भव है’ इत्यादि, जो इस वचन  
के अनुसार नियमसे चलता है वह उस कर्म रोग से मुक्त होकर  
शिवसुख को पाता है, और जो आचार्य के वचन का अनादर कर  
स्वच्छन्द प्रवृत्ति करता है वह नाना प्रकार के दु खों को भोगता  
हुआ वारवार जन्म जरा मरण पाता है ।

धारणा-मनको अन्य २ विषयों से हटा कर सयम मार्ग मे  
स्थिर करना । चोयणा=सामाचारी से बाहर प्रवृत्ति करने वालों को

भाववारणा—दृष्टान्तनुं उपनय स्वरूप छे लेवी रीते कर्मजन्य रोगथी पीडित  
मोक्षाभिलाषी प्राणियोने आचार्यरूप वैद्य उपदेश आपे छे ‘आ प्रवचनरूप औपधमा  
ज्ञानाचार आदि पथ्य छे तेनु सेवन करवु लेधये अने विषयलोग विगेरे कुपथ्य छे  
तेने छोडी देवा लेधये नदितर कर्मजन्य रोग भटवा कठिन छे’ इत्यादि ने आ  
वचन अनुसार नियमथी यादे छे ते कर्मरोगथी मुक्त थधने शिवसुखने प्राप्त  
करे छे, अने ने आचार्यना वचनोना अनादर करीने स्वच्छन्द प्रवृत्ति करे छे ते  
अनेक प्रकारना दु खोने लोखवतो वारवार जन्म जरा अने मरण पाये छे

धारणा=मनने भीज-भीज विषयोभाथी छुडीवीने सयममार्गमा स्थिर  
करवु चोयणा=सामाचारीथी णडार प्रवृत्ति करवावाणाने करीथी सामाचारीमा प्रवृत्त

पौनःपुन्येन सामाचारीस्त्वलिताना धिग्निगित्यादिपरुपभर्त्सनापूर्वकप्रगाढप्रेरणा ।  
 आचार्यस्य 'गणी'—त्यपि नाम, गणः=साधुसमुदायः सोऽस्त्यस्येति व्युत्पत्तेर्गणी,<sup>१</sup>  
 तस्य गणिन सम्पदः प्रसङ्गतो लक्ष्यन्ते, ता अष्टौ—(१) आचारसम्पत्, (२)  
 श्रुतसम्पत्, (३) शरीरसम्पत्, (४) वचनसम्पत्, (५) वाचनासम्पत्, (६) मति  
 सम्पत्, (७) प्रयोगसम्पत्, (८) सग्रहसम्पत्चेति । एता अपि प्रत्येक चतुर्विधा, त  
 याहि-आचारसम्पच्चतुर्दा यथा—(१) समयप्रयुक्तत्व, (२) जात्यादिमद-  
 हितत्वम्, (३) अनियतविहारित्व, (४) वृद्धवृद्धमनःकायनिर्विकारत्व चेति ।

फिर से सामाचारी में प्रवृत्त करना । पडिचोयणा=बारबार सामाचारी  
 से स्खलितों को रूक्ष वचनों से फटकार कर सामानारी में प्रवृत्त  
 करना ।

आचार्य को गणी भी कहते हैं, उनकी आठ सपदाएँ हैं—

(१) आचारसम्पदा, (२) श्रुतसम्पदा, (३) शरीरसम्पदा, (४)  
 वचनसम्पदा, (५) वाचनासम्पदा, (६) मतिसम्पदा, (७) प्रयोगसम्पदा  
 (८) सग्रहसम्पदा ।

[१] आचारसम्पदा के चार भेद हैं — (१) चारित्र्यमें निरन्तर  
 समाधियुक्त रहना, (२) जात्यादिमद का परित्याग (३) अप्रतिबन्ध  
 विहार, (४) वृद्ध के समान इन्द्रियादिविकार रहित होना ।

करवा पडिचोयणा= बारबार सामाचारीभा लूल करनारने इक्ष वचनोशी डिठकारीने  
 सामाचारीभा प्रवृत्त करवा

आचार्यने गणी पणु कडे छे, आचार्यनी आठ सपदा छे (१) आचार  
 सपदा, (२) श्रुतसम्पदा, (३) शरीरसपदा, (४) वचनसपदा, (५) वाचना  
 सम्पदा, (६) मतिसम्पदा, (७) प्रयोगसपदा, (८) सग्रहसम्पदा

(१) आचारसम्पदाना बार लेह छे—(१) चारित्र्यभा उमेशा समाधि-  
 युक्त रहेवुं (२) जाति वगेरेना मदनो परित्याग, (३) अप्रतिबन्ध-विहार,  
 (४) वृद्ध समान इन्द्रियादि-विकार-रहित थणु

१ 'गणी' इत्यत्र गणशब्दात् 'अत इनिठनौ' (५।२।१५) इति  
 पाणिनिवचनेन मत्वर्थीय इनि ।

श्रुतसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) बहुश्रुतत्व, (२) परिचितमूत्रत्व, (३) परिज्ञातो-  
त्सर्गापवादत्वम् (४) उदात्तानुदात्ताद्यनुसन्धानपूर्वकयथोचितवर्णोच्चारयित्त्व  
चेति । तत्र बहुश्रुतत्व—यदा यावन्ति मूत्राणि तदा तावत्सर्वपरिज्ञातत्वम्,  
परिचितमूत्रत्व=स्वनामादिवत्कदाप्यविस्मृतमूत्रत्वम् । शरीरसम्पच्चतुर्धा यथा—  
(१) समचतुरस्रसस्थानत्वम्, (२) सम्पूर्णाङ्गोपाङ्गत्वम्, (३) प्रतिपूर्णन्द्रिय-  
त्वम्, (४) स्थिरसहनत्व चेति । वचनसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) आदेय-  
वचनत्व, (२) मधुरवचनत्व, (३) मध्यस्थवचनत्व, (४) स्फुटवचनत्व चेति ।  
वाचनासम्पच्चतुर्धा यथा—(१) पात्रकुपात्रविवेचकत्व, (२) कृतपूर्वमूत्रार्थ-

[२] श्रुतसम्पदा के चार भेद हैं— (१) जिस समय जितने  
सूत्र हों उन सब का ज्ञान रखना । (२) अपने नामकी तरह सूत्रों  
को कभी न भूलना । (३) उत्सर्ग अपवादका ज्ञान रखना । (४)  
उदात्त अनुदात्त आदि स्वरों के अनुसन्धान पूर्वक वर्णों का शुद्ध  
उच्चारण करना ।

[३] शरीरसम्पदा के चार भेद— (१) समचौरस्र सस्थान का  
होना, (२) अगउपागों से अविकल होना, (३) सत्र इन्द्रियों से  
परिपूर्ण होना, (४) दृढ सहननका होना ।

[४] वचनसम्पदा के चार भेद— (१) आदेय वचन होना,  
(२) मधुर वचन होना, (३) मध्यस्थ वचन होना, (४) स्फुट वचन होना ।

[५] वाचना सम्पदा के चार भेद— (१) शिष्यों में पात्र

श्रुतसम्पदाना चार भेद छे (१) जे समये नेटला सूत्र होय ते सर्वनु  
ज्ञान राष्यु, (२) पोताना नामनी जेम सूत्रेने कटी पणु नछि भूलना (३)  
उत्सर्ग-अपवादनु ज्ञान राष्यु, (४) उदात्त-अनुदात्त आदि स्वराना अनुसन्धान  
पूर्वक वर्णाना शुद्ध उच्चार करये।

(३) शरीरसम्पदाना चार भेद- (१) समचौरस्र सस्थाननु होयु  
(२) अग-उपागोथी अविकल थयु, (३) सर्व छिद्रियोथी परिपूर्णपणु (४) दृढ  
सहनननु होयु

(४) वचनसम्पदाना चार भेद- (१) आदेय वचन (२) मधुर वचन  
(३) मध्यस्थ वचन, (४) स्फुट वचन

(५) वाचनासम्पदाना चार भेद- (१) शिष्येमा पात्र-कुपात्रपणाना

परिपाकाय शिष्याय सूत्रार्थप्रदातव्य, (३) सूत्राभ्ययनार्थमुत्साहदातृत्व  
 (४) पूर्वापरार्थसागत्यनिपुणत्व चेति । मतिसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) अवग्रहः (सामान्येन पदार्थनिर्णयः), (२) ईहा (विशेषनिर्णयः), (३) अवायः (निश्चयः)  
 (४) धारणा (कालान्तरायास्मरण) चेति । प्रयोगसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) वादविषयकस्वसामर्थ्यज्ञान, (२) परिपत्परिज्ञान, (३) क्षेत्रपरिज्ञान, (४) वस्तुपरिज्ञान<sup>२</sup> चेति । सग्रहसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) गणस्थालवृद्धादिमुनिनि

कुपात्र का विचार करना, (२) पूर्व पढाए हुए सूत्रार्थ का परिपाक होने पर आगे पढाना, (३) सूत्र पढनेके लिए उत्साह देना, (४) सूत्रार्थ की पूर्वापर सगति करने में निपुण होना ।

[६] मतिसम्पदा के चार भेद— (१) अवग्रह (सामान्य रूपसे पदार्थों का निर्णय करना), (२) ईहा (विशेष रूप से जानना), (३) अवाय (पदार्थ का ठीक निश्चय करना), (४) धारणा (कालान्तर में नहीं भूलना) ।

[७] प्रयोगसम्पदा के चार भेद— (१) वादमें अपने सामर्थ्यका ज्ञान रखना, (२) परिपद् का ज्ञान रखना, (३) क्षेत्र का ज्ञान रखना, (४) राजा मन्त्री आदि का ज्ञान रखना ।

[८] सग्रहसम्पदा के चार भेद— (१) गणमें रहे हुए बाल विचार करवे, (२) प्रथम लक्ष्यवेला सूत्रना अर्थने परिपाक यथा पछी आगण अभ्यास कराववे, (३) सूत्रने अभ्यास करवाभा उत्साह आपवे, (४) सूत्रार्थनी पूर्वापर सगति करवाभा निपुण थवु

(६) मतिसम्पदाना चार लेह— (१) अवग्रह—सामान्य रूपथी पदार्थने निष्पुथ करवे (२) ईहा विशेषरूपथी लक्ष्यवु, (३) अवाय—पदार्थने परापर निश्चय करवे (४) धारणा—कालान्तरभा पणु लूलवु नहि

(७) प्रयोग सम्पदाना चार लेह (१) वाद करवा वधते पोताना सामर्थ्यनु ज्ञान राणवु, (२) परिपदनु ज्ञान राणवु, (३) क्षेत्रनु ज्ञान राणवु (४) राज, मन्त्री वगैरेनु ज्ञान राणवु

(८) सग्रह सम्पदाना चार लेह— (१) गणुभा रहेला णाल वृद्ध आदि

१- प्रयोगसम्पत्=वादमेधा ।

२- वस्तुपरिज्ञान=राजामात्यादिपरिज्ञानम् ।

वाहयोग्यक्षेत्रादिनिरीक्षणविषया, (२) बालग्लानादियोग्यसस्तारकादिव्यवस्था-  
करणविषया, (३) यथाकाल स्वाध्यायाद्यनुष्ठानविषया, (४) यथायोग्य-  
विनयविषया चेति । आसामष्टविधसम्पदा विस्तरतो व्याख्या मत्कृद्दशाश्रुत-  
स्कन्धमूत्रस्य टीकाया विलोकनीया ।

एत एवोक्तलक्षणा आचार्याः (१) प्रवचनप्रभावकोपदेश-(२) वादाधिकरणकज्ञा-  
भक्तिरजय-(३) निमित्तज्ञान-(४) तपस्वित्वा-(५) ऽञ्जनसिद्धि-(६) लब्धिसिद्धि-  
(७) कर्मसिद्धि-(८) विद्यासिद्धि-(९) मन्त्रसिद्धि-(१०) योगसिद्ध्या-(११)  
ऽऽगमसिद्धि-(१२) युक्तिसिद्धय-(१३) अभिप्रायसिद्धि-(१४) गुणसिद्धय-  
(१५) अर्थसिद्धि-(१६) कर्मक्षयसिद्धि-रूपैर्विशिष्टैः षोडशभिर्गुणैरप्युपलक्षिता

वृद्ध आदि मुनियोक्ते निर्वाहयोग्य क्षेत्र आदिका निरीक्षण करना,  
(२) बाल-ग्लान आदिके योग्य शय्या-सथारा आदि की व्यवस्था  
करना, (३) यथाकाल स्वाध्याय आदि करना, (४) यथायोग्य बड़ों  
का वन्दन आदि विनय करना ।

ये ही उक्तगुणसम्पन्न आचार्य जय-(१) प्रवचनप्रभावक उपदेश  
देना, (२) वादमें सदा जय, (३) निमित्तज्ञान, (४) तपस्या, (५)  
अञ्जनसिद्धि, (६) लब्धिसिद्धि, (७) कर्मसिद्धि, (८) विद्यासिद्धि, (९)  
मन्त्रसिद्धि, (१०) योगसिद्धि, (११) आगमसिद्धि, (१२) युक्तिसिद्धि,  
(१३) अभिप्रायसिद्धि, (१४) गुणसिद्धि, (१५) अर्थसिद्धि, (१६)  
कर्मक्षयसिद्धि, इन सोलह विशेष गुणों से युक्त होते हैं तब

मुनियोक्ता निर्वाह योग्य क्षेत्र आदिना तपास करवे, (२) बाल, ग्लान आदिना  
योग्य शय्या सथारा आदिनी व्यवस्था करवी, (३) यथासमय स्वाध्याय आदि  
करवा (४) मोटा होय तेना यथायोग्य विनय अने वन्दनादि करवुं

उपर प्रभाषे कहेला शुष्मथी पूर्ण होय तेवा आचार्य न्यारे (१) प्रवचन  
प्रभावक उपदेश आपे छे (२) वादमा विजय भोगे छे, (३) निमित्तज्ञान,  
(४) तपस्या, (५) अञ्जनसिद्धि, (६) लब्धिसिद्धि, (७) कर्मसिद्धि, (८) विद्यासिद्धि,  
(९) मन्त्रसिद्धि, (१०) योगसिद्धि, (११) आगमसिद्धि, (१२) युक्तिसिद्धि  
(१३) अभिप्रायसिद्धि, (१४) गुणसिद्धि, (१५) अर्थसिद्धि (१६) कर्मक्षयसिद्धि  
आ भोग विशेष शुष्मथी युक्त होय छे त्यारे ते “युगप्रधानाचार्य”

परिपाकाय शिष्याय सूत्रार्थप्रदातृत्व, (३) सूत्राभ्ययनार्थमुत्साहदातृत्व  
(४) पूर्वापरार्थसागत्यनिपुणत्व चेति । मतिसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) अवग्रहः (सामान्येन पदार्थनिर्णयः), (२) ईहा (विशेषनिर्णयः), (३) अवायः (निश्चयः)  
(४) धारणा (कालान्तरायाविस्मरण) चेति । प्रयोगसम्पच्चतुर्धा यथा—(१)  
वादविषयकस्वसामर्थ्यज्ञान, (२) परिपत्परिज्ञान, (३) क्षेत्रपरिज्ञान, (४)  
वस्तुपरिज्ञान<sup>२</sup> चेति । सग्रहसम्पच्चतुर्धा यथा—(१) गणस्थालवृद्धादिमुनिनि

कुपात्र का विचार करना, (२) पूर्व पढाए हुए सूत्रार्थ का परिपाक होने पर आगे पढाना, (३) सूत्र पढनेके लिए उत्साह देना, (४) सूत्रार्थ की पूर्वापर सगति करने में निपुण होना ।

[६] मतिसम्पदा के चार भेद— (१) अवग्रह (सामान्य रूपसे पदार्थों का निर्णय करना), (२) ईहा (विशेष रूप से जानना), (३) अवाय (पदार्थ का ठीक निश्चय करना), (४) धारणा (कालान्तर में नहीं भूलना) ।

[७] प्रयोगसम्पदा के चार भेद— (१) वादमें अपने सामर्थ्यका ज्ञान रखना, (२) परिषद् का ज्ञान रखना, (३) क्षेत्र का ज्ञान रखना, (४) राजा मन्त्री आदि का ज्ञान रखना ।

[८] सग्रहसम्पदा के चार भेद— (१) गणमें रहे हुए बाल विचार करवे, (२) प्रथम लघुवेला सूत्रना अर्थने परिपाक यथा पछी आगण अभ्यास करावये, (३) सूत्रने अभ्यास करवाभा उत्साह आपवे, (४) सूत्रार्थनी पूर्वापर सगति करवाभा निपुणु थवु

(६) मतिसम्पदाना चार भेद— (१) अवग्रह—सामान्य रूपधी पदार्थने निर्णय करवे (२) ईहा विशेषरूपधी लघुवु, (३) अवाय—पदार्थने असापर निश्चय करवे (४) धारणा—कालान्तरभा पणु लूलवु नहि

(७) प्रयोग सम्पदाना चार भेद (१) वाद करवा वधते पोताना सामर्थ्यतुं ज्ञान राखवु, (२) परिषदतुं ज्ञान राखवु (३) क्षेत्रतुं ज्ञान राखवु (४) राजा, मन्त्री वगैरेतुं ज्ञान राखवु

(८) सग्रह सम्पदाना चार भेद— (१) गणुभा रहेला जाल-वृद्ध आदि

१- प्रयोगसम्पत्=वादमेधा ।

२- वस्तुपरिज्ञान=राजामात्पादिपरिज्ञानम् ।

गणधरास्तमेव परम्पराऽऽयात् शिष्यानध्यापयन्ति ये ते उपाध्याया उच्यन्ते इति सारः । अपिवा आधिः=मनोव्यथाया आयः=लाभः आध्यायः, उपहतः=नाशित आध्यायो यैस्ते उपाध्यायाः=प्रवचनतत्त्वोपदेशेन मुनिहृदयसन्तोषका इत्यर्थः, अतएव नमस्कारार्हाः, ज्ञानदर्शनचारित्र्ययुक्तत्वाच्च ।

‘ नमो लोए सन्वसाहूण ’ इति, नमो लोके सर्वसाधुभ्यः । साधयन्ति साधुवन्ति वाऽभिलषितार्थं निर्वाणसाधकान् योगान्, यद्वा सम्यग्ज्ञानदर्शन-चारित्र्यरूपरत्नत्रयवलेनाऽपवर्गमिति, अथवा निरुक्तव्युत्पत्त्या भूतेषु समता ध्या-यन्तीति दधत इति, मोक्षमार्गं प्रति गच्छता सहायका भवन्तीति वा ‘साधवः’, अत्र ‘सर्व’ पदेन सार्द्धद्वीपद्वयरूपलोकस्था गृह्यन्ते, ते च ते साधवश्च, यद्वा

तीर्थद्वारो से उपदिष्ट और सूत्ररूपमें गणधरो से रचित परम्परा से प्राप्त द्वादशाङ्ग के पढाने वाले, अथवा प्रवचन का पाठ देकर आधि-मनकी व्यथा के आय=प्राप्तिको उप=उपहत अर्थात् दूर करने वाले उपाध्याय को नमस्कार हो । ज्ञानदर्शनचारित्र्य से युक्त तथा सूत्र पढाने के कारण उपकारी होनेसे उपाध्याय नमस्कार के योग्य हैं ।

‘ नमो लोए सन्वसाहूण ’—अभिलषित अर्थ को, निर्वाणसाधक योगो को अथवा सम्यग् ज्ञान-दर्शन-चारित्र्यरूप रत्नों से मोक्षको साधनेवाले, अथवा सब प्राणियों पर समभाव रखनेवाले, या मोक्षा-भिलाषी भव्यों के सहायक, तथा अढाई द्वीपरूप लोकमें रहनेवाले

क्षेत्री उपदेशायैला अने सूत्ररूपमा गणधरेशी रयायैला परम्परेशी प्राप्त द्वादशांग नो अभ्यास करावनास, अथवा प्रवचनने पाठ आपीने आधि=मननी व्यथाना आय=प्राप्तिने उप=उपहत अर्थात् दूर करवावाणा उपाध्यायने नमस्कार थाय ज्ञान, दर्शन अने चारित्र्यी युक्त तथा सूत्रने अभ्यास करावना कारणे उपकारी होवाथी उपाध्याय नमस्कार करवा योग्य छे

‘ नमो लोए सन्वसाहूण ’—अभिलषित अर्थने, निर्वाणसाधक योगीने, अथवा सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र्य रूप रत्नोथी मोक्षने साधवावाणा अथवा सर्व प्राणीओ उपर समभाव राखवावाणा अथवा मोक्षना अभिलाषी लव्य होवेने सहायक तथा अढी द्वीप-रूप लोकमा रहेवावाणा सर्व



भवन्ति, तदा युगप्रधानाचार्या उच्यन्ते । ते चाचार्या यथा तीव्रभानी भाना-  
वस्तमिते प्रदीपो घटपटादिपदार्थजात स्वभासा भासयति तमश्च व्यपोहति तथा  
भगवति तीर्थकरे सिद्धगतिं समाप्ते भुवनत्रयस्य तत्त्वार्थप्रकाशनेन मिथ्यात्वादिक  
निजप्रतिभया व्यपगमयन्तीत्यतो नमस्करणीयत्वमेवाम् ।

‘णमो उवज्ज्ञायाण’ इति ‘नम उपाध्यायेभ्यः’ उप=समीपम् एत्याधी  
यते येभ्यस्ते उपाध्यायाः । यद्वा उपस्य सामीप्यार्थकत्वादधीत्यस्य चाऽऽधि-  
क्यार्थकत्वात् उप=समीपम् अधि=आधिक्येन ईयते=प्राप्यते येषां ते<sup>२</sup> तथा ।  
अथवा उपाधीयते=समीपावस्थानेन स्मर्यते सूत्रतो जिनभाषित मुनिभिर्येभ्यस्ते<sup>३</sup>-  
तथा । यद्वादशाङ्गस्वरूप स्वाध्यायमादावर्थतस्तीर्थकरा उपदिदिशुस्तदनु च सूत्रतो

‘युगप्रधानाचार्य’ कहलाते हैं ।

जैसे तीव्र किरणोंवाले सूर्यके अस्त हो जाने पर दीपक अपने  
प्रकाश से घट-पट आदि पदार्थों को प्रकाशित करता और अन्धकार  
को हटाता है उसी तरह तीर्थङ्कर भगवान के मोक्ष पधार जाने पर  
आचार्य महाराज तीनों लोक के जीवादि पदार्थोंका प्रकाश करते  
(स्वरूप बताते) हुए मिथ्यात्व आदि को हटाते हैं, इसलिए उपकारी  
होने के कारण वे वन्दन करने योग्य हैं ।

‘नमो उवज्ज्ञायाण’—समीपमें आये हुए मुनियों को अर्थरूपमें

कहेवाय छे

तेवी रीते नीव किरणोवाणो सूर्य अस्त पाभी जय छे त्यारे दीपक [दीपो]  
पोताना प्रकाशथी घट-पट वजेरे पदार्थोनि प्रकाशित करे छे अने अधकारने  
हर करे छे तेवी रीते तीर्थंकर भगवानना मोक्ष गया पछी आचार्य महाराज  
त्रयोय लोकना एवादि पदार्थोनि प्रकाश करीने [स्वरूप जतावीने] मिथ्यात्व आदिने  
हर करे छे अटला भाटे उपकारी होवाना कारणे तेयो नमस्कार करवा योग्य छे

‘नमो उवज्ज्ञायाण’ पोताना समीपमा रडेला मुनियोने अर्थरूपमा तीर्थ

१—‘इह् अभ्ययने’ अस्मात् ‘इहश्च’ (३।३।२१) इति वचनेनाऽऽपादाने घञ् ।

२—‘यद्वा ‘उपाध्याया’ उपाधिपूर्वकात् ‘इण् गतौ’ अस्मात् ‘अकर्त्तरि च  
कारके सज्ञायाम्’ (६।४।२८) इति वचनबलेन बाहुलकाद्वाऽधिकरणे घञ् ।

३—अथवा ‘इक् स्मरणे’ अस्मात्पूर्वोक्तोपसर्गद्वयविशिष्टात्प्राग्वद् घञ् ।

‘णमो सिद्धाण णमो लोए सव्वसाहूण’ इत्युभयात्मक एव नमस्कार उच्येत न तु पञ्चविधात्मक, साधुत्वावच्छिन्नतयाऽर्हदाचार्यादीना साधुष्वन्तर्भावात्, सिद्धाना च कृतकृत्यतया साधुग्रहणेनाऽग्रहणात् । न द्वितीयम्, एव सति हि ‘नमो उसभस्स’ ‘नमो अजिअस्स’ इत्याद्यैकैकशो नामग्रहणपूर्वकमेवोक्तिर्युक्ता, ततश्च नमस्काराऽऽनन्त्य प्राप्नोति, अर्हता सिद्धाना च समयभेदेनाऽऽनन्त्यात्, एवमाचार्योपाध्यायसाधुनामपीति सर्वथा पञ्चविधात्मको नमस्कारो न युज्यत इति, अत्रोच्यते—अर्हदादिषु नियमेन साधुगुणसद्भावात्साधुत्व, साधुषु त्वर्हत्वा-

हो चुके हैं, इसलिए साधु-पदसे ग्रहण नहीं होसकने के कारण ‘नमो सिद्धाण’ और अरिहन्त आचार्य उपाध्यायों में साधुपन रहने के कारण ‘नमो लोए सव्वसाहूण’ इतना ही कहना आवश्यक था । यदि विस्तारसे क्रिया गया मानें तो ‘नमो उसभस्स’ ‘नमो अजिअस्स’ इत्यादि प्रकार से सब तीर्थङ्कर अरिहन्तों का, तथा ‘नमो एगसमयसिद्धाण’ ‘नमो दुसमयसिद्धाण’ इत्यादि प्रकारसे यावत् सख्यात असख्यात अनन्तसमय सिद्धों का एव आचार्यादिकों का अलग २ नाम ग्रहण करने से अनन्त भेद हो जायेंगे, अत एव यह पंच नमस्कार न सक्षेपसे कह सकते हैं और न विस्तारसे ।

उत्तर—माना कि अरिहन्त आचार्य आदि भी साधु हैं परन्तु सामान्यतया साधु शब्दसे नमस्कार करने पर सिर्फ साधुनमस्कारका

पदथी अड्ढु नडि थं शकवाना डारणे ‘नमो सिद्धाण’ अने अरिहंत आचार्य उपाध्यायोभा साधुपणु रहेवाना डारणे ‘नमो लोए सव्वसाहूण’ अेटु ७ डडेपु ७डरी डतु ने तमे विस्तारथी डडेवाभा आण्यु छे अेभ मानथे ते। ‘नमो उसभस्स’ ‘नमो अजिअस्स’ इत्यादि प्रकारथी सर्व तीर्थं डर अरिहन्तोना तथा ‘नमो एगसमयसिद्धाण’ ‘नमो दुसमयसिद्धाण’ इत्यादि प्रकारथी तभाम सप्यात असप्यात अनन्तसमय सिद्धोना, अे प्रभाणे आचार्यादिना णुढा-णुढा नाम अड्ढु डरवाथी अनत लेड थं ७थे अे डारणुथी आ पाय नमस्कार सक्षेपथी छे अथवा ते। विस्तारथी छे अेभ डडी शकाशे नडि

उत्तर—मानी त्यो डे अरिहंत आचार्य आदि पणु साधु छे, परन्तु सामान्य रीते साधु शब्दथी नमस्कार डरवाथी मात्र साधुनमस्कारनु ७ डण थाय

‘सर्वस्य=सर्वज्ञस्य (अर्हतः) साधयः सर्वसाधयः । अथवा प्राकृते सर्व-सर्वशब्दयोः ‘सर्व’ इतिरूपसत्त्वात् सर्वस्य=सर्वज्ञस्येत्यादि प्राग्वत् तेभ्य इत्यर्थः । साधवो हि शब्दरूपगन्धरसस्पर्शपञ्चरूपात्मगुणनिवृत्ता विशुद्धचारित्र्येण विविधाभिग्रहादि नियमैश्च सयुक्ता मोक्षगुणसाधका उपदेशद्वारा सर्वप्राणिहितकारिणश्च, अतएव नमस्कारार्हाः । आह-सूत्रप्रवृत्तिर्द्विधा सक्षेपतो विस्तरतो वा, सक्षेपतो यथा-सामायिकसूत्रम्, विस्तरतो यथा-द्वादशाङ्गगणिपिटकः तत्रेदं नमस्कारात्मकं सूत्रं किं सक्षेपमधिकृत्य वर्तते विस्तरं वा ? नात्र, तथा सति हि

सभी या सर्वज्ञ के साधुओं को नमस्कार हो ।

शब्द-रूप-गन्ध-रस और स्पर्श, इन पाच कामगुणों से निवृत्त और विशुद्ध चारित्र्य तथा अनेक अभिग्रहों से युक्त, एव आत्म कल्याण के लिये मोक्षगुण के साधक तथा उपदेश द्वारा प्राणी मात्र के हितकारी होने से साधु नमस्कार के योग्य हैं ।

यहां प्रश्न उठता है कि-सूत्रकी प्रवृत्ति या तो सक्षेपसे होती है, जैसे सामायिक सूत्र, या विस्तार से-जैसे-द्वादशाङ्ग गणिपिटक, सो यह नमस्कार क्या सक्षेपसे किया गया है या विस्तारसे ? यदि कहें कि सक्षेपसे किया गया है तो सिद्ध भगवान् कृतकृत्य

अथवा सर्वज्ञान साधुओंको नमस्कार उ३ धु.

शब्द-रूप-गन्ध-रस अने स्पर्श आ पाच कामगुणोत्थी निवृत्त अने विशुद्ध चारित्र्य तथा अनेक अभिग्रहोत्थी युक्त अने प्रभावे आत्मकल्याण भाटे मोक्ष गुणना साधक तथा उपदेश द्वारा प्राणी मात्रना हितकारी होवाची साधु नमस्कार करवा योग्य छे

अर्हि ओक प्रश्न उठे छे के-सूत्रनी प्रवृत्ति सक्षेपथी होय छे, जेवी शीते-सामायिक सूत्र अथवा तो विस्तारथी जेभ उे द्वादशाङ्ग गणिपिटक, तो आ नमस्कार सक्षेपथी कडेवाभा आव्ये छे के विस्तारथी ? जे कडेवा के सक्षेपथी कडेवाभा आव्ये छे तो सिद्ध भगवान् कृतकृत्य थयेला छे अटला भाटे साधु

१-देवादिशब्दस्य देवदत्तादिपरत्ववत् “विनापि प्रत्यय पूर्वोत्तपदयोर्वा लोपो वाच्यः” (३।२।८८) इति कात्यायनवाचिकानुशासनबलात् सर्वपद सर्वज्ञपर तेन सर्वस्य=सर्वज्ञस्येत्यर्थः ।

आह—क्रम आनुपूर्वी, सा च द्विविधा—पूर्वानुपूर्वी पश्चादानुपूर्वी च, क्रमेण प्रथममारभ्यान्तानुधावन पूर्वानुपूर्वी, व्युत्क्रमेणान्तमारभ्य प्रथमानुधावन पश्चादानुपूर्वी, तत्रायमर्हदादिनमस्कारक्रमो न पूर्वान्वयी कृतसकलकृत्याना 'सिद्धाण णमोकार करेति' (आचा० द्वि. शु. १५ भा. अ.) इत्यादिनाऽर्हद्विरपि नमस्कार्यतया सर्वाभ्यर्हितत्वेन प्राक् प्रयोज्याना सिद्धानामादावनभिधानात् । नापि पश्चादानुपूर्वी, तथा सति हर्हदादिपञ्चके सर्वाप्रधानभूतानादीं साधूस्तत उपाध्यायौस्तत आचार्यास्ततोऽर्हतः प्रतिपाद्य सिद्धाना प्रतिपादन युज्यते न तु यथोक्त, तस्मान्नेय पूर्वानुपूर्वी नापि पश्चानुपूर्वीति ।

प्रश्न—आनुपूर्वी (क्रम) दो प्रकार की है, एक पूर्वानुपूर्वी और दूसरी पश्चादानुपूर्वी, प्रवान क्रमको पूर्वानुपूर्वी कहते हैं और अप्रधान क्रमको पश्चादानुपूर्वी, उनमें यह नमस्कार यदि पूर्वानुपूर्वी से किया गया मानें तो 'अरिहताण' से पहले 'सिद्धाण' कहना चाहिये, क्योंकि कृतकृत्य होने तथा अरिहन्तोंसे नमस्कार किये जाने के कारण सिद्ध भगवान अरिहन्तों से भी श्रेष्ठ हैं, यदि पश्चादानुपूर्वी से मानें तो सब से प्रथम साधु, तब उपाध्याय, अनन्तर आचार्य, तदनन्तर अरिहन्त, बादमें सिद्ध को नमस्कार किया जाना चाहिये, न कि उक्त रीतिसे, अतः यह नमस्कार आनुपूर्वी (क्रम) से रहित है, इत्यादि ।

प्रश्न—आनुपूर्वी [क्रम] में प्रकारनी छे अेक पूर्वानुपूर्वी अने पीछे पश्चादानुपूर्वी प्रधान कभने पूर्वानुपूर्वी कडे छे, अने अप्रधान कभने पश्चादानुपूर्वी कडे छे, तेमा आ नमस्कारने जे पूर्वानुपूर्वीथी करेला छे अेभ मानथे तो अरिहताण वी पडेला सिद्धाण कडेवु जेऽअे कारण उे कृतकृत्य थवाथी तेमज् अरिहन्तोअे तेमने नमस्कार करेला छे ते कारणथी सिद्ध भगवान अरिहन्तोथी पछे श्रेष्ठ छे हवे जे पश्चादानुपूर्वीथी मानथे तो औधी प्रथम साधु, ते पछी उपाध्याय, अनन्तर आचार्य, त्थार पछी अरिहन्त अने देवटे सिद्धने नमस्कार करवे जेऽअे नहि के उपर प्रथम कडेवा प्रभावे अे कारणथी आ नमस्कार—पद्धति आनुपूर्वी (क्रम)थी रहित छे वगेरे

१—'अभ्यर्हित च' इति (का. वा १।४।१२) वचनेनाऽभ्यर्हितस्य पूर्वप्रयोगविधानात् ।

दयो भजनीयाः (कचित्सभयन्ति कचिन्न), इति सामान्यतः साधुशब्देन नमस्कारेऽर्हन्नमस्कारजन्यस्य विशिष्टफलस्य प्राप्तिर्न जातु समयति, नहि नरसामान्य नमस्कारेण राजादिनमस्कारजन्य विशिष्ट फल कचिदपि दृष्टवम् । नरसामान्यग्रहणेन विशिष्टराजादिपरिज्ञानस्य तत्प्रसादस्य चैकान्तमसम्भवादिति सामान्यतो नमस्कारद्वेषिय विशिष्टफलानुत्पादकत्वादुपेक्ष्य पञ्चविधो नमस्कार आश्रित इति सक्षेपत एषाय नमस्कारो न विस्तरत इति ।

ही फल होता है, अरिहन्त आचार्य आदि के नमस्कार का नहीं, क्योंकि नमस्कार ऐसे शब्दों से किया जाता है जिनसे नमस्करणीयमें रहे हुए असाधारण गुणोंका बोध होसके, अरिहन्त आचार्य आदिमें रहे हुए गुणोंका बोध अरिहन्त आचार्य आदि शब्दों से ही होसकता है, साधुशब्दों से कदापि नहीं ! जैसे कोई यह जानकर कि राजा भी तो मनुष्य ही है, मनुष्य शब्दसे राजाको नमस्कार करना चाहे तो वह राजाके नमस्कार का फल नहीं प्राप्त कर सकता है, राजाके नमस्कारके लिए उसका परिचायक शब्द चाहिये, अत एव जितने शब्दों के विना विशेष-विशेष अवस्था में रहे हुए अरिहन्त सिद्ध आदिकों का ग्रहण होना असम्भव था, उतने शब्दोंका ग्रहण करनेपर भी यह पंच नमस्कार सक्षेपसे ही है विस्तारसे नहीं ।

छे-भणे छे पञ्च आचार्य आदिना नमस्कारानु इण भणतु नथी, कारणु छे - नमस्कार अेवा शण्ठेथी करवामा आवे छे के रेना वडे नमस्करणीयमा रहेला असाधारणु गुणोना बोध थछे शके अरिहन्त, आचार्य आदिमा रहेला गुणोना बोध अरिहन्त आचार्य वगेरे शण्ठेथीन थछे शके छे, परन्तु साधु शण्ठेथी कदापि थछे शकसे नहि नेम केछे माने के राजा पञ्च मनुष्य छे मनुष्य शण्ठेथी राजाने नमस्कार करवा छेछा करे तो ते माणुस राजाने नमस्कार करवानु इण प्राप्त करी शकसे नहि राजाने नमस्कार करवा माटे राजाना नामने परिचय करवना शण्ठेथी उपयोग करवे जेछे अे कारणुथी जेटला शण्ठे विना विशेष-विशेष अवस्थामा रहेला अरिहन्त सिद्ध आदि सौनु अर्हणु करवु असम्भव छे जेजला शण्ठेनु अर्हणु करता छताय आ पचनमस्कार सक्षेपथीन छे, विस्तारथी नहि

छद्मस्थतीर्थङ्करादिक्रमपेक्षामहे, किं तर्हि ? समुत्पन्नज्ञानदर्शनधराऽर्हदादिक्रममेव, तस्मात्तीर्थमवर्तकत्वादेशनयाऽपारससारपारावारोत्तारणेन भव्येभ्यः सिद्धगति-पदत्वाच्चाहन्त एवाऽभ्यर्हन्तीत्येवामेव युक्तः प्रथमो नमस्कारः ।

ननु तर्वाचार्योपदेशतोऽपि कदाचिद्भवैरर्हतामवगतेराचार्यादिरेव क्रमो विधेयो नार्हदादिः, न च तथा विहितोऽस्ति, तस्माद् यो यस्योपदेशकस्तस्य तदपेक्षयाऽभ्यर्हितत्वेन प्रागुपादानमिति त्वदुक्तमयुक्तम्, तथा सति हि गौतमादिगणधरादिभिरर्हदेशनया सिद्धाना, गौतमादिशिष्योपशिष्यादिभिश्च स्वस्वगुरुपदेशतः सिद्धादीना परिज्ञानाद्गणधराणामर्हदादिस्तच्छिष्यादीना चाऽऽचार्यादिः क्रम आपयेतेति पूर्वपक्षिसमाक्षेपः ।

नहीं सकते हैं, इसलिये नमस्कार मन्त्र से कहे हुए अरिहन्त पदसे केवली अरिहन्तोंका ही ग्रहण है, जो कि सिद्ध भगवानके स्वरूप का भी उपदेश देकर भव्यों के अत्यन्त उपकारी है, अतः यह नमस्कार पूर्वानुपूर्वी से किये जाने के कारण क्रमशून्य नहीं है ।

प्रश्न—जैसे अरिहन्तके उपदेशसे सिद्ध भगवानका ज्ञान भव्यों को होता है वैसेही आचार्यके उपदेशसे अरिहन्तोंका ज्ञान होना सम्भव है, ऐसी अवस्थामें अरिहन्तकी भी अपेक्षा आचार्य ही को प्रथम नमस्कार होना चाहिये, अतः उपदेशक के क्रमसे यह नमस्कार किया गया है, ऐसा कहना उचित नहीं ।

ज्ञान उत्पन्न थयेले नथी तेथी तेजाने अरिहन्त अथवा सिद्ध शण्ढथी कडी शक्य न नहिं ओटला भाटे नमस्कार मत्रमा कडेला अरिहन्त पढथी केवली अरिहन्तानु न अहणु थरु शके, जे अरिहन्त, सिद्ध लगवानना स्वरूपने उपदेश आपीने लव्य लवने अत्यन्त उपकारी छे जे कारणुथी आ नमस्कार पूर्वानुपूर्वीथी करवामा आव्या छे तेथी कभशून्य नथी

प्रश्न—जे प्रमाणे अरिहन्तना उपदेशथी लव्य लवने सिद्ध लगवाननु ज्ञान थाय छे, तेथीजे रीते आचार्यना उपदेशथी अरिहन्तानु ज्ञान थवा सलव छे जेवी स्थितिमा अरिहन्तनी अपेक्षजे पणु आचार्यने न प्रथम नमस्कार थवा जेजजे जे कारणुथी उपदेशकना कभथी आ नमस्कार करवामा आव्या छे जेभ कडेपु ते जेव्य नथी

તત્રોચ્યતે—નમસ્કારમૂરમ્દિ નાનુપૂર્વીમતિર્ત્તે પૂર્વાનુપૂર્વ્યાઃ સદ્ભાવાત, યદુક્તમ્—‘અભ્યર્હિતત્વેનાદૌ સિદ્ધાભિધાન યુક્તમ્’ ઇતિ, તન્મન્દમ્, અર્હદુપદેશે- નૈવ સિદ્ધાવગતેરર્હતામેત તદપેક્ષયાઽપ્યભ્યર્હિતત્વાત્ કૃતસકલકૃત્યત્વસ્ય ચો ભયત સામ્યાત્, અર્હન્નમસ્કાર્યત્વ તુ ન હેતુઃ, યતો ભૂતા ભાવિનશ્ચાનન્તાઃ સિદ્ધા અપિ કદાચિચ્છદ્ધસ્થાવસ્થાયા કૃતાર્હન્નમસ્કારા એવ । ઝદ્ધસ્થા’ સન્તો મગવ- ન્તોઽર્હન્તો નમસ્કુર્વન્તિ ચેદ્ગુણાધિકાન્ સિદ્ધાન્નમસ્કુર્વન્તુ નામ, નૈતાવતા ન’ કિશ્ચિદાચ્છિન્તે કેવલોત્પન્નાવેવાર્હત્ત્વપ્રાપ્તિસ્તદાનીમર્હત્ત્વાસન્નાત્ । ન ઠિ ત્રય

ઉત્તર—નમસ્કાર કરને વાલે ભવ્યોં કે લિપ્ સિદ્ધિ મગવાન કી અપેક્ષા વ્યવહારનયસે અરિહન્ત હી મેં પ્રધાનતા હૈ, કારણ યહ કિ સિદ્ધોં કા મી જ્ઞાન ભવ્યોં કો અરિહન્તોં કે હી ઉપદેશસે હોતા હૈ, સાથ હી તીર્થપ્રવર્ત્તક હોને સે અપની દેશના દ્વારા ભવ્યોં કો મવસમુદ્રસે પારકર સિદ્ધગતિ તક પહુંચાનેવાલે અરિહન્ત હી હૈં, રહી વાત કૃતકૃત્યતા ઓર અરિહન્તસે સિદ્ધોંકો નમસ્કાર કિયે જાને કી, સો દોનો મેં વરાવર હૈ, ક્યોંકિ અરિહન્તકા મી કોઈ કર્તવ્ય વાકી નહી રહ પાયા હૈ ઓર અનન્ત સિદ્ધોં મેં સે માવી (હોને- વાલે) સિદ્ધ મી છદ્ધસ્થ અવસ્થા મેં અરિહન્તકો નમસ્કાર કરતે હી હૈં, અતએવ છદ્ધસ્થ અવસ્થામે અરિહન્ત સિદ્ધોં કો ઓર ભાવિ સિદ્ધ અરિહન્તોં કો નમસ્કાર કરતે હૈં, ક્યોંકિ ઉસ અવસ્થામે કેવલજ્ઞાન ઉત્પન્ન ન હોને કે કારણ ઉનકો અરિહન્ત યા સિદ્ધ શવ્દ સે કહ હી

ઉત્તર—નમસ્કાર કરવાવાળા ભવ્ય જીવો મારે સિદ્ધ ભગવાનની અપેક્ષા વ્યવહારનયથી અરિહન્તોની પ્રધાનતા છે કારણ કે સિદ્ધો પણ જ્ઞાન ભવ્ય જીવોને અરિહન્તોના ઉપદેશથી થાય છે તેમજ તીર્થપ્રવર્તક હોવાથી પોતાના ઉપદેશ દ્વારા ભવ્ય જીવોને ભવ સમુદ્રથી પાર ઉતારીને સિદ્ધગતિ સુધી પહોચાડનારા અરિહન્ત જ છે હવે કૃતકૃત્યની અને અરિહન્તો સિદ્ધોને નમસ્કાર કરે છે તે વિષેની વાત કરવી રહી તે બન્નેમા ધરાબર છે, કારણ કે અરિહન્તને પણ કોઈ કર્તવ્ય ષાકી રહ્યું નથી અને અનન્ત સિદ્ધોમાથી ભાવિમા થવાવાળા સિદ્ધ પણ છદ્ધસ્થ અવસ્થામા અરિહન્તને નમસ્કાર કરે છે જ એ કારણથી છદ્ધસ્થાવસ્થામા અરિહન્ત સિદ્ધોને અને ભાવિ સિદ્ધો અરિહન્તોને નમસ્કાર કરે છે કારણ કે તે અવસ્થામા કેવલ

पकृष्टत्वबोधनपूर्वकपरनिष्ठोत्कृष्टत्वप्रकारकज्ञानानुकूलः शिरोमनादिलक्षणो व्यापारविशेषः । 'सव्वपावप्पणासणो' सर्वपापप्रणाशनः, सर्वाणि=निखिलानि अष्टावपीत्यर्थः, प=पङ्किलमर्थान्मलिनभावमापयन्ति=प्रापयन्तीति, पे=पाताले-  
ऽर्थान्नरकाद्यधोगतौ आपयन्ति=प्रापयन्तीति, प=क्षेमम्, आ=समन्तात्  
पिबन्ति=शोपयन्तीति, नरकादिकुगतिषु जीवान् पातयन्तीति, ऋतुपतभाव-  
रजोभिरात्मान 'पाशयन्ति=मलिनयन्तीति वा 'पापानि=ज्ञानावरणीयादि-  
कर्माणि, तेषां प्र=प्ररूपेण 'नाशन'=वि वसक, 'च' किञ्च, 'सव्वेसिं' सर्वेषां  
'मगलाण' मङ्गलानां=द्रव्यभावभेदभित्तानां, निर्द्धारणे पण्ठी, तेन सर्वेषु मङ्गले-  
ष्वित्यर्थः, 'पढम' प्रथम=मुख्यमिति यावत् मङ्गल 'हवइ' भवति-अस्तीत्यर्थः ॥१॥

॥ इति नमस्कारमन्त्रव्याख्या ॥

अपेक्षा अन्य को अन्तःकरण से उत्कृष्ट समझते हुए शिर आदि पाच अंगो को झुकाना) आत्मा को मलिन करने वाले, अथवा नरकादि कुगति में पहुँचाने वाले, या आत्मकल्याण का नाश करनेवाले सब (आठों) पापों (ज्ञानावरणीयादि कर्मों) का नाश करने वाला, तथा द्रव्य-भावरूप सर्व मंगलों में श्रेष्ठ मंगलस्वरूप है ॥१॥

॥ इति नमस्कारमन्त्रव्याख्या ॥

'एसो' धत्यादि आ पय-परमेष्ठि-नमस्कार ( पोतानी अपेक्षा अन्यने अन्त करण्ठी उत्कृष्ट समझने भस्त्रक आदि पाये अगोने नभावपु), आत्माने मलिन करवावाणा अथवा नरकादि कुगतिभा लध ननारा, अथवा आत्मकल्याण नाश करवावाणा सर्व(आठ)पापों(ज्ञानावरणीयादि कर्मों)ना नाश करना तथा द्रव्य-भाव-रूप सर्वमंगलोंभा श्रेष्ठ मंगल-स्वरूप छे ॥ १ ॥

॥ धति नमस्कार-मन्त्र-व्याख्या ॥

१- पाशुः=बुलिः । 'पाशुर्ना न द्वयोरज ' इत्यमरः, सोऽस्यास्तीति पाशुमान्, पाशुमन्त कुर्वन्ति पाशयन्ति, 'तत्करोति तदाचष्टे' इति णिचीष्टवद्भावाद्दिमन्तोर्लृगिति मत्तुपो लृक् तत्तष्टिलोपः ।

२- पापशब्दस्य तज्जनके लक्षणयाऽत्र कर्माष्टरूपरत्वम् ।

३- 'नाशन' नन्वादित्वात्कर्त्तरि ल्यु ।



अत्राभिधीयते—योऽयमुपदेशक्रमोऽपेक्षितस्तत्र सर्वप्राथम्यमर्हतामेव, गणधरेभ्यो लर्हतामेव प्रथममुपदेश', तदितरे गुर्वाचार्यादयस्तु केवलमर्हदुपदिष्टस्यैवानुवदन्त इति यत्रपि तदुपदेशेन सिद्धादयो ज्ञायन्ते तथापि तस्मिन्नुपदेशे ते न स्वतन्त्रा अपि लर्हदुपदेशाधीना एवेति प्रोक्तोऽर्हदादिक्रम इत्यास्ता विस्तरः॥ इत्थं नमस्कृत्य तत्फलमाह—

॥ मूलम् ॥

एसो पचनमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो ।

मगलाण च सव्वेसिं, पढम हवइ मगल ॥१॥

॥ छाया ॥

एप पञ्चनमस्कार, सर्वपापप्रणाशन' ।

मङ्गलाना च सर्वेपा, प्रथम भवति मङ्गलम् ॥१॥

(टीका)

‘एसो’—एप=प्रागुक्तस्वरूप. ‘पचनमुक्कारो’ पञ्चनमस्कार’, पञ्चा नाम्=अर्हत्सिद्धाचार्योपायायसर्वसाधुरूपाणा परमेष्ठिना ‘नमस्कारः=स्वनिष्ठा-

उत्तर—आचार्य आदि का उपदेश गणधरों के प्रति अरिहन्त भगवानसे किये गये प्रथम उपदेश का ही अनुवाद है स्वतन्त्र नहीं, इसलिये आचार्य आदि के उपदेशसे जो अरिहन्तका ज्ञान होता है उसमें भी कारण अरिहन्त ही हैं, अत एव अरिहन्तको नमस्कार पहले किया गया है ।

अब नमस्कारका फल कहते हैं—

‘एसो’ इत्यादि । यह पचपरमेष्ठियोंका नमस्कार (अपनी

उत्तर—आचार्य आदिना उपदेश गणधरों प्रति अरिहन्त भगवाने करेला प्रथम उपदेशेना न अनुवाद छे, स्वतन्त्र नहीं ओ कारणथी आचार्य आदिना उपदेशथी ने अरिहन्तनु ज्ञान थाय छे तेमा पणु अरिहन्त न कारण इय छे ओठले अरिहन्तने प्रथम नमस्कार करवाभा आन्था छे हवे नमस्कारनु क्षण कडे छे

१- नम.पूर्वकात् कृगतोर्भावे घञ्, ‘साक्षात्प्रभृतीनि च’ (१।४।७४) इति नम.शब्दस्य गतिसञ्ज्ञाया ‘कुगतिप्रादय’ (२।२।१८) इति समासे ‘नमस्पुरसोर्गत्यो’ (८।३।४०) इति नम शब्दस्य विसर्गस्य सत्वम् ।

॥ टीका ॥

भन्दते=कल्याण सुख वा प्रापयतीति 'भदन्तः', यद्वा भव=ससार-  
मन्तयति=दूरीकरोतीति,<sup>२</sup> अथवा भवस्य=ससारस्याऽन्तो =ऽवसान येनेति  
<sup>३</sup>भवान्तः । यद्वा भयस्य=जन्मजरामरणरूपस्यान्तो=नाशो येनेन्त भयान्तः  
स एव <sup>४</sup>भदन्त इति वा, अपि वा भय ददतीति भयदा भोगास्तानन्तयतीति  
<sup>५</sup>भदन्तः, यद्वा दान्त=दमित भय येन स भयदान्त स एव 'भदन्तः । किंवा भान्ति=  
दीप्यन्ते-समुल्लसन्तीत्यर्थात् स्वस्वविषयेष्विति भानि=इन्द्रियाणि तानि दान्तानि येन  
स भदान्तः स एव <sup>७</sup>भदन्तः, अथ च भाति=सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र्यैर्दीप्यते इति

'करेमि भते' इत्यादि । हे भदन्त=कल्याण तथा सुखको  
देने-वाले, अथवा हे भवान्त=ससार का अन्त करनेवाले, अथवा  
हे भयान्त=जन्मजरामरणरूप भय तथा इहलोकादि सात भयों का  
अन्त करनेवाले, अथवा हे भयदान्त=अर्थात् कामभोगों का नाश  
करनेवाले, या भयद=भयका दमन करनेवाले, अथवा हे भदान्त=  
भ-इन्द्रियगण, उसका दमन करनेवाले, अथवा हे भान्त=सम्यग्-

करेमि भते इत्यादि हे भदन्त=कल्याण तथा सुखने देवावाणा, अथवा  
हे भवान्त=ससारने अतः करवावाणा, अथवा हे भयान्त=जन्म जरा मरण इत्य  
अथ तथा इहलोकादि सात अथने अतः करवावाणा, हे भयदान्त=अर्थात् काम  
लोगोने नाश करवावाणा, अथवा हे भदन्त=भ- अष्टके इन्द्रियगणनुं दमन

१-'भदन्तः'-अन्तर्भावित्यर्थात् 'भदि कल्याणे सुखे च' अस्मादीणादि-  
केऽन्तप्रत्यये पृषोदरादिपाठाद्वातुनकारलोपः ।

२-भवान्तः (भदन्तः) 'कर्मण्यण्' (पा० ३।२।१) इत्यण्, शकन्वा-  
देराकृतिगणत्वात्पररूपे पृषोदरादिपाठादस्य दः ।

३-'भवान्तः'—व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिं पररूपादेशो प्राग्वत् ।

४-'भयान्तः'—पृषोदरादित्वात्सिद्धः ।

५-'भयदान्तः'—कर्मण्यणन्तभयदान्तशब्दस्य पृषोदरादित्वाद् भदन्त इति ।

६-'यद्वा-भयदान्तः' निष्ठान्तस्य परनिपात आहिताग्न्यादिपाठाद्, यलोपो  
इत्स्वथ पृषोदरादिकृतः ।

७-'भदान्तः'—निष्ठान्तपरनिपातः प्राग्वत्, पृषोदरादित्वादाकारस्य इत्स्वः ।

। अथ प्रथमाध्ययनम् ।

नलकृष्टाया भूमौ निपुणेन केनापि कृपीमूलेन बीजमुपयते इति हेतोः  
प्रोक्तेभ्यश्च हेतुभ्योऽर्हदादिपञ्चक नमस्कृत्य शिष्यः सामायिक चिकीर्षन्नाह—

॥ मूलम् ॥

करेमि भन्ते ! सामाज्य, सर्वं सावज्ज जोग पञ्चखामि  
जावजीवाए, तिविह तिविहेण मणेणं वायाए काएण न करेमि  
न कारवेमि करतपि अन्न न समणुजाणामि, तस्स भन्ते !  
पडिक्कमामि निन्दामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥सू० १॥

॥ छाया ॥

करोमि भदन्त ! सामायिक, सर्वं सावय योग प्रत्याख्यामि यावजीवया,  
त्रिविध त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न  
समनुजानामि, तस्य भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हामि आत्मान  
व्युत्स्रजामि ॥ १ ॥

जैसे कोई भी चतुर किसान परत (बिन-जोती) जमीनमें  
बीज नहीं बोता, और कोई यदि बोये भी तो वह बीज व्यर्थ जाता  
है, वैसेही पंचपरमेष्ठी-नमस्कार से हृदयक्षेत्र को पवित्र किये बिना  
सामायिक सफल नहीं हो सकती ! अतएव शिष्य पहले नमस्कार  
करके सामायिक करता है—

वेम डेअं यतुर पेडुत पेडथा विनानी ज्भीनभा भी वावते। नथी अने  
वावे तो ते भी नकासु जय छे तेम पञ्च-परमेष्ठी-नमस्कारथी हृदयक्षेत्री  
ज्भीनने पवित्र उर्या विना सामायिक सङ्ग नथी थड थकती ! तेदला भाटे शिष्य  
प्रथम नमस्कार करे छे

१-प्राकृतशैल्या 'अत एत्सो पुसि, (८।४।२८७) इति प्राकृतसूत्रेणैकारादेशे  
'भन्ते' इति सिद्धम् ।

समाचरामि । एव प्रतिज्ञाय सामायिकविधिस्वरूपमाह—‘सव्य’ इत्यादिना, न वदितु योग्यम्=अवग्रम् अवग्रयेन=सकलतीर्थकरणपरादिविगर्हितेन (पापेन) सह वर्तत इति सावद्यो=निन्यः, युज्यत इति योजनमिति वा २योगः= कायिक—वाचिक—मानसिकव्यापारः, त सावद्य योग ३प्रत्याख्यामि=

चिन्तामणि कल्पवृक्ष कामधेनु स्पर्शमणि आदि से भी उत्कृष्ट, सासाररूपी गहन वनमें भटकते हुए जीवों के सारे दुःखोंका नाश करने वाले सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र्यसे युक्त आत्मस्वरूप की प्राप्तिरूप सामायिक करता है । अत एव यावज्जीवन (जीवन भर के लिए) मैं सर्व सावद्य व्यापार का तीन करण तीन योग से त्याग

कल्पवृक्ष, कामधेनु, स्पर्शमणि विगरेथी पणु अतिश्रेष्ठ जगतइपी लय कर अटवीभा लटकता प्राणीओना गधा दुःखेना नाश करना, सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्र्यी युक्त आत्मस्वरूपनी प्राप्तिइय सामायिक करे छु अटला भाटे यावज्जीव (जिहगीलर) हुं दरेक सावद्य व्यापारने त्रणु करणु त्रणु योगी त्याग करे छु

\*—समताभाव की प्राप्ति हुए बिना रागद्वेषका क्षय नहीं होसकता, रागद्वेष का क्षय हुए बिना केवलज्ञान केवलदर्शन की प्राप्ति नहीं होसकती, और केवलज्ञान केवलदर्शन की प्राप्ति हुए बिना मुक्ति नहीं मिल सकती, इसलिए मोक्ष का मूल कारण सामायिक ही है, अतएव इसे केवल सासारिक सुख के देनेवाले चिन्तामणि पारसमणि आदि से भी उत्तम कहा है ।

x समता भावनी प्राप्ति विना रागद्वेषने क्षय थतो नथी अने रागद्वेषना क्षय विना केवलज्ञान केवलदर्शननी प्राप्ति थती नथी अने केवलज्ञान केवलदर्शननी प्राप्ति विना मुक्ति भलती नथी मोक्षतु भूणसाधन सामायिक ज छे, अथी सामायिक, केवल सासारिक सुख आपनार चिन्तामणि पारसमणि आदिथी पणु उत्तम कडेल छे

१—‘अवग्रम्’—ननुपपदाद्वदे ‘वद सुपि क्यप् च (३।१।१७६) इति प्राप्ता यत्क्यपौ प्रवाध्य “अवग्रपण्यव्यां गर्हणणितव्यानिरोपेणु (३।१।१०१) इतिनिपातनाद्गर्हाया यत् । यत्तु ‘वदितु योग्य वन्न, न नत्रमवन्न’—मिति व्याख्यान तद्व्याकरणतत्त्वानवबोधमूलकमेव, ननुपपदादेव वदधातोर्त्यप्रत्ययनिपातनस्य प्रागुक्तत्वात् ।

२—योगः—‘युजिर् योगे’ अस्माद्धन् ।

३—प्रत्याख्यामि=प्रत्याहपूर्वकस्य रथा ‘प्रथने’ इत्यस्य रूपम् ।

भान्तः स एष भदन्तः, (एष यथामति व्युत्पत्त्यन्तरेऽपि निरुक्तोक्तशाकटा यनादिमतिपादितरीत्या साधनप्रक्रिया बोद्धव्या ।) तत्सम्बोधने-हे भदन्त ! = हे भगवन् ! अह, समो=रागद्वेषरहितस्तस्याऽऽयो=गमन प्रवृत्तिरिति यावत्, अथ वा समाना=सम्यग्ज्ञानादिरत्नत्रयस्य आयो=लामः, यद्वा समानि=ज्ञानादीनि तेषु तैर्वा आयो=गमनम्, अपि वा समो=रागद्वेषान्प्रसृष्टान्तःकरण=स्ववन्निखिलभूत दर्शी विशुद्ध आत्मा तुच्छितानल्पचिन्तामणिरूपतरुक्रामप्रेतुभिर्गहनभगवद्गहन परिभ्रमणजसलेशकेशनाशकैरपूर्वेर्ज्ञानदर्शनादिभिः सट्टत्वात् तस्याऽऽयः=प्राप्तिः-स्वात्मविशुद्धीकरणमिति यावत्, समायः ३स एव ३सामायिक, तत् करोमि=

ज्ञान दर्शन चारित्रसे देदीप्यमान ! भगवन् ! (गुरुमहाराज ! ) मैं सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयकी प्राप्ति, अथवा रागद्वेषसे रहित, समस्त जीवों को अपने समान देखनेवाले तथा

करवावाणा, अथवा हे भान्त=सम्यग्ज्ञान दर्शन चारित्रशी सुशोभित हे भगवन् ! (गुरुमहाराज ! ) हे सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन अने सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयकी प्राप्ति अथवा राग अने द्वेषशी रहित, इदं प्राणीने भारी जेभ जेवावाणे। तथा शिवाभि,

१-‘भान्तः’—‘भा दीप्तौ’ अस्मादीणादिकोऽन्तः प्रत्यय , सिद्धिः पृषोदरादित्वादेव ।

२-‘शैत्य हि यत्सा प्रकृतिर्जलस्य’ इत्यादिषु यथेच्छमुद्देश्यगत विधेयगत वा लिङ्गमादाय त्यदादिप्रयोगस्य सुप्रसिद्धत्वादन समायशब्दगत पुस्त्वमादाय ‘स’ इति । तदुक्त-‘ किं यत्तत्सालालाङ्गलङ्कुदखुरविपाण्यर्थरूप स शब्दः ’ इति पस्पशाह्निकभाष्यप्रतीकमादाय कैयटे-‘उद्दिश्यमानप्रतिनिर्दिश्यमानयोरेकत्वमापादयन्ति सर्वनामानि पर्यायेण तत्तल्लिङ्गमुपाददते इति कामचारतः स शब्द इति पुल्लिङ्गेन निर्देशः’ इति ।

३-‘विनयादिभ्यष्टक् (५ । ४ । ३४) इत्यत्रत्यगणे समायशब्दस्य पाठात्स्वार्थे ठक्, तस्येकादेश रिच्चादादिवृद्धि । यत्तु क्वचिदुक्त-‘ विनयादिषु ‘समय’ शब्द एव पठ्यते न तु समायशब्दस्तस्मादेकदेशविकृतस्याऽनन्यत्वात्समयशब्देन समायशब्दस्यापि ग्रहणम्’ । यद्वा ‘विनयादेराकृतिगणत्वाद्गति’ तदुभयमप्यसारम्, समयशब्दवत्समायशब्दस्यापि विनयादिगणे प्रतिपदोक्तपाठाद्विनयादेराकृतिगणत्वे प्रमाणाभावाच्च ।

त्यादिना प्रतिपदमेवोक्तम्, एव सति त्रिविधेनेत्युपादान पुनरुक्त भवति । यद्वा त्रिविधेनेति विशेषण मनसेत्यादेरेव सभवति, ततश्च त्रिविधेन मनसा, त्रिविधया वाचा, त्रिविधेन कायेनेत्यन्वये मनोवाक्याना प्रत्येक त्रैविध्यं प्राप्नोति, तच्चानिष्ट, नद्यत्र मनभादीनि प्रत्येक त्रैविध्यमर्हन्ति किं तर्हि ? तद्व्यापारा एवेति चेन्न, तदभावे हि मनसा वाचा कर्मणेत्येतावन्मात्रोक्तौ 'न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामी'—त्यनेन सह "यथासङ्ख्यमनुदेगः समानाम्" (१।३।१०) इति वचनानुरोपेन "आग्रन्तौ टकितौ" (१।१।४६) इत्यादिवत्, "शत्रु मित्र विपत्तिं च जय रज्जय भञ्जये"—त्यादिवत् 'एचोऽय-

'मनसा' (मनसे) 'वाचा' (वचनसे) 'कायेन' (कायसे) कहने से पुनरुक्ति (कहे हुएको पुनः कहना) होती है । या (तीन प्रकारसे) यह विशेषण 'मन, वचन, काय' का ही होसकता है । यदि ऐसा मान लिया जाय तो इसका अर्थ होगा कि 'तीन प्रकारके काय से' आरम्भ न करें । अर्थात् मन वचन काय के तीन तीन भेद होंगे । ऐसा अर्थ शास्त्रविरुद्ध है, शास्त्रों में भगवानने मन आदि के तीन तीन भेद नहीं बताये हैं, किन्तु मन आदि के व्यापारो को तीन प्रकार का बताया है ।

उत्तर—यह शका ठीक नहीं है । यदि 'त्रिविधेन' न कहकर केवल 'मनसा वाचा कायेन' कह देते तो अर्थ ठीक नहीं बैठता, क्यों कि जैसे कोई कहे कि 'हेय और उपादेयको त्यागो और

वाचा (वचनार्थी) कायेन (कायाधी) कडेवाधी पुनरुक्ति (कडेलाने करी कडेपु) थाय छे आ 'त्रय प्रकारे' छे विशेषण 'मन, वचन, काया'नुं न छे छे शके छे ने छे भ मानवाभा आवे तो छेनेो अर्थ छेवेो थशे के 'त्रय प्रकारना मनधी, त्रय प्रकारना वचनधी अने त्रय प्रकारनी कायाधी' आरभ न करे अर्थात् मन, वचन, कायाना पथु त्रय त्रय छेद भनशे, छेवेो अर्थ शास्त्रविरुद्ध छे शास्त्रभा लगवाने मन आदिना त्रय छेद भताव्या नधी, परतु मन आदिना व्यापारेने ते त्रय प्रकारना भताव्या छे

उत्तर—छे श का भराभर नधी ने त्रिविधेन न कडीने डेवण मनसा वाचा कायेन कछु छेत् तो अर्थ भराभर भध भेसत् नछि, कारण के केछ भेभ कडे के 'डेय अने उपादेयने त्यागो अने अहणु करे' तो छे वाक्यभा कमानुसार छेयनी

सर्वाथा परित्यजामीत्यर्थः । यद्वा 'प्रत्याचक्षे' इति-ज्ञाया, अस्याप्यर्थः प्राग्वदेव, केवल धातुरेयातिरिच्यते-'चक्षिष् व्यक्ताया वाची'-ति । कियत्कालार्थं प्रत्याख्यामी ? त्याह-'यावज्जीवये'-ति, अत्र यावच्छब्दः परिमाणार्थको मर्यादार्थकोऽप्रधारणार्थकश्चाऽव्ययः । जीवन=जीवा, तथा जीव्या जीवामित्यर्थः, यावन्मम जीवनपरिमाण तावत्प्रत्याख्यामीति जीवन मर्यादीकृत्यार्थान्न केवल मरणकाल एवाऽपि तु ततः प्रागपि प्रत्याख्यामीति, जीवन एव न तु तदुत्तरार्थमपि प्रत्याख्यामीत्यर्थः । कीदृशं तं योगं प्रत्याख्यामी ? त्याह 'त्रिविध'-मिति-तिस्रो विधाः=प्रकारा यस्य तं कृतकारितानुमतरूप मनोवाक्याव्यापारम् । तत्र कृत=स्वतन्त्रेणाऽऽत्मना सम्पादित, कारितम्=अन्यद्वारा सम्पादितम्, अनुमत=सावद्यव्यापारमारभमाणस्य 'तया सम्यक् क्रियते, एवमेव क्रियता'-मित्यादिना, यद्वा चक्षुषा दृष्टस्यापि तूष्णीमवस्थानेन निषेधाग्रकरणत्प्रोत्साहितम् । त्रिविधेन=प्रकारत्रयविशिष्टेन कारणभूतेन, केन तेने ?-त्याह-'मनसा' वाचा कायेनेति । ननु त्रिविधेनेत्यनेन यत्प्रकारत्रयं गृह्यते तत् मनसे-

करता हूँ । तीन कारण ये हैं- कृत कारित-अनुमोदित । कृत अपनी इच्छासे स्वयं करना, कारित दूसरे व्यक्ति से कराना, अनुमोदित-जो सावद्य व्यापार कर रहा हो उसे अच्छा समझना । तीन योग ये हैं—(१) मन, (२) वचन, (३) काय ।

प्रश्न-सूत्रमें 'त्रिविधेन' (तीन प्रकार से) कहा ही है फिर

त्रयुं करण्युं आ छे—(१) कृत, (२) कारित, (३) अनुमोदित

कृत-प्रेतानीं छेछाथीं प्रेते करण्युं

कारित-धीलु व्यक्ति पास करण्युं

अनुमोदित-जे सावद्य व्यापार करी रह्यो होय, तेने साइं जण्युं

त्रयुं योग आ छे (१) मन, (२) वचन, (३) काय

प्रश्न-सूत्रमा त्रिविधेन (त्रयुं प्रकारे) कहेलु जे छे, पछी मनसा=(मनशी),

१- जीवा- 'जीव प्राणधारणे' अस्मात् 'गुरोश्च हल' (३।३।१०३) इति वचनेन द्वियामकारप्रत्यये स्त्रीत्वाद्वाप, 'ईहा, ऊहा' इत्यादिवत् ।

२-'जीवया' - 'ततोऽन्यत्रापि दृश्यते' इति वचनबलात्तावच्छब्दयोगे द्वितीयाया प्राप्तावप्यार्पत्वाच्चृतीया ।

तत्प्रकारान् दर्शयितु विशेषत आह—मनसेत्यादीति नास्ति पौनरुक्त्यम् । केचित्—  
‘मनसा वा वाचा वा कायेन वे’—ति विकल्पसग्रहार्थं त्रिविधेनेत्युक्तमित्यूचिरे । न  
कारयामीत्यत्राऽन्येनेति शेषः पूरणीयः । न समनुजामि=नानुमन्ये । ‘तस्येति  
तस्मात् सावययोगादित्यर्थः । ‘भते’ इति भदन्तेति सम्भोजन प्राग्बदेव, पूर्वा-  
नुवृत्त्यैवार्थसिद्धौ पुनः ‘भते’ इत्युक्तिः प्रारम्भवत् पर्यवसानमपि गुर्वामन्त्रण-  
पूर्वकमेव कर्तव्यमिति सूचनाय । यद्वा पुनरुच्चारणयत्नेनाऽनुवृत्तिरेव लभ्यते,

करूँ, परन्तु वे तीन प्रकार कौन-कौनसे हैं ? ऐसी जिज्ञासा होने पर  
विशेषरूपसे यथा दिया कि “मनसा वाचा कायेन” ये तीन प्रकार  
हैं, इसलिए पुनरुक्ति आदि कोई दोष नहीं है ।

अथवा मन, वचन और कायके निमित्तसे होनेवाले तीन  
भेदों का सग्रह करने के लिए ‘त्रिविधेन’ पद रखा है ।

व्याकरण में ‘भते’ शब्द अनेक प्रकार से सिद्ध होता है,  
इसलिए उसके अर्थ भी बहुतसे हैं । जैसे (१) कल्याण और  
सुखको देनेवाले, (२) ससार का अन्त करनेवाले, (३) जिनकी  
सेवा-भक्ति करने से ससारका अन्त हो जाता है वे, (४) जन्म-जरा  
मरणके भयका नाश करनेवाले-निर्भय, (५) भोगों को त्याग  
देनेवाले, (६) भय को दमन करनेवाले, (७) इन्द्रियोंका दमन  
करनेवाले, (८) सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, और सम्यक्चारित्र्य से

प्रकार क्या क्या छे ? ऐसी जिज्ञासा यथा विशेषरूपे यथा-नी आभ्यु के मनसा वाचा  
कायेन ये त्रय प्रकार छे ऐसी करीने पुनरुक्ति आदि दोष दोष यथा नथी

अथवा मन वचन अने कथाना निमित्ते यथारा त्रय वेदोने सग्रह  
करवाने भाटे त्रिविधेन शब्द राख्ये छे

व्याकरणमा भते शब्द अनेक प्रकारे सिद्ध थाय छे तथी ऐना अर्थ  
धर्या छे, जेवा के (१) कल्याण अने सुखने आपनार, (२) ससारने अंत करनार,  
(३) जेनी सेवाभक्ति करवाथी ससारने अंत आवी जाय छे ते, (४) जन्म जरा  
मरणना भयने नाश करनार, (५) भोगोने त्याग करनार, भयनु दमन करनार-  
निर्भय, (६) इन्द्रियोनु दमन करनार, (७) सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन अने सम्यक्



गयाचः' (६।१।७८) इत्यादिप्रवृत्ता क्रमिकान्यये 'मनसा न करोमि, वाचा न कारयामि, कायेन कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामी'—त्यनभीष्टोऽर्थ आपद्येत, तद्वारणार्थं त्रिविधेनेत्युक्तं, तेन मनसा न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि, वाचा न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामि, एव कायेन न करोमि न कारयामि कुर्वन्तमप्यन्य न समनुजानामीत्यर्थो भवति । यद्वा पूर्वं सामान्यतस्त्रिविधेनेत्युक्त्वा केन त्रिविधेनेति जिज्ञासाया

ग्रहण करो ।' तो इस वाक्य में क्रमसे 'हेय' के साथ 'त्यागो' का सम्बन्ध हो जाता है और 'उपादेय' के साथ 'ग्रहण करो' का । इसी प्रकार 'चोलपट्टा चद्दर पहनो, ओढो' कहने से यह अर्थ होता है कि 'चोलपट्टा पहनो और चद्दर ओढो', इसी प्रकार 'त्रिविधेन' (तीन प्रकार से) पद न रखते तो ऐसा अनिष्ट अर्थ हो जाता कि मनसे न करे, वचनसे न करावे और कायसे अनुमोदना न करे । इस अनिष्ट अर्थ का परिहार करने के लिए 'त्रिविधेन' पद रखने से यह अर्थ हुआ कि—(१) मनसे न करूँ, (२) न कराऊँ (३) न करते हुए को भला जानूँ । (४) वचन से न करूँ, (५) न कराऊँ, (६) न करते हुए को भला जानूँ । (७) काय से न करूँ, (८) न कराऊँ, (९) न करनेवाले को भला जानूँ ।

अथवा पहले सामान्यरूप से कहा है कि तीन प्रकार से न

साथे 'त्यागो'ना सम्बन्ध थछ् न्तथ छे अने 'उपादेयनी' साथे 'ग्रहण करो'ना सम्बन्ध् रीते 'चोलपट्टो आद्दर पडेरो ओढो' कडेवाथी अे अर्थ् थाय छे के चोलपट्टो पडेरो अने आद्दर ओढो अे रीते त्रिविधेन (त्रय प्रकारे) शण्ड न राण्यो छोट तो अेवो अनिष्ट अर्थ् थछ् न्तथ के मनथी न करे, वचनथी न करावो अने कायाथी न अनुमोदना करे अनिष्ट अर्थने परिहार करवाने भाटे त्रिविधेन शण्ड् आण्यो छे, अेम् त्रिविधेन शण्ड् आपवाथी अेवो अर्थ् थयो के—(१) मनथी न करे, (२) न करावु, (३) न करनारने लवो न्णु, (४) वचनथी न करे, (५) न करावु, (६) न करनारने लवो न्णु, (७) कायाथी न करे, (८) न करावु (९) न करनारने लवो न्णु

अथवा पडेला सामान्य रूपे कथु छे के 'त्रय प्रकारे न करे' परन्तु ते त्रय

स्तदर्थत्वाभावेन न तद्योग इदम्, कुप्यति कस्मै चिदित्याग्रसाध्वेवे'-ति। 'निन्दामि, गर्हामि' इत्यनयोस्तस्येत्यनेन प्रागुक्तेन सम्बन्धस्तेन सावययोगसम्बन्धिनीं स्वसाक्षिकीं गुरुसाक्षिकी च निन्दा करोमीति निर्गलितोऽर्थः, तस्येत्यत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठ्याः प्रागुक्तत्वात्। यद्वा 'आत्मान'-मित्यस्यैव मध्यमणिन्यायाद्देहली-दीपन्यायाद्वा व्युत्सृजामीत्यनेन निन्दामि, गर्हामि' इत्याभ्या च सम्बन्धस्तेन सावययोगकारिणमात्मान जुगुप्से, व्युत्सृजामि=विविधभावनया विशिष्य वा परित्यजामीत्यर्थः ॥सू० १॥

साक्षी से होती है। अथवा निन्दा साधारण कुत्साको कहते हैं और गर्हा अत्यन्त निन्दा को कहते हैं।

इसका अर्थ यह होता है कि-हे भगवन् ! अतीत काल में सावय व्यापार करनेवाले आत्मा (आत्मपरिणति) को अनित्य आदि भावना भाकर त्यागता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जैसे घर की देहलीपर दीपक रखने से भीतर भी प्रकाश होता है और बाहर भी प्रकाश होता है, इसीको 'देहली दीपक' न्याय कहते हैं, कहा भी है-परै एक पद बीच मे, दुहु दिम लागै सोय। सो है दीपक-देहरी, जानत है सन कोय ॥१॥ बीच में मणि जड देने से दोनों ओर मणिका प्रकाश होता है, यह 'मध्यमणि' न्याय कहलाता है, इसी प्रकार 'अप्पाण' का दोनों के साथ सम्बन्ध होता है। अर्थात् सावय व्यापारवाली आत्मा को त्यागता हूँ और उसकी निन्दा करता हूँ तथा गर्हा करता हूँ ॥सू० १॥

गर्हा शुद्धसाक्षीये थाय छे, अथवा निदा साधारण कुत्साने कडे छे अने गर्हा अत्यन्त निदाने कडे छे

आने अर्थ अे थाय छे के छे लगवन् ! अतीत कालमा दड (सावय व्यापार) करनार आत्मा (आत्मपरिणति) ने अनित्य आदि भावना भापीने त्याग छु, निन्द छु, गर्हु छु, नेम घरनी देहली (उपर) पर हीये राभवथी अदर पणु प्रकाश थाय छे अने गडार पणु प्रकाश थाय छे तेने 'देहली-दीपक न्याय' कडे छे कछु छे के-परै अेक पद पीयमे, दुहु दिस लागै सोय सो छे 'दीपक-देहरी,' जानत है सण कोय (१) वयमा मणि नदी देवथी गड पालु मणिने प्रकाश थाय छे तेने 'मध्यमणि-न्याय' कडे छे अेन रीते

યતઃ કેવલમનુવૃત્તિમાત્રેણ ન કિમપિ કાર્યં ભવતિ મિન્ટુચારણાદિપ્રયત્નેનૈવ, તદુન્ના વૈયાકરણૈઃ—“અનુવર્તન્તે ચ નામ ત્રિધયો ન ચાનુવર્તનાદેવ ભવન્તિ, કિં તર્હિ ? યત્નાદ્ભવન્તિ, સ ચાય યત્નઃ પુનરુચારણમ્” ઇતિ । અથવા સ્વસ્યાપિ ભદન્તત્વાદાત્મન એવેદમામન્ત્રણ સાધનાનીકરણાય । યદ્વા ભૂયઃ સમ્બોધનેન ગુરુ પ્રતિ ભક્ત્યુદ્દેકોઽભિવ્યજ્યતે । પ્રતિક્રામામિ=પ્રતિનિવર્તે, પૃથગ્ભવામીતિ યાવત્ । યત્ર કચિદ્દીકામ્ ‘પહિલ્લમામિ’ ઇત્યસ્ય ‘પ્રતિક્રામામિ’ ઇતિન્જાયોપલભ્યતે સા પ્રામાદિશ્ચેવ “ક્રમઃ પરસ્મૈપદેપુ” (૭ । ૩ । ૭૬) ઇતિ વચનવલ્લેન ક્રમેરુપધાદીર્ઘસ્ય દુર્નિવારતાત્ । નિન્દામિ=જુગુપ્સે । ગર્હે=જુગુપ્સ ઇત્યેવાર્થઃ । નનુ તર્હિ નિન્દાગર્હયો ‘કુત્સા નિન્દા ચ ગર્હેણા’ ઇતિ કોપરીત્યા પર્યાયત્વેન પૌનરુક્ત્ય વલ્લેપાયિતમેવેતિ ચેન્ન, યત સ્વસાક્ષિકી નિન્દા, ગુરુસાક્ષિકી ચ ગર્હેતિ પરસ્પર ભવતિ ભૂયાન્ ભેદઃ । યદ્વા ‘નિન્દા=સાધારણી કુત્સા, ગર્હા=સૈવાતિભૂયસી’—તિ પરસ્પરમર્થભેદાન્નાસ્તિ પર્યાયતા, યથા—પ્રવૃદ્ધ એવ કોપઃ ક્રોધો ન સાધારણ ઇતિ કોપક્રોધયોઃ પર્યાયત્વાભાવેન ક્રુધ્યર્થત્વાભાવાત્ક્રુબ્ધાતુયોગે ચતુર્થી નેષ્યતં, તદુક્ત—‘ક્રુધદ્ગ્રહેર્પ્યાઘ્યાયાર્થાના યમ્પ્રતિ કોપ (૧ । ૪ । ૩૭) ઇત્યત્ર શબ્દેન્દુ-શેખરે નાગેશેન—‘નહ્યકુપિત. ક્રુ’યતીતિ ભાષ્યેણ પ્રરુદ્ધકોપ એવ ક્રોધ ઇતિ કુપે

દીપનેવાલે । ઇન સઘ કો ‘ભતે’ કહતે હૈં । હસી પ્રકાર ઓર અર્થ ભી સમજ્ઞને ચાહિએ । ‘ભદન્ત’ ! ઇસ સમ્બોધનસે યહ પ્રગટ હોતા હૈં કિ સમસ્ત ક્રિયાઈ ગુરુમહારાજ કી સાક્ષીસે હી કરની ચાહિએ ।

હે ભગવન્ ! મૈં સાવત્રયોગસે નિવૃત્ત હોતા હૂં, નિન્દા કરતા હૂં ઓર ગર્હાં કરતા હૂં । કોશોં મૈં નિન્દા ઓર ગર્હાં શબ્દ કા એક હી અર્થ હૈં, હસલિએ પુનરુક્તિ હોતી હૈં, એસા નહી સમજ્ઞના ચાહિએ, કયો કિ નિન્દા આત્મસાક્ષી સે હોતી હૈં ઓર ગર્હાં ગુરુ

આરિત્રથી દીક્ષિમાન એ ગધાને ભતે કહે છે, એજ રીતે ખીજા અર્થોં પણ સમજ્ઞ લેવા ‘ભદન્ત’ એ સબોધનથી એમ પ્રગટ થાય છે કે ગધી ક્રિયાઓ શરૂ મહારાજની સાક્ષીએ જ કરવી જોઈએ

હે ભગવાન્ ! હું દરથી નિવૃત્ત થાઉ છું, નિન્દા કરું છું અને ગર્હાં કરું છું શબ્દકોશોમા ‘નિન્દા અને ગર્હાં’ શબ્દનો એક જ અર્થ છે, તેથી પુનરુક્તિ થાય છે, એમ ન સમજવું, કારણ કે નિન્દા આત્મસાક્ષીએ થાય છે અને

स्तदर्थत्वाभावेन न तत्रोग इदम्, कुप्यति कस्मै चिद्वित्याग्रसाध्वेवे'—ति। 'निन्दामि, गर्हामि' इत्यनयोस्तस्येत्यनेन प्रागुक्तेन सम्बन्धस्तेन सावत्रयोगसम्बन्धिर्नो स्वसाक्षिकीं गुरुसाक्षिकी च निन्दा करोमीति निर्गलितोऽर्थः, तस्येत्यत्र सम्बन्धसामान्ये पठ्याः प्रागुक्तत्वात्। यद्वा 'आत्मान'—मित्यस्यैव मध्यमणिन्यायाद्देहलीदीपन्यायाद्वा व्युत्सृजामीत्यनेन निन्दामि, गर्हामि' इत्याभ्या च सम्बन्धस्तेन सावत्रयोगकारिणमात्मान जुगुप्से, व्युत्सृजामि=विविधभावनया विशिष्य वा परित्यजामीत्यर्थ' ॥सू० १॥

साक्षी से होती है। अथवा निन्दा साधारण कुत्साको कहते हैं और गर्ह अत्यन्त निन्दा को कहते हैं।

इसका अर्थ यह होता है कि—हे भगवन्! अतीत काल में सावद्य व्यापार करनेवाले आत्मा (आत्मपरिणति) को अनित्य आदि भावना भाकर त्यागता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जैसे घर की देहलीपर दीपक रखने से भीतर भी प्रकाश होता है और बाहर भी प्रकाश होता है, इसीको 'देहली दीपक' न्याय कहते हैं, कहा भी है—'परै एक पद बीच मे, दुहु दिम लागे मोय। सो है दीपक—देहरी, जानत है सब कोय ॥१॥ बीच में मणि जड देने से दोनों ओर मणिका प्रकाश होता है, यह 'मध्यमणि' न्याय कहलाता है, इसी प्रकार 'अप्पाण' का दोनों के साथ सम्बन्ध होता है। अर्थात् सावद्य व्यापारवाली आत्मा को त्यागता हूँ और उसकी निन्दा करता हूँ तथा गर्हा करता हूँ ॥सू० १॥

गर्हा शुद्धसाक्षीअे थाय छे, अथवा निन्दा साधारण कुत्साने कडे छे अने गर्हा अत्यन्त निन्दाने कडे छे

आनो अर्थ अे थाय छे के छे भगवन्! अतीत कालमा दड (सावद्य व्यापार) करनार आत्मा (आत्मपरिणति) ने अनित्य आदि भावना भावीने त्याग छे, निन्द छे, गर्हु छे, नेम धरनी देहली (उपर) पर रीवे राधनाथी अदर पणु प्रकाश थाय छे अने गडार पणु प्रकाश थाय छे तेने 'देहली—दीपक न्याय' कडे छे कहु छे के—'परै अेक पद बीचमे, दुहु दिम लागे मोय मो छे 'दीपक—देहरी,' जानत है सब कोय (१)' पद्यमा मणि ७डी देनाथी वेड आणु मणिने प्रकाश थाय छे तेने 'मध्यमणि—न्याय' कडे छे अे ७ गीते

यत् केवलमनुवृत्तिमात्रेण न किमपि कार्यं भवति किन्तु चारणादिप्रयत्नेनैव, तदुक्तं वैशारुणैः—“अनुवर्तन्ते च नाम विधयो न चानुवर्तनादेव भवन्ति, किं तर्हि” यत्नाद्भवन्ति, स चाय यत्नः पुनरुच्चारणम्” इति । अथवा स्वस्यापि भदन्तत्वादात्मन एवेदमामन्त्रण साधनीकरणाय । यद्वा भूयः सम्बोधनेन गुरु प्रति भक्त्युद्वेगोऽभिव्यज्यते । प्रतिक्रामामि=प्रतिनिवर्त्ते, पृथग्भ्रामामीति यावत् । यत्र क्वचिद्विभक्तौ ‘पडिक्वामामि’ इत्यस्य ‘प्रतिक्रामामि’ इति-जयोपलभ्यते सा प्रामादिस्येव “क्रमः परस्मैपदेपु” (७।३।७६) इति वचनवलेन क्रमेरुपधादीर्घस्य दुर्निवारत्वात् । निन्दामि=जुगुप्से । गर्हो=जुगुप्स इत्येवार्थः । ननु तर्हि निन्दागर्हयो ‘कुत्सा निन्दा च गर्हणा’ इति कोपरीत्या पर्यायत्वेन पौनरुक्त्य वज्रलेपायितमेवेति चेन्न, यत् स्वसाक्षिकी निन्दा, गुरुसाक्षिकी च गर्हेति परस्पर भवति भूयान् भेदः । यद्वा ‘निन्दा=साधारणी कुत्सा, गर्हा=सैवातिभूयसी’-ति परस्परमर्थभेदान्नास्ति पर्यायता, यथा-प्रवृद्ध एव कोपः क्रोधो न साधारण इति कोपबोधयोः पर्यायत्वाभावेन क्रुभ्यर्थत्वाभावात्कुब्धातुयोगे चतुर्थी नेष्यतं, तदुक्तं—‘क्रुधद्गृहेष्व्यास्ययार्थाना यम्पति कोप (१।४।३७) इत्यत्र शब्देन्दु- शेखरे नागेशेन—‘नह्यकुपित. क्रुयतीति भाष्येण प्ररूढकोप एव क्रोध इति कुपे

दीपनेवाले । इन सब को ‘भते’ कहते हैं । इसी प्रकार और अर्थ भी समझने चाहिए । ‘भदन्त’ । इस सम्बोधनसे यह प्रगट होता है कि समस्त क्रियाएँ गुरुमहाराज की साक्षीसे ही करनी चाहिए।

हे भगवन् ! मैं सावन्वयोगसे निवृत्त होता हूँ, निन्दा करता हूँ और गर्हा करता हूँ । कोशों में निन्दा और गर्हा शब्द का एक ही अर्थ है, इसलिए पुनरुक्ति होती है, ऐसा नहीं समझना चाहिए, क्यो कि निन्दा आत्मसाक्षी से होती है और गर्हा गुरु-

आरित्रथी दीक्षिमान् ए गंधाने भते कडे छे, एव रीते पीण्ण अर्थो पद्यु समलु लेवा ‘भदन्त’ ए स बोधनथी एवम प्रगट थाय छे के गंधी क्रियाओ उरु महाशरणी साक्षीओ न करनी जेधओ

हे भगवान् ! हु दउथी निवृत्त थाउ छु, निदा कडु छु अने गर्हा कडु छु शण्डकोशोभा ‘निन्दा अने गर्हा’ शण्डनो अेक न अर्थ छे, तेथी पुन उक्ति थाय छे, एवम न समजथु, कान्यु के निदा आत्मसाक्षीओ थाय छे अने

गुप्तीना, चतुर्णां कपायाणा, पञ्चाना महाव्रताना, पण्णा जीविकायाना, सप्ताना पिण्डैपणाना,—मष्टाना प्रवचनमातृणा, नवाना ब्रह्मचर्यगुप्तीना, दशत्रिंशे धमणधर्मे श्रमणाना योगाना यत्स्वण्डित यद्विराधित तस्य मिथ्या मे दुष्कृतम् ॥ सू० २ ॥  
॥ टीका ॥

‘ठामि’ स्थातु चित्तैकाग्रतयेति शेषः, कर्तुमित्यर्थः । ‘काउत्सर्ग’ कायोत्सर्ग, कायस्य=शरीरस्य उत्सर्ग=तदेकतानतापूर्वकैकदेशावस्थितिभ्यानमौनव्यतिरिक्तयावत्क्रियारूलापसम्बन्धमधिकृत्य सर्वावेच्छेदेन परित्यागम्—अतिचारसशुद्धये व्युत्सर्जन, ममत्वापवर्जन वा ‘इच्छामि=वाढ्छामि । तत्रादौ वक्ष्यमाणरीत्या दोषान् पर्यालोचयति—‘जो’ इति । यः=कायोत्सर्गः मया=कर्तृभूतेन ‘देविसओ’=दिवसेन निर्वृत्तो दैवसिक<sup>२</sup>, दिवमपद रात्रेरप्युपलक्षक तेन

हे भदन्त ! मैं चित्तकी स्थिरता के साथ एक स्थान पर स्थिर रहकर ध्यान मौन के सिवाय अन्य सभी व्यापारों का परित्यागरूप कायोत्सर्ग करता हूँ, परन्तु इसके पहले शिष्य अपने दोषों की आलोचना करता है—‘जो मे’ इत्यादि । जो मुझसे प्रमादवश दिवससम्बन्धी तथा रात्रिसम्बन्धी समयमर्यादा का उल्लङ्घनरूप

हे भदन्त ! हे चित्तकी स्थिरताकी साथे एक स्थान उपर स्थिर रहने ध्यान मौन सिवाय अन्य यथा कामेना त्यागउप कायोत्सर्ग कइ छु परतु येना पडेला शिष्य पोताना दोषेनी आलोचना करे छे “ जो मे भत्यादि ” जे भाशथी आणसवश दिवससणधी तथा रात्रिसणधी समयमर्यादाने।

१—‘ठामि’ कर्तुमित्यर्थ । धातूनामनेकार्थत्वात् ‘स्था’धातुः करोत्यर्थः, आर्षत्वाद् ‘मिप्’ प्रत्यय. तुमुन्नर्थ, आर्षेषु हि प्रयोगेषु बाहुलकेन सर्वे त्रिधयो विकल्प्यन्ते, यद्गुणम्—‘क्वचिदप्रवृत्ति क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव । विधेर्विधान बहुधा समीक्ष्य, चतुर्विध बाहुलक उदन्ति” ॥१॥ इति, किञ्च—“सुप्तिदुपग्रहलिङ्गनराणा, कालहलच्स्वरकर्तृयडाच । व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेपा, सोऽपि च सिध्यति बाहुलकेन ॥२॥” इति, तत्र उपग्रह.= परस्मैपदाऽऽत्मनेपदे, नरः=प्रथमादिपुरुषत्रयम् । काल.= कालवाचक. प्रत्यय । स्तृशब्दः कारकत्वावच्छिन्नोपलक्षकस्तेन कारकवाचिना कृत्तद्विताना विपर्ययः । यद्विति यद्दो यशब्दादारभ्य लिङ्गाशिष्यद्विडति इकारेण प्रत्याहार । स्पष्ट शिष्टम् ।

२ “ तेन निर्वृत्तम् ” (५ । १ । ७८) इति ठरू ।

સાધોઃ સર્વવિરતિરૂપ સામાયિક યાવજીવન મરત્યવશ્યકર્તવ્યઃ, તસ્મિન્ન સતિ પ્રમાદાદિનાઽતિચારાઃ સમ્ભવન્તીતિ સામાયિકનિરૂપણોત્તરમગ્રે કાયોત્સર્ગપ્રતિજ્ઞાપૂર્વક શિષ્યઃ પ્રથમ દોષાન્ પર્યાલોચયતિ—

॥ મૂલમ્ ॥

इच्छामि ठामि काउस्सग्ग जो मे देवसिओ अईआरो कओ काइओ वाइओ माणसिओ उस्सुत्तो उम्मग्गो अकप्पो अकरणिज्जो दुज्झाओ दुव्विचित्तिओ अणायारो अणिच्छियव्वो असमणपाउगो नाणे तह दसणे चरित्ते सुए सामाइए, तिण्ह गुत्तीण, चउण्ह कसायाण, पचण्ह महव्वयाण, छण्ह जीवनिकायाणं, सत्तण्ह पिंडेसणाण, अट्टण्ह पवयणमाऊण, नवण्ह वभचेरगुत्तीण, दसविहे समणधम्मे समणाण जोगाण ज खडिय जं विराहिय तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥सू० २॥

॥ છાયા ॥

इच्छामि स्थातु कायोत्सर्गं यो मया दैवसिकोऽतीचारः कृतः कायिको वाचिको मानसिक उत्सून उन्मार्गोऽकल्पोऽकरणीयो दुर्ध्यातो दुर्विचिन्तितोऽनाचारोऽनेष्टव्योऽश्रमणप्रायोग्यो ज्ञाने तथा दर्शने चारित्रे श्रुते सामायिके, तिसृणा

મુનિયોં કી સર્વવિરતિરૂપ સામાયિક યાવજીવન હોતી હૈ, વસમેં પ્રમાદ આદિ સે અતિચાર કી સભાવના રહતી હૈ, અતएव સામાયિક કા નિરૂપણ કરકે અથ ઇસકે આગે શિષ્ય કાયોત્સર્ગ-પૂર્વક અતિચાર કી આલોચના કરને કે લિયે પ્રથમ કાયોત્સર્ગ કી પ્રતિજ્ઞા કરકે દોષોં કી આલોચના કરતા હૈ—‘इच्छामि ठामि काउस्सग्ग’ इत्यादि ।

અપ્પાણ નેા ઝેલની સાથે સળધ થાય છે અર્થાત્ સાવધન્યાપારવાણા આત્માને ત્યાશુ છુ અને તેની નિંદા કરૂ છુ, તથા ગર્હા કરૂ છુ (સૂ. ૧)

મુનિયોની સર્વવિરતિરૂપ સામાયિક યાવજીવન હોય છે એમા પ્રમાદ આદિથી અતિચારની સભાવના રહે છે, એટલા માટે સામાયિક નિરૂપણ કરીને તે પછી શિષ્ય કાયોત્સર્ગપૂર્વક અતિચારની આલોચના કરવા માટે પ્રથમ કાયોત્સર્ગની પ્રતિજ્ઞા કરીને દોષોની આલોચના કરે છે इच्छामि ठामि काउस्सग्ग વિગેરે





दिवसकृतो रात्रिकृतश्चेत्यर्थः । 'अईआरो' अतिक्रम्य चारः=चरणमती-  
 चारः=सयममर्यादातो ऋद्धि'परत्तन-सयममर्यादासुल्लङ्घ्य गमनमिति यावत्,  
 'ऋओ' कृतो विहित इत्यर्थः । कीदृशः स दैवसिक्तोऽतीचारः ? इत्यत आह-  
 'ऋइओ वाइओ माणसिओ' इति, काये भवः, काये जातः, कायेन निर्वृत्तो वा  
 'कायिकः । एष वाचिको मानसिक इत्युभयत्रापि बोध्यम्, कायजातो वाग्जातो  
 मनोजात इति निष्कर्षः । 'उस्सुत्तो' सूत्रमुत्तिञ्ज्योत्क्रम्य वा सूत्रादूर्ध्वं वा सजात  
 उत्सूनः सूत्रोल्लङ्घनेन निष्पन्नोऽर्थार्थीर्यकरणधरात्प्राप्तोपदिष्टप्रवचनपरित्यागेनो  
 ङ्कृतः । अतएव 'उम्मग्गो' मार्गादुद्गत उन्मार्गः क्षायोपशमिकभावप्रहाणपूर्वकौ  
 दयिकभावपोसक्रमः (क्रान्तः) । 'अकप्पो' कल्पः=करणचरणव्यापाररूप  
 आचारः, न कल्पोऽकल्पः, करणचरणव्यापाररहित इत्यर्थः । यद्वा 'अकल्प्यः'  
 इतिच्छाया तस्य कल्पयित्तु योग्य =कल्प्यो मुनिधर्मः न कल्प्योऽकल्प्यो=मुन्याचार  
 विशृङ्खलित अतएव 'अकरणिज्जो' अकरणीय =मुनिभिरनाचरणीयः ॥ उक्ता  
 कायिक-वाचिक-योरतीचारयोर्भेदाः, सम्प्रति मानसिकस्याऽतिचारस्य तानाह-

अतिचार किया गया हो, चाहे वह कायसम्बन्धी, वचनसम्बन्धी,  
 मनसम्बन्धी, 'उस्सुत्तो' उत्सूत्ररूप अर्थात् तीर्थङ्कर गणधर आदिके  
 उपदिष्ट प्रवचनके विरुद्ध प्ररूपणादिरूप, 'उम्मग्गो'-उन्मार्गरूप अर्थात्  
 क्षायोपशमिक भावका उल्लङ्घन करके औदयिक भावमे प्रवृत्तिरूप,  
 'अकप्पो'-अकल्प(ल्प्य)=करणचरणरूप आचार रहित, 'अकरणिज्जो'-  
 अकरणीय अर्थात् मुनियोंके नहीं करने योग्य हो । य सब ऊपर  
 कहे हुए कायिक तथा वाचिक अतिचार हैं, अब मानसिक अतिचार

उल्लङ्घनरूप अतिचार करायो होय, याहे तो ये शरीरसंघधी वचनसंघधी-मन  
 संघधी, उस्सुत्तो-उत्सूत्ररूप अर्थात् तीर्थंकर गणधर विगरे उपदिष्ट प्रवचननी विरुद्ध  
 प्ररूपणादि, उम्मग्गो उन्मार्गरूप अर्थात् क्षायोपशमिक भावनु उल्लङ्घन करीने औदयिक  
 भावना प्रवृत्तिरूप, अकप्पो अकल्प्य, करणचरणरूप आचाररहित अने अकरणिज्जो  
 अकरणीय अर्थात् मुनियोंने नहीं करवा लायक होय उपर कहेल ये यथा अधिक  
 तथा वाचिक अतिचार हे हवे मानसिक अतिचार कहे छे-

१ 'कायिकः । "तत्रभव (४।३।५३) इति, "तत्रजातः"  
 (४।३।२५) इति, "तेन निर्वृत्तम्" (५।१।७८) इति वा ठक् ।

‘दुज्ज्ञाओ’-इत्यादिना, ‘दुर्ध्याओ’ दुर्ध्यातः, दुष्टो दुःस्थो वा ध्यातो दुर्ध्यातः=विरुद्धध्यानसपन्नः कपायम्लुपितान्तःकरणैकाग्रताऽऽर्त्तरोद्ररूपः, यद्वा आर्षत्वाद्वा भावे क्तः पुस्त्व च, तेन दृष्टध्यानरूप इत्यर्थः, अत एव ‘दुर्विचिन्तिओ’ दुःखेन दुष्टो वा विचिन्तितो=दुर्विचिन्तितः=अनवस्थितचित्त-तया तत्त्वपरिभ्रशनपूर्वकाऽशुभचिन्तनोपेतः, अतएव ‘अणायारो’ अनाचारः=सयममार्गेण प्रचलता सयमिनामनाचरितव्यः । यतोऽनाचरितव्योऽतएव ‘अणिच्छियव्वो’ अनेष्टव्यः=चेतसाऽपि लेशतोऽप्यनभिलपणीयः, यतश्चैवमतः ‘असमणपाउग्गो’ न योग्योऽयोग्यः प्रकर्षेणाऽयोग्यः प्रायोग्य-श्रमणाना श्रमणैर्वा प्रायोग्यः=श्रमणप्रायोग्यः न श्रमणप्रायोग्योऽश्रमणप्रायोग्यः-श्रमणानामयोग्य इत्यर्थः, मुनिभिरननुष्ठेय इति यावत् । अत्र व्युत्क्रमव्याख्यानं तु सूत्रक्रमविरोधाद्भुवविरोधाच्चोपेक्षितव्यमेव । किंकिंविषयकोऽतिचारः ? इत्याह-‘नाणे’ इत्यादिना, ‘नाणे’ ज्ञाने=पदार्थपरिवोचलक्षणे, ‘दसणे’ दर्शने=प्रवचनाभिरोचनस्वरूपे, ‘चरित्ते’ चारित्र्ये=आश्रवनिरोधरूपे ‘नाणे’ इत्यादिषु वैषयिकागारे सप्तमी, मोक्षे इच्छाऽस्तीत्यादिवत्, तेन ज्ञानविषयको दर्शनविषयक-आरित्र्यविषयकश्चेति फलति । विशेषेणोच्यते-‘सुए’ इति, ‘सुए’ श्रुते=मत्यादिज्ञानस्वरूपे, श्रुतग्रहणस्य मत्यादिज्ञानोपलक्षकत्वात् मत्यादिज्ञानविषयक इत्यर्थः, यद्वा ‘सुए’ इत्यस्य श्रुते=उर्मेऽर्थाच्छास्त्रपठनादिरूप इत्येवार्थो न तु मत्यादिज्ञान इति, अतिचाग्श्चात्राऽकाले सूत्रपठनादिरूपः । अधुना चारित्र्यातिचार-

कहते हैं—‘दुज्ज्ञाओ’-दुर्ध्यानकपाययुक्त अन्तःकरण की एकाग्रतासे आर्त्तरोद्र ध्यानरूप, ‘दुर्विचिन्तिओ’-दुर्विचिन्तित-चित्त की असावधानता से वस्तु के अर्थार्थ स्वरूपका चिन्तनरूप, ‘अणायारो’-अनाचार-सयमियों को अनाचरणीय, ‘अणिच्छियव्वो’ अनेष्टव्य-सर्वथा अवाञ्छनीय तथा ‘असमणपाउग्गो’-अश्रमणप्रायोग्य-साधुओं के आचरणके अयोग्य

दुज्ज्ञाओ-दुर्ध्यान-कपाययुक्त अतःकरणे नी अज्ञातताथी आर्त्तरोद्र ध्यानरूप  
दुर्विचिन्तिओ-दुर्विचिन्तित-चित्तनी असावधानताथी वस्तुना अर्थार्थस्वरूपमा  
चित्तनरूप अणायारो-अनाचरणीय सयमियोंने अनाचरणीय अणिच्छियव्वो-अनेष्टव्य-  
इमेशा नहि उच्छवायेग्य तथा असमणपाउग्गो-अश्रमणप्रायोग्य-साधुओंना  
आचरणे अयोग्य होय तेभव ज्ञानमा, दर्शनमा, आश्रितमा तथा विशेषरूपथी श्रुत

माह-‘सामाङ्ग’ इति, सामायिके=सामायिकत्रिपयकः, प्राग्व्याख्यातः सामायिकरूपदार्थः, अत्र सामायिकरूपेण सम्यक्त्रसामायिक-चारित्रसामायिकयोर्ब्रह्मणं, तत्र वक्ष्यमाणरूपः शङ्कादिः सम्यक्त्रसामायिकातिचारत्रिपयः, चारित्रसामायिकातिचारो भेदत्रयात्मक इति बोधयितुमाह-‘तिष्ठ गुचीण’ इति, तिष्ठणा गुप्तीना, निर्द्धारणे पृष्ठी, तेन तिष्ठणा गुप्तीना मय इत्यर्थः, एवमप्रेऽपि, गुप्तिश्च मोक्षाभिलाषुर्योगनिरोधरूपा ‘चण्ड कसायाण’ चतुर्णां कपायाणां=भव-महीरूहसेचकानां क्रोधमानादीनाम्, ‘पचण्ड महव्याण’ पञ्चानां महाव्रतानां=प्राणातिपातमृषावादाऽदत्ताऽऽदानानुपरतिस्वरूपाणां, ‘छण्ड जीवनिकायाण’ पण्णा जीवनिकायानां=पृथिव्यप्तेजोऽयुवनस्पतित्रयकायिकानाम्, ‘सत्तण्ड पिंडैसणाण’ सप्तानां पिंडैषणानामससृष्टाप्रभृतीनाम्, ताश्च यथा-१ अससृष्टा २ ससृष्टा, ३ ससृष्टाऽससृष्टा, ४ अल्पलेपा, ५ अवगृहीता, ६ प्रगृहीता, ७ उज्जितधर्मिका चेति, आसा प्रत्येक स्वरूपाण्याचाराङ्गसूत्रतो ज्ञेयानि । ‘अट्टण्ड पवयणमाऊण’ अष्टानां प्रवचनमातृणां=समितिपञ्चक-गुप्तित्रयरूपाणाम् । ‘नवण्ड वभचेरगुचीण’ नवानां ब्रह्मचर्यगुप्तीनां=वसतिकथादिरूपाणाम् । एतदन्तानां सर्वेषां ‘योऽतिचार’ कृतः’ इति पूर्वोक्तान्वयः । ‘दमविहे’ दशविधे ‘समणधम्मे’ श्रमणधर्मे क्षान्त्यादिरूपे ‘समणाण’ श्रमणानां=श्रमणसम्बन्धिना

हो, एव ज्ञानमे, दर्शनमे, चारित्रमे तथा विशेषरूप से श्रुतधर्म मे, सम्यक्त्वरूप तथा चारित्ररूप सामायिकमे, तथा उसके भेदरूप योगनिरोधात्मक तीन गुप्तियों मे, चार कपायो मे, पाच महाव्रतों मे, छह जीवनिकायों मे, (१) अससृष्टा, (२) ससृष्टा, (३) ससृष्टाऽससृष्टा, (४) अल्पलेपा, (५) अवगृहीता, (६) प्रगृहीता, तथा (७) उज्जित धर्मिका रूप सात पिंडैषणाओ मे, पाचसमिति तीन गुप्तिरूप आठ प्रवचनमाताओं मे, ब्रह्मचर्य की नौ वाडो मे, दश प्रकार के श्रमणधर्म

धर्मभा, सम्यक्त्वत्रय तथा चारित्रत्रय सामायिकभा तथा ज्ञाना भेदत्रय योगनिरोधात्मक त्रय गुप्तिज्योभा, चार कपायोभा, पाच महाव्रतोभा, छ जीवनिकायोभा, (१) अससृष्टा (२) ससृष्टा (३) ससृष्टाऽससृष्टा (४) अल्पलेपा (५) अवगृहीता (६) प्रगृहीता (७) उज्जितधर्मिकात्रय सात पिंडैषणाज्योभा, पाचसमिति त्रयगुप्तित्रय आठ प्रवचनमाताज्योभा, ब्रह्मचर्यनी नव वाडोभा, दश प्रकारना श्रमणधर्मनी अष्ट

‘जोगाण’ योगाना व्यापाराणा श्रद्धान-प्ररूपण-स्पर्शनस्वरूपाणा=श्रमण-सम्बन्धि-व्यापारमध्ये इत्यर्थः, ‘ज’ यत् ‘विराहिय’ विराधित=सर्वतोभावेन खण्डित=स्खलित, ‘तस्स’ तस्य=वाचिकादिरूपस्य दैवसिकस्यातिचारस्य खण्ड-नस्य विराधनस्य च-तत्सम्बन्धीत्यर्थः, (यत्तदोर्नित्यसम्बन्धेन ‘तस्स’ इति तच्छब्देन प्रागुक्ताना यच्छब्दनिर्दिष्टाना सर्वेषा सग्रहात्, बहुषु पुस्तकेषु दृश्य-मान विपरीतव्याख्यान सूत्राक्षराननुगुणत्वाद्दुपेक्ष्यमेव, नचैकेन तच्छब्देन ‘जो मे देवसिओ’ ‘ज खडिय’ ‘ज विराहिय’ इति यच्छब्दत्रयस्याऽऽकाङ्क्षा कथं पूर्येत ? प्रतियच्छब्द तच्छब्दोपादानस्याऽऽवश्यकत्वात्, अतएव ‘य य कामयते काम त तमाप्नोति लीलया’ इत्यादौ तच्छब्दद्वयोपादानं सगच्छत इति वाच्यम्, बुद्धिविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितधर्मावच्छिन्ने तच्छब्दशब्दे, प्रकृते च सर्वेषामेव यच्छब्दोपादाना तादृशधर्मावच्छिन्न ( बुद्धिविषय ) त्वात्, अतएव ‘यत्रत्पाप प्रतिजहि जगन्नाथ ? नम्रस्य तन्मे’ इत्यादौ यत्रदित्याभ्या यच्छब्दाभ्या येन केन चिद्रूपेण स्थित सर्वात्मक पापरूप वस्तु विवक्षित तथाभूतस्य तस्य तच्छब्देन परा-मर्शस्तस्मान्नात्र साकाङ्क्षत्व दोष इत्युक्तं काव्यप्रकाश-रसगङ्गाधरसाहित्यदर्पणा-दिष्विति तत्रैव कणेहत्याऽत्रलोकनीयम् । ) ‘दुक्ख’ दुष्कृत=पापम् ‘मि’ मयि विषयसप्तमीय तेन मद्रिषय इत्यर्थः. ‘मिच्छा’ मिथ्या=निष्फलम् अभावरूपमिति यावत्, भवत्विति शेषः । यत्तु ‘मि’ इत्यस्य ‘मे’ इतिच्छायया व्याख्यानं तद्व्याकरणविरोधात्सूत्रतात्पर्यविरोधाच्च हेयमेव ।

के अन्दर श्रद्धाप्ररूपणा-स्पर्शनारूप श्रमणयोगों में से, जिस किसी की देशसे खण्डना या सर्वथा विराधना हुई हो उन सब पूर्वोक्त अतिचारों से मुझे लगा हुआ पाप निष्फल हो ॥

‘मि’ इसकी ‘मे’ ऐसी छाया करके जो व्याख्यान किया गया है वह व्याकरण तथा सूत्रतात्पर्य से विरुद्ध होने के कारण सर्वथा त्याज्य है ।

श्रद्धा-प्ररूपणा-स्पर्शनाश्च श्रमणयोगोभाधी वेनी केडनी देशथी भडना अथवा सर्वथा विराधना थड होय ते सर्व पूर्वे कडेला अतिचारोथी भने लागेला पाप निष्फल थय

मि-ओनी मे ओवी छाया करीने ने व्याख्यान करेले छे ते व्याकरण

साह-‘सामाङ्ग’ इति, सामायिके=सामायिकरूपियकः, प्राग्व्याख्यात सामायिकरूपदार्थः, अत्र सामायिकरूपेण सम्यक्त्वसामायिक-चारित्रसामायिकयोर्ग्रहण, तत्र वक्ष्यमाणरूपः शङ्कादिः सम्यक्त्वसामायिकातिचारविषयः, चारित्रसामायिकातिचारो भेदत्रयात्मक इति बोधयितुमाह-‘तिष्ठ गुत्तीण’ इति, तिष्ठणा गुप्तीना, निर्धारणे पृष्ठी, तेन तिसृणा गुप्तीना मय इत्यर्थः, एवमग्रेऽपि, गुप्तिश्च मोक्षाभिलाषुर्योगनिरोधरूपा ‘चण्ड कसायाण’ चतुर्णां कपायाणा=भव-महीरुहसेचकाना क्रोधमानादीनाम्, ‘पचण्ड महच्चयाण’ पञ्चाना महाव्रताना=प्राणातिपातमृपावादाऽदत्ताऽऽदानानुपरतिस्वरूपाणा, ‘छण्ड जीवनिकायाण’ पण्णा जीवनिकायाना=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रयकायिकानाम्, ‘सत्तण्ड पिण्डेसणाण’ सप्ताना पिण्डैपणानामससृष्टाप्रभृतीनाम्, ताश्च यथा-१ अससृष्टा २ ससृष्टा, ३ ससृष्टाऽससृष्टा, ४ अल्पलेपा, ५ अवगृहीता, ६ प्रगृहीता, ७ उज्जितधर्मिका चेति, आसा प्रत्येक स्वरूपाण्याचाराङ्गमूनतो ज्ञेयानि । ‘अद्रण्ड पवणमाऊण’ अष्टाना प्रवचनमातृणा=समितिपञ्चक-गुप्तित्रयरूपाणाम् । ‘नवण्ड वभचेरगुत्तीण’ नवाना ब्रह्मचर्यगुप्तीना=वसतिकथादिरूपाणाम् । एत दन्ताना सर्वेषा ‘योऽतिचारः कृतः’ इति पूर्वोणान्वयः । ‘दमविहे’ दशविधे ‘समणधम्मे’ श्रमणधर्मे क्षान्त्यादिरूपे ‘समणाण’ श्रमणाना=श्रमणसम्बन्धिना

हो, एव ज्ञानमे, दर्शनमे, चारित्रमे तथा विशेषरूप से श्रुतधर्म में, सम्यक्त्वरूप तथा चारित्ररूप सामायिकमे, तथा उसके भेदरूप योगनिरोधात्मक तीन गुप्तियों में, चार कपायो मे, पाच महाव्रतों मे, छह जीवनिकायों में, (१) अससृष्टा, (२) ससृष्टा, (३) ससृष्टाऽससृष्टा, (४) अल्पलेपा, (५) अवगृहीता, (६) प्रगृहीता, तथा (७) उज्जित धर्मिका रूप सात पिण्डैपणाओं में, पाचसमिति तीन गुप्तिरूप आठ प्रवचनमाताओं में, ब्रह्मचर्य की नौ वाडो मे, दश प्रकार के श्रमणधर्म

धर्ममा, सम्यक्त्वस्य तथा चारित्रस्य सामायिकमा तथा येना लोहस्य योगनिरोधात्मक त्रय शुभित्योमा, आठ कपायोमा, पाच महाव्रतोमा, छ जीवनिकायोमा, (१) अससृष्टा (२) ससृष्टा (३) ससृष्टाऽससृष्टा (४) अल्पलेपा (५) अवगृहीता (६) प्रगृहीता (७) उज्जितधर्मिकास्य सात पिण्डैपण्योमा, पाचसमिति त्रयगुप्तिरूप आठ प्रवचनमातायोमा, ब्रह्मचर्यनी नव वाडोमा, दश प्रकारना श्रमणधर्मनी अष्ट

‘जोगण’ योगाना व्यापाराणा श्रद्धान-प्ररूपण-स्पर्शनस्वरूपाणा=श्रमण-सम्बन्धिव्यापारमध्ये इत्यर्थः, ‘ज’ यत् ‘विराडिय’ विराधित=सर्वतोभावेन खण्डित=स्खलित, ‘तस्स’ तस्य=वाचिकादिरूपस्य दैवसिकस्यातिचारस्य खण्डनस्य विराधनस्य च-तत्सम्बन्धीत्यर्थः, (यत्तदोर्नित्यसम्बन्धेन ‘तस्स’ इति तच्छब्देन प्रागुक्ताना यच्छब्दनिर्दिष्टाना सर्वेषा सग्रहात्, बहुषु पुस्तकेषु दृश्यमान विपरीतव्याख्यान सूत्राक्षराननुगुणत्वादुपेक्ष्यमेव, नचैकेन तच्छब्देन ‘जो मे देवसिओ’ ‘ज खडिय’ ‘ज विराडिय’ इति यच्छब्दत्रयस्याऽऽकाङ्क्षा रुथ पूर्येत ? प्रतियच्छब्द तच्छब्दोपादानस्याऽऽवश्यकत्वात्, अतएव ‘य य कामयते काम त तमामोति लीलया’ इत्यादौ तच्छब्दद्वयोपादान सगच्छत इति वाच्यम्, बुद्धिविषयतावच्छेदकत्वोपलक्षितप्रभावच्छिन्ने तच्छब्दशक्तेः, प्रकृते च सर्वेषामेव यच्छब्दोपादाना तादृशप्रभावच्छिन्न (बुद्धिविषय) त्वात्, अतएव ‘यत्पाप प्रतिजहि जगन्नाथ ? नम्रस्य तन्मे’ इत्यादौ यत्प्रदित्याभ्या यच्छब्दाभ्या येन केन चिद्रूपेण स्थित सर्वात्मक पापरूप वस्तु विवक्षित तथाभूतस्य तस्य तच्छब्देन परामर्शस्तस्मान्नात्र साकाङ्क्षत्वं दोष इत्युक्त काव्यप्रकाश-रसगङ्गाधरसाहित्यदर्पणादिष्विति तत्रैव कणेहत्याऽत्रलोकनीयम् ।) ‘दुक्कड’ दुष्कृत=पापम्, ‘मि’ मयि विषयसप्तमीय तेन मद्रिषय इत्यर्थः । ‘मिच्छा’ मिथ्या=निष्फलम् अभावरूपमिति यावत्, भवत्विति शेष । यत्तु ‘मि’ इत्यस्य ‘मे’ इतिच्छायाया व्याख्यान तद्व्याकरणविरोधात्सूत्रतात्पर्यविरोधाच्च हेयमेव ।

के अन्दर श्रद्धाप्ररूपणा स्पर्शनारूप श्रमणयोगो में से, जिस किसी की देशसे खण्डना या सर्वथा विराधना हुई हो उन सब पूर्वोक्त अतिचारो से मुझे लगा हुआ पाप निष्फल हो ॥

‘मि’ इसकी ‘मे’ ऐसी छाया करके जो व्याख्यान किया गया है वह व्याकरण तथा सूत्रतात्पर्य से विरुद्ध होने के कारण सर्वथा त्याज्य है ।

श्रद्धा-प्ररूपणा-स्पर्शनाइय श्रमणयोगोभाथी लेनी केडनी देशथी भडना अथवा सर्वथा विराधना थड होय ते सर्व पूर्वो कडेला अतिचारोथी भने लागेला पाप निष्फल थाय

मि-ओनी मे ओथी छाया करीने ले व्याख्यान करेले छे ते व्याकरण

કેચિત્ 'મિચ્છામિ' इति पद 'मि' 'छा' 'मि' इत्येव विभज्य प्रथमेन 'मि' इत्यनेन कायनमत्र च, 'ज' इत्यनेनासयमयोगरूपदोषच्छादन, चरमेण 'मि' इत्यनेन 'चारित्ररूपमर्यादास्थितोऽह'—मित्येवरूप, तथा 'दुक्क' इत्यत्र 'दु' इत्यनेन दुगुच्छामि= 'दुष्कृतकर्मकारिणमात्मानं निन्दामि' इत्येवरूप 'क' इति वर्णेन 'कृत'—मिति, 'ड' इति वर्णेन 'उपशमेनातिक्रामामि' अर्थात् द्रव्यभावनमत्रचारित्रमर्यादास्थितोऽह दुष्कृतकर्मकारिणमात्मानं निन्दामि, कृतं च दुष्कृतं कर्म उपशमेन परित्यजामीत्येवमर्थं व्याचक्षते 'प्रत्येकानतिरिक्तः समुदायः' इति न्यायेन पदस्यार्थवत्त्वे वर्णानामप्यर्थवत्ताऽङ्गीकारादितरथा पद-

કઈ એક 'મિચ્છામિ' इस पदका 'मि' - 'छा' 'मि' ऐमा पदच्छेद करके “-‘मि’=कायिक और मानसिक अभिमानको छोड़कर ‘छा’=असयमरूप दोष को ढक कर ‘मि’=चारित्र की मर्यादा में रहा हुआ मैं, ‘दु’ ‘क’ ‘ड’, - ‘दु’=सावधकारी आत्माकी निन्दा करता हूँ, ‘क’=किये हुए सावधकर्म को ‘ड’=उपशमद्वारा त्यागता हूँ, अर्थात् द्रव्य-भावसे नम्र तथा चारित्रमर्यादा में स्थित होकर मैं सावध क्रियाकारी आत्मा की निन्दा करता हूँ और किये हुए दुष्कृत (पाप) को उपशमभावसे हटाता हूँ” इस प्रकार अर्थ करते हैं। ऐसा अर्थ करना कोई असंगत नहीं है, प्रत्युत सर्वथा उचित ही है, क्योंकि—‘समुदाय प्रत्येक से भिन्न नहीं होता’ इस न्याय से जब पद की सार्थकता स्वीकार की जाय तो प्रत्येक वर्ण की भी

તથા સૂત્રના તાત્પર્યથી વિરુદ્ધ હોવાને કારણે એકદમ ત્યાજ્ય છે એટલાક “મિચ્છામિ” એ પદમા “મિ ‘છા’ મિ” એ પ્રમાણે પદચ્છેદ કરીને ‘મિ’ કાયિક અને માનસિક અભિમાનને છોડી “છા”=અસયમરૂપ દોષને ઢાકીને “મિ” ચારિત્રની મર્યાદામા રહેલો હું ‘દુ’ ‘ક’ ‘ડ’ “દુ”=સાવધકારી આત્માની નિન્દા કરૂ છું “ક” કરેલા પાપકર્મને “ડ” ઉપશમદ્વારા ત્યાગ કરૂ છું, અર્થાત્ દ્રવ્યભાવથી નમ્ર તથા ચારિત્રમર્યાદામા સ્થિત થઇને હું સાવધક્રિયાવાન આત્માની નિન્દા કરૂ છું અને કરેલા પાપને ઉપશમભાવથી હટાવું છું—એ પ્રમાણે અર્થ કરે છે આ પ્રમાણે અર્થ કરવો તે કોઈ પ્રકારે અસંગત નથી પરંતુ સર્વથા ઉચિત જ છે, કારણ કે સમુદાય પ્રત્યેકથી ભિન્ન નથી—આ ન્યાય પ્રમાણે

स्यापि वर्णसमुदायात्मकत्वेनाऽऽनर्थक्याऽऽपत्तेः, तदुक्तम्-‘अर्थवन्तो वर्णा०’ इति प्रतिज्ञाय ‘सघातार्थवत्त्वाच्च’ इति हेतुमदर्शकवार्त्तिकव्याख्याया पतञ्जलिना-‘येषा समुदाया अर्थवन्तोऽत्रयत्रा अपि तेषामर्थवन्तः तथा-एकश्चक्षुष्मान् दर्शने समर्थस्तत्समुदायश्च शतमपि समर्थम्, एकश्च तिलस्तैलदाने समर्थस्तत्समुदायश्च शतमपि समर्थम्, येषा पुनरवयवा अनर्थकाः समुदाया अपि तेषामनर्थकाः, एका च सिरुता तैलदानेऽसमर्था तत्समुदायश्च खारीशतमप्य-समर्थ’-मिति’ ।

सार्थकता स्वीकार करनी होती है, अन्यथा वर्णों के समुदायरूप पद और पदों के समुदायरूप वाक्य में यदि वर्णों को अनर्थक कहें तो उनके समुदायरूप शब्द तथा वाक्य भी अनर्थक हो जायँ, जैसा कि पतञ्जलिने अपने ग्रन्थ व्याकरण-महाभाष्य में कहा है-“जिनके समुदाय अर्थवान् होते हैं उनके अवयव भी अर्थवान् ही रहा करते हैं, जैसे-नेत्रवाला एक व्यक्ति देख सकता है तो उसी तरह नेत्रवाला हजारों का समुदाय भी देख सकता है, तिलके एक दाने में तैल है तो अनेक दानों में भी है, और जिनके अवयव अनर्थक होते हैं उनके समुदाय भी अनर्थक ही हुआ करते हैं, चालूके एक कणसे तेल नहीं निकल सकता तो चालूकी ढेरीसे भी नहीं निकलता” इत्यादि ।

स्वीकार करवाया आवे तो प्रत्येक वर्णनी पणु सार्थकता स्वीकारची जेथजे अन्य वर्णोना समुदायरूप पद अने पदोना समुदायरूप वाक्यमा जे वर्णोनि अनर्थक कहीजे तो तेना समुदायरूप शब्द तथा वाक्य पणु अनर्थक थई जय जेवी रीते के पतञ्जलिजे पोताना अथ व्याकरण-महाभाष्यमा कहु छे “जेना समुदाय अर्थवान् होय छे तेनु अवयव पणु अर्थवान् न रहे छे जेम नेत्रवाणो जेक भाषुस हेणी शके छे तो ते रीते नेत्रवाणा हुनरो भाषुसोना समुदाय पणु हेणी शके छे तलना जेक दाणुमा तेल छे तो तेना अनेक दाणुजोमा पणु छे अने जेनु अवयव अनर्थक होय छे तो तेना समुदाय पणु अनर्थक होय छे रेतीना जेक कुणुमाथी तेल नीकणतु नथी तो रेतीना ढगवाभाथी पणु तेल नीकणी शकतु नथी इत्यादि’



કેચિત્ 'મિચ્છામિ' इति पद 'मि' 'छा' 'मि' इत्येव विभज्य प्रथमेन 'मि' इत्यनेन कायनघ्नत्वं च, 'छा' इत्यनेनासयमयोगरूपदोषच्छादन, चरमेण 'मि' इत्यनेन 'चारित्ररूपमर्यादास्थितोऽह'—मित्येवरूपं, तथा 'दुक्क' इत्यत्र 'दु' इत्यनेन दुगुच्छामि= 'दुष्कृतकर्मकारिणमात्मानं निन्दामि' इत्येवरूपं 'क' इति वर्णेन 'कृत'—मिति, 'ड' इति वर्णेन 'उपशमेनातिक्रामामि' अर्थात् द्रव्यभावनघ्नश्चारित्रमर्यादास्थितोऽह दुष्कृतकर्मकारिणमात्मानं निन्दामि, कृतं च दुष्कृतं कर्म उपशमेन परित्यजामीत्येवमर्थं व्याचक्षते 'प्रत्येकानतिरिक्तः समुदायः' इति न्यायेन पदस्यार्थवत्त्वे वर्णानामप्यर्थवत्ताऽङ्गीकारादितरथा पद-

કઈ એક 'મિચ્છામિ' इस पदका 'मि' 'छा' 'मि' ऐसा पदच्छेद करके "—'मि'=कायिक और मानसिक अभिमानको छोड़कर 'छा'=असयमरूप दोष को ढक कर 'मि'=चारित्र की मर्यादा में रहा हुआ मैं, 'दु' 'क' 'ड' — 'दु'=सावद्यकारी आत्माकी निन्दा करता हूँ, 'क'=किये हुए सावद्यकर्म को 'ड'=उपशमद्वारा त्यागता हूँ, अर्थात् द्रव्य-भावसे नष्ट तथा चारित्रमर्यादा में स्थित होकर मैं सावद्य क्रियाकारी आत्मा की निन्दा करता हूँ और किये हुए दुष्कृत (पाप) को उपशमभावसे हटाता हूँ" इस प्रकार अर्थ करते हैं। ऐसा अर्थ करना कोई असंगत नहीं है, प्रत्युत सर्वथा उचित ही है, क्योंकि—'समुदाय प्रत्येक से भिन्न नहीं होता' इस न्याय से जब पद की सार्थकता स्वीकार की जाय तो प्रत्येक वर्ण की भी

તથા સૂત્રના તાત્પર્યથી વિરુદ્ધ હોવાને કારણે એકદમ ત્યાજ્ય છે એટલાક "મિચ્છામિ" એ પદમા "મિ 'છા' મિ" એ પ્રમાણે પદચ્છેદ કરીને 'મિ' કાયિક અને માનસિક અભિમાને ઘેાડી "છા"=અસયમરૂપ દોષને ઢાકીને "મિ" ચારિત્રની મર્યાદામા રહેલો હુ 'દુ' 'ક' 'ડ' "દુ"=સાવધકારી આત્માની નિન્દા કરૂ છુ "ક" કરેલા પાપકર્મને "ડ" ઉપશમદ્વારા ત્યાગ કરૂ છુ, અર્થાત્ દ્રવ્યભાવથી નષ્ટ તથા ચારિત્રમર્યાદામા સ્થિત થઇને હુ સાવધક્રિયાવાન આત્માની નિન્દા કરૂ છુ અને કરેલા પાપને ઉપશમભાવથી હઠાવુ છુ—એ પ્રમાણે અર્થ કરે છે આ પ્રમાણે અર્થ કરવો તે કોઈ પ્રકારે અસંગત નથી પરંતુ સર્વથા ઉચિત જ છે, કારણ કે સમુદાય પ્રત્યેકથી ભિન્ન નથી—આ ન્યાય પ્રમાણે આરે પદની સાર્થકતા

यथामत्पूहनीयानि। एतच्च मिथ्यादुष्कृतप्रायश्चित्त समितिगुप्तिरूपसयममार्गप्रवृत्तस्य साधोः प्रमादादिवशात्स्खलनाया सत्यामनुष्ठित सत् प्रदीपस्तम इव दोषमपनयति, अकृत्यवासनावासितान्तरात्मना साधुना मिथ्यादुष्कृतदान पुनरकृत्यसेवनाद्गुर्वादेरनुरञ्जनमात्रफलक भवति, तस्मात्तदर्थं नेद प्रायश्चित्त, नहि ज्ञात्वा भृशमपराय-तोऽप्यज्ञानकृतापराधप्रायश्चित्तेनाऽऽत्ममोचन जातु दृष्टचरम्, 'धुद्घ्वाचेद् द्विगुणो दमः'—'मत्या तु द्विगुण चरेत्' इत्यादिनीतेर्यथाऽपराध राजादिशासनवद्धर्म-आत्मा की अतिचार प्रवृत्तिरूप अप्रशस्त सत्ता (अशुद्ध अवस्था) को हटाता हूँ ॥

ऊपर कहा हुआ मिथ्यादुष्कृत प्रायश्चित्त समिति - गुप्तिरूप सयम मार्ग में प्रवृत्त साधु के प्रमाद आदि कारणसे लगे हुए दोषको उसी तरह हटा देता है जैसे दीपक अन्धेरे को, किन्तु जो साधु जान-बूझकर दोष सेवन किया करता हो उसका मिथ्या-दुष्कृत केवल गुरु आदि के मनोरञ्जन के लिए ही है पापसे छुटकारे के लिए नहीं, क्यों कि भूल से होनेवाले अपराधों के लिए जो प्रायश्चित्त नियत है उससे जान-बूझकर अपराध करनेवाले का दोष दूर नहीं होसकता। जैसे अनजानमें किसीसे राजशासनके विरुद्ध कोई अपराध किया जाता है तो उसको जितनी साधारण सजा दीजाती है, तो जान-बूझकर अपराध करनेवाले को अपराध के

भारामा रडेली आत्माना अतियारप्रवृत्ति इप अप्रशस्त सत्ता (अशुद्ध अवस्था) ने त्यज्यु छु

ऊपर कहेला मिथ्यादुष्कृत प्रायश्चित्त समिति-गुप्तिरूप सयम मार्गमा प्रवर्तेला साधुना प्रमाद आदि कारणधी लागेला दोषने जेवी रीते हटावी हे छे के जेवी रीते दीवे आधाराने हटावी हे छे यज्यु जे साधु जाली जेधने दोषनु सेवन कर्या करे छे तेना मिथ्यादुष्कृत केवण शुरु विगेरेना मनोरजन भाटे ज छे पाप भाधी छुटवाने भाटे नहि कारण के लूलधी थयेला अपराधने भाटे जे प्रायश्चित्त नकडी छे, तेधी जाली जेधने अपराध करवावाणाना दोष दूर यध शकता नधी जेवी रीते अनजानता केधधी राजशासन-विरुद्ध केध अपराध यध जय तेने जेटली सजा देवाय छे, ते करता जाली जेधने अपराध करवावाणाने ते अपराधधी

अथवा निरुक्तीत्या 'मिञ्जामि, दुक्कड' इत्यस्य 'मि' मयि विषयसप्तम्याश्रयणान्मद्विषयक छयति=छिनत्ति शिषमुखमिति छाः<sup>१</sup>=मिथ्यात्वादिस्ते<sup>२</sup> नो पलक्षित, 'मि<sup>३</sup>' मिनोमि=प्रक्षिपामि, किम्<sup>४</sup>, इत्याह—'दुक्कड'<sup>५</sup>=दुष्कृत=पापम् । एवञ्च मद्विषयक मिथ्यात्वानुपलक्षित दुष्कृत (पाप) प्रक्षिपामि=दूरतः परिहारामीत्यर्थः । यद्वा 'मिञ्जामि' इति पदत्रयव्याख्या पूर्ववत्, 'दुक्कड' इत्यत्र च 'दु'-रिति दुष्ट 'के'-त्यात्मनि 'डे' ति सत्ताया, दुष्टत्वं च सत्ताया विवक्षित, तथाच—'मि' मयि 'छा'=मिथ्यात्वादिना हेतुभूतेन दुष्टा=निन्दितामात्मनः सत्तामतिचारप्रवृत्तिलक्षणा 'मि'=प्रक्षिपामीत्यर्थः । व्याख्यानान्तराणि

अथवा निरुक्त रीतिसे 'मिञ्जामि दुक्कड' का अर्थ इस प्रकार भी होता है—'मि' 'छा' 'मि' 'दुक्कड' ऐसा पदच्छेद करने से 'मि' मुझ में रहे हुए 'छा'=मिथ्यात्व अविरति कषाय प्रमाद अशुभ-योगरूप 'दुक्कड'=पाप को 'मि'=दूर करता हूँ ।

अथवा 'मि' 'छा' 'मि' का व्याख्यान पहले की तरह जानना, 'दुक्कड' शब्द में 'दु' 'क' 'ड' इस प्रकार पदच्छेद करने से 'दु'=दुष्ट (अप्रशस्त) 'क'=आत्मा की 'ड'=सत्ता को, अतएव समुदाय का यह अर्थ हुआ कि—उक्त मिथ्यात्वादिके कारण मुझमें रही हुई

अथवा निरुक्त-रीति-प्रभावे "मिञ्जामि दुक्कडम्" ने अर्थ खेवी गीते पद्य थाय छे "मि छा मि दुक्कड" खेवो पदच्छेद करवाथी 'मि' भाशभा रहेला 'छा' मिथ्यात्व अविरति कषाय प्रमाद अशुभ-योगरूप 'दुक्कड' पापने 'मि' दूर कर छु, अथवा 'मि' 'छा' 'मि' नु व्याख्यान पड़ेलानी भाक्षे लक्षणु 'दुक्कड' शब्दभा "दु क ड" खेवी रीते पदच्छेद करवाथी 'दु'=दुष्ट (अप्रशस्त) 'क' आत्मानि 'ड'=सत्ताने, अतखेव समुदायने आ अर्थ थाय छे के उक्त मिथ्यात्वादिना करखे

१—'छा' 'छो छेदने' अस्मात्कर्त्तरि 'क्विप् । 'आदेच उपदेश' इत्याकार ।

२—'तेन' इत्यत्र—'जटाभिस्तापस' इतिवचृतीया ।

३—'मिनोमि' 'इमिञ् प्रक्षेपणे' अस्मात्कर्त्तरि क्विप् । 'मि' इत्यत्रार्पत्वादीर्घाभाव ।

४—'दुक्कड' इत्यत्र कृद्योगे षष्ठीमात्तावपि आर्पन्वाद्द्वितीया ।

एवमादिकैरागारैरभद्रोऽविराधितो भवतु मे कायोत्सर्गो यावदर्हता भगवता नम-  
स्कारेण न पारयामि तावत्काय स्थानेन मौनेन ध्यानेनाऽऽत्मान व्युत्सृजामि ॥मू० ३॥

॥ टीका ॥

‘तस्स’ तस्य=प्रमादकृताऽऽशुभयोगसम्बन्धेन देशतः सर्वतो वा खण्डि-  
तस्य श्रमणयोगस्य सातिचारस्याऽऽत्मनो वा, तच्छब्देनात्रौचित्यात्तयोरेव ग्रह-  
णात्, अतिचारस्य तु सम्भवेऽपि ‘उत्तरीकरण-विश्लयीकरणऽसम्भवादग्रहणम्,  
न च प्रागतिचारस्य ‘जो मे देवसिओ अइयारो’ इत्यादौ यच्छब्दनिर्दिष्टतया यत्त-  
दोश्च नित्यसम्बन्धेनाऽत्र ‘तस्स’ इत्यनेन ग्रहणमिति वाच्यम्, तत्र  
यच्छब्दनिर्दिष्टस्याऽतिचारस्य तत्रत्येनैव ‘तस्स मिच्छा मि’ इत्यनेन गतार्थ-  
सम्बन्धत्वात्, अत्रोक्तेन च ‘तस्स’ इति तच्छब्देन बुद्धिनिपयतावच्छेदकलो-  
पलक्षितधर्मावच्छिन्नस्यैव श्रमणयोगस्याऽऽत्मनो वा ग्रहण न त्वतिचारस्येति  
सुधीभिर्विवेक्यम् । ‘उत्तरीकरणेण’=उत्तरीकरणेन=अनुत्तरस्योत्तरस्य कर-

यहा पर ‘तस्स’ पदसे देशखण्डित सर्वविराधितरूप श्रमण-  
योग अथवा सातिचार आत्मा का ग्रहण है । कोई कोई ‘तस्स’ इस  
पदसे अतिचार का ग्रहण करते हैं-वह उचित नहीं है, इसलिए  
उसका सम्बन्ध ‘तस्स मिच्छा मि दुक्कड’ इस पदमे रहे हुए ‘तस्स’  
शब्द के साथ पूर्ण हो चुका है । दूसरा कारण यह भी है कि  
यद्यपि प्रायश्चित्तकरण तथा ‘पापविशुद्धि’ कण्टकशुद्धि-पैर आदि  
में लगे हुए काटे को निकालने-की तरह अतिचारो का विशुद्धीकरण

अर्द्धिया ‘तस्स’ पदथा देशभूषित अने सर्वविराधित इय श्रमण  
योग अथवा सातिचार आत्मानु अडणु उ डेअ डेअ ‘तस्स’ आ  
पदथा अतिचारने अडणु करे छे परतु ते योग्य नहीं तेथी तेना सणध  
“तस्स मिच्छा मि दुक्कड” आ पदमा रहेला तस्स शब्दनी साथे पूरे थये छे  
भीणु कान्णु अये पणु छे डे ‘प्रायश्चित्तकरण’ तथा “पापविशुद्धि” कटक-  
शुद्धि-पण आदिमा लागेला कटाने निकालवानी रीते अतिचारानु विशुद्धीकरण

१-‘राजा गौडेन्द्र कण्टक शोधयति’ इत्यादिपु कण्टकविशुद्धिवदतिचार-  
विशुद्धिकरण सम्भवति तस्मादुक्तम्-‘उत्तरीकरणे’-ति, नहि-शल्य=मायादिरूप-  
मतिचारस्य समस्ति; अपि स्वात्मनस्तत्प्राधान्याच्छ्रमणयोगस्य च ।

शास्त्रप्रायश्चित्तस्याऽप्युत्तममध्यमाधमसाहसरूपत्वस्य सर्वजनीनत्वात् । अन्यथा कदाचित् कुम्भकारक्षुल्लकमिव्याण्डुकृतत्वापत्तेः ॥ सू० २ ॥

सम्प्रत्यतिचाराणा विशेषशुद्धयर्थं कायोत्सर्गः कर्त्तव्य इति सविधि कायोत्सर्गस्वरूपमाह—‘तस्सुत्तरी’—इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

तस्सुत्तरीकरणेण पायच्छित्तकरणेण विसोहीकरणेण विसल्लीकरणेण पावाण कम्माण निग्घायणट्टाए काउस्सग्ग अनत्थ उस्ससिएण नीससिएण खासिएणं छीएण जभाइएण उड्डुएण वायनिसग्गेण भमलिए पित्तमुच्छाए सुहुमेहिं अगसचालेहि सुहुमेहि खेलसचालेहि सुहुमेहि दिट्टिसचालेहिं एवमाइएहि आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो जाव अरिहताण भगवताण नमुक्कारेण न पारेभि ताव काय टाणेण मोणेण ज्ञाणेण अप्पाण वोसिरामि ॥ सू० ३॥

॥ छाया ॥

तस्योत्तरीकरणेन प्रायश्चित्तकरणेन विशुद्धि ( विशोधी ) करणेन विशल्लीकरणेन पापाना कर्मणा निर्घातनार्थं तिष्ठामि कायोत्सर्गम्, अन्यत्रोच्छ्वसितेन नि श्वसितेन कासितेन क्षुतेन जृम्भितेन उद्गारितेन वातनिसर्गेण भ्रमल्या पित्तमूर्च्छया सूक्ष्मैरङ्गसञ्चारै सूक्ष्मै श्लेष्मसञ्चारै सूक्ष्मैर्दृष्टिसञ्चारै;

अनुसार उससे अधिक ही मजा दीजाती है । मिथ्यादुष्कृत के भरोसे पर जान बूझकर पाप करते रहनेवाले साधु की प्रायः वैसी ही दुर्दशा होती है जैसी कुम्भार के हाथसे मिथ्यादुष्कृत देनेवाले क्षुल्लक साधु की हुई थी ॥ सू० २ ॥

अत्र अतिचारों की विशेष शुद्धि के लिए विधिपूर्वक कायोत्सर्ग का स्वरूप दिखलाते हैं—‘तस्सुत्तरीकरणेण’ इत्यादि ।

अधिक सज्ज देवाय छे, मिथ्यादुष्कृतना बरेशा उपर नवणी नेष्टने पाप करता रहनेवाला साधुनी पास करीने जेवी दुर्दशा थाय छे के जेवी रीते कुम्भारना हाथथी मिथ्यादुष्कृत देवावागा छु लउ साधुनी यथं इती सू० २

हुवे अतियाशनी विशेष शुद्धि भाटे विधिपूर्वक कायोत्सर्गनु स्वइय भावे छे ‘तस्सुत्तरीकरणेण’ इत्यादि

एवमादिकैरागारैरभग्रोऽविराधितो भवतु मे कायोत्सर्गो यावदर्हता भगवता नम-  
स्कारेण न पारयामि तावत्काय स्थानेन मौनेन ध्यानेनाऽऽत्मान व्युत्सृजामि ॥मू० ३॥

॥ टीका ॥

‘तस्स’ तस्य=प्रमादकृताऽशुभयोगसम्बन्धेन देशतः सर्वतो वा खण्डि-  
तस्य श्रमणयोगस्य सातिचारस्याऽऽत्मनो वा, तच्छब्देनात्रौचित्यात्तयोरेव ग्रह-  
णात्, अतिचारस्य तु सम्भवेऽपि ‘उत्तरीकरण-विश्लयीकरणाऽसम्भवाद्ग्रहणम्,  
न च प्रागतिचारस्य ‘जो मे देवसिओ अइयारो’ इत्यादौ यच्छब्दनिर्दिष्टतया यत्त-  
दोश्च नित्यसम्बन्धेनाऽत्र ‘तस्स’ इत्यनेन ग्रहणमिति वाच्यम्, तत्र  
यच्छब्दनिर्दिष्टस्याऽतिचारस्य तत्रत्येनैव ‘तस्स मिच्छा मि’ इत्यनेन गतार्थ-  
सम्बन्धत्वात्, अत्रोक्तेन च ‘तस्स’ इति तच्छब्देन बुद्धिविषयतावच्छेदकत्वो-  
पलक्षितधर्मावच्छिन्नस्यैव श्रमणयोगस्याऽऽत्मनो वा ग्रहण न त्तिचारस्येति  
सुग्रीभिर्विवेकव्यम् । ‘उत्तरीकरणेण’=उत्तरीकरणेन=अनुत्तरस्योत्तरस्य कर-

यहां पर ‘तस्स’ पदसे देशखण्डित सर्वविराधितरूप श्रमण-  
योग अथवा सातिचार आत्मा का ग्रहण है । कोई-कोई ‘तस्स’ इस  
पदसे अतिचार का ग्रहण करते हैं-वह उचित नहीं है, इसलिए  
उसका सम्बन्ध ‘तस्स मिच्छा मि दुक्कड’ इस पदमे रहे हुए ‘तस्स’  
शब्द के साथ पूर्ण हो चुका है । दूसरा कारण यह भी है कि  
यद्यपि प्रायश्चित्तकरण तथा ‘पापविशुद्धि’ कण्टकशुद्धि-पैर आदि  
में लगे हुए काटे को निकालने-की तरह अतिचारो का विशुद्धीकरण

अर्द्ध्या ‘तस्स’ पदथी देशभङ्गित अने सर्वविराधित इय श्रमणु  
योग अथवा सातिचार आत्मानु अङ्गु उ केथ केथ ‘तस्स’ आ  
पदथी अतिचारनो अङ्गु करे छे परतु ते योग्य नथी तेथी तेनो सभध  
“तस्स मिच्छा मि दुक्कड” आ पदभा रडेला तस्स शण्डनी साथे पूरे थथे छे  
धीणु कानु अ पधु छे के ‘प्रायश्चित्तकरण’ तथा “पापविशुद्धि” कटक-  
शुद्धि-पग आदिभा लागेला कटाने निकालवानी रीते अतिचारानु विशुद्धीकरण

१-‘ राजा गौडेन्द्र कण्टक शोधयति ’ इत्यादिषु कण्टकविशुद्धिवदतिचार-  
विशुद्धिकरण सम्भवति तस्माद्भुक्तम्-‘उत्तरीकरणे’-ति, नहि-शल्य=मायादिरूप-  
मतिचारस्य समस्ति; अपि त्वात्मनस्तत्प्राधान्याच्छ्रामण्ययोगस्य च ’ ।

જાત્રપાયશ્ચિત્તસ્યાऽપ્યુત્તમમધ્યમાધમસાહસરૂપત્વસ્ય સર્વજનીનત્વાત્ । અન્યથા  
કદાચિત્ કુમ્ભકારક્ષુલ્લકમિધ્યાપ્નુકૃતત્યાપત્તે ॥ સૂ. ૨ ॥

સમ્પ્રત્યતિચારાણા પ્રિશેપશુદ્ધયર્થં કાયોત્સર્ગઃ કર્તવ્યં ઇતિ સવિધિ  
કાયોત્સર્ગસ્વરૂપમાહ—‘તસ્મુત્તરી’—ત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

તસ્મુત્તરીકરણેણ પાયચ્છિત્તકરણેણ વિસોહીકરણેણ વિસહ્લી-  
કરણેણ પાવાણ કમ્માણ નિગ્ધાયણટ્ટાણ કાઠસ્સગ્ગ અનત્થ ઝસ-  
સિણ નીસસિણ ઠાસિણં છીણ જમાઇણ ઉડ્ડુણ  
વાયનિસગ્ગેણ ભમલિણ પિત્તમુચ્છાણ સુહુમેહિં અગસચાલેહિ સુહુમેહિ  
ઝેલસચાલેહિ સુહુમેહિ દિટ્ઠિસચાલેહિં એવમાઇણહિ આગારીહિ  
અભગ્ગો અવિરાહિઓ હુજ્જ મે કાઠસ્સગ્ગો જાવ અરિહતાણ ભગવતાણ  
નમુક્કારેણ ન પારેભિ તાવ કાય ઠાણેણં મોણેણં જ્ઞાણેણ  
અપ્પાણ વોસિરામિ ॥ સૂ. ૩ ॥

॥ છાયા ॥

તસ્મોત્તરીકરણેણ પ્રાયશ્ચિત્તકરણેણ વિશુદ્ધિ (વિશોધી) કરણેણ વિશલ્યી  
કરણેણ પાપાના કર્મણા નિર્ઘાતનાર્થં તિષ્ઠામિ કાયોત્સર્ગમ્, અન્ય-  
ત્રોચ્છ્રસિતેન નિઃશ્વસિતેન કાસિતેન ક્ષુતેન જૃમ્ભિતેન ઉદ્ધારિતેન વાતનિર્સર્ગેણ  
ભ્રમત્યા પિત્તમૂર્ચ્છયા મૂક્ષ્મૈરજ્જસઞ્ચારૈ મૂક્ષ્મૈ. શ્લેષ્મસઞ્ચારૈ. મૂક્ષ્મર્દદિસઞ્ચારૈ;

અનુસાર ઝસસે અધિક હી મજા દીજાતી હૈ । મિધ્યાદુષ્કૃત કે  
ભરીસે પર જાન બૂઝકર પાપ કરતે રહનેવાલે સાધુ કી પ્રાય વૈસી  
હી દુર્દશા હોતી હૈ જૈસી કુમ્ભાર કે હાથસે મિધ્યાદુષ્કૃત દેનેવાલે  
ક્ષુલ્લક સાધુ કી હુઈ થી ॥ સૂ. ૨ ॥

અવ અતિચારોં કી વિશેષ શુદ્ધિ કે લિણ વિધિપૂર્વક કાયો  
ત્સર્ગ કા સ્વરૂપ દિઝલાતે હૈ—‘તસ્મુત્તરીકરણેણ’ ઇત્યાદિ ।

અધિક સમ દેવાય છે, મિધ્યાદુષ્કૃતના ભરોસા ઉપર બાણી બેધને પાપ કરતા  
રહેનારા સાધુની ખાસ કરીને એવી દુર્દશા થાય છે કે એવી રીતે કુભારના હાથથી  
મિધ્યાદુષ્કૃત દેવાવાળા ક્ષુલ્લક સાધુની થઈ હતી સૂ. ૨

હવે અતિચારોની વિશેષ શુદ્ધિ માટે વિધિપૂર્વક કાયોત્સર્ગનું સ્વરૂપ  
બતાવે છે ‘તસ્મુત્તરીકરણેણ’ ઇત્યાદિ

निश्चयसयुक्त, प्रायश्चित्तमिति स्मृतम् ॥ १ ॥' इत्युक्तविध, तस्य 'करणम्=अनु-  
ष्ठान, तेन । प्रायश्चिशाऽऽचरण च परिणामविशुद्धिमन्तरेण न समभवतीत्यत  
आह-' विसोधीकरणेण ' इति, विशोधन (विशिष्य शोधन) विशोधिः<sup>२</sup>=सम्यक्-  
शुद्धिः, तस्याः करण=सम्पादनम्, यद्वा शोधन शोधः<sup>३</sup> विशिष्टः शोधो यस्य  
खण्डित-विराधितरूपस्य श्रामण्ययोगस्य तत्सम्बद्धस्यात्मनो चेत्यर्थात्, स विशोधः,  
अविशोधस्य विशोधस्य करण 'विशोधीकरणेण तेन । विशोधीकरणेण प्रति भावशल्यो-  
द्धरणस्य कारणत्वात्तदाह-' विसोधीकरणेण ' इति, विनष्ट मायानिदानादिविक-  
रूप शल्य यस्योक्तंरूपस्य (श्रामण्ययोगस्य) स विशल्यः खण्डनाविराधना-  
दितोऽविशल्यस्य विशल्यस्य करण विशल्यीकरणेण तेन । आह-कः शल्यशब्दार्थः?  
कतिविधश्च सः? उच्यते-शल्यते=धातूनामनेकार्थत्वाद् बाध्यते, यद्वा सत्रियते  
सुखमनेनेति शल्य, तच्च द्रव्यभावभेदाद्विविध, तत्र द्रव्यशल्य लोकप्रतीत कण्टक-  
सूची-शूल-भल्लादिकम् । भावशल्य मायाप्रभृति, जीवता कठोरतमतीक्ष्णदशनैः  
श्रापदैर्ज्ञ स्फोरयित्वा स्वयं वा निजा त्वच नि.सार्य स्वगरीरस्य लवणसर्जिका-

भी परिणामों की शुद्धता के बिना नहीं होसकता इस कारण  
अतिचार हटाकर आत्मपरिणामों को निर्मल करने के लिये,  
विशोधीकरण (आत्मपरिणामो का निर्मल करना) भी शल्य के दूर  
किये बिना नहीं हो सकता, क्योंकि सिंह व्याघ्र आदि भयानक  
जीवजन्तुओं के तीखे नाखून दाँत आदिसे शरीर के अग अग को  
फडवा लेना, अपने आप सारे शरीर की खाल खीचकर उस पर

भाटे अतिचारने दूर करी आत्मपरिणामोने शुद्ध करवाने भाटे विशोधीकरण  
(आत्मपरिणामोने शुद्ध करवा) यद्यु शल्यने दूर कर्था बिना नहीं थछ शकते,  
केम के सिद्ध बाध विगेरे भय कर प्राणीओना तीक्ष्ण नभ दात विगेरेथी शरी  
रना अगे अगने इडावपु, पोताना अ डाथे आभा शरीरनी आभडी जेथीने  
तेना उपर भीडु छाटी वेपु, शल्युशीथी पोतानु माथु कापीने इडी डेपु,

१- 'प्रायश्चित्तकरणम्'=सिद्धिर्निरुक्तां क्तरीत्या पृषोदरादित्वात् ।

२- विशोधिः-'वि'+पूर्वकात् शुध् धातोर्ण्यन्तादीणादिक. स्त्रिया भावे  
'इ' प्रत्ययः ।

३- शोधः-भावे घञ्

४- विशोधीकरणम्-अभूततद्भावे चित्रीकारादेशश्च ।



णम् 'उत्तरीकरणम्, उत्तरशब्द उच्चतरार्थकः करणशब्दो भावसाधनस्तेन-अनु-  
 च्चतरस्य पुनः सस्कारद्वारोच्चतरस्य ( उत्कृष्टस्य ) करण=सम्पादन तेनेत्यर्थः ।  
 'अ ययनेन वसति' इतिगृहेती तृतीया, यद्वाऽऽर्पत्वात्तादर्थ्यचतुर्व्यर्थे तृतीया;  
 तदा चोत्तरीकरणार्थमित्यर्थः । एवमग्रेऽपि तृतीयान्तार्थो श्रोद्धव्यः । यथा कुपथ्या-  
 द्वारविहारादिना समुत्पन्नस्य व्याप्रेरुपशमाय वैत्रकोक्तः प्रतीकारः क्रियते तद्वदिद-  
 मुत्तरीकरणम् । उत्तरीक्रिया च प्रायश्चित्ताचरणेनैव सम्भवतीत्यत आह-'प्राय-  
 च्छित्तकरणेण' प्रायश्चित्तकरणेन-प्रायो=बाहुल्येन प्रयतत्वाद्वा चित्तम्=उपचित्तम-  
 शुभ तनूकरोतीति, अशुभयोगाद्वा स्वलित चित्तम्=आत्मान प्राति=तत्तदशुभ-  
 योगापनयनेन पूरयतीति, प्रापयति चित्तम्=आत्मान मनो वा शुद्धिमिति,  
 प्रायः=बाहुल्येन चेतयति='पुनरेव न र्त्तव्य'-मिति प्रतिबोधयत्यात्मानमिति  
 वा प्रायश्चित्तम्, यद्वा-'प्राय' प्रोक्त तपस्यादि, चित्त निश्चय उच्यते । तच्च

होसकता है तो भी घटा कहे गये 'उत्तरीकरणेण' और 'विसल्ली-  
 करणेण' के साथ उसका सम्बन्ध नहीं बैठता, कारण 'यह है कि  
 न तो अतिचारो को उत्कृष्ट बनाने के लिये कायोत्सर्ग किया जाता  
 है और न उनमें मायादिशक्तियों का सम्भव है, मायादिशक्त्य तो आत्मा  
 के विभाव परिणाम हैं, अतएव सिद्ध हुआ कि उस स्वण्डित अथवा  
 विराधित श्रमणयोग या उस योगसे युक्त आत्मा को उत्कृष्ट बनाने के  
 लिये, और विना प्रायश्चित्तके आत्मा उत्कृष्ट नहीं बन सकती-  
 इसलिये लगे हुए पापोंका प्रायश्चित्त करने के लिये, तथा प्रायश्चित्त

थर्ष शक्ये छे तो पण्य अर्द्धि कहेल 'उत्तरीकरणेण' अथवा 'विसल्लीकरणेण'  
 नी साथे तेना सभध नथी भेसतो कश्चि अथे छे के न तो अतिचारोने उत्कृष्ट  
 बनाववा भाटे कायोत्सर्ग करवाभा आवे छे अने नथी तेमा मायादि शक्त्योना सभव  
 मायादिशक्त्य तो आत्मानो विभावपरिणाम छे अथी सिद्ध थयु के-अथे अडित अथवा  
 विराधित श्रमणयोग अथवा अथे योगथी युक्त आत्माने उत्कृष्ट बनाववा भाटे अथवा  
 प्रायश्चित्त विना आत्मा उत्कृष्ट थथ शक्यतो नथी तेथी लागेता पापोना प्रायश्चित्त  
 करवा भाटे, तथा प्रायश्चित्त पण्य परिणामोनी शुद्धता विना थथ शक्यता नथी ते

१-उत्तरीकरणम्-'अभूततद्भावेऽर्थे 'कृश्वस्तियोगे सपञ्चकर्तारि चि' (५।४।५०) इति चि, 'अस्य च्चौ' (७।४।३२) इतीकार ।

‘काउस्सग्ग’ कायस्य=शरीरस्य उत्सर्गम्=अतिचारविशुद्धये त्याग ‘ठामि’  
 तिष्ठामि स्थापयामीत्यर्थः यद्वा करोमीत्यर्थः । अथवा ‘काउस्सग्ग’ इत्य-  
 त्त्राऽऽर्पत्वात्तृतीयार्थे द्वितीया, तेन कायोत्सर्गेणाऽर्थात् कायोत्सर्गं कृत्वा तिष्ठामी-  
 त्यर्थः । ननु ऋथमेतावन्मामर्थ्यं कायोत्सर्गस्य वर्णितं ? मिति चेदुच्यते यत्  
 साक्षात्तीर्थंरैरेवाय मोक्षमार्गं प्रोक्त इति, एव च सति सातिचारस्य धामण्ययोग-  
 स्याऽऽत्मनो चोच्चतरीकरण-प्रायश्चित्तकरण-विशोधीकरण-विश्लयीकरण-पाप-  
 कर्मनिर्घातनान्यतिचारनिवृत्तिस्वरूपाण्येवेत्यतिचारनिवृत्त्यर्थं कायोत्सर्गं करो-  
 मीति पर्यवसन्नोऽर्थः । न च सर्वथा, किं तर्हि ? तदाह-‘अन्नत्थ’ अन्यत्र=विना  
 ‘ऊससिएण’ ऊर्त्वे श्वसनम्=उच्छ्वसित, नपुमके भावे कस्तेन उच्छ्वास विने-  
 त्यर्थ, एवमग्रिमरपि तृतीयान्तैः सहाऽन्यत्रेत्यस्य सम्बन्धो योज्यः । ‘नीस-  
 सिएण’ नि श्वसितेन-नि श्वसित=श्वासमोक्षण तेन, ‘कासिएण’-कासितेन=कासेन ।  
 ‘छीएण’ क्षुत्तेन क्षुतं=नासिकाऽभिघातजन्याऽऽकस्मिकसशब्दाऽनिलनिस्सरण  
 ‘इच्छि’ रिति, ‘इक्के’ति च प्रसिद्ध (‘हो छी’ इति भाषायाम् ) तेन । ‘जभाइएण’  
 जृम्भतेन=जृम्भा आलस्यजनितो मुखव्यादानपूर्वकतद्वाराऽऽन्तरपत्रनिविर्गमस्तेन ।  
 ‘उड्डुएण’ उद्धारितेन ‘उड्डुअ’ इत्यस्य देशिशब्दत्वाद्द्वारितमर्थ, उद्धारित चोद्धारः=  
 कण्ठगर्जनाऽपरपर्यायः, उद्गमनप्रभेदस्तेन । ‘वायनिसग्गेण’ वातनिसर्गेण-वातस्य=

करने के लिये मैं कायोत्सर्ग करता हूँ, किन्तु इसमें श्वास का लेना  
 तथा निकालना, खाँसना, डीकना, जभाई लेना, डकारना, अपानवायु  
 का निकलना, पित्तप्रकोप आदिसे चक्करका आना, मूर्च्छाका आना,

विगेरे पाप (आठ) कर्मोनि नाश करवा भाटे हुं कायोत्सर्गं कइ छु पणु  
 ओभा श्वास वेवे तथा भूइवे, भासी भावी, छीक भावी, णगासु भासु ओड  
 डार भावे, अपानवायुना श्वाप थवे, पित्तप्रकोपथी अधारा आववा भूइछा

१- इष्ट हि सकर्मकस्यापि धातो क्वचिदकर्मकत्व यथा, काव्यप्रकाशे द्विती-  
 योल्लासे-‘त्रिपयविभागो न प्राप्नोती’-ति । अकर्मकस्यापि च सकर्मकत्व  
 यथा-‘यथा शत्रु जयति भार वहती’-त्यादि च ।

२- अन्तर्भावित्यर्थत् स्या-धातोः स्थापयामीत्यर्थः ।

३- ‘कुर्द खुर्द गुर्द गुद-क्रीडायामेव’ इत्यत्रैवग्रहणेन ‘परा भुवोऽवज्ञाने,  
 इत्यत्राऽवज्ञानग्रहणेन च धातूनामनेकार्थत्वमल्पनात् करोमीत्यर्थः ॥

क्षारादिना सेचन, लीलयेन छिन्ना स्वमस्तकस्यापि प्रक्षेपण, प्रज्वलदनलकराल  
 कुण्डे निर्भयपतनमुत्तापोद्गलद्रवसीसकादिपान, भृगुमपातः, कालखण्डादिर्ममस्था  
 नाना कुन्तादिना वेधन च कर्तुं सुशक, किन्तु ऋद्ध्यादिगौरवत्रयभङ्गभयाज्जा  
 त्यायष्टविधमदाद्वा पामरैरप्रकाशित घोरतपःप्रभृतिमुनिक्रियाकलापकोमल  
 कल्पलताकर्त्तनकरुर्चरीकल्पमनल्पदोपराशिनिदानमनन्तचतुर्गतिसृष्टिभ्रामकमिद  
 भावशल्य सर्वथा दुःसहमिति श्लघ्यशब्देन प्रकृते मायादिभावशल्यमेव गृह्यते प्रकरण  
 स्याऽभिधानियामकत्वात्, 'पात्राण कम्माण' पापाना कर्मणा पाशयन्ति=मलि  
 नयन्ति नरकादौ पातयन्ति, आनन्दरस शोषयन्ति क्षपयन्ति वेति पापानि तद्रूपाणा  
 कर्मणा ज्ञानावरणीयादीना' निग्धायणद्वाए' निर्घातनार्थ=समूलमुन्मूलनार्थम्

नमक छिडकना, खुशीसे अपना मस्तक काटकर फेंक देना, उकलते  
 सीसेको पी जाना, धधकते हुए अग्निकुण्डमे कूद पडना, पर्वत की  
 चोटी पर चढकर घडाम से नीचे गिर पडना, कलेजेमे भाला भोंकना  
 आदि द्रव्यशल्य सहन करना सहज है, परन्तु ऋद्ध्यादि तीन गौरवों  
 (गारव) के नाश होने के डरसे, अथवा जाति आदि आठ प्रकार  
 के मद के कारण अपने अन्दर ही छिपाये हुए-मुनियों के मुक्ति-  
 साधन घोर तप आदि क्रियारूप कोमल कल्पलता के कतरने मे  
 कतरनी के समान तथा अनन्त दुर्गुणो से युक्त और चारगतिरूप  
 अनन्त ससार में परिभ्रमण करानेवाले-माया आदि भावशल्यों का  
 पामरोंसे सहन होना अत्यन्त कठिन है, अतः भावशल्यों को दूर  
 करने के लिये, तथा ज्ञानावरणीय आदि पाप (आठ) कर्मों का नाश

गरभ करेखु सीसु पी जलु धगधगता अग्निकुडमा कुडी पडलु पर्वतनी टोय  
 उपर यदीने धडामथी जपलावतु, इलेलमा लाला लोडवा आदि द्रव्यशह्य  
 सहन करवा सहज छे परतु ऋद्ध्यादि त्रयु गौरवो (गारव)नो नाश थवाना उरथी  
 अथवा जाति विगेरे आठ प्रकारना महने लीधे पोतानी अहरज  
 छुपायेल-मुनियोना मुक्तिसाधन उत्कृष्ट तप विगेरे क्रियाइप कोमल-कल्पलताने  
 कातरवाभा कातर समान, तथा अनन्त दुर्गोहोथी युक्त अने चार गतिइप  
 अनन्त ससारमा परिभ्रमण करानार-माया आदि शावथ येनु पामरौथी सहन  
 थलु धलु कठय छ ते भाटे भावशह्योने हर करवा, तथा ज्ञानावरणीय

‘काउस्मग्’ कायस्य=शरीरस्य उत्सर्गम्=अतिचारविशुद्धये त्याग ‘ठामि’  
 ‘तिष्ठामि’ स्थापयामीत्यर्थः यद्वा ३करोमीत्यर्थः । अथवा ‘काउस्सग्’ इत्य-  
 त्त्राऽऽर्पत्वात्तृतीयार्थे द्वितीया, तेन कायोत्सर्गेणाऽर्थात् कायोत्सर्गं कृत्वा तिष्ठामी-  
 त्यर्थः । ननु कथमेतावत्त्वामर्थ्ये कायोत्सर्गम्य वर्णित ? मिति चेदुच्यते यत्  
 साक्षात्तीर्थैरैरेवाय मोक्षमार्गः प्रोक्त इति, एव च सति सातिचारस्य धामण्ययोग-  
 स्याऽऽत्मनो बोधतरीकरण-प्रायश्चित्तकरण-विशोधीकरण-विश्लयीकरण-पाप-  
 कर्मनिर्घातनान्यतिचारनिवृत्तिस्वरूपाण्येवेत्यतिचारनिवृत्त्यर्थं कायोत्सर्गं करो-  
 मीति पर्यवसन्नोऽर्थः । न च सर्वथा, किं तर्हि ? तदाह-‘अन्नत्थ’ अन्यत्र=विना  
 ‘ऊससिण्ण’ ऊर्ध्वं श्वसनम्=उच्छ्वासित, नपुमके भावे कस्तेन उच्छ्वास विने-  
 त्यर्थः, एवमग्रिमपि तृतीयान्तै सहाऽन्यत्रेत्यस्य सम्बन्धो योज्यः । ‘नीस-  
 सिण्ण’ नि श्वसितेन-नि श्वसित=श्वासमोक्षण तेन, ‘कासिण्ण’-कासितेन=कासेन ।  
 ‘ञीण्ण’ क्षुत्तेन क्षुतं=नासिकाऽभिघातजन्याऽऽकस्मिन्कसशब्दाऽनिलनिस्सरण  
 ‘ह्विच्च’ रिति, ‘उक्के’ति च प्रसिद्ध (‘ह्वा छी’ इति भाषायाम् ) तेन । ‘जभाडण्ण’  
 जृम्भतेन=जृम्भा आलस्यजनितो मुखव्यादानपूर्वकतद्वाराऽऽन्तरपवनविनिर्गमस्तेन ।  
 ‘उड्डुण्ण’ उद्धारितेन ‘उड्डुअ’ इत्यस्य देशिण्णवत्त्वाद्द्वारितमर्थः, उद्धारित चोद्धारः=  
 कण्ठगर्जनाऽपरपर्यायः, उद्गमनप्रभेदस्तेन । ‘वायनिसग्गेण’ वातनिसर्गेण-वातस्य=

करने के लिये मैं कायोत्सर्ग करता हूँ, किन्तु इसमें श्वास का लेना  
 तथा निकालना, खाँसना, डीकना, जभाई लेना, डकारना, अपानवायु  
 का निकलना, पित्तप्रकोप आदिसे चक्रका आना, मूर्च्छाका आना,

(विगेरे पाप (आड) कर्मानो नाथ करवा भाटे हुं कायोत्सर्गं कइ छु पणु  
 ओभा श्वास वेवो तथा भूकवो, आभी भावी, छीक भावी, गगासु भावु ओड  
 कार भावो, अपानवायुनो भाव थवो, पित्तप्रकोपथी अधारा भाववा भूर्च्छा

१- दृष्टं हि सर्मकस्यापि धातो कचिदकर्मकत्व यथा, काव्यप्रकाशे द्विती-  
 योल्लासे-‘विपयविभागो न प्राप्नोती’-ति । अकर्मकस्यापि च सकर्मकत्व  
 यथा-‘यथा शत्रु जयति भार वहती’-त्यादि च ।

२- अन्तर्भावितण्यर्थत् स्या-धातो. स्थापयामीत्यर्थः ।

३- ‘कुर्द खुर्द गुर्द गुद-क्रीडायामेव’ इत्यत्रैवग्रहणेन ‘परां भुवोऽवज्ञाने,  
 इत्यत्राऽवज्ञानग्रहणेन च धातूनामनेकार्थत्वमल्पनात् करोमीत्यर्थः ॥

पायुवागोर्निसर्गः=निस्सरण यातनिसर्गस्तेन । ' भ्रमलीए ' भ्रमल्या-भ्रमली= आरुस्मिकशरीरभ्रमण=पित्तोदयेन यद्भ्राम्यन्महीदर्शन पूर्वादिदिग्भ्रान्तिश्च ( चक्र, घुम्मा, इत्यादि भाषायाम् ) तथा । ' पित्तमुच्छ्राए ' पित्तमूच्छ्राया-पित्तमूच्छ्रा= पित्तजन्या नष्टचेष्टता तथा । ' सुहुमेहिं अगसचालेहिं ' सूक्ष्मै- रङ्गसचालैः- रोमोद्गमादिरूपैरलक्षितप्रायैः, सूक्ष्मैः शरीरसञ्चालैः=स्वभाविकैरङ्गस्फुरणादिभिर्वा, ' सुहुमेहिं खेलसचालेहिं '-सूक्ष्मै श्लेष्मसंचालैः-खेलेति देशभाषाया श्लेष्मणो नाम, श्लेष्मणा=रुफाना सञ्चालैः गलत्रिलात्स्वभावतः श्लेष्मणामधो बहिर्वाऽवतरणैः । ' सुहुमेहिं दिदिसचालेहिं '-सूक्ष्मैर्दृष्टिसचालैः सूक्ष्मैः=स्वभाविकैर्दृष्टिसञ्चालैः= पक्ष्मनिकोचनादिभिः । ' एवनाइरहिं भागारेहिं ' एवमादिकैराकारैः- एवमादिभि- रुक्तस्वरूपैरुच्छ्रसितादिभिराकारै कायोत्सर्गप्रतिरोधकैः, अत्राऽऽदिशब्देनाऽग्न्युपद्रव- जलोपद्रव- महासाहसिकोपद्रव राजोपद्रवेषु, भित्तिच्छत्रादिपातसिंहसर्पाद्युपद्रवेषु मार्जारदिकृतभृशोपद्रव सङ्कटापन्नमूपिकादिप्राणिपरिरक्षणार्थं वा स्थानपरिवर्तन ग्राह्यम्, एषामुच्छ्रसितादीनामागाराणा कायोत्सर्गप्रसङ्गे निरूपणमेतदधिकारिसहन नसामर्थ्यतात्पर्येण, 'अभ्रगो' अभ्रगः=देशतोऽखण्डितः, 'अविराडिओ' अविराधित- सर्वतोऽखण्डितः, 'हुज्ज' भवेत् 'मे' मम 'काउस्सगो' कायोत्सर्गः अर्थादुच्छ्रसि- तैरागारैः सद्भिरपि मम कायोत्सर्गोऽखण्डितोऽविराधितोऽस्तु । अत्रावधिमाह- 'जाव'

सूक्ष्मरूपसे अगों का हलना-चलना अथवा फडकना, कफ, थूक आदि का संचार होना, तथा दृष्टिका संचलन होना आदि आगार हैं, यहा आदि शब्द से अग्नि जल डाकू राजा सिंह सर्प भीत (दीवार) तथा छत का गिरना आदि उपद्रवों से या बिल्ली आदि हिंसक प्राणियों से घिरे हुए चूहे आदि जीवों को दया भावसे छुडाने के लिये स्थानपरिवर्तन करना आदि आगारों का ग्रहण करना चाहिये । ये उच्छ्रसितादि आगार अधिकारियों (ध्यानस्थ

आवपी, सूक्ष्म पण्डे अगोनु हलन चल । यवु तथा इरकवु, कइ थुक विगेरेने सचार थयो, तेमज दृष्टिनु सचलन यवु विगेरे आगार छे अहिं अहि शण्दथी अग्नि जल डाकू राजा सिंह सर्प दीवाव तथा छतनु पडी जवुं विगेरे उपद्रवोथी अथवा गिलाडी विगेरे हिंसक प्राणियोथी घेराअले उदर विगेरे एवने इया भावथी छोडाववा भाटे स्थानदेर करवे विगेरे आगारोनु अहणु करवुं नेधजे

इत्यादि, 'जाव' यावत् 'अरहताण भगवताण' अर्हता भगवता तत्कर्मकेणेत्य-  
 र्थात् । 'नमोक्कारेण' नमस्कारेण 'न पारेमि' न पारयामि, कायोत्सर्गपरि-  
 समाप्तौ हि 'नमोऽरहताण' इत्युच्चार्यैव विरमणीयमिति सम्प्रदायस्तस्मात् 'नमो  
 ऽरहताण' इत्युच्चार्य यावत्पार न यास्यामीति भावः, वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमान-  
 वत्प्रत्ययः 'अयमागच्छामी'-ति यथा । 'ताव' तावत् 'काय' देह 'ठाणेण'  
 स्थानेन=गतिनिवृत्त्या=कायव्यापारनिरोधेन 'मोणेण' मौनेन तूष्णीम्भावेन=  
 वाग्व्यापारनिरोधेन 'झाणेण' ध्यानेन= चित्तैकाग्रतया=मनोव्यापारनिरोधेन  
 कायिक-त्राचिक मानसिकव्यापारपरित्यागपूर्वकमिति यावत्, 'अप्पाण' आत्मानम्'  
 अत्राऽऽत्मशब्द आत्मीयार्थकः, स च 'काय' इत्यस्य विशेषण तेनाऽऽत्मीय  
 कायमिति सम्बन्ध इति केचित्, वस्तुतस्तु कायमात्मान चेत्यर्थः । चशब्दाऽ-  
 भावेऽपि समुच्चयार्थस्य 'अहरहर्नयमानो गामश्च पुरुष पशु' मित्यादौ दर्शनात्,  
 अतएव सूत्रे 'काय' इत्युक्त्वाऽनन्तर 'ठाणेण' इति कायव्यापारनिरोधः,  
 'अप्पाण' इत्यत्र च 'झाणेण' इति मनोव्यापारनिरोधः प्रोक्त इति सूक्ष्मेक्षि-  
 कयाऽवधार्यम् । कायोत्सर्गस्य प्रसिद्धिरप्येतन्नात्पर्यपरिकैव, नह्यात्मत्यागव्यति-  
 रेकेण कायत्यागमात्राप्रथोक्त प्रायश्चित्तं सम्भवति । किञ्च रूढे, प्रयोजनस्य  
 तात्पर्याऽनुपपत्तेश्च हेतोरभावेन लक्षणाया असम्भवात्, आत्मीयार्थत्वकल्पनमायमू-  
 लकमेवेत्यास्ता विस्तरः । 'त्रोसिरामि' व्युत्सृजामि=परित्यजामीत्यर्थः ॥ सू० ३ ॥

व्यक्तियों)की न्यूनाधिक शक्तिकी अपेक्षासे कहे गये हैं । इन आगारों  
 से मेरा कायोत्सर्ग खण्डित तथा विराधित नहीं हो, कबतक ?  
 जबतक कि अरिहत भगवान को नमस्कार करके ध्यानको समाप्त  
 न करदूँ तब तक, एक स्थिति से काय को, मौनसे वचनको और  
 चित्तकी एकाग्रतासे आत्मा को वीसराता हूँ ॥ सू० ३ ॥

उभयवसितादि आगार अधिकारियो (ध्यानस्थ व्यक्तिओ)नी ओधी वधु शक्तिनी अपेक्षाधी  
 कहु छे आ आगारोधी भाश कायोत्सर्ग भडिन तथा विराधित नहिँ थाय, क्या  
 सुधी ? के न्या सुधी अरिहत भगवानने नमस्कार करीने ध्यान पूरो न करी लउ  
 त्या सुधी, ओक स्थितयोँ कायाने, मौनयोँ वचनने अने चित्तनी ओकाग्रतायोँ  
 आत्माने वीसराउ छु (सू० ३)

एव कायोत्सर्गमास्थाय तत्र भेदेन प्रकृताऽतिचारोऽभिनतयति-

॥ मूलम् ॥

आगमे तिविहे पण्णत्ते तजहा—सुत्तागमे अत्थागमे तदुभ-  
यागमे । ज वाइद्ध, वच्चामेलिय, हीणक्खर, अच्चक्खर, पयहीणं,  
विणयहोण, जोगहीण, घोसहीण, सुदट्टुदिन्न सुदट्टुपडिच्छिय,  
अकाले कओ सज्झाओ काले न कओ सज्झाओ, असज्झाए  
सज्झाइयं, सज्झाए न सज्झाइय, 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥सू०४॥

॥ छाया ॥

आगमस्त्रिविधः प्रज्ञप्तस्तथा—सूत्रागमः अर्थागमः तदुभयागमः ।  
(तत्र) यद् व्याचिद्ध, व्यत्याच्चेडित, हीनाक्षरम्, अत्यक्षर, पदहीन, योगहीन,  
घोषहीन, सुष्ठुदत्त, दुष्ठुप्रतीष्टम्, अकाले कृतः स्वाध्यायः, काले न कृतः  
स्वाध्यायः, अस्वाध्याये स्वाध्यायितं, स्वाध्याये न स्वाध्यायित, तस्य मिथ्या  
मयि दुष्कृतम् ॥ सू० ४ ॥

॥ टीका ॥

'आगमे' आ=समन्तात् गम्यन्ते=ज्ञायन्ते जीवाजीवादिपदार्था येनेति,  
आ=विनयादिमर्यादया गम्यते=प्राप्यते तीर्थरुग्णधरादिभ्य इति, आ=  
स्मरणार्थमात्मस्वरूपस्येत्यर्थात्, गम्यते=गृह्यते इति, आ=आभिमुख्यमर्था

इस प्रकार कायोत्सर्ग का अवलम्बन करके उसमे अतिचारों  
का विशेषरूपसे चिन्तन करते हैं—'आगमे तिविहे' इत्यादि ।

जिससे 'जीव, अजीव' आदि नौ तत्त्व अच्छी तरह जाने  
जाएँ या जो विनय आदि के आचरणद्वारा तीर्थरुग्ण और गणधरों

जैसी रीते कायोत्सर्गनु अवलम्बन करीने तेसा अतिचारोनु विशेषरूपसे  
चिन्तन करे छे 'आगमे तिविहे' इत्यादि

जैसाथी 'जीव' 'अजीव' विजेरे नव तत्त्व गणधर आणी ज्ञेवाय  
अथवा जे विनय आदि आचरणद्वारा तीर्थरुग्ण अथवा गणधरैथी

१- भणता गुणता विचारता ज्ञान और ज्ञानवत की आशातना की होतो  
'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ।

२- धातूनामनेकार्थत्वादिति प्रागुक्तमेव । यद्वा 'ये गत्यर्थास्ते प्राप्यर्थाः'  
इति गतिः प्राप्तिर्ग्रहण च मिथोऽनर्थान्तरमेव ।

न्मोक्षस्य साम्मुख्य गम्यते=ज्ञायते येनेति, आगमयति=साकल्येन बोधयति जीवाजीवादितत्त्वसार्थमिति, आ=सम्यग्ज्ञानादित्रयमोक्षमार्गरूपा मर्यादा गम्यते=ज्ञायते येनेति, आ=तीर्थंकरप्ररूपितत्वेन सर्वथा निःशङ्कितलाद्विस्मयजनको गमो=ज्ञान यस्मिन्निति वा आगमः । यद्वा 'नामैकदेशे नामग्रहणात् 'आ' 'ग' 'म' इति पदत्रय परिकल्प्य 'आ'=आगतस्तीर्थंकरात्, 'ग'=गतो गणधरमुखे, 'म'=मतो भव्याना सर्वेषामित्यागमः, तथाच-' आगतो वीतरा-गात्तु, गतो गणधराऽऽनने । मतः समस्तभव्याना, तस्मादागम उच्यते ॥ १ ॥' इति निर्गलितम् । व्याख्यानान्तर यथामत्यूहनीयम् । आगमः सिद्धान्तः प्रवचन-मिति पर्यायाः । रूतिविधः सः ? इत्याह-' त्रिविधे पण्णत्ते ' इति । तिस्रो विधाः= प्रकारा यस्य सत्रिविधः प्रज्ञप्तः=प्रकर्षेण सदेवमनुजामुरसभाया समवसरणस्थैस्तीर्थ-नाथैर्ज्ञप्तः=ज्ञापित उक्त इति यावत् । 'त जहा'-तयथा-(अत्र 'स यथे'-ति वक्तव्ये तदिति निर्देश आगमस्वरूपविशेषणापेक्षयाऽऽर्षत्वाद्वा, यद्वाऽव्यय तच्छब्द-मादाय तदेवाऽऽगमस्वरूप दर्शयामीत्यर्थः ) 'सुत्तागमे' सूत्रागमः=सूत्ररूप आगमः । 'अत्यागमे' अर्थागमः=अर्थरूप आगमः । 'तदुभयागमे' तदुभया-

से प्राप्त हो, अथवा जो आत्मस्वरूपके स्मरण के लिये प्राप्त किया जाय, या जिस से मोक्षमार्गका ज्ञान हो, अथवा जो तीर्थङ्कर भगवान के द्वारा उपदिष्ट होने के कारण शकारहित और अलौकिक होने से भव्य जीवों को चकित कर देने वाले ज्ञान को देने वाला हो, या जो अर्हन्त भगवान के मुख से निकल कर गणधर देवको प्राप्त हुआ और भव्य जीवोंने सम्यक् भावसे जिसको माना उसे 'आगम' कहते हैं । वह तीन प्रकारका है—(१) सुत्तागम, (२) अत्यागम (३) तदुभयागम ।

प्राप्त थाय अथवा जे आत्मस्वरूपना स्मरणुने भाटे प्राप्त करवाभा आवे, अथवा जेनाथी मोक्षमार्गनु ज्ञान थाय अथवा जे तीर्थंकर भगवान द्वारा उपदिष्ट होवाने कारणे शकारहित अने अलौकिक होवाथी सव्य लुवेने अकित करवावाणा ज्ञानने आपवावाणा होय, अथवा जे अरिहित भगवानना मुखथी नीक जीने गणधर देवने भत्या तथा जेने सव्य लुवेजे सम्यक् भावथी मान्या तेने 'आगम' कहे छे ते त्रय प्रकारना छे (१) सुत्तागम, (२) अत्यागम, (३) तदुभयागम.



गमः=मूत्रार्थद्वयरूप आगमः । तत्र सूत्रपद व्याचष्टे-‘सूत्र’ इति प्राकृतशैल्या सूत्र सूक्त सूत्रमिति पदत्रयस्य ‘सूत्र’ इति भवति, तस्मात् सूत्र्यन्ते=सूत्र्यन्ते बहवोऽर्था यस्मिन्निति, सूत्रयति=गुम्फयति त्रिविधानर्थान् सक्षेपेणेति, सूत्रयति=सूचयत्यल्पाक्षरैर्द्रव्यपर्यायनयादिस्वरूप भृशमर्थमिति, दोपराहिभ्येन ‘सुष्टूक्त’=प्रतिपादितमिति, अर्थज्ञानमन्तरेण सर्वे पदार्थाः ‘सूत्रवत्प्रतिभान्त्यत्रेति वार्थः । यद्वा सूत्र=तन्तुस्तत्सादृश्याद्गोण्या लक्षणया सूत्रम्, यथा तन्तौ बहूनि वस्तून्धे-कत्र समग्र्यन्ते तथेहापि बहवोऽर्था इति । आढोस्वित् यथा तन्त्रपरपर्याय सूत्रमेव सूचतुरैः पटकरैः पटरूपता नीत सद् गोप्याङ्गान्यावृत्य शैत्यादिभ्यो रक्षन् धार कस्य शोभा मङ्गल च तनोति तथेदमपि सूत्रमाचार्यादिव्याख्यात सत् पटस्था-

जिसमें सक्षेप रूपसे बहुत अर्थों का समग्र किया जाय, अथवा जो दोपरहित कहा हुआ हो, या जैसे सोये हुए ७२ कला के ज्ञाता पुरुष को जगाने पर कला का भेद-प्रभेद का ज्ञान होता है उसी प्रकार अर्थ द्वारा सर्वतत्त्व जिससे जानें जाय अथवा जैसे सूत्र (सूत) में मणि मोती आदि तरह तरह के पदार्थ गुंथे हुए रहते हैं, या जैसे सूत बहुत से इकट्ठे किये जाकर चतुर पुरुषों से तरह-२ के (अपनी इच्छा के अनुसार) कपडे बनाये जाते हैं और जो गुप्त अर्थों को ढाकते हैं, सर्दी गर्मी से बचाते हैं तथा धारण करने वाले की शोभा को बढ़ाते हैं, वैसे ही जो जीवादि नाना पदार्थों के स्वरूप से गुम्फित (अधित) तथा आनार्य आदि से

जेमा सक्षेप इये धव्वा अर्थेना सञ्चद करवामा आवे अथवा जे दोष रहित कहेल होय, अथवा जेम सुतेल ७२ कणाना ज्ञाता पुत्र्यने जगाडया पछी कणाना सेद प्रलेद लक्ष्मी शकय तेवी रीते अर्थ द्वारा सधणा तरव जेनाथी लक्ष्मी शकय, अथवा जेम दोरामा मञ्चि-मोती विगेरे भातभातना पदार्थ शुथाञ्जेल रहे छे अथवा जेवी रीते धव्वा सूतरने बेगा करीने उह्या माषुसे पोतानी छञ्छाइप भातभातनु कापड बनाने छे ते कापड शुभ अगोने ढांके छे, सर्दी अने तापथी बनाने छे अने पछेरनारनी शोभाने वधारे छे तेवी ज रीते जे लुवादि नाना पदार्थेना स्वइपथी गुम्फित (अधित)

१- ‘सुष्टूक्त’ सूक्तमिति च्छायापक्षे ।

२- ‘सूत्र’-मिति च्छायापक्षे ।

नीयतामासात्र पिधानीय कुमार्गमावृत्त्य शैत्यादिस्थानीयाऽष्टविधकर्मभ्यो रक्षन् धारकाणा भव्याना मुखशोभा परममद्गल च तनोतीति । अथवा सूत्रयति=सीव्यति स्रवति वाऽर्थानिति निरुक्तपरिपाठ्या सूत्रम्, 'स्वल्पाक्षरमसन्दिग्ध, सारवद्विश्वतोमुखम् । अस्तोभमनवय च, सूत्र सूत्रविदो विदुः ॥ १ ॥' इत्युक्तमन्यत्र । सूत्रस्यार्थापेक्षितयैवोपयोगित्वादाह—'अथागमे' इति, अर्थयते=याच्यते, अथवा

व्याख्यान आदि के द्वारा विस्तृत हो कर आस्रवों को ढकता है, अष्टविध कर्मों से बचाता है, धारण करने वाले की शोभा बढ़ाता है, या जैसे सूई के द्वारा वस्त्रों के टुकड़े सीये जाने पर तरह-तरह के सुन्दर वस्त्र बनकर लोगों के उपकारक होते हैं, वैसे ही जो बहुत से फुटकर अर्थों से जोड़ा जाकर भव्यों के लिये अपूर्व लाभदायक होता है, अथवा जैसे किसी झरने से पानी झरता है उसी प्रकार जिसमें से उत्तम अर्थ निकलता है उसे 'सूत्र' कहते हैं । कहा भी है—

“जिसमें अक्षर थोड़े पर अर्थ सर्वव्यापक, सारगर्भित, सन्देहरहित, निर्दोष तथा विस्तृत हो उसे विद्वान लोग 'सूत्र' कहते हैं” ॥ १ ॥

तद्रूप (सूत्ररूप) आगम सूत्रागम कहलाता है ।

जो मुमुक्षुओं से प्रार्थित हो उसे अर्थागम कहते हैं । केवल सूत्रागम या अर्थागम से प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता, इसलिये सूत्र और अर्थरूप 'तदुभयागम' कहा है । इनमें जो कुछ क्रमको

तथा आचार्य विगेरेना व्याख्यानान्दि-द्वारा विस्तृत धरने आस्रवोने ढाके छे, अष्ट प्रकारना कर्मोथी गत्रावे छे, धारणा करवावाणानी शोभा वधारे छे, अथवा नेवी रीते सोय-द्वारा कापडना टुकडा सीवार्थ गया पछी तरेड तरेडना सुदर वस्त्र गानीने लोडो भाटे उपकारी जने छे तेरी रीने ने धया प्रकारना अर्थो थी सगुडीत धरने लव्योने अपूर्व लाभदायक थाय छे, अथवा नेवी रीते कोर अरणाभाथी पाणी अरे छे नेवी रीते नेभाथी उत्तम अर्थ निकजे छे, तेने सूत्र कडे छे कछु पण्य छे—

नेमा अक्षर थोडा छता पण्य अर्थ सर्वव्यापक, सारगर्भित, सन्देहरहित निर्दोष तथा विस्तृत होय तेने विद्वान भाणुसे सूत्र कडे छे

तद्रूप (सूत्ररूप) आगम-सूत्रागम कडेवाय छे

ने मुमुक्षुओथी प्रार्थित होय तेने अर्थागम कडे छे देवण सूत्रागम अगर अर्थागमथी प्रयोजन सिद्ध नहीं धर शकतु, ओला भाटे सूत्र अने अर्थ-रूप तदुभयागम कडेल छे नेमा ने थोडुक कभने छोडीने अर्थात् कभपूर्वक

गमः=सूत्रार्थद्वयरूप आगमः । तत्र सूत्रपद व्याचष्टे- 'सूत्र' इति प्राकृतशैल्या सूत्र सूक्त सूत्रमिति पदत्रयस्य 'सूत्र' इति भवति, तस्मात् सूत्र्यन्ते=सूत्र्यन्ते वहवोऽर्था यस्मिन्निति, सूत्रयति=गुम्फयति त्रिविधानर्थान् सक्षेपेणेति, सूत्रयति=सूचयत्यल्पाक्षरैर्द्रव्यपर्यायनयादिस्वरूप भृशमर्थमिति, दोषराहित्येन 'सुप्लूक्त=प्रतिपादितमिति, अर्थज्ञानमन्तरेण सर्वे पदार्थाः सूत्रवत्प्रतिभान्त्यत्रेति वार्थः । यद्वा सूत्र=तन्तुस्तत्सादृश्याद्गौण्या लक्षणाया सूत्रम्, यथा तन्तौ बहूनि वस्तून्येकत्र संग्रह्यन्ते तथेहापि वहवोऽर्था इति । आहोस्वित् यथा तन्त्रपरपर्याय सूत्रमेव सूचतुरैः पटकरैः पटरूपता नीत सद् गोप्याद्गान्यादृश्य शैत्यादिभ्यो रक्षन् धारकस्य शोभा मद्गल च तनोति तथेदमपि सूत्रमाचार्यादिव्याख्यात सत् पटस्था-

जिसमें सक्षेप रूपसे बहुत अर्थों का संग्रह किया जाय, अथवा जो दोषरहित कहा हुआ हो, या जैसे सोये हुए ७२ कला के ज्ञाता पुरुष को जगाने पर कला का भेद-प्रभेद का ज्ञान होता है उसी प्रकार अर्थ द्वारा सर्वतत्त्व जिससे जानें जाय अथवा जैसे सूत्र (सूत) में मणि मोती आदि तरह तरह के पदार्थ गूँथे हुए रहते हैं, या जैसे सूत बहुत से इकट्ठे किये जाकर चतुर पुरुषों से तरह-र के (अपनी इच्छा के अनुसार) कपडे बनाये जाते हैं और जो गुप्त अर्थों को ढाकते हैं, सर्दी गर्मी से बचाते हैं तथा धारण करने वाले की शोभा को बढ़ाते हैं, वैसे ही जो जीवादि नाना पदार्थों के स्वरूप से गुम्फित (ग्रथित) तथा आचार्य आदि से

जेमा सक्षेप इये धणा अर्थेनि सञ्च करवामा आवे अथवा जे दोष रहित कहेल होय, -अथवा जेम सुतेल ७२ कलाना ज्ञाता पुरुषने जगाड्या पछी कलाना भेद प्रभेद जाणी शकय तेवी रीते अर्थ द्वारा सधणा तत्त्व जेनाथी जाणी शकय, अथवा जेम दोषरामा मण्डि-मोती विजेरे सातसातना पदार्थ शुभाब्धेल रहे छे अथवा जेवी रीते धणा सूत्रने जेगा करीने जाह्या माणुसे। पोतानी ध्वंछइय सातसातनुं कापड गनावे छे ते कापड गुप्त अजोने ढाडे छे, सर्दी अने तापथी जयावे छे अने पडेरनारनी शोभाने वधावे छे तेवी ज रीते जे जीवादि नाना पदार्थेना स्वइपथी गुम्फित (ग्रथित)

१- 'सुप्लूक्त' सूक्तमिति च्छायापक्षे ।

२- 'सुत्र'-मिति च्छायापक्षे ।

नलः, अनुस्वारमात्रलोपे सत्यसारः ससारोऽपि ससार. सजायते । अत्र बहव इत्यमा-  
भणन्ति—राजगृहे समवस्रतस्य भगवतो महावीरस्य धर्मदेशनाश्रवणानन्तर भग-  
वन्त वन्दित्वा परिपत् प्रतियता, तदा किञ्चिदुत्पत्यावपतित पुनस्तपत्यावपतित  
विद्याधरविमानमालोक्य सन्दिहानेन सपुत्रेण राज्ञा श्रेणिकेन पृष्ठो भगवानाह—  
'विमानत्राहोऽय विमानचारणमन्त्रस्यैकमक्षर विस्मृतवास्तेनेद विमान हतपक्षः  
पक्षीव मुहुर्मुहुस्तपत्योत्पत्य निपतती'ति । तच्छ्रुत्वा श्रेणिकुपुत्रोऽभयकुमारो निजया  
पदमात्रोपलब्धिपूर्वमाऽनेपदानुसन्धानशक्त्या त विमानचारणमन्त्र न्यूनाक्षरा-

(सारसहित) बन जाता है, तथा 'कमल' शब्दके 'क' को कम कर देने से 'मल' बन जाता है, इत्यादि, इस विषयमें विद्याधर और अभयकुमार का दृष्टान्त है—

एक समय राजगृह नगरीमें पधारे हुए भगवान महावीर स्वामी की धर्मदेशना सुनकर तथा उनको वन्दना करके परिपद के चले जाने पर बार बार उडते-गिरते किसी विद्याधरके विमान को देख कर अपने पुत्र अभयकुमार के साथ राजा श्रेणिकने भगवान से पूछा, प्रभो ! यह विमान इस प्रकार उड कर क्यों गिरता है? तब भगवानने फरमाया कि यह विद्याधर अपनी विद्या का एक अक्षर भूल गया है जिससे यह विमान विगर पाख के पक्षी की तरह बार-बार उड-उड कर गिरता है । ऐसा सुन कर राजा

'ससार' ( सारसहित ) गने छे तथा जेभ 'कमल' शब्दना 'क' ने कडी नापवाथी 'मल' शब्द गनी जय छे

आ विषयमा जेक विद्याधर अने अलयकुमारनुं दृष्टात छे

जेक वभत राजगृह नगरीमा पधारेला भगवान महावीर स्वामीनी धर्मदेशना साक्षणी तथा भगवानने वन्दन करी पन्ध्र आदी गया पछी जेक विद्याधरना विमानने उडता-पडता जेधने पोताना पुत्र अलयकुमारनी साथे श्रेणिक राजाजे भगवानने पूछ्यु प्रभो ! आ विमान आवी रीते उडीने पाछु केम पडे छे ? त्तारे भगवाने जण्यु के आ विद्याधर पोतानी विद्यामाथी जेक अक्षर भूली गये छे जेथी आ विमान पाण विमाना पक्षीनी जेभ बार बार उडी उडीने पडी जय छे जेवु साक्षणीने राजा श्रेणिकना पुत्र अलयकुमादे

अर्पते=गम्यतेऽर्थात्प्राप्यते बुभुत्सुभिरित्यर्थः<sup>१</sup> । पृथक् पृथक् सूत्ररूपेणार्थरूपेण चाऽऽगमेन यथोचितोपयोगाभावाद्बुभयमाह-‘तदुभयागमे<sup>२</sup>’ इति, तच्च स च ते तयोरुभय तदुभय तच्चासात्रागमश्च तदुभयागमः=सूत्रार्थो-भयरूप आगम इत्यर्थः । तत्र ‘ज’ यत् ‘गइद्’ व्याविद्ध=त्रिपर्यस्तमणिमालावत्तदेव विपरीतोच्चारितम्, ‘वच्चाभेलिय’-व्यत्यान्नेडित=व्यत्ययेन सूत्रान्तरस्याऽऽलापक सूत्रान्तरेण सयोज्याऽस्थाने विराम कृत्वा स्वरूपोलकल्पितानि सूत्राभासानि विरचय वा आन्नेडित=समुद्घुष्टमर्थादुच्चारितम् ॥ ‘हीणक्खर’ हीनाक्षर-हीनमक्षर यस्मिंस्तत्, हीनाक्षरदोषो हि महान्तमनर्थं जनयति, अकारमात्रलोपे सत्यनलोऽपि

छोडकर अर्थात् क्रमपूर्वक न पढा गया हो, जैसे ‘नमो अरिहताण’ इत्यादि की जगह ‘अरिहताण नमो’ इत्यादि पढा गया हो (१) । एक सूत्र का पाठ दूसरे सूत्रमें मिलाकर या जहा विराम न लेना चाहिये वहा विराम लेकर, अथवा अपनी तरफ से कुछ शब्द जोडकर पढा गया हो (२) । अक्षरहीन पढा गया हो, जैसे ‘अनल’ शब्द का अकार कम कर दिया जाय तो ‘नल’ बन जाता है, ‘ससार’ शब्दका सिर्फ अनुस्वार निकाल दिया जाय तो ‘ससार’

न व थायु डोय, नेवी शीते ‘नमो अरिहताण’ विगेरेनी ज्य्याये ‘अरिहताण नमो’ विगेरे व थायु डोय (१) ओक सूत्रना पाठ थीज सूत्रमा भेजवीने अगरे न्या शेकाडु न जेधये त्या शेकाधने, अथवा पोताना तरइथी थोडा शण्ड जेडीने वायु डोय, (२) अक्षरहीन व थायु डोय-नेवी शीते ‘अनल’ शण्डने अकार काडी नापीये तो ‘नल’ णनी जय छे, ‘ससार’ शण्डमा थाली अनुस्वार काडी नापीये तो

१- अर्थ-‘अर्थ उपयाच्चायाम्’ अस्माद् बाहुलकेन कर्मण्यच्, पक्षे ‘ऋ गती’ अस्मादीणादिक. कर्मणि थन् ।

२- ‘आगमे त्रिविहे’ इत्यत आरभ्य ‘तदुभयागमे,’ इत्यन्त यावत्-पत्र मागधीशैल्या ॥

नलः, अनुस्वारमात्रलोपे सत्यसारः ससारोऽपि ससारः सजायते । अत्र बहव इत्यमा-  
भणन्ति-राजगृहे समवस्यतस्य भगवतो महावीरस्य धर्मदेशनाश्रवणानन्तर भग-  
वन्त वन्दित्वा परिपत् प्रतिगता, तदा किञ्चिद्दुत्पत्यावपतित पुनरुत्पत्यावपतित  
विद्याधरविमानमालोक्य सन्दिहानेन सपुत्रेण राज्ञा श्रेणिकेन पृष्ठो भगवानाह-  
'विमानवाहोऽयं विमानचारणमन्त्रस्यैकप्रक्षरं त्रिस्मृतवास्तेनेदं विमानं इतपक्षः  
पक्षीव मुहुर्मुहुस्तपत्योत्पत्य निपतती'ति । तच्छ्रुत्वा श्रेणिकपुत्रोऽभयकुमारो निजया  
पदमात्रोपलब्धिपूर्वमाऽनेपदानुसन्धानशक्त्या तं विमानचारणमन्त्रं न्यूनाक्षरा-

(सारसहित) बन जाता है, तथा 'कमल' शब्दके 'क' को कम कर देने से 'मल' बन जाता है, इत्यादि, इस विषयमें विद्याधर और अभयकुमार का दृष्टान्त है—

एक समय राजगृह नगरीमें पधारे हुए भगवान महावीर स्वामी की धर्मदेशना सुनकर तथा उनकी वन्दना करके परिपद के चले जाने पर बार बार उड़ते-गिरते किसी विद्याधरके विमान को देख कर अपने पुत्र अभयकुमार के साथ राजा श्रेणिकने भगवान से पूछा, प्रभो ! यह विमान इस प्रकार उड़ कर क्यों गिरता है? तब भगवानने फरमाया कि यह विद्याधर अपनी विद्या का एक अक्षर भूल गया है जिससे यह विमान विगर पाख के पक्षी की तरह बार-बार उड़-उड़ कर गिरता है । ऐसा सुन कर राजा

'ससार' (सारसहित) होने छे तथा जेभ 'कमल' शब्दना 'क' ने काढी नाभवाथी 'मल' शब्द गनी नथ छे

आ विषयमा जेके विद्याधर अने अभयकुमारनुं दृष्टात छे

जेके वधत राजगृह नगरीमा पधारेला भगवान महावीर स्वामीनी धर्मदेशना सावणी तथा भगवानने वन्दन करी पण्यद आली गया पछी जेके विद्याधरना विमानने उडता-पडता जेधने पोताना पुत्र अभयकुमारनी साथे श्रेणिक राजाजे भगवानने पूछ्यु प्रभो ! आ विमान आवी रीते उडीने पाछु केम पडे छे ? तयारे भगवाने जण्युं छे आ विद्याधर पोतानी विद्यामाथी जेके अक्षर भूली गयो छे जेथी आ विमान पाख विमान पक्षीनी जेभ बार बार उडी उडीने पडी नथ छे जेवु सावणीने राजा श्रेणिकना पुत्र अभयकुमारे

नुसन्धानेनाऽत्रिकलीकृत्य फलितमनोरथात्पसन्नात्तस्माद्विद्यापरात्तद्विद्यासिद्धद्युपाय  
मुपलब्धवानिति । 'अक्षरत्वर' अत्यक्षरम्—अति=आगमगाथामूत्रापेक्षयाऽधिकमक्षर  
यस्मिस्तत्तथाभूतमर्थादेकद्वयादिक्रमेणाक्षरमधिकीकृत्योच्चारितम् । 'पयहीण' पदहीन=  
पद न्यूनीकृत्योच्चारितम्, एतच्चोपलक्षणमधिरूपदत्वस्यापि अधिकाक्षरत्वस्यैवाधिक  
पदत्वस्याप्युपन्यासाहत्वात् । 'विणयहीण' विनयहीन=विनय विनोच्चारितम् ।  
'योगहीण' योगहीन—योगो=मनोयोगस्तेन हीन मनोयोग दत्त्वा पठितमित्यर्थः ।

श्रेणिकका पुत्र अभयकुमारने अपनी पदानुसारिणी लब्धि-द्वारा  
उसके विमानचारण मंत्र को पूरा करके उसके मनोरथ को सिद्ध  
किया और उस विद्याधर से आकाशगामिनी विद्याकी सिद्धि का  
उपाय सीख लिया । (३)

अधिक अक्षर जोड़कर पढ़ा गया हो, जैसे एक राजा  
के वाचक 'नल' शब्द के पहले 'अ' जोड़ कर पढ़ा जाय तो  
'अनल' बन जाता है, जिसका अर्थ अग्नि हो जाता है (४) । पद  
को न्यून या अधिक करके बोला गया हो, जैसे "सप्त व्यसन  
सेवनीय नहीं है" यहाँ पर 'नहीं' पदको न्यून कर देने से तथा  
"हार" के साथ "प्र" आदि अधिक शब्द लगा देने से बहुत  
अर्थभेद हो जाता है (५) । विनयरहित पढ़ा गया हो (६) ।  
मनोयोग दिये बिना पढ़ा गया हो, अथवा आयम्बिल आदि

पैतानी पदानुसारिणी लब्धि द्वारा अने विमानचारण (विमान अलावनार)  
मंत्रने पूरे करी तेना मनोरथने सिद्ध कर्युं, अने ते विद्याधर पासैथी आकाश  
गामिनी विद्यानी सिद्धिने उपाय शीपी लीथे (३)

वधारे अक्षर जोड़ने वाच्यु होय — जेवी शीते अेक राजाने  
वाचक 'नल' शब्द पड़ेला 'अ' जोड़ी देवाय तो 'अनल' एनी नय छे  
अने जेना अर्थ अग्नि थय नय छे (४) पढ़ने थोडु अगर वधारे करीने  
जोलायु होय जेवी शीते सात व्यसन सेवना योग्य नहीं अही नहीं पढ़ने  
छोड़ी देवाथी, तथा 'हार' नी साथे 'प्र' विगेरे वधारे शब्द उभेरेवाथी थ्ये  
अर्थभेद थय नय छे (५) विनयरहित वचायुं होय (६) मनोयोग आभ्या विना  
वाच्यु होय अथवा आयम्बिल विगेरे शास्त्रोक्त तप कर्था विना वाच्यु होय

यद्वा-आचामाम्लाग्रनुष्ठानरूपयोगोद्धहनमन्तरेण पठितम् । 'घोसहीण' घोषहीन-  
घोषः=उदात्तानुदात्तस्वरितरूपस्वरत्रय तद्धीनमर्थादुदात्तादिस्वराणा यथोचित-  
मुच्चारणमकृतैव पठितम् । 'सुष्ठुदत्त' सुष्ठुदत्त-सुष्ठु=शोभन यथास्यानथा  
मरहस्यमित्यर्थः, दत्त=पाठितम्, पात्रापात्रविवेकमकृतैव निकटोपस्थिताय यस्मै  
कस्मैचित्सम्यक्तया सूत्रार्थदानमित्यर्थः । पात्रविवेकमन्तरेण हि कदाचित्कु-  
पात्रायाऽभ्यापित महान्तमनर्थ जनयति, यथा भुजङ्गस्य क्षीरपायन तद्विषवर्द्धनायैव,  
यथा वा ज्वरार्तस्य घृतपायन शीतलजलस्नपन वा तज्ज्वरवर्द्धनायैव, यद्वा यथा  
बहुमूल्या सुविशाला माला सग्रथ्य वानरगले समर्पण तन्मालायाः समुच्छेदायैव,  
अथवा यथोपरभूमावुत्तबीज न फलति मृत्युत तत्रैव ( भूमौ ) विलीयते तथैवाऽ-  
पात्राय विद्यादान, यतोऽसौ ऋकतालीयन्यायेन कदाचिद्ब्रह्मविद्योऽपि स्वस्व-

शास्त्रोक्त तप किये विना पढा गया हो (७) । उदात्त आदि स्वरो  
के उचित उच्चारण किये विना पढा गया हो (८) । पात्र कुपात्र का  
विचार किये विना रहस्य खोल कर पढाया गया हो, क्यों कि  
शिष्य की परीक्षा किये विना कदाचित् कुपात्र को पढाया जाय तो  
वह साप को दूध पिलाने तथा ज्वर वाले को घी पिलाने या ठण्डे  
जल से नहलाने के बराबर अनर्थकारी होता है । अथवा  
जैसे सुन्दर रत्नों की माला घन्दर के गलेमे डाल दी जाय,  
या ऊसर भूमिमें बीज बोया जाय तो लाभ के बदले हानि  
ही होती है उसी प्रकार कुपात्र शिष्यको शास्त्र का ज्ञान पढाना  
अलाभकारी है । यदि किसी सयोग से वह विद्या प्राप्त भी कर

(७) उदात्त विगेरेने शुद्ध उच्चार कर्था विना वाच्यु होय (८) पात्र-कुपात्रना  
विचार कर्था विना रहस्य समझवीने लक्षाव्यु होय कारणे के शिष्यनी  
परीक्षा कर्था विना केषु पथत कुपात्रने लक्षावाय तो ते सापने दूध पीवराववा  
जेवु तथा ताववाजाने घी अवराववा जेवु अथवा तो ठंडा पाणीथी स्नान  
कशाववा जेवु अनर्थकारी थाय छे, अथवा तो सुन्दर रत्नोनी भाणा वाहराना गणे  
पडैराववी अगर भारा वाणी नभीनभा भीन वावी देवामा आवे तो लाभ थवाना  
अदले हानि न थाय छे जे प्रभावे कुपात्र शिष्यने शास्त्रनु ज्ञान आपवु अलाभकारी  
छे कदाच केषु सयोगवशात् ते विद्या प्राप्त पथु करी वे तो पथु पोताना कुटिल



नुसन्धानेनाऽविकलीकृत्य फलितमनोरथात्प्रसन्नात्तस्माद्विद्याधरात्तद्विद्यासिद्धयुपाय  
मुपलब्धवानिति । 'अक्षरखर' अत्यक्षरम्—अति=आगमगायामूत्रापेक्षयाऽधिकमक्षर  
यस्मिंस्तत्तथाभूतमर्थादेकद्वयादिक्रमेणाक्षरमधिकीकृत्योच्चारितम् । 'पयहीण' पदहीन=  
पद न्यूनीकृत्योच्चारितम्, एतच्चोपलक्षणमधिकरूपदत्वस्यापि अधिकाक्षरत्वस्येवाधिक-  
पदत्वस्याप्युपन्यासाहत्वात् । 'विणयहीण' विनयहीन=विनय विनोच्चारितम् ।  
'जोगहीण' योगहीन—योगो=मनोयोगस्तेन हीन मनोयोग दत्त्वा पठितमित्यर्थः ।

श्रेणिकका पुत्र अभयकुमारने अपनी पदानुसारिणी लब्धि-द्वारा  
उसके विमानचारण मंत्र को पूरा करके उसके मनोरथ को सिद्ध  
किया और उस विद्याधर से आकाशगामिनी विद्याकी सिद्धि का  
उपाय सीख लिया । (३)

अधिक अक्षर जोड़कर पढ़ा गया हो, जैसे एक राजा  
के वाचक 'नल' शब्द के पहले 'अ' जोड़ कर पढ़ा जाय तो  
'अनल' बन जाता है, जिसका अर्थ अग्नि हो जाता है (४) । पद  
को न्यून या अधिक करके बोला गया हो, जैसे "सप्त व्यसन  
सेवनीय नहीं है" यहाँ पर 'नहीं' पदको न्यून कर देने से तथा  
"हार" के साथ "प्र" आदि अधिक शब्द लगा देने से बहुत  
अर्थभेद हो जाता है (५) । विनयरहित पढ़ा गया हो (६) ।  
मनोयोग दिये बिना पढ़ा गया हो, अथवा आयम्बिल आदि

पैतानी पदानुसारिणी लब्धि द्वारा अने विमानचारण (विमान उल्लावनाद)  
मंत्रने पूरा करी तेना मनोरथने सिद्ध कर्तुं, अने ते विद्याधर पासैथी आकाश  
गामिनी विद्यानी सिद्धिने उपाय शीभी लीथे (३)

वधारे अक्षर नेडीने वाच्यु होय — जेवी रीते ओक राजाने  
वाचक 'नल' शब्द पढेला 'अ' नेडी देवाय तो 'अनल' भनी नय छे  
अने जेने अर्थ अग्नि थरुं नय छे (४) पढने थोडु अगर वधारे करीने  
ओलायु होय जेवी रीते सात व्यसन सेवना योग्य नहीं अही नहीं पढने  
छोडी देवाथी, तथा 'हार' नी साथे 'प्र' विगेरे वधारे शब्द उमेरवाथी धरुं  
अर्थभेद थरुं नय छे (५) विनयरहित वाच्यु होय (६) मनोयोग आध्या विना  
वाच्यु होय अथवा आयम्बिल विगेरे शाश्रोकत तप कर्था विना वाच्यु होय

“दसगमसगसमाणा, जलूगवेच्छुगसमा य जे होति ।  
 ते फिर होति खलुका, तिकखमिऊ चंडमद्विया ॥ १ ॥”  
 जे फिर गुरुपडिणीया, सबला असमाधिकारगा पावा ।  
 कलहकरणस्त भावा, जिणवयणे ते फिर खलुका ॥ २ ॥  
 पिसुणा परोवयावी, भिन्नरहस्ता पर परिभवति ।  
 निन्विअणिज्जा य सहा, जिणवयणे ते फिर खलुका ॥ ३ ॥” इति ।

स्थानाङ्गे भगवताऽपि निदर्शितम्—

“ जो डॉम, मच्छर, जाक विच्छू के समान आचरण करने वाला, असहिष्णु, आलसी, क्रोधी, बार बार कहने पर भी गुरुकी आज्ञा को नहीं मानने वाला, गुरुका विरोधी, चारित्रमें शबल-दोषयुक्त, गुरुको असमाधि पैदा करने वाला, झगडालू, चुगलखोर, पर को पीडा देने वाला, दूसरे को दवाने वाला, रहस्यमेद करने वाला, विरुद्ध आचरण करने वाला तथा शठ, पापात्मा, जिन-वचनमें खलुङ्क-कुशिष्य कहलाता है ॥ ३ ॥

स्थानाङ्ग सूत्रमे भगवान ने फरमाया है कि—‘अविनीत, रस-

“लोक, डास, मच्छर, विंछीना नमान आचरण करवावाणा, असहिष्णु आणसु, कोधी, बार बार कडेवा छताय गुरुनी आज्ञानुं पालन नहि करनार, गुरुना विरोधी, चारित्रमा शबल दोषयुक्त, गुरुने असमाधि उत्पन्न करनार, कलयापोर, याडीयापसु, परने पीडा करनार, गीजने दणावनार, आतगी वातने भडेर करनार, विरुद्ध आचरण करनार तथा शठ पापात्मा जिनवचनमा शका कथा करनार कुशिष्य कडेवाय छे

स्थानाङ्ग सूत्रमा भगवाने कहु छे के—अविनीत, रसदोषुप, मडाकोधी,

१—दशकमसगसमाना जलूकावृश्चिकसमाश्च ये भवन्ति । ते किल भवन्ति खलुङ्कास्तीक्ष्णमृदुचण्डमार्दविका ॥ १ ॥ ये किल गुरुप्रत्यनीका\*, शबला असमाधिकारकाः पापा\* । कलहकरणस्वभावा जिनवचने ते किल खलुङ्काः ॥ २ ॥ पिसुना\* परोपतापिनो, भिन्नरहस्या पर परिभवन्ति । निर्वेदनीयाश्च शठा जिनवचने ते किल खलुङ्काः ॥ ३ ॥ इति सस्कृत-श्रुत्या ।

भावमपरित्यजन् 'दृष्टीदृष्टि' पात्रभूतानपि शिष्यान्पात्रस्व नयति, स्वल्पीयसाऽपि कारणेन महान्त क्रोधमादाय गर्वितोऽनाचरणीयमार्च्य निजया दुर्भावनया कुठा रधारया धर्मकल्पवृक्षमेव चिच्छित्सति । ननु कोऽपात्रपदमाक् ? इति—चेदुच्यते—यः परापवादशीलो, योऽसयतेन्द्रियो, योऽनृचुर्यः क्रोधी, यः पिशुनो, यः क्रूरवाक्, यो बहुभोजनप्रियः, यो मनोवाग्देहेष्वसमवृत्तिर्यश्चाविनयः । प्रोक्तमिदमुत्तराभ्य- यननिर्युक्तौ—

लेवे तो अपने कुटिल स्वभाव को न छोड़ता हुआ सुपात्र शिष्यों को भी अपने समान बना डालता है । और जरा २ सी बातमें क्रुद्ध होकर घमण्डपूर्वक दुर्भावनारूप कुल्हाड़ी से धर्मरूप कल्प वृक्ष को काटने के लिये उतारू होजाता है ।

कुपात्र उसको कहते हैं— जो पराई निन्दा करे, इन्द्रियों का लोलुपी, हृदय का कुटिल, क्रोधी, चुगलखोर, कठोरभाषी, खाने- पीनेमें अधिक लोलुपी, मन वचन और कायामें विषम वृत्ति रखने वाला ( मनमें कुछ, बोले कुछ, करे कुछ ऐसा ) तथा उदण्ड हो । जैसा कि उत्तराध्ययननिर्युक्तिमें कहा है—

स्वभावने ते छोडतो नथी अने सुपात्र शिष्यने पण पोताना जेवो जनावे छे, अने सामान्य जेवी वातमा पण बोधायमान थडने धमड साथे दुर्भावना इप कुडाडी वडे धर्मइप कल्पवृक्षने कापी नाजवा तैयार थड ज्य छे

इपात्र तेने कडे छे के जे पारकी निन्दा करे इन्द्रियोमा लोलुपी, कुटिल- अत करणु होय क्रोधी, याडीयापणु, कडवी वाणी जालनार, खान-पानमा लोलुपी, मन वचन अने कायामा विषमवृत्ति ( मनमा भीलु, जालवामा भीलु अने करवामा भीलु ) राखनार, तथा उदत होय जेभके उत्तराध्ययन- निर्युक्तिमा कहु छे के —

१—'दृष्टीदृष्टि' 'देखादेखी' इति भाषा, 'कर्णाकर्णि प्रथितमयशो बन्धु- वर्गेरमाणि' इत्यादाविव प्रहरणविषयस्य कर्मव्यतिहारस्य चाभावेऽपि बहुव्रीहि- समासस्येचप्रत्ययस्य चेष्टत्वात् ॥

दुष्टोर्वा प्रतीष्टं=प्रतिगृहीतम्, 'प्रतीप्सित'- मितिच्छायायामप्ययमेवार्थः १।  
केचिदनयोर्दोषयोरेकत्व व्याचक्षते, तदयुक्तम्; परस्परमनपेक्षत्वात्, अत एवा-  
त्राऽतिचाराणामागोपालवाल्महलिकप्रसिद्ध चतुर्दशत्यमप्युपपत्तयेऽन्यथा त्रयोदश-  
त्वापत्तेः, एतेन 'सुष्ठु दत्त गुरुणा, दुष्ठु प्रतीच्छित ऋत्विपितान्तरात्मने-' ति  
व्याख्यानमसदिति बुद्धिमद्भिरनुभाव्यम् । सुष्ठु-दुष्ठु-शब्दावव्ययी त्रिलिङ्गौ च ।

'अकाले कओ सज्जाओ' न कालोऽकालस्तस्मिन्नकाले-असमये, अर्थाद्  
यस्य कालिनादिश्रुतस्य योऽध्ययनसमयः प्रथमपहरादिस्तमतिक्रम्य कृतो=विहितः  
स्वाध्यायः । 'काले न कओ सज्जाओ' काले=स्वा-यायसमये प्रथमपहरादौ  
न कृतः स्वाध्याय इति निगदव्यारथातमिदम् । 'असज्जाये सज्जाइय' न  
स्वाध्यायो यस्मिन् सोऽस्वा यायस्तस्मिन् = स्वसमुत्थपरसमुत्थभेदभिन्ने  
रुधिरस्त्रावोल्कापात-दिग्दाहाऽकालवर्षणादिरूपे स्वाध्यायित=स्वाध्यायः कृतः ।

है, अर्थात् 'सुट्टुदिन्न दुट्टुपडिच्छिय' इन दोनो को मिलाकर एक  
अतिचार माना है सो उचित नहीं है, क्योंकि इन दोनो का ऐसी  
कोई अपेक्षा नहीं है जिससे एक साथ सम्बन्ध किया जाय । दोनों को  
जुदा २ मानने से ही चौदह अतिचार होते हैं नहीं तो तेरह ही  
रह जायेंगे (१०) । अकाल में स्वाध्याय किया गया हो (११), काल

दुट्टुपडिच्छिय' आ भन्नेने लेखी अेक अतिचार मानेले छे ते उचित नहीं, डेभडे  
आ भन्नेनी डेअ अेवी अपेक्षा नहीं डे लेथी अेक साथे सण ध करवामा आवे भन्नेने गूढा  
गूढा मानवाथी अेक अतिचार थाय छे नहि तो ते १४ थय नथे (१०) अकालमा

१-'पडिच्छिय' इत्यस्य 'प्रतीच्छित'-मितिच्छायाया प्रतिगृहीतार्थकल्पन  
तु व्याकरणाननुसन्धानेन गजनिमीलिकैव 'इपुगमियमा छः' (७।३।७७)  
इति शित्येव आदेशविधानात् । न च प्रतीच्छा सजाताऽस्येत्यर्थे तारकादित्वादितचि  
प्रतीच्छितमिति युक्तमेवेति सन्देहग्रव्यम्, तथा सति प्रतीच्छाया एव बोधसम्भ-  
वेन 'प्रतिगृहीत'-मिति कर्मवो उक्तत्रानुपपत्तेरिति कृतमसारग्रन्थपर्यालोचनेन ॥

२-'स्वायायितम्'- 'तत्करोति तदाचष्ट'-इति णिजन्तात् स्वाध्याय-  
शब्दात् न प्रत्यये 'निष्ठाया सेटि' (६।४।५२) इति णिलोपः । 'स्वाध्यायिकम्'-  
इतिच्छाया कल्पयित्वा स्वा याय एव स्वा यायिकम् इति व्याख्यानं तु न रुचिर,  
स्वाध्यायशब्दात् स्वार्थठकोऽसभवात्, विनयादेराकृतिगणत्वे प्रमाणाभावस्य  
प्रागुक्तत्वात् ।

“ चत्वारि अणयणिज्जा पन्नजा, तजहा-अत्रिणीए विगइपडिबद्धे अवि ओसप्रितपाहुडे माई ” इति । यद्वा ‘सुदुदिन्न’ इत्यत्र प्राकृतत्वादकारलोप स्तेन ‘सुष्टुवदत्त’-मितिच्छाया, तेन सुष्टुवे=विनीताय अदत्त=न दत्तमित्यर्थः । विनीताय शिष्याय दत्त शास्त्रमनन्तगुणफलक भवति, यत् इदमेव धर्मदानमिती त्युक्तमन्यत्र—

“ पात्रेभ्यो दीयता विद्या, नित्य चैवाऽनपेक्षया ।

केनल धर्मबुद्ध्या य, -धर्मदान प्रचक्षते” ॥ १ ॥ इति ।

‘दुष्टदुपडिच्छिय’ दुष्टु=अशोभनं यथा स्यात्तथा दुर्भावनया वा

लोलुप, महाक्रोधी तथा मायाचारी शिष्य, ये चार वाचना देने योग्य नहीं है ।’

अथवा ‘सुदुदिन्न’ यहा पर प्राकृत के कारण अकार का लोप है इसलिये सुष्टु-विनीत को अदत्त-न पढाया गया हो, क्योंकि विनीत शिष्य को पढानेसे अनन्त ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति होती है, इसको अन्यत्र धर्मदान भी कहा है-जैसे-

‘सुपात्र शिष्य को निर्लोभ होकर केवल परमार्थ बुद्धि से ज्ञान देने को ‘धर्मदान’ कहते हैं ॥ १ ॥

(९) दुष्ट भावसे ग्रहण-किंवा हो, अथवा दुष्ट पुरुष से लिया गया हो । इस अतिचारको किसीने ‘सुदुदिन्न’ से अलग नहीं माना

तथा मायाचारी शिष्य, आ चारने वाचना आपवी योग्य नहीं

अथवा ‘सुदुदिन्न’ अर्थात् प्राकृत भाषाणा कारणे अकारने लोप छे अण्डेला माटे सुष्टु-विनीतने अदत्त-नहि लालाव्ये होय कारणु छे विनीत शिष्यने अव्यास कराववाथी अनन्त ज्ञानादि गुणोनी प्राप्ति थाय छे अने पीने ठेकाळे धर्मदान पणु कडेल छे जेवी रीते “सुपात्र शिष्यने निर्लोभ अणुने केवल परमार्थ-बुद्धिथी ज्ञान आपवु तेने “धर्मदान” कडे छे” ॥ १ ॥

(६) दुष्टभावथी अणु कथु होय अथवा दुष्ट पुरुष पासथी लीधु होय आ अतिचारने कडे अ “सुदुदिन्न” थी अलग मान्ये नहीं, अर्थात् “सुदुदिन्न

१- ‘चत्वारोऽवाचनीयाः मङ्गलास्तथा-अविनीतो विकृतिप्रतिबद्धोऽव्य-  
वशमितमाश्रुतो मायी” इतिच्छाया ॥

दुष्टोर्वा प्रतीष्टं=प्रतिगृहीतम्, 'प्रतीप्सित'- मितिच्छायायामप्ययमेवार्थः ।  
 केचिदनयोर्दोषयोरेकत्व व्याचक्षते, तदयुक्तम्; परस्परमनपेक्षत्वात्, अत एवा-  
 त्नाऽतिचाराणामागोपालशालहालिकप्रसिद्ध चतुर्दशत्वमप्युपपन्नतेऽन्यथा त्रयोदश-  
 त्वापत्तेः, एतेन 'सुष्ठु दत्त गुरुणा, दुष्ठु प्रतीच्छित कल्पितान्तरात्मने-' ति  
 व्याख्यानमसदिति बुद्धिमद्भिन्ननुभाव्यम् । सुष्ठु-दुष्ठु-शब्दावव्ययो त्रिलिङ्गौ च ।

'अकाले कओ सज्जाओ' न कालोऽकालस्तस्मिन्नकाले-असमये, अर्थाद्  
 यस्य कालिकादिश्रुतस्य योऽध्ययनसमयः प्रथमप्रहरादिस्तमतिक्रम्य कृतो=विहितः  
 स्वाध्यायः । 'काले न कओ सज्जाओ' काले=स्वाध्यायसमये प्रथमप्रहरादौ  
 न कृत' स्वाध्याय इति निगदव्याख्यातमिदम् । 'असज्जाये सज्जाइय' न  
 स्वाध्यायो यस्मिन् सोऽस्वायायस्तस्मिन् = स्वसमुत्थपरसमुत्थभेदभिन्ने  
 रुधिरस्त्रात्रोल्कापात-दिग्दाहाऽकालवर्षणादिरूपे 'स्वायायित=स्वायायः कृतः ।

है, अर्थात् 'सुदुष्टुदिन्न दुदुष्टुपडिच्छिय' इन दोनो को मिलाकर एक  
 अतिचार माना है सो उचित नहीं है, क्योंकि इन दोनों का ऐसी  
 कोई अपेक्षा नहीं है जिससे एक साथ सम्बन्ध किया जाय । दोनों को  
 जुदा २ मानने से ही चौदह अतिचार होते हैं नहीं तो तेरह ही  
 रह जायेंगे (१०) । अकाल में स्वाध्याय किया गया हो (११), काल

'दुदुष्टुपडिच्छिय' आ षन्नेने लेखी ओक अतिचार मानेले छे ते उचित नहीं, डेभडे  
 आ षन्नेनी डेअ ओवी अपेक्षा नहीं डे जेथी ओक साथे सणध करवाभा आवे षन्नेने गूढा  
 गूढा मानवाथी थौद अतिचार थाय छे नडि तो ते १४ थड जेथे (१०) अकालभा

१-'पडिच्छिय' इत्यस्य 'प्रतीच्छित'-मितिच्छायाया प्रतिगृहीतार्थकल्पन  
 तु व्याकरणाननुसंधानेन गजनिमीलिकैश्च 'इपुगमियमा छः' (७ । ३ । ७७)  
 इति शित्येव छादेशविधानात् । न च प्रतीच्छा सजाताऽस्येत्यर्थे तारकादित्वादितचि  
 प्रतीच्छितमिति युक्तमेवेति सन्देहव्ययम्, तथा सति प्रतीच्छावत् एव बोधसम्भ-  
 वेन 'प्रतिगृहीत'-मिति कर्मबोधकत्वानुपपत्तेरिति कृतमसारग्रन्थपर्यालोचनेन ॥

२-'स्वायायितम्'- 'तत्करोति तदाचष्ट'-इति णिजन्तात् स्वाध्याय-  
 शब्दात् न प्रत्यये 'निष्ठाया सेटि' ( ६ । ४ । ५२ ) इति णिलोपः । 'स्वाध्यायिकम्'-  
 इतिच्छाया कल्पयित्वा स्वायाय एव स्वाध्यायिकम्-इति व्याख्यान तु न रुचिर,  
 स्वाध्यायशब्दात् स्वार्थठकोऽसम्भवात्, विनयादेराकृतिगणत्वे प्रमाणाभावस्य  
 प्रागुक्तत्वात् ।

‘सज्ज्ञाए न सज्ज्ञाइय’ स्याःयाये न स्याःयायः कृतः। ‘तस्स’ तस्योक्तप्रका  
रातिचारस्य ‘मि’ मयि=मद्विपये ‘दुक्कड’ दुक्कृत=पापम् ‘मिच्छा’ मिथ्या=  
निष्फल भवत्विति भागवत् ॥

अत्र दर्शनसम्यक्त्व-समितिपञ्चक-गुप्तित्रय-स्यावरपञ्चक-विकलेन्द्रियत्रय  
‘पञ्चेन्द्रिय-पञ्चमहात्रत-रात्रिभोजन-पापस्थानाष्टादशरूपट्टीसमुच्चारणपूर्वक ‘मूलो  
त्तरगुणाना त्रयस्त्रिंशतो गुर्वांशातनाना च यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या  
मयि दुक्कृतमस्तु’ इति ‘इच्छामि ठामि०’ इति सपूर्णां पट्टीं च परिचिन्तयेत्  
किन्तु ध्यानवेलाया ‘तस्स मिच्छामि दुक्कड’ इत्यस्य स्थाने ‘तस्स आलोएमि’  
इति चिन्तनीयम् । पर्यवसाने च नमस्कारपूर्वक कायोत्सर्गः समापनीयः ।  
एताः सर्वा पट्टिका हिन्दीभाषायामधस्ताद् विलोकनीयाः ।

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-  
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्भग्नपद्यनैऋग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाह-  
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त ‘जैनशास्त्राचार्य’ पदभूषित कोल्हापुर-  
राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-  
घासीलाल-त्रतिविचिताया श्रीश्रमणसूत्रस्य, मुनि-  
तोषण्याख्याया व्याख्याया प्रथम सामायिका-  
ख्यमययन समाप्तम् ॥ १ ॥

में स्वाध्याय न किया गया हो (१२), अस्वाध्यायमे स्वाध्याय किया  
गया हो (१३)। स्वाध्यायसमय में स्वाध्याय नहीं किया गया हो  
(१४)। ‘तस्स मिच्छामि दुक्कड’ वह पाप मेरा निष्फल हो ॥

अस्वाध्याय के विषयमे आगे कोष्ठक दिया जाता है-

स्वाध्याय कर्षो डोय (११) डालभा - राध्यय कर्षो न डोय (१२) अस्वाध्यायभा  
स्वाध्याय कर्षो डोय (१३) स्वाध्यायना समयभा स्वाध्याय न कर्षो डोय (१४)

“तस्स मिच्छामि दुक्कड” ते भाऽ पाप निष्फल थाये।

अस्वाध्यायना विषयभा आगण डोऽऽक आयेलु छे

॥ अस्वाध्यायधन्त्रम् ॥

ख्या	अस्वाध्याय	'द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
१	उक्तावाय (उक्तापात)	तारा दृष्टे	जिस मण्डलमें	एक पहर	सुप्त न पड़े
२	दिसिदाह (दिग्दाह)	दिशा की लालिमा	"	जब तक रहे	"
३	गज्जिय (गजित)	मेघ की गर्जना	"	एक पहर	"
४	विज्जुय (विद्युत्)	निजली चमके	"	एक पहर	"
५	निग्घाय (निर्घात)	वादल कड़के या भूकम्प होवे	"	८-१२-१६ पहर	"
६	जूवय (यूपक)	वालचन्द्र १।२।३ शुक्ल तिथि	सर्वत्र	एक पहर	"
७	जमलदित्ते (यक्षदीप्त)	आकाशमें यक्षादिका चिह्न।	जिस मण्डलमें	जब तक दिखाई दे	"
८	धूमिया (धूमिका)	लाल या काली धूँवर	"	जब तक रहे	"
९	महिया (महिका)	सफेद धूँवर	"	"	"



‘सज्ज्ञाए न सज्ज्ञाइय’ स्वाध्याये न स्वाध्यायः कृतः। ‘तस्स’ तस्योक्तप्रका  
रातिचारस्य ‘मि’ मयि=मद्विषये ‘दुक्कड’ दुष्कृत=पापम् ‘मिच्छा’ मिथ्या=  
निष्फल भवत्विति भागवत् ॥

अत्र दर्शनसम्पत्त्व-समितिपञ्चरु-गुप्तित्रय-स्यावरपञ्चरु-विकलेन्द्रियत्रय  
‘पञ्चेन्द्रिय-पञ्चमहात्रत-रात्रिभोजन-पापस्थानाष्टादशरुपटीसमुच्चारणपूर्वक ‘मूलो-  
त्तरगुणाना त्रयत्रिंशतो गुर्वांशातनाना च यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या  
मयि दुष्कृतमस्तु’ इति ‘इच्छामि ठामि०’ इति सपूर्णां पटीं च परिचिन्तयेत्  
किन्तु ध्यानवेलाया ‘तस्स मिच्छामि दुक्कड’ इत्यस्य स्थाने ‘तस्स आलोएमि’  
इति चिन्तनीयम्। पर्यवसाने च नमस्कारपूर्वक कायोत्सर्गः समापनीयः।  
एताः सर्वा पट्टिका हिन्दीभाषायामधस्ताद् विलोकनीयाः।

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्बलभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित  
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैरुग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाह-  
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त ‘जैनशास्त्राचार्य’ पदभूषित कोल्हापुर-  
राजगुरु-वालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-  
घासीलाल-त्रतिविचिताया श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनि-  
तोपण्याख्याया व्याख्याया प्रथम सामायिका-  
ख्यमभ्ययन समाप्तम् ॥ १ ॥

में स्वाध्याय न किया गया हो (१२), अस्वाध्यायमे स्वाध्याय किया  
गया हो (१३)। स्वाध्यायसमय में स्वाध्याय नहीं किया गया हो  
(१४)। ‘तस्स मिच्छामि दुक्कड’ वह पाप मेरा निष्फल हो ॥

अस्वाध्याय के विषयमे आगे कोष्ठक दिया जाता है-

स्वाध्याय कथों होय (११) डालभा - राध्य न कथों न होय (१२) अस्वाध्यायभा  
स्वाध्याय कथों होय (१३) स्वाध्यायना समयभा स्वाध्याय न कथों होय (१४)  
“तस्स मिच्छामि दुक्कड” ते भाइ पाप निष्फल थाओ।

अस्वाध्यायना विषयभा आगेण डोःडड आपेडु छे

२०	उवस्सयस्सअत्तोओरालियशरीरे (उपाश्रयस्यान्तरौदारिकशरीरम्)	स्थानरुके अदरपवेन्द्रियका कलेवर पडा हो	जिस स्थानरुके में	जव तरु पडा रहे	"
२५	महापुण्णिमा ५ (महापूर्णिमा)	१ अपाढी २ भाद्रपदी ३ आश्विनी ४ कार्तिकी ५ चैत्री	सब जगह	८ पहर	"
३०	महापडिकण ५ (महाप्रतिपदः)	श्रावण वदि १, आश्विन वदि १ कार्तिक वदि १, मार्गशीर्ष वदि १, त्रैशाख वदि १ (५ महा पूर्णिमा के दूसरे रोज)	सब जगह	८ पहर	"
३४	सज्ञा (सध्या) ४	प्रभात १, दुपहर २, साझ ३ अर्धरात्रि ४	सब जगह	१ मुहूर्त्त (आधा मुहूर्त्त पहले का आधा मुहूर्त्त पीछे का)	दशवैकालि- कादि न पढे

॥ इति अस्वाध्याययन्त्रम् ॥



१०	रयउग्याय (रजउद्धात)	सब दिनाओंमें धूलका छा जाना	"	"	सूत्रन पढे
११	अही (अस्थि)	हाड मनुष्य तिर्यच का	१०० हाथ मनुष्य का १०० हाथ तिर्यच का हाड हो तो।	मनुष्य के हाड की अवधि १२ वर्ष	"
१२	मस (मास)	मास मनुष्य-तिर्यच का	मनुष्य का १०० हाथ तिर्यच का ६० हाथ	३ पहर	"
१३	सोणिय (शोणित)	लोही मनुष्य <sup>१</sup> तिर्यच <sup>२</sup> का तथा प्रसव <sup>३</sup> का	११०० हाथ २६० हाथ सातघरों के अंदर यदि नीचमें रस्ता न पडता हो	१५३ पहर ३ कन्या प्रसव ८ अहोरात्र पुत्र प्रसव ७ अहोरात्र	"
१४	असुइ सामन्त (अशुचि सामन्त)	अशुचि	जहा दीखे, गध आवे,	जब तक रहे	"
१५	सुसाणसामन्त (समशानसामन्त)	समशान	चारों तरफ सौ सौ (१००) हाथ	सर्वा काल	"
१६	रायपडण (राजपतन)	राजाका अवसान	जहा तक उसका राज्य हो।	नया राजा बैठे तब तक	"
१७	रायबुगहू (राजत्रिग्रह)	राजाओं की लडाई	उपनगर नगर के समीप	जब तक होवे	"
१८	चदोवराग (चद्रोपराग)	चन्द्रमा का ग्रहण	सब जगहमें	४।८।१२ पहर	"
१९	सुरोवराग (सुर्योपराग)	सूर्य का ग्रहण	सब जगहमें	४।८।१६ पहर	"

बोल्हो होऊ, काल थकी पहर रात्रि गर्या पीळे गाढे गाढे शब्द बोल्हो होऊ, भाव थकी रागद्वेष से बोल्हो होऊ, गुण यकी सवर गुण, दूसरी भापासमिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सबधी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

तीसरी एणणासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, द्रव्य थकी सोले उदगमणका दोष, सोले उत्पातका दोष, दश एणणाका दोष इन चयालीश दोष सहित आहार पाणि लायो होऊ, क्षेत्र थकी दो कोश उपरात लेजाईने भोगव्यो होय काल यकी पहेला पहर को छेला पहर में भोगव्यो होऊ, भाव थकी पाच माडलाका दोष न टाल्या होय गुण यकी सवरगुण, तीसरी एणणा समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होऊ तो देवसिय सवन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

चौथी आयाणभंडमत्तनिकखेवणासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोऊ, द्रव्य यकी भाणडोपकरण अजयणा से लीया होय अजयणा से रख्या होय, क्षेत्र यकी गृहस्थके घर आगणे रख्या होय, काल यकी कालोकाल पडिलेहणा न की होय, भाव यकी ममता मृर्छा सहित भोगव्या होय, गुण यकी सवर गुण, चौथी समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ४ ॥

पाचवी उचार-पासवण-खेल-जल्ल- सिंघाण-परिद्धावाणिया समिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय ते आलोऊ, द्रव्य थकी ऊची नीची जगह परठव्यो होय, क्षेत्र यकी गृहस्थ के घर आंगणे परठव्यो होय, काल थकी दिनको विना देखे रातको विना पूजे परठव्यो होय, भावयकी जाता आवसही आवसही, न करी होय, परिठवते पहले शक्रेन्द्र महाराज की आज्ञा नहीं ली होय, थोडो पूजी ने घणो परिठव्यो होय, परठनेके बाद तीनवार वोसिरे वोसिरे न किन्हो होय, आवता नि.सही निधसही न करी होय, ठिकाणे आईने काउसगग न कर्यो होय, गुणथकी सवरगुण,

दर्शनसम्यक्त्वादिपट्टिका-

दसणसमत्त परमत्थसथयो वा सुद्धिद्वपरमत्थसेवण वाचि वावन्नकुदसण-  
वज्जणा इयसमत्तसदहणा सम्मत्तस्स पच अडयारा पेयाला जाणियव्वा न समाप-  
रियव्वा, तजहा-सका क्खा विट्ठिगिच्छा परपासडपससा परपासडसथवो वा  
(ते म्हरा समकितरूप रत्नपदार्थ के विषय मिथ्यात्वरूप रजोमल लागो होय,  
तो) तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

(टिप्पणी—दर्शनसम्यक्त्वम् ; तत्र दर्शनं जिनमताभिरोचनम्, तदेव  
सम्यक्त्वम्, परमार्थसस्तवो वा=परमार्थः जीवादिस्वरूपम्, तस्य सस्तवः परिचयो  
बोध इत्यर्थः, सुदृष्टपरमार्थसेवना वापि, तत्र सुदृष्टैः अतीन्द्रियार्थदर्शिभिः सर्वज्ञै-  
रुपदृष्टैः परमार्थ=जीवादिस्वरूप तस्य सेवना आसेवनम् ; व्यापन्नकुदर्शनवर्जना-  
तत्र व्यापन्न=विनष्ट दर्शन=सम्यक्त्व येपा ते व्यापन्नदर्शनाः, कुदर्शनाः=कुत्सित दर्श-  
नमसद्भावनिरूपणादिरूप येपा ते कुदर्शना, तेपा वर्जना व्यापन्नकुदर्शनवर्जना,  
वान्तसम्यक्त्वाना मिथ्यादृष्टीना च ससर्गवर्जनमित्यर्थः । इति सम्यक्त्वश्रद्धानम् ।  
सम्यक्त्वस्य पञ्च अतिचाराः पेयाला.=प्रधानानि ज्ञातव्या न समाचरितव्याः ।  
'पेयाल' इति प्रधानार्थको देशीय शब्दः । तत्रथा-शङ्का=जिनवचनेषु सदेह-  
करणम् । काङ्क्षा=परदर्शनाभिलाषरूपा । विचिकित्सा=तपःसयमाराधनफल  
प्रति सशयः । परपापण्डप्रशसा=परधर्मप्रशसाकरणम्, परपापण्डसस्तवो वा पर-  
धर्मपरिचयकरणम् ॥ )

पहिली इरियासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो  
होय तो आलोक, द्रव्य थकी छ काया का जीव जोइने न चाल्यो  
होऊ, क्षेत्र थकी साढातीन हाथ प्रमाणे जोइने न चाल्यो होऊ,  
काल थकी दिन को देखे बिना रात को पूजे विना चाल्यो होऊ,  
भाव थकी उपयोग सहित जोइने न चाल्यो होऊ, गुण थकी  
स्वरगुण, पहिली इरियासमिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो  
होय तो देवसिय सम्यन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

दूसरी भाषासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो  
होय तो आलोक, द्रव्य यकी-भाषा कर्कशकारी, कठोरकारी, निश्चय-  
कारी, हिंसाकारी, उद्दकारी, भेदकारी, परजीव को पीडाकारी, सावज-  
सन्वपापकारी कृडी मिश्र भाषा बोल्यो होऊ, क्षेत्र थकी रस्ते चालता

बोल्हो होऊ, काल थकी पहर रात्रि गया पीळे गाढे गाढे शब्द बोल्हो होऊ, भाव थकी रागद्वेष से बोल्हो होऊ, गुण थकी सवर गुण, दूसरी भाषासमिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सबधी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

तीसरी एषणासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, द्रव्य थकी सोले उदगमणका दोष, सोले उत्पातका दोष, दश एषणाका दोष इन बयालीश दोष सहित आहार पाणि लायो होऊ, क्षेत्र थकी दो कोश उपरात लेजाईने भोगव्यो होय काल थकी पहला पहर को छेला पहर में भोगव्यो होऊ, भाव थकी पांच भाडलाका दोष न टाल्या होय गुण थकी सवरगुण, तीसरी एषणा समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होऊ तो देवसिय सबधी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

चौथी आयाणमंडमत्तनिकखेवणासमिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, द्रव्य थकी भाण्डोपकरण अजयणा से लीधा होय अजयणा से रख्या होय, क्षेत्र थकी गृहस्थके घर आगणे रख्या होय, काल थकी कालोकाल पडिलेहणा न की होय, भाव थकी ममता मृडा सहित भोगव्या होय, गुण थकी सवर गुण, चौथी समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ४ ॥

पाचवी उच्चार-पासवण-खेल-जल्ल- सिंघाण-परिद्धावाणिया समिति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय ते आलोक, द्रव्य थकी ऊची नीची जगह परठव्यो होय, क्षेत्र थकी गृहस्थ के घर आगणे परठव्यो होय, काल थकी दिनको बिना देखे रातको बिना पूजे परठव्यो होय, भावथकी जाता आवसही आवसही, न करी होय, परिठवते पहले शकेन्द्र महाराज की आज्ञा नहीं ली होय, थोडो पूजा ने घणो परिठव्यो होय, परठनेके बाद तीनवार बोसिरे बोसिरे न किन्हो होय, आवता नि.सही निभसही न करी होय, ठिकाणे आईने काउसगग न कर्यो होय, गुणथकी सवरगुण,

पाचवी समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्य मिच्छामि दुक्कड ॥ ५ ॥

मनगुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, वचन आरभ, सारभ, समारभ, विषय, कषाय के विषय खोटो मन प्रवर्तव्यो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्य मिच्छामि दुक्कड । १ ।

वचनगुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, वचन आरभ, सारभ, समारभ, राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, भक्तकथा इन चार कथा में से कोई कथा की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

कायागुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, काया आरभ, सारभ, समारभ, विना पूज्या अजयणापणे असावधानपणे हाथपग पसारचा होय, सकोच्या होय, विना पूज्या भीतादिक को ओटींगणो (सहारो) लीधो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

पृथ्वीकाय में मिट्टी, मरडो, खडी, गेरु, हिंगलू, हडताल, हडमचि, लूग, भोडल, पत्थर इत्यादि पृथ्वीकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । १ ।

अप्काय मे ठार को पाणी, ओस को पाणी, हीम को पाणी, घडा को पाणी, तलाव को पाणी, निवाण को पाणी, सकालको पाणी, मिश्र पाणी, वर्षाद को पाणी इत्यादि अप्काय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

तेउकाय मे खीरा, अगीरा, भोभल, भडमाल, झाल, डूटती झाल, विजली, उल्कापात इत्यादि तेउकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

वाउकाय में उकलियावाय, मडलियावाय, घणवाय, घणगु-जवाय, तणवाय, शुद्धवाय, सपटवाय, वीजणे करी, तालिकरी,

चमटीकरी, इत्यादि वाउकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ४ ।

वनस्पति काय में हरी, तरकारी, बीज, अंकुरा, कण, कपास, गुम्मा, गुच्छा, लत्ता, लीलण, फूलण, इत्यादि वनस्पतिकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ५ ।

वेन्द्रिय में लट, गिंडोला, अलसिया, शख, सखोलिया, कोडी, जलोक, इत्यादि वेन्द्रिय जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । १ ।

तेन्द्रिय में कीडी, मकोडी, जू, लींख, चांचण, माकण, गजाई, खजूरीया, उघई, धनेरिया इत्यादि तेन्द्रिय जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

चतुरिन्द्रिय में तीड, पतगिया, मक्खी, मच्छर, भवरा, तिगोरी, कसारी, विच्छु इत्यादि चतुरिन्द्रिय जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

पचेन्द्रिय में जलचर, थलचर, खेचर, उरपर, भुजपर, सन्नी, असन्नी, गर्भज, समुच्छिम, पर्याप्ता, अपर्याप्ता, इत्यादि पचेन्द्रिय जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड । ४ ।

पहिला महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, (१) इन्धथावरकाय (२) यम्भथावरकाय (३) सिप्पथावरकाय (४) सम्मतीथावरकाय (५) पायावचथावरकाय (६) जगमकाय, द्रव्य से इनकी हिंसा की होय, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से जावजीवतक, भाव से तीन करण तीन योग से पहिला महाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ १ ॥

दूसरा महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, कोहावा, लोहावा, भयावा, हासावा, क्रीडा, कुतुहलकारी, द्रव्य से झूठ बोव्यो होऊ, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से



पाचवी समिति के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्य मिच्छामि दुक्कड ॥ ५ ॥

मनगुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, वचन आरभ, सारभ, समारभ, विषय, कषाय के विषय खोटो मन प्रवर्तान्यो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्य मिच्छामि दुक्कड । १ ।

वचनगुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, वचन आरभ, सारभ, समारभ, राजकथा, देशकथा, स्त्रीकथा, भक्तकथा इन चार कथा में से कोई कथा की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

कायागुप्ति के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, काया आरभ, सारभ, समारभ, विना पूज्या अजयणापणे असावधानपणे हाथपग पसारचा होय, सकोच्या होय, विना पूज्या नीतादिक को ओटींगणो (सहारो) लीघो होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

पृथ्वीकाय मे मिटी, मरडो, खडी, गेरु, हिंगलू, हडताल, हडमचि, लूग, मोडल, पत्थर इत्यादि पृथ्वीकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । १ ।

अप्पकाय में ठार को पाणी, ओस को पाणी, हीम को पाणी, घडा को पाणी, तलाव को पाणी, निवाण को पाणी, सकालको पाणी, मिश्र पाणी, वर्षाद को पाणी इत्यादि अप्पकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । २ ।

तेउकाय में खीरा, अगीरा, भोभल, भडसाल, झाल, टूटती झाल, विजली, उल्कापात इत्यादि तेउकाय के जीवों की विराधना की होय तो देवसिय सम्बन्धि तस्स मिच्छामि दुक्कड । ३ ।

वाउकाय में उक्कलियावाय, मडलियावाय, घणवाय, घणग-जवाय, तणवाय, शुद्धवाय, सपटवाय, बीजणे करी, तालिकरी,

(९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशुन्य (१५) परपरिवाद (१६) रति अरति (१७) मायामोसो (१८) मिथ्यादर्शनशल्य ये अद्वारह पाप सेव्या होय, सेवाया होय, सेवता प्रत्ये भलो जाण्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

पाचमूलगुणमहाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड । इस उत्तरगुण पचक्खाण के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड । तेतीस आशातना में से गुरु की बडों की कोई भी आशातना हुई हो तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

सूचना-इसके पीछे 'इच्छामि ठामि काउसग्ग' का पाठ बोलना, इस प्रकार ये सभी पाठ मौन रहकर प्रथम अध्ययन (आवश्यक) के ध्यान में बोलने का है, एव तीसरा अध्ययन (आवश्यक) के बाद श्रमणसूत्र के पहले चौथे अध्ययन के आदि में खड़े होकर स्पष्ट उच्चारणपूर्वक बोला जाता है । (इसी प्रकार प्रथम आवश्यक के ध्यान में और तीसरे आवश्यक के बाद चौथे आवश्यक के आदि में जो निन्दानवें अतिचार गृहस्थ बोलते हैं उन्हें आवश्यकसूत्र के अन्त के परिशिष्ट में देखें)

इति प्रथम अध्ययन सम्पूर्ण

जावजीव तक, भाव से तीन करण तीन योग से दूसरा महाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ २ ॥

तीसरा महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, देव अदत्त, गुरु अदत्त, राजा अदत्त, गाथापति अदत्त, सार्धमि अदत्त, द्रव्य से इनकी चोरी की होय, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से जावजीवतक, भाव से तीन करण तीन योग से तीसरा महाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ३ ॥ -

चौथा महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग, देवता सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी, तिर्यच सम्बन्धी, द्रव्य से काम भोग सेव्या होय, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से जावजीवतक, भाव से तीन करण तीन योग से चौथा महाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ४ ॥ -

पाचवा महाव्रत के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, सचित्त परिग्रह, अचित्त परिग्रह, मिश्र परिग्रह, द्रव्य से छति वस्तु पर मूर्छा की होय, पर वस्तु की इच्छा की होय, सूई कुसग धातु-मात्र परिग्रह राख्यो होय, क्षेत्र से समस्त लोक में, काल से जावजीव तक, भाव से तीन करण तीन योग से पाचवा महाव्रत के विषय जो कोई पाप दोष लाग्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ५ ॥ -

छठा रात्रि-भोजन के विषय जो कोई अतिचार लाग्यो होय तो आलोक, चार आहार असण, पाण, खाइन, साइम, सीत-मात्र, लेप मात्र, रातवासी राख्यो होय, रखायो होय, राखता प्रत्ये भलो जाण्यो होय तो देवसिय सम्बन्धी तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥ ६ ॥

अठारह पाप (१) प्राणातिपात (२) मृपावाद (३) अदसादान (४) मैद्युन (५) परिग्रह (६) क्रोध (७) मान (८) माया

रूपभमजित च वन्दे, सम्भवमभिनन्दन च सुमतिं च ।  
 पद्मप्रभ सुपार्श्व, जिन च चन्द्रप्रभ वन्दे ॥ २ ॥  
 सुविधिं च पुष्पदन्त, शीतल-श्रेयास-वासुपूज्याश्च ।  
 विमलमनन्त च जिन, धर्म शान्ति च वन्दे ॥ ३ ॥  
 कुन्धुमर च मलि, वन्दे मुनिमुव्रत नमिजिन च ।  
 वन्देऽरिष्टनेमिं पार्श्व तथा वर्द्धमान च ॥ ४ ॥  
 एव मयाऽभिष्टुता, विभूतरजोमलाः प्रहीणजरामरणाः ।  
 चतुर्विंशतिरपि जिनवरा, -स्तीर्थकरा मे प्रसीदन्तु ॥ ५ ॥  
 कीर्त्तित-वन्दित-महिता, य एते लोकरस्योत्तमाः सिद्धाः ।  
 आरोग्यबोधिलाभ, समाप्तिवरमुत्तम ददतु ॥ ६ ॥  
 चन्द्रेभ्यो निर्मलतरा, आदित्येभ्योऽधिक प्रकाशकराः ।  
 सागरवरगम्भीराः, सिद्धाः सिद्धिं मम दिशन्तु ॥ ७ ॥

॥ टीका ॥

लोकरस्योद्घोतकरानर्हतश्चतुर्विंशतिमपि केवलिनो जिनान् धर्मतीर्थकरान्  
 कीर्त्तयिष्यामीति सम्बन्धः । लोचयते=दृश्यते केवलज्ञानादित्येनेति, लोचयते=

इस प्रकार पहले अचयन में सावद्ययोग की निवृत्तिरूप  
 सामायिक का निरूपण करके अब चतुर्विंशतिस्तव (चउवीसत्यव)  
 रूप इस दूसरे अचयनमें समस्त सावद्य योगों की निवृत्ति के  
 उपदेश होनेसे समकित की विशुद्धि तथा जन्मान्तरमें भी बोधिलाभ  
 और सपूर्ण कर्मों के नाश के कारण होने से परम उपकारी तीर्थङ्करों  
 का गुण कीर्त्तन करते हैं—'लोगस्स' इत्यादि ।

जो केवलज्ञानरूपी सूर्य से अथवा प्रमाण (ज्ञान) के द्वारा  
 देखा जाय उसे लोक कहते हैं, उस पचास्तिकार्यरूप लोक को

ये प्रमाणे पडेला अध्ययनभा सावद्ययोगनी निवृत्ति इप सामायिकनु  
 निरूपण करीने हवे अतुर्विंशतिस्तव (चउवीसत्यव) इप आ भीग अध्ययनभा  
 समस्त सावद्य योगोनी निवृत्तिने उद्देश्य होवाथी समकितनी विशुद्धि तथा  
 जन्मांतरभा पण बोधिलाभ अने सपूर्ण कर्मोना नाशक होवाथी परम उपकारी  
 तीर्थ करेना शुण-कीर्त्तन करे छे "लोगस्स" इत्यादि

ये केवलज्ञानरूपी सूर्यथी अथवा प्रमाण (ज्ञान) वडे लेछ शक्य तेने  
 'लोक' कहे छे, ते पचास्तिकार्यरूप लोकने प्रवचनरूपी दीवा वडे प्रकाश

## । अथ द्वितीयमध्ययनम् ।

इत्थं प्रथममध्ययने सावद्ययोगोपरमस्वरूप सामायिकमभिधाय सप्रति चतुर्विंशतिस्तुतिरूपेऽस्मिन् द्वितीयेऽध्ययने सर्वसावद्ययोगविरत्युपदेशस्य लब्ध-  
बोधिपरिशुद्धेर्भूयो बोध्युपलब्धेः प्रधानकर्मक्षयस्य च हेतुत्वेनाऽवसरसङ्गतेस्तीर्थक-  
राणां गुणसङ्कीर्त्तनमधिक्रियते—‘लोगस्से’ त्यादि ।

### ॥ मूलम् ॥

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।  
अरिहते कित्तइस्स, चउवीसपि केवली ॥ १ ॥  
उसभमजिअ च वदे, सभवमभिणदण च सुमइं च ।  
पउमप्पह सुपास, जिण च चदप्पहं वदे ॥ २ ॥  
सुविहि च पुप्फदत्त, सीयल सिज्जस वासुपुज्ज च ।  
विमलमणत्त च जिण, धम्म सत्ति च वदामि ॥ ३ ॥  
कुथु अर च मल्लिं, वदे मुणिसुव्वय नमिजिण च ।  
वदामि रिट्ठनेमि, पास तह वद्धमाण च ॥ ४ ॥  
एव मए अभिथुआ, विट्ठयरयमल्ला पहीणजरमरणा ।  
चउवीसपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयतु ॥ ५ ॥  
कित्तिय-वदिय-महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।  
आरुग्गवोहिलाभ, समाहिवरमुत्तम दिंतु ॥ ६ ॥  
चदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहिय पयासयरा ।  
सागरवरगभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसतु ॥ ७ ॥

### ॥ छाया ॥

लोकस्पोद्घोतकरान्, धर्मतीर्थकरान् जिान् ।  
अहंत. कीर्त्तयिष्यामि, चतुर्विंशतिमपि केवलिन ॥ १ ॥

रूपभमजित च वन्दे, सम्भवमभिनन्दन च सुमर्ति च ।  
 पद्मप्रभ सुपार्श्वे, जिन च चन्द्रप्रभ वन्दे ॥ २ ॥  
 सृष्टिर्षि च पुष्पदन्त, शीतल-श्रेयास-वासुपूज्याश्च ।  
 विमलमनन्त च जिन, धर्म शान्ति च वन्दे ॥ ३ ॥  
 कुन्धुमर च मलि, वन्दे शुनिसुव्रत नमिजिन च ।  
 वन्देऽरिष्टनेमिं पार्श्वे तथा वर्द्धमान च ॥ ४ ॥  
 एव मयाऽभिष्टुता, त्रिधूतरजोमलाः प्रहीणजरामरणाः ।  
 चतुर्विंशतिरपि जिनवरा, -स्तीर्थररा मे प्रसीदन्तु ॥ ५ ॥  
 कीर्त्तित-वन्दित-महिता, य एते लोकरस्योत्तमाः सिद्धाः ।  
 आरोग्यबोधिलाभ, समाश्रितवरमुत्तम ददतु ॥ ६ ॥  
 चन्द्रेभ्यो निर्मलतरा, आदित्येभ्योऽधिक प्रकाशकराः ।  
 सागरवरगम्भीराः, सिद्धाः सिद्धिं मम दिशन्तु ॥ ७ ॥

॥ टीका ॥

लोकस्योद्घोतकरानर्हतश्चतुर्विंशतिमपि केवलिनो जिनान् धर्मतीर्थकरान्  
 कीर्त्तयिष्यामीति सम्बन्ध । लोचयते=दृश्यते केवलज्ञानादित्येनेति, लोचयते=

इस प्रकार पहले अध्ययन में सावद्योग की निवृत्तिरूप  
 सामायिक का निरूपण करके अब चतुर्विंशतिस्त्व (चउवीसत्यव)  
 रूप इस दूसरे अध्ययनमें समस्त सावद्य योगों की निवृत्ति के  
 उपदेश होनेसे समकित की विशुद्धि तथा जन्मांतरमें भी बोधिलाभ  
 और सपूर्ण कर्मों के नाश के कारण होने से परम उपकारी तीर्थङ्करों  
 का गुण कीर्त्तन करते हैं—'लोगस्स' इत्यादि ।

जो केवलज्ञानरूपी सूर्य से अथवा प्रमाण (ज्ञान) के द्वारा  
 देखा जाय उसे लोक कहते हैं, उस पचास्तिकायरूप लोक को

ये प्रमाण पडेला अध्ययनमा सावद्योगी निवृत्ति इप सामायिकतु  
 निरूपण करीने डवे चतुर्विंशतिस्तव (चउवीसत्यव) इप आ भीजा अध्ययनमा  
 समस्त सावद्य योगीनि निवृत्तिने उद्देश्य डेवाथी समकितनी विशुद्धि तथा  
 जन्मांतरमा पण बोधिलाभ अने सपूर्ण कर्मोना नाशक डेवाथी परम उपकारी  
 तीर्थ करेना शुभ-कीर्त्तन करे छे "लोगस्स" इत्यादि

ये केवलज्ञानरूपी सूर्यथी अथवा प्रमाण (ज्ञान) वडे लोड शक्य तेने  
 'लोक' कडे छे, ते पचास्तिकायरूप लोकने प्रवचनरूपी दीवा वडे प्रकाश

पतिवीक्ष्यते प्रमाणवलेनेति वा लोकाः<sup>१</sup> पञ्चास्तिकायप्रिशिष्ट आकाशविशेषः ।  
यदुक्तं भगवत्याम्—

किमियं भते ? लोएत्ति पवुच्चइ ? गोयमा ? पचत्थिकाया एस ण पव-  
त्तिए लोएत्ति पवुच्चइ<sup>२</sup> इत्यादि ।

तस्य लोकास्य (कर्मणि पठ्ठी) उद्द्योतनमुद्द्योतस्त कर्तुं शील येषां त  
उद्द्योतकरास्तान् केवलाऽऽलोकेन प्रवचनप्रदीपेन वा निखिललोकाप्रकाशकानि-  
त्यर्थः । 'धर्म' इति-दुर्गतिपतितमात्मानं धारयति=शुभस्थाने प्रापयतीति धर्मः<sup>३</sup>  
तीर्थते=पार नीयतेऽनेनेति तीर्थे=प्रवचनम्, धर्मप्रदान तीर्थे, धर्मतीर्थे, द्रव्यरूपस्य

प्रवचनरूपी दीपक द्वारा उद्द्योत करनेवाले, प्राणियों को  
ससार के दुःखों से छुड़ाकर सुगति में धारण करनेवाले, धर्मरूप  
तीर्थ के स्थापक, रागादिकर्मशत्रुओं को जीतकर केवलज्ञान युक्त होकर  
विराजमान ऐसे चौबीसों श्री अरिहन्त भगवान की स्तुति करता हूँ ।

यहा पर 'लोक' शब्द से पञ्चास्तिकाय का ग्रहण है और  
आकाश भी पञ्चास्तिकाय का ही भेद है, तथा अलोक भी आकाश  
स्वरूप है अतएव 'लोक' पद से ही लोक और अलोक दोनों का  
ग्रहण होने से केवलज्ञान की अनन्ततामे कोई बाधा नहीं आसकती ।

करवावाणा, अने प्राणीभिः ससारना दुभेथी छे।आवीने सुगतिमा धारण  
करवावाणा, धर्मरूपी तीर्थना स्थापक, राग आदि कर्मशत्रुभिः लुती लधने  
केवलज्ञानयुक्त यधने विराजमान अेवा चौबीस अरिहन्त भगवाननी स्तुति करे छु  
अर्हि "लोक" शब्दथी पञ्चास्तिकायतु अडखु करेछु छे अने आकाश  
पण पञ्चास्तिकायने न वेद छे तथा अलोक पण आकाशस्वरूप छे अे करण्ठे  
"लोक" पदथी न लोक अने अलोक गन्नेनु अडखु थड शके छे, तेथी केवल ज्ञाननी  
अनन्ततामा केअि प्रकारे छानि थड शकती नथी

१- 'लोक दर्शने' अस्मात् 'अकर्त्तरि च कारके सज्ञायाम् ( ३ । ३ ।  
१८ ) इति कर्णि घञ् ।

२- कृबो हेतुताच्छीलानुलोभ्येषु ( ३ । २ । २० ) इति कर्त्तरि ट ।

३- 'धृञ् धारणे' अस्मादीणादिको मन्प्रत्यस्तेन 'धर्मः' इति सिद्धम् ।

४- 'तीर्थम्'-'तृप्तवनसन्तरणयो' अस्मादीणादिकस्थन् 'कृत इदातो'  
( ७ । १ । १०० ) इतीत्वम्, 'हलि च' ( ८ । २ । ७७ ) इत्युपधादीर्घम् ।

नयादेः शाक्यादिप्रणीतस्याधर्मप्रधानस्य च तीर्थस्य परिहारार्थं धर्मग्रहणम्, धर्मतीर्थं कर्तुं शीलं येषां ते धर्मतीर्थकरास्तान् । जयति=अपनयति रागादिकर्मशत्रु-  
निति, जयति=केवलज्ञानादियुक्ततया सर्वोत्कर्षेण राजत इति वा 'जिनः', 'अरिहते'  
इति व्याख्यातोऽर्हच्छब्दार्थः, 'नमोऽरिहताण' इत्यत्र, 'चउवीस' इति स  
ख्यान्तरव्यवच्छेदाय, अपिशब्दोऽवधारणार्थी महाविदेहक्षेत्रस्थकेवलभग-  
वद्ग्रहणार्थश्च, लोकशब्देन पञ्चास्तिकायग्रहणादाकाशस्य च पञ्चास्तिकायान्तः-  
पातिस्वादलोकस्याप्याकाशस्वरूपतया लोकपदेनैव लोकालोकयोर्ग्रहणमिति न  
केवलोद्द्योतस्यापरिमितत्वहानिः, लोकोद्द्योतकरत्वमवधिविभङ्गज्ञानिषु चन्द्रसूर्या-  
दिष्वपि चास्त्यत उक्त 'धम्मतिथ्यरे' इति, धर्मार्थं निम्नेषु नयादिष्वव-  
तरणाय ये तीर्थं ( घट्ट- 'घाट' इतिभाषाप्रसिद्ध ) कुर्वन्ति तेष्वतिप्रसङ्गवारणाय  
'लोगस्स उज्जोगगरे' इति, लोकोद्द्योतकरत्व धर्मतीर्थकरत्व च दर्शनान्तरमत  
कल्पितेष्वपि ज्ञानिषु—

लोक के उद्द्योतकर अवधिज्ञानी, विभङ्गज्ञानी तथा चन्द्रसूर्यादिक भी  
होते हैं, अतएव उनकी निवृत्ति के लिये 'धम्मतिथ्यर' पद दिया  
है । नदी तालाव आदि जलाशयों में उतरने के लिये धर्मार्थं तीर्थ-  
घाट बनानेवाले भी धर्मतीर्थकर कहला सकते हैं, उनका यहा ग्रहण  
न हो इसलिये 'लोगस्स उज्जोगगरे' विशेषण दिया है, लोक के  
उद्द्योतकर तथा धर्मतीर्थकर अन्यमत के ज्ञानी भी हो सकते हैं,  
जैसा कि अन्य शास्त्रों में कहा गया है—

लोकभा प्रकाश उत्तराव अवधिज्ञानी, विभङ्गज्ञानी तथा चन्द्रसूर्यादिक पणु छेय  
छे जे भाटे तेनी निवृत्ति करवा " धम्मतिथ्यरे " पद आपेलु छे नदी-तलाव आदि  
जलाशयोभा उतरवा भाटे धर्मार्थं तीर्थ-घाट बनाववावाणा पणु धर्मतीर्थकर  
कडेवाय छे तेने स्वीकार अर्हि नहि थवा भाटे "लोगस्स उज्जोगगरे" विशेषण  
आणु छे लोकभा प्रकाशक तथा धर्मतीर्थकर अन्य मतना ज्ञानी पणु छेय  
शके छे, नेवी रीते अन्य शास्त्रोभा कलु छे के-

१- 'जिनः' 'जि अभिभवे' अस्मात् 'जि जये' अस्माद्वा बाहुलका-  
दौणादिको न प्रत्ययः ।



प्रतिव्रीक्ष्यते प्रमाणयलेनेति वा लोकः<sup>१</sup> पञ्चास्तिकायप्रशिष्ट आकाशप्रशेषः ।  
यदुक्तं भगवत्याम्—

किमियं भते ? लोएत्ति पवुच्चइ ? गोयमा ? पचत्थिकाया एस ण पव-  
त्तिष् लोएत्ति पवुच्चइ' इत्यादि ।

तस्य लोकरस्य (कर्मणि पष्ठी) उद्द्योतनमुद्द्योतस्तं कर्तुं शीलं येषां त  
उद्द्योतकराम्भान् केवलाऽऽलोकेन प्रवचनप्रदीपेन वा निखिललोकप्रकाशकानि  
त्यर्थः । 'धर्म' इति—दुर्गतिपतितमात्मानं धारयति=धुभस्थाने प्रापयतीति धर्मः<sup>३</sup>  
तीर्थते=पारं नीयतेऽनेनेति तीर्थे=प्रवचनम्, धर्मप्रधानं तीर्थं, धर्मतीर्थं, द्रव्यरूपस्य

प्रवचनरूपी दीपक द्वारा उद्द्योत करनेवाले, प्राणियों को  
संसार के दुःखों से छुड़ाकर सुगति में धारण करनेवाले, धर्मरूप  
तीर्थ के स्थापक, रागादि कर्मशत्रुओं को जीतकर केवलज्ञान युक्त होकर  
विराजमान ऐसे चौबीसों श्री अरिहन्त भगवान की स्तुति करता हूँ ।

यहां पर 'लोक' शब्द से पञ्चास्तिकाय का ग्रहण है और  
आकाश भी पञ्चास्तिकाय का ही भेद है, तथा अलोक भी आकाश  
स्वरूप है अतएव 'लोक' पद से ही लोक और अलोक दोनों का  
ग्रहण होने से केवलज्ञान की अनन्ततामें कोई बाधा नहीं आसकती ।

करवावाणा, अने प्राणीज्जेने संसारना इ पोथी छोडावीने सुगतिमा धारण  
करवावाणा, धर्मरूपी तीर्थना स्थापक, राग आदि कर्मशत्रुज्जेने छुटी लधने  
केवलज्ञानयुक्त यधने विराजमान जेवा चौबीस अरिहन्त भगवान्गी स्तुति उइ धु

अर्हि "लोक" शब्दथी पञ्चास्तिकायनुं ग्रहण करेलु छे अने आकाश  
पण पञ्चास्तिकायना ज भेद छे तथा अलोक पण आकाशस्वरूप छे जे कारणे  
"लोक" पदथी ज लोक अने अलोक जन्नेनुं ग्रहण थल शक छे, तेथी केवल ज्ञानगी  
अन ततामा केरि प्रकारे छानि थल शकती नथी

१- 'लोकं दर्शने' अस्मात् 'अकर्त्तरि च कारके सज्ञायाम् (३।३।  
१८) इति कर्त्तृणि घञ् ।

२- कृत्रो हेतुताच्छीलानुलोम्येषु (३।२।२०) इति कर्त्तरि ट् ।

३- 'धृञ् धारणे' अस्मादीणादिको मन्प्रत्यस्तेन 'धर्म' इति सिद्धम् ।

४- 'तीर्थम्'—'नृप्लवनसन्तरणयो' अस्मादीणादिकस्थन् 'कृत इद्धातो  
(७।१।१००) इतीत्वम्, 'हलि च' (८।२।७७) इत्युपधादीर्घम् ।

नयादेः श्वाक्यादिप्रणीतस्याधर्मप्रधानस्य च तीर्थस्य परिहारार्थं धर्मग्रहणम्, धर्मतीर्थं कर्तुं शीलं येषां ते धर्मतीर्थकरास्तान् । जयति=अपनयति रागादिकर्मशून्य-  
निति, जयति=केवलज्ञानादियुक्ततया सर्वोत्कर्षेण राजत इति वा 'जिनः', 'अरिहते'  
इति व्याख्यातोऽर्हच्छब्दार्थः, 'नमोऽरिहताण' इत्यत्र, 'चउवीस' इति स-  
ख्यानंतरव्यवच्छेदाय, अपिशब्दोऽवधारणार्थी महाविदेहक्षेत्रस्थकेवलभग-  
वद्ग्रहणार्थश्च, लोकाशब्देन पञ्चास्तिकायग्रहणादाकाशस्य च पञ्चास्तिकायान्तः-  
पातित्वादलोकस्याप्याकाशस्वरूपतया लोरूपदेनैव लोकालोकयोर्ग्रहणमिति न  
केवलोद्द्योतस्यापरिमितत्वहानिः, लोकोद्द्योतकरत्वमवप्रिविभङ्गज्ञानिषु चन्द्रसूर्या-  
दिव्यपि चास्त्यत उक्त 'धम्मतिथ्यरे' इति, धर्मार्थं निम्नेषु नयादिष्वव-  
तरणाय ये तीर्थं ( घट्ट- 'घाट' इतिभाषाप्रसिद्ध ) कुर्वन्ति तेष्वतिप्रसङ्गवारणाय  
'लोगस्स उज्जोगरे' इति, लोकोद्द्योतकरत्व धर्मतीर्थकरत्व च दर्शनान्तरमत  
कल्पितेष्वपि ज्ञानिषु—

लोक के उद्द्योतकर अवधिजानी, विभङ्गजानी तथा चन्द्रसूर्यादिक भी  
होते हैं, अतएव उनकी निवृत्ति के लिये 'धम्मतिथ्यर' पद दिया  
है। नदी तालाब आदि जलाशयों में उतरने के लिये धर्मार्थं तीर्थ-  
घाट बनानेवाले भी धर्मतीर्थकर कहला सकते हैं, उनका घटा ग्रहण  
न हो इसलिये 'लोगस्स उज्जोगरे' विशेषण दिया है, लोक के  
उद्द्योतकर तथा धर्मतीर्थकर अन्यमत के जानी भी हो सकते हैं,  
जैसा कि अन्य शास्त्रों में कहा गया है—

लोकभा प्रकाश करनार अवधिजानी, विभगजानी तथा चन्द्रसूर्यादिक पणु डोय  
छे अणे भाटे तेनी निवृत्ति कर्वा " धम्मतिथ्यरे " पढ आपेलु छे नही-तलाव आदि  
जलाशयोभा उतरवा भाटे धर्मार्थं तीर्थ-घाट बनानेवावाणा पणु धर्मतीर्थकर  
कडेवाय छे तेने नवीकार अर्हि नहि थवा भाटे "लोगस्स उज्जोगरे" विशेषण  
आणु छे लोकना प्रकाशक तथा धर्मतीर्थकर अन्य मतना जानी पणु डोय  
शुके छे, नेवी रीते अन्य शास्त्रोभा कलु छे डे-

१-'जिन.' 'जि अभिभवे' अस्मात् 'जि जये' अस्माद्वा माहुलका-  
दौणादिको नः प्रत्यय. ।

प्रतिवीक्ष्यते प्रमाणवलेनेति वा लोकः<sup>१</sup> पञ्चास्तिकायविशिष्ट आकाशविशेषः ।  
यदुक्तं भगवत्याम्—

किमियं भते ? लोएत्ति पबुच्चइ ? गोयमा ? पचत्थिकाया एस ण पव-  
त्तिए लोएत्ति पबुच्चइ ' इत्यादि ।

तस्य लोकरस्य (कर्मणि पठ्ठी) उद्द्योतनमुद्द्योतस्तं कर्तुं शीलं चेपां तं  
उद्द्योतकरास्तान् केवलाऽऽलोकेन प्रवचनप्रदीपेन वा निखिललोकप्रकाशकानि-  
त्यर्थः । 'धर्म' इति-दुर्गतिपतितमात्मानं धारयति=शुभस्थाने प्रापयतीति धर्मः<sup>२</sup>  
तीर्थते=पारं नीयतेऽनेनेति तीर्थे=प्रवचनम्, धर्मप्रधान तीर्थे, धर्मतीर्थे, द्रव्यरूपस्य

प्रवचनरूपी दीपक द्वारा उद्द्योत करनेवाले, प्राणियों को  
संसार के दुःखों से छुड़ाकर सुगति में धारण करनेवाले, धर्मरूप  
तीर्थ के स्थापक, रागादि कर्मशत्रुओं को जीतकर केवलज्ञान युक्त होकर  
विराजमान ऐसे चौबीसों श्री अरिहन्त भगवान की स्तुति करता हूँ ।

यहां पर 'लोक' शब्द से पञ्चास्तिकाय का ग्रहण है और  
आकाश भी पञ्चास्तिकाय का ही भेद है, तथा अलोक भी आकाश-  
स्वरूप है अतएव 'लोक' पद से ही लोक और अलोक दोनों का  
ग्रहण होने से केवलज्ञान की अनन्ततामें कोई बाधा नहीं आसकती ।

करवावाणा, अने प्राणीज्जोने संसारना इ ज्योथी छेडावीने सुगतिमा धारण  
करवावाणा, धर्मरूपी तीर्थना स्थापक, राग आदि कर्मशत्रुज्जोने छुटी लडने  
केवलज्ञानयुक्त यधने विराजमान ज्येवा चौबीस अरिहन्त भगवाननी स्तुति करे छु  
अर्हि "लोक" शब्दथी पञ्चास्तिकायनु अडणु करेछु छे अने आकाश  
पणु पञ्चास्तिकायने न लोके छे तथा अलोक पणु आकाशस्वरूप छे ज्ये कारण्णे  
"लोक" पदथी न लोके अने अलोक जन्नेनु अडणु यध शक्ये छे, तेथी केवल ज्ञाननी  
अनन्ततामा केरि प्रकारे छानि यध शकती नथी

१- 'लोकं दर्शने' अस्मात् 'अकर्त्तरि च कारके सज्ञायाम् ( ३ । ३ ।  
१८ ) इति कर्त्तृणि घञ् ।

२- कृत्रो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु ( ३ । २ । २० ) इति कर्त्तरि ट् ।

३- 'धृज् धारणे' अस्मादीणादिकी मन्प्रत्यस्तेन 'धर्म' इति सिद्धम् ।

४- 'तीर्थम्'-'तृप्त्यनसंतरणयो' अस्मादीणादिकस्यन् 'कृत इदातोः

( ७ । १ । १०० ) इतीत्वम्, 'हलि च' ( ८ । २ । ७७ ) इत्युपधादीर्घः ।

जिनमनःपर्ययजिनच्छद्मस्थवीतरागाणा व्यवच्छेदाय । इत्यमुक्तगुणविशिष्टा अर्हन्त एव सम्भवन्ति नेतरे, पुनः 'अरिहते' इत्युक्तिर्विशेष्यत्वाभिप्रायेणेति केचित्त, वस्तुतस्त्विह तीर्थकरगुणोत्कीर्त्तनाध्ययने गुणोत्कीर्त्तनमेव लक्ष्य, तथा च तीर्थङ्कराणा ये ये गुणा येन येन शब्देन लक्ष्यन्ते तेन तेन तेषा गुणाना सकी- र्त्तन क्रियते-इत्यष्टविप्रमहाप्रातिहार्यार्हत्वगुणोत्कीर्त्तनार्थमुक्तम् 'अरिहते' इति एतेनैव 'केवली' इत्यपि व्याख्यात कैवल्यगुणबोधनाय तदुपादानात्, एव च पदान्तरनदर्हत्पदमपि गुणोत्कीर्त्तनायैव नतु विशेष्यत्वाय, विशेष्य तु 'धम्मतित्थयरे' इत्येव प्राप्तवसरत्वात्, तदपि यथोक्तगुणोत्कीर्त्तनपुरस्सरमेव, योगा-( व्युत्पत्त्य )

'श्रुतजिन, अवधिजिन, मन.पर्ययज्ञानजिन, तथा छद्मस्थ वीतरागो की निवृत्ति की गई है । ऊपर कहे हुए सब विशेषणों से युक्त अर्हन्त ही हो सकते हैं फिर 'अरिहते' पद जो कहा है वह विशेष्यवाचक है । अथवा इस अध्ययन में तीर्थकरों का गुण वर्णन किया जाता है, इस अवस्था में जिन २ शब्दों से उनके जो जो गुण प्रकट हो सकते हैं उन २ शब्दों से उनका गुण वर्णन करना आवश्यक है अतएव तीर्थङ्कर अष्टमहाप्रातिहार्य के अर्ह-योग्य भी हैं, इस बातको समझाने के लिये 'अरिहते' पद दिया है, अतः 'अर्हत्' पद भी गुण विशेषण-वाचक ही है, विशेष्य-वाचक 'धम्मतित्थयरे' पद है, किन्तु उससे भी उपरोक्त कथन के अनुसार गुण का बोध होता ही है, क्योंकि प्रकृति प्रत्यय के

अवधिजिन, मन पर्ययज्ञानजिन तथा छद्मस्थ वीतरागोनी निवृत्ति कडेवाभा आवी छे छपर कडेवाभा सर्व विशेषणोथी युक्त अर्हन्त न डोर्ध शके छे इरी "अरिहते" पद न कडेवाभा आव्यु छे ते विशेष्यवाचक छे अथवा आ अध्ययनभा तीर्थ करेना शुष् वरुन करवाभा आवे छे अे अवस्थाभा ने ने शब्दोथी तेमना ने ने शुष् प्रगत थर् शके ते ते शब्दो वडे तेमनु वरुन करवु नइरी छे, अे कारणुथी तीर्थ- कर अष्टमहाप्रातिहार्यने अर्ह-योग्य पणु छे अे वातने सम्भववा भाटे "अरिहते" पद आपेतु छे अर्थात् "अर्हत्" पद पणु शुष्-विशेषण-वाचक न छे विशेष्यवाचक 'धम्मतित्थयरे' पद छे परतु तेनाथी पणु, छपरना कथन अनुसारे शुष्ने बोध थाय न छे कारणु के प्रकृतिप्रत्ययना पलथी थवावाणा

“ ज्ञानिनो धर्मतीर्थम्य, कर्तारः परम पदम् ।

गत्वाऽऽगच्छन्ति भूयोऽपि, भय तीर्थनिकारतः ॥ १ ॥ ” इति,

तदुक्तरीत्या सम्भवति तद्व्यावृत्तये ‘जिणे’ इति, नहि ते जिना=

रागादिशत्रुजेतारस्तदुक्तपुनरागमनादेव, यतो रागादिशत्रुजयमन्तरेण कर्मबीजा  
ऽदाहादुद्भवत्येव भगङ्कुर, तदुक्तमितरत्रापि—

“ अज्ञानपाशुपिहित, पुरातन कर्मबीजमविनाशि ।

तृष्णाजलाभिपिक्त, मुञ्चति जन्माङ्कुर जन्तो ॥ १ ॥ ” इति ।

जिनानित्येव वाच्ये ‘लोगस्स उज्जोयगरे’ इत्याद्युक्तिः श्रुतजिनावधि

‘धर्म तीर्थ के करने वाले ज्ञानी धर्म की हानि होते देख कर  
परम पद पर आरूढ होकर भी पुन समार में लौट आते हैं ॥१॥’

उनका ग्रहण न हो इसलिये ‘जिणे’ विशेषण दिया है,  
क्यों कि रागादि शत्रु को जीते विना कर्मबीज का नाश नहीं होता,  
और कर्मबीज का नाश हुए विना भवरूपी अकुर का नाश नहीं  
होता है, जैसा कि अन्यत्र भी कहा है—

‘अज्ञानरूपी मिट्टी के अन्दर पडा हुआ, प्राणी का पुराना  
कर्मबीज तृष्णारूप जलसे सींचा जाकर जन्मरूप अकुर को पैदा  
करता है ॥ १ ॥’

‘जिणे’ पद कह कर भी ‘लोगस्स उज्जोयगरे’ कहने से

‘धर्मतीर्थना करवावाणा ज्ञानी धर्मनी हानि थती छाय ते नेधने  
परम पद पर आइठ थधने पणु इरी ससारमा पाछा आवे छे ॥ १ ॥’

तेभनु अहणु न थाय ते माटे “जिणे” विशेषणुत्थापेणु छे अरणु के रागादि  
शत्रुणेने एत्या विना कर्मबीजने नाश थतो नथी, अने कर्मबीजना नाश थथा  
विना लवससारइपी अकुरने नाश थतो नथी, लेवी रीते णीज स्थणे पणु  
कडेवाभा आव्यु छे के —

“अज्ञानरूपी माटीनी अहर पडेला प्राणीना पुराणा कर्मबीज तृष्णा  
इप जलथी सिंथन पागीने जन्मइप अकुरने उत्पन्न करे छे ॥ १ ॥

“जिणे” पद कहीने पणु “लोगस्स उज्जोयगरे” कडेवाथी श्रुतजिन,

जिनमनःपर्ययजिनच्छब्दस्थवीतरागाणा व्यवच्छेदाय । इत्थमुक्तगुणविशिष्टा अर्हन्त एव सम्भवन्ति नेतरे, पुनः 'अरिहते' इत्युक्तिर्विशेष्यत्वाभिप्रायेणेति केचित्त, वस्तुतस्त्विह तीर्थकरगुणोत्कीर्त्तना-ययने गुणोत्कीर्त्तनमेव लक्ष्य, तथा च तीर्थङ्कराणा ये ये गुणा येन येन शब्देन लक्ष्यन्ते तेन तेन तेषा गुणाना सकी-र्त्तन क्रियते-इत्यष्टमहाप्रातिहार्यार्हत्वगुणोत्कीर्त्तनार्थमुक्तम् 'अरिहते' इति एतेनैव 'केवली' इत्यपि व्याख्यात कैवल्यगुणबोधनाय तदुपादानात्, एव च पदान्तरनदर्हत्पदमपि गुणोत्कीर्त्तनायैव नतु विशेष्यत्वाय, विशेष्य तु 'धम्मतित्थयरे' इत्येव प्राप्तवसरत्वात्, तदपि यथोक्तगुणोत्कीर्त्तनपुरस्सरमेव, योगा-(व्युत्पत्य)

'श्रुतजिन, अवधिजिन, मन.पर्ययज्ञानजिन, तथा छद्मस्थ वीतरागों की निवृत्ति की गई है । ऊपर कहे हुए सब विशेषणों से युक्त अर्हन्त ही हो सकते हैं फिर 'अरिहते' पद जो कहा है वह विशेष्यवाचक है । अथवा इस अध्ययन में तीर्थकरों का गुण वर्णन किया जाता है, इस अवस्था में जिन २ शब्दों से उनके जो जो गुण प्रकट हो सकते हैं उन २ शब्दों से उनका गुण वर्णन करना आवश्यक है अतएव तीर्थङ्कर अष्टमहाप्रातिहार्य के अर्ह-योग्य भी हैं, इस बातको समझाने के लिये 'अरिहते' पद दिया है, अत 'अर्हत्' पद भी गुण विशेषण-वाचक ही है, विशेष्य-वाचक 'धम्मतित्थयरे' पद है, किन्तु उससे भी उपरोक्त कथन के अनुसार गुण का बोध होता ही है, क्योंकि प्रकृति प्रत्यय के

अवधिजिन, मन पर्ययज्ञानजिन तथा छद्मस्थ वीतरागों की निवृत्ति कहेवासा आधी छे उपर कहेलां सर्व विशेषणोधी युक्त अर्हन्त न होछ शक छे इरी "अरिहते" पद न कहेवासा आओ छे ते विशेष्यवाचक छे अथवा आ अध्ययनमा तीर्थ करेना शुष्प वर्णन करवासा आवे छे ओ अवस्थामा न न शब्दोधी तेमना न न शुष्पो प्रगट थछ शक ते ते शब्दो वडे तेमनु वर्णन करतु नइरी छे, ओ कारणुधी तीर्थ-कर अष्टमहाप्रातिहार्यने अर्ह-योग्य पणु छे ओ वातने सम्भववा भाटे "अरिहते" पद आपेणु छे अर्थात् "अर्हत्" पद पणु शुष्प-विशेषण-वाचक न छे विशेष्यवाचक 'धम्मतित्थयरे' पद छे परतु तेनाधी पणु, उपरना कथन अनुसारे शुष्पेना बोध थाय न छे कारणु डे प्रकृतिप्रत्ययना पलथी थावावाणा

ર્થપરિત્યાગે પ્રમાણાભાવાત્ । અસ્તુ ગાઠ્ઠંત એવ પ્રિશેપ્યત્ત્વ તીર્થકરપર્યાયત્વાત્, ન વ્ય તત્ત્રાઽઽગ્રહિલાઃ, કિન્તુ પર્યાયત્વેઽપ્યર્થતીર્થકરકેવલિનામુપાદાન તત્ત્વચ્છ્વદ- સામર્થ્યગમ્યાર્થપ્રદર્શનાર્થમેવેત્યેવ કેવલ વ્રૂમઃ ।

અત્ર કેચિત્—નન્તુ સમ્ભવવ્યભિચારાભ્યા સ્યાદ્વિશેષણમર્થવત્—યથા નીલો ઘટઃ, કૃષ્ણા ગૌરિત્યાદિપુ, સમ્ભવવ્યભિચારાભાવે વિશેષણમનર્થક—યથા શીતો- ઽનલઃ, શ્યામો ભ્રમર इत्यादिपु, ततश्चात्र केवलिन इति धर्मतीर्थकरविशेषण श्यामो घलसे होनेवाले अर्थका त्याग करना न्यायविरुद्ध है, 'केवली' पदके देनेका भी यही तात्पर्य समझना चाहिये ।

यहां पर शका होती है कि—'विशेषण' सभव अथवा व्यभिचार होने पर दिया जाता है, जैसे—'नीले घड़े को लाओ' यहा पर घड़े का नीला होना सभव भी है, और यदि केवल 'घड़ेको लाओ' ऐसा कहते हैं तो काले पीले आदि घड़ों का व्यभिचार भी है, इसलिए यहा 'नीला' विशेषण देना उचित है । और जहा पर सभव तथा व्यभिचार न हो वहा विशेषण का देना व्यर्थ होता है, जैसे 'ठढी अग्नि' यहा अग्नि में ठढापन सभव नहीं है, ऐसे ही 'काला भौरा' यहा पर भौरे में कालेपन के सिवाय दूसरे वर्ण का व्यभिचार नहीं है,

अर्थनेा त्याग કરવો તે ન્યાયવિરુદ્ધ છે, “કેવલી” પદ આપવાનું કારણ પણ ઉપર પ્રમાણે સમજી લેવું જોઈએ

અહિં એક શકા થવા સભવ છે કે વિશેષણ, સભવ અથવા વ્યભિચાર થતો હોય તે સ્થળે આપવામા આવે છે, જેવી રીતે કે—'નીલા ઘડાને લાવો' અહિં ઘડાનું નીલા હોવા પણ સભવિત છે, અને જો માત્ર 'ઘડાને લાવો' એ પ્રમાણે કહે તો કાળો, પીળો આદિ ઘડાઓનો વ્યભિચાર પણ છે એટલા માટે અહિં 'નીલો' વિશેષણ આપ્યું તે ઉચિત છે અને ન્યા આગળ સભવ તથા વ્યભિચાર થતો નથી ત્યા વિશેષણ આપવું તે વ્યર્થ થાય છે જેવી રીતે કે “શીતલ અગ્નિ” અહિં અગ્નિમા શીતલતાનો સભવ નથી, તેવી જ રીતે “કાલા ભમરા” અહિં ભમરામા કાળાપણા વિના ખીબા રંગનો વ્યભિ ચાર નથી એટલા માટે એવા વિશેષણો આપવા વ્યર્થ છે તે કારણથી

भ्रमर इतिवदितरव्यावर्तकत्वाभावादपार्थम्, धर्मतीर्थकराणा केवलित्वाव्य-  
भिचारादित्याशङ्क्य—‘केवलिन एव यथोक्तस्वरूपा धर्मतीर्थकरा नान्ये’ इति  
नियमादर्थत्वेन स्वरूपज्ञानायेद विशेषणमित्याहुः ।

कीर्त्तयिष्यामि=अनुपद स्तोष्यामि, वस्तुतस्तु आपर्त्वाद्द्र लट्स्थानिको  
लृट्, स्तोमीत्यर्थः । अपिः पूर्वापरसमुच्चया (सङ्ग्रहा)—र्थः । ‘उसभ’ इति ।  
ऋषभादीना सर्वेषा द्वितीयान्ताना वन्दनक्रिययाऽन्वयः, ‘उसभ’ इति ऋषभ-  
वृषभशब्दयोरुभयोरपि भवति, ततश्च गत्यर्थधातूना ज्ञानार्थत्वात्, ऋषपति=जानाति  
लोकालोक्तस्वरूपमिति, ऋषपति=गच्छति परम पदमिति, शरणैपिभिर्भव्यजनै-  
र्ऋष्यते=प्राप्यते इति वा ऋषभः । पक्षे वर्षति=पूरयति भव्यजनमनोरथानिति,

इसलिये ऐसे विशेषणों का देना व्यर्थ है, अतएव धर्मतीर्थकर  
को ‘केवली’ विशेषण देना भौरि के काले विशेषण के समान  
व्यर्थ है, क्यों कि धर्मतीर्थकर केवली ही होते हैं ।

इसका उत्तर यह है कि—‘केवली होने पर ही तीर्थङ्कर  
धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तक होते हैं छद्मस्थ अवस्था में नहीं, इस बात  
को स्पष्ट करने के लिये ‘केवली’ विशेषण दिया गया है ॥ १ ॥

इस प्रकार चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति करने की सामान्य  
रूपसे प्रतिज्ञा करके नामग्रहणपूर्वक विशेषरूप से स्तुति करते हैं,  
जो लोकालोक के स्वरूप को जाननेवाले, परम पदको प्राप्त होने-  
वाले भव्य जनों के आधारभूत तथा उनके मनोरथो को पूरा कर-

धर्मतीर्थकरने केवली विशेषण आपणु ते वामराने काणापणुनु विशेषण आपणा  
प्रमाणे व्यर्थ छे, केभ के धर्मतीर्थकर केवली न् डोय छे

आ शकानो उत्तर ये छे के —“केवली तथा पछी न् तीर्थकर धर्मतीर्थना  
प्रवर्त्तक डोय शके छे, छद्मस्थ-अवस्थाभा थु शकता नथी, ये वातने स्पष्ट करवा  
भाटे ‘केवली’ विशेषण आपणु छे ॥ १ ॥

ये प्रमाणे चौबीस तीर्थ करेनी स्तुति करवानी सामान्यरूपनी प्रतिज्ञा करीने  
नामग्रहणपूर्वक विशेषरूपनी स्तुति करै छे के ने लोकालोकना स्वरूपने ज्ञानवा  
वाणा, परम पदने प्राप्त थवावाणा भव्यजनोंने आधारभूत तथा तेमना  
मनोरथाने पूर्ण करवावाणा, धर्मरूपी गणीयाने प्रवचनरूप न् लनु सँचन



ર્થપરિત્યાગે પ્રમાણાભાવાત્ । અસ્તુ ગ્રાહ્યત્ એવં વિશેષ્યત્ત્વ તીર્થકરપર્યાયત્વાત્, ન વય તત્રાઽઽગ્રહિલાઃ, કિન્તુ પર્યાયત્વેઽપ્યર્હતીર્થકરકેવલિનામુપાદાન તત્ત્વચ્છબ્દ-સામર્થ્યગમ્યાર્થપ્રદર્શનાર્થમેવેત્યેવ કેવલ વ્રૂમઃ ।

અત્ર કેચિત્-નનુ સમ્ભવવ્યભિચારાભ્યા સ્યાદ્વિશેષણમર્થત્-યથા નીલો ઘટઃ, કૃષ્ણા ગૌરિત્યાદિપુ, સમ્ભવવ્યભિચારાભાવે વિશેષણમનર્થક-યથા શીતો ડનલઃ, શ્યામો ભ્રમર ઇત્યાદિપુ, તત્તથાત્ર કેવલિનઽતિ ધર્મતીર્થકરવિશેષણ શ્યામો ઘલસે હોનેવાલે અર્થકા ત્યાગ કરના ન્યાયચિરુદ્ધ હૈ, 'કેવલી' પદકે વેનેકા ખી યહી તાત્પર્ય સમજ્ઞના ચાહિયે ।

યહાં પર શકા હોતી હૈ કિ-'વિશેષણ' સમ્ભવ અથવા વ્યભિચાર હોને પર દિવા જાતા હૈ, જૈસે-'નીલે ઘડે કો લાઓ' યહા પર ઘડે કા નીલા હોના સમ્ભવ ખી હૈ, ઓર યદિ કેવલ 'ઘડેકો લાઓ' ઇસા કહતે હૈં તો કાલે પીલે આદિ ઘડોં કા વ્યભિચાર ખી હૈ, ઇસલિલ યહા 'નીલા' વિશેષણ દેના ડચિત હૈ । ઓર જહા પર સમ્ભવ તથા વ્યભિચાર ન હો વહા વિશેષણ કા દેના વ્યર્થ હોતા હૈ, જૈસે 'ઠઢી અગ્નિ' યહા અગ્નિ મેં ઠઢાપન સમ્ભવ નહી હૈ, ઇસે હી 'કાલા ભૌરા' યહા પર ભૌરે મેં કાલેપન કે સિવાય દૂસરે વર્ણ કા વ્યભિચાર નહી હૈ,

અર્થનો ત્યાગ કરવો તે ન્યાયચિરુદ્ધ છે, 'કેવલી' પદ આપવાનું કારણ પણ ઉપર પ્રમાણે સમજી લેવું જોઈએ

અહિં ઓકે શકા થવા સભવ છે કે વિશેષણ, સભવ અથવા વ્યભિચાર થતો હોય તે સ્થળે આપવામા આવે છે, જેવી રીતે કે—'નીલા ઘડાને લાવો' અહિં ઘડાનું નીલા હોવા પણ સભવિત છે, અને જો માત્ર 'ઘડાને લાવો' એ પ્રમાણે કહે તો કાળો, પીળો આદિ ઘડાઓનો વ્યભિચાર પણ છે એટલા માટે અહિં 'નીલો' વિશેષણ આપ્યું તે ઉચિત છે અને ન્યા આગળ સભવ તથા વ્યભિચાર થતો નથી ત્યા વિશેષણ આપવું તે વ્યર્થ થાય છે જેવી રીતે કે "શીતલ અગ્નિ" અહિં અગ્નિમા શીતલતાનો સભવ નથી, તેવી જ રીતે "કાલા ભમરા" અહિં ભમરામા કાળાપણા વિના પીળા રંગનો વ્યભિચાર નથી એટલા માટે એવા વિશેષણો આપવા વ્યર્થ છે તે કારણથી

भ्रमर इतिवदितरव्यावर्त्तकत्वाभावादपार्थम्, धर्मतीर्थकराणा केवलित्वाव्य-  
भिचारादित्याशङ्क्य-‘केवलिन एव यथोक्तस्वरूपा धर्मतीर्थकरा नान्ये’ इति  
नियमादर्थत्वेन स्वरूपज्ञानायेद विशेषणमित्याहुः ।

कीर्त्तयिष्यामि=अनुपद स्तोष्यामि, वस्तुतस्तु आर्षत्वाद्वात्र लक्ष्थानिको  
लृट्, स्तौमीत्यर्थ । अपिः पूर्वापरसमुच्चया (सङ्ग्रहा)-र्थः । ‘उसभ’ इति ।  
ऋषभादीना सर्वेषा द्वितीयान्ताना वन्दनक्रिययाऽन्वयः, ‘उसभ’ इति ऋषभ-  
वृषभशब्दयोरुभयोरपि भवति, ततश्च गत्यर्थधातूना ज्ञानार्थत्वात्, ऋषति=जानाति  
लोकालोक्तस्वरूपमिति, ऋषति=गच्छति परम पदमिति, शरणैपिभिर्भव्यजनै-  
र्ऋष्यते=प्राप्यते इति वा ऋषभ । पक्षे वर्षति=पूरयति भव्यजनमनोरथानिति,

इसलिये ऐसे विशेषणों का देना व्यर्थ है, अतएव धर्मतीर्थकर  
को ‘केवली’ विशेषण देना भोरे के काले विशेषण के समान  
व्यर्थ है, क्यों कि धर्मतीर्थकर केवली ही होते हैं’ ।

इसका उत्तर यह है कि-‘केवली होने पर ही तीर्थङ्कर  
धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तक होते हैं छद्मस्य अवस्था मे नहीं, इस बात  
को स्पष्ट करने के लिये ‘केवली’ विशेषण दिया गया है ॥ १ ॥

इस प्रकार चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति करने की सामान्य  
रूपसे प्रतिज्ञा करके नामग्रहणपूर्वक विशेषरूप से स्तुति करते हैं,  
जो लोकालोक के स्वरूप को जाननेवाले, परम पदको प्राप्त होने-  
वाले भव्य जनों के आधारभूत तथा उनके मनोरथो को पूरा कर-  
धर्मतीर्थकरने केवली विशेषण आपवु ते लभराने काणापणानु विशेषण आपवा  
प्रमाणे व्यर्थ ठे, केम के धर्मतीर्थकर केवली न होय ठे

आ शकानो उत्तर अे छे ठे —“केवली तथा पछी न तीर्थकर धर्मतीर्थना  
प्रवर्त्तक होय शके छे, छद्मस्य-अवस्थाभा थय शकता नशी, अे वातने स्पष्ट करवा  
भाटे ‘केवली’ विशेषण आपेवु ठे ॥ १ ॥

अे प्रमाणे चौबीस तीर्थ करेगी स्तुति करवानी सामान्यरूपनी प्रतिज्ञा करीने  
नामग्रहणपूर्वक विशेषरूपथी स्तुति करे छे के ने लोकालोकना स्वरूपने ज्ञानवा  
वाणा, परम पदने प्राप्त थवावाणा भव्यजवोने आधारभूत तथा तेभना  
मनोरथोने पूर्ण करवावाणा, धर्मरूपी गणीवाने प्रवचनरूप नलनु सीचिन

लस्य प्रभा पद्मप्रभा, पद्मप्रभेय प्रभा तत्तुल्यकोमलाद्गत्वात् यस्य स<sup>१</sup>, यद्वा पद्मेपु=कमलेपु प्रभा यस्यासौ पद्मप्रभः=मूर्यस्तद्वद्विमलकेतव्यज्योतिषा भासमानत्वेन गौणलक्षणात्त्वेन रूपकल्पनया, अथवा गर्भस्थस्यास्य मातुः पद्मशय्या-दोहदः सञ्जातो यो देवेन पुरितस्तदुत्तरमसौ भाभवदिति पद्मप्रभस्तम्, एवमन्य-व्याख्याने पद्मोत्तर=पद्मशय्यादोहदोत्तर प्रभवतीति<sup>२</sup> व्युत्पत्तिः (६)। 'सुपास' सु=शोभनौ पार्श्वौ यस्य सः, यद्वा गर्भस्थस्यास्य माता सुपार्श्व=शोभनपार्श्ववती जाता तद्योगात् सुपार्श्वस्तम् (७)। 'जिण' जिनम्। व्याख्यातो जिनपदार्थः।

सुमति के कारण जिनका 'सुमति' नाम रखा गया उन श्री सुमतिनाथ भगवान को । ५ ।

पद्म-कमल के समान प्रभा-कान्ति-वाले, अथवा पद्मों-कमलों में प्रभा-किरण है जिसकी वह हुवा पद्मप्रभ अर्थात् सूर्य, उसके समान कान्तिवाले, या जब भगवान गर्भ में थे तो इनकी माता को पद्मशय्या का दोहद (दोहला) हुआ, जिसको देवताने पूरा किया इस कारण पद्मप्रभ नामवाले भगवान को । ६ ।

देखने में सुडौल है पार्श्व (पसवाड़े) जिनके, अथवा जब ये गर्भ में थे तो इनकी माता गर्भ के प्रभावसे सुन्दर पार्श्व (पसवाड़े) वाली हुई, इसलिये गुणनिष्पन्न नामवाले श्री सुपार्श्वनाथ को ॥ ७ ॥

सुमतिना कारणे जेनु 'सुमति' नाम राधवाभा आण्यु जेवा श्री सुमतिनाथ भगवानने ॥ ५ ॥

पद्म-कमल समान प्रभा-कान्तिवाला, अथवा पद्मों-कमलोंमा प्रभा-किरण छे जेनी ते थये पद्मप्रभ अर्थात्-सूर्य, तेना समान कान्तिवाला, अथवा न्यारे, भगवान गर्भमा हुता त्यारे तेनी भानाने पद्मशय्याने होहले थयेके जे देवताजे पूर्ये कथे ते कारणथी "पद्मप्रभ" नामवाला भगवानने ॥ ६ ॥

जेवाभा पार्श्व (पडभाने बाग) सुडोण- सरणे छे जेने अथवा न्यारे ते गर्भमा हुता त्यारे गर्भना प्रभावथी जेनी माता सुन्दर पार्श्ववाला थया जेटला भाटे शुष्-निष्पन्न नामवाला श्री सुपार्श्वनाथ ने ॥ ७ ॥

१-पद्मप्रभ — 'सप्तम्युपमानपूर्वपदस्य बहुव्रीहिरुत्तरपदलोपश्च वक्तव्यः' इति वचनात्समास उत्तरपदलोपश्च खरमुखोष्ट्रपुत्रादिवत् ।

२-पद्मप्रभः—'शाकपार्थिवादित्वात् 'उत्तर' शब्दस्य लोपे षृपोदरादित्वात्सिद्धिः' ॥

‘चदप्पह’ चन्दते=आहादते इति चन्द्रस्तस्य प्रभा चन्द्रप्रभा,=चन्द्र-  
प्रमेव प्रभा विशुद्धलेश्यत्वाद् यस्यासौ, यद्वा गर्भावस्थायामस्य जनन्याश्चन्द्र-  
प्रभापानदोहदोऽभवत्तत्सम्बन्धाच्चन्द्रप्रभस्तम् ‘चदामि’ वन्दे (८)। ‘सुविधिं’ सुविधिं=  
सु=शोभनो विधिरसुष्ठान यस्य स’, यद्वा यद्दर्शनस्मरणादिना लोकाः सुविधयः=  
सुभाग्या भवन्ति स’, अथवा गर्भस्थस्यास्य जननी सर्वेषु अभयदान-सुपात्रदान-  
त्रियमाणप्राणिपरिमोचनादिविधिषु सातिशया शोभना=कुशला जाताऽतस्तथोगात्सु-  
विधिस्त, ‘पुष्पदत्त’ सुविधेरेवेदमपर नाम विशिष्य परिचयार्थमुपनिबद्धम्,  
स्वच्छत्वान्मनोहरत्वाच्च पुष्पाणीव, यद्वा नामैरुद्देशेन नामग्रहणात् पुष्पपदेन तत्कुञ्ज-  
लाग्रस्य ग्रहणात् पुष्पकुञ्जलाग्राणीव दन्ता यस्यासौ पुष्पदन्तस्तम् (९)। ‘सीयल-

तथा चन्द्रमा के समान कान्तिवाले, या जब ये गर्भ में थे तो इनकी माता को चन्द्रप्रभापान का दोहद हुआ, इस कारण गुणनिष्पन्न नाम वाले श्रीचन्द्रप्रभ भगवान को ॥ ८ ॥

अच्छे अनुष्ठान वाले, या जिनके दर्शन स्मरण आदि से प्राणी पूर्ण भाग्यवान होते हैं ऐसे, अथवा जब ये गर्भ में थे तो इनकी माता अभयदान, सुपात्रदान, मरते हुए प्राणियों को बचाना-  
आदि धर्म की सभी विधियों में विशेषतया निपुणा हुई, इस कारण सुविधिनाथ और पुष्प के समान स्वच्छ दाँतों की छटावाले होने से पुष्पदन्त भी नाम है जिनका ऐसे भगवान को ॥ ९ ॥

तथा चन्द्रसमान कान्तिवाणा अथवा न्यारे तेजो गर्भमा हुता त्पारे तेभनी माताने चद्रपान करवानुं होइलौ थयेलु ते कान्तिथी शुष्प-निष्पन्न नाम वाणा श्री चद्रप्रभ भगवानने ॥ ८ ॥

सारा अनुष्ठानवाणा, अथवा जेना दर्शन स्मरण आदिथी प्राणी पूर्ण भाग्यवान थाय छे जेवा, अथवा न्यारे तेजो गर्भमा हुता त्पारे तेभनी माता सर्वविधिजो-कर्तव्योमा विशेष निपुष्प थया आ कान्तिथी “सुविधिनाथ” अथवा पुष्पसमान स्वच्छ दातनी पकितवाणा होवाथी “पुष्पदन्त”-नाम पष्प छे जेतु जेवा भगवानने ॥ ९ ॥

सिज्जस-वासुपुज्ज' च' शीतलश्च श्रेयासश्च वासुपूज्यश्चेत्येतेपामितरेतरयोगद्वन्द्वे  
 शीतल-श्रेयास-वासुपूज्यास्तान् । तेषाधिव्याधिविजसन्तापकलापनितान्तकान्त  
 स्वान्तजन्तुजातकृते चन्द्रचन्दनादितोऽप्यपूर्वशीतलत्वात्, यद्वा शीतलशब्दस्य गुण  
 वाचकत्वात् शीतल=शैत्य कपायप्रशमनस्वरूप लाति=भादत्त इति, अथवाऽस्य भग  
 वतः पितुरेकदाऽतितीव्रः पित्तज्वरदाहः सञ्जातः स त्रिप्रिधैरुपचारै कृतैरपि  
 न शान्तिं प्राप्नोति, -गर्भगते त्वस्मिन् भगवति देव्याः करकमलस्पर्शमात्रेणैवोप-  
 शान्त इति मातृद्वारा पितृज्वरदाहप्रशमनहेतुत्वात् शीतलस्तम् (१०) । सिज्जस=  
 श्रेयासम्=सरलभुवनहिताधायकत्वादतिशयेन प्रशस्य,=श्रेयान्, यद्वा श्रेयासा-  
 वसौ=स्फुण्डीयस्य सः, अथवैतत्पितृ राज्ञः पितृपरम्परामाप्ताया कस्याश्चिच्छ्रव्याया

-आधि-व्याधि से होने वाले समस्त सन्तापों को मिटाकर  
 प्राणियों को चन्द्रमा चन्दन आदि से भी अधिक शीतल शान्ति  
 को, या कपाय के उपशमरूप शीतलता को देने वाले, अथवा जब  
 ये गर्भ में थे तो इनकी माता के कर-कमल का स्पर्श होते ही पिता  
 का असाध्य दाहज्वर इनके प्रभाव से उपशान्त हुआ इस कारण  
 'शीतलनाथ' नाम वाले भगवान को ॥ १० ॥

तीन लोक के हित करने वाले, अथवा इनके पिताके यहाँ  
 पितृपरम्परासे प्राप्त एक शय्या देवाधिष्ठित थी, जिससे उस पर

आधि-व्याधिथी थवावाणा तमाभ सुतापोने निवारणु करीने प्राणीओने  
 चन्द्रमा चै हन विगेरेथी अधिक् शीतल शान्तिने अथवा तो कपायनी उपशमता इप  
 शीतलता आपवावाणा अथवा न्यारे तेओथी गर्भमा हुता त्यारे तेओना प्रभा  
 वथी तेभनी माताना कर कमलने स्पर्श थतान् तेओना पिताने असाध्य दाह  
 ज्वर उपशात थये अे कारणुथी " शीतलनाथ " नामवाणा भगवानने ॥ १० ॥

त्रयु लोकनु हित करनारा, अथवा तेभना पिताने त्या पितृपरपराथी प्राप्त  
 ओक शय्या देवाधिष्ठित हुती, जेथी ते शय्या उपर भेसवावाणाने उपसर्ग थते हुते,

१- 'सीयल वासुपुज्ज च' अत्र सूत्रे आर्पत्वादेकवचनम्, यद्वा  
 समाहाराभिप्रायेण ।

२- प्रशस्यशब्दादतिशयेऽर्थे 'द्विवचनविभज्योपपदे तस्वीयसुनौ' (५ ।  
 ३ । ५७) इतीयसुनि 'प्रशस्यस्य श्रः' (५ । ३ । ६०) इति प्रशस्यशब्दस्य  
 श्रादेशः, श्रेयासेत्यदन्तत्व तु पृषोदरादित्वात् ।

देवाधिष्ठितत्वेन यः कश्चन पुरोपविशति तमुपसर्गो वायते स्म, गर्भस्थे त्वस्मिन् भगवति मातुस्तच्छ्रयोपवेशदोहदे जाते तदुपर्युपवेशमात्रेणैव देवोपद्रवो विनष्ट इतीदृशश्रेयोमूलत्वाच्छ्रेयासन्तम् (११) । 'वासुपुज्ज' वसवः=मुनयः-सायवस्त एव वासवस्तेषां पूज्यो वासुपूज्यः, यद्वा वसुनि=रत्नानि तानि चात्र सम्यग्ज्ञानदर्शनचारित्र्याणि, तान्येव वासुनि, तत्प्रकाशकत्वात्पूज्यो वासुपूज्यः, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन् भगवत्यस्य जननी वासवेन=देवेन्द्रेण भृश वन्दन-नमस्काराभ्यां पूजिताऽभूत्तेन वासुपूज्यस्तम् (१२) । 'विमल' विगत=सर्वथा नष्ट मल=कर्ममलं यस्य, यद्वा विशेषेण मलते=गारयति दुर्गतिगर्ते पिपतिपून् भव्यान् यः

वैठनेवाले को उपसर्ग होता था, किन्तु भगवान गर्भ में थे तब उस शय्या पर उनकी माता के बैठते ही देवकृत्न उपसर्ग नष्ट हो गया, इस प्रकार श्रेय (कुशल) करने वाले श्री श्रेयासनाथ को ॥११॥

मुनियों के पूज्य, या रत्नत्रयरूप वसु-सम्पत्ति के प्रकाशक अथवा जब ये गर्भ में थे तब इनकी माता इन्द्र के द्वारा चारवार सम्मानित हुई, ऐसे यथार्थ नामवाले श्री वासुपूज्य भगवान को ॥ १२ ॥

जिनका कर्ममल सर्वथा नष्ट हो चुका है, या जो दुर्गति में गिरते हुए प्राणियों को धारण करनेवाले, निर्मल स्वरूप वाले,

परन्तु भगवान गर्भमा डला त्पारे ते शय्या पर तेमनी माता पोते ठेका डे तुरतश्च देवदुत उपसर्ग नाश थल गये, अथ प्रभाषे श्रेय ( कुशल ) करवावाणा " श्री श्रेयासनाथ "ने ॥ ११ ॥

मुनियोना पूज्य, अथवा रत्नत्रय रूप वसु-सम्पत्तिना प्रकाशक, अथवा ल्यारे तेयोः गर्भमा डला त्पारे तेमनी माता इन्द्र वडे चारवार सम्मान पायी अथवा यथार्थ नामवाणा " श्री वासुपूज्य " भगवानने ॥ १२ ॥

येनो कर्ममल सर्वथा नष्ट थल गये, अथवा ये दुर्गतिमा पडता प्राणीओने धारण करवावाणा, निर्मल स्वरूपवाणा, अथवा गर्भमा आववा

१- 'श्रेयासः' सिद्धिरुक्तैव निरुक्तवृत्त्या वा योऽप्या ।

२- 'वसुः=साधुः' इति शब्दरत्नावलीति शब्दस्वरूपद्रुम ।

३- 'वासुपूज्य.'-अस्मिन् व्युत्पत्तित्रयेऽपि वासुशब्दसिद्धि पृषोदरादित्वात् ॥

स विमलः, अथवा विमलस्वरूपतया द्विमलः, अपि वा गर्भस्थस्यास्य जनन्यास्त  
 चूर्मतिश्च विमला सञ्जाता तद्योगाद्विमलस्तम् (१३) । 'अणत' मोक्षाधिकर  
 णरुनिरवधिस्थितिरूलात् अत्रिप्रमानोऽन्तो=नाशो यस्यासावनन्तः, यद्वा  
 अनन्तानि ज्ञानदर्शनादीनि तद्देतुत्वादनन्तः, कारणे कार्योपचारात्, अपि वाऽनन्त  
 स्वरूपत्वादनन्तः । अथवा गर्भस्थस्यास्य भगवतो माता स्वप्नेऽनन्ताकारा माला-  
 मद्राक्षीत्तेनानन्तस्तम् (१४) । 'जिण' जिनम्, प्राग्व्यारयातो जिनशब्दार्थः ।  
 'धम्म' दुर्गतौ प्रपततो जन्तून् धारयतीति धम्मः, यद्वा कारणे कार्योपचारा-  
 च्छ्रुतचारित्रादिरूपस्य धर्मस्य प्ररूपकतया धर्मस्वरूपत्वाद्वा, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन्  
 भगवति जनन्या दानादिरूपे धर्मे दृढा मतिरुदिता तद्योगाद्धर्मस्तम् (१५) ।

अथवा गर्भ मे आने पर जिनकी माता की बुद्धि निर्मल हो गई,  
 ऐसे यथानाम तथागुण वाले 'श्री विमलनाथ' को ॥१३॥

अविनाशी पद (मोक्ष) को प्राप्त करनेवाले, अनन्त ज्ञान  
 अनन्त दर्शन आदि आत्मिक गुणों के दाता, अथवा गर्भमें आने  
 पर जिनकी माताने स्वप्नमें अनन्त आकारवाली रत्नमाला को देखा  
 अतएव यथार्थ नामवाले श्री अनन्तनाथ को ॥१४॥

दुर्गति में पड़ते हुए जीवों के उद्धारक, श्रुत-चारित्र्यरूप  
 धर्म के उपदेशक, अथवा गर्भ मे आने पर जिनकी माता की बुद्धि दानादि  
 धर्म में दृढ हुई, ऐसे सार्थक नाम वाले श्री धर्मनाथ को ॥१५॥

साथैव जेनी मातानी शुद्धि निर्मल थथ गर्भ ज्येवा यथानाम तथाशुभवाणा  
 " श्री विमलनाथ "ने ॥ १३ ॥

अविनाशी पद ( मोक्ष )ने प्राप्त करवावाणा, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन  
 आदि आत्मिक शुभेना दाता, अथवा गर्भमा आवता जेनी माताजे स्वप्नमा अनन्त  
 आक रवाणी रत्नमाणा हेथी ज्येठला माटे यथार्थ नामवाणा  
 " श्री अनन्तनाथ "ने ॥ १४ ॥

दुर्गतिमा पडता श्रुतेशुभेना उद्धारक, श्रुत चारित्र्य धर्मना उपदेशक,  
 अथवा गर्भमा आववाथी जेनी मातानी शुद्धि दानादि धर्मने विषे दृढ थथ, ज्येवा  
 सार्थक नामवाणा ' श्री धर्मनाथ "ने ॥ १५ ॥

‘सति’ शमयति=व्यपनयति कृपायमिति ‘शान्तिः, यद्वा कर्मसन्ततिसन्ताप-  
मालाऽऽकुलाना जनाना शान्तिरुणशीलत्वाच्छान्तिः, शान्तिस्वरूपत्वाद्वा शान्तिः,  
निराबाधशुक्तिरूपशान्तिहेतुत्वाद्वा, स्मरणेन भव्यजनाधिव्याप्तिशान्तिहेतुत्वाद्वा,  
अथवा ब्रह्मोः कालाज्जनपदे वर्तमानस्य दुर्भिक्षरोगोपद्रवादेरस्मिन् भगवति गर्भा-  
गते सति शान्तिर्जाता तद्योगाच्छान्तिस्तम्, नामैरुदेशेन नामग्रहणात्-‘शान्ति-  
नाथ’-मित्यर्थ. (१६) । ‘वदामि’ वन्दे=स्तौमि । ‘कुपु’ कुन्यति=हिनस्ति  
कर्मशत्रुमिति, कुभ्नाति=मोक्षप्रियमालिङ्गतीति वा ‘कुन्यु’, यद्वा कु=पृथिवीम्  
उपलक्षणादवादि क्व च स्तभ्नाति शरयति=रक्षतीति कुन्युः=पटकायरत्नमुनिगणः,  
त मदोरकमुखवस्त्रिका शरिण भव्यजीवोपकारक मोक्षमार्गप्रचारक महत्यामनेक-

कृपायो के नाश करनेवाले, कर्मरूपी सन्ताप से सतप्त प्राणियों को शान्ति प्रदान करने वाले, शान्तस्वरूपी, जिनके स्मरण मात्रसे आधिव्याधि मिट जाती है ऐसे, अथवा गर्भ में आने पर दुर्भिक्ष तथा महामारी (मरकी) आदि की उपशान्ति हो गई, ऐसे अन्वर्थ नामवाले श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र को मैं वन्दना करता हूँ ॥१६॥

कर्म-शत्रुओं का नाश कर मोक्ष को प्राप्त करनेवाले, अथवा गर्भ में आने पर जिनकी माताने स्वप्न में कुन्यु अर्थात् सदोरक-मुखवस्त्रिकाधारी, भव्य जीवों के उपकारी, मोक्षमार्ग के प्रचारक

कृपायोनो नाश करवावाणा, कर्मरूपी सतापथी तपी रहैला प्राणीज्येने शांति आपवावाणा, शान्तस्वरूपी जेना स्मरण्य मात्रथी आधि-व्याधि मटी जाय छे ज्येवा, अथवा गर्भमा आवता व दुष्काल तथा मरडी आदि रोग-उपद्रवानी उपशान्ति थछ गछ ज्येवा यवार्थ नामवाणा “श्री शान्तिनाथ” जिनेन्द्रने हु पढन कइ छु ॥ १६ ॥

कर्मशत्रुज्येने नाश करीने मोक्षने पाववावाणा, अथवा गर्भमा आवता व जेभनी माताज्ये स्वप्नमा कुन्यु अत्रले होनासहित मुष्यवस्त्रिका गाधनार, मोक्ष मार्गना प्रचारक, अनेक देव मनुष्यनी विशाण परिपढमा विचित्र धर्मोपदेश देनार

१-‘शान्तिः अत्र बाहुलकात्कर्त्तरि क्तिन् ।

२-‘कुन्यु.’ भौवादिकादिसार्थकात् कुधि धातो. पक्षे क्रैयादिकात्स-  
श्लेषणार्थकात् कुन्यधातोरौणादिक उपत्यय. ।



स विमलः, अथवा विमलस्वरूपत्वाद्धिमलः, अपि वा गर्भस्थस्यास्य जनन्यास्त  
जुर्मतिश्च विमला सञ्जाता तद्व्योगाद्धिमलस्तम् (१३) । 'अणत' मोक्षाधिकर  
णरुनिरधिस्थितिरुत्वात् अविग्रमानोऽन्तो=नाशो यस्यासावनन्तः, यद्वा  
अनन्तानि ज्ञानदर्शनादीनि तद्धेतुत्वादनन्त', कारणे कार्योपचारात्, अपि वाऽनन्त  
स्वरूपत्वादनन्तः । अथवा गर्भस्थस्यास्य भगवतो माता स्वप्नेऽनन्ताकारा माला  
मद्राक्षीचेनानन्तस्तम् (१४) । 'जिण' जिनम्, प्राग्ब्याख्यातो जिनशब्दार्थः ।  
'धम्म' दुर्गतौ प्रपततो जन्तून् धारयतीति धम्मः, यद्वा कारणे कार्योपचारा  
च्छ्रुतचारित्रादिरूपस्य धर्मस्य प्ररूपकतया धर्मस्वरूपत्वाद्वा, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन्  
भगवति जनन्या दानादिरूपे धर्मे दृढा मतिरुदिता तद्व्योगाद्धर्मस्तम् (१५) ।

अथवा गर्भ मे आने पर जिनकी माता की बुद्धि निर्मल हो गई,  
ऐसे यथानाम तथागुण वाले 'श्री विमलनाथ' को ॥१३॥

अविनाशी पद (मोक्ष) को प्राप्त करनेवाले, अनन्त ज्ञान  
अनन्त दर्शन आदि आत्मिक गुणों के दाता, अथवा गर्भमें आने  
पर जिनकी माताने स्वप्नमें अनन्त आकारवाली रत्नमाला को देखा  
अतएव यथार्थ नामवाले श्री अनन्तनाथ को ॥१४॥

दुर्गति में पडते हुए जीवों के उद्धारक, श्रुत-चारित्ररूप  
धर्मके उपदेशक, अथवा गर्भ मे आने पर जिनकी माता की बुद्धि दानादि  
धर्म में दृढ हुई, ऐसे सार्थक नाम वाले श्री धर्मनाथ को ॥१५॥

साथेन जेनी मातानी बुद्धि निर्मल थई गर्भ जेवा यथानाम तथागुणवाणा  
" श्री विमलनाथ "ने ॥ १३ ॥

अविनाशी पद (मोक्ष)ने प्राप्त करवावाणा, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन  
आदि आत्मिक गुणोना दाता, अथवा गर्भमा आवता न जेनी माताजे स्वप्नमा अनन्त  
आक रवाणी रत्नमाणा देणी जेटला भाटे यथार्थ नामवाणा  
" श्री अनन्तनाथ "ने ॥ १४ ॥

दुर्गतिमा पडता एवोना उद्धारक, श्रुत चारित्ररूप धर्मना उपदेशक,  
अथवा गर्भमा आववाथी जेनी मातानी बुद्धि दानादि धर्मने विषे दृढ थई, जेवा  
सार्थक नामवाणा ' श्री धर्मनाथ "ने ॥ १५ ॥

थासौ सुव्रतश्च मुनिसुव्रतः, यद्वाऽस्य शासनकाले मुनयो निरतिचारेण शोभनव्रत-  
शालिनो जाता इति कालिकादिसम्बन्धेन, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन् भगवत्येतज्जननी  
मुनिव्रतसुव्रता जाता तत्रोगान्मुनिसुव्रतस्तम् (२०)। 'नमिजिण' नमयति=  
तिरस्करोति कर्मशत्रूनि नमिः, यद्वा गर्भमाप्तेऽस्मिन् भगवति, एतत्प्रभावेः  
सर्वे परनरपतयो नमितास्तद्योगान्ममिः, स चासौ जिनश्च नमिजिनस्तम् (२१)।  
'वदामि' वन्दे 'रिद्धनेमि' अरिष्टम्=अशुभमुपद्रव वा नमयति=अधःकरोतीति,  
जातमात्रः सन्नरिष्ट=भृतीगृह तात्स्थयात्भृतीगृहस्थितजनान् अनमयत्=नतशिर-

मे निरतिचार चारित्र्य पालनेवाले बहुत मुनि हुए, अथवा जब ये  
गर्भ में आये तब उनकी माता मुनिके समान सुव्रता हुई इस  
कारण 'मुनिसुव्रतनाथ' नाम वाले भगवान को ॥२०॥

कर्म शत्रुओ को जीतने वाले, या जब ये गर्भमें थे तो  
अन्य सभी विमुख राजगण नम्र हो गये (झुक गये) अत एव  
यथार्थ नाम वाले श्री नमिजिन को मैं वन्दना करता हूँ ॥२१॥

अशुभ तथा उपद्रवों को दूर करनेवाले, अथवा जिनके  
जन्म लेते ही उस समय अरिष्ट-प्रसूतिगृह (सौर-सुवावड का घर)  
में स्थित समस्त मनुष्यों के सिर झुक गये, या जो सारे ससार

चारित्र्य पालन करनेवाले धर्मात्मा मुनि तथा, अथवा न्यारे ते गर्भमा आया त्यारे  
तेमनी माता मुनिना समान सुव्रता थर्ध ओ कारणुथी "मुनिसुव्रतनाथ" नाम  
वाणा भगवानने ॥ २० ॥

कर्म शत्रुओने छतवावाणा, अथवा न्यारे गर्भमा हुता त्यारे सर्वा अशुभ  
राजगणो नम्र थर्ध गया (झुकी गया) ओ कारणुथी यथार्थ नामवाणा  
"श्री नमिनाथ" भगवानने वन्दना करे छु ॥ २१ ॥

अशुभ अथवा उपद्रवोंने दूर करवावाणा, अथवा जेने जन्म थता न  
ओटले जन्म समये अरिष्ट प्रसूति गृह (सुवावडनु घर)मा रहेला तमाम माणु  
सोना शिर-मस्तक नमी पड्या (झुकी गया) अथवा जेओ सकल ससारनु अरिष्ट

१- 'अरिष्ट सूतिकागृह'-मित्यमरः, 'अरिष्ट सूत्यागारेऽन्तचिह्ने तत्रे  
शुभेऽशुभे' इति द्रैम ।

देवमनुष्यपरिपदि विचित्र धर्ममुपादिशन्तमेतस्मिन् गर्भस्थेऽस्य जननी स्वप्ने दृष्टवती तद्योगात् कुन्धुस्तम् (१७) । 'अर' अर्यते=प्राप्यते मोक्षो यस्मात्सोऽरः, यद्वाऽस्मिन् भगवति गर्भसमागतेऽस्य जननी स्वप्ने रत्नमयमर (चक्राङ्ग) दृष्टवती तद्योगादरस्तम् (१८) । 'मल्लि' मल्लते=धारयति दुःखरूपे पततः प्राणिन इति मल्लिः, यद्वा गर्भावस्थेऽस्मिन् भगवत्येतज्जनन्याः सञ्जातो मल्लीकुसुमदामशय्यादोहदो देवेन पूरितस्तद्योगान्मल्लिस्तम्, नामैकदेशेन नाम्नो ग्रहणान्मल्लिस्त्रामिनमित्यर्थः, 'वदे' वन्दे (१९) । 'मुणिमुन्वय' मन्यते मनुते वा परलोकाग्रास्तिरुतामिति मुनिः, सु=शोभनानि तानि यस्यासौ सुव्रतः, मुनि-

तथा अनेक देव मनुष्यो की विशाल परिपद में विचित्र धर्मोपदेश करते हुए पट्कायरक्षक मुनिवृन्द को देखा, ऐसे उन सगुण नामवाले श्री कुन्धुनाथ भगवान को ॥१७॥

मोक्ष प्राप्त कराने वाले, अथवा गर्भ में आने पर जिनकी माताने स्वप्नमें रत्नमय पहिये के आरे देखे, उन गुणयुक्त नामवाले श्री अरनाथ भगवान को ॥ १८ ॥

दुःखरूप कूँ मे गिरते हुए प्राणियों की रक्षा करने वाले, अथवा गर्भ मे आने पर जिनकी माता के मल्ली-मालती फूलमाला की शय्या के दोहद (दोहले) को देवताने पूरा किया, ऐसे गुणसम्पन्न नामवाले श्री मल्लीनाथ भगवान को ॥१९॥

श्रेष्ठ चारित्र्य को पालने वाले, अथवा जिनके शासन काल में वा छ कायना रक्षक मुनिवृन्दने जेथु, जेवा सगुण नामवाणा " श्री कुन्धुनाथ " भगवानने ॥ १७ ॥

मोक्ष प्राप्त करवावावाणा अथवा गर्भमा आवता न् जेनी माताजे स्वप्नमा रत्नमय पहिये आरे जेथे जेवा शुभयुक्त नामवाणा 'श्री अरनाथ' भगवानने ॥ १८ ॥

हु अरुप कुवाभा पडता प्राणीजोनी रक्षा करवावावाणा, अथवा गर्भमा आवता न् जेनी माताने मल्ली-मालती कुलमाणांनी शय्याना दोहद (दोहला) ने देवताजे पूरुं कथीं जेवा शुभस पन्न नामवाणा " श्री मल्लीनाथ " भगवानने ॥१९॥

श्रेष्ठ चारित्र्यनु पालन करवावावाणा, अथवा जेना शासन कालमा निरतिवार

श्रासौ सुव्रतश्च मुनिसुव्रतः, यद्वाऽस्य शासनकाले मुनेयो निरतिचारेण शोभनव्रत-  
शालिनो जाता इति कालिकादिसम्बन्धेन, अथवा गर्भस्थेऽस्मिन् भगवत्येतज्जननी  
मुनिव्रतसुव्रता जाता तद्योगान्मुनिसुव्रतस्तम् (२०)। 'नमिजिण' नमयति=  
तिरस्करोति कर्मशत्रूनिति नमिः, यद्वा गर्भप्राप्तेऽस्मिन् भगवति, एतत्पभावैः  
सर्वे परनरपतयो नमितास्तद्योगान्मिः, स चासौ जिनश्च नमिजिनस्तम् (२१)।  
'वदामि' वन्दे 'रिद्धनेमि' अरिष्टम्=अशुभमुपद्रव वा नमयति=अधःकरोतीति,  
जातमात्रः सन्नरिष्ट=भृतीगृह तात्स्थ्यात्क्षतीगृहस्थितजनान् अनमयत्=नतशिर-

मे 'निरतिचार चारित्र पालनेवाले बहुत मुनि हुए, अथवा जब ये  
गर्भ में आये तब उनकी माता मुनिके समान सुव्रता हुई इस  
कारण 'मुनिसुव्रतनाथ' नाम वाले भगवान को ॥२०॥

कर्म शत्रुओं को जीतने वाले, या जब ये गर्भमें थे तो  
अन्य सभी विमुख राजगण नम्र हो गये (झुक गये) अत एव  
यथार्थ नाम वाले श्री नमिजिन को मैं वन्दना करता हूँ ॥२१॥

अशुभ तथा उपद्रवों को दूर करनेवाले, अथवा जिनके  
जन्म लेते ही उस समय अरिष्ट-प्रसूतिगृह (सौर-सुवावड का घर)  
में स्थित समस्त मनुष्यों के सिर झुक गये, या जो सारे ससार

आरित्र पालन करनेवाले धृष्टा मुनि थे, अथवा ज्यारे ते गर्भमा आया त्यारे  
तेमनी माता मुनिना समान सुव्रता थई ये कारण्थी "मुनिसुव्रतनाथ" नाम  
वाणा भगवानने ॥ २० ॥

कर्म शत्रुओंने छतवावाणा, अथवा ज्यारे गर्भमा छता त्यारे सर्व अशुभ  
राजगणो नम्र थई गया (झुकी गया) ये कारण्थी यथार्थ नामवाणा  
"श्री नमिनाथ" भगवानने वन्दना करे छु ॥ २१ ॥

अशुभ अथवा उपद्रवोंने दूर करवावाणा, अथवा जेने जन्म थता ज  
अष्टवे जन्म समये अरिष्ट प्रसूति गृह (सुवावडनु घर)मा रहेला तमाम भाणु  
सोना शिर-भरतक नमी पडया (झुकी गया) अथवा जेओ सकल ससारनु अरिष्ट

१-'अरिष्ट सूतिकागृह'-मित्यमरः, 'अरिष्ट सूत्यागारेऽन्तचिह्ने तत्रे  
शुभेऽशुभे' इति हैम ।

स्कानकरोत् स्वतेजसेति, अरिष्ट=‘शुभ ( कल्याणम् ) अर्थाज्जगतो नयति=प्रापय-  
तीति निरुक्तवृत्त्या या अरिष्टनेमि’, यद्वाऽस्य गर्भस्थस्य माता स्वप्नेऽरिष्ट (रत्न)  
मयीं नेमिं=रथचक्रपान्तभाग दृष्टयती तद्योगादरिष्टनेमिस्तम् (२२) । ‘पास’  
पश्यति लोकालोकस्वरूपमिति पार्श्वः, पृषोदरादित्यात्, भविजनविघ्नवह्नीसमुच्छे-  
दार्थं पशुसमूहतुल्यत्वात्पार्श्वः, यद्वाऽस्मिन् भगवति गर्भस्थे रुदाचिद्रात्रौ निर्वाणे  
प्रदीपेऽस्य जननी राजपार्श्वे सामायान्त सर्पं गर्भज्योतिःप्रभावेणाऽऽलोक्य  
राजान सचेतीकृतवती, राजा च प्रज्याल्य प्रदीप दृष्ट्वा च पार्श्वे समागत सर्पं  
विस्मित्य गर्भप्रभाव निश्चिकायेत्यन्वकारेऽपि निजमातृकृतृरूपितृपार्श्वसमागतसर्प-  
कर्मकदर्शनहेतुत्वात्पार्श्वस्तम् (२३) । ‘तद्वा’ ‘तथा’ वद्धमाण च’ वर्द्धते ज्ञाना

का अरिष्ट-कल्याण करने वाले, अथवा जब ये गर्भमें थे तो माताने  
स्वप्नमें पहिचे की अरिष्ट-रत्नमयी-नेमि (पुठ) को देखा इस कारण  
जिनका नाम ‘अरिष्टनेमि’ पडा, ऐसे घाईसवें तीर्थङ्कर को ॥२२॥

लोकालोक के यथार्थ स्वरूपको जानने वाले, या भक्त जीवों  
की विघ्नलता को विनाश करने के लिए कुठार के समान, अथवा  
जब ये गर्भ में थे तब किसी रातमें दीपक के बुझ जाने पर इनकी  
माताने राजाके पार्श्व-पसवाडे के पास आते हुए सर्प को गर्भ  
के तेजसे देखकर राजाको सावधान किया, इस प्रकार ‘पार्श्व’ पद  
के सम्बन्धसे ‘श्री पार्श्वनाथ’ नामवाले भगवान को ॥२३॥ और—

ज्ञानादि गुणों से वर्द्धमान (बढ़नेवाले) या अनन्त काल से

कल्याणु करवावाणा अथवा न्यारे तेजो गर्भमा हुता त्यारे माताये स्वप्नमा  
पेडानी अरिष्ट-रत्नमयी नेमि (पूठने) जेध जे कारणुथी जेनु नाम “अरिष्टनेमि,  
पड्यु, जेवा णावीस्रमा तीर्थ करने ॥ २२ ॥

लोकालोकना यथार्थ स्वरूपने ज्ञानुवावाणा, अथवा लब्ध लुवेनी विघ्न  
लताने विनाश करवा भाटे कुठार जेवा, अथवा न्यारे तेजो गर्भमा हुता त्यारे कोध  
रात्रिमा दीपक पुआछे जता तेमनी माताये राजाना पार्श्व-पसवाडानी नजदीक आवता  
सर्पने गर्भना तेजथी जेधने राजाने सावधान करी दीधा जे कारणुथी पार्श्व पहना  
नामवाणी “श्री पार्श्वनाथ” नामवाणा भगवानने ॥ २३ ॥

१ वर्द्धमान (वधवावाणा) अथवा अनन्त कालथी ससार सञ्जु

‘अशुभे’ इत्यमर ।

दिनेति, यद्वा, वर्द्धते=अन्तर्भावितण्यर्थत्वाद् उद्भयति भव्यानामनन्तकालतः पर्य-  
टता ज्ञानादिगुणमिति, गर्भशय्यास्थितेऽस्मिन् भगवति ज्ञातकुल धनधान्यादि-  
भिरवर्द्धतेति वा वर्द्धमानस्तम् (२४), चः=अप्यर्थकः, वर्द्धमानमपीत्यर्थः, पूर्वो-  
क्तेन 'वदामि' इत्यनेनान्वय इत्युक्तमेव ।

अभिवन्प्रोपसहरन्नाह- 'एव' इत्यादि,

एवम्=उक्तप्रकारेण, 'मए' मया 'अभियुया' अभि=सर्वतो भावेन  
स्तुताः=अभिष्टुताः नामनिर्देशपूर्वक यथाविधि स्तुतिविषयीकृता इत्यर्थः,  
'विद्वयस्यमल्ला' विशेषेण पुत्रे विधूते, रजश्च मल च रजोमले, विधूते रजोमले  
यैस्ते विधूतरजोमला, तत्र रजः=वध्यमान ज्ञानावरणीयादिरूपमीर्यापथरूप वा  
कर्म, मल=पूर्ववद्वनिकाचित-साम्परायिकरूपम्, यद्वा रज इवाऽऽवारकत्वा-  
द्भज=ज्ञानावरणीयादिकर्म तदेव मल रजोमल, विधूत=क्षालित रजोमल यैस्ते  
विधूतरजोमलाः । 'पट्टीणजरमरणा' - जीर्यन्ति=शिथिलीभवन्त्युत्थानादीनि

ससार समुद्रमें गोते खाते हुए प्राणियों के ज्ञानादि आत्मिक गुणों  
को बढ़ानेवाले, अथवा जब ये गर्भमें आये तब ज्ञातकुल धन धान्य  
हिरण्य सुवर्णादिसे परिपूर्ण हुआ अतएव गुणनिष्पन्न नामवाले  
'श्री वर्द्धमानस्वामी' को मैं बन्दना करता हूँ ॥ २४ ॥

गुणोत्कीर्त्तन करके उपसहार करते हैं—

इस प्रकार मुझसे अलग२ नामनिर्देशपूर्वक स्तुति किये गये, जो  
ज्ञानावरणीयादि बध्यमान कर्मोंका तथा निकाचित-साम्परायिकरूप  
पूर्ववद्ध कर्ममल का नाश करने वाले और चेष्टाविशेष रूप उत्थान,

द्रमा गोधा भाता प्राण्णीभ्योना ज्ञानादिक आत्मिक गुण्णेने वधारनारा, अथवा  
न्त्यारे तेभ्यो गर्भभा आभ्या त्यारे ज्ञातकुल धन धान्य हिरण्य-  
सुवर्णादिकथी परिपूर्ण्यं थयु भ्ये कारण्थी गुण्ण-निष्पन्न-नामवाणा  
"श्री वर्द्धमान स्वामी" ने हुं बन्दना कर् ३ ॥ २४ ॥

गुणोत्कीर्त्तन करके उपसहार करते हैं—

आ प्रभावे भारथी ब्रूदा ब्रूदा नामनिर्देशपूर्वक स्तुति करवाभा आवेदा, जेभ्यो  
ज्ञानावरणीयादि भाषेला कर्मोना तथा निकाचित-साम्परायिक रूप पूर्ववद्ध कर्ममलना

१- 'अभिष्टुता.' - 'उपसर्गात्सुनोती'ति पत्वे 'प्लुता प्लु' -रिति डुत्वम् ।

स्कानकरोत् स्वतेजसेति, अरिष्ट=शुभ ( कल्याणम् ) अर्थाजगतो नयति=प्रापय-  
तीति निरुक्तवृत्त्या वा अरिष्टनेमि, यद्वाऽस्य गर्भस्थस्य माता स्वप्नेऽरिष्ट (रत्न)  
मयीं नेमि=रथचक्रप्रान्तभाग दृष्टती तद्दयोगादरिष्टनेमिस्तम् (२२) । 'पास'  
पश्यति लोकालोकस्वरूपमिति पार्श्वः, पृषोदरादित्यात्, भविजनविघ्नवह्नीसमुच्छे-  
दार्थं पशुसमूहतुल्यत्वात्पार्श्वः, यद्वाऽस्मिन् भगवति गर्भस्थे कदाचिद्रात्रो निर्वाणे  
प्रदीपेऽस्य जननी राजपार्श्वे सामायान्त सर्पं गर्भज्योतिःप्रभावेणाऽलोक्य  
राजान सचेतीकृतवती, राजा च प्रज्जाल्य प्रदीप दृष्ट्वा च पार्श्वे समागत सर्पं  
विस्मित्य गर्भप्रभाव निश्चिकायेत्यन्धकारेऽपि निजमातृकर्तृकपितृपार्श्वसमागतसर्प-  
कर्मकदर्शनहेतुत्वात्पार्श्वस्तम् (२३) । 'तद्वा' 'तथा' वद्धमाण च' वर्द्धते ज्ञाना

का अरिष्ट-कल्याण करने वाले, अथवा जब ये गर्भमें थे तो माताने  
स्वप्नमें पहिये की अरिष्ट-रत्नमयी-नेमि (पुठ) को देखा इस कारण  
जिनका नाम 'अरिष्टनेमि' पडा, ऐसे घाईसर्वे तीर्थङ्कर को ॥२२॥

लोकालोक के यथार्थ स्वरूपको जानने वाले, या भक्त जीवों  
की विघ्नलता को विनाश करने के लिए कुठार के समान, अथवा  
जब ये गर्भ में थे तब किसी रातमें दीपक के बुझ जाने पर इनकी  
माताने राजाके पार्श्व-पसवाडे के पास आते हुए सर्प को गर्भ  
के तेजसे देखकर राजाको सावधान किया, इस प्रकार 'पार्श्व' पद  
के सम्बन्धसे 'श्री पार्श्वनाथ' नामवाले भगवान को ॥२३॥ और—

ज्ञानादि गुणों से वर्द्धमान (बढनेवाले) या अनन्त काल से

कल्याणु करवावाणा अथवा न्यारे तेज्जे गर्भमा हुता त्यारे माताज्जे स्वप्नमा  
पेडानी अरिष्ट-रत्नमयी नेमि (पूठने) जेठ जे कारणुथी जेतु नाम "अरिष्टनेमि,  
पठ्यु, जेवा णावीसमा तीर्थं करने ॥ २२ ॥

लोकालोकना यथार्थ स्वरूपने ज्ञानुवावाणा, अथवा लव्य लवोनी विघ्न  
लतानो विनाश करवा भाटे कुठार जेवा, अथवा न्यारे तेज्जे गर्भमा हुता त्यारे डोड  
रत्निमा दीपक लुआठ जता तेमनी माताज्जे राजाना पार्श्व-पसवाडानी नज्जिक आवता  
सर्पने गर्भना तेज्ज्थी जेठने राजने सावधान करी दीधा जे कारणुथी पार्श्व पठना  
सणधथी "श्री पार्श्वनाथ" नामवाणा भगवानने ॥ २३ ॥

ज्ञानादि गुणोथी वर्द्धमान (बधवावाणा) अथवा अनन्त कालथी ससार सञ्चु

१- 'अरिष्ट तु शुभाशुभे' इत्यमर ।

दिनेति, यद्वा, वर्द्धते=अन्तर्भावितण्यर्थत्वाद् उर्द्धयति भव्यानामनन्तकालतः पर्य-  
टता ज्ञानादिगुणमिति, गर्भशय्यास्थितेऽस्मिन् भगवति ज्ञातकुल धनधान्यादि-  
भिरवर्द्धतेति वा वर्द्धमानस्तम् (२४), चः=अप्यर्थकः, वर्द्धमानमपीत्यर्थः, पूर्वो-  
क्तेन 'वदामि' इत्यनेनान्वय इत्युक्तमेव ।

अभिवन्त्योपसहरन्नाह—'एव' इत्यादि,

एवम्=उक्तप्रकारेण, 'मण' मया 'अभिधुया' अभि=सर्वतो भावेन  
स्तुताः=अभिष्टुताः नामनिर्देशपूर्वक यथाविधि स्तुतिविषयीकृता इत्यर्थः,  
'विह्वयरयमल्ला' विशेषेण त्रुते विधूते, रजश्च मल च रजोमले, विधूते रजोमले  
यैस्ते विधूतरजोमला', तत्र रजः=व्यमान ज्ञानावरणीयादिरूपमीर्यापथरूप वा  
कर्म, मल=पूर्ववर्द्धनिकाचित-साम्परायिकरूपम्, यद्वा रज इवाऽऽवारकत्वा-  
द्रज=ज्ञानावरणीयादिकर्म तदेव मल रजोमल, विधूत=क्षालित रजोमल यैस्ते  
विधूतरजोमलाः । 'पहीणजरमरणा' - जीर्यन्ति=शिथिलीभवन्त्युत्थानादीनि

ससार समुद्रमें गोते खाते हुए प्राणियों के ज्ञानादि आत्मिक गुणों  
को बढ़ानेवाले, अथवा जब ये गर्भमें आये तब ज्ञातकुल धन धान्य  
विषय सुवर्णादिसे परिपूर्ण हुआ अतएव गुणनिष्पन्न नामवाले  
'को मैं वन्दना करता हूँ ॥ २४ ॥

करके उपसहार करते हैं—

अलग२ नामनिर्देशपूर्वक स्तुति किये गये, जो  
कर्मोंका तथा निकाचित-साम्परायिकरूप  
वाले और चेष्टाविशेष रूप उत्थान,

आत्मिक गुणोंने वधारना, अथवा  
ज्ञातकुल धन धान्य छिःरुथ-  
शरुथी गुण-निष्पन्न-नामवाणा  
। २४ ॥

निःकरवाभा आये, ज्ञेयो  
पूर्ववर्द्ध कर्ममलने  
'पु' -रिति दुत्वम् ।



स्कानकरोत् स्वतेजसेति, अरिष्ट=शुभ (कल्याणम्) अर्थाजगतो नयति=प्रापयतीति निरुक्तवृत्त्या या अरिष्टनेमि, यद्वाऽस्य गर्भस्थस्य माता स्वप्नेऽरिष्ट (रत्न) मयीं नेमि=रथचक्रप्रान्तभाग दृष्टवती तद्योगादरिष्टनेमिस्तम् (२२) । 'पास' पश्यति लोकालोकस्वरूपमिति पार्श्व, पृषोदरादित्यात्, भविजनविघ्नवह्नीसमुच्छेदार्थं पशुसमूहतुल्यत्वात्पार्श्व, यद्वाऽस्मिन् भगवति गर्भस्थे कदाचिद्वात्रौ निर्वाणे प्रदीपेऽस्य जननी राजपार्श्वे सामायान्त-सर्पं गर्भज्योतिःप्रभावेणाऽऽलोक्य राजान सचेतीकृतवती, राजा च प्रज्वाल्य प्रदीप दृष्ट्वा च पार्श्वे समागत सर्पं विस्मित्य गर्भप्रभाय निश्चिन्नायेत्यन्धकारेऽपि निजमातृकृतं कपितृपार्श्वसमागतसर्प-कर्मरुदर्शनहेतुत्वात्पार्श्वस्तम् (२३) । 'तदा' 'तथा' वर्द्धमाण च' वर्द्धते ज्ञाना

का अरिष्ट-कल्याण करने वाले, अथवा जब ये गर्भमें थे तो माताने स्वप्नमें पहिले की अरिष्ट-रत्नमयी-नेमि (पुठ) को देखा इस कारण जिनका नाम 'अरिष्टनेमि' पडा, ऐसे घाईसर्वे तीर्थङ्कर को ॥२२॥

लोकालोक के यथार्थ स्वरूपको जानने वाले, या भक्त जीवों की विघ्नलता को विनाश करने के लिए कुठार के समान, अथवा जब ये गर्भ में थे तब किसी रातमें दीपक के बुझ जाने पर इनकी माताने राजाके पार्श्व-पसवाडे के पास आते हुए सर्प को गर्भ के तेजसे देखकर राजाको सावधान किया, इस प्रकार 'पार्श्व' पद के सम्बन्धसे 'श्री पार्श्वनाथ' नामवाले भगवान को ॥२३॥ और—  
ज्ञानादि गुणों से वर्द्धमान (बढनेवाले) या अनन्त काल से

क-याषु करवावाणा अथवा न्यारे तेभ्यो गर्भमा हुता त्यारे माताये स्वप्नमा पेडानी अरिष्ट-रत्नमयी नेमि (पूठने) ज्येष्ठे ये कारण्यथी जेतु नाम "अरिष्टनेमि, पश्य, ज्येष्ठा भावीसमा तीर्थ करने ॥ २२ ॥

लोकालोकना यथार्थ स्वरूपने ज्ञानवावाणा, अथवा लब्ध एवानी विघ्न लतानो विनाश करवा भाटे कुठार जेवा, अथवा न्यारे तेभ्यो गर्भमा हुता त्यारे डोहं रात्रिमा दीपक बुझाछे जता तेभनी माताये रातना पार्श्व-पसवाडानी नजदीक आवता सर्पने गर्भना तेजथी ज्येष्ठने रातने सावधान करी दीधा ज्येष्ठ कारण्यथी पार्श्व पढना सम्बन्धी "श्री पार्श्वनाथ" नामवाणा भगवानने ॥ २३ ॥

ज्ञानादि गुणों से वर्द्धमान (बढनेवाले) अथवा अनन्त कालकी ससार समु

१- 'अरिष्ट तु शुभाशुभे' इत्यमर' ।

स्तवकरणात्सम्यक्स्तुताः, महिताः=महद्भिर्ज्ञानादिगुणैः कृत्वा सर्वैराहताः, यद्वा महिता=पूजिताः-सादर प्रशसिता इन्द्रादिभिरित्यर्थ, कीर्तिताः=मनसा गुणचिन्तनरूपेण, वन्दिताः=वचसा स्तुताः-वदिधातोः स्तुतिपरत्वात्, महिताः=कायेन इन्द्रादिभिः शरीरावनमनकरणेन नमस्कृताः इति हृदयम्,

‘पुष्पादिभिः पूजिताः’ इति केषाञ्चिद्द्रव्याख्यानमशोभनम् सावय्वपूजाया हिंसाप्रधानत्वेन वीतरागाणा तदसभवात्तस्याः सूत्रेऽनभिधानाच्च, ‘मह पूजायाम्’ इत्यत्र पूजायामित्यत्रिशिष्यैवोक्तमस्ति, ततश्च महितः=पूजित इत्यायाति, नैतावता

प्राणियों से सम्मानित, अथवा इन्द्रादिकों से सादर प्रशसित जो ये रागद्वेष आदि कलङ्क से रहित होने के कारण तीनों लोक में उत्तम सिद्ध अर्थात् कृतकृत्य हैं वे मुझे आरोग्य-सिद्धस्वरूप की प्राप्ति के लिये जिनधर्मकी रुचिरूप बोधिका लाभ और उत्तमोत्तम समाधि देवे ।

किसीने यहा ‘कित्तिय-वदिय-महिया’ इस पदमें रहे हुए ‘महित’ का अर्थ ‘पुष्प आदि से पूजित’ किया है किंतु वह सर्वथा असंगत है, क्यों कि पुष्पादि सावय्व द्रव्यों से की हुई पूजा हिंसाप्रधान होने के कारण ऐसी पूजा वीतरागों की नहीं हो सकती और शास्त्रमें कहीं ऐसा उल्लेख भी नहीं है । ‘मह पूजायाम्’-इस धातु से ‘महित’ बनता है जिसका अर्थ सामान्यतः ‘पूजित’ यही हो सकता है, उससे ‘पुष्पादिपूजित’ अर्थ करना केवल

सम्मानित, अथवा ईन्द्रादिकोंकी सादर प्रशसा पामेला ने जे राग-द्वेष आदि कलङ्ककी रहित होवाना कारणे त्रैलोक्य लोकमा उत्तम सिद्ध अर्थात् कृतकृत्य छे ते भने आरोग्य - सिद्धस्वइपनी प्राप्ति भाटे जिनधर्मनी रुचि-इप बोधिने लाभ अने उत्तमोत्तम समाधि आपो ?

कैद्यमे आ स्थणे ‘कित्तिय-वदिय-महिया’ आ पदमा रहेला ‘महित’ ने अर्थ ‘पुष्प आदिथी पूजित’ करेला छे, परंतु जे अर्थ सर्वथा असंगत छे कारणे के पुष्पादि सावय्व द्रव्येथी करेला पूजा हिंसाप्रधान होवाथी ते पूजा वीतरागेनी होअ शके नहि तेभज शास्त्रोमा जेयो उ-द्वेष पक्ष भणतो नथी, ‘मह पूजाया’ आ धातुथी ‘महित’ जने छे जेने अर्थ सामान्यतः ‘पूजित’ थअ शके छे, तेनाथी ‘पुष्पादिपूजित’ अर्थ करयो ते केवल कल्पनामात्र छे,

(अत्राऽऽदिपदेन कर्म-बल-वीर्य-पुरुषकार-पराक्रमा गृह्यन्ते, तत्र उत्थान=चेष्टाविशेषः, कर्म=भ्रमणादिक्रिया, बल=शरीरसामर्थ्यम्, वीर्य=जीवप्रभव, पुरुषकारः = अभिमानविशेषः, पराक्रमः = स्वामीष्टकर्मसाधनशक्तिविशेषः) यया सा, यद्वा जरण=त्रयोहानिर्जरा, मरण=प्राणविनिर्गमापरपर्याय आयुष्यनाशः, जरा च मरण च जरामरणे, प्रहीणे=प्रणष्टे जरामरणे येषां ते तथाभूताः, 'चउवीसपि' चतुर्विंशतिरपि, अपिशब्दः पूर्ववद्वधारणार्थी महाविदेहस्थ भगवद्ग्रहणार्थश्च । 'जिणवरा' जिनेपु=अवधिज्ञान्यादिषु वराः=श्रेष्ठा । सामान्यकेवलिनोऽपि जिनवराः सभवन्ति तद्वारणायाह-'तित्थयरा' तीर्थकराः । 'मे' मम उपरीत्यस्याभ्याहारः । 'पसीयतु' प्रसीदन्तु=प्रसन्ना भवन्तु ॥ ५ ॥ 'कित्तिय-वदिय-महिया' कीर्त्तिताश्च वन्दिताश्च महिताश्चेति द्वन्द्वः, तत्र कीर्त्तिताः=तत्त्वनामनिर्देशेनैकश' रुथिताः, वन्दिता =वाङ्मन'काययोगैर्गुणस

भ्रमणादिरूप कर्म, शरीरसामर्थ्यरूप बल, जीव सम्बन्धी वीर्य, 'मै इस कार्य को सिद्ध करूंगा' इस प्रकार अभिमान विशेषरूप पुरुषाकार, तथा अभीष्ट सिद्ध करने का शक्तिविशेषरूप पराक्रम, इन सबका नाश करनेवाली वृद्धावस्थारूप जरा और मरण का विनाश करनेवाले, केवलियों में श्रेष्ठ उपर्युक्त चौबीस तीर्थकर हैं वे, तथा अपि शब्द से महाविदेह क्षेत्रमें रहे हुए तीर्थकर मुझ पर प्रसन्न हों ।

'कित्तिय' पृथक् २ नाम से कीर्त्तित, 'वदिय'-मन वचन काय से स्तुत, 'महिय'-ज्ञानातिशय आदि गुणों के कारण सब

नाश करवावाणां अने चेष्टाविशेषरूप उत्थान, भ्रमणादि रूप कर्म, शरीर सामर्थ्यरूप बल, जीव सम्बन्धी वीर्य, "हु आ कार्यने सिद्ध करीश" अने प्रभावे अभिमान विशेषरूप पुरुषाकार, तथा अभीष्ट सिद्ध करवाने शक्तिविशेषरूप पराक्रम, अने सर्वाने नाश करवावाली वृद्धावस्था रूपा जरा अने मरणने नाश करवावाणां, केवलीअभा श्रेष्ठ उपर कहेला चौबीस तीर्थकर छे ते, तथा 'अपि' शब्दथी महाविदेह क्षेत्रमा रहेला तीर्थकरे मारा उपर प्रसन्न थाअो ?

'कित्तिय' श्रुता-श्रुता नामथी कीर्त्तित, 'वदिय' मन, वचन अने कायाथी स्तुति कराअेला, 'महिय' ज्ञानातिशय आदि गुणाना कारणे सर्व प्राणीअेथी

बुद्धा' 'महाणुभावेसु महापरक्कमेसु' (सू. कृ. २ अ. २) 'सविकारात्प्रयानात्तु महत्तच्च प्रजायते । महानिति यतः ख्यातिलोकाना जायते सदा ॥१॥ अहङ्कारश्च महतो जायते मानवर्द्धनः॥' (म. पु.) । 'प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणि' (सारख्यमूत्र) । 'प्रकृतेर्महोस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशरुः (सारख्यतत्त्वकौमुदी) । 'द्रव्यप्रत्यक्षे महत्त्व समवायसम्बन्धेन कारणम्' (न्या सि मु.) इति दर्शनान्तराणि । 'शुद्र.स्यात्पादजो दासो ग्रामकूटो महत्तरः ।' (त्रि शे.), 'रणपण्डितोऽय्यत्रिवु.गारिपुरे क्लृप्त स राम-महित कृतवान् ।' (भट्टिका० १० स ), 'विशङ्कट पृथु बृहद्विशाल पृथुल महत्' (अ को.), इत्यादीनि च न सङ्गच्छन्ते । ' 'जे ए' ये एते, 'लोगस्त' लोकस्य, निर्द्धारणे पृष्ठी तेन लोकरुत्रयस्य म'य इत्यर्थः । 'उत्तमा' उत्तमाः=रागद्वेषकर्मपङ्ककलङ्कसवन्-राहित्यात् श्रेष्ठाः । 'सिद्धा' सिद्धाः कृतकृत्यत्वाद्गन्ध-भववीजाङ्कुरत्वाच्च । 'आरुग्गवोद्विलाभ' रजति=पीडयतीति रोगो=जन्मजरा-मरणादिरूपोऽत्र, अविद्यमानो रोगो येषा ते-अरोगा.=सिद्धास्तेषा भाव आरोग्य=सिद्धत्वम् बोधि'=निखिलभवगन्धनप्रतिकूला परमार्थावबोधहेतुभूता जिनप्रणीतप्रवचनरुचिभूतस्या लाभो बोधिलाभः, आरोग्याय=सिद्धस्वरूपाय बोधिलाभः=आरोग्यबोधिलाभस्तम्, यद्वा-आरोग्य=निरुपद्रवम्=उपद्रवाभावस्तेन बोधिलाभस्तम् । 'आरोग्याय' इत्यत्र च फलेभ्यो यातीत्यादिवत् 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिन ' (२।३।१४) इति चतुर्थी, तेन सिद्धत्व प्राप्तु बोधिलाभ इति निष्कर्षः । अयं च बोधिलाभोऽनिदानात्मक एव मोक्षप्राप्तिहेतुर्न तु

आता है 'पुष्पादिसे पूजन' रूप अर्थ कहीं नहीं लिखा है, अतएव यह निर्विवाद सिद्ध हुआ कि 'महित' अर्थात् ज्ञानातिशय आदि गुणों से सम्मानित अथवा इन्द्रादि से सादर प्रशंसित ।

'निदान (नियाना) रहित ही बोधिलाभ मोक्ष का कारण

त्या 'पुष्पादिषु पूजन' इय अर्थ कहेला नथी झेटला भाटे निर्विवाद सिद्ध थयु क 'महित' अर्थात् ज्ञानातिशय आदि गुणेषु सम्मानित अथवा इन्द्रादिषु सादर प्रशंसा पावेल।

'निदान' (नियाना) रहित न बोधिलाभ मोक्षनु कान्यु उ अ वात सम

१-'जे ए'- (ये एते) अत्राऽऽर्पत्वादेकारलोपः ।

२- लोकरुत्रय-आर्पत्वादेवचनम् 'अचोऽन्त्यादि टी'-त्यादिवत् ।

पुष्पादिभिरेव पूजनमिति शक्यते वक्तु, तथा सति महच्छब्दस्यापि तथात्वापत्तेः ।  
 न चास्तु का नो हानिरिति वाच्यम्, एव सति 'महाबाहुर्महाशयः' इत्यादा  
 वपि 'पुष्पादिपूजितबाहुमान्' 'पुष्पादिपूजिताऽऽशयवान्' इत्यसङ्गताथा  
 पत्तेः, पूजार्थममहधातुनिष्पन्नमहच्छब्दस्य तत्र तत्रापि सत्त्वात्, न च 'विनिगमना-  
 विरहात्पुष्पादिपूजनमप्यर्थः स्यादित्युद्गृहणीय, वीतरागाणा सावद्यपूजाऽनीचिल-  
 रूपाया विनिगमनाया अनुपदमुक्तत्वात्, मित्रैव भवदाग्रहे 'महामोह पकुब्धै'  
 (दशा० स्क) 'महावाए व यायते' (दशवै०) 'महासुमिण पासित्ताण पडि-

कल्पनामात्र है, क्यों कि ऐसा माननेसे जो जो शब्द मह धातु  
 से बनते हैं उन सब जगहों में पूर्वपक्षी के कथनानुसार 'पुष्पादि  
 से पूजन' रूप अर्थ मान लेने पर 'महाबाहु, महाशय' आदि शब्दों  
 के भी 'पुष्पादि से पूजित भुजावाले', 'पुष्पादि से पूजित आशय-  
 वाले' आदि अनिष्ट अर्थ होने लगेंगे। यदि कहें कि—'किसी अर्थ  
 विशेष का निश्चय न रहने के कारण 'मह धातु' के 'विशाल'  
 'उदार' आदि अर्थ की तरह 'पुष्पादिपूजनरूप' भी अर्थ ले सकते  
 हैं तो इसका उत्तर पहले ही दे चुके हैं कि—'वीतरागों के सावद्य  
 पूजन का न होना ही पुष्पादिपूजनरूप अर्थके न होने में नियामक  
 है, और ऊपर लिखी हुई संस्कृत टीका में दिखलाये हुए महामोह०'  
 आदि स्थलों में तथा अन्यत्र भी जहाँ कहीं 'मह' धातु का प्रयोग

ठेभडे अे प्रभाळे मानवाथी ने शब्द मह धातुथा णने छे ते सर्वा स्थणे  
 पूर्वपक्षीना कडेवा प्रभाळे 'पुष्पादिथी पूजन' इय अर्थ मानी लेवाथी 'महाणाहु,  
 महाशय' आदि शब्दाने पणु 'पुष्पादिथा पूजित भुजावाणा,' 'पुष्पादिथी पूजित  
 आशयवाणा' वगेरे अनिष्ट अर्थ थवा मडशे ने कडेशे के 'कडि' अर्थ (विशेषने।  
 निश्चय नडि रडेवाना कारळे 'मह' धातुने। 'विशाल, उदार' आदि अर्थ प्रभाळे 'पुष्पादि  
 पूजनइय' पण अर्थ लडि शकय छे तो तेना उत्तर प्रथमज आपी सूकया छीअे  
 के 'वीतराग ने सावद्य पूजन न। थवुज पुष्पादिपूजनइय अर्थ नडि  
 कडि शकवा माटे नियामक छे अने उपर लणेदी संस्कृत टीकामा णत वेळ 'महामोह'  
 आदि स्थणेमा तथा णीण स्थणे पणु ने ठेकाळे 'मह' धातुने। प्रयोग आवे छे

१-एकतरपक्षपातिनी युक्तिविनिगमना तस्या विरहोऽमात्रस्तस्मात् ।

बुद्धा' 'महाणुभावेसु महापरक्कमेसु' (सू. कृ. २ अ. २) 'सविकारात्पथानात्तु महत्तच्च प्रजायते । महानिति यतः ख्यानिल्लोकाना जायते सदा ॥१॥ अहङ्कारश्च महतो जायते मानवर्द्धनः॥' (म. पु.) । 'प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणि' (साख्यमूत्र) । 'प्रकृतेर्महोस्ततोऽहङ्कारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः (साख्यतत्त्वकौमुदी) । 'द्रव्यप्रत्यक्षे महत्त्व समवायसम्बन्धेन कारणम्' (न्या सि मु) इति दर्शनान्तराणि । 'शुद्धस्यात्पादजो दासो ग्रामकूटो महत्तरः ।' (त्रि शे ), 'रणपण्डितोऽग्र्यविबुधारिपुरे कलह स राममदित कृतवान् ।' (भट्टिका० १० स ), 'विशङ्कट पृथु वृहद्विशाल पृथुल महत्' (अ को ), इत्यादीनि च न सङ्गच्छन्ते । 'जे ए' ये एते, 'लोगस्स' लोकस्य, निर्दोरणे पणी तेन लोकरयस्य मभ्य इत्यर्थः । 'उत्तमा' उत्तमाः=रागद्वेषकर्मपङ्ककलङ्कसवन्जराद्वित्यात् श्रेष्ठाः । 'सिद्धा' सिद्धा' कृतकृत्यतादग्धभववीजाङ्कुरत्वाच्च । 'आरुग्गवोहिलाभ' रुजति=पीडयतीति रोगो=जन्मजरामरणादिरूपोऽत्र, अविद्यमानो रोगो येषा ते-अरोगा.=सिद्धास्तेषा भाव आरोग्य=सिद्धत्वम् बोधि=निखिलभवबन्धनप्रतिकूला परमार्थावबोधहेतुभूता जिनप्रणीतप्रवचनरुचिन्तस्या लाभो बोधिलाभः, आरोग्याय=सिद्धस्वरूपाय बोधिलाभः=आरोग्यबोधिलाभस्तम्, यद्वा-आरोग्य=निरुपद्रवम्=उपद्रवाभावस्तेन बोधिलाभस्तम् । 'आरोग्याय' इत्यत्र च फलेभ्यो यातीत्यादिवत् 'क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिन' (२।३।१४) इति चतुर्थी, तेन सिद्धत्व प्राप्तु बोधिलाभ इति निष्कर्षः । अथ च बोधिलाभोऽनिदानात्मक एव मोक्षप्राप्तिहेतुर्न तु

आता है 'पुष्पादिसे पूजन' रूप अर्थ कही नहीं लिखा है, अतएव यह निर्विवाद सिद्ध हुआ कि 'महित' अर्थात् जानातिशय आदि गुणों से सम्मानित अथवा इन्द्रादि से सादर प्रशसित ।

'निदान (नियाना) रहित ही बोधिलाभ मोक्ष का कारण

त्या 'पुष्पादिथी पूजन' इय अर्थ करेदी नथी अष्टला भाटे निर्विवाद सिद्ध थयु इ 'महित' अर्थात् जानातिशय आदि गुणोथी सम्मानित अथवा इन्द्रादिथी सादर प्रशसा पाभेला

'निदान' (नियाना) रहित न बोधिलाभ मोक्षनु कारण छे अे वात सम

१-'जे ए'-ये एते) अत्राऽऽर्पत्वादेकारलोपः ।

२- लोकरस्य-आर्पत्वादेनचनम् 'अवोऽन्त्यादि टी'-त्यादिवत् ।

पुष्पादिभिरेव पूजनमिति शक्यते वक्तु, तथा सति महच्छन्दस्यापि तथात्वापत्तेः।  
 न चास्तु का नो हानिरिति वाच्यम्, एव सति 'महावाहुर्महाशयः' इत्यादा  
 वपि 'पुष्पादिपूजितवाहुमान्' 'पुष्पादिपूजिताऽऽशयवान्' इत्यसङ्गतायां  
 पत्तेः, पूजार्थकमहधातुनिष्पन्नमहच्छन्दस्य तत्र तत्रापि सत्त्वात्, न च 'विनिगमना-  
 विरहात्पुष्पादिपूजनमप्यर्थः स्यादित्युद्बुद्धनीय, वीतरागणा सावयपूजाऽनौचित्य  
 रूपाया विनिगमनाया अनुपदमुक्तत्वात्, मिश्रैव भवदाग्रहे 'महामोह पकुब्ध' (दशा० स्क) 'महावाए व गायते' (दशवै०) 'महासुमिण पासित्वाण पडि-

कल्पनामात्र है, क्यों कि ऐसा माननेसे जो जो शब्द मह धातु  
 से बनते हैं उन सब जगहों में पूर्वपक्षी के कथनानुसार 'पुष्पादि  
 से पूजन' रूप अर्थ मान लेने पर 'महावाहु, महाशय' आदि शब्दों  
 के भी 'पुष्पादि से पूजित भुजावाले' 'पुष्पादि से पूजित आशय  
 वाले' आदि अनिष्ट अर्थ होने लगेंगे। यदि कहें कि—'किसी अर्थ  
 विशेष का निश्चय न रहने के कारण 'मह धातु' के 'विशाल'  
 'उदार' आदि अर्थ की तरह' पुष्पादिपूजनरूप' भी अर्थ ले सकते  
 हैं तो इसका उत्तर पहले ही दे चुके हैं कि—'वीतरागों के सावय  
 पूजन का न होना ही पुष्पादिपूजनरूप अर्थके न होने में नियामक  
 है, और ऊपर लिखी हुई संस्कृत टीका में दिखलाये हुए 'महामोह'  
 आदि स्थलों में तथा अन्यत्र भी जहाँ कहीं 'मह' धातु का प्रयोग

ठेके अथ प्रभाषे मानवाथी न शब्द मह धातुथी णने छे ते सर्व स्थणे  
 पूर्वपक्षीना कडेवा प्रभाषे 'पुष्पादिथी पूजन' रूप अर्थ भानी देवाथी 'महावाहु,  
 महाशय' आदि शब्दोने पथ 'पुष्पादिथी पूजित भुजावाणा,' 'पुष्पादिथी पूजित  
 आशयवाणा' वगेरे अनिष्ट अर्थ थवा भउथे नो कडेथी के 'कैछ अर्थ' विशेषने।  
 निश्चय नहि नडेवाना कारणे 'मह' धातुने 'विशाल, उदार' आदि अर्थ प्रभाषे 'पुष्पादि  
 पूजनरूप' पथ अर्थ लक्ष शक्य छे तो तेने उत्तर प्रथमञ्च आपी सूक्ष्मा लीअे  
 के 'वीतराग ने सावय पूजन, न यदुञ्च पुष्पादिपूजनरूप अर्थ नहि  
 कैछ शकवा भाटे नियामक छे अने उपर लपेकी संस्कृत टीकाभा णत वेले 'महामोह'  
 आदि स्थलोभा तथा भीन स्थणे पथ नो ठेकाळे 'मह' धातुने प्रयोग आवे छे

१-एकतरपक्षपातिनी युक्तिविनिगमना तस्या विरहोऽभावस्तस्मात्।

बुद्धा' 'महाणुभावेसु महापरकमेसु' (सू. कृ. २ अ. २) 'मविहागन्मना-  
 नासु महत्तत्त्व प्रजायते । महानिति यतः न्यातिर्लोकाना जायते मदा ॥१॥  
 अहङ्कारश्च महतो जायते मानवर्द्धनः॥' (म पु.) । 'प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्का-  
 रोऽहङ्कारात्पञ्चतन्मात्राणि' (सारयमृत्र) । 'प्रकृतेर्महान्तोऽहङ्कारस्त्वस्माद्-  
 षथ षोडशकः (सारयतत्त्वकौमुदी) । 'द्रव्यप्रत्यक्षे महत्त्व ममवायमन्वन्नेन  
 कारणम्' (न्या सि मु.) इति दर्शनान्तराणि । 'शुद्धस्यात्पादजो दामो  
 ग्रामकूटो महत्तरः ।' (त्रि शे.), 'रणपण्डितोऽय्यविजुगारिपुरे ऋट म राम-  
 महित कृतवान् ।' (भट्टिका० १० स), 'विद्यकूट पशु वृद्धिशाठ पृथु  
 महत्' (अ को.), इत्यादीनि च न सङ्गच्छन्ते । 'जे ए' ये एते, 'योग्यम्'  
 लोकरस्य, निर्द्धारणे षष्ठी तेन लोकरस्यस्य माय इत्यर्थः । 'उत्तमा' उनमाः=  
 रागद्वेषकर्मपङ्ककलङ्कसम्पराहित्यात् श्रेष्ठाः । 'सिद्धा' सिद्धाः कृतकृत्यत्याश्रय-  
 भववीजाङ्कुरत्वाच्च । 'आरुग्गरोडिलाभ' रुजति=पीडयतीति रोगो=जन्मजग-  
 मरणादिरूपोऽत्र, अविद्यमानो रोगो येषा ते-अरोगाः=सिद्धाम्तेषा याव आरोग्य-  
 ग्य=सिद्धत्वम् बोधि'=निखिलभवग्रन्थनपतिकूला परमार्थावरो रनेतृवना जिनम-  
 णीतप्रवचनरुचिस्तस्या लाभो बोधिलाभः, आरोग्याय=सिद्धम्बुधाय बोधि-  
 लाभः=आरोग्यबोधिलाभस्तम्, यद्वा-आरोग्य=निरपद्रवम्=शुद्ध्यावापरनेत्र  
 बोधिलाभस्तम् । 'आरोग्याय' इत्यत्र च फलेभ्यो यानीत्यादिग्न 'श्रियावी-  
 पपदस्य च कर्मणि स्थानिनः' (२।३।१४) इति चतुर्थी; तेन सिद्धं प्राप्तं  
 बोधिलाभ इति निरूपणः । अथ च बोधिलाभोऽनिदानात्मक एव मातृप्राप्त्येतेषु

आता है 'पुष्पादिसे पूजन' रूप अर्थ कहीं नहीं मिलता है, अतएव  
 यह निर्विवाद सिद्ध हुआ कि 'महित' अर्थात् ज्ञानातिशय आ- शुभकी प्रशंसा अथवा उन्मत्तकी  
 गुणों से सम्मानित अथवा इन्द्रादि से मादर प्रशंसित ।

'निदान (निद्याणा) रहित ही योगिन्नाम याज्ञ क्त कारण

त्या 'पुष्पादिशी पूजन' इय अर्थ कहेला नया नया अर्थ, सिद्धि नय  
 थयु इ 'महित' अर्थात् ज्ञानातिशय आ- शुभकी प्रशंसा अथवा उन्मत्तकी  
 सादर प्रशंसा यामेला

'निदान' (निय णा) रहित न बोधिलाभ प्राप्तुं नान्य उे को वात सम

- १-'जे ए'-ये एते) अत्राऽऽपत्त्यादेकारलोप ।
- २- लोकरस्य-आपत्त्यादेरुचनम् 'अरोऽन्त्यादि टी'-त्यादियत् ।



पुष्पादिभिरेव पूजनमिति शक्यते वक्तु, तथा सति महच्छब्दस्यापि तथात्वापत्तेः । न चास्तु का नो हानिरिति वाच्यम्, एव सति 'महाबाहुर्महाशयः' इत्यादावपि 'पुष्पादिपूजितबाहुमान्' 'पुष्पादिपूजिताऽऽशयवान्' इत्यसङ्गताथापत्तेः, पूजार्थमहधातुनिष्पन्नमहच्छब्दस्य तत्र तत्रापि सत्त्वात्, न च 'विनिगमनाविरहात्पुष्पादिपूजनमप्यर्थः स्यादित्युद्बुद्धनीय, वीतरागाणा सावद्यपूजाऽनौचित्यरूपाया विनिगमनाया अनुपदमुक्तत्वात्, त्रिञ्चैव भवदाग्रहे 'महामोह पकुब्ध' (दशा० स्क) 'महावाए व गायते' (दशै०) 'महासुमिण पासित्ताण पडि-

कल्पनामात्र है, क्यों कि ऐसा माननेसे जो जो शब्द मह धातु से बनते हैं उन सब जगहों में पूर्वपक्षी के कथनानुसार 'पुष्पादि से पूजन' रूप अर्थ मान लेने पर 'महाबाहु, महाशय' आदि शब्दों के भी 'पुष्पादि से पूजित भुजावाले' 'पुष्पादि से पूजित आशय वाले' आदि अनिष्ट अर्थ होने लगेंगे। यदि कहें कि—'किसी अर्थ विशेष का निश्चय न रहने के कारण 'मह धातु' के 'विशाल' 'उदार' आदि अर्थ की तरह' पुष्पादिपूजनरूप' भी अर्थ ले सकते हैं तो इसका उत्तर पहले ही दे चुके हैं कि—'वीतरागों के सावद्य पूजन का न होना ही पुष्पादिपूजनरूप अर्थके न होने में नियामक है, और ऊपर लिखी हुई संस्कृत टीका में दिखलाये हुए 'महामोह' आदि स्थलों में तथा अन्यत्र भी जहाँ कहीं 'मह' धातु का प्रयोग

ठेके अथ प्रभाषे मानवाथी ने शब्द मह धातुथी भने छे ते सर्व स्थणे पूर्वपक्षीना कडेवा प्रभाषे 'पुष्पादिथी पूजन' इप अर्थ मानी लेवाथी 'महाबाहु, महाशय' आदि शब्दोने पद्य 'पुष्पादिथी पूजित भुजावाणा,' 'पुष्पादिथी पूजित आशयवाणा' वगेरे अनिष्ट अर्थ थवा मडसे ने कडेथो के 'कडे' अर्थ विशेषने निश्चय नहि रहेवाना कारणे 'मह' धातुने 'विशाल, उदार' आदि अर्थ प्रभाषे 'पुष्पादि पूजनरूप' पद्य अर्थ लध शक्य छे तो तेने उत्तर प्रथमज आपी युक्त्या छीअ के 'वीतराग ने सावद्य पूजन ना यलुज पुष्पादिपूजनरूप अर्थ नहि कडे शकवा भाटे नियामक छे अने उपर लपेली संस्कृत टीकाभा मत वेले 'महामोह' आदि स्थणोभा तथा भील्ल स्थणे पद्य ने ठेकेले 'मह' धातुने प्रयोग आवे छे

१-एकतरपक्षपातिनी युक्तिविनिगमना तस्या विरहोऽभावस्तस्मात् ।

‘उत्तम’ उत्तम=सर्वोत्कृष्टम्, एतेन जघन्यमध्यमयोर्ब्यवच्छेदः । ‘दितु’ ददतु=वितरन्वित्यर्थः । ‘चदेसु निम्मलयरा’ क्षालिनाखिलकर्ममलत्वाच्चन्द्रेभ्यो निर्मलतमाः=चन्द्रापेक्षयाऽप्यतिशयितनैर्मन्यभाज इति भावः । ‘आइचेसु अहिय पयासयरा’ मियात्वादितिमिरनिनाशकात्युत्कृष्टकेवलाऽऽलोकेनाखिललोकालोकप्रकाशकत्वेनाऽऽदित्येभ्योऽप्यधिक प्रकाशकरा । ‘सागरवरगभीरा’ सागराः=समुद्रास्तेषु वर=श्रेष्ठ सागरवरः=स्वयम्भूरमणसमुद्रस्तद्द्वम्भीराः=परीपहादिसहनशीलत्वात्पशान्ततमाः, ‘सिद्धा’ सिद्धाः=साधिताखिलाभीप्सिताः, ‘सिद्धि’ सिद्धिं=निवृत्तिपदोपलब्धिं ‘मम’ मत्त्व ‘दिसतु’ दिशन्तु-ददत्वित्यर्थः ।

यद्यपि सिद्धाना वीतरागत्वेनाऽऽरोग्यबोधिलाभादिदायकत्व न सघटते तथापि याचन्या भाषया भक्त्युद्रेकादेवमुच्यते इति न काऽपि क्षतिः ।

से जघन्य और मध्यम को हटाने के लिये ‘उत्तम’ पद दिया है ॥

सकल कर्ममलों के हट जाने के कारण चन्द्रमासे भी अत्यन्त निर्मल, केवलज्ञानरूपी आलोक (प्रकाश) से सपूर्ण लोकालोक के प्रकाशक होने के कारण सूर्य से भी अधिक तेजवाले, तथा अनेक अनुकूल प्रतिकूल परीपह-उपसर्ग के सहनेवाले होने से स्वयम्भूरमण समुद्र के समान सुगम्भीर सिद्ध भगवान मुझे सिद्धि (मोक्ष) देवें ॥ ७ ॥

सिद्ध भगवान वीतराग हैं अतएव यद्यपि किसीको आरोग्य बोधिलाभ आदि दे नहीं सकते तो भी भव्यों की उत्कृष्ट श्रद्धा

छे, तेमाथी जघन्य अने मध्यमने हटाववा भाते ‘उत्तम’ पद आपेछु छे

सकल कर्ममल हूर यथे जवाना कारेछे अन्द्रथी पणु अत्यन्त निर्मल, केवलज्ञानरूपी आयोड-प्रकाश)थी स पूर्ण लोकालोकांना प्रकाशक होवाना कारेछे सूर्यथी पणु अधिक तेजवाणा, तथा अनेक अनुकूल प्रतिकूल परीपहो उपसर्गोंना सहन करवावाणा होवाथी स्वयम्भूरमणु समुद्र ॥ समान सुगम्भीर सिद्ध भगवान भने सिद्धि (मोक्ष) आपो ॥ ७ ॥

सिद्ध भगवान वीतराग छे अे कारणुथी ने के कोधने आरोग्य बोधिलाभ आदि आपी शकता नथी तो पणु भव्य छेवानी उत्कृष्ट श्रद्धाथी आ प्रकाशनी

३-‘चदेसु’ ‘आइचेसु’ अत्राऽऽर्पत्वात्पञ्चम्यर्थे सप्तमी ।

सनिदानात्मकोऽत आह—‘समाहिवर’ इति, समाधान ‘समाधिः=रत्नत्रयोपलब्धिः। अयं च समाधिर्द्रव्यभावभेदाद्विधिविधस्तत्र ‘द्रव्यसमाधिः=शरीरादि सौख्यावाप्तिः, भावसमाधिस्तु रत्नत्रयोपलब्धिविधस्तयोर्द्रव्यसमाधिव्यावृत्त्यर्थं च पदमाह—वरश्चासौ समाधिश्चेति<sup>२</sup> विग्रहः, यद्वा समाभ्योर्वर<sup>३</sup> समाधिवरस्तम्, समाधिवरश्च भावसमाधिरेव, स च सम्यग्ज्ञानादिरत्नत्रयप्राप्तिस्वरूप इति तदा नीमनिदानबोधिलाभस्योदयात् सनिदानबोधिलाभव्यवच्छेदः, सम्यग्ज्ञानादिरत्नत्रयप्राप्तिर्हि मोक्षसाक्षात्कारणमतस्तस्या वेलाया सनिदानबोधिलाभोपक्षयादनिदानबोधिलाभो जायते। समाधिवरोऽपि जघन्यादिभेदैरनेकविधस्तस्मादाह

है’ इस बात को समझाने के लिए ‘समाहिवर’ कहा है, समाधि भी द्रव्य-भाव भेदसे दो प्रकारकी है, उनमें से शरीरादि सुख की प्राप्ति रूप द्रव्यसमाधि को हटा कर केवल रत्नत्रय प्राप्तिरूप भावसमाधि का ग्रहण करने के लिए ‘वर’ पद दिया है अत एव सनिदान बोधिलाभ का निवारण हो गया, क्योंकि ज्ञानादिरत्नत्रय की प्राप्ति मोक्ष का साक्षात् कारण है, इसीलिए इस अवस्था में केवल अनिदान (नियानारहित) बोधिलाभ रहता है। भावसमाधि भी जघन्य आदि भेदों से अनेक प्रकार की है उनमें

भाववा भाटे ‘समाहिवर’ कहेलु छे, समाधि पक्षु द्रव्य-भाव लेदधी जे प्रकारनी छे तेभाथी शरीरादि सुखनी प्राप्ति रूप द्रव्यसमाधिने उठावीने केवव रत्नत्रयीनी प्राप्तिरूप भावसमाधिनु अडल्लु करवा भाटे ‘वर’ पद आपेलु छे अटला भाटे सनिदान बोधिलाभनु निवारणु थय गयु, करलु छे ज्ञानादि-रत्नत्रयीनी प्राप्ति मोक्षतु साक्षात् कारणु छे आ भाटे जे अवस्थाभा केवल अनिदान (नियानारहित) बोधिलाभ रहे छे भावसमाधि पक्षु जघन्य आदि लेदधी अनेक प्रकारनी

१- समाधिः, सम् + आहपूर्वकात् धा’ धातोः ‘उपसर्गे घो कि.’ (पा ३।३।८२) इति भावे कि प्रत्ययः, आतो लोप इटी’-न्याकारलोपः।

२- ‘वरसमाधि’ पूर्वनिपातप्रकरणस्य ‘समुद्राभ्राद्’ (पा ४।४।११८) इत्यादिनिर्देशवलेनाऽनित्यत्वाद्भ्रशब्दस्य पश्चात्प्रयोगः। अत्रत्यादिना ‘लक्षणहेत्वो क्रियाया.’ (३।२।१२६) इत्यादीना ग्रहणम्।

३- ‘समाभ्योर्वर’ अत्र सप्तमीतत्पुरुष पष्ठीतत्पुरुषस्तु ‘न निर्दो’ (पा २।२।१०) इति प्रतिषेधान्नात्र भवति।

अथोधिनामादिसिद्धौ तपश्चरणादिक्लेशोऽकिञ्चित्कर इति तु नागङ्कनीयम्, तपः-  
सयमाद्यनुष्ठानेन दृढस्य श्रद्धानस्योत्पत्तौ भक्तिदाढर्थे तेन कर्मक्षयस्ततो मोक्ष इति  
भक्तिदाढर्थे प्रति तपस्यमाद्यनुष्ठानस्य हेतुत्वात् ॥१-७॥

इति श्रीविश्वविरयात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-  
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्भग्यप्रयनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहू-  
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित कोल्हापुर-  
राजगुरु-सालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-  
घामीलाल-व्रतिविरचिताया धीश्रमणमूत्रस्य मुनि-  
तोपण्याख्याया व्याख्याया चतुर्विंशति-  
स्तवाख्य द्वितीयमध्ययन समाप्तम् ॥ २ ॥

कोई कहे कि-भगवान की भक्ति से ही मोक्ष प्राप्ति तक  
की सिद्धि हो तो तप सयम आदि के कष्ट उठाने का क्या  
प्रयोजन है ?

इसके लिये यही उत्तर है कि-तप सयम आदि के आराधन  
करने से 'श्रद्धान' दृढ हो कर भक्ति प्रबल होती है और भक्ति  
की दृढता से कर्मों की निर्जरा होकर क्रमसे मोक्ष की प्राप्ति  
होती है ॥१-७॥

॥ इति द्वितीय अध्ययन सपूर्ण ॥

कोई कहे कि-भगवान की भक्ति से ही मोक्ष प्राप्ति तक  
की सिद्धि हो तो तप सयम आदि कष्ट उठाने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर ये है कि-तप सयम आदि की आराधना करवाती श्रद्धा  
दृढ होने लकित प्रबल थाय है अने लकितनी दृढताथी कर्मोंनी निर्जरा थधने  
कर्मथी मोक्षनी प्राप्ति थाय है (१-७)

॥ इति द्वितीय अध्ययन सपूर्ण ॥ २ ॥

નનુ તાવતાડપિ યાચ્ચામદ્ગ આપદ્વેત ઇતિ ચેન્ન; મક્તિમહિમ્ના સ્વત્ત્વ એવ યાચિત્તાર્થોપલબ્ધેઃ, પરિપક્વમક્તેસ્તથાસ્વાભાવ્યાત્ । ન ચૈતસ્યા પ્રાર્થનાયા સનિદાનત્ત્વ (સક્રામત્વ) પ્રસજ્જત ઇતિ ગાચ્ય, પ્રાર્થનાયા મોક્ષપ્રાપ્તિત્રિપયકત્વાત્ ।

આહ-જિનવરેર્યદાતવ્ય ગોધિલાભાદિદેહુભૂત તદ્વત્તમેવ રત્નત્રયોપદેશરૂપ મિતિ કિમતઃ પરમવશિષ્ઠ દાતવ્ય યત્પ્રાર્થ્યતે? ઇતિ, ઉચ્યતે-યત્રપિ સર્વૈ તૈરુપદે શેન દત્તમેવાસ્તિ તથાપ્યુત્કટભાવમક્તિમરિતસ્યેત્યમુક્તૌ સચ્ચિતાના જ્ઞાનાવરણી યાદીના કર્મણા પ્રક્ષયો મ્મરિતિ, તત્પ્રક્ષયાચ્ચ મોક્ષોપલબ્ધિરિતિ । જિનમત્ત્યૈવાડરો-

સે હસ પ્રકાર કી પ્રાર્થના ઉચિત હી હૈ, ક્યોંકિ સિદ્ધ મ્મગવાન્ કુછ મ્મી ન દેવેં પર મ્મક્તિમાન્ મ્મભવ્યોં કી અપની અટલ મ્મક્તિ કે પ્રમાવ સે પ્રાર્થના કે અનુસાર ફલ હો જાતા હૈ । યહ પ્રાર્થના મોક્ષપ્રાપ્તિ કે લિયે હૈ અતઃ હસે નિદાનસહિત નહીં કહ સકતે ।

ઘરા પ્રશ્ન ઉઠતા હૈ કિ સિદ્ધ મ્મગવાન્ જો કુછ દેસકતે થે વહ મોક્ષ માર્ગ કા ઉપદેશ અરિહત અવસ્થામ્મે દે હી ચુકે હીં ફિર ક્યા શેપ રહ ગયા જિસકે લિયે પ્રાર્થના કી જાતી હૈ? ।

હસકા સમાધાન યહ હૈ કિ હસ પ્રકાર મ્મક્તિમાન્ મ્મભવ્યોં કી ઉત્કૃષ્ટ ભાવના સે કી હુઈ પ્રાર્થના કે દ્વારા પૂર્વસચ્ચિત જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોંકા ક્ષય હોકર મોક્ષપ્રાપ્તિ હોતી હૈ ।

પ્રાર્થના ઉચિત ન છે, કારણ કે સિદ્ધ ભગવાન કાંઈ પણ આપતા નથી તેા પણ ભકિતમાન ભવ્ય જીવોની પોતાની અટલ ભકિતના પ્રભાવથી પ્રાર્થના અનુસાર ફળ થઈ જાય છે આ પ્રાર્થના મોક્ષ પ્રાપ્તિ માટે છે, માટે તેને નિબાન-સહિત કહી શકાય નહિ

અહિં એક પ્રશ્ન થાય છે કે, સિદ્ધ ભગવાન જે કાંઈ આપી શકે છે તે મોક્ષમાર્ગનેા ઉપદેશ અરિહત અવસ્થામા આપી ચુકયા છે પંજી થુ બાકી રહી ગયુ છે કે જેના માટે પ્રાર્થના કરવામા આવે ?

આ પ્રશ્નનું સમાધાન એ છે કે આ પ્રમાણે ભકિતમાન ભવ્ય જીવોની ઉત્કૃષ્ટ ભાવનાથી કરવામા આવેલી પ્રાર્થના દ્વારા પૂર્વસચ્ચિત જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોંકા ક્ષય થઈને મોક્ષ પ્રાપ્તિ થાય છે

यत्रोधिनाभासिद्धौ तपश्चरणादिक्लेशोऽकिञ्चित्कर इति तु नागङ्कनीयम्, तपः-  
सयमाद्यनुष्ठानेन दृढस्य श्रद्धानस्योत्पत्तौ भक्तिदाढ्यं तेन कर्मक्षयस्ततो मोक्ष इति  
भक्तिदाढ्यं प्रति तपःसयमाद्यनुष्ठानस्य हेतुत्वात् ॥१-७॥

इति श्रीविश्वविरूपाय-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-  
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्भाग्यपत्रनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दरु-श्रीशाहू-  
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित कोल्हापुर-  
राजगुरु-गालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवानर-पूज्यश्री-  
घामीलाल-व्रतिविरचिताया धीश्रमणमूत्रस्य मुनि-  
तोपण्याख्याया व्याख्याया चतुर्विंशति-  
स्तवाराख्य द्वितीयमध्ययन समाप्तम् ॥ २ ॥

कोई कहे कि-भगवान की भक्ति से ही मोक्ष प्राप्ति तक  
की सिद्धि हो तो तप सयम आदि के कष्ट उठाने का क्या  
प्रयोजन है ?

इसके लिये यही उत्तर है कि-तप सयम आदि के आराधन  
करने से 'श्रद्धान' दृढ हो कर भक्ति प्रबल होती है और भक्ति  
की दृढता से कर्मों की निर्जरा होकर क्रमसे मोक्ष की प्राप्ति  
होती है ॥१-७॥

॥ इति द्वितीय अध्ययन सपूर्ण ॥

बोधि क्लेशों के भगवानकी भक्तिसे व मोक्षप्राप्ति सुधीनी सिद्धि  
थाय छे तो तप सयम आदि कष्ट उठाववानुं शु प्रयोजन छे ?

उत्तर ओ छे के तप सयम आदिनी आराधना करवाथी श्रद्धा  
दृढ यधने भक्ति प्रबल थाय छे अने भक्तिनी दृढताथी कर्मोंनी निर्जरा यधने  
कर्मथी मोक्षनी प्राप्ति थाय छे (१-७)

॥ इति द्वितीय अध्ययन सपूर्ण ॥ २ ॥

। अथ तृतीयमध्ययनम् ।

द्वितीयेऽध्ययने प्राणातिपातादिसारत्रय्यापारनिवृत्तिलक्षणसामायिकव्रतो पदेषुणामर्हता गुणोत्कीर्त्तन कृतम्, अधुनाऽर्हदुपदिष्टस्यापि सामायिकव्रता देयुरुकृपयैवोपलब्धेयुरुवन्दनोत्तरमेव प्रतिक्रमणानुष्ठानस्य शिष्टाचारपरिगृहीत त्वाच्चाऽवसरसगता गुरुवन्दना कर्तुं वन्दनाय तृतीयमध्ययनमाह—‘इच्छामि’ इत्यादि,

॥ मूलम् ॥

इच्छामि खमासमणो! वदिउ जावणिजाए निसीहियाए, अणुजाणह मे मिउग्गह, निसीहि अहोकाय कायसफास, खमणिज्जो मे किलामो, अप्पकिलताण बहुसुभेण भे दिवसो वइक्कतो? जत्ता भे? जवणिज्ज च भे? खामेमि खमासमणो! देवसिअ वइक्कम, आवस्सियाए पडिक्कमामि खमासमणाण देवसिआए आसायणाए तेत्तीसन्नयराए जंकि चिमिच्छाए मणदुक्कडाए

॥ अथ तीसरा अध्ययन प्रारम्भ ॥

दूसरे अध्ययनमे प्राणातिपात आदि सावद्य योगकी निवृत्तिरूप सामायिक व्रतके उपदेशक तीर्थकरों का गुणोत्कीर्त्तन किया गया है। तीर्थकरों से उपदिष्ट वह सामायिक व्रत गुरु महाराज की कृपासे ही प्राप्त हो सकता है इस कारण, तथा गुरुवन्दनापूर्वक ही प्रतिक्रमण करने का शिष्टाचार होने से गुरुवन्दना करना आवश्यक है अतएव अथ वन्दना अध्ययन नामक तीसरा अध्ययन प्रारम्भ करते हैं—‘इच्छामि’ इत्यादि।

अथ त्रीण्यु अध्ययन प्रारम्भ

प्रथम अध्ययनमा प्राणातिपात वगेरे- सावद्य योगनी निवृत्तिरूप सामायिक व्रतना उपदेशक तीर्थ करानु शुद्धोत्कीर्त्तन करवामा आण्यु छे तीर्थ करान्ने उपदेशेण सामायिक व्रत गुरु महाराजनी कृपाथी न प्राप्त थाय छे, अण्णो भाटे, तथा शुभपदनापूर्वक न प्रतिक्रमण करवानो शिष्टाचार उपाथी शुभपदना करवी ते आवश्यक छे, अण्णो भाटे उवे पदनाध्ययन नामनु त्रीण्यु अध्ययन प्रारम्भ करे छे—‘इच्छामि’ इत्यादि

वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोहाए सब्ब-  
कालियाए सब्बमिच्छोवयाराए सब्बधम्माइक्कमणाए आसायणाए  
जो मे देवसिओ अडयारो कओ तस्स खमासमणो । पडिक्कमामि  
निंदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि ॥ सू० १ ॥

॥ छाया ॥

इच्छामि क्षमाश्रमण ! वन्दितु यापनीयया नैषेधिक्या, अनुजानीत मे  
मितावग्रहम् । निपिध्य अध.काय कायसस्पर्शम् । क्षमणीयो भवद्भिः क्लमः ।  
अल्पक्लान्ताना बहुशुभेन भवता दिवसो व्यतिक्रान्तः ? , यात्रा भवताम् ? याप-  
नीय च भवताम् ? क्षमयामि क्षमाश्रमण ! दैवसिक व्यतिक्रमम् । आवश्यक्या  
प्रतिक्रमामि क्षमाश्रमणाना दैवसिक्या आशातनया त्रयस्त्रिंशदन्यतरया यत्किञ्चि-  
न्मिथ्याभूतया मनोदुष्कृतया वचोदुष्कृतया कायदुष्कृतया क्रोधया मानया मायया  
लोभया सर्वकालिक्या सर्वमिव्योपचारया सर्वधर्मातिक्रमणया आशातनया  
यो मया दैवसिकोऽतिचारः कृतस्तस्य क्षमाश्रमण ! प्रतिक्रमामि निन्दामि गर्हे,  
आत्मान व्युत्सृजामि ॥ सू० २ ॥

॥ टीका ॥

‘खमासमणो’ क्षमण=परीपहादीना सहन क्षमा, ‘श्रमणो, शमन.,  
समना, समण.’ इत्येषा प्राकृते ‘समणो’ इति भवति, तत्र श्राम्यति=तपस्यतीति,  
भवश्रमणहेतुभूतविषयेषु खिद्यतीति, यद्वाऽन्तर्भावितण्यर्थत्वात् श्राम्यति=दमनेन

‘श्रमणः, शमनः, समना, समणः’ इन चारों का प्राकृतमें  
‘समणो’ ऐसा रूप बनता है अतः संस्कृत छाया के अनुसार इन  
चारों का अलग २ अर्थ कहते हैं—

चारह प्रकार की तपस्या में श्रम (परिश्रम) करनेवाले,

“श्रमण, शमन”, समनाः, समण, आ आरेय पदोनु प्राकृत बापाभा  
“समणो” ओषु ३५ गने छे, ओषुले संस्कृत छाया अनुसार ओ आरेय पदोना  
बुदा-बुदा अर्थ छडे छे—

गार प्रकारनी तपस्याभा श्रम (परिश्रम) करवावाणा, अथवा, धन्दिथ,

१-क्षमा-‘क्षमूप् सहने’ अस्मात् ‘पिद्धिदादिभ्योऽद्’ (३।३।  
१०४) इति सूत्रेण स्त्रियामद्धपस्ययस्ततष्ठाप् ।



श्रमयतीन्द्रियनोइन्द्रियाणीति 'श्रमणः । श्रमयति=शान्तिं नयति कपायनोकषायरूपानलमिति, शाम्यति=विशालभनाटपीपर्यटद्भोगानलज्वालामालाकरालतापकलापतः पृथग्भवतीति वा 'शमनः । समान=स्वपरजनेषु तुल्य मनो यस्येति, कुशलमयेन मनसा सह वर्त्तते इति वा 'समनाः । सम्=सम्यक् 'अणति=प्रवचनब्रूत इति, सम्यक् 'अण्यते=संयमवलेन कपाय जित्वा जीवतीति वा समण' । क्षमाप्रधानः श्रमणः, शमनः, समनाः, समणो वा क्षमाश्रमणादिस्तत्संबुद्धौ ।

अथवा इन्द्रिय नोइन्द्रिय (मन) का दमन करनेवाले को 'श्रमण' कहते हैं १ । कपाय-नोकपायरूप अग्नि को शान्त करनेवाले, या ससाररूप अटवीमें फैली हुई कामभोगरूप अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं के भयङ्कर ताप से आत्मा को अलग करनेवाले को 'शमन' कहते हैं २ । शत्रुमित्र में एकसा मन रखनेवाले, अथवा विशुद्ध मनवाले को 'समना' कहते हैं ३ । अच्छी तरह प्रवचन का उपदेश देनेवाले, अथवा समय के बल से कपाय को जीतकर रहने वाले को 'समण' कहते हैं ४ । परन्तु यहाँ पर प्रसिद्धि के कारण 'श्रमण' शब्द को लेकर ही व्याख्या करते हैं—क्षमा है प्रधान जिनमें

नोइन्द्रिय (मन)नु दमन करवावाणाने "श्रमण" कहे छे (१) कपाय, नोकपाय इय अग्निने शांत करवावाणा अथवा ससाररूपी अटवीमा झेलाअडेवी काम-बोगरूपी अग्निनी प्रचण्ड ज्वालामेना लय कर तापथी आत्माने अलग-पुढे करवावाणाने 'समन' कहे छे (२) शत्रु-मित्रमा अेकसरथु मन राखवावाणा अथवा विशुद्ध मनवाणाने 'समना' कहे छे (३) परापर सारी रीते प्रवचनने उपदेश आखवावाणा, अथवा सधमना गणथी कपायेने छुतीने रहेवावाणाने 'समण' कहे छे (४) परन्तु अर्द्ध प्रसिद्धिना कारणे 'श्रमण' शब्दने लधने न व्याख्या करे छे, लेनी अहर क्षमाशुष्य सुष्य छे तेने क्षमाश्रमण कहे छे

१- 'श्रमु तपसि खेदे च' अस्मान्नन्यादित्वात्कर्त्तरि ल्यु ।

२- शमन - 'शमु उपशमे' अस्माण्यन्ताच्छुद्धाद्वा ल्यु पूर्ववत् ।

३- समना - पूर्वत्र व्युत्पत्तौ 'समानस्यच्छन्दसी' - त्यत्र 'समानस्ये'ति योगविभागाद् समानस्य स, उत्तरत्र 'वोपसर्जनस्य' (६।३।८३) इति सहस्य सः ।

४- 'अणति' भौवादिकात्परस्मपदिन 'शब्दार्थकात् 'अण' घातो रिदिम् ।

५- 'अण्यते' दैवादिकस्य आत्मनेपदिन 'अण प्राणने' इ ।

‘जावणिज्जाए’ यापनीयया=शक्त्यनुकूलया ‘निसीहियाए’ निषेधन निषेधः= प्राणातिपातादिसावद्यव्यापारविरतिः सा प्रयोजन यस्या सा नैषेधिकी, तथा नैषेधिक्या तन्वेति शेष, शक्त्यनुकूलेन प्राणातिपातादिनिवृत्तरूपेण शरीरेणेत्यर्थः, ‘वदिउ’ वन्दितुम्=अभिवादयितुम् ‘इच्छामि’ अभिलषामीत्यर्थः । अतः ‘मे’ मम ‘मिउग्गह’ अवग्रहत् इत्यवग्रहः=क्षेत्रम्, यद्वा-अवग्रहणमवग्रहः=क्षेत्रपरिग्रहः, मितथासावद्यग्रहश्च मितावग्रहः, अथवा मितायाः अर्थात्परिमितभूमेरवग्रहः=ग्रहण मितावग्रहः=उपविष्टस्य गुरोरभिमुख वर्तमानायाः स्वदेहपरिमिताया भूमैर्ग्रहण, तम् ‘अणुजाणह’ अनुजानीत=मितावग्रहप्रवेशायानुज्ञा दत्त, अस्मिन्नवसरे गुरु ‘अनुजानामि’ इति भणति, ततोऽनुज्ञातः शिष्यः ‘निसीहि’ निषिध्य=सावद्यव्यापारान् परित्यज्य ‘अहोकाय’ कायस्य=शरीरस्याऽधः अग्रःकायः, यद्वा अधः=अधस्तनः कायः अग्रःकायस्त चरणस्वरूप प्रतीति शेषः । पष्ठ्यर्थे वा द्वितीयाऽऽर्पत्वात् । ‘कायसफास’ कायेन=स्वशिरो-

उनको ‘क्षमाश्रमण’ कहते हैं । यहा शिष्य सम्बोधन करके कहता है कि “ हे क्षमाश्रमण ! मैं अपनी शक्ति के अनुसार प्राणातिपात आदि सावद्य व्यापारों से रहित काय से वन्दना करना चाहता हूँ, अतएव मुझे आप मितावग्रह (जहा गुरु महाराज विराजित हों उनके चारों ओर की साढे तीन २ हाथ भूमि) में प्रवेश करने की आज्ञा दीजिये” । उस समय गुरु शिष्य को ‘अनुजानामि’ कह कर प्रवेशकी आज्ञा देवे, तय आज्ञा पाकर शिष्य बोले-‘ हे गुरु महाराज ! मैं सावद्य व्यापारों को रोक कर मस्तक और हस्त से

आदि शिष्य सम्बोधन करीने कहे छे के -

हे क्षमाश्रमण ! हे भारी शक्ति अनुसार प्राणातिपात आदि सावद्य (पापकारी) व्यापारही रहित शरीर वडे वन्दना करवा छेवछा कइ छु, अतएवा भाटे भने आप मितावग्रह (ज्या गुरु महाराज विराजित होय तेमनी आरे पाण्डु साडा त्रणु साडा त्रणु हाथ भूमि)मा प्रवेश करवानी आज्ञा आपो ते समये गुरु शिष्यने ‘अनुजानामि’ कहीने प्रवेशवानी आज्ञा आपो तयारे आज्ञा भेणवीने शिष्य कहे के - हे गुरु महाराज ! हे सावद्य व्यापारोने रोकने शिर तथा

१-‘नैषेधिकी तदस्येत्यधिकारे ‘प्रयोजनम्’ (५।१।१०८) इति ठक्, ठगन्तलान्नीप् ।

हस्तलक्षणेन सस्पर्शः=सम्यक् स्पर्शस्तम् । 'अणुजाणह' इत्यनेन पूर्वोक्तेन सम्बन्धः, करोमीत्यस्य शेषो वा । 'किलामो' क्लमः=शरीरग्लानिकृत् मस्कृतोऽपराधः निजरुठोरकरशिरसा' भवदीयकोमलचरणकमलस्पर्शनेत्यर्थात्, यद्वा मदीयेनाऽनेन नमस्कारव्यापारेण भवतो मानस एव कश्चन श्रमः मज्जातः स्यात्स 'भे' भवद्भिः, यद्वा भवता? 'खमणिज्जो' क्षमणीयः=सोढव्यः, तथा 'अपकिलताण' अल्पशब्दोऽत्राऽभाववाची, 'हान्त=हान्तिः, अल्प=विगत हान्त=शरीरग्लानिरूपः श्रमो येषां तेऽल्पकलान्तास्तेषामल्पहान्तानाम्-अल्पवेदनावतामित्यर्थः, 'भे' भवता गुरुवर्याणां 'दिवसो' दिवस' 'बहुसुभेण' बहु च तद्भुम च बहुभुम तेन प्रभूतशान्तिपूर्वकमित्यर्थः 'वइकतो' व्यतिक्रान्त =गत' किम्? 'जत्ता' यात्रा=तपोनियमादिस्वरूपा सयमयात्रा 'भे' भवता निराबाधे? ति शेषः, च=किञ्च 'भे' भवता शरीरमिति गम्यते 'जवणिज्ज' यापनीयम्=इन्द्रियनोइन्द्रियबाधारहित वर्त्तते? इति शेष, एव सयमयात्रादिकुशलमापृच्छथ शिष्यः पुनरप्याह—'खमासमणो' हे क्षमाश्रमण ! 'खामेमि' क्षमापयामि

आपके चरण का स्पर्श करता हूँ' इस तरह वन्दना करनेमें मुझसे जो आपको किसी प्रकार का क्लम (कष्ट) पहुँचा हो आप उसकी क्षमा करे। हे गुरु महाराज ! आपका दिन बहुत सुखशान्ति से व्यतीत हुआ न?, आपकी सयमयात्रा निराबाध है न?, और आपका शरीर, इन्द्रिय, नोइन्द्रिय की बाधा से रहित है न?। इस प्रकार सयमयात्रा और शरीर के सम्बन्ध में कुशल पूछ कर फिर से शिष्य कहता है—हे क्षमाश्रमण ! मुझसे जो दिवस-सम्बन्धी

हाथी आपना चरणो स्पर्श कइ छु आ प्रभाणे वदना करवाथी मारा वडे आपने ने केछ प्रकारथी कष्ट थयु होय तो आप भने क्षमा करे।

हे गुरु महाराज ! आपने दिवस भूषण शान्तिथी पसार थये छे के केम ? आपनी सयमयात्रा निराबाध छे के केम ? अने आपनु शरीर, इन्द्रिय, नोइन्द्रियनी उपाधिथी रहित छे के केम ? आ प्रभाणे सयमयात्रा अने शरीरना सजधमा कुशलता पूछीने शिष्य इरीथी कडे छे के—हे क्षमाश्रमण ! माराथी

१—'निजरुठोरकरशिरसा' अत्र प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भाव - ।

२—'भवताम्' अत्र 'कृत्यानां कर्त्तरि वा' (र।३।७१) इति कर्त्तरि पठ्यते ।

३—'हान्त' भाषे च ।

‘देवसिय’ दिवसे भवो दैवसिकस्त, दिवसगण्डोऽत्र रात्रेरप्युपलक्षणस्तेनाऽहो-  
रात्रकृतमित्यर्थः, ‘वइक्म’ व्यतिक्रमोऽपराधस्तम् ‘आवस्सियाए’ आवश्यक्या=  
अवश्य कर्तव्यैश्वरणकरणयोगैर्निर्वृत्ता आवश्यकी=अवश्यकर्तव्यगुरुश्रूपादिरूपा  
तया हेतुभूतया यत्किञ्चिद्विपरीतमाचरित स्यात् तत् ‘पडिक्मामि’ प्रतिक्रामामि=  
परित्यजामि, यद्वा तस्मात् प्रतिक्रामामि=विनिवर्त्ते, इत्येव केचिद्व्याचभते,  
वस्तुतस्तु ‘खामेमि खमासमणो देवसिय वइक्म आवस्सियाए पडिक्मामि’  
इत्यस्य हे क्षमाश्रमण ! सञ्जात दैवसिकमपराध क्षमापयामि भविष्यन्त च  
तमवश्यकर्त्तव्यया भवदीयाऽऽज्ञाराधनया परित्यजामीत्येवार्थ इति वयम् ।  
प्रोक्तमेवार्थ विशेषतः स्फोरयति-‘खमा०’ इति । ‘खमासमणाना’ क्षमाश्रमणाना  
पूर्वोक्ताना ‘देवसियाए’ दैवसिक्या, दिवसपदस्य रात्रेरप्युपलक्षणत्वादहोरात्रस-

अपराध हुआ हो उसकी क्षमा चाहता हूँ आप क्षमा करे, आवश्यक  
क्रिया करते समय भूल से जो कुछ विपरीत आचरण किया गया  
उससे निवृत्त होता हूँ’ इस प्रकार कोई २ व्याख्या करते हैं ।

वास्तव में ‘खामेमि खमासमणो ! देवसिय वइक्म आवस्सि-  
याए पडिक्मामि’ का तात्पर्य यह है-‘हे क्षमाश्रमण ! दिवस  
सन्धी जो कुछ अपराध हो चुका हो उसके लिये क्षमा चाहता  
हूँ और भविष्यमें आपकी आज्ञाकी आराधना रूप आवश्यक क्रिया  
के द्वारा अपराध से अलग रहूँगा, अर्थात् अपराध नहीं होने  
देनेका प्रयत्न करूँगा’ । इसी बात को शिष्य विस्तारसे कहता  
है-‘हे गुरु महाराज ! आप क्षमाश्रमणों की, दिवस-समन्धी तैतीस

दिवस सणधी ने काँध अपराध थये होय तेनी क्षमा मागु छु आप क्षमा  
करे, आवश्यक क्रिया करवा वभते लूदथी मारा वडे ने काँध विपरीत आचरण  
थयु होय तेनाथी निवृत्त थाँ छु -काँध काँध आवी रीते व्याख्या करे छे

वास्तविक रीते तो ‘खामेमि खमासमणो देवसिय वइक्म आवस्सियाए  
पडिक्मामि’ आने तात्पर्य अे छे डे ‘हे क्षमाश्रमण ! दिवससणधी ने काँध  
अपराध थये होय तेना माटे क्षमा मागु छु, अने भविष्यमा आपनी आज्ञानी  
आराधनारूप आवश्यक क्रिया वडे अपराधथी दूर रहीथ अर्थात् अपराध न थवा  
पामे तेवे प्रयत्न करीथ आ वातने शिष्य विस्तारथी कहे छे -

हे गुरु महाराज ! आप क्षमाश्रमणनी दिवससणधी तेनीथ आशा

હસ્તલક્ષણેન સસ્પર્શઃ=સમ્યક્ સ્પર્શસ્તમ્ । ‘અણુજાણહ’ ઇત્યનેન પૂર્વોક્તેન સમ્બન્ધઃ, કરોમીત્યસ્ય શેષો યા । ‘કિલામો’ ક્રમઃ=શરીરગ્લાનિકૃત્ મસ્કૃતોઽપરાધઃ નિજકઠોરકરશિરસા’ મયદીયકોમલચરણમલસ્પર્શેનેત્યર્થાત્, યદ્વા મદી-યેનાઽનેન નમસ્કારવ્યાપારેણ મયતો માનસ એવ કશ્ચન શ્રમઃ મજ્ઞાતઃ સ્યાત્સ ‘મે’ ભવદ્ધિઃ, યદ્વા ભવતા? ‘સ્વમણિજ્ઞો’ ક્ષમણીયઃ=સોદઘ્યઃ, તથા ‘અપ્પ-કિલતાણ’ અલ્પશબ્દોઽગ્રાઽભાવવાચી, ‘ક્લાન્ત=ક્રાન્તિ., અલ્પ=વિગત ક્રાન્ત=શરીર ગ્લાનિરૂપઃ શ્રમો યેષા તેઽલ્પવલાન્તાસ્તેપામલ્પક્રાન્તાનામ્-અલ્પવેદનાવતામિત્યર્થ, ‘મે’ ભવતા ગુરુવર્યાણા ‘દિવસો’ દિવસઃ ‘વહુમ્શુભેણ’ વહુ ચ તચ્છુમ ચ વહુશુભ તેન પ્રભૂતશાન્તિપૂર્વકમિત્યર્થઃ ‘વઙ્કતો’ વ્યતિક્રાન્ત’=ગત’ કિમ્ ? ‘જત્તા’ યાત્રા=તપોનિયમાદિસ્વરૂપા સયમયાના ‘મે’ ભવતા નિરાવાધે? તિ શેષઃ, ચ=કિન્ચ ‘મે’ ભવતા શરીરમિતિ ગમ્યતે ‘જવણિજ્ઞ’ યાપનીયમ્=ઇન્દ્રિ-યનોઇન્દ્રિયવાધારહિત વર્ત્તે? ઇતિ. શેષ, એવ સયમયાત્રાદિકુશલમાપૃચ્છય શિષ્ય. પુનરપ્યાહ-‘સ્વમાસમણો’ હે ક્ષમશ્રમણ ! ‘સ્વામેમિ’ ક્ષમાપયામિ

આપકે ચરણ કા સ્પર્શ કરતા હું’ ઇસ તરહ વન્દના કરનેમેં મુજ્જસે જો આપકો કિસી પ્રકાર કા ક્રમ (કષ્ટ) પહુચા હો આપ ઉસકી ક્ષમા કરે । હે ગુરુ મહારાજ ! આપકા દિન વહુત સુખશાન્તિ સે વ્યતીત હુઆ-ન ?, આપકી સયમયાત્રા નિરાવાધ હૈ ન ?, ઓર આપકા શરીર, -ઇન્દ્રિય, નોઇન્દ્રિય કી વાધા સે રહિત હૈ ન ? । ઇસ પ્રકાર સયમયાત્રા ઓર શરીર કે સમ્બન્ધ મેં કુશલ પૂછ કર ફિર સે શિષ્ય કહતા હૈ-હે ક્ષમાશ્રમણ ! મુજ્જસે જો દિવસ-સમ્બન્ધી

હાયથી આપના ચરણનો સ્પર્શ કરું છું આ પ્રમાણે વદના કરવાથી મારા વડે આપને જે કોઈ પ્રકારથી કષ્ટ થયું હોય તો આપ મને ક્ષમા કરો

હે ગુરુ મહારાજ ! આપનો દિવસ ખૂબ શાંતિથી પસાર થયો છે કે કેમ ? આપની સયમયાત્રા નિરાવાધ છે કે કેમ ? અને આપનું શરીર, ઇન્દ્રિય, નોઇન્દ્રિયની ઉપાધિથી રહિત છે કે કેમ ? આ પ્રમાણે સયમયાત્રા અને શરીરના સંબંધમા ક્ષણતા પૂછીને શિષ્ય ફરીથી કહે છે કે- હે ક્ષમાશ્રમણ ! મારાથી

૧- ‘નિજકઠોરકરશિરસા’ અર્થ પ્રાણ્યદ્વત્વાદેકવદ્વાત્ર ।

૨- ‘ભવતામ્’ અર્થ ‘કૃત્યાના વર્ષરિ વા’ (રે. ૩. ૭૧) ઇતિ કર્ષરિ પઠ્ઠી ।

૩- ‘ક્લાન્ત’ ભાવે ક્ ।

‘देवसिय’ दिवसे भवो दैवसिकस्त, दिवसशब्दोऽत्र रात्रेरप्युपलक्षणस्तेनाऽहो-  
रात्रकृतमित्यर्थः, ‘वड्कम’ व्यतिक्रमोऽपरायस्तम् ‘आवस्सियाए’ आवश्यक्या=  
अवश्य कर्तव्यैश्वरणकरणयोगैर्निर्वृत्ता आवश्यकी=अवश्यकर्तव्यगुरुश्रुपादिरूपा  
तया हेतुभूतया यत्किञ्चिद्विपरीतमाचरित स्यात् तत् ‘पडिक्कामामि’ प्रतिक्रामामि=  
प्रतियजामि, यद्वा तस्मात् प्रतिक्रामामि=विनिवर्त्ते, इत्येव केचिद्व्याचक्षते,  
वस्तुतस्तु ‘खामेमि खमासमणो देवसिय वड्कम आवस्सियाए पडिक्कामामि’  
इत्यस्य हे क्षमाश्रमण ! सञ्जात दैवसिकमपराध क्षमापयामि भविष्यन्त च  
तमवश्यकर्तव्यया भवदीयाऽऽज्ञाराधनया परित्यजामीत्येवार्थ इति वयम् ।  
प्रोक्तमेवार्थं विशेषतः स्फोरयति-‘खमा०’ इति । ‘खमासमणाण’ क्षमाश्रमणाणा  
पूर्वोक्ताना ‘देवसियाए’ दैवसिक्या, दिवसपदस्य रात्रेरप्युपलक्षणत्वादहोरात्रस-

अपराध हुआ हो उसकी क्षमा चाहता हूँ आप क्षमा करे, आवश्यक  
क्रिया करते समय भूल से जो कुछ विपरीत आचरण किया गया  
उससे निवृत्त होता हूँ’ इस प्रकार कोई २ व्याख्या करते हैं ।

वास्तव मे ‘खामेमि खमासमणो ! देवसिय वड्कम आवस्सि-  
याए पडिक्कामामि’ का तात्पर्य यह है-‘हे क्षमाश्रमण ! दिवस  
समन्धी जो कुछ अपराध हो चुका हो उसके लिये क्षमा चाहता  
हूँ और भविष्यमें आपकी आज्ञाकी आराधना रूप आवश्यक क्रिया  
के द्वारा अपराध से अलग रहूँगा, अर्थात् अपराध नहीं होने  
देनेका प्रयत्न करूँगा’ । इसी बात को शिष्य विस्तारसे कहता  
है-‘हे गुरु महाराज ! आप क्षमाश्रमणों की, दिवस-समन्धी तैतीस

दिवस समन्धी ने काछ अपराध थये होय तेनी क्षमा मागु छु आप क्षमा  
करे, आवश्यक क्रिया करवा वभते लूत्तथी भास वडे ने काछ विपरीत आचरण  
थयु होय तेनाथी निवृत्त थाउ छु -काछ केछ आवी रीते व्याख्या करे छे

वास्तविक रीते तो ‘खामेमि खमासमणो देवसिय वड्कम आवस्सियाए  
पडिक्कामामि’ आने तात्पर्य अे छे के ‘हे क्षमाश्रमण ! दिवससमन्धी ने काछ  
अपराध थये होय तेना भाटे क्षमा मागु छु, अने भविष्यमा आपनी आज्ञानी  
आराधनारूप आवश्यक क्रिया वडे अपराधथी दूर रहीश अर्थात् अपराध न थवा  
पाये तेवे प्रयत्न करीश आ वातने शिष्य विस्तारथी कहे छे -

हे गुरु महाराज ! आप क्षमाश्रमणनी दिवससमन्धी तेनीश आशा

मन्विन्येत्यर्थः, 'तेत्तीसन्नयराए' त्रयस्त्रिंशदन्वतरया त्रयस्त्रिंशदाशातनास्वन्यत  
 रया=कयाचिदेकया 'आसायणाए' आशातनया आ=समन्तात् शात्यन्ते=  
 खण्डयन्ते ज्ञानादयो गुणा यया, यद्वा आ=समन्तात् शातयति=अवरुणद्धि  
 मोक्षमुख या सा- आशातना तया, तथा 'जकिंचिमिच्छाए' यत्किञ्चिन्मि  
 ध्यया=मिध्याऽस्त्यस्या इति 'मिध्या, या काचिन्मिध्या=यत्किञ्चिन्मिध्या  
 च्चया, यया कयाचिन्मिध्यायुक्तयेत्यर्थः, असम्यग्भावसपन्नयेति यावत्,  
 'मणदुकडाए' मनोदुष्कृतया दुर्भावेन कृता=दुष्कृता, मनसा, ज्ञानपूर्वक  
 मित्यर्थात् दुष्कृता=मनोदुष्कृता तया=अशुभपरिणामरूपयेति भावः । 'वयदुक  
 डाए' वचोदुष्कृतया (समास प्राग्वत्, एवमग्रेऽपि) त्वङ्कारादिरूपयेत्यर्थः ।  
 'कायदुकडाए' कायदुष्कृतया=उपगमनाऽवस्थानादिनिमित्तया 'क्रोहाए' क्रोधया=  
 क्रोधोऽस्यामस्तीति क्रोधा तया क्रोधयुक्तयेत्यर्थः, एव 'माणाए' मानया=मान-  
 युक्तया, 'मायाए' मायया=मायायुक्तया, 'लोहाए' लोभया=लोभयुक्तया

(३३) आशातनाओमे से किसी भी आशातना द्वारा, तथा मिध्या-  
 भाव के कारण अशुभ परिणाम से, तुकारा आदि दुर्वचनों से और  
 अत्यन्त निकट चलना, अभ्युत्थानका न करना आदि शरीर की  
 दुष्ट चेष्टा से, क्रोध, मान, माया और लोभ से की गई, तथा  
 भूत भविष्य वर्तमान रूप तीनों कालों में की गई, सर्वथा मिध्या  
 पचारसे की गई, क्षान्त्यादि सकल-धर्मों का उल्लंघन करने वाली  
 आशातना के कारण जो मुझसे दिवससम्बन्धी अतिचार किया

तना पैकी केअं पञ्च आशातना वडे तथा मिध्या भावनाने कारखे अशुभ परिणामथी,  
 तुकारा वगेरे पराण वचनेथी अने अत्यन्त नज्जक चालवु, अभ्युत्थान न करवु  
 वगेरे शरीरनी दुष्ट चेष्टाथी, क्रोध, मान, माया, अने लोभथी करेली तथा भूत,  
 भविष्य, वर्तमान रूपे त्रखे कालमा सर्वथा मिध्या उपचारथी करेली,  
 क्षान्त्यादि सकल धर्मोनु उल्लंघन करवावाणी आशातनाना कारखे भासथी दिवस

१-'जकिंचिमिच्छाए' इत्यारभ्य 'लोहाए' इत्यन्त यावत् सर्वत्र  
 अर्शआदेराकृतिगणत्वान्मत्त्वर्थीयोऽच्मत्त्यय । आकृत्या=पठितगणविषयकशास्त्रवि-  
 दिततत्तद्गणान्तर्गतत्वप्रयुक्तकार्यवचनया गण्यते इत्याकृतिगणस्तस्य भावस्तत्र  
 तस्मात्=आकृतिगणत्वादिति ।

२-मयूरग्यसकादिस्वात्ममाम ।

‘आसयणाए’ इत्यस्य विशेषणानीमानि । एवमहोरात्रसम्बन्धिनीराशातना उक्त्वा सम्प्रत्यैद्विक्रजान्मान्तरिकाऽतीताऽनागतकालिकादिपरिग्रहायोच्यते—  
‘सव्व०’ इत्यादि ।

‘सव्वकालियाए’ सर्वः कालो यस्याः सा सर्वकालिका तथा, यद्वा सर्वथासौ कालः सर्वकालस्तत्र भवा सर्वकालिकी तथा-वर्तमानाऽतीतादिकाल-त्रयसञ्जातयेत्यर्थः । ‘सव्वमिच्चोवयाराए’ सर्वमिच्छोपचारया=सर्वगतो मिच्छोपचारयुक्त्या, सर्वो मिच्छोपचारो यस्यामिति बहुव्रीहैः । ‘सव्वधम्माइकमणाए’ सर्वे च ते धर्मा अनुष्ठानरूपाः क्षान्त्यादयः सर्वधर्मास्तेपामतिक्रमणम्=उल्लङ्घन यस्या सा, अथवा सर्वे धर्माः प्रवचनमातरस्तासामतिक्रमण यस्या सा, सर्वधर्मा-तिक्रमणा तथा । ‘आसायणाए’ आशातनया, (व्याख्यात आशातनापदार्थः) ‘जो मे’ यो मया ‘देवसिओ’ देवसिकः ‘अइयारो’ अतिचारः ‘कओ’ कृतः ‘तत्स’ तस्य तमित्यर्थः, ‘पडिकमामि’ त्रिनिवर्त्ते, ‘निदामि गरिहामि अप्पाण वोसिरामि’ इति पूर्ववत् । एव क्षमयित्वा ‘इच्छामि खमासमणो’ इत्यादिपाठ पुनरप्युक्तेन विधिना भजेत् । वन्दनाविधिश्च प्रसङ्गतोऽत्र स्फुटप्रति-पत्तये निरूप्यते स यथा—

वन्दनावेलायाम् ‘इच्छामि खमासमणो वदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए’ इत्युच्चार्याऽवग्रहप्रवेशायाऽऽज्ञा गृहीतु गुरुसमक्ष कृताञ्जलिः शिरो नमयेत् (इय

गया हो उससे मैं निवृत्त होता हूँ, उसकी निन्दा और गर्हा करता हूँ, तथा सावधकारी आत्माको बोरता (त्यागता) हूँ ।

इस प्रकार खमाकर फिरभी उक्त विधि से क्षमाश्रमण (पाठ) पढे । यहा पर प्रसंग से वन्दनाकी विधि कहते हैं वह इस तरह—वन्दना के समय ‘इच्छामि खमाममणो वदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए’ इतना बोलकर अवग्रहमे प्रवेश करनेकी आज्ञा के लिये अवग्रह से बाहर

सगधी ने आतियार लाग्यो होय तेभाधी हु निवृत्त थाउ छु अने तेनी निन्दा तथा गर्हा कइ छु तथा सावधकारी आत्मानो त्याग कइ छु

आ प्रभाषे क्षमा भागीने करी पपु कडेदी विधिथी क्षमाश्रमण (पाठ) बोले अडि प्रसगथी वदनानी विधि कडे छे ते आ प्रभाषे छे वदना करवा वधते “इच्छामि खमासमणो वदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए” आ प्रभाषे बोलीने अवग्रहमा प्रवेश करवानी आज्ञा भाटे अवग्रहथी पडार उला गहीने गन्ने

१- तस्य-तमित्यर्थ, अत्र द्वितीयार्थे सम्बन्धविशेषयाऽऽर्पत्वाद्वा पठ्ये ।



अन्धिन्येत्यर्थः, 'तेजीसन्नयराए' त्रयस्त्रिंशदन्वतरया त्रयस्त्रिंशदाशातनास्वन्यत  
 रया=कयाचिदेकया 'आसायणाए' आशातनया आ=समन्तात् शात्यन्ते=  
 खण्डयन्ते ज्ञानादयो गुणा यया, यद्वा आ=समन्तात् शातयति=अवरुणद्धि  
 मोक्षमुख या सा- आशातना तथा, तथा 'जर्किचिमिच्छाए' यत्किञ्चिन्मि  
 ध्यया=मिध्याऽस्त्यस्या इति 'मिध्या, या काचिन्मिध्या=यत्किञ्चिन्मिध्या  
 तया, यया कयाचिन्मिध्यायुक्तयेत्यर्थः, असम्यग्भावसंपन्नयेति यावत्,  
 'मणदुक्कडाए' मनोदुष्कृतया दुर्भावेन कृता=दुष्कृता, मनसा, ज्ञानपूर्वक-  
 मित्यर्थात् दुष्कृता=मनोदुष्कृता तथा=अशुभपरिणामरूपयेति भावः । 'वयदुक्क-  
 डाए' वचोदुष्कृतया (समासः प्राग्भूत्, एवमग्रेऽपि) त्वङ्कारादिरूपयेत्यर्थः ।  
 'कायदुक्कडाए' कायदुष्कृतया=उपगमनाऽवस्थानादिनिमित्तया 'कोहाए' क्रोधया=  
 क्रोधोऽस्यामस्तीति क्रोधा तथा क्रोधयुक्तयेत्यर्थः, एव 'माणाए' मानया=मान  
 युक्तया, 'मायाए' मायया=मायायुक्तया, 'लोहाए' लोभया=लोभयुक्तया

(३३) आशातनाओमे से किसी भी आशातना द्वारा, तथा मिध्या-  
 भाव के कारण अशुभ परिणाम से, तुकारा आदि दुर्वचनों से और  
 अत्यन्त निकट चलना, अभ्युत्थानका न करना आदि शरीर की  
 दुष्ट चेष्टा से, क्रोध, मान, माया और लोभ से की गई, तथा  
 भूत भविष्य वर्तमान रूप तीनों कालों में की गई, सर्वथा मिध्यो-  
 पचारसे की गई, क्षान्त्यादि सकल-धर्मों का उल्लंघन करने वाली  
 आशातना के कारण जो मुझसे दिवससम्बन्धी अतिचार किया

तना पैकी डोई पणु आशातना वडे तथा मिध्या भावनाने, कारणे अशुभ परिणामथी,  
 तुकारे वगेरे अराज वचनेथी अने अत्यंत नष्टक आलसु, अशुभुत्थान न करवु  
 वगेरे शरीरनी दुष्ट चेष्टाथो, क्रोध, मान, माया, अने लोभथी करेदी तथा भूत,  
 भविष्य, वर्तमान इपे त्रणे कालमा सर्वथा मिध्या उपचारथी करेदी,  
 क्षान्त्यादि सकल धर्मोनु उल्लंघन करवावाणी आशातनाना कारणे माराथी दिवस

१- 'जर्किचिमिच्छाए' इत्यारभ्य 'लोहाए' इत्यन्त यावत् सर्वत्र  
 अर्शुआदेराकृतिगणत्वान्मत्वर्थीयोऽच्प्रत्यय । आकृत्या=पठितगणविषयकशास्त्रवि-  
 दिततत्त्वज्ञानान्तर्गतत्वप्रयुक्तकार्यवृत्तया गण्यते इत्याकृतिगणस्तस्य भावस्तत्र  
 तस्मात्=आकृतिगणत्वादिति ।

२- मयूरन्यसकादित्वात्समाम ।

सुभेण भे दिवसो वड्कतो ?' इति वाच्येनाऽपराधक्षमापणपूर्वकं देवसिकं सुख-  
शातादिकं पृष्ट्वा 'जत्ता भे' इत्युच्चार्य चतुर्थ 'जवणिज्ज' इत्युच्चार्य पञ्चम 'च भे'  
इत्युच्चार्य षष्ठ चाऽऽवर्त्तनं कृत्वा शिरो नमयित्वा 'खामेमि खमासमणो देवसिय  
वड्कम' इति वदेत्, ततः 'आवस्सियाए' इत्युक्त्वा, अवग्रहाद्बहिर्निःसृत्य  
क्षमाश्रमणस्य पूर्णां पट्टिकाप्रचारयेत् । एवमेकाऽवनतिः, एक यथाजात, तिस्रो  
गुप्तय, एकः प्रवेशः, एक निष्क्रमण, शिरोद्वय-क्षमापणकाले शिष्यस्यावनत  
शिरः प्रथम शिरः, गुरुणा वन्दनस्वीकृतये यच्चालित स्वशिरस्तद् द्वितीय शिरः,  
इति शिरोद्वयम्, पडावर्त्तनानि च सम्पन्नन्ते । ततः 'इच्छामि खमासमणो  
वदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए' इत्युच्चार्य पुनरवग्रहं प्रवेष्टुं गुरुपुरतो नत-

भे किलामो अप्पकिलताण वहुसुभेण भे दिवसो वड्कतो ?' इस वाक्य  
से अपराध की क्षमाप्रार्थनापूर्वक दिवससम्बन्धी सुखशाता पूछ कर  
'जत्ता भे' से चौथा 'जवणिज्ज' से पाचवाँ और 'च भे' से छठा  
आवर्त्तन समाप्त कर के सिर झुकावे, अनन्तर 'खामेमि खमासमणो !  
देवसिय वड्कम' यह पाठ बोले, फिर 'आवस्सियाए' कह कर  
अवग्रह से बाहर आकर क्षमाश्रमण की पूरी पाटीको पढे । इस  
प्रकार एक अवनति १, एक यथाजात २, तीन गुप्तियाँ ५, एक  
प्रवेश ६, एक निष्क्रमण ७, दो मस्तक ८, (क्षमापण काल में शिष्य  
गुरु के सामने मस्तक झुकावे, वह एक मस्तक हुआ, गुरु की तरफ  
से स्वीकृतिसूचक मस्तक का हिलाना दूसरा मस्तक हुआ, इस  
प्रकार दो मस्तक हुए) और छह आवर्त्तन १५, होते हैं ।

शे६। खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिलताण वहुसुभेण भे दिवसो वड्कतो  
आ वाक्यधी अपराधनी प्रार्थनापूर्वक क्षमा भागवी ते पछी दिवसमणधी सुभ  
शाति पूछीने "जत्ता भे" थी थोथु जवणिज्ज थी पाचमु अने च भे थी छडु आव  
र्त्तन पूर्ण करी भाथु नभाववु पछी "खामेमि खमाममणो देवसिय वड्कम"  
आ पाठ गोलवे अने इरीधी आवस्सियाए गोलवीने अवग्रहधी गडार आवीने  
क्षमाश्रमणनी पूरी पाटी गोलवी, आ रीते अेक अवनति १, अेक यथाजात २, त्रयु गुप्ति ५,  
अेक प्रवेश ६, अेक निष्क्रमण ७, दो मस्तक ८ (क्षमापण मभये शिष्य गुरुसमीपे मस्तक  
नभावे ते अेक मस्तक छडेवाय अने गुरु तरक्षी नीजाव सूअक मस्तकने हलाववु  
ते भीले मस्तक छडेवाय अे प्रभावे गे मस्तक थया) अने छ आवर्त्तन १५ थाय छे  
पछी "इच्छामि खमासमणो वदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए" गोलवीने

ग्रथमाऽवनतिः); आज्ञालङ्घ्युत्तर दीक्षाग्रहणसमये परिश्रुतचोलपट्टक-प्रावरण  
सदोररुमुग्ववद्विकारजोहरणप्रमार्जिको वद्वाञ्जलिपुटश्चासीत्, तामवस्थामाश्रम्य  
वन्दनकरण यथाजातवन्दनम्, तत्पूर्वकं सन् गुप्तित्रयभूषितोऽवग्रह मविश्य 'अ'  
इत्युच्चार्याञ्जलिपुट दक्षिणभागक्रमेण परिभ्राम्य रामभागमानीय शिरसा सयो  
ज्य 'हो' इति वदेत्, इत्थं प्रथममावर्त्तनं समाप्य 'का' 'य' इत्युक्त्वा द्वितीयं,  
'काय' इत्यभिधाय तृतीयं चावर्त्तनं पूर्णम् कृत्वा 'सफास' इति वदन् शिरो  
नमयित्वा गुरुचरणौ स्पृशेत्, प्रविशन्नेव 'खमणिज्जो भे किलामो अप्पक्किलताण बहु

ही खडा हुआ दोनों हाथ ललाट प्रदेश पर रख कर गुरु के सामने  
शिर झुकावे ( यह प्रथम अवनति ) । आज्ञा प्राप्त हो जाने पर  
यथाजातवन्दन (दीक्षा ग्रहण के समय धारण किये हुए चदर  
चोलपट्टक के सहित एव मुह पर मुहपत्ती बान्धे हुए रजोहरण  
प्रमार्जिका के सहित अजली (दोनों हाथ) जोड़े हुए मुनि की वन्दन  
विधि को यथाजातवन्दन कहते हैं)-पूर्वक तीन गुप्तियों के सहित  
अवग्रहमे प्रवेश करके 'अ' ऐसा बोल कर अजलि को दाए हाथकी  
तर्फसे घुमा कर बायें हाथकी तरफ लावे और बादमे मस्तक पर  
लगाता हुआ 'हो' ऐसा बोले । इस प्रकार-प्रथम आवर्त्तन समाप्त  
करके 'का' और 'य' से दूसरा आवर्त्तन पूरा करे । फिर 'काय'  
से तीसरा आवर्त्तन करके 'सफास' बोलता हुआ सिर  
झुका कर चरण स्पर्श करे । बादमें वही बैठा हुआ 'खमणिज्जो

हाथ कपालना भाग उपर राप्पीने शुद्धनी सामे माथु नभावलु (आ प्रथम अवनति)  
आज्ञा प्राप्त यथा पछी यथाजातवन्दन-(दीक्षा अङ्कषु समये धारणु करैल, आहर  
चोलपट्टक सहित तथा मोटा उपर मुहपत्ति बान्धेन, रजोहरणु गोन्धा सहित  
अजलि (अन्ने हाथ) जोडेले मुनिनी वन्दनविधिने यथाजातवन्दन कडे छे) पूर्वक  
त्रयु शुभित सहित अवग्रहमा प्रवेश करीने अ शण्डेना उन्धारणु करीने  
अजलि (वे हाथ जोडी) जमणु हाथ तरइथी घुमावीने डाणा हाथ तरइ लाववे अने  
पछीथी माथा उपर लगावीने हो अमे गोले अे प्रभाणु प्रथम आवर्त्तन (वे हाथ जोडीने  
वर्तुल जमणु गोन्धी डाणी गोन्धु सुधी इरवणु) पूर्ण करीने का अने य  
शण्डेथी पीणु आवर्त्तन पूइ करीने इरी काय थी त्रीणु आवर्त्तन करीने  
"सफास" बोलता थका माथु नभावीने अरणु स्पर्श करवे पछी ते अ स्थले भेडा

सुभेण भे दिवसो वडकतो ?' इति वाक्येनाऽपराधक्षमापणपूर्वकं दैवसिकं सुख-  
शातादिकं पृष्ट्वा 'जत्ता भे' इत्युच्चार्य चतुर्थं 'जवणिज्ज' इत्युच्चार्य पञ्चमं 'च भे'  
इत्युच्चार्य षष्ठं चाऽऽवर्त्तनं कृत्वा शिरो नमयित्वा 'खामेमि खमासमणो देवसिय  
वडकम' इति वदेत्, ततः 'आवस्सियाए' इत्युक्त्वा, अवग्रहाद्बहिर्निःसृत्य  
क्षमाश्रमणस्य पूर्णं पट्टिकासुचारयेत् । एवमेकाऽवनति, एक यथाजात, तिस्रो  
गुप्तयः, एकः प्रवेशः, एक निष्क्रमण, शिरोद्वय-क्षमापणकाले शिष्यम्यावनत  
शिरः प्रथम शिरः, गुरुणा वन्दनस्वीकृतये यच्चालित स्वशिरस्तद् द्वितीय शिरः,  
इति शिरोद्वयम्, पडावर्त्तनानि च सम्पन्नन्ते । ततः 'इच्छामि खमासमणो  
वदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए' इत्युच्चार्य पुनरवग्रहं प्रवेष्टुं गुरुपुरतो नत-

भे किलामो अप्पकिल्लताण वहुसुभेण भे दिवसो वडकतो ?' इस वाक्य  
से अपराध की क्षमाप्रार्थनापूर्वक दिवससम्बन्धी सुखशाता पूछ कर  
'जत्ता भे' से चौथा 'जवणिज्ज' से पाचवाँ और 'च भे' से छठा  
आवर्त्तन समाप्त कर के सिर झुकावे, अनन्तर 'खामेमि खमासमणो !  
देवसिय वडकम' यह पाठ बोले, फिर 'आवस्सियाए' कह कर  
अवग्रह से बाहर आकर क्षमाश्रमण की पूरी पाटीको पढे । इस  
प्रकार एक अवनति १, एक यथाजात २, तीन गुप्तियाँ ५, एक  
प्रवेश ६, एक निष्क्रमण ७, दो मस्तक ८, (क्षमापण काल में शिष्य  
गुरु के सामने मस्तक झुकावे, वह एक मस्तक हुआ, गुरु की तरफ  
से स्वीकृतिसूचक मस्तक का हिलाना दूसरा मस्तक हुआ, इस  
प्रकार दो मस्तक हुए) और छह आवर्त्तन १५, होते हैं ।

वेदाः खमणिज्जो भे किलामो अप्पकिल्लताण वहुसुभेण भे दिवसो वडकतो  
आ वाक्येथी अपराधनी प्रार्थनापूर्वकं क्षमा भागवी ते पथी दिवससणधी सुभ  
शाति पृथीने "जत्ता भे" थि येथु जवणिज्ज थि पाचसु वने च भे थि छहु आव  
र्त्तन पूर्ण करी माथु नभाववु पथी "खामेमि खमाममणो देवसिय वडकम"  
आ पाठ बोलाये वने करीथी आवस्सियाए बोलीने अवग्रहधी गडार आवीने  
क्षमाश्रमणनी पूरी पाटी बोलावी, आ रीते ऐक अवनति १, ऐक यथाजात २, त्रयु गुप्ति ५,  
ऐक प्रवेश ६, ऐक निष्क्रमण ७, वे मस्तक ८ (क्षमापण समये शिष्य गुरुसमीपे मस्तक  
नभावे ते ऐक मस्तक कडेवाय वने गुरु तरङ्गधी नीजान् सूयड मस्तकने हलाववु  
ते भीजे मस्तक कडेवाय वे प्रभाणे वे मस्तक थया) वने छ आवर्त्तन १५ थाय छे  
पथी "इच्छामि खमासमणो वदिउ जावणिज्जाए निसीहियाए" बोलीने

मस्तक' प्रार्थयेत्, (इय द्वितीयाऽवनतिः), गुर्वाज्ञया यथाविध्यवग्रह प्रविश्य पूर्ववद्वन्दमानस्तत्रैवाऽवग्रहे 'खमासमण'-पट्टिका समापयेत्, इह निष्क्रमण नास्ति, अत्रैकाऽवनतिरेकः प्रवेशः पडावर्त्तनानि शिरोद्वयमिति पूर्वापरसकलनया पञ्चविंशतिविधयः । उक्तञ्च भगवता समवायाद्दे—

‘दो ओणय अहाजाय, किडरुम्मवारसावय ।

चउस्सिर तिगुन च, दुपवेस एगनिक्खमण ॥ १ ॥’ इति ॥५० ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्भग्नपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाह-

छत्रपतिकोल्हापुरराजमदत्त ‘जैनशास्त्राचार्य’-पदभूषित कोल्हापुर-

राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-

घासीलाल-व्रतित्रिरचिताया धीश्रमणमूत्रस्य मुनि-

तोपण्यारयाया व्याख्याया वन्दनाख्य

तृतीयमध्ययन समाप्तम् ॥ ३ ॥

अनन्तर ‘इच्छामि खमासमणो वदिड जावणिज्जाए निसीहियाए’ बोल कर फिरसे अवग्रहमे प्रवेश करने के लिये गुरु के सामने सिर झुकावे (यह दूसरी अवनति हुई) । गुरु की आज्ञा मिलने पर विधिपूर्वक अवग्रहमे प्रवेश करके पहले की भाँति वन्दना करता हुआ अवग्रहमें ही ‘खमासमण’ की पाटी पूरी बोले ।-यहा पर निष्क्रमण नहीं होता है, अत एक अवनति १६, एक प्रवेश १७, छह आवर्त्तन २३, और दो मस्तक २५ होते हैं । इस प्रकार पूर्वापर की सख्या जोड़ने से वन्दना की पच्चीस विधिया होती हैं ॥५०१॥

इति तृतीय अध्ययन सपूर्ण ॥ ३ ॥

इरीथी अवग्रहभा प्रवेश करवाने भाटे शुरुनी सामे भाथु नभावपु (आ भील अवनति थड) शुरुनी आज्ञा भेणवी विधिपूर्वक अवग्रहभा प्रवेश करीने प्रथम प्रभाण्णे वदना करता थडा अवग्रहभा व “खमासमण” नी पाटी पूरी बोलवी अर्द्धि निष्क्रमण थतु नथी अे भाटे अेक अवनति, अेक प्रवेश, छ आवर्त्तन, अने के भाथा थाय छे आ दीते पूर्वापरनी सण्या जोडवाथी वदनानी पञ्चीस विधिअे थाय छे (५०१)

इति तृतीय अध्ययन सपूर्ण

१ छाया-‘द्वयवनत यथाजात, कृतिरुर्म द्वादशावर्त्तम् ।

चतु शिरस्त्रिगुप्त च द्विप्रवेशमेकनिष्क्रमणम्’ ॥१॥ इति ।

## अथ प्रतिक्रमणनामक चतुर्थमध्ययनम्

पूर्वमध्ययने वन्दनापूर्वक गुरुसमीपे 'पङ्क्तिमामि' इत्यनेन प्रतिक्रमण-  
प्रतिज्ञा प्रदर्शिता, सम्प्रति चतुर्था ययने तदेव प्रतिक्रमणमाह-अथवा पूर्वमध्ययने-  
ऽर्हत्प्रणीतसामायिकानुष्ठातभिर्गुरोर्वन्दनादिरूपा प्रतिपत्तिः कर्तव्येत्युक्तम्, अत्र  
चतुर्थाध्ययने तस्या प्रतिपत्तेरकरणेन प्रखलितस्यात्मनो निन्दा प्ररूप्यते, सूत्रे  
'खलियस्स निन्दणा' इत्युक्त्वात्, यद्वा वन्दना ययने वन्दनादिरूपया मुनि-  
भक्त्या कर्मक्षयो दर्शितः, इह तु मिथ्यात्वाऽविरत्यादिपरित्यागेन कर्ममूल प्रतिपि-

### । चौथा अ ययन ।

तीसरे अध्ययनमे वन्दनापूर्वक गुरु महाराजके समीप प्रतिक्रमण  
की प्रतिज्ञा करने की विधि दिखलाई गई है। अब इस चौथे  
अध्ययन में उसी प्रतिक्रमण को दिखलाते हैं। अथवा तीसरे अध्य-  
यनमें 'अर्हन्त भगवान से उपदिष्ट सामायिक करनेवाले भक्त्यों  
को गुरुकी वन्दनारूप प्रतिपत्ति (सेवा) करनी चाहिये' ऐसा कहा  
है, अब इस चौथे अ ययन मे वन्दना आदि न करने के कारण  
खलित आत्मा की निन्दा की जाती है, अथवा वन्दना ययन में  
यह दिखलाया गया है कि 'वन्दनादिरूप मुनिभक्ति से कर्मक्षय  
होता है' और इस अध्ययनमें मिथ्यात्व अविरति आदिका त्याग

### चौथु अध्ययन

त्रीण अध्ययनमा वन्दनापूर्वक गुरु भङ्गाजनी समीप प्रतिक्रमणु करवा  
भाटे प्रतिज्ञा करवानी विधि गताववामा आयी छे डवे आ चौथा अध्ययनमा ते न  
प्रतिक्रमणुने गतावे छे अथवा त्रीण अध्ययनमा 'अर्हन्त  
भगवानथी उपदेश करव्येही, सामायिक करनारा कथ छेवोने गुरुनी वन्दनारूप  
प्रतिपत्ति (सेवा) करयी लोड्ये' अथ कहेल छे, डवे आ चौथा अध्ययनमा  
वन्दना विगेरे न करवाना कारणे खलित आत्मानी निन्दा करवामा आवे छे,  
'अथवा वन्दना अध्ययनमा आ गताववामा आग्यु छे के वन्दनादिरूप मुनि-  
भक्तिथी कर्मने क्षय थाय छे' अने आ अध्ययनमा मिथ्यात्व अविरति विगेरेने

यते । प्रतिशब्दोऽत्र प्रातिकूल्ये तेन प्रतिकूल क्रमण=पराहृत्य गमन-प्रतिक्रमण<sup>१</sup>,  
पूर्व शुभयोगेश्वर्यो विनिष्क्रम्याऽशुभयोगसमाप्तस्यात्मनः पुनस्तैश्चैव शुभयोगेषु  
सक्रमणमित्यर्थः । तथा चोक्तम्—

“ स्वस्थानादपरस्थाने, प्रमादात्संगतस्य यत् ।

तत्रैव क्रमण भूयः प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ ” इति,

“ गतस्यौदयिकं भावं क्षायोपशमिकात्पुनः ।

क्षायोपशमिकाऽऽवेशः प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ ” इति च ।

यद्वा प्रतिशब्द आभिमुख्यार्थकः ‘लक्षणैर्नाभिप्रती आभिमुख्ये’ इत्यादौ

करने से कर्मनिदान का प्रतिषेध दिखलाया जाता है । शुभ योग से  
अशुभयोगमें पहुँची हुई आत्माको फिर से शुभयोगमें लेजानेका  
नाम प्रतिक्रमण है । जैसा कि कहा है—

‘ प्रमाद वश अपने स्वरूपसे अशुभ योगमें प्रवृत्त आत्माका  
जो फिरसे अपने स्वरूपमें आना उसे प्रतिक्रमण कहते हैं ॥१॥’

तथा—

‘क्षायोपशमिक भावसे औदयिक भाव को प्राप्त आत्मा के  
फिरसे क्षायोपशमिक भावमें प्रवेश करने को प्रतिक्रमण कहते  
हैं ॥ १ ॥’

अथवा जिससे मोक्ष के सम्मुख जाया जाय, या शुभ

त्याग करवाथी कर्मनिदानमे प्रतिषेध जाताववामा आवे छे शुभयोगथी अशु  
भयोगमा पहुँचिल आत्माने इरीथी शुभयोगमा लक्ष जवानु नाम प्रतिक्रमण छे  
नेम कहु छे के—

“ प्रमादवश चोतामा स्वइपथी अशुभ योगमा प्रवृत्त आत्मानु इरीथी  
चोतामा स्वइपथमा आवलु तेने प्रतिक्रमण कहे छे” ॥ १ ॥

तथा क्षायोपशमिक भावथी औदयिक भावने पामिल आत्माने इरीथी  
क्षायोपशमिक भावमा प्रवेश करवाने प्रतिक्रमण कहे छे (१)

अथवा जेनाथी मोक्षनी सम्मुख जवाय अथवा शुभयोगीमा वारवार

१-प्रतिक्रमणशब्द अ प्रति + पूर्वकात् ‘क्रम पादविक्षेपे’ इत्यस्मात्

तथादर्शनात्, क्रमुधातुश्च गमनार्थकस्तेन प्रति=मोक्षाभिमुख क्रम्यते=गम्यते-  
 ऽनेनेति, अथवा प्रतिशब्दस्य भृशार्थकत्वाच्छ्रमयोगेषु वार वारं क्रमण प्रतिक्रमणम् ।  
 तत्र (प्रतिक्रमणे) ध्यानविषयीकृतम्-‘आगमे तिविहे’ इति पट्टिकाया आरभ्य  
 ‘इच्छामि ठामि’ इति पर्यन्त सर्वं प्रस्फुटं वक्तव्यं, तदनु ‘तिक्खुत्तो’ इत्यस्य  
 पाठेन सविधि वन्दना विधाय श्रमणसूत्रस्याज्ञा ग्रहीतव्या, ततो नमस्कारमन्त्रोच्चा-  
 रणपूर्वकं ‘करेमि भते’ इत्युच्चार्यं माङ्गलिकप्रवृत्तारणीयमिति । सम्प्रति माङ्गलिक-  
 सूत्रमाह—‘चत्तारि’ इत्यादि ।

### ॥ मूलम् ॥

चत्तारि मंगल-अरिहता मगल, सिद्धा मगल, साहू  
 मगल, केवलिपन्नत्तो धम्मो मगल । चत्तारि लोयुत्तमा-अरिहता  
 लोयुत्तमा, सिद्धा लोयुत्तमा, साहू लोयुत्तमा, केवलिपन्नत्तो  
 धम्मो लोयुत्तमो । चत्तारि सरण पवज्जामि,-अरिहते सरण पवज्जामि,  
 सिद्धे सरण पवज्जामि, साहू सरण पवज्जामि, केवलिपण्णत्त  
 धम्मं सरण पवज्जामि ॥ सू० १ ॥

योगों में चार चार जो सक्रमण (जाना) उसको प्रतिक्रमण कहते  
 हैं । इसमें ‘आगमे तिविहे’ से लेकर ‘इच्छामि ठामि’ तक ध्यानमें  
 चिन्तित सब पाठियों (पाठों) को प्रगट रूपसे बोले, बादमें  
 ‘तिक्खुत्तो’ के पाठसे विधिपूर्वक वन्दना करके श्रमणसूत्र की आज्ञा  
 लें तब नमस्कार मन्त्र के उच्चारणपूर्वक ‘करेमि भते’ की पाठी बोल  
 कर मांगलिक बोले, ऐसा नियम है, इस कारण यहा मांगलिक  
 कहते हैं—‘चत्तारि’ इत्यादि ।

सकमणु (७७) तेने प्रतिक्रमणु कडे छे, ओभा “आगमे तिविहे” थी लधने  
 ‘इच्छामि ठामि’ सुधी ध्यानमा चिन्तित जधी पाठिओ (पाठ)ने ओडेर रुपे  
 ओले पधी ‘तिक्खुत्तो’ ना पाठिओ विधि-पूर्वक वदना करीने श्रमणु सूत्रनी  
 आज्ञा लध नमस्कार मत्रना उच्चारणु पूर्वक (करेमि भते) नी पाठी ओलीने  
 मांगलिक ओलवु ओवे नियम छे ओटला भाटे अटिया मांगलिक कडे छे  
 ‘चत्तारि’ इत्यादि



यते । प्रतिशब्दोऽत्र प्रातिकूल्ये तेन प्रतिकूल क्रमण=परावृत्त्य गमन-प्रतिक्रमण<sup>१</sup>, पूर्व शुभयोगेश्यो विनिष्क्रम्याऽशुभयोगसमाप्तस्यात्मनः पुनस्तेष्वैव शुभयोगेषु सक्रमणमित्यर्थः । तथा चोक्तम्—

“ स्वस्थानादपरस्थाने, प्रमादात्संगतस्य यत् ।

तत्रैव क्रमण भूयः प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ ” इति,

“ गतस्यौद्ययिक भावं क्षायोपशमिकात्पुनः ।

क्षायोपशमिकाऽऽवेशः प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ ” इति च ।

यद्वा प्रतिशब्द आभिमुख्यार्थकः ‘लक्षणैनाभिपती आभिमुख्ये’ इत्यादी

करने से कर्मनिदान का प्रतिषेध दिखलाया जाता है । शुभ योग से अशुभयोगमें पहुँची हुई आत्माको फिर से शुभयोगमें लेजानेका नाम प्रतिक्रमण है । जैसा कि कहा है—

‘प्रमाद वश अपने स्वरूपसे अशुभ योगमें प्रवृत्त आत्माका जो फिरसे अपने स्वरूपमें आना उसे प्रतिक्रमण कहते हैं ॥१॥’

तथा—

‘क्षायोपशमिक भावसे औद्ययिक भाव को प्राप्त आत्मा के फिरसे क्षायोपशमिक भावमें प्रवेश करने को प्रतिक्रमण कहते हैं ॥ १ ॥’

अथवा जिससे मोक्ष के सम्मुख जाया जाय, या शुभ

त्याग करवायी कर्मनिदानमें प्रतिषेध गलाववामा आवे छे शुभयोगी अशुभयोगमा पहुँचिल आत्माने इरीथी शुभयोगमा लथ जवानु नाम प्रतिक्रमण छे नेम कछु छे के—

“प्रमादवश पोतामा स्वइपथी अशुभ योगमा प्रवृत्त आत्मानु इरीथी पोतामा स्वइपथमा आवलु तेने प्रतिक्रमणु कडे छे” ॥ १ ॥

तथा क्षायोपशमिक भावथी औद्ययिक भावने पाभिल आत्माने इरीथी क्षायोपशमिक भावमा प्रवेश करवाने प्रतिक्रमणु कडे छे (१)

अथवा नेनाथी मोक्षनी स-शुभ जवाय अथवा शुभयोगीमा वारवार

१-प्रतिक्रमणशब्दश्च प्रति + पूर्वकात् ‘क्रमु पादविक्षेपे’ इत्यस्मात् स्युटं प्रत्यये सिद्ध ।

तथादर्शनात्, क्रमुधातुश्च गमनार्थकस्तेन प्रति=मोक्षाभिमुख क्रम्यते=गम्यते-  
 ऽनेनेति, अथवा प्रतिशब्दस्य भृशार्थकत्वाच्छुभयोगेषु वार वार क्रमण प्रतिक्रमणम् ।  
 तत्र (प्रतिक्रमणे) ध्यानविषयीकृतम्-‘आगमे तिविहे’ इति पट्टिकाया आरभ्य  
 ‘इच्छामि ठामि’ इति पर्यन्त सर्वं प्रस्फुटं वक्तव्य, तदनु ‘तिक्खुत्तो’ इत्यस्य  
 पाठेन सविधि वन्दना विधाय श्रमणसूत्रस्याज्ञा ग्रहीतव्या, ततो नमस्कारमन्त्रोच्चा-  
 रणपूर्वक ‘करेमि भते’ इत्युच्चार्य माङ्गलिकमुच्चारणीयमिति । सम्प्रति माङ्गलिक-  
 सूत्रमाह—‘चत्तारि’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

चत्तारि मंगल-अरिहता मंगल, सिद्धा मंगल, साहू  
 मंगल, केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगल । चत्तारि लोयुत्तमा-अरिहता  
 लोयुत्तमा, सिद्धा लोयुत्तमा, साहू लोयुत्तमा, केवलिपन्नत्तो  
 धम्मो लोयुत्तमो । चत्तारि सरण पवज्जामि, -अरिहते सरण पवज्जामि,  
 सिद्धे सरण पवज्जामि, साहू सरण पवज्जामि, केवलिपण्णत्त  
 धम्मं सरण पवज्जामि ॥ सू० १ ॥

योगों में वार वार जो सक्रमण (जाना) उसको प्रतिक्रमण कहते  
 हैं । इसमें ‘आगमे तिविहे’ से लेकर ‘इच्छामि ठामि’ तक ध्यानमें  
 चिन्तित सब पाटियों (पाठों) को प्रगट रूपसे बोले, बादमें  
 ‘तिक्खुत्तो’ के पाठसे विधिपूर्वक वन्दना करके श्रमणसूत्र की आज्ञा  
 लेवें तब नमस्कार मन्त्र के उच्चारणपूर्वक ‘करेमि भते’ की पाटी बोल  
 कर मांगलिक बोले, ऐसा नियम है, इस कारण यहा मांगलिक  
 कहते हैं—‘चत्तारि’ इत्यादि ।

सकंभु (७७) तेने प्रतिक्रमणु कडे छे, जेभा “आगमे तिविहे” थो लधने  
 ‘इच्छामि ठामि’ सुधी ध्यानभा चिन्तित जधी पाटिओ (पाठ)ने जडेर रुपे  
 बोले पधी ‘तिक्खुत्तो’ ना पाठथी विधि-पूर्वक वदना करीने श्रमणु सूत्रनी  
 आज्ञा लध नमस्कार मन्त्रना उच्चारणु पूर्वक (करेमि भते) नी पाटी बोलीने  
 मांगलिक बोलवु जेवो नियम छे जेटला भाटे अट्टिया मांगलिक कडे छे  
 ‘चत्तारि’ इत्यादि

यते । प्रतिशब्दोऽत्र प्रातिकूल्ये तेन प्रतिकूल क्रमण=परावृत्त्य गमनं-प्रतिक्रमण',  
पूर्वं शुभयोगेभ्यो विनिष्क्रम्याऽशुभयोगसमाप्तस्यात्मनः पुनस्तैष्वैव शुभयोगेषु  
सक्रमणमित्यर्थः । तथा चोक्तम्—

“ स्वस्थानादपरस्थाने, प्रमादात्संगतस्य यत् ।

तत्रैव क्रमण भूयः प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ ” इति,

“ गतस्यौदयिक भावं क्षायोपशमिकात्पुनः ।

क्षायोपशमिकाऽऽवेशः प्रतिक्रमणमुच्यते ॥ ” इति च ।

यद्वा प्रतिशब्द आभिमुख्यार्थकः 'लक्षणैनाभिपती आभिमुख्ये' इत्यादी

करने से कर्मनिदान का प्रतिषेध दिखलाया जाता है । शुभ योग से  
अशुभयोगमें पहुँची हुई आत्माको फिर से शुभयोगमें लेजानेका  
नाम प्रतिक्रमण है । जैसा कि कहा है—

‘ प्रमाद वश अपने स्वरूपसे अशुभ योगमें प्रवृत्त आत्माका  
जो फिरसे अपने स्वरूपमें आना उसे प्रतिक्रमण कहते हैं ॥१॥ ’

तथा—

‘ क्षायोपशमिक भावसे औदयिक भाव को प्राप्त आत्मा के  
फिरसे क्षायोपशमिक भावमें प्रवेश करने को प्रतिक्रमण कहते  
हैं ॥ १ ॥ ’

अथवा जिससे मोक्ष के संमुख जाया जाय, या शुभ

त्याग करवायी कम'मिहामने प्रतिषेध गताववासा आवे छे शुभयोगी अशु  
भयोगीमा पहुँचिल आत्माने इरीथी शुभयोगीमा लक्ष जवानु नाम प्रतिक्रमण छे  
नेम कलु छे के-

“ प्रमादवश चोतामा स्वरूपथी अशुभ योगीमा प्रवृत्त आत्मानु इरीथी  
चोतामा स्वरूपमा आववु तेने प्रतिक्रमणु कडे छे ” ॥ १ ॥

तथा क्षायोपशमिक भावथी औदयिक भावने पामिल आत्माने इरीथी  
क्षायोपशमिक भावमा प्रवेश करवाने प्रतिक्रमणु कडे छे (१)

अथवा नेनाथी मोक्षनी स-मुभ जवाय अथवा शुभयोगीमा बारवार

१-प्रतिक्रमणशब्दश्च प्रति + पूर्वकात् 'क्रमु पादविक्षेपे' इत्यस्मात्  
एयुट् प्रत्यये सिद्ध ।

तथादर्शनात्, क्रमुधातुश्च गमनार्थकस्तेन प्रति=मोक्षाभिमुख क्रम्यते=गम्यते-  
ऽनेनेति, अथवा प्रतिशब्दस्य भृशार्थकत्वाच्छुभयोगेषु वार वार क्रमण प्रतिक्रमणम् ।  
तत्र (प्रतिक्रमणे) ध्यानविषयीकृतम्—‘आगमे त्रिविहे’ इति पट्टिकाया आरभ्य  
‘इच्छामि ठामि’ इति पर्यन्त सर्वं प्रस्फुटं वक्तव्यं, तदनु ‘तिक्खुत्तो’ इत्यस्य  
पाठेन सविधि वन्दना विधाय श्रमणसूत्रस्याज्ञा ग्रहीतव्या, ततो नमस्कारमन्त्रोच्चा-  
रणपूर्वकं ‘करेमि भते’ इत्युच्चार्यं माङ्गलिकमुच्चारणीयमिति । सम्प्रति माङ्गलिक-  
सूत्रमाह—‘चत्तारि’ इत्यादि ।

### ॥ मूलम् ॥

चत्तारि मंगल—अरिहता मंगल, सिद्धा मंगल, साहू  
मंगल, केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगल । चत्तारि लोयुत्तमा—अरिहता  
लोयुत्तमा, सिद्धा लोयुत्तमा, साहू लोयुत्तमा, केवलिपन्नत्तो  
धम्मो लोयुत्तमो । चत्तारि सरण पवज्जामि,—अरिहते सरण पवज्जामि,  
सिद्धे सरण पवज्जामि, साहू सरण पवज्जामि, केवलिपण्णत्त  
धम्मं सरण पवज्जामि ॥ सू० १ ॥

योगो में वार वार जो सक्रमण (जाना) उसको प्रतिक्रमण करते  
हैं । इसमें ‘आगमे त्रिविहे’ से लेकर ‘इच्छामि ठामि’ तक ध्यानमें  
चिन्तित सब पाठियों (पाठों) को प्रगट रूपसे बोले, बादमें  
‘तिक्खुत्तो’ के पाठसे विधिपूर्वक वन्दना करके श्रमणसूत्र की आज्ञा  
लेवें तब नमस्कार मन्त्र के उच्चारणपूर्वक ‘करेमि भते’ की पाठी बोल  
कर मांगलिक बोले, ऐसा नियम है, इस कारण यहा मांगलिक  
कहते हैं—‘चत्तारि’ इत्यादि ।

सकमणु (७५) तेने प्रतिक्रमणु कडे छे, जेभा “आगमे त्रिविहे” थो लधने  
‘इच्छामि ठामि’ सुधी ध्यानमा चिन्तित जधी पाठिजे (पाठ)ने न्दरेर रूपे  
बोले पधी ‘तिक्खुत्तो’ ना पाठिजे विधि-पूर्वक वदना करीने श्रमणु सूत्रनी  
आज्ञा लध नमस्कार मन्त्रना उच्चारणु पूर्वक (करेमि भते) नी पाठी बोलीने  
मांगलिक बोलवु जेवो नियम छे जेटला भाटे अर्द्धिथा मांगलिक कडे छे  
‘चत्तारि’ इत्यादि

## - ॥ छाया ॥

चत्वारो मङ्गलम्-अर्हन्तो मङ्गल, सिद्धा मङ्गल, साधवो मङ्गल, केवलि-  
मङ्गलो धर्मो मङ्गलम् । चत्वारो लोकोत्तमाः-अर्हन्तो लोकोत्तमाः, सिद्धा लोको-  
त्तमाः, साधवो लोकोत्तमाः, केवलिमङ्गलो धर्मो लोकोत्तमः । चतुरः शरण प्रपद्ये-  
अर्हतः शरण प्रपद्ये, सिद्धान् शरण प्रपद्ये, साधून् शरण प्रपद्ये, केवलिमङ्गल  
धर्म शरण प्रपद्ये ॥ सू० १ ॥

## ॥ टीका ॥

‘चत्वारि’ चत्वारः, ‘गल’-मङ्गलम्-मङ्गल=श्रुतचारित्रादिरूपो धर्मस्त  
लाति=आदत्त इति ‘मङ्गलम्, यद्वा मां गालयति=भवादपनयतीति, मङ्गल  
‘मङ्गलः=भूषण=ज्ञानदर्शनादि त लाति आदत्त’ इति वा मङ्गलम्, अथवा मह्यते=  
प्राप्यते हितमनेनेति ‘मङ्गलम् । अत्रैकवचनं तु अर्हदादिचतुष्टयनिष्ठस्य मङ्गलस्व-  
स्यैकत्वेन ‘सूत्राणि प्रमाणम्’ इत्यादिवत्, तत्र हि प्रमितिकरणतावच्छेदक सूत्रत्वा-  
वच्छिन्नयावत्सूत्रनिष्ठमेकमेवेत्यवच्छेदकैकत्वमादायैकवचनप्रयोगः, ‘स्पष्टमिदं  
न्यत्र विस्तरेण । ‘चत्वारि’ इत्युक्तं, सम्प्रति चतुःपदार्थानाह-‘अर्हिता’

चार मंगलस्वरूप हैं, मंगल उसको कहते हैं जो श्रुत  
चारित्र्य रूप धर्म को देनेवाला हो, अथवा मुझ (नमस्कार करनेवाले)  
को ससारसे पार करने वाला हो, या मङ्गल=ज्ञान दर्शन आदि  
भूषण को धारण करनेवाला हो, अथवा जिसके द्वारा हितकी  
प्राप्ति हो । इस प्रकार सामान्यतया मंगलका निरूपण करके अब  
चार शब्दसे जो लिए जाते हैं उन का निरूपण करते हैं-अर्हत

चार मंगल स्वरूप छे, मंगल तेने कह छे के के श्रुत चारित्र्य धर्मने  
देवावाणो होय अथवा ‘भने’ (नमस्कार करवावाणाने) ससारथी पार करतार  
होय अथवा मङ्गल ज्ञान दर्शन विगेरे लूपलुने धारण करवावाणा होय अथवा  
‘नेना द्वारा हितनी प्राप्ति थाय, आपी शीते सामान्य प्रकारे मंगलनु निरूपण  
करीने हवे आरथी के लेवाय तेनु निरूपण करे छे अर्हत-सभस्त विघ्नेना

- १-‘आतोऽनुपसर्गे क’ (३।२।३) इति कप्रत्यये ‘आतो लोप इटी’ त्यालोप ।
- २-मङ्गल-‘मङ्गि मण्डने’ भौवादिक आत्मनेपदी, सिद्धि पृषोदरादिपाठात् ।
- ३-‘मङ्गलम्’-गत्यर्थकात् ‘मङ्गि’ धातोरीणादिकोऽलच् प्रत्ययः ।
- ४-अन्यत्र=व्युत्पत्तिवादादिषु ।

अर्हन्तः 'मगल' मङ्गलम्-सकलवित्रविनाशकत्वान्मङ्गलस्वरूपत्वेन सामानाधिक-  
रण्यमुभयोः, मङ्गलत्वस्य जातेः सर्वेष्वर्हत्स्वेकत्वेनैकवचनमिति प्रागुक्तं न विस्मर्त-  
व्यम् । 'सिद्धा मगल' निगदस्पष्टमिदम् । 'साहू मगल' साधुत्वो मङ्गलम्, साधु-  
पदेनाऽऽचार्योपाध्याया अपि लक्ष्यन्ते तेषामपि साधुताऽवच्छेदकधर्मवत्त्वात्,  
अर्हदादिपदव्याख्या च नमस्कारमन्त्रे गता । 'केवलिपण्णतो धम्मो' केवल=  
केवलज्ञानमस्त्येषामिति केवलिनस्तैः प्रज्ञप्तः=परूपितः केवलिप्रज्ञप्तः, धर्म =श्रुत-  
चारित्रलक्षणः 'मगल'=मङ्गलस्वरूपः । 'चत्तारि' चत्वारः 'लोगुत्तमा'  
लोकेषु=द्रव्यभावरूपेषु उत्तमा=श्रेष्ठा लोकोत्तमाः । 'लोकस्योत्तमाः' इति  
व्याख्यानं तु न सम्यक्, निर्द्धारणपष्ठ्यामेकवचनान्तत्वात्स्यासङ्गतेः, 'न निर्द्धारणे'  
(२।२।१०) इति समासप्रतिषेधाच्च । 'अरिहता लोगुत्तमा' अर्हन्तो  
लोकोत्तमाः । 'सिद्धा लोगुत्तमा' सिद्धा लोकोत्तमाः । 'साहू लोकोत्तमा'  
साधुत्वो लोकोत्तमाः 'केवलिपण्णतो धम्मो लोगुत्तमो' केवलिप्रज्ञप्तो धर्मो  
लोकोत्तमः । 'चत्तारि' चतुरः, 'सरण' शरणम् 'पवज्जामि' प्रपद्ये=प्राप्नोमि  
चतुर्गतिभ्रमणभयपरित्राणायेत्यर्थात् । 'अरिहते सरण पवज्जामि' अर्हतः शरण  
प्रपद्ये । 'सिद्धे सरण पवज्जामि' सिद्धान् शरण प्रपद्ये । 'केवलिपण्णत्त धम्म  
सरण पवज्जामि' केवलिप्रज्ञप्तधर्मशरण प्रपद्ये, निगदव्याख्यातमिदं सर्वम् ॥सू० १॥

समस्त विघ्नों के विनाशक होने से मगलस्वरूप है १ । वैसे ही  
सिद्ध मगलस्वरूप हैं २ । साधु पदसे यहा पर साधु, आचार्य,  
उपाध्याय, तीनों का ग्रहण है अत एव अर्थ हुआ कि-साधु,  
आचार्य तथा उपाध्याय मगलस्वरूप हैं ३ । केवली प्ररूपित धर्म  
मगलस्वरूप है ४ । ये ही चार लोकमें उत्तम हैं अत एव इन्हीं  
चारों की शरण को मैं प्राप्त होता हूँ, क्यों कि चतुर्गति-भ्रमण  
के भय को हटाने वाले ये ही चार हैं ॥ सू० १ ॥

नाथ कखावाणा डोवाथी मगलस्वरूप छे (१) तेरी न रीते सिद्ध मगल-  
स्वरूप छे (२) साधु पदथी अर्हिया साधु, आचार्य, उपाध्याय, त्रयेणु अडधु छे  
अटला भाटे अर्थ थयो छे साधु, आचार्य तथा उपाध्याय मगलस्वरूप छे (३)  
केवलिप्ररूपित धर्म मगलस्वरूप छे (४) ये न चार लोकमा उत्तम छे अटले  
ये आदोना शरणुने हु प्राप्त थाउ छु शरणु छे अतुर्गति-भ्रमणुना भयने  
हुवावावाणा ये न चार छे

॥ छाया ॥

चत्वारो मङ्गलम्-अर्हन्तो मङ्गल, सिद्धा मङ्गल, साधवो मङ्गलं, केवलि-  
मङ्गलो धर्मो मङ्गलम् । चत्वारो लोकोत्तमाः-अर्हन्तो लोकोत्तमाः, सिद्धा लोको-  
त्तमाः, साधवो लोकोत्तमाः, केवलिमङ्गलो धर्मो लोकोत्तमः । चतुरः शरण प्रपन्ने-  
अर्हन्तः शरण प्रपन्ने, सिद्धान् शरण प्रपन्ने, साधून् शरण प्रपन्ने, केवलिमङ्गल  
धर्म शरण प्रपन्ने ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

‘चत्वारि’ चत्वारः, ‘गल’-मङ्गलम्-मङ्गल=श्रुतचारित्रादिरूपो धर्मस्त  
लाति=आदत्त इति ‘मङ्गलम्, यद्वा मा गालयति=भयादपनयतीति, मङ्गल  
‘मङ्गलः=भूषण=ज्ञानदर्शनादि त लाति आदत्त’ इति वा मङ्गलम्, अथवा मङ्गल्यते=  
प्राप्यते हितमनेनेति ‘मङ्गलम् । अत्रैकवचन तु अर्हदादिचतुष्टयनिष्ठस्य मङ्गलत्व  
स्यैकत्वेन ‘सूत्राणि प्रमाणम्’ इत्यादिवत्, तत्र हि प्रमितिकरणतावच्छेदक सूत्रत्वा  
वच्छिन्नयावत्सूत्रनिष्ठमेकमेवेत्यवच्छेदकैकत्वमादायैकवचनप्रयोगः, ‘स्पष्टमिदम  
न्यत्र विस्तरेण । ‘चत्वारि’ इत्युक्त, सम्प्रति चतु पदार्थानाह-‘अरिहता’

चार मंगलस्वरूप हैं, मंगल उसको कहते हैं जो श्रुत  
चारित्र्य रूप धर्म को देनेवाला हो, अथवा मुझ (नमस्कार करनेवाले)  
को सत्कारसे पार करने वाला हो, या मङ्गल=ज्ञान दर्शन आदि  
भूषण को धारण करनेवाला हो, अथवा जिसके द्वारा हितकी  
प्राप्ति हो । इस प्रकार सामान्यतया मंगलका निरूपण करके अब  
चार शब्दसे जो लिए जाते हैं उन का निरूपण करते हैं-अर्हन्त

चार मंगल स्वरूप छे, मंगल तेने कहे छे के के श्रुत चारित्र्य धर्मने  
देवावाणो होय अथवा ‘भने’ (नमस्कार करवावाणाने) सत्कारथी पार करनारा  
होय अथवा मङ्गल ज्ञान दर्शन विगेरे लूषणने धारण करवावाणा होय अथवा  
‘भेना द्वारा हितनी प्राप्ति थाय, आवी रीते सामान्य प्रकारे मंगलनु निरूपण  
करिने छेवे चारथी के देवाय तेनु निरूपण करे छे अर्हन्त-समस्त विधेना

- १-‘आतोऽनुपसर्गे क’ (३।२।३) इति कप्रत्यये ‘आतो लोप इटी’-त्यालोपः ।
- २-मङ्गल-‘मङ्गि मण्डने’ भौवादिक आत्मनेपदी, सिद्धि. पृषोदरादिपाठात् ।
- ३-‘मङ्गलम्’-गन्वर्थकात् ‘मङ्गि’ धातोरीणादिकोऽलच् प्रत्यय ।
- ४-अन्यत्र=व्युत्पत्तिवादादिषु ।

अर्हन्तः 'मगल' मङ्गलम्—सकृद्विप्रविनाशकत्वान्मङ्गलस्वरूपत्वेन सामानाधिकरण्यमुभयोः, मङ्गलत्वस्य जातेः सर्वेष्वर्हत्स्वेकत्वेनैकवचनमिति प्रागुक्तं न विस्मर्तव्यम् । 'सिद्धा मगल' निगदस्वपृष्ठमिदम् । 'साहू मगल' साधु-पदेनाऽऽचार्योपाध्याया अपि लक्ष्यन्ते तेषामपि साधुताऽवच्छेदकधर्मवत्त्वात्, अर्हदादिपदव्यारया च नमस्कारमन्त्रे गता । 'केवलिपण्णत्तो धम्मो' केवल=केवलज्ञानमस्त्येषामिति केवलिनस्तैः प्रज्ञप्तः=प्ररूपितः केवलिप्रज्ञप्तः, धर्म =श्रुत-चारित्र्यलक्षणः 'मगल'=मङ्गलस्वरूपः । 'चत्तारि' चत्तारः 'लोगुत्तमा' लोकेषु=द्रव्यभावरूपेषु उत्तमा='श्रेष्ठा लोकोत्तमाः । 'लोकस्योत्तमाः' इति व्याख्यानं तु न सम्यक्, निर्द्धारणपट्टचामेकवचनान्तत्वात्साङ्गतेः, 'न निर्द्धारणे' (२।२।१०) इति समासप्रतिषेधाच्च । 'अरिहता लोगुत्तमा' अर्हन्तो लोकोत्तमाः । 'सिद्धा लोगुत्तमा' सिद्धा लोकोत्तमाः । 'साहू लोकोत्तमा' साधवो लोकोत्तमाः 'केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो' केवलिप्रज्ञप्तो धर्मो लोकोत्तमः । 'चत्तारि' चतुरः, 'सरण' शरणम् 'पवज्जामि' प्रपद्ये=प्राप्नोमि चतुर्गतिभ्रमणभयपरित्राणायेत्यर्थात् । 'अरिहते सरण पवज्जामि' अर्हतः शरण प्रपद्ये । 'सिद्धे सरण पवज्जामि' सिद्धान् शरण प्रपद्ये । 'केवलिपण्णत्त धम्म सरण पवज्जामि' केवलिप्रज्ञप्त धर्म शरण प्रपद्ये, निगदव्याख्यातमिदं सर्वम् ॥सू० १॥

समस्त विप्रों के विनाशक होने से मगलस्वरूप है १। वैसे ही सिद्ध मगलस्वरूप है २। साधु पदसे यहा पर साधु, आचार्य, उपाध्याय, तीनों का ग्रहण है अत एव अर्थ हुआ कि-साधु, आचार्य तथा उपाध्याय मगलस्वरूप है ३। केवली प्ररूपित धर्म मगलस्वरूप है ४। ये ही चार लोकमें उत्तम है अत एव इन्हीं चारों की शरण को मैं प्राप्त होता हूँ, क्यों कि चतुर्गति-भ्रमण के भय को हटाने वाले ये ही चार हैं ॥ सू० १ ॥

नाश करवावाणा ढोवाधी मगलस्वरूप छे (१) तेरी न रीते सिद्ध मगल स्वरूप छे (२) साधु पदथी अर्हिया साधु, आचार्य, उपाध्याय, तेषुनुं श्रद्धु छे अटला भाटे अर्थ थयो छे साधु, आचार्य तथा उपाध्याय मगलस्वरूप छे (३) देवणिप्ररूपित धर्म मगलस्वरूप छे (४) ओ न थार ढोकाभा उत्तम छे अटले ओ थारोना शरणुने हुं प्राप्त थाउ छु करण छे चतुर्गति-भ्रमणना भयने हुवाववावाणा ओ न थार छे



अथ 'इच्छामि ठामि काउस्सग' इति सम्पूर्णा पट्टिका पठित्वा 'इच्छामि पडिक्कमिउ' इति सर्वा पट्टी पठेत्, सैषा—'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

इच्छामि पडिक्कमिउ इरियावहियाए विराहणाए गमणा गमणे, पाणक्कमणे, वीयक्कमणे, हरियक्कमणे ओसा—उत्तिंग—पणग—दग—मट्टी—मक्कडा—सताणा—सकमणे जे मे जीवा विराहिया—एगिदिया, वेइदिया, तेइदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, सघाइया, सघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्विया ठाणाओ ठाण सकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥सू० २॥

॥ छाया ॥

इच्छामि प्रतिक्रमितुमैर्यापथिक्या (क्या) विराधनाया. (या), गमना गमने भाणातिक्रमणे, बीजाक्रमणे, हरिताक्रमणे, अवश्यायोत्तिङ्गपनकोदकपृत्तिकामर्कटसन्तानसक्रमणे ये मया जीवा विराधिता—एकेन्द्रिया., द्वीन्द्रिया., त्रीन्द्रिया., चतुरिन्द्रियाः, पञ्चेन्द्रियाः, अभिहताः, वत्तिताः, श्लेषिताः, सघातिता., सघट्टिता., परितापिताः, क्लमिता., अवद्राविता., स्थानात्स्थान सक्रामिताः, जीविताद्वयपरोपितास्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥

॥ टीका ॥

'इरियावहियाए' ऐर्यापथिक्याः ईरणमीर्या=सयमिना गमनम्, पथि भवा पन्थान गच्छति=प्राप्नोतीति वा 'पथिकी, ईर्याप्रधाना पथिकी ईर्यापथिकी,

इसके बाद 'इच्छामि ठामि काउस्सग' की पाटी पढ़कर 'इच्छामि पडिक्कमिउ' की पूरी पाटी पढ़े, वह इस प्रकार—'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि ।

हे गुरुमहाराज ! मैं ईर्यापथसम्बन्धी विराधना से निवृत्त

ते पछी 'इच्छामि ठामि काउस्सग' नी पाटी ओखीने इच्छामि पडिक्कमिउ' नी पूरी पाटी ओखी, ते आ प्रकारे—'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि हे गुरुभंडारान् । हे ईर्यापथसगंधी विराधनाथी निवृत्त थवा धिच्छु छु

१—पथिकी—'पथःपकन्' (५।१।७५) इति प्कन् प्रत्यय. पिचवान्हीष ।

यद्वा ईर्याप्रधानः पन्था = ईर्यापथस्तत्र भवा = ऐर्यापथिकी = ईर्यापथसम्बन्धिनी  
विराधनेति यावत्, तस्याः । 'पडिक्रमिउ' प्रतिक्रमितु = निवर्त्तितुम् 'इच्छामि'  
स्पष्टमिदम् । अथ विराजनाविषयान् दर्शयति—

'गमणागमणे' गमन चाऽऽगमन च १गमनागमनं, तस्मिन् गमनागमने  
तत्र गमन = स्वाध्यायादिनिमित्तमुपाश्रयाद्बहिः प्रस्थानम्, आगमन = कार्यसमाप्तौ  
परावृत्त्य पुनरुपाश्रय एव समागमनम् । अतिचारोत्पत्तौ निदानमाह- 'पाणकमणे'  
इत्यादि, प्राणाः सन्त्येपामिति २प्राणाः = द्वीन्द्रियादयः प्राणिनस्तेपाम् आक्र-  
मण = पादादिना पीडन प्राणाक्रमणं तस्मिन् । 'वीयकमणे' वीजानि प्रमिद्धानि  
तेपामाक्रमणं वीजाक्रमणं तस्मिन् । 'हरियकमणे' हरितस्य = वनस्पतिमात्रस्याऽऽ-  
क्रमणं हरिताक्रमणं तस्मिन् । 'ओसाउत्तिगपणगदगमट्टीमकडासताणासक्रमणे'  
अवश्यायश्चोत्तिङ्गश्च पनकश्च दकं च मृत्तिका च मर्कटकसन्तानश्चेत्येतेषां द्वन्द्वे अव-  
श्यायोत्तिङ्गपनकदक-मृत्तिका-मर्कटकसन्तानास्तेषां सक्रमण = आक्रमणम् तस्मिन्,  
तत्राऽवश्यायः = मेघमन्तरेण रात्रौ पतितः शूक्ष्मतुषाररूपोऽपकायविशेषः 'ओस'  
इति भाषाप्रसिद्धः, उत्तिङ्गा = भूमौ उत्तुलिविवरकारिणो गर्दभमुखाकृतयः कीट-  
विशेषा कीटिकानगरादयो वा, पनक = अङ्कुरितोऽनङ्कुरितो वा पञ्चवर्णानन्त-  
कायविशेषः, जलसम्बन्धेन जायमानः पिन्डलाकार 'काई' इति लोकरसिद्धः,  
३दकम् = उदकमपकाय, मृत्तिका = सचित्तपृथ्वीकाय, मर्कटकसन्तान = लूताजालम् ।

होना चाहता हूँ । स्वाध्याय आदि के लिये उपाश्रय से बाहर  
जाने में और लौटकर फिर उपाश्रय आने में पैर आदि से  
प्राणियों के दूय जानेमें, धीजों के दूय जानेमें, वनस्पति के दूय  
जानेमें, ओस, उत्तिग (कीट विशेष), पंचवर्ण पनक (फूलन),  
पानी, मिट्टी, मकड़ेके जाल आदि के कुचल जानेमे, जो एक

स्वाध्यायादि निमित्ते उपाश्रयभाथी गडार जवाभा अने पाछा करी उपाश्रये  
आववाभा, पग विगेरेथी प्राणीम्बोना दणाथ जवाभा, भीज वगेरे दणाथ जवाभा,  
वनस्पतिना दणाथ जवाभा, ओस, उत्तिग (येक प्रकारतुं लुवडु), पचवर्ण  
पनक (कुलधु), पाणी, भाटी, मकडीनी नल विगेरेना कथराथ जवाभा, ने येक

१- 'गमनागमनम्' अत्र द्वन्द्वेनैकवचनान्तता ।

२- प्राणाः- 'अर्श आदिभ्योऽच्' इत्यच्प्रत्यय ।

३- दक = जलम्- 'प्रोक्तं प्राज्ञैर्भुवनममृतं जीवनीयं दकं च' इति हलायुधः ।

अथ 'इच्छामि ठामि काउस्सग' इति सम्पूर्णा पट्टिका पठित्वा 'इच्छामि पडिक्कमिउ' इति सर्वा पट्टीं पठेत्, सैषा—'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि ।

## ॥ मूलम् ॥

इच्छामि पडिक्कमिउ इरियावहियाए विराहणाए गमणा-गमणे, पाणक्कमणे, वीयक्कमणे, हरियक्कमणे ओसा-उत्तिंग-पणग-दग-मट्टी-मक्कडा-सताणा-सकमणे जे मे जीवा विराहिया-एगिदिया, वेइदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, सघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उइविया ठाणाओ ठाण सकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥सू० २॥

## ॥ छाया ॥

इच्छामि प्रतिक्रमितुमैर्यापथिन्धाः (क्या) विराधनायाः (या), गमना गमने प्राणातिक्रमणे, वीजाक्रमणे, हरिताक्रमणे, अवश्यायोत्तिङ्गपनकोदकमृत्ति कामर्कटसन्तानसक्रमणे ये मया जीवा विराधिता.—एकेन्द्रिया, द्वीन्द्रिया, त्रीन्द्रियाः, चतुरिन्द्रियाः, पञ्चेन्द्रियाः, अभिहता, वत्तिताः, श्लेषिता, सघा-तिताः, सघट्टिता, परितापिता, क्लमिता, अवद्राविता, स्थानात्स्थान सका-मिताः, जीविताद्वयपरोपितास्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥

## ॥ टीका ॥

'इरियावहियाए' ऐर्यापथिक्या. ईरणमीर्या=सयमिना गमनम्, पथि-भवा पन्थान गच्छति=प्राप्नोतीति वा 'पथिकी, ईर्याप्रधाना पथिकी ईर्यापथिकी,

इसके बाद 'इच्छामि ठामि काउस्सग' की पाटी पढ़कर 'इच्छामि पडिक्कमिउ' की पूरी पाटी पढ़े, वह इस प्रकार—'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि ।

हे गुरुमहाराज ! मैं ईर्यापथसम्बन्धी विराधना से निवृत्त

ते पछी 'इच्छामि ठामि काउस्सग' नी पाटी गेळीने इच्छामि पडिक्कमिउ' नी पूरी पाटी गेवची, ते आ प्रकारे—'इच्छामि० इरियावहियाए' इत्यादि हे गुरुमहाराज ! हे ईर्यापथसम्बन्धी विराधनाथी निवृत्त थवा धम्मिष्ठु धु

१-पथिकी-‘पयःपक्कन्’ (५।१।७५) इति पक्कन् प्रत्यय’ पिच्चान्धीष ।

प्रतिक्रमणमुच्यते—‘इच्छामि० पगामसिज्जाए’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

इच्छामि पडिक्कमिउ पगामसिज्जाए निगामसिज्जाए  
सथाराउव्वट्टणाए परियट्टणाए आउटणाए पसारणाए छप्पईसघट्ट-  
णाए कूइए कक्कराइए छिइए जभाइए आमोसे ससरक्खामोसे  
आउलमाउलाए सोवणवत्तिआए इत्थीविप्परिआसिआए दिट्ठि-  
प्परिआसिआए मणविप्परिआसिआए पाणभोयणविप्परिआसि-  
आए जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि  
दुक्कड ॥ सू० ३ ॥

॥ छाया ॥

इच्छामि प्रतिक्रमितु प्रकामशय्या निकाशय्या सस्तारकोद्धर्त्तनया  
परिवर्त्तनया आकुञ्चनया प्रसारणया पदपदीसप्रद्वनया कृजिते कर्करायिते क्षुते  
जृम्भिते आमर्शे सरजस्कामर्शे आकुलाकुलया स्वप्नप्रत्ययया स्त्रीवैपर्यासिक्वा  
दृष्टिवैपर्यासिक्वा मनोवैपर्यासिक्वा पानभोजनवैपर्यासिक्वा यो मया दैव-  
सिकोऽतिचार कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥

॥ टीका ॥

‘पडिक्कमिउ’ प्रतिक्रमितु=निवर्त्तितुम्, ‘इच्छामि’ अभिलषामि,  
‘पगामसिज्जाए’ शयन=शय्या<sup>१</sup>, प्रकाम शय्या=प्रकामशय्या तथा, रात्रि-

आदि में करवट बदलने आदि से होनेवाले अतिचारों की निवृत्ति  
कहते हैं—‘इच्छामि पगामसिज्जाए’ इत्यादि । हे भगवन् ! मैं  
दिन-रात सम्बन्धी शयन आदि अतिचारों से निवृत्त होना

आदि श्रेयवधाभा थनान् अतिथारेणी निवृत्ति कडे छे इच्छामि पगामसिज्जाए’ इत्यादि ।  
हे भगवान् ! हे द्विषस-रात्रि सणधी शयन विगेरे अतिथारेणी निवृत्त थवाने  
थाहु छु ते अतिथार अगरे अधिक सुवाधी अथवा विना कारण सुवाधी अथवा

१ ‘शय्या’-शीद् स्वप्ने’ अस्मात् ‘सज्ञाया समज-निपद्-निपत-मन-विद्-  
पुञ्-शीद्-भृविण’ (३ । ३ । ८८) इति भावे क्यप् । किन्तु—

‘कृत्यल्युटो बहुलम्’ इति वचनाद् ‘य’ प्रत्ययः ‘इत्युक्तिस्तु व्याकरणा-  
नवबोधमूलैवेत्यलमितराक्षेपेण ।

२ ‘प्रकामशय्या’-अत्र सुप्पुपेति ममास ।

एयमन्येऽपि 'जे' ये 'एगिदिया' एक स्पर्शरूपमिन्द्रिय येषां त एकेन्द्रियाः= पृथिव्यादयः, 'नेइदिया' द्वीन्द्रियाः=ऋमिप्रभृतयः, 'तेडदिया' त्रीन्द्रियाः= पिपीलिकाद्याः, 'चउरिदिया' चतुरिन्द्रियाः=दशमशरुभ्रमराद्याः, 'पचिदिया' पञ्चेन्द्रियाः=गृहगोधिकाद्याः 'मे' मया 'विरादिया' विराधिता=दुःखीकृताः, 'अभिदिया' अभि=साम्मुख्येन हता=चरणादिस्पर्शेन परिपीडिताः, 'वत्तिया' वत्तिता=धूल्यादिषु विलोठिता धूल्यादिभिरावृता वा, यद्वा परिवत्तिताः=यथा वस्थानाद्वैपरीत्य नीता इत्यर्थः, 'लेसिया' श्लेषिता=सम्मर्दिताः, 'सघाइया' सघातितः=मिथः सयोजिता, 'सघट्टिया' सघट्टिता=ईपत्स्पृष्टा, 'परिया चिया' परि=सर्वतोभावेन तापिता=पीडिता, 'मिलामिया' क्लामिता= ग्लानिमानिताः, 'उदविया' उपद्राविताः उपद्राविता वा त्रासिता इत्यर्थः, 'ठाणाओ ठाण सकामिया' स्थानात्=एकस्मात् स्थानात् स्थान=स्थानात्तर सकामिता=प्रापिता, 'जीवियाओ ववरोविया' जीवित=जीवन तस्माद् व्यरोपिता=मोचिता, 'तस्स' तस्य-तत्सम्बन्धिनोऽतिचारस्य 'मि' मयि स्थितमिति शेष, 'दुक्कड' 'दुष्कृत=पाप 'मिच्छ' मिथ्या=निष्फल भस्तिवतिशेष ॥मृ०२॥

एव गमनागमनातिचारमुक्त्वा सम्प्रति तत्रग्वर्तनस्थानातिचार-

इन्द्रियवाले, दो इन्द्रियवाले, तीन इन्द्रियवाले, चार इन्द्रियवाले, पाच इन्द्रियवाले जीव मुझसे विराधित (दुखी) हुए हों, कुचले गये हों, धूल आदिमे लुढकाये या ढके गये हों, किसी प्रकार मसले गये हों, इकट्ठे किये हों, छूये गये हों, सताये गये हों, थकाये गये हों, अथवा जीवसे रहित किये गये हों तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड'

इस प्रकार गमन-आगमन सम्बन्धी अतिचार कहकर शयन

धद्रियवाणा, दो धद्रियवाणा, त्रय धद्रियवाणा, चार धद्रियवाणा, पाच धद्रियवाणा एव माराधी विराधित (दुःखी) थका डोय, क्यराध गया डोय, धूल विगरेभा ढकाध गया डोय, कोध प्रकारे भरडाध गया डोय, बेगा कराया डोय, स्पथे थध गये डोय, सताव्या डोय, थकाव्या डोय अथवा एवथी रहित कर्था डोय तो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड'

आपी रीते गमन आगमन सम्बन्धी अतिचार कहीने शयन आदिभा पडथु

रायिते=कर्करायित=हा विपमेय परुपेय शय्या, तदुपरि कथ मया शयितव्यमित्यादि शय्याद्रोपकथन तस्मिन् सति, 'उडिए' क्षुते=ज्जिकादी 'जभाइए' जृम्भित=जृम्भा तस्मिन्; एतद्वय चाविधिपूर्वकमेव कृत सदतिचारोत्पादकमित्यवगन्तव्यम् 'आमोसे' आमर्शः=स्पर्शस्तस्मिन्-अप्रमार्ज्यं हस्तादिना ऋणद्वयनस्वरूपे । 'ससरख्वामोसे' सह रजसा वर्त्तते सरजरुः स चासावामर्शश्च सरजरुसामर्शस्तस्मिन् सचित्तरजोयुक्तवस्तुस्पर्श इत्यर्थः । इत्थ जाग्रतोऽतिचारमुक्त्वा सम्प्रति सुप्तस्य तमाह-'आउलमाउलाए' इति, आकुलाकुला=निद्रा प्रमादाप्रभितस्य मूलोत्तरगुणसम्बन्धिविधिगोपरोधक्रियास्वरूपा, युद्ध-विवाह-राज्य-प्राप्तिप्रभृतिसावद्यक्रियास्वरूपा वा तथा । 'सोअणवत्तिआए' स्वप्नः=शयनप्रत्ययः=हेतुर्यस्याः सा स्वप्नप्रत्यया<sup>१</sup> तथा स्वप्नवशात्सञ्जातयेत्यर्थः, विराधनयेत्यर्थाद्भ्रम्यते, स्वप्नवशात्सञ्जातया मूलोत्तरगुणसम्बन्धिविधिगोपरोधक्रियास्वरूपया, युद्ध-विवाह-राज्यप्राप्तिप्रमुखसावद्यक्रियास्वरूपया वा विराधनयेत्यर्थः । इमामेव प्रविभज्य प्रदर्शयति—'इत्थीविप्परिआसिआए' स्त्रिया स्त्रीभिर्वा सह विपर्यामः=स्वप्ने ब्रह्मचर्यस्खलनरूपो व्यत्यासस्तत्र भवेति, यद्वा विपर्यासे भवा=वैपर्यासिकी स्त्रिया वैपर्यासिकी स्त्रीवैपर्यासिकी तथा, 'दिट्ठिविप्परिआसिआए' स्वप्ने अनुरागवशात्स्त्रयवलोकनदृष्टिविपर्यासस्तत्र भवा दृष्टिवैपर्यासिकी तथा, 'मणविप्परिआसिआए' स्वप्ने मनसा

जभाई लेने से, बिना पूजे खुजलाने से या सचित्त रजयुक्त वस्त्रादिके स्पर्श से जो अतिचार किया गया हो, ये सब जाग्रत अतिचार हुए, अब सुप्त अतिचार कहते हैं—एव स्वप्न-अवस्था-सम्बन्धी, मूलोत्तर गुणको दूषित करनेवाली, अथवा युद्ध, विवाह, राज्यप्राप्ति आदि सावद्य क्रिया अर्थात् स्वप्नमें स्त्री के साथ कुशील सेवन, अनुराग पूर्वक स्त्री का अवलोकन, मनके विकार, तथा

भावाथी, पूज्या विना भोजनवाथी अथवा सचित्त रजयुक्त वस्त्रादिकना स्पर्शथी ले अतिचार तथा होय ये णधा णअत अतिचार तथा, हुवे सुप्त अतिचार ठडे छे — एव स्वप्न अवस्था सम्बन्धी, मूलोत्तर गुणने दूषित करवावाणी अथवा युद्ध, विवाह, राज्यप्राप्ति विगेरे सावद्य क्रिया अर्थात् स्वप्नमा स्त्रीनी

मन्थयामद्वयाधिकशयनेन निष्कारण दिवाशयनेन वा, यद्वा-बहालस्यादिजनिक्या मृदुतमया स्थूलशय्येत्यर्थः । मन्थयामद्वयाधिकशयनस्य स्वाभ्यायप्रतिरोधकत्वेन प्रतिपेधात् । 'निगामसिजाए' प्रकामशय्यैव नित्यमासेव्यमाना 'निकामशय्ये'-त्युच्यते । 'सथारा' इति लुप्तसप्तम्यन्तं पृथक्पद, समासे तु सति 'सथारा' इत्यस्य 'परियट्टणाए' इत्यनेन विवक्षितः सम्बन्धो न स्यात् 'पदार्थः पदार्थेनान्वेति ननु पदार्थैरुद्देशेन' इतिसिद्धान्तात्, समासे च विशिष्ट एव शक्तिस्वीकारेण तदेकदेशस्य पदार्थत्वाभावादिति प्रपञ्चितमन्यत्र, सस्तीर्यते ऽस्मिन्निति सस्तरण वा सस्तारः=आस्तरण तस्मिन्, 'उच्चट्टणाए' उद्धवर्तन-मुद्धर्तना=प्रमार्जनमन्तरेण दक्षिणपार्श्वोऽऽवर्तन तथा, 'परियट्टणाए' परिवर्तन परिवर्तना=वामपार्श्ववर्तन तथा, 'आउटणाए' आकुञ्चनमाकुञ्चना=शरीर-सङ्कोचस्तया, 'पसारणाए' प्रसारण प्रसारणा=शरीरसञ्चारण तथा, एतत्पर्यन्त 'प्रमार्जनमन्तरेणे'-त्यस्य शेषो वोद्भव्य । 'छप्पईसघट्टणाए' पट्टपत्रो यूका स्तासा सघट्टनम्=अथथावत्स्पर्शः पट्टपदीसघट्टना तथा, 'कूङ्गए' कूजित<sup>१</sup> कूजन=श्लेष्मादिवशेनाऽयथात्रन्कासन, तस्मिन् सतीत्यर्थः । 'ककराईए' कर्क-

चाहता हूँ । वे अतिचार चाहे अधिक सोनेसे या बिना कारण सोने से, अथवा अत्यन्त कोमल मोटी (जाड़ी) शय्या पर सोने से तथा ऐसी शय्या का नित्य सेवन करने से, बिछौने (सथारे) पर शरीर के घिन पूजे करवट लेने से, घिन पूजे अंगोपाग के सकोचन और पसारने से, जूँ आदि के अविधिपूर्वक स्पर्श से, अविधि से खासी आदि के करने से, अयतना पूर्वक छींकने तथा

अत्यन्त कोमल मोटी शय्या उपर सुवाथी तथा जेवी पथारीने नित्य उपयोग करवाथी, पथारी (सथारा) उपर शरीरने पूज्या विना करवट लेवाथी, पूज्या विना अंग-उपागने सङ्कोचवा-पसारवाथी, जूँ आदिना अविधिपूर्वक स्पर्शथी, अविधिसे उधरस विगेरे भावाथी, अयतनापूर्वक छींकवाथी तथा अगासु

१ अन्यत्र-'वैयाकरणपभूण-लघुमञ्जूपादिषु' ।

२ भावे क्त' ।

३ 'यस्य च भावेने'ति सप्तमी, एवमग्रेऽपि ।

रायिते=कर्करायित=हा विपमेय परुषेय शय्या, तदुपरि कथ मया शयितव्यमित्यादि शय्यादोषरुधन तस्मिन् सति, 'जिइए' भुते=जिइएदौ 'जभाइए' जृम्भित=जृम्भा तस्मिन्; एतद्वय चाविधिपूर्वकमेव कृत सदतिचारोत्पादकमित्यवगन्तव्यम् 'आमोसे' आमर्शः=स्पर्शस्तस्मिन्-अपमार्ज्य इस्तादिना कण्ड्वयनस्वरूपे । 'ससरक्खामोसे' सह रजसा वर्तते सरजस्कः स चासावामर्शश्च सरजस्कामर्शस्तस्मिन् सचित्तरजोयुक्तवस्तुस्पर्श इत्यर्थः । इत्थ जाग्रतोऽतिचारमुक्त्वा सम्प्रति सुप्तस्य तमाह-'आउल्लाउलाए' इति, आकुल्लाकुला=निद्रा प्रमादाग्रभिभूतस्य मूलोत्तरगुणसम्बन्धिविधोपरोधक्रियास्वरूपा, युद्ध-विवाह-राज्य-प्राप्तिपभृतिसावयक्रियास्वरूपा वा तथा । 'सोअणवत्तिआए' स्वप्नः=शयनप्रत्ययः=हेतुर्यस्याः सा स्वप्नप्रत्ययाः तथा स्वप्नवशात्सज्जातयेत्यर्थः, विराधनयेत्यर्थाद्भव्यते, स्वप्नवशात्सज्जातया मूलोत्तरगुणसम्बन्धिविधोपरोधक्रियास्वरूपया, युद्ध-विवाह-राज्यप्राप्तिप्रमुखसावयक्रियास्वरूपया वा विराधनयेत्यर्थः । इमामेव प्रविभज्य प्रदर्शयति—'इत्थीविप्परिआसिआए' स्त्रिया स्त्रीभिर्वा सह विपर्यामं=स्वप्ने ब्रह्मचर्यस्त्रलनरूपो व्यत्यासस्तत्र भवेति, यद्वा विपर्यासे भवा=वैपर्यासिकी स्त्रिया वैपर्यासिकी स्त्रीवैपर्यासिकी तथा, 'दिट्ठिविप्परिआसिआए' स्वप्ने अनुरागवशात्स्वप्नलोकनदृष्टिविपर्यासस्तत्र भवा दृष्टिवैपर्यासिकी तथा, 'मणविप्परिआसिआए' स्वप्ने मनसा

जभाई लेने से, बिना पूजे खुजलाने से या सचित्त रजयुक्त वस्त्रादिके स्पर्श से जो अतिचार किया गया हो, ये सप्त जाग्रत अतिचार हुए, अब सुप्त अतिचार कहते हैं—एव स्वप्न-अवस्था-सम्बन्धी, मूलोत्तर गुणको दूषित करनेवाली, अथवा युद्ध, विवाह, राज्यप्राप्ति आदि सावध क्रिया अर्थात् स्वप्नमें स्त्री के साथ कुशील सेवन, अनुराग पूर्वक स्त्री का अवलोकन, मनके विकार, तथा

आवाधी, पून्या बिना भोजेलावाधी अथवा सचित्त रजयुक्त वस्त्रादिकना स्पर्शधी के अतिचार तथा डोय अे गधा नभत अतिचार तथा, डवे सुप्त अतिचार कडे छे — अेव स्वप्न अवस्था सणधी, मूलोत्तर गुणने दूषित करवावाणी अथवा युद्ध, विवाह, राज्याप्राप्ति विगेरे सावध क्रिया अर्थात् स्वप्नमा स्त्रीनी



त्रिपर्यासो मनोत्रिपर्यासस्तत्र भया मनोत्रैपर्यासिकी तथा, 'पाणभोअणविप्परि आसिआए' सपने पानञ्च भोजनञ्च पानभोजने तयोर्विपर्यासः=पान-भोजनादिसेवन तत्र भया पानभोजनत्रैपर्यासिकी तथा हेतुभूतया विराधनया, 'जो' य' 'मे' मया, 'देवसिओ' दैवसिकः 'अइयारो' अतिचारः, 'कओ' कृतः=सम्पादितः 'तस्स' इत्यादि भागवत् ।

नन्वयमतिचारो न प्राप्नोति प्रतिपिद्धत्वाद्दिवास्त्रापस्येति ? अत्रोच्यते यद्यपि प्रतिपिद्धो दिवास्त्रापस्तथाप्येतद्वचनसामर्थ्याद्ध्वश्रान्तादीना नासौ प्रतिपिद्ध इति गम्यते ॥ इतित्वग्वर्तनातिचारप्रतिक्रमणम् ॥ सू० ३ ॥

गत त्वग्वर्तनाऽतिचारप्रतिक्रमण सम्प्रति गोचरातिचारप्रतिक्रमणमभिधीयते—'पडिक्कमामि गोयर०' इत्यादि ।

आहार पानीके सेवन रूप विराधना के कारण मुझ से जो अतिचार किया गया हो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ।

यद्यपि साधुओं के लिये दिनमें शयन का निषेध है तो भी यहाँ पर शयन सम्बन्धी दैवसिक अतिचार बताने से यह सिद्ध होता है कि विहार आदि से अधिक थकावट आजाने पर या अन्य अनिवार्य कारणों से यदि दिन में सोया जाय तो ऐसी अवस्था के लिये उक्त दैवसिक अतिचार बताये है ॥ सू० ३ ॥

इस प्रकार शयन सम्बन्धी अतिचारों का प्रतिक्रमण कह कर अब गोचरी के अतिचार सम्बन्धी प्रतिक्रमण कहते हैं— 'पडिक्कमामि गोयर०' इत्यादि ।

साथे सभागम, प्रेमपूर्वक स्त्रीनु जेणु, मनने। विकार, तथा आहार-पाणीना सेवनइपी विराधनाना कारणे भाराथी ने अतिचार थया डोय 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड'

यद्यपि साधुओंने भाटे द्विसभा सुवानु निषेध छे तो पणु शयन सणधी दैवसिक अतिचार गताववाथी ने सिद्ध थाय छे के विहार आदिथी भूण थाकी जवाना कारणे अथवा भीज्ज अनिवार्य कारणेथी द्विसे सुपु पडे तो आवी अवस्थाने भाटे उपर ढडेणु दैवसिक अतिचार गतावेत्त छे ( सू० ३ )

आवी रीते शयन सणधी अतिचाराना प्रतिक्रमणु कहीने डवे गोचरीना अतिचार सणधी प्रतिक्रमणु कडे छे— 'पडिक्कमामि गोयर०' 'इत्यादि'

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि गोचरचरियाए भिक्खायरियाए उग्घाडकवा-  
डउग्घाडणाए साणावच्छदारासंघट्टणाए मडीपाहुडिआए वलिपाहु-  
डिआए ठवणापाहुडिआए सकिए सहसागारिए अणेसणाए  
पाणेसणाए पाणभोयणाए वीयभोयणाए हरियभोयणाए पच्छा-  
कम्मियाए पुरेकम्मियाए अदिट्टहडाए दगससट्टहडाए रयस-  
सट्टहडाए पारिसाडणियाए पारिठावणियाए ओहासणभिक्खाए  
ज उग्गमेण उप्पायणेसणाए अपरिसुद्ध पडिगाहिय परिभुत्त वा  
ज न परिठविअ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥ सू० ४ ॥

॥ उया ॥

प्रतिक्रामामि गोचरचर्याया भिक्षाचर्यायामुद्धाटरुपाटोद्धाटनया इव-  
त्सदारकसघट्टनया मण्डीप्राभृतिरुया वलिप्राभृतिरुया स्थापनाप्राभृतिरुया शङ्कि-  
ते सहसाकारिकेऽनेपणया पानैपणया प्राणभोजनया बीजभोजनया हरितभोज-  
नया पश्चात्कर्मिकुया पुर कर्मिकुयाऽट्टाहृतया उदकससट्टाऽऽहृतया रजःसस-  
ट्टाहृतया पारिशाटनिक्या (पारिशातनिक्या) परिष्ठापनिक्या ओहासनभिक्षया  
यद् उद्गमेन उत्पादनैपणयाऽपरिशुद्ध प्रतिगृहीत परिशुक्त वा यत्र परिष्ठापित तस्य  
मिथ्या मयि दुष्कृतम्' ॥ सू० ४ ॥

॥ टीका ॥

‘गोचरचरियाए’ चरण चर गाश्वरो गोचर., चर्या चरणमित्यपर्यायान्तरम्, गोचर  
इव चर्या=वृत्तिर्गोचरचर्या तस्या तद्रूपायामिति भावः। ‘भिक्खायरिआए’ भिक्षायै  
चर्या भिक्षाचर्या तस्या कुलेषूत्तममध्यमाधमेषु वस्तुषु चेष्टानिष्टेषु रागादिराहित्येन  
लाभादिनैरपेक्षेण च समचेतसा मुनिना भिक्षार्थमटनीय<sup>१</sup> तादृश्या भिक्षाचर्याया-

गायके समान जगह जगह से थोडा थोडा आहार लेने के लिये  
भ्रमण करने का नाम गोचरचर्या है, तत्स्वरूप जो भिक्षाचर्या  
(अर्थात् उत्तम मध्यम और नीच (साधारण) कुलों में तथा इष्ट-

गायनी नेम ठेकावे ठेकावेथी थोडा थोडा अहार लेवा भाटे इरुत्तु ते कामने  
गोचरचर्या कडे छे तत्स्वरूप ने भिक्षाचर्या (अर्थात् उत्तम मध्यम अने नीच

१-भिक्षायामीदृग्विधन्वमुपदर्शयितुमेवोक्त मूले-गोचरचर्ययेति ।

त्रिपर्यासो मनोत्रिपर्यासस्तत्र भवा मनोत्रैपर्यासिकी तथा, 'पाणभोअणविप्परि आसिआए' स्यन्ने पानञ्च भोजनञ्च पानभोजने तयोर्विपर्यासः=पान भोजनादिसेवन तत्र भवा पानभोजनत्रैपर्यासिकी तथा हेतुभूतया विराधनया, 'जो' यः 'मे' मया, 'देवसिओ' दैवसिकः 'अइयारो' अतिचारः, 'कओ' कृतः=सम्पादितः 'तस्स' इत्यादि भागवत् ।

नन्वयमतिचारो न प्राप्नोति प्रतिपिद्धत्वाद्दिवास्वापस्येति ? अत्रोच्यते यद्यपि प्रतिपिद्धो दिवास्वापस्तथाप्येतद्वचनसामर्थ्याद्ध्वश्रान्तादीना नासौ प्रतिपिद्ध इति गम्यते ॥ इतित्वग्वर्तनातिचारप्रतिक्रमणम् ॥ सू० ३ ॥

गत त्वग्वर्तनाऽतिचारप्रतिक्रमण सम्प्रति गोचरातिचारप्रतिक्रमणमभिधीयते—'पडिक्कमामि गोयर०' इत्यादि ।

आहार पानीके सेवन रूप विराधना के कारण मुझ से जो अतिचार किया गया हो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ।

यद्यपि साधुओं के लिये दिनमें शयन का निषेध है तो भी यहा पर शयन सम्बन्धी दैवसिक अतिचार बताने से यह सिद्ध होता है कि विहार आदि से अधिक थकावट आजाने पर या अन्य अनिवार्य कारणों से यदि दिन में सोया जाय तो ऐसी अवस्था के लिये उक्त दैवसिक अतिचार बताये हैं ॥ सू० ३ ॥

इस प्रकार शयन सम्बन्धी अतिचारों का प्रतिक्रमण कह कर अब गोचरी के अतिचार सम्बन्धी प्रतिक्रमण कहते हैं— 'पडिक्कमामि गोयर०' इत्यादि ।

साथे सभागम, प्रेमपूर्वक स्त्रीनु जेजु, मननो विकार, तथा आहार-पाणीना सेवनइपी विराधनाना कारणे माराथी जे अतिचार थया डोय 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड'

यद्यपि साधुओंने भाटे दिवसमा सुवानु निषेध छे तो पणु शयन सणधी दैवसिक अतिचार णताववाथी जे सिद्ध थाय छे ते विहार आदिथी भूण थाकी जवाना कारणे अथवा णीण अनिवार्य कारणेथी दिवसे सुजु पडे तो आनी अवस्थाने भाटे उपर कहेलु दैवसिक अतिचार णतावेव छे (सू० ३)

आनी रीते शयन सणधी अतिचाराना प्रतिक्रमणु कहीने हवे गोचरीना अतिचार सणधी प्रतिक्रमणु कहे छे— 'पडिक्कमामि गोयर०' 'इत्यादि'

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि गोयरचरियाए भिक्खायरियाए उग्घाडकवा-  
डउग्घाडणाए साणावच्छदारासंघट्टणाए मडीपाहुडिआए वलिपाहु-  
डिआए ठवणापाहुडिआए सकिए सहसागारिए अणेसणाए  
पाणेसणाए पाणभोयणाए वीयभोयणाए हरियभोयणाए पच्छा-  
कम्मियाए पुरेकम्मियाए अदिट्टहडाए दगससट्टहडाए रयस-  
सट्टहडाए पारिसाडणियाए पारिठावणियाए ओहासनभिक्खाए  
ज उग्गमेण उप्पायणेसणाए अपरिसुद्ध पडिगाहिय परिभुत्त वा  
ज न परिठविअ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥ सू० ४ ॥

॥ त्रया ॥

प्रतिक्रामामि गोचरचर्याया भिक्षाचर्यायामुद्धाट्टपाटोद्धाट्टनया इव-  
त्सदारकसघट्टनया मण्डीप्राभृतिरूया वलिप्राभृतिरूया स्थापनाप्राभृतिरूया शङ्कि-  
ते सहसाकारिकेऽनेपणया पानैपणया प्राणभोजनया वीजभोजनया हरितभोज-  
नया पश्चात्कर्मिकया पुर.कर्मिकयाऽट्टाहृतया उदकसमष्टाऽऽहृतया रजःसम-  
ष्टाहृतया पारिशातनिक्या (पारिशातनिक्या) परिष्ठापनिक्या ओहासनभिक्षया  
यद् उद्गमेन उत्पादनैपणयाऽपरिशुद्ध प्रतिगृहीत परिशुक्त वा यन्न परिष्ठापित तस्य  
मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ सू० ४ ॥

॥ टीका ॥

‘गोयरचरियाए’ चरण चर गोश्वरो गोचर, चर्या चरणमित्यपर्यायान्तरम्, गोचर  
इव चर्या=वृत्तिर्गोचरचर्या तस्या तद्रूपायामिति भावः । ‘भिक्खायरियाए’ भिक्षायै  
चर्या भिक्षाचर्या तस्या कुलेपूतममभयमाधमेषु वस्तुषु चेष्टानिष्टेषु रागादिराहित्येन  
लाभादिनैरपेक्ष्येण च समचेतसा मुनिना भिक्षार्थमटनीय<sup>१</sup> तादृश्या भिक्षाचर्याया-

गायके समान जगह जगह से थोडा थोडा आहार लेने के लिये  
भ्रमण करने का नाम गोचरचर्या है, तत्स्वरूप जो भिक्षाचर्या  
(अर्थात् उत्तम म यम और नीच (साधारण) कुलों में तथा इष्ट-

गायनी नेम ठेकाछे ठेकाछेथी थोडा थोडा अहार लेवा भाटे इरुधु ते कामने  
गोचरचर्या कडे छे तत्स्वरूप ने भिक्षाचर्या (अर्थात् उत्तम मध्यम अने नीच

१-भिक्षायामीदृग्विधन्वमुपदर्शयितुमेवोक्त मूले-गोचरचर्ययेति ।

मित्यर्थः; अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्त सप्रभेदमाह—‘उग्गाडकवाड उग्गाडणाए’ उद्गाटयत इति, यद्वा उद्गतो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट किञ्चित्स्थगितमदचरिष्कम्भक वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्योद्घाटना=प्रमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तथा। ‘साणावच्छदारासघट्टणाए’ श्वा=कुक्कुर, वत्स =गयापत्यरूपो वत्सतरः, दारक=वालक, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेपामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषां सघट्टना=गात्रैः सहतीकरण श्ववत्सदारकसघट्टना तथा, उपलक्षणमिदं गवादीनामपि। ‘मडीपाहुडियाए’ मण्डी=अग्रकूर. (अग्रभक्त) तस्याः प्राभृतिका=प्राभृतमुपढौकनमिति यावत्, यद्वा म=प्रमर्षेण आ=मर्यादया भृता सांवर्यं सरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तथा। ‘बलिपाहुडियाए’ बलिः=देवभूतायुद्देशेन देयमन्नादितस्य प्राभृतिका तथा। ‘ठवणापाहुडियाए’ स्थाप्यत इति ‘स्थापना=कृपणवनीपकादिभ्यः स्थापितमन्नादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, ‘सक्पि’

अनिष्ट वस्तुओमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमे समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें विना साकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाडों को विना पूजे अथवा विना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बछड़े, बालक आदिको ढकेलकर या लाघकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी बलि के लिये तथा याचक-कृपण आदिके

(साधारण) कुण्डोमा तथा छुष्ट अनिष्ट वस्तुओमा रागादि रहित यधने लाभालाभमे समान भावथी आहार आदि अल्लु करतु) तेमा साकल विना अध करेव अग्र अर्धा वासेला कमाडने पूजना विना अथवा धरणीनी आज्ञा विना खोलवाधी, कुतरा, पाधरडा, बालक आदिने धकेलीने अथवा ओणगीने न्वाथी, कुतरा विगेरे भाटे काठेथी अग्रपिंड देवाथी, देवता, भूत विगेरेना बलिना भाटे तथा याचक-कृपण

१-इन्तकारादिस्वरूप ‘हन्दा’ इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, ‘मण्डूकडी’ इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२-इदं हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सबहुमान देयमिष्टवस्तु, तत्साहज्यात्साधुभ्यो देयं भिक्षात्रपि।

३-बाहुलकात्त्वर्षणि ‘ण्यासथ्रन्धो युच’ (३।३।१०७) इति युच।

शङ्का सञ्जाता यस्मिंस्तच्छङ्कित तस्मिन्, आधाकर्मादिदोषदुष्टेऽन्नादावित्यर्थात्, सनिसप्तमीयम्, तृतीयान्तानामिव सप्तम्यन्तानामपि सर्वेषां परस्पर निरपेक्षतया 'ज उगमयेण' इत्यादिनाऽग्रेतनेनैवान्वयः, 'सहसागारिण' सहसा करुण सहसाकार-स्तत्र भवः सहसाकारिकः=आकस्मिक आहारस्तस्मिन्, 'अणेषणाए' न एषणा=ग्राह्यमिदमग्राह्य वेत्याग्रन्वेपणाभावो यस्या भिक्षाचर्याया सा अनेपणा तथा, 'अणेषणाए' इतिपाठे अन्नस्य=भक्तादेः एषणा=परीक्षण यस्या सा अन्नैपणा तयेति गोऽम्, हेतौ तृतीया, 'पाणेषणाए' पीयत इति पान=जलादि तस्यैपणा=अन्वेपण यस्या सा पानैपणा तथा, पानैपणाया वैपम्येणेति भावः, 'पाणभोयणाए' प्राणाः सन्त्येषामिति प्राणाः<sup>१</sup> द्वीन्द्रियात्रास्तन्मिश्रिता भोजना<sup>२</sup> प्राणभोजना तथा, भवति हि कदाचिद्-यादिप्रदानवेलाया दातुर्ग्रहीतुर्वाऽपराधेन द्वीन्द्रियादीना जीवानां सम्मिश्रणेन सघट्टनेन वा व्यापादनम्, अयमेव चात्रातिचारो बोद्धव्यः। 'वीजभोयणाए' बीजानां भोजना, यद्वा बीजानि भोजने यस्या क्रियाया सा=बीजभोजना तथा, 'हरियभोयणाए' हरितभोजनया, 'पञ्चाकम्मियाए' पश्चात्=भिक्षाप्रदानोत्तर क्रम=भाजन रात्रनादि यस्या सा=पश्चात्कर्मिका तथा, 'पुरेकम्मियाए'

लिषे स्थापित (रन्त्ये ह्यु), एव आधाकर्म आदिकी शकासे युक्त, तथा विना सोचे विचारे आहारादि के लेनेसे, अनेपणीय किसी वस्तुके लेनेसे, पानी आदि पीने योग्य वस्तुकी एषणामें किसी प्रकारकी त्रुटि होनेसे, द्वीन्द्रियादिप्राणिमिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाण्डयुक्त आहारादि के लेने से, पश्चात्कर्मिक (जिसमें आहारादि ग्रहण करने के बाद हाथ बरतन आदि धोया जाय)

आदिने अर्थे राधवाभा आवेल, अथवा आधाकर्मि आदिनी शकासी युक्त, तथा लक्ष्या विचार्या विना आहार विगरे लेवाथी, अनेपणीय कौष्ठपण्य वस्तुने लेवाथी, पाली विगरे पीवा योग्य वस्तुनां लोषणामा कौष्ठ पण्य प्रकारनी भाभी होवाथी, द्वीन्द्रियादि-प्राणि-मिश्रित, भीजयुक्त, तथा हरितकाण्डयुक्त आहार आदि लेवाथी, पश्चात्कर्मिक (जिसे आहार आदि ग्रहण करी लीधा पछी हाथ-वासण्य विगरे

१ 'प्राणा'—अन्न-अर्श आदित्वादच् ।

२-प्राणभोजना-शारुपार्थिवादित्वादुत्तरपदलोप ।

मित्यर्थः, अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्त समभेदमाह—‘उग्घाडकाड उग्घाडणाए’ उद्घाटयत इति, यद्वा उद्गतो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट किञ्चित्स्थगितमदत्तविष्कम्भक वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्योद्घाटना=प्रमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटरूपाटोद्घाटना तथा। ‘साणावच्छदारासघट्टणाए’ श्वा=कुफुर., वत्स =गयापत्यरूपो वत्सतरः, दारक = वालक’, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेपामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषां सघट्टना=गात्रैः सहतीकरण श्ववत्सदारकसघट्टना तथा, उपलक्षणमिदं गवादीनामपि। ‘मण्डीपाहुडियाए’ मण्डी=अग्रकूर. (अग्रभक्त’) तस्याः प्राभृतिका=प्राभृत भ्रुपटौकनमिति यावत्, यद्वा म=मरुर्षेण आ=मर्यादया भृता साभ्वर्यं सरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तथा। ‘बलिपाहुडियाए’ बलि’=देवभृतायुदेशेन देयमन्नादितस्य प्राभृतिका तथा। ‘ठवणापाहुडियाए’ स्थाप्यत इति ‘स्थापना=कृपणवनीपकादिभ्यः स्थापितमज्ञादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, ‘सकिए’

अनिष्ट वस्तुओमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमे समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें विना साकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाडों को विना पूजे अथवा विना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बछड़े, बालक आदिको ढकेलकर या लाधकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी बलि के लिये तथा याचक-कृपण आदिके

(साधारण्य) कुणे मा तथा छुष्ट अनिष्ट वस्तुओमा रागादि रहित यधने लाभालाभमा समान भावथी आहार आदि अलक्ष्य करवु) तेमा साकण विना अध करेले अगर अर्धा वासेला कमाउने पूजना विना अथवा धरणीनी आज्ञा विना जोलवाधी, कुतरा, पाछरडा, जालक आदिने धडेलीने अथवा ओणगीने जवाधी, कुतरा विगेरे माठे काठेले अथपिंड देवाधी, देवता, भूत विगेरेना जालिना माठे तथा याचक-कृपण

१-इन्तकारादिस्वरूप ‘हन्दा’ इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, ‘मण्डकडी’ इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२-इदं हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सबहुमान देयमिष्टवस्तु, तत्सादृश्यात्साधुभ्यो देयं भिक्षात्रपि।

३-बाहुलकात्त्वर्मणि ‘ण्यासन्नयो युच’ (३।३।१०७) इति युच।

शङ्का सञ्जाता यस्मिंस्तच्छुद्धित तस्मिन्, आधारूर्मादिदोषदुष्टेऽज्ञादाचित्यर्यात्, सतिसप्तमीयम्, तृतीयान्तानामिव सप्तम्यन्तानामपि सर्वेषां परस्पर निरपेक्षतया 'ज उगमेण' इत्यादिनाऽग्रेतनेनैवान्वयः, 'सहसागारिण' सहसा करण सहसाकार-स्तत्र भवः सहसाकारिकः=आकस्मिक आहारस्तस्मिन्, 'अणेसणाए' न एपणा=ग्राह्यमिदमग्राह्य वेत्याग्रन्वेपणाभावो यस्या भिक्षाचर्याया सा अनेपणा तथा, 'अण्णेसणाए' इतिपाठे अन्नस्य=भक्तादेः एपणा=परीक्षण यस्या सा अन्नैपणा तयेति गो-वम्, हेतौ तृतीया, 'पाणेसणाए' पीयत इति पान=जलादि तस्यैपणा=अन्वेपण यस्या सा पानैपणा तथा, पानैपणाया वैपम्येणेति भावः, 'पाणभोयणाए' प्राणाः सन्त्येपामिति प्राणाः<sup>१</sup> द्वीन्द्रियाग्रास्तन्मिश्रिता भोजना<sup>२</sup> प्राणभोजना तथा, भवति हि कदाचिद्-यादिप्रदानवेलाया दातुर्ग्रहीतुर्वाऽपराधेन द्वीन्द्रियादीना जीवानां सम्मिश्रणेन सघट्टनेन वा व्यापादनम्, अयमेव चात्रातिचारो बोद्धव्यः। 'वीज-भोयणाए' वीजानां भोजना, यद्वा वीजानि भोजने यस्या क्रियाया सा=वीज-भोजना तथा, 'हरियभोयणाए' हरितभोजनया, 'पच्छाकम्मियाए' पश्चात्=भिक्षाप्रदानोत्तर क्रम=भाजन यावनादि यस्या सा=पश्चात्कर्मिका तथा, 'पुरेकम्मियाए'

लिये स्थापित (रन्खे ह्ण), एव आधाकर्म आदिकी शकासे युक्त, तथा विना सोचे विचारे आहारादि के लेनेसे, अनेपणीय किसी वस्तुके लेनेसे, पानी आदि पीने योग्य वस्तुकी एपणामें किसी प्रकारकी त्रुटि होनेसे, द्वीन्द्रियादिप्राणिमिश्रित, वीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहारादि के लेने से, पश्चात्कर्मिक (जिसमें आहारादि ग्रहण करने के बाद हाथ बरतन आदि धोया जाय)

आदिने अर्थे राभवामा आवेल, अथवा आधाकर्मि आदिनी शकाथी युक्त, तथा नष्टया विचार्या विना आहार विगरे लेवाथी, अनेपणीय डोषपण्य वस्तुने लेवाथी, पाणी विगरे पीवा योग्य वस्तुनां ओषण्यमा डोष पण्य प्रकारनी पाणी डोवाथी, द्वीन्द्रियादि-प्राणि-मिश्रित, भीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहार आदि लेवाथी, पश्चात्कर्मिक (जिसे आहार आदि अक्षय करी लीधा पछी हाथ-वासण्य विगरे

१ 'प्राणा'—अन्न-अर्श आदित्वादच् ।

२-प्राणभोजना-शरुपार्थिवादित्वादुत्तरपदलोपः ।



मित्यर्थः; अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्त समभेदमाह—‘उग्घाडकवाड उग्घाडणाए’ उद्घाटयत इति, यद्वा उद्गतो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट किञ्चित्स्थगितमदक्षिणम्भक्त वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्योद्घाटना=परमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तथा। ‘साणावच्छदारासघट्टणाए’ श्वा=कुक्कुर, रत्स=आपापत्यरूपो वत्सतरः, दारकः=चालकः, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेपामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषां सघट्टना=गात्रैः सहतीकरणश्ववत्सदारकसघट्टना तथा, उपलक्षणमिदं गवादीनामपि। ‘मडीपाहुडियाए’ मण्डी=अग्रकूरः (अग्रभक्तः) तस्याः प्राभृतिका=प्राभृत मुपद्वौकनमिति यावत्, यद्वा म=प्ररूपेण आ=मर्यादया भृता साभ्वर्थं सरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तथा। ‘वलिपाहुडियाए’ वलिः=द्वभृतायुदेशेन देयमन्नादितस्य प्राभृतिका तथा। ‘ठवणापाहुडियाए’ स्थाप्यत इति स्थापना=कृपणवनीपकादिभ्यः स्थापितमन्नादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, ‘सकिए’

अनिष्ट वस्तुओंमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमें समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें विना सांकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाडों को विना पूजे अथवा विना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बउडे, बालक आदिको ढकेलकर या लाघकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी बलि के लिये तथा याचक-कृपण आदिके

(साधारण्य) कुजे भा तथा धृष्ट अनिष्ट वस्तुओंभा रागादि-रहित यद्यने लाभालाभभा समान भावथी आहार आदि ग्रहण करणु) तेभा सांकल विना अध करेले अग्र अधां वासेला कभाडने पूजना विना अथवा 'घड़ीनी आज्ञा विना जेलावथी, कुतरा, वाधरडा, बालक आदिने धडेलीने अथवा जेलाणीने जवाथी, कुतरा विगेरे भाडे काडेने अग्रपिंड लेवथी, देवता, भूत विगेरेना बलिना भाडे तथा याचक-कृपण

१-हन्तकारादिस्वरूप 'हन्दा' इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा 'कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, 'मण्डकडी' इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२-इदं हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सवहुमान देयमिष्टवस्तु, तस्माद्दृश्यात्साधुभ्यो देयं भिक्षात्रपि।

३-बाहुलकात्कर्मणि 'ण्यासत्रन्थो युच्' (३।३।१०७) इति युच्।

शुद्धा सञ्जाता यस्मिंस्तच्छुद्धित तस्मिन्, आधाकर्मादिदोषदुष्टेऽन्नादावित्यर्थात्, सतिसप्तमीयम्, तृतीयान्तानामिव सप्तम्यन्तानामपि सर्वेषां परस्पर निरपेक्षतया 'ज उगमेण' इत्यादिनाऽग्रेतनेनैवान्वयः, 'सहसागारिण' सहसा करण सहसाकार-स्तत्र भव. सहसाकारिकः=आकस्मिक आहारस्तस्मिन्, 'अणेसणाए' न एपणा=ग्राह्यमिदमग्राह्य वेत्याग्रन्वेपणाभावो यस्या भिक्षाचर्याया सा अनेपणा तथा, 'अणेसणाए' इतिपाठे अन्नस्य=भक्तादे एपणा=परीक्षण यस्या सा अन्नैपणा तयेति वो-यम्, हेतौ तृतीया, 'पाणेसणाए' पीयत इति पान=जलादि तस्यैपणा=अन्वेपण यस्या सा पानैपणा तथा, पानैपणाया वैपम्येणेति भावः, 'पाणभोयणाए' प्राणा. सन्त्येपामिति प्राणा<sup>१</sup> द्वीन्द्रियाग्रास्तन्मिश्रिता भोजना<sup>२</sup> प्राणभोजना तथा, भवति हि कटाचिद्द्वयादिप्रदानवेलाया दातुर्ग्रहीतुर्वाऽपराधेन द्वीन्द्रियादीना जीवाना सम्मिश्रणेन सप्तदशनेन वा व्यापादनम्, अयमेव चात्रातिचारो बोद्धव्यः। 'त्रीय-भोयणाए' बीजाना भोजना, यद्वा बीजानि भोजने यस्या क्रियाया सा=बीज-भोजना तथा, 'हरियभोयणाए' हरितभोजनया, 'पश्चात्कर्मियाए' पश्चात्=भिक्षाप्रदानोत्तर क्रम=भाजन गवनादि यस्या सा=पश्चात्कर्मिका तथा, 'पुरेकर्मियाए'

लिये स्थापित (रन्खे हुए), एव आधाकर्म आदिकी शकासे युक्त, तथा विना सोचे विचारे आहारादि के लेनेसे, अनेपणीय किसी वस्तुके लेनेसे, पानी आदि पीने योग्य वस्तुकी एपणामें किसी प्रकारकी त्रुटि होनेसे, द्वीन्द्रियादिप्राणिमिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहारादि के लेने से, पश्चात्कर्मिक (जिसमें आहारादि ग्रहण करने के बाद हाथ उरतन आदि धोया जाय)

आदिने अर्थे राभवाभा आवेद, अथवा आधाकर्मि आदिनी शकाथी युक्त, तथा जलया विचार्या विना आहार विगेरे लेवाथी, अनेपणीय डोहपण्य वस्तुने लेवाथी, पाणी विगेरे पीवा योग्य वस्तुना अपेक्षामा डोह पण्य प्रकारनी भागी होवाथी, द्वीन्द्रियादि-प्राणि-मिश्रित, भीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहार आदि लेवाथी, पश्चात्कर्मिक (जिहा आहार आदि ग्रहण करी लीधा पछी हाथ-वासण्य विगेरे

१ 'प्राणा'—अन्न-अर्श आदित्वादच् ।

२-प्राणभोजना-शाकपार्थिवादित्वादुत्तरपदलोप ।

मित्यर्थः; अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्त समभेदमाह—‘उग्राडकवाड उग्राडणाए’ उद्घाटयत इति, यद्वा उद्गतो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट क्रिञ्चित्स्थगितमदत्त्रिप्फल्भक्त वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्योद्घाटना=प्रमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तथा। ‘साणावच्छदारासघट्टणाए’ श्वा=कुकुर, वत्स=ग्रापत्यरूपो वत्सतरः, दारकः=चालकः, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेषामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषां सघट्टना=गात्रैः सहतीकरण श्ववत्सदारकसघट्टना तथा, उपलक्षणमिदं गवादीनामपि। ‘मडीपाहुडियाए’ मण्डी=अग्रकूर. (अग्रभक्त) तस्या प्राभृतिका=प्राभृत मुपढौकनमिति यावत्, यद्वा प्र=प्रर्षेण आ=मर्यादया भृता सा=वर्थ सरक्षिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तथा। ‘उलिपाहुडियाए’ उलिः=देवभृतागुद्देशेन देयमन्नादितस्य प्राभृतिका तथा। ‘ठवणापाहुडियाए’ स्थाप्यत इति स्थापना=कृपणवनीपकादिभ्यः स्थापितमन्नादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्भूतया, ‘सक्विए’

अनिष्ट वस्तुओमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमें समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें विना सांकलके ढके हुए या अध ढके हुए क्वाडों को विना पूजे अथवा विना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बछड़े, बालक आदिको ढकेलकर या लाचकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भूत आदिकी उलि के लिये तथा याचक-कृपण आदिके

(साधारण) कुपोभा तथा छिष्ट अनिष्ट वस्तुओभा रागादि रहित यद्यने लाभालाभमा समान भावथी आहार आदि अलक्ष्य करतु) तेभा साकण विना अध करेल अग्र अधा वासेला कभाउने पूजना विना अथवा धर्मीनी आज्ञा विना जोलवाथा, कुतरा, वाछरडा, जालक आदिने धकेलीने अथवा ज्योणगीने जवाथी, कुतरा विगेरे भाटे कडेयो; अग्रपिंड सेवाथी, देवता, भूत विगेरेना भलिना भाटे तथा याचक-कृपण

१-हन्तकारादिस्वरूप ‘हन्दा’ इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा ‘कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, ‘मण्डूकडी’ इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२-इदं हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सबहुमान देयमिष्टवस्तु, तत्सादृश्यात्साधुभ्यो देयं भिक्षात्रपि।

३-बाहुलकात्त्वर्मणि ‘ण्यासत्रन्थो युच्’ (३।३।१०७) इति युच्।

शङ्का सञ्जाता यस्मिंस्तच्छुद्धित तस्मिन्, आधाकर्मादिदोषदुष्टेऽन्नादाचित्यर्थात्, सनिसप्तमीयम्, तृतीयान्तानामिव सप्तम्यन्तानामपि सर्वेषां परस्पर निरपेक्षतया 'ज उगमेण' इत्यादिनाऽग्रेतनेनैवान्वयः, 'सहसागारिण' सहसा करण सहसाकार-स्तत्र भव. सहसाकारिकः=आकस्मिक आहारस्तस्मिन्, 'अणेसणाए' न एपणा= ग्राह्यमिदमग्राह्य वेत्याग्रन्वेपणाभावो यस्या भिक्षाचर्याया सा अनेपणा तथा, 'अणेसणाए' इतिपाठे अन्नस्य=भक्तादे. एपणा=परीक्षण यस्या सा अन्नैपणा तयेति वो यम्, हेतौ तृतीया, 'पाणेसणाए' पीयत इति पान=जलादि तस्यैपणा= अन्वेपण यस्या सा पानैपणा तथा, पानैपणाया वैपम्येणेति भावः, 'पाणभोयणाए' प्राणाः सन्त्येपामिति प्राणाः<sup>१</sup> द्वीन्द्रियात्रास्तन्मिश्रिता भोजना<sup>२</sup> प्राणभोजना तथा, भवति हि रुदाचिह्न्यादिप्रदानवेलाया दातुर्ग्रहीतुर्वाऽपराधेन द्वीन्द्रियादीना जीवाना सम्मिश्रणेन सप्तृनेन वा व्यापादनम्, अयमेव चात्रातिचारो बोद्धव्यः। 'वीज-भोयणाए' बीजाना भोजना, यद्वा बीजानि भोजने यस्या क्रियाया सा=बीज-भोजना तथा, 'हरियभोयणाए' हरितभोजनया, 'पञ्चाकम्मियाए' पश्चात्= भिक्षाप्रदानोत्तरकम=भाजन गवनादि यस्या सा=पश्चात्कर्मिका तथा, 'पुरेकम्मियाए'

लिषे स्थापित (रक्त्वे हुए), एव आधाकर्म आदिकी शकासे युक्त, तथा विना सोचे विचारे आहारादि के लेनेसे, अनेपणीय किसी वस्तुके लेनेसे, पानी आदि पीने योग्य वस्तुकी एपणामे किसी प्रकारकी त्रुटि होनेसे, द्वीन्द्रियादिप्राणिमिश्रित, बीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहारादि के लेने से, पश्चात्कर्मिक (जिसमें आहारादि ग्रहण करने के बाद हाथ धरतन आदि धोया जाय)

आदिने अर्थे राप्पवाभा आवेल, अथवा आधाकर्मा<sup>१</sup> आदिना शकाथी युक्त, तथा नष्टया विचार्या विना आहार विगेरे लेवाथी, अनेपणीय डोषपक्ष वस्तुने लेवाथी, पाणी विगेरे पीवा योग्य वस्तुना ओषण्णामा डोष पक्ष प्रकारनी भाभी डोवाथी, द्वीन्द्रियादि-प्राणि-मिश्रित, भीजयुक्त, तथा हरितकाययुक्त आहार आदि लेवाथी, पश्चात्कर्मिक (नेमा आहार आदि अक्षुप करी लीधा पछी हाथ-वासण्य विगेरे

१ 'प्राणा'—अन्न-अर्श आदित्वादच् ।

२-प्राणभोजना-शारुपार्थिवादित्वादुत्तरपदलोपः ।

मित्यर्थः; अस्याग्रे सम्बन्धः। अत्र यथाऽतिचारस्त समभेदमाह—‘उग्घाडकनाड उग्घाडणाए’ उद्घाटयत इति, यद्वा उद्गतो घाटः=घटन=परस्परसंयोजन यस्य तदुद्घाट मिश्रितस्थगितमदत्तपिष्कम्भक वा तच्च तत्कपाट च उद्घाटकपाट तस्योद्घाटना=परमार्जनमन्तरेण स्वामिनिदेशमन्तरेण वा मोचनमुद्घाटकपाटोद्घाटना तथा। ‘साणावच्छदारासघट्टणाए’ श्वा=कुकुर, रत्सः=नागपत्यरूपो वत्सतरः, दारकः=वालकः, श्वा च वत्सश्च दारकश्चेत्येतेपामितरेतरयोगद्वन्द्वे श्ववत्सदारकास्तेषां सघट्टना=गत्रिः सद्वतीकरण श्ववत्सदारकसघट्टना तथा, उपलक्षणमिदं गवादीनामपि। ‘मडीपाहुडियाए’ मण्डी=अग्रकूर (अग्रभक्त) तस्याः प्राभृतिका=प्राभृत भुपठौकनमिति यावत्, यद्वा प्र=प्रकर्षण आ=मर्यादया भृता सा चर्च सरसिता प्राभृता, सैव प्राभृतिका तथा। ‘मलिपाहुडियाए’ बलिः=देवभृतायुदेशेन देयमन्नादितस्य प्राभृतिका तथा। ‘ठवणापाहुडियाए’ स्थाप्यत इति ‘स्थापना=कृपणवनीपकादिभ्यः स्थापितमन्नादि तस्याः प्राभृतिकेति प्राग्वत्तया, ‘सकिए’

अनिष्ट वस्तुओमें रागादिरहित हो कर लाभालाभमें समानभाव से आहारादि ग्रहण करना) उसमें विना साकलके ढके हुए या अध ढके हुए किवाडों को विना पूजे अथवा विना स्वामी की आज्ञाके खोलने से, कुत्ते, बछड़े, बालक आदिको ढकेलकर या लाघकर जाने से, कुत्ते आदिके लिये निकाले हुए अग्रपिण्डके लेने से, देवता भृत आदिकी बलि के लिये तथा याचक-कृपण आदिके

(साधारण) कुजे भा तथा छिष्ट अनिष्ट वस्तुओभा रागादि रहित यद्यने लाभालाभभा समान भावथी आहार आदि ग्रहण करवु) तेभा साकल विना अध करैल अगर अधां वासेला कभाडने पूजना विना अथवा धष्णीनी आज्ञा विना जेलावाथी, कुतरा, वाधरडा, गालक आदिने धडेलीने अथवा जेलाणीने जवाथी, कुतरा विगेरे भाटे काठेने। अग्रपिंड खेवाथी, देवता, भृत विगेरेना भलिना भाटे तथा याचक-कृपण

१-हन्तकारादिस्वरूप ‘हन्दा’ इत्यादिना पञ्चापादिप्रदेशेषु प्रसिद्ध, यद्वा कुक्कुरादिकृते रक्षितम्, ‘मण्डूकडी’ इति राजस्थानादौ प्रतीतम्।

२-इदं हि कस्मैचिदिष्टाय पूजनीयाय वा स्नेहात्सवहुमान देयमिष्टवस्तु, तत्सादृश्यात्साधुभ्यो देयं भिक्षात्रपि।

३-बाहुलकात्कर्मणि ‘ण्यासथन्थो युच्’ (३।३।१०७) इति युच्।



पुरः=भिक्षापदानात्पूर्व कर्म=हस्तधारणादि यस्या सा=पुरःकर्मिका तथा, 'अद्विष्ट  
 ङडाए' अद्वष्टम्=अनालोचितम् आद्वत=गृहीत यस्या (भिक्षायां) सा,  
 यद्वा अद्वष्टात् स्थानादाद्वता=आनीता अद्वष्टाद्वता तथा, गृहीताद्वष्टवस्तुक्ये  
 त्यर्थः अत्र हि जीयसम्मिश्रणमर्दनादिनातिचारसम्भवः, 'दगससद्वङ्डाए'  
 दकसुदक, तेन ससृष्ट=सम्मिश्रित दकससृष्ट तत आद्वत=गृहीत यस्या सा=दकस  
 सृष्टाद्वता तथा सचित्तजलमिश्रितान्नादिग्रहणिकया हस्तसलग्नजलसयुतया वेत्यर्थः,  
 'रयससद्वङ्डाए' रजः=सचित्तधूलिकादि, तेन ससृष्ट=युक्त रज.ससृष्ट, तत  
 आद्वत यस्या सा=रज.ससृष्टाद्वता तथा, 'पारिसाडणियाए' परिशाटन=देय  
 वस्तुनो घृतादेर्विन्दादीना भूमौ पातन, तेन निर्वृत्ता पारिशाटनिकी तथा,  
 'पारिष्ठावणियाए' परि=सर्वतोभावेन स्थापन परिष्ठापन=गृहस्थेन अकल्पनीय  
 वस्तु प्रदानपात्रान्निःसार्य तत्रैव पात्रे देयवस्तुस्थापन, तेन निर्वृत्ता भिक्षा पारिष्ठाप  
 निकी तथा, 'ओहासणभिव्खाए' 'ओहासण' इति प्रवचनपरिमापया

तथा पुरःकर्मिक (जिसमें आहारादि देनेके पहिले हाथ बरतन आदि  
 धोया जाय) आहारके लेने से, अद्वष्ट स्थान से लाई हुई वस्तु के लेने से,  
 सचित्त पानी के द्वारा गीले हाथ से आहारादिके ग्रहण करने से,  
 सचित्त रजयुक्त आहारादि के लेने से, दाता द्वारा इधर उधर  
 गिराते हुए आहारादि के लेने से, किसी पात्रमें अकल्पनीय वस्तु  
 रक्खी हुई हो उसे निकाल कर उसी पात्र से दिये हुए आहारादि  
 के लेने से, अथवा बिना कारण आहारादि के परिठवने से और

धोवाय) तथा पुर कर्मिक (जो आहारादि देता पड़ेला हाथ, वासण्य आदि धोवाय)  
 आहार आदि लेवाथी, अद्वष्ट जग्याज्येथी लाववाभा आवेदी वस्तुने लेवाथी,  
 सचित्त पाणीथी बीज्जथेला हाथे आहार आदि ग्रहण्य करवाथी, सचित्त रजयुक्त  
 आहार आदि लेवाथी, दातार द्वारा आभतेभ देणाता आहार आदि लेवाथी, कोर्ष  
 पात्रभा अकल्पनीय वस्तु पडेली होय तेने भाली करी तेज पात्रथी देवाभा  
 आवेल आहार आदि लेवाथी अथवा बिना कारणे आहार आदि परिठवाथी

१-उपसर्गात्सुनोतीति पत्व, यदि त्वत्र परिभोगार्थकोऽनर्थको

वा तदा 'परी'-त्यस्य कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञयोपसर्गसञ्ज्ञाया अभावात्तत् परस्य-  
 सस्य पत्वाभाव एवाऽतएव क्वचित् 'पारिस्थापनिकी' ति पकाररहितोऽपि  
 प्रयोगो दृश्यते ।

विशिष्टद्रव्ययाचन गृह्यते, तत्प्रधाना भिक्षा ओढासनभिक्षा तथा, हेतु विनैव विशिष्टस्य वस्तुनो नामोपादाय 'अमुक मे देहि नामुक'-मित्येवरूपया याचनयेत्यर्थः। भेदस्य बहुत्वात्सक्षिपति - 'ज' यत्, 'उग्गमेण' उद्गमेन=आधाकर्मादिदोष-स्वरूपेण, 'उप्पायणेसणाए' उत्पादना=धात्र्यादिदोष., एपणा=शङ्कितदि-स्वरूपा ताभ्याम् 'अपरिसुद्ध' अपरिशुद्ध=दूषित, 'पडिग्गहिय' प्रतिगृहीत=स्वीकृतम्, 'परिशुत्त' परिशुक्तम्=आसेवितम्, स पामेव तृतीयान्ताना समस्यन्ताना च अपरिशुद्धादिभिः क्तान्तैरेव सम्बन्ध इति विभावनीयम्, 'ज' यत्, 'न परिद्वविय' न परिष्ठापित=न परित्यक्त, 'तस्स' तस्य सर्वस्योक्त-रूपस्यातिचारस्य 'मिच्छा मि दुक्कड' इति व्याख्यातपूर्वम् ॥ सू० ४ ॥

एव गोचरातिचारोश्चिन्तयित्वा सम्प्रति स्वाध्यायातिचाराश्चिन्तयति-  
'पडिक्कमामि चाउक्काल०' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि चाउक्काल सज्झायस्स अकरणयाए उभओ-  
काल भडोवगरणस्स अप्पडिलेहणाए दुप्पडिलेहणाए अपमज्जणाए  
दुप्पमज्जणाए अइक्कमे वइक्कमे अईयारे अणायारे जो मे देवसिओ  
अईयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ॥ सू० ५ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रामामि चतुष्काल स्वाध्यायस्याऽकरणतया, उभयकाल भाण्डो-  
पकरणस्याऽप्रतिलेखनया दुष्प्रतिलेखनया अप्रमार्जनया दुष्प्रमार्जनया, अतिक्रमे

बिना कारण मागकर विशिष्ट वस्तु के लेने से जो कोई अतिचार  
लगा हो, तथा आधाकर्म आदि उद्गमदोष, धात्री आदि उत्पादना-  
दोष, एव शङ्कित आदि एपणादोष से दूषित आहार आदि लिया  
गया हो, उपभोगमें लाया गया हो और जो परिष्ठापित न किया  
गया हो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ॥ सू० ४ ॥

अने बिना कारणे विशिष्ट वस्तुनी याचना करी लेवावी ने काह अतिचार लाग्या  
होय, तथा आधाकर्म आदि उद्गमदोष, धात्री आदि उत्पादना दोष, अने शङ्कित  
आदि अेषष्ठा दोषथी दूषित आहार आदि लेवाह गया होय, उपभोगमा लीधा  
होय अथवा ने परिष्ठापित न कर्था होय "तस्स मिच्छा मि दुक्कड" (सू० ४)



पुरः=भिक्षापदानात्पूर्वै कर्म=हस्तपात्रनादि यस्या सा=पुरःकर्मिका तथा, 'अद्विष्ट  
 हडाए' अद्वष्टम्=अनालोचितम् आद्वत=गृहीत यस्या (भिक्षायां) सा,  
 यद्वा अद्वष्टात् स्थानादाद्वता=भानीता अद्वष्टाद्वता तथा, गृहीताद्वष्टवस्तुकये  
 त्यर्थः अत्र हि जीवसम्मिश्रणमर्दनादिनातिचारसम्भवः, 'दगससद्वहडाए'  
 दकसुप्तक, तेन ससृष्ट=सम्मिश्रित दकससृष्ट तत आद्वत=गृहीत यस्या सा=दकस  
 सृष्टाहता तथा सचित्तजलमिश्रितान्नादिग्रहणिकया हस्तसलग्नजलसयुतया वेत्यर्थः,  
 'रयससद्वहडाए' रज =सचित्तधूलिकादि, तेन ससृष्ट=युक्त रजःससृष्ट, तत  
 आद्वत यस्या सा=रजःससृष्टाहता तथा, 'पारिसाडणियाए' परिशाटन=देय  
 वस्तुनो घृतादेर्विन्द्वादीना भूमौ पातन, तेन निर्वृत्ता पारिशाटनिकी तथा,  
 'पारिहावणियाए' परि=सर्वतोभावेन स्थापन परिष्ठापन=गृहस्थेन अकल्पनीय  
 वस्तु प्रदानपात्रान्नि.सार्य तत्रैव पात्रे देयवस्तुस्थापन, तेन निर्वृत्ता भिक्षा परिष्ठाप  
 निकी तथा', 'ओहासणभिक्खाए' 'ओहासण' इति प्रवचनपरिभाषया

तथा पुरःकर्मिक (जिसमें आहारादि देनेके पहिले हाथ बरतन आदि  
 धोया जाय) आहारके लेने से, अद्वष्ट स्थान से लाई हुई वस्तु के लेने से,  
 सचित्त पानी के द्वारा गीले हाथ से आहारादिके ग्रहण करने से,  
 सचित्त रजयुक्त आहारादि के लेने से, दाता द्वारा इधर उधर  
 गिराते हुए आहारादि के लेने से, किसी पात्रमें अकल्पनीय वस्तु  
 रक्खी हुई हो उसे निकाल कर उसी पात्र से दिये हुए आहारादि  
 के लेने से, अथवा बिना कारण आहारादि के परिठवने से और

धोवाय) तथा पुर कर्मिक (जो आहारादि देता पहले हाथ, वासुष् आदि धोवाय)  
 आहार आदि लेवाथी, अद्वष्ट जग्यायेथी लापवाभा आवेदी वस्तुने लेवाथी,  
 सचित्त पालीथी वाँजयेला हाथे आहार आदि अद्वष्ट करवाथी, सचित्त रजयुक्त  
 आहार आदि लेवाथी, दाता द्वारा आभतेम डेवाता आहार आदि लेवाथी, ईधर  
 पात्रमा अकल्पनीय वस्तु पडेली होय तेने आदी करी तेज पात्रथी देवाभा  
 आवेद आहार आदि लेवाथी अथवा बिना कारणे आहार आदि परिठवाथी

१-उपसर्गात्सुनोतीति पत्व, यदि त्वत्र परिर्भागार्थकोऽनर्थको  
 वा तदा 'परी'-त्यस्य कर्मप्रवचनीयसञ्ज्ञयोपसर्गसञ्ज्ञाया अभावात्तत परस्य-  
 सस्य पत्वाभाव एवाऽतएव क्वचित् 'पारिस्थापनिकी' ति पकाररहितोऽपि  
 प्रयोगो दृश्यते ।

भण्ड १तदेव भाण्ड=पात्रादि, उपक्रियते=दृढीक्रियते सयमात्रि येन तदुपकरण= सदीरकमुखवस्त्रिकावस्त्ररजोहरणादि, भाण्ड चोपकरण चेत्यनयोः समाहारः, भाण्डोपकरण तस्य, 'अप्पडिलेहणाए' अप्रत्युपेक्षणाया=सर्वथैवानिरीक्षणेन, 'दुप्पडिलेहणाए' दुप्पटिलेखनया=असम्यग् निरीक्षणेन, 'अप्पमज्जणाए' अपमार्जनया अपमार्जना=रजोहरणादिना सर्वतोभावेनाऽशोधनतया, 'दुप्पमज्जणाए' दुष्णमार्जनया दुष्णमार्जना=तेनैव रजोहरणादिनाऽसम्यक् परिशोधनतया, 'अडक्केमे' अतिक्रमे अतिक्रमः=अकृत्यसेवनस्य सङ्कल्पस्तस्मिन् 'सयमसम्बन्धिनि' इति शेषः, एवमग्रेऽपि सम्बन्धेषु, सति सप्तमीयम् । एवमग्रेऽपि । 'वडक्केमे' व्यतिक्रमे व्यतिक्रमः=अकृत्यसेवनाय सामग्रीसयोजन तस्मिन्, 'अईयारे' अतिचारे-अतिचारः=अकृत्यसेवनाय प्रवर्त्तन तस्मिन्, 'अणायारे' अनाचारे-अनाचारः=अकृत्यसेवन तस्मिन्, 'जो' यः 'मे' मया 'देवसिओ' दैवसिकः=दिवस व्याप्य भवः, 'अईयारो' अतिचारः, 'कओ' कृतः, 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' इति व्याख्यातपूर्वम् ॥ सू० ५ ॥

का सर्वथा सम्यक् प्रकार से प्रतिलेखन न करना, तथा पात्र उपाश्रय आदिका सर्वथा या यतनापूर्वक न पूँजना आदि कारणों से सयमसम्बन्धी अतिक्रम (अकृत्यसेवनका भाव), व्यतिक्रम (अकृत्य सेवन की सामग्री मिलाना), अतिचार (अकृत्य सेवनमें गमनादिरूप प्रवृत्ति करना) तथा अनाचार (अकृत्य का सेवन करना) हो जाने पर जो मुझसे अतिचार किया गया हो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ॥ सू० ५ ॥

अथवा सय्यक् प्रकारे प्रतिवेपन न कर्तुं होय, तथा पात्र, उपाश्रय आदिने। सर्वथा अथवा यतनापूर्वक पूँजवानु कार्य न कर्तुं होय आदि कारणैः। सयम सम्बन्धी अतिक्रम (अकृत्य सेवनना भाव), व्यतिक्रम (अकृत्य सेवननी सामग्री मिलवनी), अतिचार (अकृत्य सेवनमा गमनादिरूप प्रवृत्ति करनी) तथा अनाचार (अकृत्यनु सेवन करवुं) यथै ववाने कारणे भारथी न् अतिचार तथा होय "तस्स मिच्छा मि दुक्कड" (सू० ५)

१- शब्दार्थकाद् 'भण्' धातोरौणादिको ड प्रत्यय । प्रज्ञादिपाठादण् ।

२- एषु सर्वत्र हेतौ तृतीया, हेतुत्व चातिक्रमाद्यपेक्षया ।

व्यतिक्रमेऽतिचारेऽनाचारे यो मया दैवसिकोऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ सू० ५ ॥

॥ टीका ॥

‘पडिकमामि’ प्रतिक्रामामि = विनिवर्ते, यद्वा स्वात्मानं विनिवर्तयामि अतिचारादिति शेषः । अतिचारस्वरूपमाह—‘चाउकाल’ चत्वारः=दिवसरात्रि-प्रथमान्तिमप्रहरस्वरूपाः कालाः=समया यस्य तद्यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणमिदम्, यद्वा चतुर्णां कालानां समाहारश्चतुः‘काल’ ‘सञ्ज्ञायस्य’ सु=सृष्टु आ=मर्यादया अभ्याय=अययन स्वाध्याय, निर्दिष्टकालानतिक्रमेण यथाविधि प्रवचनपठन, तस्य, ‘अकरणयाण’ अविद्यमान करणम्=अनुष्ठान यस्मिन् सोऽकरण.—अस्वाध्यायः, तस्य भावोऽकरणता तथा अकरणेनेत्यर्थः । अत्र ‘स्वाध्यायकरणादिभिर्हेतुभिरतिक्रमे व्यतिक्रमेऽतिचारेऽनाचारे (जाते) सति यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृत’-मित्यादिरीत्या सम्बन्ध इति श्लक्ष्मेऽधिकयाऽवधारणीयम् ।

‘उभओकाल’ दिवसस्य उभयतः=प्रथमान्तिमप्रहररूपौ कालौ यस्मिंस्तदुभयतःकालम्, तत्रथा स्यात्तथा ‘भडोवगरणस्स’ भणति=शब्दायते इति

मै आगे कहे हुए इन अतिचारों से निवृत्त होता हूँ, दिन तथा रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहररूप चार कालों में मर्यादा पूर्वक प्रवचनके मूलपठनरूप स्वाध्यायको न करना, दोनों कालों (दिनके प्रथम और अन्तिम प्रहर) में पात्र रजोहरण आदि भङ्ग उपकरण

आगण कडेवाभा आवेला अतिचारीथी हु निवृत्त थाउ छु दिवस तथा रात्रीना प्रथम अने छेदला प्रहररूप चार कालभा मर्यादा पूर्वक प्रवचनना मूलपठन रूप स्वाध्याय न करवु, अने समय (दिवसना पडेला अने पाछला प्रहर) भा पात्र रजोहरण आदि लड उपकरणनु सर्वथा

१-समाहारद्विगुत्वान्नपुसकता, ततोऽत्यन्तसयोगे ‘व्याप्य’ इति क्रिया ध्याहारेण वा द्वितीया, न चैत्र सति ‘अकारान्तोत्तरपदो द्विगु स्त्रियामिष्ट. इति वार्तिकवलेन स्त्रीत्वे ‘त्रिलोकी’ इत्यादिवत् द्विगो.’ (४।१।२१) इति ङीप् स्यादिति वाच्यम्, पात्रान्तर्गणेऽस्य पाठकल्पनात् । कालस्य वस्तुत एकत्वेऽप्यौपचारिकत्वादिह चातुर्विध्य बोध्यम् ।

भाण्ड 'तदेव भाण्ड=पात्रादि, उपक्रियते=दृढीक्रियते सयमादि येन तदुपकरण=सदोरकमुखवह्निऋवह्नरजोहरणादि, भाण्ड चोपकरण चेत्यनयोः समाहार', भाण्डोपकरण तस्य, 'अप्पडिलेहणाए' अप्रत्युपेक्षणाया=सर्वथैवानिरीक्षणेन, 'दुप्पडिलेहणाए' दुप्पतिलेखनया=असम्यग् निरीक्षणेन, 'अप्पमज्जणाए' अप्रमार्जनया अप्रमार्जना=रजोहरणादिना सर्वतोभावेनाऽशोधन तया, 'दप्पमज्जणाए' दृष्णमार्जनया दृष्णमार्जना=तेनैव रजोहरणादिनाऽसम्यक् परिशोधन तया, 'अइक्कमे' अतिक्रमे अतिक्रम.=अकृत्यसेवनस्य सङ्कल्पस्तस्मिन् 'सयमसम्बन्धिनि' इति शेष, एवमग्रेऽपि सप्तम्यन्तेषु, सति सप्तमीयम्। एवमग्रेऽपि। 'अइक्कमे' व्यतिक्रमे व्यतिक्रमः=अकृत्यसेवनाय सामग्रीसंयोजन तस्मिन्, 'अईयारे' अतिचारे-अतिचारः=अकृत्यसेवनाय प्रवर्त्तन तस्मिन्, 'अणायारे' अनाचारे-अनाचारः=अकृत्यसेवन तस्मिन्, 'जो' य 'मे' मया 'देवसिओ' दैवसिक्कः=दिवस व्याप्य भवः, 'अईयारो' अतिचारः, 'कओ' कृत, 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' इति व्याख्यातपूर्वम् ॥ सू० ५ ॥

का सर्वथा सम्यक् प्रकार से प्रतिलेखन न करना, तथा पात्र उपाश्रय आदिका सर्वथा या यतनापूर्वक न पूजना आदि कारणों से सयमसम्बन्धी अतिक्रम (अकृत्यसेवनका भाव), व्यतिक्रम (अकृत्य सेवन की सामग्री मिलाना), अतिचार (अकृत्य सेवनमें गमनादिरूप प्रवृत्ति करना) तथा अनाचार (अकृत्य का सेवन करना) हो जाने पर जो मुझसे अतिचार किया गया हो 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड' ॥ सू० ५ ॥

अथवा सम्यक् प्रकारे प्रतिलेखन न कर्तुं होय, तथा पात्र, उपाश्रय आदिना सर्वथा अथवा यतनापूर्वक पूजयानु कार्य न कर्तुं होय आदि कारणोद्गी सयमसम्बन्धी अतिक्रम (अकृत्य सेवनना भाव), व्यतिक्रम (अकृत्य सेवननी सामग्री भेगवधी), अतिचार (अकृत्य सेवनमा गमनादिरूप प्रवृत्ति करवी) तथा अनाचार (अकृत्यनु सेवन करतुं) थर्ध नवाने कारणे भारथी ले अतिचार थथा होय "तस्स मिच्छा मि दुक्कड" (सू० ५)

१- शब्दार्थकाद् 'भण्' धातोरौणादिको ङः प्रत्ययः । प्रज्ञादिपाठादण् ।

२- एषु सर्वत्र हेतौ तृतीया, हेतुत्व चातिक्रमाद्यपेक्षया ।

व्यतिक्रमेऽतिचारेऽनाचारे यो मया दैवसिक्तोऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ मृ० ५ ॥

॥ टीका ॥

‘पडिक्रमामि’ प्रतिक्रमामि = विनिर्घर्षे, यद्वा स्वात्मानं विनिवर्त्तयामि अतिचारादिति शेषः । अतिचारस्वरूपमाह—‘चाउकाल’ चत्वारः=दिवसरात्रि-प्रथमान्तिमप्रहरस्वरूपाः कालाः=समया यस्य तद्यथा स्यात्तथेति क्रियाविशेषणमिदम्, यद्वा चतुर्णां कालानां समाहारश्चतुःकालः ‘सज्ज्ञायस्य’ सृ=सृष्टु आ=मर्यादया अभ्याय=अभ्ययन स्वाध्यायः निर्दिष्टकालानतिक्रमेण यथाविधि प्रवचनपठन, तस्य, ‘अकरणयाए’ अत्रि घमान करणम्=अनुष्ठान यस्मिन् सोऽकरणः-अस्वाध्याय, तस्य भावोऽकरणता तथा अकरणेनेत्यर्थः । अत्र ‘स्वाध्यायकरणदिभिर्हेतुभिरतिक्रमे व्यतिक्रमेऽतिचारेऽनाचारे (जाते) सति यो मयाऽतिचारः कृतस्तस्य मिथ्या मयि दुष्कृत’-मित्यादिरीत्या सम्बन्ध इति सूक्ष्मेक्षिकयाऽवधारणीयम् ।

‘उभओकाल’ दिवसस्य उभयतः=प्रथमान्तिमप्रहररूपौ कालौ यस्मिंस्तदुभयतःकालम्, तत्रथा स्यात्तथा ‘भडोवगरणस्स’ भणति=शब्दायते इति

मै आगे कहे हुए इन अतिचारों से निवृत्त होता हूँ, दिन तथा रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहररूप चार कालों में मर्यादा पूर्वक प्रवचनके मूलपठनरूप स्वाध्यायको न करना, दोनो कालों (दिनके प्रथम और अन्तिम प्रहर) में पात्र रजोहरण आदि भड उपकरण

आगण कडेवाभा आवेला अतिआशेथी हु निवृत्त थाउ छु दिवस तथा रात्रीना प्रथम अने छेदला प्रहरइय आर काणभा मर्यादा पूर्वक प्रवचनना मूलपठन इय स्वाध्याय न करवु, अने समय (दिवसना पडेला अने पाछेला प्रहर) भा पात्र रजोहरण आदि लउ उपकरणनुं सर्वथा

१-समाहारद्विगुत्वान्प्रसक्तता, ततोऽत्यन्तसयोगे ‘व्याप्य’ इति क्रिया ध्याहारेण वा द्वितीया, न चैव सति ‘अकारान्तोत्तरपदो द्विगु. स्त्रियामिष्ट इति शार्तिकवलेन स्त्रीत्वे ‘त्रिलोकी’ इत्यादिवत् द्विगो” (४।१।२१) इति स्त्रीप् स्यादिति वाच्यम्, पात्राद्यन्तर्गणेऽस्य पाठकल्पनात् । कालस्य वस्तुत एकत्वेऽप्यौपचारिकत्वादिह चातुर्विध्य बोध्यम् ।

विरतिस्तस्मिन्, अर्थादेकविधेऽसयमे जाते सति निषिद्धाऽऽचरणादिना यो मया-  
 ऽतिचारः कृतस्तस्य दुष्कृत मयि मिथ्याऽस्त्विति सारार्थः। एवमन्यत्रापि बोध्यम्।  
 उक्तोऽसयमरूप एकविधोऽतिचारः, सम्प्रति नानाविध त दर्शयन्नाह-‘पडिक्क-  
 मामि दोहिं वधणेहिं’ इति ‘दोहिं’ द्वाभ्या, वध्यते=बन्धविषयीक्रियते जीवो  
 याभ्या=राग-द्वेषाभ्या ते बन्धने ताभ्या, हेतौ तृतीया, अत्र ‘योऽतिचारः  
 कृतस्त, तस्मात् इति वा ‘प्रतिक्रामामि’-ति सम्बन्धः कार्यः, के ते बन्धने ?  
 इत्यपेक्षायामाह-‘रागवधणेण’ रज्यते येनेति रागः, स च तद्बन्धन च तेन,  
 ‘दोसवधणेण’ प्राकृते द्वेष-दोष-शब्दयोः समानरूपत्वात् द्वेषवन्धनेन-दोष-  
 वन्धनेन वा इति च्छाया, द्वेषि,=जीवानामप्रीतिमुत्पादयतीति, द्विष्यते=अप्रीति-  
 रूपाद्यते येन यस्माद्वा स द्वेषः, स च तद्बन्धन च द्वेषवन्धन, तेन<sup>१</sup> यद्वा दुष्यन्ति=  
 विकृता भवन्ति क्षान्त्यात्मात्मगुणा येन यस्माद्धेति दोषः=मिथ्यात्वाविरति प्रमाद-  
 कपायाशुभयोगलक्षणः स च तद्बन्धन च दोषवन्धन तेन,<sup>२</sup> ‘पडिक्कमामि’ प्रति-  
 क्रामामि, ‘तिहिं’ त्रिभिः, ‘दडेहिं’ दण्डैः, दण्ड्यते रत्नत्रयैश्वर्यापहरणा-  
 दसारीक्रियते आत्मा यैरिति, दण्ड्यन्ते=व्यापाग्नन्ते प्राणिनो यैरिति वा दण्डास्तैः,  
 दण्डो द्रव्यादिभेदादानेकविधोऽप्यत्र भावदण्ड एवाधिकृतो बोध्यः, दण्डत्रैविध्य-  
 माह-‘मणदडेण’ मन्यते=ज्ञायते पदार्थसार्थोऽनेनेति मनस्तेन दण्डो (असद्व्या-  
 पारात्मक ) मनोदण्डस्तेन, ‘वयदडेण’ उच्यते इति वचस्तेन दण्डो वचोदण्ड-  
 स्तेन, ‘कायदडेण’ चीयतेऽस्मिन्नस्थयादिकमिति कायः<sup>३</sup> कायेन दण्डः=कायदण्ड-

हो तो, एव राग (अनुराग) द्वेष (अप्रीति) रूप दो बन्धनों के  
 कारण, सम्यग्ज्ञानादिरूप रत्नत्रयका नाश करके आत्माको असार  
 करनेवाले, अथवा प्राणियो की हिंसामें निमित्तभूत मानसिक,  
 वाचिक, कायिक, इन तीन दण्डों के कारण, विहित का अनुष्ठान

प्रभाषे रागद्वेष इय वे वन्धनेना कारणे सम्यक्-ज्ञानादि इय रत्नत्रयने  
 नाश करीने आत्माने असार करवावाणा, अथवा प्राणीयोनी हिंसामा  
 निमित्तभूत मानसिक, वाचिक अने कायिक ये त्रयु इडोना कारणे विहिततु अतु

- १- ‘द्विष अप्रीती’ अस्माद्वाहुलकात्करणेऽपादाने वा घञ्।
- २- ‘दुष वैकृत्ये’ अस्मात्पूर्वचद्वञ्।
- ३- ‘निवासचितीत्यधिकरणे घञ् चस्य कृत्व च’।

સમ્પ્રત્યતિચારૈકાનેકમેદગર્ભ પ્રતિક્રમણમાહ—‘પડિક્કમામિ ઇગવિહે’ ઇત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

પડિક્કમામિ ઇગવિહે અસજમે । પડિક્કમામિ દોહિં  
વધણેહિં—રાગવધણેણ દોસવધણેણ । પડિક્કમામિ તિહિં દડેહિં—  
મણદડેણ વયદડેણ કાયદડેણ । પડિક્કમામિ તિહિં ગુત્તીહિં—  
મણગુત્તીણ વયગુત્તીણ કાયગુત્તીણ । પડિક્કમામિ તિહિં સહેહિં—  
માયાસહેણં નિયાણસહેણ મિચ્છાદસણસહેણ । પડિક્કમામિ તિહિં  
ગારવેહિ—હુહીગારવેણ રસગારવેણ સાયાગારવેણ । પડિક્કમામિ  
તિહિ વિરાહણાહિ—નાણવિરાહણાણ દસણવિરાહણાણ ચરિત્ત-  
વિરાહણાણ ॥ સૂ૦ ૬ ॥

॥ છાયા ॥

પતિક્રામામિ ઇગવિહેસયમે । પતિક્રામામિ દ્વાભ્યા વન્ધનાભ્યા—રાગવન્ધ-  
નેન દ્વેપવન્ધનેન । પતિક્રામામિ ત્રિમિર્દણૈઃ—મનોદણ્ડેન વચોદણ્ડેન કાયદણ્ડેન ।  
પતિક્રામામિ તિસૃમિર્ગુપ્તિમિ—મનોગુપ્ત્યા વચોગુપ્ત્યા કાયગુપ્ત્યા । પતિક્રામામિ  
ત્રિમિ. શલ્યૈ—માયાશલ્યેન નિદાનશલ્યેન મિધ્યાદર્શનશલ્યેન । પતિક્રામામિ ત્રિમિ  
ગૌરૈઃ—ઋદ્ધિગૌરવેણ રસગૌરવેણ શાતગૌરવેણ । પતિક્રામામિ તિસૃમિર્વિરા-  
ધનામિ—જ્ઞાનવિરાધનયા દર્શનવિરાધનયા ચારિત્રવિરાધનયા ॥ મૂ૦ ૬ ॥

॥ ટીકા ॥

‘પડિક્કમામિ’ ગતાઽસ્થ વ્યાખ્યા, ‘ઇગવિહે’ ઇકા ત્રિધા=પ્રકારો  
(ભેદો) યસ્ય સ ઇગવિધસ્તસ્મિન્, ‘અસજમે’ ન સયમ =અમયમ =પાપાચારા

યહ અતિચાર સક્ષેપ સે ઇક પ્રકારકા, વિસ્તાર સે દો તીન  
આદિ આત્માબ્યવસાયસે સઠ્યાત અસઠ્યાત યાવત્ અનન્ત પ્રકાર  
કા હૈ, ડનમેં સે ઇક આદિ ભેદ કહતે હે—‘પડિક્કમામિ ઇગવિહે૦’  
ઈત્યાદિ ।

ઇક પ્રકારકા અસયમ હોને પર જો મુહસે અતિચાર હુઆ

આ અતિચાર સક્ષેપથી ઁક પ્રકારના છે, અને વિસ્તારથી બે—ત્રણ આદિ  
આત્માબ્યવસાયથી સખ્યાત અસખ્યાત યાવત્ અનન્ત પ્રકારના છે, તેમાંથી ઁક વગેરેનો  
લે. કહે છે—‘પડિક્કમામિ ઇગવિહે’ ઇત્યાદિ

ઁક પ્રકારનો અસયમ થવાથી મને બે અતિચાર લાગ્યો હોય ઁ

सुखलालसारूपनिशितधारकुठारेण तन्निदान<sup>१</sup>तच्च तच्छल्य निदानशल्य तेन, 'मिच्छा-  
दसणसल्लेण' मिथ्या=विपरीत=मोहकर्मोदयजनित दर्शनम्=अभिप्रायो मिथ्या-  
दर्शन तदेव शल्य तेन, 'पडिकमामि' प्रतिक्रामामि, 'तिहिं' त्रिभिः, 'गारवेहिं'  
गुरोः कर्म भावो वा गौरव, तद्विषये द्रव्यगत भावगत च, द्रव्यगत वच्चादेः,  
भावगतमहङ्कारलोभादिजन्यमात्मनोऽगुभभावरूपचर्तुगतिससारचक्रभ्रमणनिदान -  
कर्मकारणम्, अत्र त्वेतदेव त्रिवक्षित प्रकरणात्, तैः, तद्द्वारेति भावः 'यो मयाऽति-  
चारः कृतः' इत्यादिसम्पन्न. प्राग्वत्। तदेव गौरवयमाह-'इह्दी०' इति,  
'इह्दीगारवेण' ऋद्धि.=राजैश्वर्यादिलक्षणा, आचार्यादिपदसम्प्राप्तिरक्षणं वा  
तया तस्या वा गौरवमृद्धिगौरवम्=आत्मोत्कर्षस्तेन, 'रसगारवेण' रस =रस-  
नेन्द्रियार्थो मधुरादिः, तस्य गौरव=तदवात्यभिमानस्तेन, 'सायागारवेण' शात=  
शरीरादिमुख तेन तस्य वा गौरव शातगौरव, तेन-'अहो अहमस्मि शरीरादि-  
मुखसम्पन्न. 'इत्यभिमानेनेति यावत् 'साया' इत्यत्र प्राकृतलादीर्गः, 'पडिकमामि'

समान, आत्मरूप भूमिमें उत्पन्न समकित रूप अङ्कुर से युक्त निर्मल  
भावनारूप जलसे सींचे हुए, तप सयम आदि फूलों से हरे भरे  
और मोक्षरूप फलसे विभूषित कुशलकर्मरूप कल्पवृक्ष को  
काटनेवाला निदान (नियाणा) और मोहकर्म के उदय से होनेवाला  
अभिप्रायरूप मिथ्यादर्शन, इन तीन शल्यों से और राजा आदि  
या आचार्य आदि की पदप्राप्तिरूप ऋद्धिगौरव, मधुर आदि रसकी  
प्राप्ति का अभिमानरूप रसगौरव, तथा शरीर आदि की सुख प्राप्ति  
से होनेवाला अभिमानरूप शातगौरव के कारण, एव ज्ञानकी (जिसके

धारथी युक्त कुठार समान, आत्मरूप भूमिभा उत्पन्न समकितरूप अङ्कुरथी  
युक्त निर्मल भावनारूप जलथी सींचे, तपसयम आदि फूलथी भरेला  
मोक्षरूप फलथी विभूषित कुशल कर्म रूप कल्पवृक्षने कल्पवावाणा निदान  
(नियाणु) अने मोहकर्मना उदयथी उत्पन्न थनारा अभिप्राय रूप मिथ्यादर्शन,  
आ तपु शल्येथी, राजा अथवा आचार्य आदि पदनी प्राप्ति रूप ऋद्धिगौरव,  
मधुर आदि रसनी प्राप्तिना अभिमान रूप रसगौरव तथा शरीर आदिना सुखनी  
प्राप्तिथी यवावाणा अभिमानरूप शातगौरव, अे प्रभाषे ज्ञाननी (नेना वडे



स्तेन, 'तिहिं' तिसृभिः, 'गुचीहिं' गोपनमर्याद्रक्षण गुप्तिः आगन्तुकर्मकच  
 वरनिरोधो योगनिरोधो वा तामिर्योऽतिचारः कृतस्तस्मात् 'पडिकमामि' प्रति  
 क्रामामि, गुप्तित्रयमाह 'मण' इति 'मणगुचीए' मनोगुप्त्या 'वयगुचीए'  
 वचोगुप्त्या, 'कायगुचीए' कायगुप्त्या, अर्थः प्रस्फुटः, आह-कथ गुप्तीनामति-  
 चार प्रति करणत्व? मिति, उच्यते-विहिताननुष्ठान-निषिद्धाऽऽचरण-श्रद्धान  
 प्रखलनादिना व्युत्क्रमेण सेविता मनोगुप्त्यादयोऽतिचारहेतवः सम्पद्यन्त इति ।  
 'तिहिं' त्रिभिः, 'सल्लेहिं' शल्यते=क्रियते जीवो यैस्तानि शल्यानि, द्रव्य  
 भावभेदेन शल्यस्य द्वैविध्येऽप्यत्र प्रकरणाद्भावशल्यस्यैव ग्रहण बोध्यम्, अन्य  
 इहापि प्राग्बदेव, शल्यत्रयमाह-'माया०' इति-'मायासल्लेण' मीयते=प्रतार्यते  
 प्रक्षिप्यते वा नरकादौ लोकोऽनयेति, यद्वा, 'माय्यते=अशुभकर्मरूपे गते पात्यते  
 लोकोऽनयेति, भ्रान्ति सर्वे दुर्गुणा यस्यामिति वा माया, तद्रूप शल्य मायाशल्य=  
 मनसा वाचा कायेन वा परधश्चनस्वरूप तेन, 'नियाणसल्लेण' नितरा दीयते=  
 छिन्यते आत्मभूमिजात-सम्यक्त्वाऽङ्कुरित-त्रिविधविमलभावनासल्लिसर्वद्वित-  
 ध्यानक्रियापल्लवित्वाऽखण्डतप'सयमाद्यनुष्ठानपुष्पित - मोक्षफलसुभूषित - कुशल  
 कर्मफलपटुक्षो येन—ऐहिकचक्रवर्त्यादिपारलौकिकदेवद्वर्त्यादिपदप्राप्तिजन्यविषय-

न करने, निषिद्ध का सेवन करने, तथा 'अश्रद्धानादिसे सम्यक्  
 असेवित योगनिरोधरूप मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति, इन तीन  
 गुप्तियों के कारण, अशुभ कर्मों के गड्डेमे या नरकमें गिरानेवाली  
 अथवा विषयोंमें प्राणियों को लुभानेवाली माया, ऐहिक चक्रवर्ती  
 आदि, परलोकसम्बन्धी देवशक्ति आदिके पदों की प्राप्ति से  
 होनेवाली विषयसुखलालसारूप तीक्ष्णधारा से युक्त कुठार के

-धान न कर्तुं होय अने निषिद्धनु सेवन कर्तुं होय, तथा अश्रद्धादी सम्यक्  
 असेवित योगनिरोधरूप मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, आ त्रय  
 गुप्तिभ्याना कारणे अशुभ कर्मोना पाडामा अथवा नरकमा नाभनारी, अथवा  
 विषयोभा प्राणीभ्याने लोभाननारी माया, ऐहिक-चक्रवर्ती आदि, परलोक सम्बन्धी  
 देव शक्ति आदि पडोनी प्राप्तिथी यनारी विषयसुभनी लालसारूप तीक्ष्ण

१-'दुमित्र प्रक्षेपणे' इत्यस्येदम् ।

२-'मय गती' इत्यस्य ण्यन्तस्येदम् ।

सुखलालसारूपनिश्चितधारकुठारेण तन्निदानं तच्च तच्छल्य निदानशल्य तेन, 'मिच्छा-  
दसणसल्लेण' मिथ्या=विपरीत=मोहकर्मोदयजनित दर्शनम्=अभिप्रायो मिथ्या-  
दर्शन तदेव शल्य तेन, 'पडिक्कमामि' प्रतिक्रामामि, 'तिहिं' त्रिभिः, 'गारवेहिं'  
गुरोः कर्म भावो वा गौरव, तद्विधिं द्रव्यगत भावगत च, द्रव्यगत वज्रादेः,  
भावगतमहङ्कारलोभादिजन्यमात्मनोऽशुभभावरूपचर्तुगतिससारचक्रभ्रमणनिदान -  
कर्मकारणम्, अत्र त्वेतदेव विवक्षित प्ररुणात्, तैः, तद्वारेति भावः 'यो मयाऽति-  
चारः कृतः' इत्यादिसम्बन्धः प्राग्वत् । तदेव गौरवत्रयमाह-'इह्दी०' इति,  
'इह्दीगारवेण' ऋद्धिः=राजैश्वर्यादिलक्षणा, आचार्यादिपदसम्प्राप्तिलक्षणा वा  
तथा तस्या वा गौरवमृद्धिगौरवम्=आत्मोत्कर्षस्तेन, 'रसगारवेण' रस =रस-  
नेन्द्रियार्थो मधुरादिः, तस्य गौरव=तदवाप्त्यभिमानस्तेन, 'सायागारवेण' शात=  
शरीरादिमुख तेन तस्य वा गौरव शातगौरव, तेन-'अहो अहमस्मि शरीरादि-  
मुखसम्पन्न. 'इत्यभिमानेनेति यावत् 'साया' इत्यत्र प्राकृतत्वादीर्घः, 'पडिक्कमामि'

समान, आत्मरूप भूमिमें उत्पन्न समकित रूप अङ्कुर से युक्त निर्मल  
भावनारूप जलसे सींचे हुए, तप सयम-आदि फलों से हरे भरे  
और मोक्षरूप फलसे विभूषित कुशलकर्मरूप कल्पवृक्ष को  
काटनेवाला निदान (नियाणा) और मोहकर्म के उदय से होनेवाला  
अभिप्रायरूप मिथ्यादर्शन, इन तीन शल्यों से और राजा आदि  
या आचार्य आदि की पदप्राप्तिरूप ऋद्धिगौरव, मधुर आदि रसकी  
प्राप्ति का अभिमानरूप रसगौरव, तथा शरीर आदि की सुख प्राप्ति  
से होनेवाला अभिमानरूप शातगौरव के कारण, एव ज्ञानकी (जिस्के

धारथी युक्त कुठार समान, आत्मरूप भूमिमा उत्पन्न समकितरूप अङ्कुरथी  
युक्त निर्मल भावनारूप जलथी सींचेत, तपसयम आदि फलोथी लरेला  
मोक्षरूप इलथी विभूषित कुशल कर्म रूप कल्पवृक्षने कापवावाणा निदान  
(नियाण्णु) अने मोहकर्मना उदयथी उत्पन्न यतारा अभिप्राय रूप मिथ्यादर्शन,  
आ तेषु शल्योथी, राज् अथवा आचार्य आदि पदनी प्राप्ति रूप ऋद्धिगौरव,  
मधुर आदि रसनी प्राप्तिना अभिमान रूप रसगौरव तथा शरीर आदिना सुखनी  
प्राप्तिथी यवावाणा अभिमानरूप शातगौरव, अे प्रभाषे ज्ञाननी (नेना पडे

स्तेन, 'तिहिं' तिसृभिः, 'गुचीहिं' गोपनमयाद्रक्षण गुप्तिः आगन्तुककर्मकच-  
 वरनिरोधो योगनिरोधो वा ताभिर्योऽतिचारः कृतस्तस्मात् 'पडिकमामि' प्रति-  
 क्रामामि, गुप्तित्रयमाह 'मण' इति 'मणगुचीए' मनोगुप्त्या 'वयगुचीए'  
 वचोगुप्त्या, 'कायगुचीए' कायगुप्त्या, अर्थः प्रस्फुटः, आह-रुथ गुप्तीनामति-  
 चार प्रति करणत्व? मिति, उच्यते-विहिताननुष्ठान-निषिद्धाऽऽचरण-श्रद्धान-  
 प्रखलनादिना व्युत्क्रमेण सेविता मनोगुप्त्यादयोऽतिचारहेतवः सम्पन्नन्त इति ।  
 'तिहिं' त्रिभिः, 'सङ्गेहिं' शल्यते=क्रियते जीयो यैस्तानि शल्यानि, द्रव्य  
 भावभेदेन शल्यस्य द्वैविध्येऽप्यत्र प्रकरणाद्भावशल्यस्यैव ग्रहण बोध्यम्, अन्य  
 इहापि प्राग्बदेव, शल्यत्रयमाह-'माया०' इति-'मायासङ्गेण' मीयते=प्रतार्यते  
 प्रक्षिप्यते वा नरकादौ लोकोऽनयेति, यद्वा, 'मान्यते'=अशुभकर्मरूपे गर्ते पाल्यते  
 लोकोऽनयेति, भान्ति सर्वे दुर्गुणा यस्यामिति वा माया, तद्रूप शल्य मायाशल्य=  
 मनसा वाचा कायेन वा परवञ्चनस्वरूप तेन, 'नियणसङ्गेण' नितरा दीयते=  
 छिद्यते आत्मभूमिजात-सम्यक्त्वाऽङ्कुरित-विविधविमलभावनासलिलसर्वाद्धित-  
 ध्यानक्रियापल्लविताऽखण्डतप'सयमात्रनुष्ठानपुष्पित - मोक्षफलसुभूषित - कुशल-  
 कर्मरूपवृक्षो येन—ऐहिकचक्रवर्त्यादिपारलौकिकदेवद्वर्चादिपदमाप्तिजन्यविषय

न करने, निषिद्ध का सेवन करने, तथा अश्रद्धानादिसे सम्यक्  
 असेवित योगनिरोधरूप मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति, इन तीन  
 गुप्तियों के कारण, अशुभ कर्मों के गर्डेमे या नरकमें गिरानेवाली  
 अथवा विषयोंमें प्राणियों को लुभानेवाली माया, ऐहिक चक्रवर्ती  
 आदि, परलोकसम्बन्धी देवक्रद्धि आदिके पदों की प्राप्ति से  
 होनेवाली विषयसुखलालसारूप तीक्ष्णधारा से युक्त कुठार के

-धान न कर्तुं होय अने निषिद्धनु सेवन कर्तुं होय, तथा अश्रद्धादी सम्यक्  
 असेवित योगनिरोधरूप मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति, आ त्रय  
 गुप्तिमाना कारणे अशुभ कर्मोंना भाडामा अथवा नरकमा नाभनारी, अथवा  
 विषयोमा प्राणीमाने लोकावनारी माया, ऐहिक-चक्रवर्ती आदि, परलोक सणधी  
 देव क्रद्धि आदि पढोनी प्राप्तिथी थनारी विषयसुभनी लालसाइप तीक्ष्ण

१-'डुमिन् प्रक्षेपणे' इत्यस्येदम् ।

२-'मय गती' इत्यस्य ण्यन्तस्येदम् ।

हसण्णाए । पडिक्कमामि चऊहिं विकहाहि-इत्थिकहाए, भत्तकहाए,  
देसकहाए, रायकहाए । पडिक्कमामि चऊहिं ज्ञाणेहि-अट्टेण ज्ञाणेणं,  
रुद्धेण ज्ञाणेणं, धम्मणेणं ज्ञाणेणं, सुद्धेणं ज्ञाणेणं ॥ सू० ७ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रामामि चतुर्भिः कपायै - क्रोधरूपायेण, मानरूपायेण, मायारूपा-  
येण, लोभरूपायेण । प्रतिक्रामामि चतसृभिः सज्ञाभिः-आहारसज्ञया, भयसज्ञया,  
मैथुनसज्ञया, प्रतिग्रहसज्ञया । प्रतिक्रामामि चतसृभिर्विन्ध्याभिः-स्त्रीकथया, भक्त-  
कथया, देशकथया, राजकथया । प्रतिक्रामामि चतुर्भिर्ध्यानैः-आर्त्तेन ध्यानेन,  
रौद्रेण ध्यानेन, धर्मेण ध्यानेन, शुक्रेण ध्यानेन ॥ सू० ७ ॥

॥ टीका ॥

‘पडिक्कमामि’ प्रतिक्रामामि, ‘चऊहिं’ चतुर्भिः, ‘कसाएहिं’  
कप्यते=ससारे समाकृष्यत आत्मा यैस्ते रुपायाः<sup>१</sup>, यद्वा कपति=हिनस्ति विषय-  
करवालेन प्राणिन इति कपः=ससारस्तस्य आय.=लाभो यैरिति, कप्यन्ते=गमनाऽऽ-  
गमनादिकण्टकेषु घृष्यन्ते प्राणिनो यैरिति, कृष्यते=सुखदुःखादिसस्यफलयोग्या  
क्रियते कर्मभूमियैरिति, क्लुपयन्ति=मलिनयन्ति स्वभावमपि जीवमिति निरुक्त-  
वृत्त्या वा कपायास्तैः, तद्द्वारेत्यर्थः ‘यो मये’-त्यादिसम्बन्धः प्राग्वत्, तदेव  
कपायचतुष्टयमाह—‘कोहो’ इति—‘कोहकसाएण’ कृष्यति=विकृतो भव-  
स्यात्माऽनेनेति क्रोधः स चासौ कपायश्च क्रोधकपायस्तेन, ‘माणकसाएण’  
मानन=स्वमपेक्षयाऽऽन्यस्य हीनतया परिच्छेदन, यद्वा मीयते=परिच्छिद्यतेऽनेनेति  
मानः स चासौ कपायश्च मानरूपायस्तेन, ‘मायाकसाएण’ मायाशब्दव्यारया

आत्मा को इस ससारमें परिभ्रमण करानेवाले, या गमना-  
गमनरूप कण्टकों में प्राणियों को घसीटने वाले, अथवा आत्मा  
को मलिन करनेवाले जीवपरिणाम को कपाय कहते हैं, इस  
कपाय अर्थात् क्रोध-मान-माया-और लोभ के कारण, जिससे जीव या

आत्माने ससारमा परिभ्रमण करानेवाले अथवा जलु आवतुं वगेरे  
द्वियाइय कटकोमा प्राणीमाने जेथी जवानाणा, अथवा आत्माने मलिन  
करवावाणा एवना परिष्ठामाने कपाय कडे छे आ कपाय अर्थात् क्रोध, मान,

१- ‘कप्’ घातोरौणादिक ‘आय’ प्रत्यय.

प्रतिक्रामामि, 'तिर्हि' तिसृभिः, 'विराहणाहिं' विगतान्याराधनानि, यद्वा वि-  
 विशेषेण राधनानि विराधनाः=खण्डनास्तामिरर्थोत्तद्वारा यो मयाऽतिचारः कृतः  
 इत्यादिसम्बन्धः प्रागुक्तपकारः । विराधनाभेदानाह—'नाण०' इति 'नाणवि-  
 राहणाए' ज्ञायन्ते—अत्रबुध्यन्ते पदार्था येन यस्माद्वा तज्ज्ञानम्=पदार्थपरिवोध-  
 स्तस्य विराधना=ज्ञानविराधना=तया, 'दसणविराहणाए' दृश्यन्ते=  
 धातूनामनेकार्थत्वात् श्रद्धीयन्ते पदार्था अनेनेति दर्शन=सम्यग्रूप तस्य विरा-  
 धना तया, 'चारित्तविराहणाए' चर्यन्ते=समाराध्यते मुमुक्षुभिरिति चर्यन्ते=  
 कर्मणा रिक्तीक्रियते आत्माऽनेनेति वा चरित्र तदेव—'चारित्र=त्रस—स्थावरादि  
 प्राणातिपाताद्युपरमरूपाऽऽत्मपरिणामरूप, सर्वसावययोगपरित्यागपुरस्सरनिरवध-  
 योगानुष्ठानरूप वा सामायिकादि, तस्य विराधना=चारित्रविराधना तया ॥ सू० ६ ॥

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि चऊहिं कसाएहिं—कोहकसाएणं, माणक-  
 साएण, मायाकसाएण, लोहकसाएण । पडिक्कमामि चऊहि  
 सण्णाहि—आहारसण्णाए, भयसण्णाए, मेहुणसण्णाए, परिग-

द्वारा जीवादि पदार्थ जाना जाय वह ज्ञान, उसकी) विराधना,  
 दर्शनकी (जिस के द्वारा जीवादि-पदार्थों का श्रद्धान किया जाय  
 वह दर्शन, उसकी) विराधना, चारित्रकी (मोक्षार्थियों से सेवन करने  
 योग्य, अथवा आत्मा को कर्म रहित करने वाला चारित्र, उसकी)  
 विराधना, इन तीन विराधनाओं (आराधना के अभाव अथवा  
 खण्डनारूप) के कारण जो मुझ से अतिचार किया गया हो तो  
 उससे मैं निवृत्त होता ॥ सू० ६ ॥

एवादि पदार्थ ज्ञायी शक्य ते ज्ञान, तेनी) विराधना, दर्शननी (जेना वडे  
 एवादि पदार्थानी श्रद्धा करवामा आवे, प्रवचनमा करुनी थाय ते दर्शन, तेनी)  
 विराधना, चारित्रनी (मोक्षार्थी एवेने सेवन करवा योग्य, अथवा आत्माने कर्म-  
 रहित करवावाणे चारित्र, तेनी,) विराधना, आ त्रणु विराधनाओना कारणे  
 (आराधनाणे अभाव अथवा अडनाइप) कारणे भने जे अतिचार लाग्यो होय तो  
 तेभाथी हु निवृत्त थाउ छु (सू० ६)

१-प्रज्ञादित्वात्स्वार्थिकोऽण् प्रत्ययः ।

हसण्णाए । पडिक्कमामि चउहिं विकहाहिं-इरिथकहाए, भत्तकहाए,  
देसकहाए, रायकहाए । पडिक्कमामि चउहिं ज्ञाणेहिं-अट्टेणं ज्ञाणेणं,  
रुद्धेण ज्ञाणेण, धम्मेणं ज्ञाणेणं, सुक्केणं ज्ञाणेणं ॥ सू० ७ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रामामि चतुर्भिः कषायै - क्रोधकषायेण, मानरूपायेण, मायाकषा-  
येण, लोभरूपायेण । प्रतिक्रामामि चतसृभिः सज्ञाभिः-आहारसज्ञया, भयसज्ञया,  
मैथुनसज्ञया, प्रतिग्रहसज्ञया । प्रतिक्रामामि चतसृभिर्विकथाभिः-स्त्रीकथया, भक्त-  
कथया, देशकथया, राजकथया । प्रतिक्रामामि चतुर्भिर्ध्यान-आत्तेन ध्यानेन,  
रीद्रेण ध्यानेन, धर्मेण ध्यानेन, शुद्धेन ध्यानेन ॥ सू० ७ ॥

॥ टीका ॥

‘पडिक्कमामि’ प्रतिक्रामामि, ‘चउहिं’ चतुर्भिः, ‘कसाएहिं’  
कष्यते=ससारे समाकृष्यत आत्मा यैस्ते कषायाः<sup>१</sup>, यद्वा कपति=द्विनस्ति विषय-  
करवालेन प्राणिन इति कपः=ससारस्तस्य आय.=लाभो यैरिति, कष्यन्ते=गमनाऽऽ-  
गमनादिरूढकेषु घृष्यन्ते प्राणिनो यैरिति, कृष्यते=सुखदुःखादिसस्यफलयोग्या  
क्रियते कर्मभूमियैरिति, कलुषयन्ति=मलिनयन्ति स्वभावमपि जीवमिति निरुक्त-  
वृत्त्या वा कषायास्तैः, तद्वास्तेत्यर्थः ‘यो मये’-त्यादिसम्बन्धं प्राग्वात्, तदेव  
कषायचतुष्टयमाह-‘कोहं’ इति-‘कोहकसाएण’ कृष्यति=विकृतो भव-  
त्यात्माऽनेनेति क्रोधः स चासौ कषायश्च क्रोधकषायस्तेन, ‘माणकसाएण’  
मानन=स्वमपेक्षयाऽऽन्यस्य हीनतया परिच्छेदेन, यद्वा मीयते=परिच्छिद्यतेऽनेनेति  
मानं स चासौ रूपायश्च मानरूपायस्तेन, ‘मायाकसाएण’ मायाशब्दव्याख्या

आत्मा को इस ससारमें परिभ्रमण करानेवाले, या गमना-  
गमनरूप कण्टकों में प्राणियों को घसीटने वाले, अथवा आत्मा  
को मलिन करनेवाले जीवपरिणाम को कषाय कहते हैं, इस  
कषाय अर्थात् क्रोध-मान-माया-और लोभ के कारण, जिससे जीव या

आत्माने ससारमा परिभ्रमण करवानार अथवा जलु आवर्तुं वगेरे  
द्वियाइय कटकाभा प्राणुओने जेथी जवावाणा, अथवा आत्माने मलिन  
करवावाणा एवना परिष्ठागेने कषाय कडे छे आ कषाय अर्थात् क्रोध, मान,

१- ‘कृष्’ घातोरौणादिक ‘आय’ प्रत्यय.

त्वनुपदमेवोक्ता, 'लोहकसाएण' लोभोऽभिकाङ्क्षा, अथवा 'लुभ्यते व्याकुली-  
क्रियत आत्माऽनेनेति लोभः, स चासौ कपायश्च लोभकपायस्तेन, 'पडिकमामि'  
प्रतिक्रामामि, कामिः? 'चऊर्हि' चतसृभिः, 'सण्णाहिं' सज्ञानानि=सज्ञाः,  
सज्ञायते जीवस्तचेष्टाविशेषो वा याभिरिति सज्ञाः=अमिलापविशेषरूपास्ता  
भिरर्थात्तद्वारा 'योऽतिचारः कृत' इत्यादिसम्बन्धः प्राग्वत् । तद्भेदानाह—  
'आहारं' इति 'आहारसण्णाए' आहारणमाहारस्तद्विषया सज्ञाऽऽहारसज्ञा=  
धुद्वेदनीयोदयेन क्वलाग्रभिलापस्वरूपाऽऽत्मपरिणतिविशेषस्तया, 'भय  
सण्णाए' भय=भीतिस्तद्विषया सज्ञा भयसज्ञा तथा 'मैथुणसण्णाए' मिथुन  
स्त्रीपुसौ तत्कर्म मैथुन तद्विषया सज्ञा मैथुनसज्ञा=स्व्यादिवेदोदयरूपा तथा,  
'परिग्रहसण्णाए' परि=समन्ताद् गृह्यते=स्वीक्रियत इति परिग्रहः, यद्वा परि-  
ग्रहण=परिग्रहस्तद्विषया सज्ञा परिग्रहसज्ञा=लोभजन्याऽऽत्मपरिणतिविशेषस्तया ।  
'पडिकमामि' प्रतिक्रामामि, 'चऊर्हि' चतसृभिः, 'विक्कहाहिं' वि=विरुद्धाः  
सयमविराधन्त्वेन कथा=वचनरचनात्रयः विकथास्ताभिस्तद्वारेत्यर्थः 'यो मये'  
त्यादिसम्बन्धः प्राग्वदेव । तदेव विकथाचतुष्टयमाह—'इत्थिं' इति । 'इत्थि-  
कहाए' स्त्रीणा कथा स्त्रीकथा तथा, इय च स्त्रीकथा जाति-कुल-रूप-नेपथ्य-भेदा  
चतुर्धा, तत्र जात्या स्त्रीकथा, यथा—

'मृते पत्यौ दुःखदग्धा, धिगस्तु ब्राह्मणी सदा । धन्या शूद्रैव याऽऽप्नोति,

अजीवकी चेष्टा जानी जाय ऐसी आहार-भय-मैथुन-तथा परिग्रहरूप  
सज्ञा के कारण और स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा तथा राजकथा  
रूप चार विकथाओं के कारण जो कुछ अतिचार किया गया हो  
तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ।

इनमें 'स्त्रीकथा' जाति कुल रूप और नेपथ्य के भेदसे

भाया अने लोभना कारणे, जेना वडे लुप अने अलुपनी येष्टा नानुवाभा आवे ज्येवी  
आहार, भय, मैथुन तथा परिग्रह रूप सज्ञाना कारणे, अने स्त्रीकथा, भक्तकथा,  
देशकथा, तथा राजकथा रूप चार विकथाओं कारणे जे केई अतिचार  
यथा होय तो तेभायी हु निवृत्त थाई छ

जेभा स्त्रीकथा जाति कुल रूप अने नेपथ्यना दोहरी चार प्रकारनी छे,

१- 'लुभ विमोहने' 'विमोहनमाकुलीकरण'-मिति सिद्धान्तकौमुदी ।

धवे प्रेते पर परम्" ॥१॥ इत्यादि रीत्या ब्राह्मण्यादीना विनिन्दनादिः। कुलेन यथा—‘अहो प्रशस्तमोग्रकुलसभूतेय बाले’—त्येवमादिः। रूपेण यथा—‘कटाक्षवाणा मैथिल्य आन्ध्र्यः शशधरानना’ इत्येवमादिः, नेपथ्येन यथा—‘चैनाः पर्वतीयाश्च चिपिटनासिका निःसीमवस्त्राभरणादिभारा दुर्भाषिताश्च, आन्ध्री-गुर्जरी-मैथिली-पाञ्चाल्यो यथोचितवस्त्राभरणादिमुवेपपरिच्छिन्नाः’ इत्यादि, स्त्रीकथाया स्वपरोदीरणोद्वाहब्रह्मचर्यागुप्त्यादिदोषसम्भवेनाऽतिचारहेतुत्वमवसेयम्। ‘भक्तकथा’ भक्तस्य=ओदनादेः कथा, भक्तकथा तया, इयमपि चतुर्धा-आवाप-निर्वाप-ऽऽरम्भ-निष्ठानभेदात्, तत्राऽऽवापेन भक्तकथा यथा—

चार प्रकारकी है, उनमें जातिकथा जैसे—“पति के मर जाने पर दुःख से दिन बितानेवाली ब्राह्मणी को धिक्कार है, शूद्रा ही धन्य है जो एक पति मर जाने पर भी दूसरे पति के द्वारा सुखसे जीवन बिताती है’ इत्यादि। कुलकथा जैसे—‘यह कन्या उग्रकुलकी है इसलिये अच्छी है’ इत्यादि। रूपकथा जैसे—‘पहाड़ी स्त्रिया वस्त्र और आभूषण बहुत रखती है, मैथिली और पजाबी स्त्रियाँ आवश्यकतासे अधिक वस्त्र तथा आभूषण नहीं पहनती हैं’ इत्यादि। ऐसी कथाओंसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतों में दोष लगने की सभावना रहती है इसलिये हमको अतिचार का हेतु माना गया है।

‘भक्तकथा’ आवाप, निर्वाप, आरम्भ और निष्ठान भेदसे चार प्रकारकी है। उनमें आवाप भक्तकथा जैसे—इस रसोई में

तेमा नतिकथा जेवी रीते के—पति भरषु पाभ्या पछी हु भथी दिवसे वितावनारी प्राह्मण्यीने धिक्कार छे, शूद्राणीनेज धन्य छे के जेने अेक पति भरषु पाभी जता भीन पति द्वारा सुभथी लवन गुनरे छे छत्यादि

कुलकथा—आ कन्या उग्रकुलनी छे, अेटला भाटे सारी छे छत्यादि रूपकथा जेभ—पहाडी स्त्रीअो वस्त्रो अने आभूषणु भहुज राणे छे, मैथिली अने पनणी स्त्रीअो जरत करता वधारे वस्त्र तथा आभूषणु पडेरनी नथी, छत्यादि आवी कथाअेथी प्राह्मचर्य आदि व्रतोमा दोष लागवानी सभावना रहेवाथी तेने अतिचारने हेतु मानवामा आवेल छे

भक्तकथा—आवाप—निर्वाप—आरम्भ अने निष्ठान जेथी चार प्रकारनी छे



त्वनुपदमेवोक्ता, 'लोहकसाएण' लोभोऽभिकाह्ला, अथवा 'लुभ्यते' व्याकुली-  
 क्रियत आत्माऽनेनेति लोभः, स चासौ कपायश्च लोभरूपायस्तेन, 'पडिकमामि'  
 प्रतिक्रामामि, काभिः? 'चऊर्हि' चतसृभिः, 'सण्णाहिं' सज्ञानानि=सज्ञाः,  
 सज्ञायते जीवस्तचेष्टाप्रिषेपो वा याभिरिति सज्ञाः=अभिलापविशेषरूपास्ता  
 भिरर्थात्तद्वारा 'योऽतिचारः कृत' इत्यादिसम्बन्धः प्राग्यत् । तद्धेदानाह—  
 'आहारः' इति 'आहारसण्णाए' आहारणमाहारस्तद्विषया सज्ञाऽऽहारसज्ञा=  
 क्षुद्धेदनीयोदयेन कवलान्त्रभिलापस्वरूपाऽऽत्मपरिणतिविशेषस्तया, 'भय  
 सण्णाए' भय=भीतिस्तद्विषया सज्ञा भयसज्ञा तथा 'मैथुणसण्णाए' मिथुन  
 स्त्रीपुंसौ तत्कर्म मैथुन तद्विषया संज्ञा मैथुनसज्ञा=स्व्यादिवेदोदयरूपा तथा,  
 'परिग्रहसण्णाए' परि=समन्ताद् गृह्यते=स्वीक्रियत इति परिग्रहः, यद्वा परि  
 ग्रहण=परिग्रहस्तद्विषया सज्ञा परिग्रहसज्ञा=लोभजन्याऽऽत्मपरिणतिविशेषस्तया ।  
 'पडिकमामि' प्रतिक्रामामि, 'चऊर्हि' चतसृभिः, 'विकहाहिं' वि=विरुद्धाः  
 समयविराधकत्वेन कथाः=वचनरचनात्रयः विकथास्ताभिस्तद्वारेत्यर्थः 'यो मये'  
 त्यादिसम्बन्धः प्राग्वदेव । तदेव विकथाचतुष्टयमाह—'इत्थि०' इति । 'इत्थि-  
 कहाए' स्त्रीणां कथा स्त्रीकथा तथा, इय च स्त्रीकथा जाति-कुल-रूप-नेपथ्य-भेदा  
 चतुर्धा, तत्र जात्या स्त्रीकथा, यथा—

'मृते पत्यौ दु खदग्धा, धिगस्तु ब्राह्मणी सदा । धन्या शूद्रैव याऽऽप्नोति,

अजीवकी चेष्टा जानी जाय ऐसी आहार-भय-मैथुन-तथा परिग्रहरूप  
 सज्ञा के कारण और स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा तथा राजकथा  
 रूप चार विकथाओं के कारण जो कुछ अतिचार किया गया हो  
 तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ।

इनमें 'स्त्रीकथा' जाति कुल रूप और नेपथ्य के भेदसे

भाया अने लोभना कारणे, जेना वडे एव अने अएवनी श्रेष्ठा लक्षणवाभा आवे जेवी  
 आहार, भय, मैथुन तथा परिग्रह रूप सज्ञाना कारणे, अने स्त्रीकथा, भक्तकथा,  
 देशकथा, तथा राजकथा रूप चार विकथाओं कारणे जे केछ अतिचार  
 यथा होय तो तेभाथी हु निवृत्त थाउ छु

जेभा स्त्रीकथा जाति कुल रूप अने नेपथ्यना भेदथी चार प्रकारनी छे,

१- 'लुभ विमोहने' 'विमोहनमाकुलीकरण'—मिति सिद्धान्तकौमुदी ।

धवे प्रेते परं परम्" ॥१॥ इत्यादि रीत्या ब्राह्मण्यादीना विनिन्दनादिः। कुलेन यथा-‘अहो प्रशस्ततमोग्रकुलसभूतेय गाले’-त्येवमादिः। रूपेण यथा-‘कटा-सवाणा मैथिल्य आन्प्रचः शशधरानना’ इत्येवमादिः, नेपथ्येन यथा-‘चैनाः पर्वतीयाश्च चिपिटनासिका निःसीमवस्त्राभरणादिभारा दुर्भाषिताश्च, आन्त्री-गुर्जरी-मैथिली-पाञ्चाल्यो यथोचितवस्त्राभरणादिसुवेपपरिच्छिन्नाः’ इत्यादि, स्त्रीकथाया स्वपरोदीरणोद्वाहब्रह्मचर्यागुप्यादिदोषसम्भवेनाऽतिचारहेतुत्वमव-सेयम्। ‘भक्तकहाए’ भक्तस्य=ओदनादेः कथा, भक्तकथा तथा, इयमपि चतुर्दा-आवाप-निर्वापा-ऽऽरम्भ-निष्ठानभेदात्, तत्राऽऽवापेन भक्तकथा यथा—

चार प्रकारकी है, उनमें जातिकथा जैसे—“पति के मर जाने पर दुःख से दिन बितानेवाली ब्राह्मणी को धिक्कार है, शूद्रा ही धन्य है जो एक पति मर जाने पर भी दूसरे पति के द्वारा सुखसे जीवन बिताती है’ इत्यादि। कुलकथा जैसे—‘यह कन्या उग्रकुलकी है इसलिये अच्छी है’ इत्यादि। रूपकथा जैसे—‘पहाड़ी स्त्रिया बस्त्र और आभूषण बहुत रखती है, मैथिली और पजाबी स्त्रियाँ आवश्यकतासे अधिक बस्त्र तथा आभूषण नहीं पहनती है’ इत्यादि। ऐसी कथाओंसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतों में दोष लगने की सभावना रहती है इसलिये इसको अतिचार का हेतु माना गया है।

‘भक्तकथा’ आवाप, निर्वाप, आरम्भ और निष्ठान भेदसे चार प्रकारकी है। उनमें आवाप भक्तकथा जैसे—इस रसोई में

तेमा अतिकथा जेवी रीते ठे -पति भरषु पाम्या पछी दु षथी द्विवसे वितावनारी प्राक्षालीने धिक्कार छे, शूद्राखीनेन धन्य छे ठे जेने ओक पति भरषु पामी जता भीन पति द्वारा सुषथी एवन गुनरे छे धत्यादि

कुलकथा—आ कन्या उग्रकुलनी छे, ओटला भाटे सारी छे धत्यादि रूपकथा जेम—पहाडी स्त्रीओ वस्त्रो अने आभूषणु गहुन राषे छे, मैथिली अने पनाथी स्त्रीओ जइसत करता वधारे वस्त्र तथा आभूषणु पडेरती नथी, धत्यादि आथी कथाओथी ब्रह्मचर्य आदि व्रतोमा दोष लागवानी सभावना रहेवाथी तेने अतिचारने हेतु मानवामा आवेल छे

भक्तकथा-आवाप-निर्वाप-आरम्भ अने निष्ठान लेथी चार प्रकारनी छे

‘एतावन्न महानसे घृतमेतावन्नाकाप्रेतावन्नेसपारादि युक्त स्यादित्येव  
 मकथनम् । निर्वापेण यथा—‘एतावन्ति पकान्येतावन्त्यपकान्यन्नान्येताव-  
 द्वचञ्जन’—मित्याद्युक्तिः । आरम्भेण यथा ‘अस्मिन् महानसे शारुफलादीनि  
 एतावन्ति उपयोक्ष्यन्त’ इत्युक्तिः । निष्ठानेन यथा—‘अस्मिन् महानसे शत रूप्य-  
 काणि विन्यन्ति’ इत्यादि द्रव्यसकथनम्, अत्र चाजितेन्द्रियत्वोदरिक्तत्वादयो  
 दोषा भवन्ति । ‘देसरुहाए’ देशः=मगधराजस्थानपञ्चालादिरूपो जनपदस्तस्य  
 कथा देशकथा तथा, इयमपिच्छन्द-विधि-विकल्प-नेपथ्य-भेदाच्चतुर्विधा-तत्र  
 छन्देन देशकथा यथा—

इतना घी इतना शाक और इतना मसाला ठीक होगा’ इत्यादि ।  
 निर्वाप भक्तकथा जैसे—इतने पकवान थे इतना शाक था और  
 इतना मधुर था’ इस प्रकार देखे हुए भोज्य पदार्थों की कथा करना ।  
 आरम्भ भक्तकथा जैसे—‘इस रसोईमें इतने शारु और फल आदिकी  
 जरूरत रहेगी’ इत्यादि । निष्ठान भक्तकथा जैसे—अमुक भोज्य  
 पदार्थों में इतने रूपये लगेंगे’ इस प्रकार द्रव्य की मुख्यता से कथा  
 करना । भक्तकथा से अजितेन्द्रियत्व आदि दोष होनेके कारण  
 अतिचार होता है ।

मगध आदि देशोंकी कथा करने को ‘देशकथा’ कहते हैं ।  
 वह भी चार प्रकारकी है—(१) छन्द (२) विधि (३) विकल्प (४) नेपथ्य

तेमा आवाप लकतकथा-नेवी रीते ठे आ रसोईमा-अमुक प्रमाणुमा घी-शाक  
 अने मशादी छथे तो सारी रसोई थथे, छत्यादि निर्वाप लकतकथा-आटला  
 पकवान छता, आटला शाक छता अने स्वादमा मधुर छता अे प्रमाणु जेथेला  
 पदार्थोनी कथा करवी ते आरल लकतकथा-नेमके ‘आ रसोईमा आटला शाक  
 अने इणोनी जरूरत रहेथे, छत्यादि निष्ठान लकतकथा-नेमके अमुक लोअन  
 करवाना पदार्थोमा आटला इपिआ थथे आ प्रमाणु द्रव्यनी मुख्यताथी कथा  
 करवी ते लकतकथाथी अजितेन्द्रियत्व आदि दोष थवाना कारणे अतिचार लागे छे

मगध आदि देशोनी कथा वगेरेने देश कथा कडे छे ते पञ्च आर प्रका  
 रनी छे (१) छन्द, (२) विधि, (३) विकल्प, (४) नेपथ्य

१-व्ययितानि भवन्तीत्यर्थः ।

‘दक्षिणे मातुली कन्या परिणेया प्रयत्नतः’—इति लाटादिदेशेषु मातुलकन्या गम्या तदितरत्र—‘मातुलस्य सुतामूढ्वा मातृगोत्रा तथैव च । समान प्रवरा चैव भुक्त्वा चान्द्रायण चरेत्’ इति सैवागम्येत्यादिप्रकथनम् । विधिः= भोजनादिसम्पादन तेन देशकथा यथा—मगधेऽन्नदुग्गादीना भोज्यानामेव प्राचुर्यं भवति, कोसलदेशे भवनादीन्येव निर्मापन्ते, सुघ्ने चैव व्यापारपरायणा यनिनः,—इत्येवमादि, विकल्प = क्षेत्र-वापी-कूप-तडागादि निर्माण, सस्यादिसम्प-निध, तेन देशकथेत्यतिरोहितम्, नेपथ्य=स्त्रीपुरुषकर्तृकमणिभूषणादिधारण

(१) छद्-देशकथा जैसे—दक्षिण देशमे मामाकी कन्या के साथ विवाह किया जाता है । अन्य देशों में दोष माना जाता है, जैसा लिखा है कि—‘मामाकी कन्या से माता के गोत्रमे उत्पन्न किसी और भी कन्या से अथवा एक प्रवर (भूल) की कन्या से यदि कोई विवाह करे तो वह विवाह अयोग्य समझा जाता है और विवाह करनेवाले को चान्द्रायणव्रत करना पडता है’ इत्यादि । (२) विधि-देशकथा जैसे—‘मगध देशमे चावल, दूध, आम वगैरह इस प्रकार उत्पन्न होते हैं, कोसल (अवध) देशमे मकान इस प्रकार बनाये जाते हैं, तथा सुघ्न (आगरा प्रान्त) के धनी लोग इस प्रकार व्यापार किया करते हैं’ इत्यादि । (३) विकल्प-देशकथा जैसे—खेत, बावडी, कूप, तालाव, आदि के खुदवाने तथा शालि आदि के रोपने आदि की कथा करना । (४) नेपथ्य-देशकथा ‘मणि-भूषण-

(१) छद् देशकथा-जेभडे, दक्षिण देशमा मामानी पुत्री साथे लग्न करी शक्य छे अने भीज्ज देशोमा ते प्रभाळ्णे करवामा दोष मानवामा आये छे जेवी रीते अन्य अथोमा लजेछु छे के—‘मामानी पुत्रीथी, माताना गोत्रमा उत्पन्न केछि भीछु कन्याथी अ वा अेक प्रवर (भूल) नी कन्या साथे केछि विवाह करे तो ते विवाह-लग्न अयोग्य समझवामा आवे छे अने लग्न करनारने आद्रायण व्रत करवुं पडे छे इत्यादि (२) विधि देशकथा-जेभडे, मगध देशमा आवल-(बाभा)-दूध-आणा वगैरे आ प्रभाळ्णे उत्पन्न थाय छे केशल (अवध) देशमा मकान आ प्रभाळ्णे बनाववामा आवे छे तथा आगरा प्रान्तमा धनवान भाळ्णेमा आ प्रभाळ्णे व्यापार करे छे इत्यादि (३) विकल्पथी देशकथा-जेभडे, जेती, वाडी, कूपा-तालाव वगैरे जोडाववानी तथा शाली आदि धान्य रोपवानी कथा करवी ते (४) नेपथ्य

તેન-દેશકથા યથા—‘અહો વૈદેહીના કેશપાશવિન્યાશો વાસોધારણમાત્રીય્ય  
 ચ, અહો ગૌર્જરીણામલ્પીયસાઽપિ ધૂપાપયોગેણ રૂપસૌન્દર્યમ્, અહો પાશ્ચાલી  
 નામધરીયચૈલચમત્કાર’ इत्यादिः, इह च रागद्वेषोदयपक्षपातादयो दोषा  
 वोद्भव्या । ‘रायकहाए’ रागः=नृपतेः कथा राजकथा तथा, इयमपि अतियान-  
 निर्याण—बलवाहन—कोशकोष्ठागारभेदाच्चतुर्विधा; तत्राऽतियान=नगरादि-  
 प्रवेशन तेन राजकथा यथा—‘शशिमभच्छत्रनियारितातप’, सदन्तिवाजी  
 सितचामरद्वयः । असौ नृपो मागधवन्दिवन्दितो, रथेन सम्प्राप्स्यति राजधानिकाम्’

વસ્ત્ર આદિ કે ધારણ કરને કી કથા કરના, જૈસે-વિદેહ દેશકી  
 સ્ત્રિયોં કે કેશપાશ આદિ કી સુન્દરતા અચ્છી હૈ, ગુજરાતી સ્ત્રિયોં  
 કી ઢોઢે આભૂષણ સે મી રૂપસુન્દરતા ઓર પજ્જાવી સ્ત્રિયોં કે અધરીય  
 વસ્ત્રોંકા ચમત્કાર પ્રશસનીય હૈ’ इत्यादि रूप से कथन करना। देशकथा  
 में राग-द्वेष-पक्षपात आदि दोषों की संभावना से अतिचार  
 लगता है ।

રાજકથા મી ચાર પ્રકાર કી હૈ—(૧) અતિયાન (૨) નિર્યાણ  
 (૩) બલવાહન (૪) કોષ-કોષ્ટાગાર, ડનમેં (૧) અતિયાન (નગરાદિ-  
 પ્રવેશ) સે રાજકથા-જૈસે ‘ચન્દ્રમા કે સમાન સ્વચ્છ છત્ર ઓર ચામરોં  
 સે સુશોભિત, હાથી ઘોડોં સે યુક્ત, રથ પર ચઢા હુવા યહ રાજા  
 માગધ, વન્દી આદિ યાચક જનોં કી જયધ્વનિ કે સાથ રાજધાની

દેશ કથા-મણિભૂષણ વસ્ત્ર આદિ ધારણ કરવાની કથા કરવી તે જેમકે વિદેહ દેશની  
 સ્ત્રીઓના કેશ-પાશ વગેરેની સુન્દરતા સારી છે ગુજરાતી સ્ત્રીઓ થોડા આભૂષણ  
 પહેરે તો પણ સુન્દર દેખાય છે, પંજાબી સ્ત્રીઓના વસ્ત્રોના ચમત્કાર પ્રશંસા  
 કરવા યોગ્ય છે ઇત્યાદિ રૂપથી વાત કરવી તે દેશકથામા રાગ-દ્વેષ-પક્ષપાત વગેરે  
 દોષો થવાનો સંભવ છે તેથી અતિચાર લાગે છે

— રાજકથા પણ ચાર પ્રકારની છે (૧) અતિયાન, (૨) નિર્યાણ, (૩) બલ  
 વાહન, (૪) કોષ-કોષ્ટાગાર તેમા (૧) અતિયાન (નગરાદિપ્રવેશ) થી રાજકથા -  
 જેમકે-‘ચન્દ્રમા પ્રમાણે સ્વચ્છ છત્ર અને બે ચામરોથી સુશોભિત, હાથી ઘોડાથી  
 યુક્ત, રથ ઉપર બેઠેલા આ રાજા માગધ-ગન્દી આદિ યાચક જનોની જયધોષણ  
 સાથે રાજધાનીમા પ્રવેશ કરશે-ઇત્યાદિ (૨) નિર્યાણ-નગરાદિથી બહાર નીકલવાની

इति । निर्याण=पुराद्धर्गमन, तेन यथा 'तत्रैव 'पुराद्धर्गमन' इति सैन्यसवृतः' इति चतुर्थचरणव्यत्यासेनोदीरणम् । बल=सैन्य, वाहन=गजादि, ताभ्या यथा—

‘अमी खुरक्षुण्णधरास्तुरङ्गमाः, रथा महान्तश्च गजा मदोद्धताः । पदातयो वैरिनिवर्हणक्षमाः, क्षमापतेः कस्य चकासतीदृशाः’ ॥ इति, कोशः=भाण्डागार, कोष्ठागार=धान्यादिग्रह ताभ्या यथा—

‘रत्नादिपूर्णकोशः, कोट्टपदातिप्रकोपदलितारि’ । सभृतकोष्ठागारः, सुख स्वपित्येप नरनाथः’ इत्यादि । अत्र राजरहस्यभेदनादयो दोषाः प्रतीता

में प्रवेश करेगा’ इत्यादि । (२) निर्याण (नगरादि से बाहर निकलने) से राजकथा—जैसे—‘उक्तशोभाके साथ राजा राजधानी से बाहर निकलेगा’ इत्यादि । (३) बल (सेना) वाहन (हाथी घोड़े आदि) से राजकथा—जैसे—‘अहा! ऐसे बड़े २ चचल घोड़े, मदोन्मत्त हाथी और शत्रुओं के उके छुडानेवाले शूरवीर किस राजाके हैं!’ इत्यादि । ४ कोप (खजाने) और कोष्ठागार (कोठार) से राजकथा—जैसे—‘जिसके रत्नादि से खजाना, और धान्य आदि से कोठार भरे हुए हैं तथा जिसका किला अभेद्य एव योद्धागण शत्रुओं का दमन करनेवाले हैं, ऐसा यह राजा सुख से समय बिताता है’ इत्यादि । इस प्रकार राजकथा करने से राजरहस्य-भेदन आदि अनेक दोषों की उत्पत्ति होने के कारण अतिचार लगता है ।

कथा—जेभडे—उपर कडेली शेळा साथे राजा—राजधानीथी गडार नीकलथे इत्यादि (३) गल—(सेना) वाहन ( हाथी घोडा ) सहित राजकथा—जेभडे—अडा ? आवा मोटा—मोटा अथल घोडा, महोन्मत्त हाथी अने शत्रुओना भान उतारी नाणे तेवा शूरवीर कथा राजना छे ? इत्यादि (४) कोप ( भणना ) अने कोष्ठागार ( कोठार ) नी राजकथा—जेभडे—जेना रत्नादिकथी भणना अने धान्यादिकथी कोठार बरेला छे तथा जेना राजना किल्ला अवेध छे अने योद्धाओ शत्रुओनुं दमन करवावाणा छे जेवा आ राजा सुभथी समय गुनरे छे इत्यादि आ प्रभाणे राजकथा कडे-वाथी राजनी शुभत वात वेदन वगेरे अनेक दोषोनी उत्पत्ति थवाना कारणे अति-चार लागे छे.

एव । 'पडिकमामि' प्रतिक्रामामि, 'चऊर्हि' चतुर्भिः, 'ज्ञाणेर्हि' ध्यातिः= ध्यान निर्वातस्थानस्थितनिश्चलपदीपशिखावत् स्थिरतर-धारावाहिज्ञानविच्छेदक विषयान्तरसञ्चारानन्तरितकमात्रार्थचिन्तनरूपचित्तैकाग्रतास्वरूप, यदुक्तम्—

‘अतोमुहुत्तमित्त, चित्तावत्याणमेगवत्पुम्भि ।

छउमत्भाण ज्ञाण, जोगणिरोहो जिणाण ति’ इति ।

तैः, तद्द्वारा यो मयाऽतिचारः कृतः, इत्याद्यन्वयः प्राग्वत् । क्रमेण भेद-चतुष्टयमेवाह—‘अष्टेण ज्ञाणेण’ आर्त्तेन ध्यानेन, अर्त्तिः=मनोव्यथा, तस्या तथा सह वा भवमिति, अथवा ऋतिः=अशुभ तथा सह भवमार्त्तं तेन ध्यानेन मनोज्ञामनोज्ञवस्तुसयोगधियोगजनितचित्तोद्भक्तलक्षणेनेत्यर्थः, तदुक्तमितरत्रापि—

पवन रहित स्थानमें रखे हुए निश्चल दीपकी शिखाके समान अत्यत स्थिर-धारावाही ज्ञानका विच्छेद करनेवाले अन्य पदार्थों के सबन्ध से रहित एक मात्र वस्तु के न्तन को ध्यान कहते हैं, जैसा कि कहा है—‘छद्मस्थों के एक वस्तु में अन्तर्मुहूर्त मात्र मनका अवस्थान ‘ध्यान’ कहलाता है; किन्तु जिन भगवान के मन का अभाव होने के कारण योगनिरोध ही होता है, अवस्थान नहीं’ । वह ध्यान आर्त्त (१) रौद्र (२) धर्म्य (३) और शुक्ल (४) भेद से चार प्रकार का है, उनमें से (१) आर्त्तध्यान उसे कहते हैं जो अर्त्ति-मन की व्यथा के साथ, अथवा ऋति-अशुभ के साथ होने वाला हो, अर्थात् इष्ट शब्दादि के सयोग और अनिष्ट के वियोग का चिन्तन करना । जैसा कि लिखा है ‘जिसमें

निर्वात ( न्या पवन आवी शके नहि तेवा ) स्थणे राणेला निश्चल दीपक-दीवानी शिखा समान अत्यत स्थिर धारावाही ज्ञानको विच्छेद करवावाणा अन्य पदार्थोना सणधयी रहित ज्येक मात्र वस्तुना चिन्तनने ‘ध्यान’ कहे छे

कथु छे के ‘छद्मस्थने’ ज्येक वस्तुमा अन्तर्मुहूर्त मात्र मननु अवस्थान रहे छे तेने ध्यान कहे छे ते ध्यान (१) आर्त्त, (२) रौद्र, (३) धर्म्य, (४) शुक्ल ज्येक थी आर प्रकारनु छे तेमा (१) आर्त्तध्यान तेने कहे छे के —ते अर्त्ति-मननी पीडानी साथे अथवा ऋति-अशुभनी साथे यनाइ डोय, अर्थात् इष्ट शब्दादिने।

१-ऋतिः—अशुभमिति शब्दकल्पद्रुम ।

‘राज्योपभोगशयनाऽऽसनवाहनेषु,  
स्त्रीगन्धमाल्यमणिरत्नविभूषणेषु ।

यत्राभिलाषमतिमात्रमुपैति मोहाद्

ध्यान तदार्षमिति सप्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥१॥’ इति

‘रुद्देण ज्ञाणेण’ रौद्रेण ध्यानेन, रोदयति=अन्तर्भावितण्यर्थत्वात् सह-  
मोषघातादिपरिणामयुक्तो जीवो व्यथयति पराननेनेति रुद्रः, यद्वा रुद्र इव  
चण्डत्वादरुद्रस्तस्य कर्म रौद्र, तेन ध्यानेन हिंसाप्रतिक्रौर्यभावोपहृतेनेत्यर्थः,  
एतच्चोक्तम्—

‘सछेदनैर्दहन-भञ्जन-मारणैश्च,

बन्ध-प्रहार-दमनैर्विनिकृन्तनैश्च

रागोदयो भवति येन न चात्रुरुम्पा,

ध्यान तु रौद्रमिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥२॥’ इति ।

मोहवश राज्य के उपभोग, शय्या, आसन, हाथी, घोड़े आदि  
वाहन, स्त्री, गन्ध, माला, मणि, रत्न, भूषण आदि की इच्छा  
उत्पन्न हो उसे और इससे विपरीत सयोगों की अनिच्छा करना  
‘आर्त्तध्यान है’ ।

(२) उपघात आदि परिणामों से जो जीव को रुलावे  
अर्थात् दुखी करे, अथवा अत्यन्त क्रूर आत्माका जो कर्म (आत्म-  
परिणामरूप क्रियाविशेष) उसको ‘रौद्रध्यान’ कहते हैं, जैसे कहा  
है—‘जिससे छेदन-भेदन-दहन-मारण-बन्धन-प्रहरण-दमन-कर्तन

सयोग अने अनिष्टना वियोगनु चिन्तन करवु, जेमडे-जेमा मोहवश राज्यना उपभोग  
शय्या, आसन, हाथी, घोडा आदि वाहन, स्त्री, गन्ध, माला, मणि, रत्न, भूषण  
वगेरेनी भ्रष्टा उत्पन्न थाय ते अने अे अर्वाथी विपरीत सयोगानी अनिच्छा  
करनी ते आर्त्तध्यान कडेवाय छे

(२) उपघात-वगेरे परिष्णामेथी एवने रडावे अर्थात्-दुखी करे, अथवा  
अत्यन्त क्रूर आत्मानुं जे कर्म (आत्मपरिष्णामरूप क्रियाविशेष) तेने  
‘रौद्रध्यान’ कडे छे जेम कलु छे डे जेना द्वारा छेदन, भेदन, दहन, मारण, णधन,  
प्रहरण, दमन, कर्तन (कापवु) वगेरेना कारणुथी राग-द्वेषने उदय थाय अने इया



एव । 'पडिकमामि' प्रतिक्रामामि, 'चञ्चि' चतुर्भिः, 'ज्ञाणेर्हि' ध्यातिः= ध्यान निर्गतस्थानस्थितनिश्चलप्रदीपशिखावत् स्थिरतर-धारावाहिकज्ञानविच्छेदक-विषयान्तरसञ्चारानन्तरितकमात्रार्थचिन्तनरूपचित्तैकाग्रतास्वरूप, यदुक्तम्—

‘अतोमुहुत्तमित्त, चित्तावत्याणमेगवत्युम्भि ।

छउमस्त्राण ज्ञाण, जोगणिरोहो जिणाण ति’ इति ।

तैः, तद्द्वारा यो मयाऽतिचारः कृतः, इत्याद्यन्वयः प्राग्वत् । क्रमेण भेद चतुष्टयमेवाह—‘अष्ट्रेण ज्ञाणेण’ आर्त्तेन ध्यानेन, अर्त्तिः=मनोव्यथा, तस्या तथा सह वा भवमिति, अथवा ऋतिः=अशुभ तथा सह भवमार्त्तं तेन ध्यानेन मनोज्ञामनोज्ञवस्तुसयोगधियोगजनितचित्तोदकलक्षणनेत्यर्थः, तदुक्तमितरत्रापि—

पवन रहित स्थानमें रखे हुए निश्चल दीपकी शिखाके समान अत्यंत स्थिर-धारावाही ज्ञानका विच्छेद करनेवाले अन्य पदार्थों के सबन्ध से रहित एक मात्र वस्तु के न्तन को ध्यान कहते हैं, जैसा कि कहा है—‘छद्मस्थों के एक वस्तु में अन्तर्मुहूर्त मात्र मनका अवस्थान ‘ध्यान’ कहलाता है, किन्तु जिन भगवान के मन का अभाव होने के कारण योगनिरोध ही होता है, अवस्थान नहीं’ । वह ध्यान आर्त्त (१) रौद्र (२) धर्म्य (३) और शुक्ल (४) भेद से चार प्रकार का है, उनमें से (१) आर्त्तध्यान उसे कहते हैं जो अर्त्ति-मन की व्यथा के साथ, अथवा ऋति-अशुभ के साथ होने वाला हो, अर्थात् इष्ट शब्दादि के सयोग और अनिष्ट के वियोग का चिन्तन करना । जैसा कि लिखा है ‘जिसमें

निर्वात ( जया पवन आपी शके नडि तेवा ) स्थणे राणेला निश्चल दीपक-दीवानी शिषा समान अत्यंत स्थिर धारावाही ज्ञानको विच्छेद करवावाला अन्य पदार्थोना सण धयी रहित ओक मात्र वस्तुना चिन्तनने ‘ध्यान’ कडे छे

कह्ये छे के ‘छद्मस्थने’ ओक वस्तुमा अन्तर्मुहूर्त मात्र मननु अवस्थान रहे छे तेने ध्यान कडे छे ते ध्यान (१) आर्त्त, (२) रौद्र, (३) धर्म्य, (४) शुक्ल ओक थी आर प्रकारनु छे तेमा (१) आर्त्तध्यान तेने कडे छे के —ने अर्त्ति-मननी पीडानी साथे अथवा ऋति-अशुभनी साथे यनाइ डोय, अर्थात् इष्ट शब्दादिने।

१-ऋतिः—अशुभमिति शब्दकल्पद्रुम. ।

‘राज्योपभोगशयनाऽऽसनवाहनेषु,  
स्त्रीगन्धमाल्यमणिरत्नविभूषणेषु ।

यत्राभिलापमतिमात्रमुपैति मोहाद्

ध्यान तदार्तमिति सप्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥१॥’ इति

‘रुद्देण ज्ञापेण’ रौद्रेण ध्यानेन, रोदयति=अन्तर्भावितण्यर्थत्वात् सह-  
भोषघातादिपरिणामयुक्तो जीवो व्यथयति पराननेनेति रुद्रः, यद्वा रुद्र इव  
चण्डत्वादरुद्रस्तस्य कर्म रौद्र, तेन ध्यानेन हिंसाप्रतिक्रौर्यभावोपहतेनेत्यर्थः,  
एतच्चोक्तम्—

‘सच्छेदनैर्दहन-भञ्जन-मारणश्चै,

बन्ध-प्रहार-दमनैर्विनिकृन्तनैश्च

रागोदयो भवति येन न चानुकम्पा,

ध्यान तु रौद्रमिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥२॥’ इति ।

मोहवश राज्य के उपभोग, शय्या, आसन, हाथी, घोड़े आदि  
वाहन, स्त्री, गन्ध, माला, मणि, रत्न, भूषण आदि की इच्छा  
उत्पन्न हो उसे और इससे विपरीत सयोगों की अनिच्छा करना  
‘आर्त्तध्यान है’ ।

(२) उपघात आदि परिणामों से जो जीव को रुलावे  
अर्थात् दुखी करे, अथवा अत्यन्त क्रूर आत्माका जो कर्म (आत्म-  
परिणामरूप क्रियाविशेष) उसको ‘रौद्रध्यान’ कहते हैं, जैसे कहा  
है—‘जिससे छेदन-भेदन-दहन-मारण-बन्धन-प्रहरण-दमन-कर्तन

स योऽग आने अनिष्टना वियोगानुं यि-तन कश्चु, नेभके-नेभा मोक्षयश्च राक्ष्यना उपलोग  
शय्या, आसन, हाथी, घोडा आदि वाहन, स्त्री, गन्ध, माला, मणि, रत्न, भूषण  
वगेरेनी धग्छा उत्पन्न थाय ते आने अे सर्वथी विपरीत सयोगोनी अनिष्टा  
करपी ते आर्त्तध्यान कडेवाय छे

(२) उपघात-वगेरे परिष्ठाभोथी लुवने रडावे अर्थात्-दु भी करे, अथवा  
अत्यत क्रूर आत्मानुं ने कर्म (आत्मपरिष्ठाभरूप क्रियाविशेष) तेने  
‘रौद्रध्यान’ कडे छे नेभ कछु छे के नेना द्वारा छेदन, लेहन, दहन, मारण, पधन,  
प्रहरण, दमन, कर्तन (कापण) वगेरेना कारणथी राग-द्वेषना उदय थाय आने इया

‘धर्म्येण ज्ञानेण’ धर्म्येण ध्यानेन धर्मः=श्रुतचारिब्रह्मज्ञानस्तस्मादनपेत=तद्युक्त धर्म्ये, तेन ध्यानेन वीतरागाऽऽज्ञाऽऽनुचिन्तनेनेत्यर्थः । एतदप्युक्तम्-

‘सूत्रार्थसाधनमहाव्रतधारणेषु,

बन्धमोक्षगमनागमहेतुचिन्ता ।

पञ्चेन्द्रियव्युपरमश्च दया च भूते,

ध्यानं तु धर्म्यमिति सप्रचदन्ति तज्ज्ञाः ॥३॥’ इति ।

‘सुक्रेण ज्ञानेण’ शुक्रेण ध्यानेन, शुक्रेण=आर्चरीद्रोक्तदोषराहित्येन निष्कलङ्कतया स्वच्छम्, यद्वा शु=शुच=ज्ञानावरणीयादिकर्ममल क्ल=क्लमयति=अपनयतीति शुक्ल तेन ध्यानेन, दोषमलापगमाच्छुचिस्वरूपेणेत्यर्थः । इदमप्युक्तम्-

‘यस्येन्द्रियाणि विषयेषु पराद्भुत्वानि,

सकल्पकल्पनविकल्पविकारदोषः ।

(काटना) आदि के कारण रागद्वेषका उदय हो और दया न हो- ऐसे आत्मपरिणाम को ‘रौद्रध्यान’ कहते हैं ॥

(३) वीतराग की आज्ञारूप धर्म से युक्त ध्यान को ‘धर्म्यध्यान’ कहते हैं, कहा भी है—‘आगम के पठन, व्रतधारण, बन्धमोक्षादि के चिन्तन, इन्द्रियदमन तथा प्राणियों पर दया करने को ‘धर्म्यध्यान’ कहते हैं ॥

(४) शुक्ल अर्थात् सकल दोषों से रहित होने के कारण निर्मल, अथवा शु-ज्ञानावरणीयादि कर्ममल को क्ल-दूर रनेवाले ध्यान को ‘शुक्लध्यान’ कहते हैं, जैसा कि कहा है ‘जिसकी

न भाव आवा आत्मपरिष्ठाभने ‘रौद्रध्यान’ कहे छे

(३) वीतरागनी आज्ञा इप धर्मयुक्त ध्यानने ‘धर्म्यध्यान’ कहे छे कहु छे के—आगमने स्वाध्याय, व्रतधारण, षड-भोक्षादिनु चिन्तन, इन्द्रियदमन तथा प्राणियों पर दया करवी तेने धर्म्यध्यान कहे छे

(४) शुक्ल अर्थात् सकल दोषोधी रहित होवाना कारणे- निर्मल अथवा शु-ज्ञानावरणीय आदि कर्ममलने क्ल-दूर करनार ध्यानने शुक्लध्यान कहे छे लेभ कहु छे के—नेनी इन्द्रियो विषयवासनारहित होय, सकल्प-विकल्प-दोष-

१- ‘धर्म्यम्’-‘धर्मपध्यर्थन्यायादनपेते’ (४।४।९२) इति यत् ।

योगैस्तथा त्रिभिरहो ? निभृतान्तरात्मा,

ध्यान तु शुक्लमिदमस्य समादिशन्ति ॥४॥' इति ।

सक्षिप्यपा स्वरूपाण्युक्तानि यथा—

'कामाणुरजिय अट्ट, रोद्द हिंसाणुरजिय ।

धम्माणुरजिय धम्म, सुक्कञ्जाण निरजण ॥१॥' इति ॥ सू० ७ ॥

॥ मूलम् ॥

पडिक्कमामि पंचहि किरियाहि—काइयाए, अहिगरणियाए, पाउसियाए, परितावणियाए, पाणाइवायकिरियाए । पडिक्कमामि पंचहि कामगुणेहि—सद्देण, रूवेणं, भग्गेण, रसेण, फासेण । पडिक्कमामि पंचहिं महव्वएहिं—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमण, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण, सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमण, सव्वाओ मेहुणाओ वेरमण, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमण । पडिक्कमामि पंचहि समिईहि—इरियासमिईए, भासासमिईए, एसणासमिईए, आयाणभडमत्तनिक्खेवणासमिईए, उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघा-

इन्द्रियाँ विषयवासना रहित हो, सकल्पविकल्पादिदोषयुक्त जो तीन योग उनसे रहित उस महापुरुष के ध्यान को 'शुक्ल ध्यान' कहते हैं । सक्षेप से चारों का स्वरूप इस प्रकार है—'किसी वस्तुकी कामना से युक्तको आर्त, हिंसादि से युक्त को रौद्र, धर्म से युक्त को धर्म्य और सब प्रकार के दोषों से रहित को शुक्लध्यान कहते हैं' ॥ इन चार ध्यानों के निमित्त से जो अतिचार लगा हो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ सू० ७ ॥

युक्त ने त्रय योग तेनाथी रहित जेवा महापुरुषना ध्यानने 'शुक्लध्यान' कडे छे सक्षेपथी आरे ध्याननु स्वरूप आ प्रभावे छे "कौण वस्तुनी कामनाथी युक्तने आर्त, हिंसादिथी युक्तने रौद्र, धर्मथी युक्तने धर्म्य अने सर्व प्रकारना दोष रहितने शुक्लध्यान कडे छे आ आर ध्यानाना निमित्तथी ने कौण अतिचार लाग्या डोय तो तेनाथी हुँ निवृत्त थाउं छु (सू० ७)

१- कामानुरजितमार्त रौद्र हिंसानुरजितम् ।

धर्मानुरजित धर्म्य, शुक्लध्यान निरञ्जनम् ॥ १ ॥

‘धर्मेण ज्ञाणेण’ धर्म्येण ध्यानेन धर्मः=श्रुतचारित्ररक्षणस्तस्मादनपेत=तद्युक्त ‘धर्म्ये, तेन ध्यानेन वीतरागाऽऽज्ञाऽनुचिन्तनेनेत्यर्थः। एतदप्युक्तम्-

‘सूत्रार्थसाधनमहाव्रतधारणेषु,

बन्धप्रमोक्षगमनागमहेतुचिन्ता ।

पञ्चेन्द्रियव्युपरमश्च दया च भूते,

ध्यान तु धर्म्यमिति समवदन्ति तज्ज्ञाः ॥३॥’ इति ।

‘सुक्रेण ज्ञाणेण’ शुक्लेन ध्यानेन, शुरुम्=आर्चरीद्रोक्तदोषराहित्येन निष्कलङ्कतया स्वच्छम्, यद्वा शु=शुच=ज्ञानावरणीयादिकर्ममल क्ल=क्लमयति=अपनयतीति शुक्ल तेन ध्यानेन, दोषमलापगमाच्छुचिस्वरूपेणेत्यर्थः। इदमप्युक्तम्-

‘यस्येन्द्रियाणि विषयेषु पराद्मुखानि,

सकल्पकल्पनविकल्पविकारदोषः ।

(काटना): आदि के कारण रागद्वेषका उदय हो और दया न हो- ऐसे आत्मपरिणाम को ‘रौद्रध्यान’ कहते हैं’ ॥

(३) वीतराग की आज्ञारूप धर्म से युक्त ध्यान को ‘धर्म्यध्यान’ कहते हैं, कहाभी है—‘आगम के पठन, व्रतधारण, बन्धमोक्षादि के चिन्तन, इन्द्रियदमन तथा प्राणियों पर दया करने को ‘धर्म्यध्यान’ कहते हैं ॥

(४) शुक्ल अर्थात् सकल दोषों से रहित होने के कारण निर्मल, अथवा शु-ज्ञानावरणीयादि कर्ममल को क्ल-दूर रनेवाले ध्यान को ‘शुक्ल ध्यान’ कहते हैं, जैसा कि कहा है ‘जिसकी

न भाय आवा आत्मपरिष्ठाभने ‘रौद्रध्यान’ कहे छे

(३) वीतरागनी आज्ञा रूप धर्मयुक्त ध्यानने ‘धर्म्यध्यान’ कहे छे कहु छे के—आगमने स्वाध्याय, व्रतधारण, गध-मोक्षादिनु चिन्तन, इन्द्रियदमन तथा प्राणीयो पर दया करवी तेने धर्म्यध्यान कहे छे

(४) शुक्ल अर्थात् सकल दोषोथी रहित होवाना कारणे निर्मल अथवा शु-ज्ञानावरणीय आदि कर्ममलने क्ल-दूर करनार ध्यानने शुक्लध्यान कहे छे नेम कहु छे के-नेनी इन्द्रियो विषयवासनारहित होय, सकल्प-विकल्प-दोष-

१-‘धर्म्यम्’-‘धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते’ (४।४।९२) इति यत् ।

व्यापार', इय त्रिविधा-अविरतकायिकी, दुष्प्रणिहितकायिकी, उपरतकायिकी चेति, तत्राविरताना=त्रतरहिताना सम्यग्दृष्टीना मिथ्यादृष्टीना च कर्मबन्धनहेतुभूता उत्क्षेपादिस्वरूपा प्रथमा, द्वितीया द्विविधा-इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी नोइन्द्रिय-दुष्प्रणिहितकायिकी च, इय द्विविधाऽपि प्रमत्तसयताना क्रियोच्यते, तत्र इन्द्रियैः=चक्षुःश्रोत्रादिभिः दुष्प्रणिहितस्य=ऽष्टानिष्टविषयसमाप्तौ किञ्चिन्मोक्ष-मार्गं प्रति दुर्व्यवस्थितस्य कायेन निर्वृत्ताऽऽया, नोइन्द्रियेण मनसा दुष्प्रणिहित-स्याऽशुभसफलपेन दुर्व्यवस्थितस्य कायेन निर्वृत्ताऽपरा । उपरतस्य=प्रायः सावद्य-योगनिवृत्तस्याऽप्रमत्तसयतस्य कायेन निर्वृत्ता-उपरतकायिकी तृतीया, तथा

(२) दुष्प्रणिहितकायिकी (३) उपरतकायिकी । मिथ्यादृष्टियों और अविरतसम्यग्दृष्टियों की कर्मबन्धन के हेतुभूत क्रिया को 'अविरतकायिकी' कहते हैं । दुष्प्रणिहितकायिकी क्रिया दो प्रकारकी है-(१) इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, (२) नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, ये दोनों क्रियाएँ प्रमत्त साधुओं की हैं । उनमें चक्षु आदि इन्द्रियों की चपलता के कारण मोक्षमार्ग के प्रति अव्यवस्थित (अस्थिर) के काय से होनेवाली क्रिया को 'इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी' कहते हैं, ऐसे ही नोइन्द्रिय (मन) के अशुभ सकल्प के द्वारा अव्यवस्थित के काय से होनेवाली क्रिया को 'नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी' कहते हैं । प्रायः सावद्य योग से निवृत्त अप्रमत्त सयत के काय से होनेवाली क्रिया को 'उपरतकायिकी' कहते हैं । (१)

छे (१) अविरतकायिकी, (२) दुष्प्रणिहितकायिकी, (३) उपरतकायिकी मिथ्या-दृष्टियों आने अविरतसम्यग्दृष्टियोंकी कर्मबन्धननी हेतुभूत क्रियाओंने "अविरतकायिकी" छडे छे दुष्प्रणिहितकायिकी क्रिया जे प्रमत्तनी छे (१) इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, (२) नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, आ गन्ने क्रियाओं प्रमत्त साधुओंकी छे तेमा अशु आदि इन्द्रियोंकी चपलताने कारणे मोक्ष-मार्गमा अस्थिर कायावी यवा वाणी क्रियाओं इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी छडेवाय छे ओ प्रमाहे नोइन्द्रिय (मन) ना अशुभ सकल्प द्वारा अस्थिर कायावी यवावाणी क्रियाओंने नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी क्रिया छडे छे प्राय-धनु करीने सावद्य योगथी निवृत्त अप्रमत्त सयतनीनी ज्या वडे ववावाणी क्रियाओंने 'उपरत कायिकी' क्रिया छडे छे ॥ १ ॥

णपारिठावणियासमिर्इए । पडिक्कमामि छहिं जीवनिकाएहिं-  
पुढविकाएणं, आउकाएण, तेउकाएण, वाउकाएण, वणस्सइ-  
काएणं, तसकाएण । पडिक्कमामि छहिं लेसाहिं-किण्हलेसाए,  
नीललेसाए, काउलेसाए, तेउलेसाए, पउमलेसाए, सुक्कलेसाए  
॥ सू० ८ ॥

॥ छाया ॥

प्रतिक्रामामि पञ्चभिः क्रियाभिः—कायिक्या, आधिकरणिक्या, प्राद्वे-  
पिक्या, पारितापनिक्या, प्राणातिपातक्रियया । प्रतिक्रामामि पञ्चभिः काम-  
गुणैः—शब्देन, रूपेण, गन्धेन, रसेन, स्पर्शेन । प्रतिक्रामामि पञ्चभिर्महाव्रतैः—  
प्राणातिपाताद्विरमणेन, मृपावादाद्विरमणेन, अदत्तादानाद्विरमणेन, मैयुनाद्विर-  
मणेन, परिग्रहाद्विरमणेन । प्रतिक्रामामि पञ्चभिः समितिभिः—ईर्यासमित्या,  
भापासमित्या, एपणासमित्या, भाण्डमात्रादाननिक्षेपणासमित्या, उच्चारणप्रस्त्रवण-  
खेलजल्लसिंघाणपारिष्ठापनिकासमित्या । प्रतिक्रामामि पड्भिर्जीवनिकायैः—  
पृथ्वीकायेन, अप्कायेन, तेजस्कायेन, वायुकायेन, वनस्पतिकायेन, त्रसकायेन ।  
प्रतिक्रामामि पड्भिर्लेश्याभिः—कृष्णलेश्याया, नीललेश्याया, कापोतलेश्याया, तेजो-  
लेश्याया, पद्मलेश्याया, शुक्ललेश्याया ॥ सू० ८ ॥

॥ टीका ॥

‘पडिक्कमामि’ प्रतिक्रामामि, ‘पचहिं’ पञ्चभिः, ‘किरियाहिं’  
क्रिया=करण व्यापारस्तेन तद्द्वारेत्यर्थः, बहुवचन, ‘यो मयाऽतिचारः कृत इत्पादि-  
सम्बन्ध प्राग्वत्, क्रियापञ्चरुमेवाह—‘काइ०’ इति ‘काइयाए’ चीयन्ते=एक-  
त्रीभवन्ति अस्मिन्नस्थ्यादय इति कायः=शरीर तेन निर्वृत्ता क्रिया कायिकी=शरीर-

क्रिया पाच प्रकारकी है—(१) कायिकी (२) आधिकरणिकी,  
(३) प्राद्वेषिकी, (४) पारितापनिकी (५) प्राणातिपातकी । जिसमें  
अस्थि आदि हो उसे काय कहते हैं । उससे होनेवाली क्रिया को  
‘कायिकी’ कहते हैं, वह तीन प्रकारकी है—(१) अविरतकायिकी,

द्वितीया पाच प्रकारकी छे (१) कायिकी, (२) आधिकरणिकी, (३) प्राद्वेषिकी,  
(४) पारितापनिकी, (५) प्राणातिपातकी जेभा अस्थि-हड्डका वगैरे होथ तेने काय  
कहे छे अने तेना वडे थवा पाणी द्वियाने “ कायिकी ” कहे छे ते त्रय प्रकारकी

व्यापारः, इय त्रिविधा-अविरतकायिकी, दुष्प्रणिहितकायिकी, उपरतकायिकी चेति, तत्राविरताना=उतरहिताना सम्यग्दृष्टीना मिथ्यादृष्टीना च कर्मबन्धनहेतुभूता उत्क्षेपादिस्वरूपा प्रथमा, द्वितीया द्विविधा-इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी नोइन्द्रिय-दुष्प्रणिहितकायिकी च, इय द्विविधाऽपि प्रमत्तसयताना क्रियोच्यते, तत्र इन्द्रियैः=चक्षुःश्रोत्रादिभिः दुष्प्रणिहितस्य=इष्टानिष्टविषयसमाप्तौ किञ्चिन्मोक्ष-मार्गं प्रति दुर्व्यवस्थितस्य कायेन निर्वृत्ताऽऽया, नोइन्द्रियेण मनसा दुष्प्रणिहित-स्याऽशुभसकल्पेन दुर्व्यवस्थितस्य कायेन निर्वृत्ताऽपरा । उपरतस्य=प्रायः सावय-योगनिवृत्तस्याऽप्रमत्तसयतस्य कायेन निर्वृत्ता-उपरतिकायिकी तृतीया, तथा

(२) दुष्प्रणिहितकायिकी (३) उपरतकायिकी । मिथ्यादृष्टियों और अविरतसम्यग्दृष्टियों की कर्मबन्धन के हेतुभूत क्रिया को 'अविरतकायिकी' कहते हैं । दुष्प्रणिहितकायिकी क्रिया दो प्रकारकी है-(१) इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, (२) नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, ये दोनों क्रियाएँ प्रमत्त साधुओं की हैं । उनमें चक्षु आदि इन्द्रियों की चपलता के कारण मोक्षमार्ग के प्रति अव्यवस्थित (अस्थिर) के काय से होनेवाली क्रिया को 'इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी' कहते हैं, ऐसे ही नोइन्द्रिय (मन) के अशुभ सकल्प के द्वारा अव्यवस्थित के काय से होनेवाली क्रिया को 'नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी' कहते हैं । प्रायः सावय योग से निवृत्त अप्रमत्त सयत के काय से होनेवाली क्रिया को 'उपरतकायिकी' कहते हैं । (१)

छे (१) अविरतकायिकी, (२) दुष्प्रणिहितकायिकी, (३) उपरतकायिकी मिथ्या-दृष्टियों और अविरतसम्यग्दृष्टियोंकी कर्मबन्धनकी हेतुभूत क्रियाओंके "अविरतकायिकी" कहे छे दुष्प्रणिहितकायिकी क्रिया के प्रकारकी छे (१) इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, (२) नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी, आ गन्ने क्रियाओंके प्रमत्त साधुओंकी छे तेमा चक्षु आदि इन्द्रियोंकी चपलताने कारणे मोक्ष-मार्गमा अस्थिर कायाधी यवा वाणी क्रियाओंके इन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी कहेवाय छे ओ प्रभावे नोइन्द्रिय (मन) ना अशुभ सकल्प द्वारा अस्थिर कायाधी यवावाणी क्रियाओंके नोइन्द्रियदुष्प्रणिहितकायिकी क्रिया कहे छे प्राय-वशु करीने सावय योगशी निवृत्त अप्रमत्त सयतीनी कथा वडे यवावाणी क्रियाओंके 'उपरत कायिकी' क्रिया कहे छे ॥ १ ॥



त्रिविधस्वरूपया, 'अहिगरणियाए' अधिक्रियते=समाश्रियते=प्राप्यते नरकादि कुगती जीवोऽनेनेत्यधिकरण=खड्गादि, तत्र भवाऽऽधिकरणिकी, इय द्विविधा-सयोजनाधिकरणिकी निर्वर्तनाधिकरणिकी चेति, यस्या खड्गतत्कोपादिकयोः सयोजन क्रियते सा सयोजनाधिकरणिकी, यस्या च खड्गतोमरादीनामादितो निर्वर्तन-निष्पादन सा निर्वर्तनाधिकरणिकी तथा, 'पाउसियाए' मद्देषः=मत्सरस्तत्र भवा प्राद्वेषिकी तथा, एषा द्विविधा-जीवप्राद्वेषिकी अजीवप्राद्वेषिकी च, तत्राऽऽथा-जीवप्राद्वेषेण निर्वृत्ता, द्वितीया चाऽजीवप्राद्वेषेण=पाषाणादिस्खलनादिना यो द्वेष-

जिसके द्वारा आत्मा नरकादि कुगति में जावे, ऐसे खड्गादि से होनेवाली क्रियाको 'आधिकरणिकी' क्रिया कहते हैं। वह दो प्रकार की है—(१) सयोजनाधिकरणिकी और (२) निर्वर्तनाधिकरणिकी, जिसमें खड्ग आदि का कोष (म्यान) आदि के साथ सयोग किया जाय वह 'सयोजनाधिकरणिकी' है, और जिस (क्रिया) में खड्ग आदि बनाये जायँ उसे 'निर्वर्तनाधिकरणिकी' क्रिया कहते हैं ॥ २ ॥

द्वेष से युक्त क्रिया को 'प्राद्वेषिकी' क्रिया कहते हैं, वह दो प्रकारकी है—(१) जीवप्राद्वेषिकी और (२) अजीवप्राद्वेषिकी। जीव पर द्वेष करने से होनेवाली क्रिया को 'जीवप्राद्वेषिकी' और अजीव पाषाणादि की ठोकर आदि लगने के कारण उस पर द्वेष करने से होनेवाली क्रिया को 'अजीवप्राद्वेषिकी' क्रिया कहते हैं ॥ ३ ॥

जेना वडे आत्मा नरकादि कुगतिमा गय, जेवी तलवार आदि शस्त्रथी थवावाणी क्रियाज्जेने 'आधिकरणिकी' क्रिया कडे छे, ते जे प्रकारनी छे (१) सयोजनाधिकरणिकी (२) अने 'निर्वर्तनाधिकरणिकी' जेमा तलवार आदिने कोष (म्यान) आदि साथे सयोग करवाभा आवे ते 'सयोजनाधिकरणिकी' छे अने जे क्रियामा तलवार आदि बनाववाभा आवे तेने 'निर्वर्तनाधिकरणिकी' कडे छे

द्वेषयुक्त क्रियाने 'प्राद्वेषिकी' क्रिया कडे छे ते जे प्रकारनी छे (१) जीव प्राद्वेषिकी अने (२) अजीवप्राद्वेषिकी, जीवपर द्वेष करवाथी थवा वाणी क्रियाने 'जीवप्राद्वेषिकी' क्रिया कडे छे अने अजीव-पाषाण आदिनी ठोकर लागवाना कारणे तेना उपर द्वेष करवाथी थवा वाणी क्रियाने 'अजीवप्राद्वेषिकी' क्रिया कडे छे ॥३॥

स्तेन निर्वृत्ता, 'पारितात्रणियाए' परितापन= दुःख तेन निर्वृत्ता तत्र भवा वा पारितापनिकी=खड्गाद्याघातेन पीडाकरण तथा, इयमपि द्विविधा स्वहस्तपारितापनिकी परहस्तपारितापनिकी च, स्वहस्तेन स्वपरदेहस्य दुःखमुत्पादयतः प्रथमा, परहस्तेन तथा कारयतो द्वितीया, 'प्राणाइवायकिरियाए' प्राणाः सन्त्येपामिति प्राणाः=प्राणिनःतेपामतिपातो=नाशः प्राणातिपातः स एव क्रिया प्राणातिपातक्रिया तथा, एपापि द्विविधा-स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया परहस्तप्राणातिपातक्रिया च, इहापि प्राणपदेन प्राणिनो ग्रहण प्राग्वत्, तत्र स्वहस्तेन प्राणातिपात कुर्वतः

खड्ग आदि के द्वारा पीडा पहुँचाने को 'पारितापनिकी' क्रिया कहते हैं, उसके दो भेद है-(१) स्वहस्तपारितापनिकी, और (२) परहस्तपारितापनिकी। अपने हाथ से परको दुःख पहुँचाने वाली क्रिया को 'स्वहस्तपारितापनिकी' और अन्य द्वारा दूसरे को दुःख पहुँचाने वाली क्रिया को 'परहस्तपारितापनिकी' क्रिया कहते हैं ॥४॥

प्राणियों का नाश करने को 'प्राणातिपात' क्रिया कहते हैं। यह भी दो प्रकार की है-(१) स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया, और (२) परहस्तप्राणातिपातक्रिया। अपने हाथ से प्राणियों का नाश करने को 'स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया,' और पराये हाथ से प्राणियों का नाश करने को 'परहस्तप्राणातिपातक्रिया' कहते हैं ॥५॥

तलवार आदि हथियार वडे पीडा पडोयाडवी तेने "पारितापनिकी क्रिया" कडे छे, तेना जे खेद छे (१) 'स्वहस्तपारितापनिकी' अने (२) 'परहस्तपारितापनिकी' चेताना हाथ वडे परने हुअ पडोयाडवा वाणी क्रियाने 'स्वहस्तपारितापनिकी' क्रिया कडे छे अने अन्य द्वारा भीजने हुअ पडोयाडवु ते क्रियाने 'परहस्तपारितापनिकी' क्रिया कडे छे ॥ ४ ॥

प्राणीओना नाशने 'प्राणातिपात' क्रिया कडे छे तेना पद्य जे खेद छे, (१) स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया अने (२) परहस्तप्राणातिपातक्रिया, चेताना हाथ वडे प्राणीओना नाश करवे तेने 'स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया' कडे छे अने भीजना हाथथी प्राणीओना नाश थाय तेवी क्रियाने 'परहस्तप्राणातिपात क्रिया कडे छे ॥ ५ ॥

ત્રિવિધસ્વરૂપયા, 'અદિગરણિયા' અધિક્રિયતે=સમાશ્રીયતે=પ્રાપ્યતે નરકાદિ કુગતી જીવોને નેત્યધિકરણ=સ્વદ્ગાદિ, તત્ર ભવાઽઽધિકરણિકી, ડય દ્વિવિધા-સયોજનાધિકરણિકી નિર્વર્તનાધિકરણિકી ચેતિ, યસ્યા સ્વદ્ગતસ્કોપાદિકયોઃ સયોજનક્રિયતે સા સયોજનાધિકરણિકી, યસ્યા ચ સ્વદ્ગતોમરાદીનામાદિતો નિર્વર્તન-નિષ્પાદન સા નિર્વર્તનાધિકરણિકી તયા, 'પાડસિયા' પ્રદ્વેપઃ=મત્સરસ્તત્ર ભવા પ્રાદ્વેષિકી તયા, ઇપા દ્વિવિધા-જીવપ્રાદ્વેષિકી અજીવપ્રાદ્વેષિકી ચ, તત્રાઽઽયા-જીવપ્રદ્વેષેણ નિર્વૃત્તા, દ્વિતીયા ચાઽજીવપ્રદ્વેષેણ=પાપાણાદિસ્વલ્લનાદિના યો દ્વેષ-

જિસકે દ્વારા આત્મા નરકાદિ કુગતિ મેં જાવે, એસે સ્વદ્ગાદિ સે હોનેવાલી ક્રિયાકો 'આધિકરણિકી' ક્રિયા કરતે હૈં । વહ દો પ્રકાર કી હૈ—(૧) સયોજનાધિકરણિકી ઓર (૨) નિર્વર્તનાધિકરણિકી, જિસમેં સ્વદ્ગ આદિ કા કોષ (મ્યાન) આદિ કે સાથ સયોગ ક્રિયા જાય વહ 'સયોજનાધિકરણિકી' હૈ, ઓર જિસ (ક્રિયા) મેં સ્વદ્ગ આદિ ઘનાયે જાયેં ઉસે 'નિર્વર્તનાધિકરણિકી' ક્રિયા કહતે હૈ ॥ ૨ ॥

દ્વેષ સે યુક્ત ક્રિયા કો 'પ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહતે હૈં, વહ દો પ્રકારકી હૈ—(૧) જીવપ્રાદ્વેષિકી ઓર (૨) અજીવપ્રાદ્વેષિકી । જીવ પર દ્વેષ કરને સે હોનેવાલી ક્રિયા કો 'જીવપ્રાદ્વેષિકી' ઓર અજીવ પાપાણાદિ કી ઠોકર આદિ લગને કે કારણ ઉસ પર દ્વેષ કરને સે હોનેવાલી ક્રિયા કો 'અજીવપ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહતે હૈં ॥ ૩ ॥

જેના વડે આત્મા નરકાદિ કુગતિમા જાય, એવી તલવાર આદિ શસ્ત્રથી થવાવાળી ક્રિયાએને 'આધિકરણિકી' ક્રિયા કહે છે, તે બે પ્રકારની છે (૧) સયોજનાધિકરણિકી (૨) અને 'નિર્વર્તનાધિકરણિકી' જેમા તલવાર આદિનો કોષ (મ્યાન) આદિ સાથે સયોગ કરવામા આવે તે 'સયોજનાધિકરણિકી' છે અને જે ક્રિયામા તલવાર આદિ બનાવવામા આવે તેને 'નિર્વર્તનાધિકરણિકી' કહે છે

દ્વેષયુક્ત ક્રિયાને 'પ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહે છે તે બે પ્રકારની છે (૧) જીવ પ્રાદ્વેષિકી અને (૨) અજીવ પ્રદ્વેષિકી, જીવ ઉપર દ્વેષ કરવાથી થવા વાળી ક્રિયાને 'જીવપ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહે છે અને અજીવ-પાપાણ્ય આદિની ઠોકર લાગવાના કારણે તેના ઉપર દ્વેષ કરવાથી થવા વાળી ક્રિયાને 'અજીવપ્રાદ્વેષિકી' ક્રિયા કહે છે ॥૩॥

स्तेन निर्वृत्ता, 'पारितात्रणियाए' परितापन= दुःख तेन निर्वृत्ता तत्र भवा वा पारितापनिकी=खड्गाद्याघातेन पीडाकरण तथा, इयमपि द्विविधा-स्वहस्तपारितापनिकी परहस्तपारितापनिकी च, स्वहस्तेन स्वपरदेहस्य दुःखमुत्पादयतः प्रथमा, परहस्तेन तथा कारयतो द्वितीया, 'प्राणाइत्रायक्रिरियाए' प्राणाः सन्त्येपामिति प्राणाः=प्राणिनःतेपामतिपातो=नाशः प्राणातिपातः स एव क्रिया प्राणातिपातक्रिया तथा, एपापि द्विविधा-स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया परहस्तप्राणातिपातक्रिया च, इहापि प्राणपदेन प्राणिनो ग्रहण प्राग्वत्, तत्र स्वहस्तेन प्राणातिपात कुर्वतः

खड्ग आदि के द्वारा पीडा पहुँचाने को 'पारितापनिकी' क्रिया कहते हैं, उसके दो भेद है-(१) स्वहस्तपारितापनिकी, और (२) परहस्तपारितापनिकी। अपने हाथ से परको दुःख पहुँचाने वाली क्रिया को 'स्वहस्तपारितापनिकी' और अन्य द्वारा दूसरे को दुःख पहुँचाने वाली क्रिया को 'परहस्तपारितापनिकी' क्रिया कहते हैं ॥४॥

प्राणियों का नाश करने को 'प्राणातिपात' क्रिया कहते हैं। यह भी दो प्रकार की है-(१) स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया, और (२) परहस्तप्राणातिपातक्रिया। अपने हाथ से प्राणियों का नाश करने को 'स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया,' और पराये हाथ से प्राणियों का नाश करने को 'परहस्तप्राणातिपातक्रिया' कहते हैं ॥५॥

तद्वार आदि दुधियार वडे पीडा पडोयाडवी तेने "पारितापनिकी क्रिया" कडे छे, तेना मे केड छे (१) 'स्वहस्तपारितापनिकी' अने (२) 'परहस्तपारितापनिकी' चेताना हाथ वडे परने दु थ पडोयाडवा वाणी क्रियाने 'स्वहस्तपारितापनिकी' क्रिया कडे छे अने अन्य द्वारा भीजने दु थ पडोयाडवु ते क्रियाने 'परहस्तपारितापनिकी' क्रिया कडे छे ॥ ४ ॥

प्राणीओना नाशने 'प्राणातिपात' क्रिया कडे छे तेना पद्य मे केड छे, (१) स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया अने (२) परहस्तप्राणातिपातक्रिया, चेताना हाथ वडे प्राणीओनो नाश करवे तेने 'स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया' कडे छे अने भीजने हाथथी प्राणीओनो नाश थाय तेवी क्रियाने 'परहस्तप्राणातिपात क्रिया कडे छे ॥ ५ ॥

ક્રિયા પ્રથમા, પરહસ્તેન સા દ્વિતીયા । ‘પઢિક્કમામિ, પ્રતિક્રામામિ ‘પર્ચિં’  
 પञ્ચમિઃ, ‘કામગુણેર્હિ’ કામ્યન્તે=ભોગાર્થિભિરભિલપ્યન્તે ઇતિ કામાઃ=શબ્દા  
 ઘાસ્તે ચ તે કામવૃદ્ધિકારણત્વાત્ ગુણા (પુદ્ગલધર્મા) ષ્ચ કામગુણાઃ, યદ્વા  
 કામસ્ય=કન્દર્પસ્યાઽભિલાપમાત્રસ્ય વા સમ્પાદકા ગુણાઃ કામગુણાસ્તૈર્નિષિદ્ધા  
 ષરણદ્વારેત્યર્થઃ ‘યો મયાઽતિચારઃ કૃત’ ઇત્યાદિસમ્બન્ધો ભૂતપૂર્વઃ, ‘કામ  
 ગુણપञ્ચકમેવાઽઽહ-‘સદ્દેણ’ ઇતિ ‘સદ્દેણ’ શબ્દયતે=ઉચ્ચાર્યત ઇતિ શબ્દઃ=કર્ણેન્દ્રિય  
 ગ્રાહ્યનિયતક્રમવર્ણસ્વરૂપસ્તેન, ‘રૂચેણ’ રૂપ્યતે=ત્રિલોચ્યતે ઇતિ રૂપ=ચક્ષુર્વિષય  
 નીલપીતાદિલક્ષણ તેન, ‘ગદ્દેણ’ ગન્ધ્યતે=આઘ્રાયત ઇતિ ગન્ધઃ=ગ્રાણેન્દ્રિય  
 વિષયશ્ચન્દનકર્પૂરાદિસ્તેન, ‘રસેણ’ રસ્યતે=આસ્વાત્રત ઇતિ રસ=રસનેન્દ્રિય-  
 વિષયો મધુરાદિસ્તેન, ‘ફાસેણ’ સ્પૃશ્યતે=હ્યુપ્યત ઇતિ સ્પર્શઃ=ત્વગિન્દ્રિયવિષયઃ

इन क्रियाओं के द्वारा मुझ से जो अतिचार किया गया हो  
 उसकी मैं निवृत्ति करता हूँ ।

શબ્દ-જો ઘોલા જાય उस કો શબ્દ કહતે હૈ, વહ કર્ણેન્દ્રિય-  
 ગ્રાહ્ય મનોજ્ઞ-અમનોજ્ઞ વર્ણમાલાસ્વરૂપ હૈ । રૂપ-જો દેખા જાય  
 उसको रूप कहते है, वह चक्षु इन्द्रिय का विषय नील-पीतादि है ।  
 गन्ध-जो सूघा जाय उसको गन्ध कहते है, वह घ्राणेन्द्रिय का विषय  
 चन्दन कपूर आदि है । रस-जो चक्खा जाय उसको रस कहते हैं वह  
 रसना इन्द्रिय का विषय मधुर आदिक है । स्पर्श-जो स्पर्श किया जाय  
 (छुआ जाय) उस को स्पर्श कहते है, वह स्पर्श इन्द्रिय का विषय

આ ક્રિયાઓ વડે કરી મને જે અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેનાથી હું  
 નિવૃત્ત થાઉં છું

શબ્દ-જે ઘોલવામા આવે છે તેને શબ્દ કહે છે, તે કર્ણેન્દ્રિય ગ્રાહ્ય અને  
 મનોજ્ઞ અમનોજ્ઞ વર્ણમાલા સ્વરૂપ છે રૂપ-જે દેખવામા આવે તેને રૂપ કહે છે,  
 તે ચક્ષુ ઇન્દ્રિયના વિષય લીલા પીળા આદિ છે ગન્ધ-જે સુધવામા આવે તેને  
 ગન્ધ કહે છે, તે ઘ્રાણેન્દ્રિયના વિષય સૂખડ કપૂર આદિ છે રસ-જે ચાખવામા  
 આવે તેને રસ કહે છે, તે રસના ઇન્દ્રિયના વિષય મધુર આદિક છે સ્પર્શ-જેનો  
 સ્પર્શ કરવામા આવે તેને સ્પર્શ કહે છે તે સ્પર્શેન્દ્રિયના વિષય માલા, સૂખડ,

ટિં ૧- ‘હ્યુપ સ્પર્શે’ તુદાદિરનિદ્ પરસ્મૈપદી ।

સ્રક્ચન્દનાહ્નાદિસ્તેન । ‘પઢિક્કમામિ’ પ્રતિક્રામામિ ‘પચહિં’ । પચ્ચમિઃ, ‘મહવ્વર્ણિ’ વ્રત=શાસ્ત્રમર્યાદાનુસરણ, મહાન્તિ વિશાલાનિ ચ તાનિ વ્રતાનિ મહાવ્રતાનિ તૈઃ, મહચ્ચ ચૈવા મહદ્ધિસ્તીર્થકરગણધરાદિભિરાચરિતત્વેન મહા-પુરુષાઽઽચર્યમાણત્વેન સર્વવ્યાપકત્વેન શ્રાવકપ્રતાપેક્ષયા ચ ઘોચ્ય, તૈસ્તત્મહકૃત ઇતિ તાત્પર્યે ‘યો મયાઽતિચાર. કૃતઃ’ ઇત્યાદિસમ્બન્ધો યથાપૂર્વમ્, મહાવ્રત-પચ્ચક્રમેવાહ—‘સવ્વા૦’ ઇતિ । ‘સવ્વાઓ પાણાહ્વાયાઓ વેરમણ’ સર્વસ્માત્=નિશ્ચિલાત્=સ્થૂલસૂક્ષ્માદિયાવદ્વેદવિશિષ્ટાત્ કૃત-કારિતા-ઽનુમોદિતસ્વરૂપાચ્ચ, પ્રાણાઃ=ઉચ્છ્વાસનિઃશ્વાસાદયસ્તેપામત્તિપાતો=વિયોજન=હિંસનમિતિ યાવત્, ઉત્તચ-‘પચ્ચેન્દ્રિયાણિ ત્રિવિધ વલ ચ, ઉચ્છ્વાસનિઃશ્વાસમથાન્યદાયુઃ । પ્રાણા દશૈતે ભગવદ્ધિરુક્તા, -સ્તેપા વિયોગીકરણ તુ હિંસા’ ઇતિ, તસ્માદ્ધિરમણ=

માલા, ચન્દન, અગના આદિ હૈ । યે પાચ કામ (વિપય ભોગ કે અભિલાપ) ગુણ (વર્ધક) હૈ, અર્થાત્ યે આત્મા કે સ્વભાવિક ગુણોં કા નાશ કરને વાલે હૈ, ઇન કામગુણોં દ્વારા મુક્તિસે જો અતિચાર કિયા ગયા હો ઉસકી મૈં નિવૃત્તિ કરતા હ ।

શાસ્ત્રકી મર્યાદામેં ચલને કા નામ ‘વ્રત’ હૈ, ઇન્હેં તીર્થકર ગણધર આદિ મહાપુરુષોને સ્વીકાર કિયે અથવા યે મહા-પુરુષોં કે હી આચરણ કરને યોગ્ય હોને સે ઓર શ્રાવક કે વ્રતોં કી અપેક્ષા વઢે હોને કે કારણ ‘મહાવ્રત’ કહલાતે હૈ, વે પાચ હૈ—(૧) કૃત-કારિત-અનુમોદિત રૂપ સચ પ્રકાર સે સ્થૂલ-સૂક્ષ્મ આદિ સમસ્ત જીવોં કે પ્રાણોં (પાચ ઇન્દ્રિયાં, ત્રીન વલ, શ્વાસોચ્છ્વાસ

અગના આદિ છે આ પાચ કામ (વિપયભોગની અભિલાપા) ગુણ (વર્ધક) છે અર્થાત્ તે આત્માના સ્વાભાવિક ગુણોના નાશ કરવાવાળા છે તે કામ ગુણોથી મારાથી અતિચાર થયા હોય તો તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉ છું

શાસ્ત્રોની મર્યાદામા ચાલવાનું નામ ‘વ્રત’ છે આ વ્રતો તીર્થકર અને ગણધર આદિ મહાપુરુષોએ સ્વીકાર કરેલ છે, અથવા એ મહાપુરુષોનેજ આચરણ કરવા યોગ્ય હોવાથી અને શ્રાવકોના વ્રતોની અપેક્ષા મોટા હોવાથી ‘મહાવ્રત’ કહેવાય છે, તે પાચ પ્રકારના છે—(૧) કરણ, કરાવણ અને કરતા હોય તેને અનુ મોદન રૂપ સર્વ પ્રકારથી સ્થૂલ-સૂક્ષ્મ આદિ તમામ જીવોના પ્રાણો (પાચ ઇન્દ્રિયાં,

ક્રિયા પ્રથમા, પરહસ્તેન સા દ્વિતીયા । ‘પઠિકમમિ, પ્રતિક્રામમિ ‘પર્ચઈ’  
 પશ્ચમિઃ, ‘કામગુણેઈ’ કામ્યન્તે=મોર્ગાર્થિમિરમિલપ્યન્તે ઇતિ કામાઃ=શબ્દા-  
 ઘાસ્તે ચ તે કામગદ્ધિકારણત્વાત્ ગુણા (પુદ્ગલધર્મા) શ્ચ કામગુણાઃ, યદ્વા  
 કામસ્ય=કુન્દર્પસ્યાઽમિલાપમાત્રસ્ય વા સમ્પાદકા ગુણાઃ કામગુણાસ્તૈર્નિષિદ્ધા  
 ચરણદ્વારેત્યર્થઃ ‘યો મયાઽતિચારઃ કૃત’ ઇત્યાદિસમ્બન્ધો ભૂતપૂર્વઃ, ‘કામ  
 ગુણપશ્ચકમેવાઽઽહ-‘સદ્દેણ’ ઇતિ ‘સદ્દેણ’ શબ્દયતે=ઉચ્ચાર્યત ઇતિ શબ્દઃ=કર્ણેન્દ્રિય  
 ગ્રાહ્યનિયતક્રમવર્ણસ્વરૂપસ્તેન, ‘રૂવેણ’ રૂપ્યતે=વિલોપ્યતે ઇતિ રૂપ=ચક્ષુર્વિષય  
 નીલપીતાદિલક્ષણ તેન, ‘ગન્ધેણ’ ગન્ધ્યતે=આગ્રાયત ઇતિ ગન્ધઃ=ઘ્રાણેન્દ્રિય  
 વિષયશ્ચન્દનકપૂરાદિસ્તેન, ‘રસેણ’ રસ્યતે=આસ્વાગ્રત ઇતિ રસ=રસનેન્દ્રિય  
 વિષયો મધુરાદિસ્તેન, ‘ફાસેણ’ સ્પૃશ્યતે=હ્રુપ્યત ઇતિ સ્પર્શઃ=ત્વગિન્દ્રિયવિષયઃ

इन क्रियाओं के द्वारा मुझ से जो अतिचार किया गया हो  
 उसकी मैं निवृत्ति करता हूँ ।

શબ્દ-જો બોલા જાય उस કો શબ્દ કહતે હૈ, વહ કર્ણેન્દ્રિય-  
 ગ્રાહ્ય મનોજ્ઞ-અમનોજ્ઞ વર્ણમાલાસ્વરૂપ હૈ । રૂપ-જો દેખા જાય  
 उसको रूप कहते हॆ, वह चक्षु इन्द्रिय का विषय नील-पीतादि हॆ ।  
 ગન્ધ-જો સૂઘા જાય उसको गन्ध कहते हॆ, वह घ्राणेन्द्रिय का विषय  
 चन्दन कपूर आदि हॆ । रस-जो चक्वा जाय उसको रस कहते हॆ वह  
 रसना इन्द्रिय का विषय मधुर आदिक हॆ । स्पर्श-जो स्पर्श किया जाय  
 (ह्रुआ जाय) उस को स्पर्श कहते हॆ, वह स्पर्श इन्द्रिय का विषय

આ ક્રિયાઓ વડે કરી મને જે અતિચાર લાગ્યા હોય તેા તેનાથી હું  
 નિવૃત્ત થાઉં છું

શબ્દ-જે બોલવામા આવે છે તેને શબ્દ કહે છે, તે કર્ણેન્દ્રિય ગ્રાહ્ય અને  
 મનોજ્ઞ અમનોજ્ઞ વર્ણમાલા સ્વરૂપ છે રૂપ-જે જોવામા આવે તેને રૂપ કહે છે,  
 તે ચક્ષુ ઇન્દ્રિયના વિષય નીલા પીળા આદિ છે ગન્ધ-જે સૂઘવામા આવે તેને  
 ગન્ધ કહે છે, તે ઘ્રાણેન્દ્રિયના વિષય ચૂંબડ કપૂર આદિ છે રસ-જે ચાખવામા  
 આવે તેને રસ કહે છે, તે રસના ઇન્દ્રિયના વિષય મધુર આદિક છે સ્પર્શ-જેને  
 સ્પર્શ કરવામા આવે તેને સ્પર્શ કહે છે તે સ્પર્શેન્દ્રિયના વિષય માલા, સૂખડ,

सहाऽनयेति लेश्या, सा च कपायोदयलब्धशक्तिविशेषा योगप्रवृत्तिः, लेश्या द्रव्य-भावभेदाद्विविधा, तत्र द्रव्यलेश्या-पुद्गलविशेषरूपा, साऽपि द्विधा-नोऽकर्मद्रव्यलेश्या कर्मद्रव्यलेश्या च, तत्र नोऽकर्मद्रव्यलेश्या वर्णविशेषात्मिका, कर्मद्रव्यलेश्या तु भावलेश्याजनककपायमोहनीयकर्म=नामकर्मद्रव्याणि ।

यच्च परैः कर्मनिष्पन्द-(बध्यमानकर्मप्रवाह)-रूपत्व कर्मद्रव्यलेश्याया उक्तं, तत्र युक्तम्, तथाहि-स कर्मणा निष्पन्दः साररूपोऽसाररूपो वा ? साररूप-श्चेत् ज्ञानावरणीयादिष्वन्यतमस्य सारः सर्वेषां वा ? विकल्पद्वयमप्यागमविरुद्धम्,

को लेश्या कहते है, वह द्रव्य, भाव भेद से दो प्रकार की है । उनमें द्रव्यलेश्या पुद्गलस्वरूप है, वह भी नोऽकर्मलेश्या, कर्मलेश्या के भेद से दो प्रकार की है । उस में नोऽकर्मद्रव्यलेश्या वर्णविशेष-रूप मानी गई है और कर्मद्रव्यलेश्या भावलेश्या के उत्पादक कपायमोहनीयकर्म और नामकर्म द्रव्यस्वरूप है ।

जो कोई इस कर्मद्रव्यलेश्या को कर्मनिष्पन्द (बध्यमान कर्म-प्रवाह) रूप मानते हैं वह ठीक नहीं, क्यों कि यदि ऐसा लक्षण मान लिया जाय तो यहाँ दो प्रश्न उपस्थित होते हैं कि-वह कर्म-निष्पन्द साररूप है या असाररूप ? । यदि सार रूप माने तो ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों में से किसी एक कर्म का सार है या सब कर्मोंका ? , मगर ये दोनों विकल्प आगमविरुद्ध है, क्यों कि

प्राप्त ध्येयी शक्तिविशेषवादी योगप्रवृत्तिने लेश्या कहे छे ते द्रव्य अने भाव ना लेदथी जे प्रकारनी छे तेभा द्रव्यलेश्या पुद्गलस्वरूप छे ते पणु नोऽकर्मलेश्या अने कर्मलेश्याना लेदथी जे प्रकारनी छे तेभा नोऽकर्मद्रव्यलेश्या वस्तुविशेषरूप मानवामा आवी छे अने कर्मद्रव्यलेश्या भावलेश्यानी उत्पादक कपायमोहनीयकर्म अने नामकर्म द्रव्यस्वरूप छे

जे के केटलाक भाषुनो आ कर्मद्रव्यलेश्याने कर्मनिष्पन्द (बध्यमान कर्म प्रवाह) रूप माने छे पणु ते मान्यता ठीक नहीं कारण के जे जेवा लक्षण मानवामा आवे तो आ स्थजे जे प्रश्न उभा थाय छे के-ते कर्मनिष्पन्द साररूप छे के असार रूप छे ? जे सार रूप छे जेभ मानथो तो ज्ञानावरणी यादि आठ कर्मोंमाथी केछे जेक कर्मनो सार छे, अथवा सर्व कर्मोंमा ? पणु



निकखेवणासमिर्ईए' भाण्डमात्रे=उपकरणमात्रे, आदाननिक्षेपण=ग्रहणस्थापन तद्विषया समितिस्तया । 'उच्चारपासाणखेलजल्लसिंघाणपरिठापणियासमि ईए' उच्चारः=पुरीप, प्रस्रवण=मूत्र, खेलः=श्लेष्मा, जल्लः=देहमल, सिंघाण=नासामल, तेपा परिष्ठापनिका=व्युत्सर्जन तद्विषया समितिस्तया । 'पडिक्कामामि' प्रतिक्रामामि, 'छहिं' पड्भिः, 'जीवनिकाएहिं' जीवना निकायाः=राशय' जीवनिकायाः=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतिरसस्वरूपास्तैस्तद्द्वारेत्यर्थः 'यो मया ऽतिचारः कृत' इत्यादि-सम्बन्धः प्राग्भवेत् । 'पडिक्कामामि' प्रतिक्रामामि, 'छहिं' पड्भिः, 'लेस्साहिं' लिश्यते=श्लिष्यते=सम्पद्यते आत्मा कर्मभि'

(४) 'आदान-भाण्डमात्र-निक्षेपणासमिति'-वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों का यत्नापूर्वक लेना और रखना ।

तथा (५) 'उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्ठापनिका-समिति'-उच्चार आदि का यत्नापूर्वक दश बोल वर्ज (टाल) के परिष्ठापन करना, इनसे एव पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति और त्रसरूप छह जीव निकायों से, तथा कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल, इन छह लेश्याओं के सम्बन्ध से जो अतिचार किया गया हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ' ।

अब लेश्या का स्वरूप कहते हैं—

जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लेपायमान हो उसको अर्थात् कषायों के उदय से प्राप्त शक्तिविशेषवाली योगप्रवृत्ति

(४) 'आदान-साड-मात्र-निक्षेपणा-समिति'-वस्त्र, पात्र आदि उपकरण लेना यत्नापूर्वक लेवु भूंकवु

तथा (५) 'उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्ठापनिका-समिति'-उच्चार आदिने यत्ना पूर्वक दश-बोल त्यलने परिष्ठापन करवु जेनाथी जेव पृथ्वी, पाणी, तेज वायु, वनस्पति अने त्रसरूप छ लव निकायोथी, तथा कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म अने शुक्ल आ छ लेश्याजोना सम्बन्धथी जे कोठ अतिचार लाग्या होय तो तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु,

हुवे लेश्यानु स्वरूप कडे छे-

जेना द्वारा आत्मा कर्मोथी लेपायमान थाय तेने अर्थात् कषायोना उदयथी

सहाऽनयेति लेश्या, सा च कपायोदयलब्धशक्तिविशेषा योगप्रवृत्तिः, लेश्या द्रव्य-भावभेदाद्विविधा, तत्र द्रव्यलेश्या-पुद्गलविशेषरूपा, साऽपि द्विधा-नोकर्मद्रव्यलेश्या कर्मद्रव्यलेश्या च, तत्र नोकर्मद्रव्यलेश्या वर्णविशेषात्मिका, कर्मद्रव्यलेश्या तु भावलेश्याजनककपायमोहनीयकर्म=नामकर्मद्रव्याणि ।

यच्च परैः कर्मनिष्यन्द-(वध्यमानकर्मप्रवाह)-रूपत्वं कर्मद्रव्यलेश्याया उक्तं, तन्न युक्तम्, तथाहि-स कर्मणा निष्यन्दः साररूपोऽसाररूपो वा ? साररूप-श्चेत् ज्ञानावरणीयादिष्वन्यतमस्य सारः सर्वेषां वा ? विकल्पद्वयमप्यागमविरुद्धम्,

को लेश्या कहते है, वह द्रव्य, भाव भेद से दो प्रकार की है । उनमें द्रव्यलेश्या पुद्गलस्वरूप है, वह भी नोकर्मलेश्या, कर्मलेश्या के भेद से दो प्रकार की है । उस में नोकर्मद्रव्यलेश्या वर्णविशेष-रूप मानी गई है और कर्मद्रव्यलेश्या भावलेश्या के उत्पादक कपायमोहनीयकर्म और नामकर्म द्रव्यस्वरूप है ।

जो कोई इस कर्मद्रव्यलेश्या को कर्मनिष्यन्द (वध्यमान कर्म-प्रवाह) रूप मानते हैं वह ठीक नहीं, क्योंकि कि यदि ऐसा लक्षण मान लिया जाय तो यहाँ दो प्रश्न उपस्थित होते हैं कि-वह कर्म-निष्यन्द साररूप है या असाररूप ? । यदि सार रूप मानें तो ज्ञानावरणीयादि आठ कर्मों में से किसी एक कर्म का सार है या सब कर्मों का ?, मगर ये दोनों विकल्प आगमविरुद्ध हैं, क्योंकि

प्राप्त ध्येयी शक्तिविशेषवादी योगप्रवृत्तिने लेश्या कहे छे ते द्रव्य अने भाव ना लेहथी जे प्रकारनी छे तेमा द्रव्यलेश्या पुद्गलस्वरूप छे ते पणु नोकर्मलेश्या अने कर्मलेश्याना लेहथी जे प्रकारनी छे तेमा नोकर्मद्रव्यलेश्या वस्तुविशेषरूप मानवाभा आवी छे अने कर्मद्रव्यलेश्या भावलेश्यानी उत्पादक कपायमोहनीयकर्म अने नामकर्म द्रव्यस्वरूप छे

जे के डेटलाक भाषुतो आ कर्मद्रव्यलेश्याने कर्मनिष्यन्द (वध्यमान कर्म प्रवाह) रूप माने छे पणु ते मान्यता ठीक नथी कारणु के जे जेवा लक्षण मानवाभा आवे तो आ स्थणे जे प्रश्न उभा याय छे के-ते कर्मनिष्यन्द साररूप छे के असार रूप छे ? जे सार रूप छे जेभ मानथो तो ज्ञानावरणी यादि आठ कर्मोंमाथी केछे जेक कर्मनो सार छे, अथवा सर्व कर्मनो ? पणु

निकखेवणासमिर्इए' भाण्डमात्रे=उपकरणमात्रे, आदाननिक्षेपण=ग्रहणस्यापन तद्विपया समितिस्तया । 'उच्चारपासनणखेलजल्लसिंघाणपरिठावणियासमिर्इए' उच्चारः=पुरीप, प्रस्रवण=मूत्र, खेलः=श्लेष्मा, जल्लः=देहमल, सिंघाण=नासामल, तेपा परिष्ठापनिका=व्युत्सर्जन तद्विपया समितिस्तया । 'पडिक्कामामि' प्रतिक्रामामि, 'छहिं' पड्भिः, 'जीवनिकाएहिं' जीवाना निकायाः=राशयः जीवनिकायाः=पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसस्वरूपास्तैस्तद्द्वारेत्यर्थः 'यो मया ऽतिचारः कृत' इत्यादि-सम्बन्धः प्राग्बदेव । 'पडिक्कामामि' प्रतिक्रामामि, 'छहिं' पड्भिः, 'लेस्साहिं' लिश्यते=श्लिष्यते=सम्बध्यते आत्मा कर्मभिः

(४) 'आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति'-वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों का यत्नापूर्वक लेना और रखना ।

तथा (५) 'उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्ठापनिका-समिति'-उच्चार आदि का यत्नापूर्वक दश बोल वर्ज (टाल) के परिष्ठापन करना, इनसे एव पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति और त्रसरूप छह जीव निकायों से, तथा कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म और शुक्ल, इन छह लेश्याओं के सम्बन्ध से जो अतिचार किया गया हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ' ।

अब लेश्या का स्वरूप कहते हैं—

जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लेपायमान हो उसको अर्थात् कपायों के उदय से प्राप्त शक्तिविशेषवाली योगप्रवृत्ति

(४) 'आदान-लाड-मात्र-निक्षेपणा-समिति'—वस्त्र, पात्र आदि उपकरण लेना यत्नापूर्वक लेना भूकषु

तथा (५) 'उच्चार-प्रस्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण-पारिष्ठापनिका-समिति'—उच्चार आदिने यत्ना पूर्वक दश-बोल त्यजने परिष्ठापन करणु ज्येनाथी ज्येव पृथ्वी, पाणी, तेज वायु, वनस्पति अने त्रसरूप छ लव निकथेथी, तथा कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म अने शुक्ल आ छ लेश्याज्येना सम्बन्धथी जे डोर्छ अतियाड लाग्था होय तो तेमाथी हु निवृत्त थो छु,

इवे लेश्यानु स्वरूप कडे छे—

जेना द्वारा आत्मा कर्मथी लेपायमान थाय तेने अर्थात् कपायेना उदयथी

पादान च कर्मवर्गणान्तर्गतत्वसाधक, ततश्च, 'तदन्तर्भावाभावात्' इत्यय हेतुर्वा-  
धितविषयः ।

उक्ता द्रव्यलेश्या सम्प्रति भावलेश्यामाह-सा च कपायोदयलब्ध-  
शक्तिविशेषयोगप्रवृत्त्यात्मिका प्रोक्तैव ।

अत्राशङ्कते कश्चित्-ननु भावलेश्याया उक्तलक्षणस्वीकारे उपशान्त-क्षीण-  
कपाय सयोगिकेवलि गुणस्थानेषु तदभावः प्रसज्यते, तत्र कपायाभावात्-योगप्रवृत्ते-  
रतिशयान्तरमुपनीतेरसभवात्, इति चेन्न, तत्र भावलेश्याया उपचारतोऽङ्गी-

ऐसा प्रश्न करना ठीक नहीं, क्यों कि आगमों से विरोध आता है ।

अर्थात् किसीभी आगम में लेश्या को कार्यकारणरूप नहीं  
माना है ।

लेश्या को अलग नहीं बताने का कारण यह है कि वे  
कर्मवर्गणा के अन्तर्गत साधकस्वरूप हैं । यह हुई द्रव्यलेश्या, अब  
भावलेश्या कहते हैं—

भावलेश्या कपायोदयलब्धशक्तिविशेषयोगप्रवृत्तिरूप पहले कह  
चुके हैं ।

यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि भावलेश्या का पूर्वोक्त  
लक्षण मानने से उपशान्तकपाय, क्षीणकपाय और सयोगिकेवली  
गुणस्थानो में उस (लेश्या) का अभाव मानना पड़ेगा, क्यों कि  
वहाँ कपाय नहीं है !

ठीक नहीं, कारण के आगमोना तेभा विरोध आवे छे

अर्थात् कौण्डिल्य आगमभा लेश्याने कार्यकारण रूप मानवामा आवेल नधी  
लेश्याने न्दूनी गताववानुं कारण अे छे के कर्मवर्गणानी अदर साधक  
स्वरूप छे, आ वात द्रव्यलेश्यानी थछे हवे भावलेश्या कडे छे

भावलेश्या कपायोदयलब्धशक्तिविशेषयोगप्रवृत्तिरूप छे अेम प्रथम कडेवायु छे

अहिंआ अेक प्रश्न थाय छे के-भावलेश्यानुं पूर्वोक्त लक्षण मानवाधी  
उपशान्तकपाय, क्षीणकपाय अने सयोगिकेवली गुणस्थानोभा ते लेश्याने  
अभाव मानवो पडथे, कारणके त्या कपाय नधी

તત્ર (આગમે) તાસા કર્મફલત્વેનાઽપ્રતિપાદનાત્, કર્મસારેણ ત્વચ્ચ ફલવતા ભવિતવ્યમ્ । યતુત્તરપક્ષઃ કક્ષીક્રિયતે તર્હિ અસારસ્વરૂપસ્ય તસ્ય નોત્કૃષ્ટાનુભાગ પ્રતિ હેતુત્વ સિધ્યતિ ।

નનુ યથા કાર્મણશરીરસ્ય કર્મવર્ગણામિઃ કાર્યકારણભેદોઽભ્યુપગતઃ શાલ્લે તથૈવ લેશ્યાદ્રવ્યાણ્યપિ કર્મવર્ગણામિર્મિન્નાન્યભ્યુપગન્તવ્યાનિ, તાસા તદન્તર્મા વાઽભાવાદિતિ, તદપ્યપ્રામાણિકમેવ, યથા કાર્મણશરીરસ્ય કર્મવર્ગણામિર્મિન્નદ્રવ્ય ત્વમાગમે પ્રતિપાદિત તથા લેશ્યાદ્રવ્યસ્ય પૃથક્ત્વેનાઽનુપાદાનાત્, પૃથક્ત્વેનાઽનુ આગમો મે લેશ્યા કર્મફલસ્વરૂપ નહીં ઘતાઈ ગઈ હૈ ઓર કર્મો કા સાર તો અવશ્ય ફલવાલા હોના હી યાહિયે, ઇસલિયે ડસકો કર્મો કા સારરૂપ નહીં કહ સકતે, યદિ અસારરૂપ માનેં તો વહ ઉત્કૃષ્ટ અનુભાગ કા હેતુ નહીં હો સકતા । અતઃ લેશ્યા કો કર્મનિષ્પન્દરૂપ નહી માનના યાહિયે । ઇસલિયે ઝિસકે દ્વારા આત્મા કર્મો સે લિપ્ત હો ઇસી શુભાશુભ આત્મપરિણતિ કો હી લેશ્યા માનના શાસ્ત્ર સમત હૈ ।

ઘઠાં ઇક ઇસા પ્રશ્ન હોતા હૈ કિ ઝૈસે કાર્મણ શરીર કો કર્મવર્ગણા કૈ સાથ કાર્યકારણરૂપ માના હૈ વૈસે હી લેશ્યાદ્રવ્ય કો મ્હી કર્મવર્ગણા કૈ સાથ કા કારણરૂપ માનને મે ક્યા આપત્તિ હૈ । ક્યો કિ ડન લેશ્યાઓંકા કર્મ કૈ અન્દર સમાવેશ નહીં હોતા હૈ ।

એ બન્ને વિકટપ આગમથી વિરુદ્ધ છે કેમકે આગમેમા લેશ્યાને કર્મના ફલ સ્વરૂપ કહેવામા આવી નથી અને કર્મોના સારરૂપ તો જરૂર ફળવાળુ હોવુજ જોઈએ, એટલા માટે તેને કર્મોના સારરૂપ કહી શકાશે નહિ હવે જો અસારરૂપ માનીએ તો તે ઉત્કૃષ્ટ અનુભાગનો હેતુ થઈ શકતો નથી તે કારણથી લેશ્યાને કર્મનિષ્પન્દરૂપ નહિ માનવુ જોઈએ એટલા માટે જેના દ્વારા આત્મા કર્મોથી લેપાય એવી શુભ-અશુભ આત્મપરિણતિનેજ લેશ્યા માનવી, તે શાસ્ત્રસમત છે

અહિં એક એ પ્રશ્ન થાય છે કે —જેવી રીતે કાર્મણ શરીરને કર્મવર્ગ-ણાની સાથે કાર્યકારણરૂપ માનવામા આવે છે તેવીજ રીતે લેશ્યાદ્રવ્યને પણ કર્મવર્ગણાની સાથે કાર્યકારણરૂપ માનવામા શુ આપત્તિ છે ? કારણ કે તે લેશ્યાઓનો કર્મની અદર સમાવેશ થતો નથી એ પ્રમાણે પ્રશ્ન કરવો તે

शास्त्राऽभिप्राय औपचारिक एवेत्यवसीयते । वास्तविकलेख्यास्वीकारे तत्र स्थित्यनुभागवन्धप्रसङ्गः स्यात्, न च तत्र तत्सद्भावः, तथाहि—‘जोगा पयडि-पएस ठिइ अणुभाग कसायओ कुणई’ इति वचनात्, प्रकृतिप्रदेशौ योगजन्यौ, स्थित्यनुभागौ च कषायजन्यौ स्तः । सयोगिकेवलयादिगुणस्थानेषु योग-निमित्तकप्रकृतिप्रदेशवन्धसद्भावेऽपि कषायाभावात् स्थित्यनुभागसभवेन कुडचपतितशुफ्रलोष्टवत्स्थितिमकुर्वन्नेव कर्म त्वरितं प्रत्यावर्तते, तदुक्तं श्री-

यदि वहाँ वास्तविक लेख्या मानी जाय तो उससे स्थिति-बन्ध और अनुभागबन्ध का भी प्रसंग होगा, परन्तु वहाँ उन दोनों बन्धों का अभाव है, कहा भी है कि—“ प्रकृति और प्रदेश का बन्ध योग से होता है तथा स्थिति और अनुभाग बन्ध कषाय से होता है।”

इस वचन से प्रकृति और प्रदेश-बन्ध योगजनित है, स्थिति और अनुभागबन्ध कषायजनित है ।

सयोगिकेवलि आदि गुणस्थानों में योगनिमित्तक प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध का सद्भाव होने पर भी तथा कषाय के अभाव से स्थिति और अनुभाग का सभव होते हुए भी भीत पर फेंके हुवे सूखे ढेले की तरह वहाँ स्थिति नहीं करता । हुआही कर्म तुरन्त वापस हट जाता है, यही श्री सूयगडाग सूत्रमें भगवानने फरमाया है कि—

स्थितिबन्ध अथवा अनुभागबन्धो पणु प्रसंग थथे, परंतु त्या ते बने बन्धोना अभाव छे, कहु पणु छे के “प्रकृति अने प्रदेशोना बन्ध योगथी थाय छे तथा स्थिति अने अनुभागोना बन्ध कषायथी थाय छे”

आ वचनथी प्रकृति अने प्रदेशबन्ध योगजनित छे स्थिति अने अनुभाग बन्ध कषायजनित छे सयोगिकेवणी विगेरे शुषुस्थानोभा योगनिमित्तक प्रकृतिबन्ध अने प्रदेशबन्धो सद्भाव थथा पछी पणु तथा कषायना अभावथी स्थिति अने अनुभागोना सभव थथा पछी पणु भीत उपर ईकेल सुका देखनी भाइक त्या स्थिति नथी करतो तुरत थय्केल कर्म पाछु हठी नय छे आ विषय श्री सूयगडाग सूत्रभा भगवाने इशभावेल छे—

कारात् । 'मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते' इति न्यायादत्र योगप्रवृत्तिसत्त्वौपचारिकलेश्यासत्त्वे हेतुः । इदमत्रैदम्पर्यम्-या हि योगप्रवृत्तिः सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानपर्यन्त कषायोदयलब्धशक्तिविशेषाऽऽसीत् सैवोपशान्त रूपायादिष्वस्ति, अत एव भूतपूर्वनयाऽपेक्षया तत्र लेश्यासद्भावः शास्त्रेषूपगीयते । यथा लोके भगिन्या मृतायामपि तत्पतिर्भगिनीपतित्वेन व्यवह्रियत एव ।

नन्यागमे सामान्येन सयोगिकेऽल्पपर्यन्त लेश्यासद्भावाऽऽवेदक

यह प्रश्न करना ठीक नहीं, क्यों कि वहाँ भावलेश्या उपचारमात्र से मानी गई है । "मुख्य का अभाव होने पर निमित्त में उपचार किया जाता है" इस न्याय से योगप्रवृत्ति की सत्ता ही औपचारिक लेश्या के सद्भाव में हेतु माना गया है । यहाँ तात्पर्य यह है कि जो योगप्रवृत्ति सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान तक कषायोदयलब्धशक्तिविशेषस्वरूप थी वही योगप्रवृत्ति उपशान्त-कषायादिक में है इसलिये भूतपूर्वनयकी अपेक्षा से वहाँ (उपशान्त क्षीणकषायादि गुणस्थानों में) लेश्या का सद्भाव शास्त्रों में कहा है । लोक में भी यह उक्ति प्रसिद्ध है कि भगिनी (बहिन) के मर जाने पर भी उसके पतिको भगिनीपति (बहनोई) कहते हैं ।

वात यह है कि सामान्यतया सयोगिकेवली गुणस्थान पर्यन्त उपचार से ही लेश्या का सद्भाव सिद्ध होता है ।—

आ प्रश्न करने ठीक नहीं, केम के त्या भावलेश्या उपचार मात्रो मानवामा आवी छे 'मुख्येना अभाव होवाथी निमित्तमा उपचार कराय छे' आ न्यायथी योगप्रवृत्तिनी सत्ताञ्च औपचारिक लेश्याना सद्भावमा हेतु मानवामा आवेल छे, अहि तात्पर्य अे छे के ने योगप्रवृत्ति सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान सुधी कषायोदयलब्धशक्तिविशेष इये हती अेञ्च योगप्रवृत्ति उपशान्तकषायादिकमा छे, अेटला भाटे भूतपूर्वनयनी अपेक्षाथी त्या (उपशान्तक्षीणकषायादि गुणस्थानोमा) लेश्याना सद्भाव शास्त्रोमा कहेल छे लोकमा पणु आ उक्ति प्रसिद्ध छे के जेन मरी जवा पछी पणु तेना पतिने जनेवी कहे छे

वात अे छे के सामान्य रीते सयोगिकेवलीगुणस्थान सुधी उपचारधीन लेश्याना सद्भाव सिद्ध थाय छे अे त्या वास्तविक लेश्या मानीअे तेा तेनाथी

लेश्यापद्रुमेवाह-(१) 'किण्हेसाए' कृष्णद्रव्यात्मिका कृष्णद्रव्योपरा-  
गजनिता वा लेश्या कृष्णलेश्या=कृष्णद्रव्योपाधिकात्मपरिणामविशेषः,  
येन जीवस्य हिंसाद्यास्त्रवेषु प्रवृत्तिः, मनोवाकायानामसयमः, स्वभावे क्षुद्रता,  
गुणदोषावविमृश्यैव कार्येषु प्रवृत्तिः क्रूरत्व च सजायते तथा ।

(२) 'नील्लेसाए' नीलद्रव्यात्मिका नीलद्रव्योपरागजनिता वा लेश्या  
नील्लेश्या=अशोकतरुसमाननीलवर्णद्रव्योपाधिकाऽऽत्मपरिणामविशेषः, येन जीवः  
ईर्ष्यालुः असहिष्णुः, मायावी, नित्यपः, प्रदीप्तविषयाभिलाषः, रसलोलुपः,  
सदा पौद्गलिकसुखगवेषकश्च भवति, तथा ।

(३) 'काउलेसाए' कपोतस्याय कपोतः=पाराव्रतवर्णस्तत्तुल्यद्रव्यरूपा तत्तु-

(१) कृष्णलेश्या— कृष्णद्रव्यस्वरूप तथा कृष्णद्रव्योपरागजनित  
आत्मपरिणाम स्वरूप है, जिससे हिंसा आदि आश्रवों में आत्माकी  
प्रवृत्ति होती है, मन-वचन-कायाका असयम, स्वभावमें क्षुद्रता,  
गुण दोषो के विना विचारे कार्यमे प्रवृत्ति करना और क्रूर भाव  
का आना होता है ।

(२) नील्लेश्या— नीलद्रव्यात्मक तथा नीलद्रव्योपरागजनित  
अर्थात् अशोक वृक्ष के समान नीलवर्णवाले आत्मपरिणामस्वरूप  
है । इससे आत्मा ईर्ष्यालु, असहिष्णु, मायावी, निर्लज्ज, विषयलोलुपी,  
रसलोलुपी और पौद्गलिक सुखोका अन्वेषक होता है ।

(३) कपोतलेश्या— कबूतर के तुल्य वर्णवाली तथा उसके

(१) कृष्णलेश्या—कृष्णद्रव्यस्वरूप तथा कृष्णद्रव्योपरागजनित आत्मपरि-  
णाम स्वरूप है, जेनाथी हिंसा आदि आश्रवोमा आत्मानी प्रवृत्ति थाय है  
मन वचन अने कायानो असयम, स्वभावमा क्षुद्रता, गुणदोषोने विचार्या विना  
कार्यमा प्रवृत्ति करवी अने क्रूरभावनु आवलु थाय है

(२) नील्लेश्या—नीलद्रव्यात्मक तथा नीलद्रव्योपरागजनित अर्थात्  
अशोक वृक्षनी जेभ नीलवर्णवाणा आत्मपरिणाम स्वरूप है, ज्येथी आत्मा  
ईर्ष्यालु, असहिष्णु मायावी निर्लज्ज, विषयप्रेमी, रसप्रेमी अने पौद्गलिक  
सुखोना अन्वेषक होय है

(३) कपोतलेश्या—कबूतरनी समान वर्णवाणी तथा तेनी जेभ द्रव्योपराग



सूत्रकृताङ्गे—‘त पढमसमए वद्धं, वीयसमए वेइय, ततियसमये निज्जिण्ण’ इति, अतस्तद्वन्ध ईर्यापथवन्ध उच्यते । अयमेवाऽऽगमस्तत्रौपचारिकलेश्यासत्ताऽऽवेदकः; इत्युक्तलक्षणलक्षितैव भावलेश्येति सिद्धम् ।

अत्र च भावलेश्यैव प्रतिक्रमणविषयस्तस्या एवाधिकृतत्वात्, भावलेश्यासु कृष्णादिशब्दव्यवहारस्तदुत्पादकलेश्यापुद्गलनिमित्तकः परिणामसादृश्यमूलकश्चेति ध्येय, ताभिः ।

“प्रथम समयमें बन्ध होता है, दूसरे समयमें वेदा जाता है और तीसरे समयमें निर्जर जाता है अर्थात् दूर हो जाता है ॥”

इसी कारण से उस बन्धको ईर्यापथवन्ध कहा है । यही आगमवाक्य वहा औपचारिक लेश्या के सद्भावको बतानेवाला है, अतः पूर्वोक्त लक्षणवाली ही भावलेश्या है ।

यहा प्रतिक्रमणमें भावलेश्या का अधिकार है, उनमें कृष्णादि शब्दों का जो व्यवहार होता है वह सिर्फ उनके उत्पादक लेश्या के पुद्गलों के निमित्त से तथा परिणाम भी वैसे हो जाने के कारण से माना जाता है ।

वह लेश्या छह प्रकारकी है जैसे—

(१) कृष्णलेश्या । (२) नीललेश्या । (३) कापोतलेश्या । (४) तेजोलेश्या । (५) पद्मलेश्या । (६) शुक्ललेश्या ।

“प्रथम समयमा षध थाय छे, धीण्ण समयमा अनुभव थाय छे, अने त्रीण समयमा निर्जरि जाय छे अर्थात् दूर थध जाय छे ” आ कारुथी ते षधने ईर्यापथ षध कडेल छे आ शास्त्रवाक्य त्या औपचारिक लेश्याना सद्भावने षताववा वाणी छे, अेटवे पूर्वोक्त लक्षणवाणीन षावलेश्या छे

अडिं प्रतिक्रमणमा षावलेश्याने अधिकार छे, अेमा कृष्णादि शब्दोने ने व्यवहार थाय छे ते मात्र तेनी उत्पादक लेश्याना पुद्गलोना निमित्तथी तथा परिणाम पणु तेवान् थध न्वाना कारुथी बनाय छे ते लेश्या छ प्रकारनी छे, नेवी रीते (१) कृष्णलेश्या, (२) नीललेश्या, (३) कापोतलेश्या, (४) तेजोलेश्या (५) पद्मलेश्या, (६) शुक्ललेश्या

लेश्यापद्रकमेवाह-(१) 'किण्णलेसाए' कृष्णद्रव्यात्मिका कृष्णद्रव्योपरा-  
गजनिता वा लेश्या कृष्णलेश्या=कृष्णद्रव्योपाधिकात्मपरिणामविशेषः,  
येन जीवस्य हिंसायास्त्रवेपु प्रवृत्तिः, मनोवाकायानामसयमः, स्वभावे क्षुद्रता,  
गुणदोषावविमृश्यैव कार्येषु प्रवृत्तिः क्रूरत्व च सजायते तथा ।

(२) 'नीललेसाए' नीलद्रव्यात्मिका नीलद्रव्योपरागजनिता वा लेश्या  
नीललेश्या=अशोकतरुसमाननीलवर्णद्रव्योपाधिकाऽऽत्मपरिणामविशेषः, येन जीवः  
ईर्ष्यालुः असहिष्णुः, मायावी, निस्त्रपः, प्रदीप्तविषयाभिलाषः, रसलोलुपः,  
सदा पौद्गलिकसुखगवेपकश्च भवति, तथा ।

(३) 'काउलेसाए' कपोतस्याय कापोतः=पारावतवर्णस्तत्तुल्यद्रव्यरूपा तत्तु-

(१) कृष्णलेश्या— कृष्णद्रव्यस्वरूप तथा कृष्णद्रव्योपरागजनित  
आत्मपरिणाम स्वरूप है, जिससे हिंसा आदि आश्रचों में आत्माकी  
प्रवृत्ति होती है, मन-वचन-कायाका असयम, स्वभावमें क्षुद्रता,  
गुण दोषों के विना विचारे कार्यमें प्रवृत्ति करना और क्रूर भाव  
का आना होता है ।

(२) नीललेश्या— नीलद्रव्यात्मक तथा नीलद्रव्यउपरागजनित  
अर्थात् अशोक वृक्ष के समान नीलवर्णवाले आत्मपरिणामस्वरूप  
है । इससे आत्मा ईर्ष्यालु, असहिष्णु, मायावी, निर्लज्ज, विषयलोलुपी,  
रसलोलुपी और पौद्गलिक सुखोंका अन्वेपक होता है ।

(३) कापोतलेश्या— कबूतर के तुल्य वर्णवाली तथा उसके

(१) कृष्णलेश्या—कृष्णद्रव्यस्वरूप तथा कृष्णद्रव्योपरागजनित आत्मपरि-  
णाम स्वरूप है, जेनाथी हिंसा आदि आश्रयोभा आत्मानी प्रवृत्ति थाय है  
मन वचन अने कायानो असयम, स्वभावमा क्षुद्रता, शुषुद्रोपेने विचार्या विना  
कार्यमा प्रवृत्ति करपी अने क्रूरभावनु आववु थाय है

(२) नीललेश्या—नीलद्रव्यात्मक तथा नीलद्रव्यउपरागजनित अर्थात्  
अशोक वृक्षनी जेभ नीलवर्णवाणा आत्मपरिणाम स्वरूप है, ज्येथी आत्मा  
ईर्ष्यालु, असहिष्णु मायावी निर्लज्ज, विषयप्रेमी, रसप्रेमी अने पौद्गलिक  
सुखेना अन्वेपक होय है

(३) कापोतलेश्या—कबूतरनी समान वर्णवाणी तथा तेनी जेभ द्रव्योपराग

લ્યદ્રવ્યોપરાગજનિતા વા લેશ્યા કાપોતલેશ્યા=તરુણપારાવ્રતકઠતુલ્યકૃષ્ણ  
લોહિત (ધૂપછાયા) વર્ણદ્રવ્યોપાધિકાત્મપરિણામઃ; યેન જીવસ્ય વચસિ કર્તવ્યે  
વિચારણાયા ચ સર્વત્ર વ્રક્તૈવ જાયતે, કસ્મિન્નપિ ત્રિપયે સારલ્ય ન ભવતિ,  
નાસ્તિકત્વ પરદુઃખજનકભાષણશીલત્વ ચ સજાયતે તયા ।

(૪) 'તેજોલેસાપ' તેજઃ=અગ્નિજ્વાલા તત્તુલ્યલોહિતવર્ણદ્રવ્યાત્મિકા  
તાદૃશદ્રવ્યોપરાગજનિતા વા લેશ્યા તેજોલેશ્યા=શુક્તુષ્ણવદ્રક્તવર્ણદ્રવ્યોપાધિકાત્મ  
પરિણામવિશેષઃ, યદ્દશાત્ જીવે નમ્રત્વ પદમાદધાતિ શાઠ્ય ચાપલ્ય ચ સુદૃમ  
પસરતિ, ધર્મેઽમિરુચિર્દાઢ્યે સર્વજનહિતૈપિત્વ ચ જહ્નન્યતે તયા ।

તુલ્ય દ્રવ્યોપરાગજનિત અર્થાત્ તરુણ કવૂતર કે કઠસદૃશ કૃષ્ણ  
ઔર નીલ વર્ણવાલે દ્રવ્યાત્મક આત્મપરિણામ સ્વરૂપ હૈ, જિસસે  
આત્મા મન વચન કર્તવ્ય ઔર વિચારમેં સર્વથા વ્રક્ત ભાવકો ધારણ  
કરતા હૈ, કિન્તુ કિસી વિષયમેં સરલતા નહી રખતા હૈ, ઔર ઉસમેં  
પુણ્ય પાપ આદિકી નાસ્તિકતા તથા પરદુઃખજનક ભાષા બોલનેકા  
સ્વભાવ હોતા હૈ ।

(૪) તેજોલેશ્યા—અગ્નિજ્વાલા કે સમાન લાલવર્ણદ્રવ્યસ્વરૂપ  
તથા તાદૃશ (વૈસે) દ્રવ્યોપરાગજનિતસ્વરૂપ હૈ, અર્થાત્ તોતે કી  
ચોંચકે સમાન લાલ વર્ણવાલે દ્રવ્ય કે સદૃશ આત્મપરિણામરૂપ  
હૈ, હિસસે આત્મા નમ્ર બનતા હૈ, શઠતા ઔર ચપલતા રહિત  
હોતા હૈ, ધર્મ કે અન્દર દૃઢ, પ્રાણીમાત્ર કા હિતૈષી હોતા હૈ ।

જનિત અર્થાત્ તરુણ કથુતરના કઠના જેવા કાળા અને નીલવર્ણવાળા—દ્રવ્યાત્મક  
આત્મપરિણામરૂપ છે, જેથી આત્મા, મન, વચન, કર્તવ્ય અને વિચારમા હ મેશા  
વકલાવને ધારણ કરે છે પરતુ કોઈ વિષયમા સરળતા નથી રાખતો, અને તેમા  
પુણ્ય પાપ વિગેરેની નાસ્તિકતા તથા પરદુઃખજનક ભાષા બોલવાને સ્વભાવ  
થાય છે

(૪) તેજોલેશ્યા—અગ્નિની જ્વાળાની પેઠે લાલવર્ણ દ્રવ્યસ્વરૂપ તથા એવુજ  
દ્રવ્યોપરાગજનિત સ્વરૂપ છે, અર્થાત્ પોપટની આંચની જેમ લાલવર્ણવાળા  
દ્રવ્યની જેમ આત્મપરિણામરૂપ છે, એથી આત્મા નમ્ર બને છે, હુમ્મ્યાઈ તથા  
ચપલતાથી રહિત થાય છે, ધર્મની અંદર દૃઢ, પ્રાણીમાત્રનો હિતૈષી થાય છે

(५) 'पउमलेसाए' अत्र पद्मशब्देनोपचारात्पद्मगर्भग्रहणम् स च पीतो भवत्यतः पद्मगर्भवत्पीतद्रव्यात्मिका पीतद्रव्योपाधिजन्या वा लेश्या पद्मलेश्या= हरिद्रावत्पीतद्रव्योपाधिकाऽऽत्मपरिणामविशेषः, यद्द्वारा जीवस्य क्रोधमानादि कषायाणां बहुतराशेषु मान्त्र, स्वान्ते शान्तिः, आत्मसयमधारणक्षमत्वम्, मितभाषित्वम्, जितेन्द्रियत्व च सपत्रते, तथा ।

'शुक्लेसाए' शुक्ल=शुक्लद्रव्य तदात्मिका तदुपरागजनिता वा लेश्या शुक्ललेश्या=शङ्खवच्चञ्चेतवर्णद्रव्योपाधिकात्मपरिणामः, यद्दशतो जीवस्याऽऽर्त्त-रौद्र-ध्यानाऽवरोधपूर्वकं धर्म-शुक्लध्यानद्वयमुपसपत्रते, मनोवाक्कायसयमनशक्तिः, कषायोपशान्तिः, वीतरागभावसम्पादनाऽऽनुकूल्य च जायते, तथा (६)

(५) पद्मलेश्या--पद्म-कमल-के गर्भ के समान पीतद्रव्य-स्वरूप तथा हलदी के समान पीले द्रव्यवाले आत्मपरिणामविशेष-स्वरूप है, जिससे आत्मा के क्रोध मान माया आदि कषाय मद अर्थात् पतले हो जाते हैं, और आत्मामें मन की शान्ति, आत्मसयम का सामर्थ्य, मर्यादित बोलना और जितेन्द्रियता आदि गुण आजाते हैं ।

(६) शुक्ललेश्या-शुक्लद्रव्यस्वरूप याने शखके तलेके समान श्वेत द्रव्यवाले आत्मपरिणामविशेषरूप है, जिससे आत्मा आर्त्त-रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म तथा शुक्लध्यानधारी होता है, मन वचन काया के सयमन का सामर्थ्य, कषायों की उपशान्ति, वीत-

(५) पद्मलेश्या-पद्म=कमलानां गर्भं समान पीला द्रव्य स्वरूप तथा हलदरनी जेभ पीला द्रव्यवाला आत्मपरिष्ठाभविशेषस्वरूप छे जेनाथी आत्माने, क्रोध, मान, माया आदि कषायो मद अर्थात् पातला थछ नथ छे, अने आत्माना मननी शान्ति, आत्मसयमनु सामर्थ्य, मर्यादित बोलवु अने श्रुतेन्द्रियत्व आदि शुष् आनी नथ छे

(६) शुक्ललेश्या-शुक्लद्रव्यस्वरूप अर्थात् शफना तलीयानी समान श्वेत द्रव्यवाला आत्मपरिष्ठाभविशेषरूप छे जेथी आत्मा आर्त्त रौद्र ध्यानने छोडीने धर्म तथा शुक्ल ध्यान धारी थथ छे मन वचन कायाना सयमनु सामर्थ्य, कषायोनी उपशान्ति, वीतरागभावने प्राप्त करवानी अनुकूलता विगेरे

લ્યદ્રવ્યોપરાગજનિતા વા લેશ્યા કાપોતલેશ્યા=તરુણપારાત્રતકઠ્ઠતુલ્યકૃષ્ણ  
લોહિત (ધૂપછાયા) વર્ણદ્રવ્યોપાધિકાત્મપરિણામઃ; યેન જીવસ્ય વચસિ કર્તવ્યે  
વિચારણાયા ચ સર્વત્ર વક્તૈવ જાયતે, કસ્મિન્નપિ વિષયે સારલ્ય ન ભવતિ,  
નાસ્તિકૃત્વ પરદુઃખજનકભાષણશીલત્વ ચ સજાયતે તયા ।

(૪) 'તેડલેસાઈ' તેજ=અગ્નિજ્વાલા તતુલ્યલોહિતવર્ણદ્રવ્યાત્મિકા  
તાદૃશદ્રવ્યોપરાગજનિતા વા લેશ્યા તેજોલેશ્યા=શુન્તુષ્ટવદ્રક્તવર્ણદ્રવ્યોપાધિકાત્મ  
પરિણામવિશેષઃ, યદ્દશાત્ જીવે નમ્રત્વ પદમાદધાતિ શાઠ્ય ચાપલ્ય ચ મુદૂરમ  
પસરતિ, ધર્મેડમિરુચિર્દાઢ્યે સર્વજનહિતૈપિત્વ ચ જઙ્ગન્યતે તયા ।

તુલ્ય દ્રવ્યોપરાગજનિત અર્થાત્ તરુણ કવૂતર કે કઠસદૃશ કૃષ્ણ  
ઔર નીલ વર્ણવાલે દ્રવ્યાત્મક આત્મપરિણામ સ્વરૂપ હૈ, જિસસે  
આત્મા મન વચન કર્તવ્ય ઔર વિચારમેં સર્વથા વક્ત્ર ભાવકો ધારણ  
કરતા હૈ, કિન્તુ કિસી વિષયમેં સરલતા નહી રખતા હૈ, ઔર ડસમેં  
પુણ્ય પાપ આદિકી નાસ્તિકતા તથા પરદુઃખજનક ભાષા બોલનેકા  
સ્વભાવ હોતા હૈ ।

(૪) તેજોલેશ્યા—અગ્નિજ્વાલા કે સમાન લાલવર્ણદ્રવ્યસ્વરૂપ  
તથા તાદૃશ (વૈસે) દ્રવ્યોપરાગજનિતસ્વરૂપ હૈ, અર્થાત્ તોતે કી  
ચૉંચકે સમાન લાલ વર્ણવાલે દ્રવ્ય કે સદૃશ આત્મપરિણામરૂપ  
હૈ, ડસસે આત્મા નમ્ર બનતા હૈ, શઠતા ઔર ચપલતા રહિત  
હોતા હૈ, ધર્મ કે અન્દર દૃઢ, પ્રાણીમાત્ર કા હિતૈષી હોતા હૈ ।

જનિત અર્થાત્ તરુણ કથુતરના કઠના જેવા કાળા અને નીલવર્ણવાળા—દ્રવ્યાત્મક  
આત્મપરિણામરૂપ છે, જેથી આત્મા, મન, વચન, કર્તવ્ય અને વિચારમા હમેશા  
વક્ત્રભાવને ધારણ કરે છે પરંતુ કોઈ વિષયમા સરળતા નથી રાખતો, અને તેમા  
પુણ્ય પાપ વિગેરેની નાસ્તિકતા તથા પરદુઃખજનક ભાષા બોલવાનો સ્વભાવ  
થાય છે

(૪) તેજોલેશ્યા—અગ્નિની જ્વાળાની પેઠે લાલવર્ણ દ્રવ્યસ્વરૂપ તથા એવુજ  
દ્રવ્યોપરાગજનિત સ્વરૂપ છે, અર્થાત્ પોપટની ચાચની જેમ લાલવર્ણવાળા  
દ્રવ્યની જેમ આત્મપરિણામરૂપ છે, એથી આત્મા નમ્ર બને છે, હુબ્યાઈ તથા  
ચપલતાથી રહિત થાય છે, ધર્મની અંદર દૃઢ, પ્રાણીમાત્રનો હિતૈષી થાય છે

तथोक्त नीतौ-‘राजा मित्र केन दृष्ट श्रुत वा,’ ‘राजसेवा मनुष्याणामसिधारा-  
वलेहनम् । पञ्चाननपरिष्वङ्गो, व्यालीवदनचुम्बनम्’ इत्यादि । अस्मात्=वाह-  
निमित्तमन्तरेणैव सर्पादिवुद्ध्या रज्ज्वादिभ्यो भय, सहसैवार्त्तनादादिश्रवणाद्वा  
भयम् । आजीवः=जीविता तस्मात्तदर्थं वा भयम्-‘निर्धनोऽहं दुर्मिथादीं रुथ प्राणान्  
धारयिष्यामि’ इति, ‘रुथ वा मम जीविका सुदृढा भविष्यतीति । मरण=प्राण-  
वियोगस्तस्माद्भयम् । श्लोक =यशः-‘पद्ये यशसि च श्लोकः’-इत्यमरः, न श्लोकः  
अश्लोकः=अपयशस्तस्माद्भयम् । तदेवमुक्तविधैः सप्तभिर्भयस्थानैर्यो मयाऽतिचारः  
कृतस्तस्मात् वा प्रतिक्रामामि=विनिवर्त्ते-परित्यजामि वेति समन्वयः । अत्रोक्त-  
स्य ‘पडिक्रमामि’ इत्यस्येत् आरभ्य त्रयस्त्रिंशदाशातना यावत् सम्बन्धो बोद्ध-  
व्यः । ‘अट्टहिं’ अष्टभिः, ‘मदोऽहङ्कारस्तस्य स्थानानि=जाति-  
कुल-बल-रूप-तपः-श्रुत-लाभै-श्वर्यरूपाणि तैः, सम्बन्धः’ प्राग्बत् ।

‘नवहिं’ नवभिः, ‘वभचेरगुत्तीहिं’ ब्रह्मचर्यं=मैयुनविरतिव्रत तस्य  
गुप्तयः=रक्षापकाराः ब्रह्मचर्यगुप्तयः=मैयुनविरतिपरिरक्षणोपायास्ताभिः, सम्बन्धः  
पूर्ववत् । ताश्च ब्रह्मचर्यगुप्तयः-(१) वसति-(२) कथा-(३-४) निपत्रेन्द्रिय-(५)  
कुड्यान्तर-(६) पूर्वक्रीडा-(७-८) प्रणीताऽतिमात्राहार-(९) विभूषणपरिहाररूपाः,  
तत्र वसति.=स्त्रीपशुपण्डकाऽऽश्रितस्थानसेवन तत्परिहार प्रथमा गुप्तिः (१) ।

अकस्माद्भय- विनाकारण ही अचानक डर जाना, (५) आजीविका  
भय-मेरा निर्वाह कैसे होगा ! दुष्काल आदि में प्राण कैसे रखूंगा !  
इत्यादि रूप भय, (६) प्राणवियोग का भय, और (७) अश्लोक (अपयश)  
होने का भय, इन सात भयों से, जाति, कुल, बल, रूप, तप,  
श्रुत, लाभ, और ऐश्वर्य-मद, इन आठ मदों से, तथा (१) वसति-  
स्त्री, पशु, पण्डक सहित स्थान-का त्याग, (२) कथा-स्त्री सम्बन्धी

रेथी धन आदि छीनवीने लक्ष नवानो भय, (४) अकस्मात्भय-विना डरबिना  
अचानक भी नवु, (५) आजीविकाभय-भारो निर्वाह के भय थाये ? दुष्काल आदिमा  
प्राण कछ रीते राखीश ? इत्यादि रूप भय, (६) प्राण वियोगने भय, अने (७) अश्लोक  
(अपयश) भवानो भय, आ सात भयेथी वसति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत  
लक्ष अने ऐश्वर्य-मद आ आठे भदोथी तथा (१) वसति-स्त्री, पशु, पण्डक  
सहित स्थानने त्याग, (२) कथा-स्त्री सम्बन्धी वातानि त्याग, (३) निपथि-भय

॥ મૂલમ્ ॥

પડિક્કમામિ સત્તહિં ભયટ્ટાણેહિં । અટ્ટહિં મયટ્ટાણેહિં ।  
નવહિં વભચેરગુત્તીહિં । દસવિહે સમણધમ્મે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

॥ ત્રયા ॥

પતિકામામિ સપ્પભિર્ભયસ્થાનૈઃ । અટ્ટભિર્મદસ્થાનૈઃ । નવભિર્મદ્ધર્ચ-  
ગુપ્તિભિઃ । દશવિત્તે શ્રમણધર્મ્મે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

॥ ટીકા ॥

‘પડિક્કમામિ’ इत्यादि । भय=भीतिस्तस्य स्थानानि=पर्यायभेदाः-भयस्थानानि  
तैः, सप्त भयस्थानान्युक्तानि यथा-‘इहपरलोयादानमरुम्हा आजीवमरणमसिलोए’  
इति । अस्य ‘इहपरलोकादानमरुस्मादाजीवमरणमश्लोकः’-इतिच्छाया । तत्र  
लोकशब्दस्य द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणत्वादिहेत्यनेनाप्यन्वयः, इहलोकः=सजातीयलोकस्त  
स्माद्भय यथा मनुष्येभ्यो मनुष्याणा, तिर्यग्भ्यस्तिरश्वा भयम् । परलोक =विजा  
तीयलोकस्तस्माद्भय, यथा सिंहादिभ्यो मनुष्यादीना भयम्, आदीयते=गृह्यते  
इत्यादान धन, तद्धेतुक चौरा-ऽग्नि-राजादिभ्यो भयम्, यद्वा आदान=राजादि  
वित्तीर्णपदशीग्रामादिस्वीकरण, तदर्थं भयमर्थाद्राजादिभ्य एव, राजानो हि चार  
चक्षुष्वात् क्षणे तुष्टा क्षणे रुष्टा दत्तमपि सर्वस्व कदाचिदपराधलवेनाऽप्यपहरन्ति,  
से फिर यह भविष्य मे ऐसा अनर्थ न करके अच्छे रास्ते चले  
और सुखी बने ॥ ६ ॥

इसी प्रकार दूसरा आम्रफल के खानेवाले छह पुरुषों का  
दृष्टान्त प्रसिद्ध ही है ॥ सू० ८ ॥

(१) इहलोकभय-मनुष्य को मनुष्य से और तिर्यञ्च को तिर्यञ्च  
से भय, (२) परलोकभय-मनुष्य आदि को सिंह आदि से भय, (३)  
आदानभय-चोर राजा आदि से धन आदि जीने जाने का भय, (४)

કરતુ નેષ્ઠએ જેથી એ ફરીથી ભવિષ્યમા આવેા અનર્થ ન કરીને ઉત્તમ માર્ગે  
નય અને સુખી થાય (૬) આવી રીતે ખીજુ આશ્રક્ષણ ખાનારા છ પુરૂષોનું  
દૃષ્ટાન્ત પ્રસિદ્ધજ છે (સૂ૦ ૮)

(૧) ઈહલોકભય- મનુષ્યને મનુષ્યથી અને તિર્થંચને તિર્થંચથી ભય, (૨) પર  
લોકભય-મનુષ્ય આદિને સિંહ વિગેરેથી ભય, (૩) આદાનભય-ચોર ગણ વિગે

तथोक्त नीतौ-‘राजा मित्र केन दृष्ट श्रुत वा,’ ‘राजसेवा मनुष्याणामसिंधारा-  
वलेहनम् । पञ्चाननपरिष्वङ्गो, व्यालीवदनचुम्बनम्’ इत्यादि । अरुस्मात्=बाह्य-  
निमित्तमन्तरेणैव सर्पादिवुद्ध्या रज्ज्वादिभ्यो भय, सहसैवार्चनादादिश्रवणाद्वा  
भयम् । आजीवः=जीविता तस्मात्तदर्थं वा भयम्-‘निर्धनोऽहं दुर्भिक्षादीं कथं प्राणान्  
धारयिष्यामि’ इति, ‘कथं वा मम जीविका सुदृढा भविष्यतीति । मरण=प्राण-  
वियोगस्तस्माद्भयम् । श्लोक =यशः-‘पद्ये यशसि च श्लोकः’-इत्यमरः, न श्लोकः  
अश्लोकः=अपयशस्तस्माद्भयम् । तदेवमुक्तविधैः सप्तभिर्भयस्थानैर्यो मयाऽतिचारः  
कृतस्तस्मात्त वा प्रतिक्रामामि=विनिवर्त्ते-परित्यजामि वेति समन्वयः । अत्रोक्त-  
स्य ‘पडिक्रमामि’ इत्यस्येत आरभ्य त्रयस्त्रिंशदाशतना यावत् सम्बन्धो योद्ध-  
व्यः । ‘अद्विहिं’ अष्टभिः, ‘मयहाणेहिं’ मदोऽहङ्कारस्तस्य स्थानानि=जाति-  
कुल-बल-रूप-तपः-श्रुत-लाभै-श्वर्यरूपाणि तैः, सम्बन्धः प्राग्वत् ।

‘नवहिं’ नवभिः, ‘वभचेरगुत्तीहिं’ ब्रह्मचर्यं=मैयुनविरतित्रयं तस्य  
गुप्तयः=रक्षाप्रकाराः ब्रह्मचर्यगुप्तयः=मैयुनविरतिपरिरक्षणोपायास्ताभिः, सम्बन्धः  
पूर्ववत् । ताश्च ब्रह्मचर्यगुप्तय- (१) वसति- (२) कथा- (३-४) निपथेन्द्रिय- (५)  
कुडचान्तर- (६) पूर्वक्रीडा- (७-८) प्रणीताऽतिमात्राहार- (९) विभूषणपरिहाररूपाः,  
तत्र वसतिः=स्त्रीपशुपण्डकाऽऽश्रितस्थानसेवनं तत्परिहारः प्रथमा गुप्तिः (१) ।

अकस्माद्भय- विनाकारण ही अचानक डर जाना, (५) आजीविका  
भय-मेरा निर्वाह कैसे होगा ! दुष्काल आदि में प्राण कैसे रखूंगा !  
इत्यादिरूप भय, (६) प्राणवियोग का भय, और (७) अश्लोक (अपयश)  
होने का भय, इन सात भयों से, जाति, कुल, बल, रूप, तप,  
श्रुत, लाभ, और ऐश्वर्य-मद, इन आठ मदों से, तथा (१) वसति-  
स्त्री, पशु, पण्डक सहित स्थान-का त्याग, (२) कथा-स्त्री सम्बन्धी

इथी धन आदि छीनवीने लछ जवानो भय, (४) अकस्मान्भय-विना डरछेज  
अचानक भी जलु, (५) आलुविकाभय-भारे निर्वाह केम थारो ? दुष्काल आदिमा  
प्राणु कथं रीते राभीश ? इत्यादि इय भय, (६) प्राणु वियोगने भय, अने (७) अश्लोक  
(अपयस) थवानो भय, आ सात भयोथी जाति, कुल, बल, रूप, तप, श्रुत  
लभ अने ऐश्वर्य-मद आ आठे मदोथी तथा (१) वसति-स्त्री, पशु, पण्डक  
सहित स्थानने त्याग, (२) कथा-स्त्री सम्बन्धी वातनि त्याग, (३) निपथेन्द्रिय



कथा=स्त्रीसम्बन्धिनी, स्त्रिया सहैकान्ते वा वार्ता, तत्परिहारो द्वितीया (२)।  
 निपद्या=पूर्वमुपविष्टाना पश्चादुत्थिताना स्त्रीणामासने तदुत्थानोत्तर द्दोराद्वयाभ्यन्तरे  
 समुपवेशस्तत्परिहारः (३)। इन्द्रियम्=इन्द्रियाग्रकोकन=स्त्रीणामगोपाङ्गनिरीक्षण,  
 तत्परिहारः (४)। कुड्यान्तर=भिन्त्यादिव्यवहिताना स्त्रीणा सम्मोहकमधुर  
 ध्वन्याद्याकर्णन तत्परिहारः (५)। 'पूर्वक्रीडा'=दीक्षाग्रहणात्पूर्वं ससारावस्थाया  
 स्त्रिया सह कृतस्य क्रीडादेः स्मरण, तत्परिहारः (६), प्रणीत=निव्यन्दमान  
 घृतादिमिन्दु, ततोऽन्यदपि वा धातूपबृहक भोज्यवस्तु तत्परिहार. (७),  
 अतिमात्राऽऽहारः=परिमाणाधिकभोजन, तत्परिहारः (८), विभूषण=स्नानादिना  
 शरीरसंस्कारस्तत्परिहारः (९)। 'दसविहे' दश विधाः=प्रकारा यस्य स तथा  
 तस्मिन् 'समणधम्मे' श्रमणधर्मे, 'यो मयाऽतिचारः कृत'-इत्यादिसम्बन्धो

वार्ता का त्याग, (३) निपद्या-जहाँ पहले स्त्री बैठी हो उस स्थान  
 पर स्त्री के उठ जाने पर दो घड़ी के भीतर उस स्थान पर उपवेशन  
 (बैठने) आदि का त्याग, (४) इन्द्रिय-स्त्री के अगोपाग के निरीक्षण  
 का त्याग, (५) कुड्यान्तर-दीवार आदि की ओटमे स्त्री पुरुष के  
 विषयोत्तेजक शब्द श्रवण का त्याग, (६) पूर्वक्रीडा-स्त्री के साथ  
 पहले की हुई क्रीडा आदि के स्मरण का त्याग, (७) प्रणीत-प्रतिदिन  
 सरस भोजन का त्याग, (८) अतिमात्राहार-प्रमाण से अधिक  
 भोजन का त्याग, (९) विभूषा-शरीर की शुश्रूषा का त्याग, इन  
 नौ ब्रह्मचर्यगुणियों (बाडों) द्वारा और क्षान्ति, मुक्ति (लोभ  
 परित्याग), आर्जव (मायापरित्याग), मार्दव (मानपरित्याग), लाघव

पड़ेला स्त्री छोड़ी होय ते स्थान उपर स्त्री उठी गया गाह वे घड़ीनी अहर ते  
 जग्या उपर वेसवा विगेरेना त्याग, (४) इन्द्रिय-स्त्रीना अग-उपाग नेवाने  
 त्याग, (५) कुड्यान्तर-दीवाल आदिनी ओटमा स्त्रीपुरुषना विषयने उत्तेजन करे  
 जेवा शब्द सावणवाने त्याग, (६) पूर्वक्रीडा-स्त्रीनी साथे प्रथम करेली क्रीडा  
 विगेरेना स्मरणने त्याग, (७) प्रणीत-प्रतिदिन सरस लोचनने त्याग, (८)  
 अतिमात्राहार-प्रमाथुथी वधारे मोशक भावाने त्याग (९) विभूषा-शरीरनी  
 शुश्रूषाने त्याग, आ नव ब्रह्मचर्य गुणित्यो (बाडो) द्वारा अने क्षान्ति, मुक्ति

१ कुड्यस्य अन्तर=व्यवधान कुड्यान्तरम्, एतस्योपलक्षणत्वादुक्तोऽर्थः ।

મૃતપૂર્વ એવ, તત્ર દશ શ્રમણધર્મા યથા-ક્ષાન્તિ-શુક્તિ-રાજ્વ, માર્દવ, લાઘવ,  
સત્ય, સયમ-સ્તપ-સ્ત્યાગો, બ્રહ્મચર્યવાસથેતિ ॥ સૂ૦ ૯ ॥

॥ મૂલમ્ ॥ ઇગારસહિં ઉવાસગપડિમાહિં ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

॥ છાયા ॥ ઇકાદશભિરુપાસકપ્રતિમાભિઃ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

॥ ટીકા ॥

‘ઇગારસહિં’ ઇત્યાદિ । ઉપાસતે શ્રમણાનિત્યુપાસકાઃ=શ્રાવકાસ્તેપા  
પ્રતિમાઃ=અભિગ્રહા ( પ્રતિજ્ઞાવિશેષાઃ ) ઉપાસકપ્રતિમાસ્તાભિઃ પ્રરૂપણાદૌ યો  
મયાડતિચારઃ કૃત ઇત્યાનિ સમ્વન્ધો યથાપૂર્વમ્ । આસા પ્રતિમાનામાત્રા પ્રથમા  
(૧) માસિકી સમ્યક્ત્વ (દર્શન)-પ્રતિમા, શઙ્કાદિદોષરહિતસ્ય સમ્યક્ત્વસ્ય  
પાલનમ્ । દ્વિતીયા (૨) દ્વૈમાસિકી વ્રતપ્રતિમા, તત્ર નૈર્મલ્યેન

(દ્રવ્યભાવસે લઘુતા), સત્ય, સયમ, તપ, ત્યાગ (સામ્ભોગિક  
સાધુઓં કો આહારાદિ લાકર દેના) ઓર બ્રહ્મચર્યવાસ (બ્રહ્મચર્ય-  
પાલન) ઇસ દશ પ્રકાર કે યતિધર્મ મે જો કોઈ અતિચાર કિયા ગયા  
હો તો ઉસસે મૈં નિવૃત્ત હોતા હૂં ॥ સૂ૦ ૯ ॥

ઉપાસકોં (શ્રાવકોં) કી પ્રતિમાઈ (પ્રતિજ્ઞાવિશેષ) ગ્યારહ  
હોતી હૈં, ઉનમૈં પહલી ‘દર્શનપ્રતિમા’ ઇક માસ કી, ઇસમૈં ઇક  
માસ ઇકાન્તર ઉપવાસ ઓર શઙ્કાદિ દોષોં સે રહિત નિર્મલ સમકિત  
કા પાલન કિયા જાતા હૈ (૧) । દૂસરી ‘વ્રતપ્રતિમા’ દો માસ કી  
હોતી હૈ, ઇસમૈં પૂર્વક્રિયા સહિત દો મહીને તક દો દો ઉપવાસ

(લોભનો ત્યાગ) આજ્ઞવ (માયાનો ત્યાગ) માર્દવ (માનનો ત્યાગ) લાઘવ  
(દ્રવ્ય ભાવથી હળવાપણુ), સત્ય, સયમ, તપ, ત્યાગ (સામ્ભોગિક સાધુઓને  
આહાર વિગેરે લાવી દેવો), અને બ્રહ્મચર્યવાસ (બ્રહ્મચર્યપાલન) આ દશ પ્રકાર  
ના યતિધર્મમા જે કોઈ અતિચાર કર્યો હોય તો તેમાથી હું નિવૃત્ત થાઉ છું (સૂ૦ ૯)

ઉપાસકો (શ્રાવકો) ની પ્રતિમાઓ (પ્રતિજ્ઞાવિશેષ) અગિયાર હોય છે  
એમા પહેલી ‘દર્શનપ્રતિમા’ એક માસની, એમા એક માસ એકાન્તર ઉપવાસ  
અને શઙ્કાદિ દોષોથી રહિત નિર્મલ સમકિતનું પાલન કરાય છે (૧) બીજી ‘વ્રત  
પ્રતિમા’ જે માસની હોય છે એમા પૂર્વ ક્રિયા સહિત જે મહિના સુધી બપ્પે  
ઉપવાસના પારણાપૂર્વક વ્રત પ્રત્યાખ્યાન નિર્મળ પાળવામા આવે છે (૨) ત્રીજી

कथा=स्त्रीसम्बन्धिनी, स्त्रिया सहैकान्ते वा वार्ता, तत्परिहारो द्वितीया (२)।  
 निपद्या=पूर्वमुपविष्टाना पश्चादुत्थिताना स्त्रीणामासने तदुत्थानोत्तर होराद्वयाभ्यन्तरे  
 समुपवेशस्तत्परिहारः (३)। इन्द्रियम्=इन्द्रियावलोकन=स्त्रीणामगोपाग्निरिरीक्षण,  
 तत्परिहारः (४)। कुडयान्तर=भित्त्यादिव्यवहिताना स्त्रीणा सम्मोहकमधुर  
 ध्वन्याद्याकर्णन तत्परिहारः (५)। 'पूर्वक्रीडा'=दीक्षाग्रहणात्पूर्वं ससारावस्थाया  
 स्त्रिया सह कृतस्य क्रीडादेः स्मरण, तत्परिहारः (६), प्रणीत=निप्यन्दमान  
 घृतादिमिन्दु, ततोऽन्यदपि वा धातूपबृहक भोज्यवस्तु तत्परिहारः (७),  
 अतिमात्राऽऽहारः=परिमाणाधिकभोजन, तत्परिहारः (८), विभूषण=स्नानादिना  
 शरीरसस्कारस्तत्परिहारः (९)। 'दसविहे' दश विधाः=प्रकारा यस्य स तथा  
 तस्मिन् 'समणधम्मे' श्रमणधर्मे, 'यो मयाऽतिचारः कृत'-इत्यादिसम्बन्धो

वार्ता का त्याग, (३) निपद्या-जहाँ पहले स्त्री बैठी हो उस स्थान  
 पर स्त्री के उठ जाने पर दो घड़ी के भीतर उस स्थान पर उपवेशन  
 (बैठने) आदि का त्याग, (४) इन्द्रिय-स्त्री के अगोपाग के निरीक्षण  
 का त्याग, (५) कुडयान्तर-दीवार आदि की ओटमें स्त्री पुरुष के  
 विषयोत्तेजक शब्द श्रवण का त्याग, (६) पूर्वक्रीडा-स्त्री के साथ  
 पहले की हुई क्रीडा आदि के स्मरण का त्याग, (७) प्रणीत-प्रतिदिन  
 सरस भोजन का त्याग, (८) अतिमात्राहार-प्रमाण से अधिक  
 भोजन का त्याग, (९) विभूषा-शरीर की शुश्रूषा का त्याग, इन  
 नौ ब्रह्मचर्यगुणियों (बाडों) द्वारा और क्षान्ति, मुक्ति (लोभ  
 परित्याग), आर्जव (मायापरित्याग), मार्दव (मानपरित्याग), लाघव

पडेला श्री बेठी होय ते स्थान उपर श्री उठी गया जाह जे घडीनी अहर ते  
 जग्या उपर बेसवा विगेरेना त्याग, (४) इन्द्रिय-स्त्रीना अग-उपाग जेवाने  
 त्याग, (५) कुडयान्तर-दीवाल आदिनी ओटमा स्त्रीपुरुषना विषयने उत्तेजन करे  
 जेवा शब्द साकणवाने त्याग, (६) पूर्वक्रीडा-स्त्रीनी साथे प्रथम करेली क्रीडा  
 विगेरेना स्मरणने त्याग, (७) प्रणीत-प्रतिदिन सरस बेजानने त्याग, (८)  
 अतिमात्राहार-प्रमाणथी वधारे पोरक भावाने त्याग (९) विभूषा-शरीरनी  
 शुश्रूषावे त्याग, आ नव ब्रह्मचर्यं श्रुतिज्जे (बाडे) द्वारा अने क्षान्ति, मुक्ति

१ कुडयस्य अन्तर=व्यवधान कुडयान्तरम्, एतस्योपलक्षणत्वादुक्तोऽर्थः ।

कच्छत्व च ।-सप्तमी (७) सप्तमासिकी-सच्चित्तपरित्यागप्रतिमा, तत्र सर्वथा सच्चित्तवस्तुपरित्यागः । अष्टमी (८) अष्टमासिकी आरम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र स्वहस्तेनारम्भपरित्यागः । नवमी (९) नवमासिकी-प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र अन्यद्वाराप्यारम्भपरित्यागः । दशमी (१०) दशमासिकी उद्दिष्टभक्तपरित्याग-प्रतिमा, तत्र स्वोद्दिष्टभक्तपरित्यागः । अत्र स्थितेन श्रावकेण क्षुरमुण्डितमुण्डेनाऽ-

छह छह उपवास का पारणापूर्वक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है तथा दोनों लागे खुली रखी जाती हैं (६) । सातवीं 'सच्चित्त-परित्यागप्रतिमा' सात मास की, इसमें सात मास तक सात सात उपवास का पारणा, और सर्वथा सच्चित्त वस्तु का त्याग किया जाता है (७) । आठवीं 'आरम्भपरित्यागप्रतिमा' आठ मास की, इसमें आठ मास तक आठ आठ उपवास का पारणा तथा स्वयं आरम्भ करने का त्याग किया जाता है (८) । नववीं 'प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा' नौ मास की, इसमें नौ मास तक नौ २ उपवास का पारणा और दूसरे से भी आरम्भ करने का परित्याग किया जाता है (९) । दसवीं 'उद्देश्यप्रतिमा' दस मास की, इसमें दस मास तक दस दस उपवास का पारणा तथा अपने उद्देश्य से बनाये गये आहारादि का परित्याग किया जाता है, इसमें स्थित श्रावक क्षुरमुण्डित अथवा अमुण्डित रह कर गृहसम्बन्धी किसी बात के पूछे जाने

पारणापूर्वक अखण्ड ब्रह्मचर्यनु पालन कराय छे तथा णने लागे खुली राभु वामा आवे छे (६) सातमी 'सच्चित्तपरित्यागप्रतिमा' सात मासनी, ज्येभा सात मास सुधी सात सात उपवासना पारणा अने सर्वथा सच्चित्त वस्तुने त्याग कराय छे (७) आठमी 'आरम्भपरित्यागप्रतिमा' आठ मासनी, ज्येभा आठ मास सुधी आठ आठ उपवासना पारणा अने पोताना छाये आरम्भ करवाने त्याग कराय छे (८) नवमी 'प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा' नव मासनी, ज्येभा नव मास सुधी नव नव उपवासना पारणा अने पीतथी पणु आरम्भ करवाने परित्याग कराय छे (१०) दशमी 'उद्देश्यप्रतिमा' दश मासनी, ज्येभा दश मास सुधी दश दश उपवासना पारणा अने पोताना उद्देश्यथी णनावाज्येला आहारादिकने परित्याग कराय छे, ज्येभा रहेल श्रावक क्षुरमुण्डित अथवा अमुण्डित गृहीने घर

व्रत-प्रत्याख्यानयोः पालनम् । तृतीया (३) त्रैमासिकी सामायिक-  
प्रतिमा, तत्र अतिचारवर्जनपूर्वकमुभयोः कालयोः सामायिकाऽऽचरणम् ।  
चतुर्थी (४) चातुर्मासिकी पौषधप्रतिमा, तत्र अष्टमी-चतुर्दशी-पूर्णिमादिपर्वतिथि  
पूषवासः । पञ्चमी (५) पञ्चमासिकी प्रतिमा, तत्र स्नान-रात्रिभोजनवर्जन-कच्छै  
कमोचन-दिवाब्रह्मचर्यपालन - नक्तन्तत्परिमाणकरणरूपपञ्चविधमर्यादापालनम् ।  
षष्ठी (६) 'पाण्मासिकी ब्रह्मप्रतिमा, तत्र सर्वथा ब्रह्मचर्यपालनम्-अवद्रपरिधान

का पारणापूर्वक व्रतप्रत्याख्यान निर्मल पाला जाता है (२) । तीसरी  
'सामायिकप्रतिमा' तीन मास की, इसमें तीन मास तक तीन  
तीन उपवास का पारणा किया जाता है, दोनों काल अतिचार  
रहित सामायिक की जाती है (३) । चौथी 'पौषधप्रतिमा' चार  
मास की, इस में चार मास तक चार चार उपवास का पारणापूर्वक  
अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा आदि पर्व तिथियों में पौषध किया जाता  
है (४) । पाचवी 'प्रतिमा' नामकी प्रतिमा पांच मास की, इसमें  
पांच मास तक पाच पाच उपवास का पारणापूर्वक पाच बोलों की  
मर्यादा की जाती है । वे पाच बोल इस प्रकार हैं-(१) स्नान न करना,  
(२) रात्रिभोजन न करना, (३) एक लॉग खुली रखना, (४) दिन  
में मैथुन का सर्वथा त्याग करना, और (५) रात्रि में उसका  
परिमाण करना, परन्तु पौषध-अवस्था में सर्वथा त्याग ही करना  
(५) । छठी 'ब्रह्मप्रतिमा' छह मास की, इसमें छह महीने तक

'सामायिकप्रतिमा' त्रय मासनी अथवा त्रय मास सुधी त्रय त्रय उपवासना  
पारणा कराय छे अन्ने वधत अतिचाररहित सामायिक कराय छे (३),  
अथवा 'पौषध प्रतिमा' चार मासनी, अथवा चार मास सुधी चार चार उप  
वासना पारणा अने आठम, चौदश, पूनम, आदि पर्व तिथियोमा पौषध कराय  
छे (४) पाचमी 'प्रतिमा' नामकी प्रतिमा पाच मासनी, अथवा (पाच मास  
सुधी पाच पाच उपवासना पारणापूर्वक) निम्न पाच बोलोनी मर्यादा कराय छे  
ते पाच बोल आ प्रकारे छे-(१) स्नान न करवु (२) रात्रि लोभन न करवु  
(३) अथवा एक लॉग खुली राखवी (४) द्विपसे मैथुननेो सर्वथा त्याग करवो अने (५)  
रात्रिमा अनेो परिभाषु करवु, परन्तु पौषध अवस्थामा सर्वथा त्याग करवो  
(६) छठी 'ब्रह्मप्रतिमा' छ मासनी, अथवा (छ मास सुधी छ छ उपवासना

कच्छत्व च ।-सप्तमी (७) -सप्तमासिकी-सच्चित्तपरित्यागप्रतिमा, तत्र सर्वथा सच्चित्तवस्तुपरित्यागः । अष्टमी (८) अष्टमासिकी आरम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र स्वहस्तेनारम्भपरित्यागः । नवमी (९) नवमासिकी-प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र अन्यद्वाराप्यारम्भपरित्यागः । दशमी (१०) दशमासिकी उद्दिष्टभक्तपरित्याग-प्रतिमा, तत्र स्वोद्दिष्टभक्तपरित्यागः । अत्र स्थितेन श्रावकेण क्षुरमुण्डितमुण्डेनाऽ-

छह छह उपवास का पारणापूर्वक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है तथा दोनो लागे खुली रखी जाती हैं (६) । सातवीं 'सच्चित्त-परित्यागप्रतिमा' सात मास की, इसमें सात मास तक सात मास उपवास का पारणा, और सर्वथा सच्चित्त वस्तु का त्याग किया जाता है (७) । आठवीं 'आरम्भपरित्यागप्रतिमा' आठ मास की, इसमें आठ मास तक आठ आठ उपवास का पारणा तथा स्वयं आरम्भ करने का त्याग किया जाता है (८) । नववीं 'प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा' नौ मास की, इसमें नौ मास तक नौ २ उपवास का पारणा और दूसरे से भी आरम्भ कराने का परित्याग किया जाता है (९) । दसवीं 'उद्देश्यप्रतिमा' दस मास की, इसमें दस मास तक दस दस उपवास का पारणा तथा अपने उद्देश्य से बनाये गये आहारादि का परित्याग किया जाता है, इसमें स्थित श्रावक क्षुरमुण्डित अथवा अमुण्डित रह कर गृहसम्बन्धी किसी बात के पूछे जाने

पारणापूर्वक अखण्ड ब्रह्मचर्यनु पालन कराय छे तथा णने लागे खुली राण वामा आवे छे (६) सातमी 'सच्चित्तपरित्यागप्रतिमा' सात मासनी, जेभा सात मास सुधी सात सात उपवासना पारणा अने सर्वथा सच्चित्त वस्तुने त्याग कराय छे (७) आठमी 'आरम्भपरित्यागप्रतिमा' आठ मासनी, जेभा आठ मास सुधी आठ आठ उपवासना पारणा अने पोताना हाथे आरम्भ करवाने त्याग कराय छे (८) नवमी 'प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा' नव मासनी, जेभा नव मास सुधी नव नव उपवासना पारणा अने भीन्तथी पणु आरम्भ करवावने परित्याग कराय छे (९) दशमी 'उद्देश्यप्रतिमा' दश मासनी, जेभा दश मास सुधी दश दश उपवासना पारणा अने पोताना उद्देश्यी णनावाजेल आहारादिकने परित्याग कराय छे, जेभा रडेल श्रावक क्षुरमुण्डित अथवा अमुण्डित गृहीने घर

व्रत-प्रत्याख्यानयोः पालनम् । तृतीया (३) त्रैमासिकी सामायिक प्रतिमा, तत्र अतिचारवर्जनपूर्वकमुभयोः कालयोः सामायिकाऽऽचरणम् । चतुर्थी (४) चातुर्मासिकी पौषधप्रतिमा, तत्र अष्टमी-चतुर्दशी-पूर्णिमादिपर्वतिथि पूषवासः । पञ्चमी (५) पञ्चमासिकी प्रतिमा, तत्र स्नान-रात्रिभोजनवर्जन-कच्छै कमोचन-दिवाब्रह्मचर्यपालन - नक्तन्तत्परिमाणकरणरूपपञ्चविधमर्यादापालनम् । षष्ठी (६) 'षाण्मासिकी ब्रह्मप्रतिमा, तत्र सर्वथा ब्रह्मचर्यपालनम्-अब्रह्मपरिधान

का पारणापूर्वक व्रतप्रत्याख्यान निर्मल पाला जाता है (२) । तीसरी 'सामायिकप्रतिमा' तीन मास की, इसमें तीन मास तक तीन तीन उपवास का पारणा किया जाता है, दोनों काल अतिचार रहित सामायिक की जाती है (३) । चौथी 'पौषधप्रतिमा' चार मास की, इसमें चार मास तक चार चार उपवास का पारणापूर्वक अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा आदि पर्व तिथियों में पौषध किया जाता है (४) । पाचवी 'प्रतिमा' नामकी प्रतिमा पाच मास की, इसमें पाच मास तक पाच पाच उपवास का पारणापूर्वक पाच बोलों की मर्यादा की जाती है । वे पाच बोल इस प्रकार हैं-(१) स्नान न करना, (२) रात्रिभोजन न करना, (३) एक लँग खुली रखना, (४) दिन में मैथुन का सर्वथा त्याग करना, और (५) रात्रि में उसका परिमाण करना, परन्तु पौषध-अवस्था मे सर्वथा त्याग ही करना (५) । छठी 'ब्रह्मप्रतिमा' छह मास की, इसमें छह महीने तक

'सामायिकप्रतिमा' त्रयु मासनी ज्येष्ठा त्रयु मास सुधी त्रयु त्रयु उपवासना पारणा कराय छे जन्ने वधत अतिचाररहित सामायिक कराय छे (३), चौथी 'पौषध प्रतिमा' चार मासनी, ज्येष्ठा चार मास सुधी चार चार उपवासना पारणा अने आठम, द्वादश, पूनम, आदि पर्व तिथियेमा पौषध कराय छे (४) पाचमी 'प्रतिमा' नामनी प्रतिमा पाच मासनी, ज्येष्ठा (पाच मास सुधी पाच पाच उपवासना पारणापूर्वक) निम्न पाच बोलोनी मर्यादा कराय छे ते पाच बोल आ प्रकारे छे-(१) स्नान न करवु (२) रात्रि लोञ्जन न करवु (३) एक लँग खुली राखवी (४) द्विसे मैथुनो सवथा त्याग करवो अने (५) रात्रिमा ज्येष्ठा परिमाण करवु, परन्तु पौषध अवस्थामा सवथा त्याग करवो (६) छठी 'ब्रह्मप्रतिमा' छ मासनी, ज्येष्ठा (छ मास सुधी छ छ उपवासना

कच्छत्व च ।-सप्तमी (७) -सप्तमासिकी-सचित्तपरित्यागप्रतिमा, तत्र सर्वथा सचित्तवस्तुपरित्यागः । अष्टमी (८) अष्टमासिकी आरम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र स्वहस्तेनारम्भपरित्यागः । नवमी (९) नवमासिकी-प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा, तत्र अन्यद्वाराप्यारम्भपरित्यागः । दशमी (१०) दशमासिकी उद्दिष्टभक्तपरित्यागप्रतिमा, तत्र स्वोद्दिष्टभक्तपरित्यागः । अत्र स्थितेन श्रावकेण क्षुरमुण्डितमुण्डेनाऽ-

छह छह उपवास का पारणापूर्वक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन किया जाता है तथा दोनों लागे खुली रखी जाती हैं (६) । सातवीं 'सचित्तपरित्यागप्रतिमा' सात मास की, इसमें सात मास तक सात सात उपवास का पारणा, और सर्वथा सचित्त वस्तु का त्याग किया जाता है (७) । आठवीं 'आरम्भपरित्यागप्रतिमा' आठ मास की, इसमें आठ मास तक आठ आठ उपवास का पारणा तथा स्वयं आरम्भ करने का त्याग किया जाता है (८) । नववीं 'प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा' नौ मास की, इसमें नौ मास तक नौ २ उपवास का पारणा और दूसरे से भी आरम्भ कराने का परित्याग किया जाता है (९) । दसवीं 'उद्देश्यप्रतिमा' दस मास की, इसमें दस मास तक दस दस उपवास का पारणा तथा अपने उद्देश्य से बनाये गये आहारादि का परित्याग किया जाता है, इसमें स्थित श्रावक क्षुरमुण्डित अथवा अमुण्डित रह कर गृहसम्बन्धी किसी बात के पूछे जाने

पारणापूर्वक अखण्ड ब्रह्मचर्यनु पालन कराय छे तथा जने लागे खुली राष् वामा आवे छे (६) सातमी 'सचित्तपरित्यागप्रतिमा' सात मासनी, जेभा सात मास सुधी सात सात उपवासना पारणा अने सर्वथा सचित्त वस्तुने त्याग कराय छे (७) आठमी 'आरम्भपरित्यागप्रतिमा' आठ मासनी, जेभा आठ मास सुधी आठ आठ उपवासना पारणा अने पोताना छथे आरम्भ करवाने त्याग कराय छे (८) नवमी 'प्रेष्यारम्भपरित्यागप्रतिमा' नव मासनी, जेभा नव मास सुधी नव नव उपवासना पारणा अने पीनथी पशु आरम्भ कगववाने परित्याग कराय छे (९) दशमी 'उद्देश्यप्रतिमा' दश मासनी, जेभा दश मास सुधी दश दश उपवासना पारणा अने पोताना उद्देश्यी जनवाजेला आहारादिकने परित्याग कराय छे, जेभा रडेल श्रावक क्षुरमुण्डित अथवा अमुण्डित गृहीने घर



व्रत-प्रत्याख्यानयोः पालनम् । तृतीया (३) त्रैमासिकी सामायिक प्रतिमा, तत्र अतिचारवर्जनपूर्वकमुभयोः कालयोः सामायिकाऽऽचरणम् । चतुर्थी (४) चातुर्मासिकी पौषधप्रतिमा, तत्र अष्टमी-चतुर्दशी-पूर्णिमादिपर्वतिथि पूषवासः । पञ्चमी (५) पञ्चमासिकी प्रतिमा, तत्र स्नान-रात्रिभोजनवर्जन-कच्छै कमोचन-दिवाब्रह्मचर्यपालन - नक्तन्तत्परिमाणकरुणरूपपञ्चविधमर्यादापालनम् । षष्ठी (६) 'षाण्मासिकी ब्रह्मप्रतिमा, तत्र सर्वथा ब्रह्मचर्यपालनम्-अब्रह्मपरिधान

का पारणापूर्वक व्रतप्रत्याख्यान निर्मल पाला जाता है (२) । तीसरी 'सामायिकप्रतिमा' तीन मास की, इसमें तीन मास तक तीन तीन उपवास का पारणा किया जाता है, दोनों काल अतिचार रहित सामायिक की जाती है (३) । चौथी 'पौषधप्रतिमा' चार मास की, इस में चार मास तक चार चार उपवास का पारणापूर्वक अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा आदि पर्व तिथियों में पौषध किया जाता है (४) । पाचवी 'प्रतिमा' नामकी प्रतिमा पांच मास की, इसमें पाच मास तक पाच पाच उपवास का पारणापूर्वक पांच बोलों की मर्यादा की जाती है । वे पाच बोल इस प्रकार हैं—(१) स्नान न करना, (२) रात्रिभोजन न करना, (३) एक लौंग खुली रखना, (४) दिन में मैथुन का सर्वथा त्याग करना, और (५) रात्रि में उसका परिमाण करना, परन्तु पौषध-अवस्था में सर्वथा त्याग ही करना (५) । छठी 'ब्रह्मप्रतिमा' छह मास की, इसमें छह महीने तक

'सामायिकप्रतिमा' त्रय मासनी अथवा त्रय मास सुधी त्रय त्रय उपवासना पारणा कराये छे गन्ने वधत अतिचाररहित सामायिक कराये छे (३), चौथी 'पौषध प्रतिमा' चार मासनी, अथवा चार मास सुधी चार चार उपवासना पारणा अने आठम, दश, पूनम, आदि पर्व तिथियोमा पौषध कराये छे (४) पाचवी 'प्रतिमा' नामकी प्रतिमा पाच मासनी, अथवा (पाच मास सुधी पाच पाच उपवासना पारणापूर्वक) निम्न पाच बोलोनी मर्यादा कराये छे ते पाच बोल आ प्रकारे छे—(१) स्नान न करु (२) रात्रि भोजन न करु (३) एक लाग खुली राखी (४) द्विसे मैथुनो सर्वथा त्याग करवे अने (५) रात्रिमा अथवा परिभाषु करु, परन्तु पौषध अवस्थामा सर्वथा त्याग करवे (६) छठी 'ब्रह्मप्रतिमा' छ मासनी, अथवा (छ मास सुधी छ छ उपवासना

॥ मूलम् ॥

वारसहि भिक्षुपडिमाहि ॥ सू० ११ ॥

॥ उया ॥

द्वादशभिर्भिक्षुप्रतिमाभिः ॥ सू० ११ ॥

॥ टीका ॥

द्वादशभिर्भिक्षुप्रतिमाभिः-भिक्षुणा प्रतिमाः भिक्षुप्रतिमास्ताभिर्योऽतिचारः कृत इत्यादिसम्बन्धः प्राग्बदेव । तत्र प्रथमा मासिकी भिक्षोः प्रतिमा, तस्यामन्नस्य जलस्य चैकैका दत्तिर्ग्राह्या, दत्तिश्च हस्तपात्रादितो निरवच्छिन्न-धारारूपेण पतिता भिक्षा गृह्यते, धाराविच्छेदेन तु मिथ्यमात्रपातेऽपि दत्ति-भेदः । एव द्वैमासिकी-त्रैमासिकी-चातुर्मासिकी-पाञ्चमासिकी-षण्मासिकी-सप्त-मासिकीषु क्रमेणाऽन्न-जलयोर्दत्तिद्वय-त्रय-चतुष्टय-पञ्चतय-षट्क-सप्तकानि गृह्यन्त इति स्वयमूहनीयम् । अष्टमी प्रतिमा सप्ताहोरात्रिकी, तत्र चतुर्विधाऽऽ-

प्रतिमा के गुण उत्तर उत्तर प्रतिमामें समझने चाहिये । इनमें प्ररूपणा आदि द्वारा जो कोई अतिचार लगा हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥सू० १०॥

भिक्षु (साधु) की चारह प्रतिमाएँ (प्रतिज्ञाविशेष) होती हैं । पहली एक मासकी, यावत् सातवीं सातमासकी भिक्षुप्रतिमा । पहली प्रतिमामे निर्लेप एक दत्ति अन्नकी एक दत्ति पानी की ली जाती है । अखण्डित एक धारा से एक बार जितना आहारपानी पात्र मे गिरे उतना ही उपभोग में ले । इसी प्रकार क्रमसे सातवी प्रतिमामे सात दत्ति अन्न और सात दत्ति पानी की ली

भाभा समञ्जसा लोभ्ये येमा प्रपथ्या आदि द्वारा जे ठोअ अतिचार लाग्या डोय तो तेभाथी हु निवृत्त थाडि छु (सू० १०)

भिक्षु (साधु) नी णार प्रतिमाओ (प्रतिज्ञाविशेष) डोय जे पडेदी अेक मासनी, णीअ जे मासनी, यवत् सातभी सात मासनी भिक्षुप्रतिमा पडेदी प्रतिमाभा निर्लेप अेक दत्ति अन्ननी अेक दत्ति पाणीनी लेवाय छे अभरित अेकधागथी अेक वपत्त जेटेला आहार पाणी पात्रभा पडे तेटेलोअ (पथोलाभा लो (१) जेअ पथके धाराणी ...नी प्रतिमाभा सात दत्ति अन्ननी अने

मुण्डितेन वा गृहसम्बन्धे कैथित्किञ्चित्पृष्टे सति तद्ज्ञाने 'वेद्मी'-ति तद्ज्ञाने 'न वेद्मीति च निगदता भाव्यम् । एकादशी (११) एकादशमासिकी-श्रमणभूत प्रतिमा, तत्र तेन शिखायज्ञं कृतलञ्चनेन क्षुरमुण्डितेन वा साधुवेपधारिणा ईर्या समित्यादिकमखिल साधुधर्ममनुपालयता धृतनिर्वस्त्ररजोहरणदण्डेन स्वजाति मात्रत एव पालितभिक्षाग्रहणत्रतेन भिक्षायै गृहप्रवेशवेलाया 'श्रमणोपासकाय प्रतिपन्नाय भिक्षा देया'-इति भाषितव्यम्, 'ऋस्त्व'-मिति केनापि पृष्टे सति 'श्रमणोपासकोऽहम्,-इति द्युयता भषितव्यम् । आस्वेकादशसु प्रतिमासु यथोत्तर पूर्वपूर्वप्रतिमागतगुणसम्बन्धो बोध्यः ॥ सू० १० ॥

पर जानता हो तो कहे कि 'जानता हूँ' और नहीं जानता हो तो ऐसा कहे 'नहीं जानता हूँ' (१०) । ग्यारहवीं 'श्रमणभूत (साधु समान) प्रतिमा' ग्यारह मास की, इस में ग्यारह महीने तक ग्यारह २ उपवास का पारणा किया-जाता है, इस में स्थित श्रावक शक्ति हो तो लोच करे, नहीं तो मुण्डन करे, शिखा रक्खे, ईर्यासमिति आदि समस्त साधुधर्मों का पालन करता हुआ उघाडी (खुली हुई) दाडी का रजोहरण लिये हुए, केवल अपनी जाति में गोचरी करे और गोचरी के लिये किसी के घरमें प्रवेश करते समय बोले कि-'प्रतिमाधारी श्रमणोपासक को भिक्षा दो।' यदि कोई पूछे कि-'तुम कौन हो?' तो कहे कि 'मैं प्रतिमाधारी श्रावक हूँ साधु नहीं' (१) । इन ग्यारह प्रतिमाओं में पहली पहली

सषधी केअं वात पूछवामा अ वे तो न्णुता डोय तो कडे डे हु न्णु छु, नडि न्णुता डोय तो कडे डे १थी न्णुतो, (११) अगियारमी 'श्रमणभूत-(साधुसमान) प्रतिमा' अगियार भासनी, अेमा अगियार भास सुधी अगियार अगियार उप वासना पारणा कराय छे अेमा स्थित श्रावक शक्ति डोय तो डोय करे, नडि तो सु उन करे, अोटली राणे, धर्यासमिति आदि सर्वा साधुधर्मोनु पालन करता यका उघाडी दाडीनु रजोहरण लधने केवण चेतानी न्णतिमाज गोचरी करे अने गोचरी माटे केअंन धरमा प्रवेश करती वभते बोले डे 'प्रतिमाधारी श्रमणोपासकने विक्षा आपो' ने केअं पूछे डे-'तमे केअु छे?' तो कडेडु डे 'हु प्रतिमाधारी श्रावक छु, साधु नहीं' आ अगियार प्रतिमाअेमा पडेली पडेली प्रतिमाना शुष उत्तर-उत्तर प्रति

॥ मूलम् ॥

वारसहि भिक्षुवुपडिमाहि ॥ सू० ११ ॥

॥ उवा ॥

द्वादशभिर्भिक्षुप्रतिमाभिः ॥ सू० ११ ॥

॥ टीका ॥

द्वादशभिर्भिक्षुप्रतिमाभिः—भिक्षुणा प्रतिमा. भिक्षुप्रतिमास्ताभिर्योऽतिचारः कृत इत्यादिसम्बन्धः प्राग्बदेव । तत्र प्रथमा मासिकी भिक्षोः प्रतिमा, तस्यामन्नस्य जलस्य चैकैका दत्तिर्ग्राह्या, दत्तिश्च हस्तपात्रादितो निरवच्छिन्नधारारूपेण पतिता भिक्षा गृह्यते, धाराविच्छेदेन तु मिथ्यमात्रपातेऽपि दत्तिभेदः । एव द्वैमासिकी—त्रैमासिकी—चातुर्मासिकी—पाञ्चमासिकी—षण्मासिकी—सप्तमासिकीषु क्रमेणाऽन्न—जलयोर्दत्तिद्वय—त्रय—चतुष्टय—पञ्चतय—षट्—सप्तकानि गृह्यन्त इति स्वयम्हनीयम् । अष्टमी प्रतिमा सप्ताहोरात्रिकी, तत्र चतुर्विंशः

प्रतिमा के गुण उत्तर उत्तर प्रतिमामें समझने चाहियें । इनमें प्ररूपणा आदि द्वारा जो कोई अतिचार लगा हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥सू० १०॥

भिक्षु (साधु) की वारह प्रतिमाएँ (प्रतिज्ञाविशेष) होती हैं । पहली एक मासकी, यावत् सातवीं सातमासकी भिक्षुप्रतिमा । पहली प्रतिमामे निर्लेप एक दत्ति अन्नकी एक दत्ति पानी की ली जाती है । अखण्डित एक धारा से एक वार जितना आहारपानी पात्र में गिरे उतना ही उपभोग में ले । इसी प्रकार क्रमसे सातवी प्रतिमामें सात दत्ति अन्न और सात दत्ति पानी की ली

मासा समञ्जसा न्नेद्ये येमा प्रश्न्या आदि द्वारा ये दोष अतिचार लाग्या होय तो तेमाथी हुं निवृत्त थाउ छु (सू० १०)

भिक्षु (साधु) नी वार प्रतिमायो (प्रतिज्ञाविशेष) होय उ पडेही एक मासनी, भीउ ये मासनी, यवत् सातमी सात मासनी भिक्षुप्रतिमा पडेही प्रतिमामा निर्लेप एक दत्ति अन्ननी एक दत्ति पाणीनी देवाय छे अर्थात् येधाराथी एक वधत् नेटवो आहार पाणी पात्रमा पडे तेटवोअ उपभोगमा त्ये (१) ये७ प्रकारे कभयी सातमी प्रतिमामा मात दत्ति अन्ननी अने

मुण्डितेन वा गृहसम्बन्धे कैथितिकञ्चित्पृष्ठे सति तद्ज्ञाने 'वेणी'-ति तदज्ञाने 'न वेणीति च निगदता भाव्यम् । एकादशी (११) एकादशमासिकी-श्रमणभूत प्रतिमा, तत्र तेन शिखावर्जं कृतलञ्चनेन क्षुरमुण्डितेन वा साधुवेषधारिणा ईर्या समित्यादिक्रमखिल साधुधर्ममनुपालयता धृतनिर्वह्नरजोहरणदण्डेन स्वजाति मायत एव पालितभिक्षाग्रहणव्रतेन भिक्षायै गृहप्रवेशवेलाया 'श्रमणोपासकाय प्रतिपन्नाय भिक्षा देया'-इति भाषितव्यम्, 'कस्त्र'-मिति केनापि पृष्ठे सति 'श्रमणोपासकोऽहम्,-इति व्रुयता भवितव्यम् । आस्वेकादशसु प्रतिमासु यथोत्तर पूर्वपूर्वप्रतिमागतगुणसम्बन्धो गोभ्यः ॥ सू० १० ॥

पर जानता हो तो कहे कि 'जानता हूँ' और नहीं जानता हो तो ऐसा कहे 'नहीं जानता हूँ' (१०) । ग्यारहवीं 'श्रमणभूत (साधु समान) प्रतिमा' ग्यारह मास की, इस में ग्यारह महीने तक ग्यारह २ उपवास का पारणा किया जाता है, इस में स्थित श्रावक शक्ति हो तो लोच करे, नहीं तो मुण्डन करे, शिखा रक्खे, ईर्यासमिति आदि समस्त साधुधर्मों का पालन करता हुआ उघाडी (खुली हुई) दाडी का रजोहरण लिये हुए केवल अपनी जाति में गोचरी करे और गोचरी के लिये किसी के घरमें प्रवेश करते समय बोले कि-'प्रतिमाधारी श्रमणोपासक को भिक्षा दो।' यदि कोई पूछे कि-'तुम कौन हो?' तो कहे कि 'मैं प्रतिमाधारी श्रावक हूँ साधु नहीं' (१) । इन ग्यारह प्रतिमाओं में पहली पहली

सणधी केअ वात पूछवामा आवे तो न्णुता डोय तो कडे के हु न्णु छु, नडि न्णुता डोय तो कडे के नथी न्णुतो, (११) अगियारमी 'श्रमणभूत-(साधुसमान) प्रतिमा' अगियार मासनी, अेमा अगियार मास सुधी अगियार अगियार उप वासना पारणु कराय छे अेमा स्थित श्रावक शक्ति डोय तो बोय करे, नडि तो मुण्डन करे, चोटली रामे, ईर्यासमिति आदि सर्व साधुधर्मोनु पालन करता यडा उघाडी दाडीनु रणेडरणु लधने डेवण पोतानी न्तिमान्ण गोचरी करे अने गोचरी भाटे केअना घरमा प्रवेश करती वथते बोले के 'प्रतिमाधारी श्रमणोपासकने भिक्षा आवो' न्णे केअ पूछे के-'तमे केअ छे?' तो कडेवु के 'हु प्रतिमाधारी श्रावक छु, साधु नथी' आ अगियार प्रतिमाअेमा पडेली पडेली प्रतिमाना शुष्प उत्तर उत्तर प्रति

‘वीरासन’-निरालम्बेऽपि सिंहासनोपविष्टवृद्धन्यस्तचरण मुक्तजानुकमुपवेशनम्, ‘गोदोहिकासन’-गोदोहिकावत् = गोदोहनवदासनमर्थात्-यथा गोदोहको गोदोहनवेलायामास्ते तद्वत्पादाग्रतलाभ्यामवस्थानम्, ‘आम्रकुब्जकासनम्’-आम्र-वत्कुब्जमासनम् । आस्वष्टम्यादिदशम्यन्तप्रतिमासु प्रतिप्रतिममुक्तानामासनानामन्यतमाऽवलम्बनेनासितव्यमिति तात्पर्यम् । एकादशी प्रतिमा त्वेकाहोरात्रसाध्या, तस्या चतुर्विधाऽऽहारपरित्यागपूर्वक दिनद्वयोपवासो ग्रामाद्द्विर्गत्वा कायोत्सर्गश्च कर्तव्यः ।

अथैकदिनमात्रसाध्या द्वादशी प्रतिमा, तस्या चतुर्विधाऽऽहारपरित्यागपूर्वक दिनत्रयमुपोष्य तृतीयस्मिन् दिने ग्रामाद्द्विः श्मशानस्थान गत्वा पुद्गलस्यैकस्योपरि दृष्टिदानेन कायोत्सर्गः कर्तव्यः, तदानीं च तत्र देव-मनुष्य-विना सहारे स्थिर रहना), गोदोहासन (गोदोहनकी तरह पैरो के अग्रभाग और तल भाग के सहारे बैठना) और आम्रकुब्जकासन (आम्रफलकी तरह कूबडा हो कर स्थिर रहना), इनमें कोई भी एक आसन किया जाता है १०।

ग्यारहवीं प्रतिमा केवल एक दिन की होती है, इसमें चउ-विहार बेला किया जाता है और गाम के बाहर काउसग किया जाता है ११। बाहरवी प्रतिमा एक दिन की होती है, इसमें चउविहार तेला किया जाता है, तेला के दिन गाम से बाहर श्मशान भूमिमे जा कर किसी एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर करके कायोत्सर्ग किया जाता है। उस समय होने वाले देव-मनुष्य और

विना स्थिर रहें, गोदोहासन-गाय होता होयते तेवी रीते पगना आगला भाग अने तल भागना आश्रये भेसु, अने आम्रकुब्जकासन (आम्रकण्ठी जेभ कृणडा धरने स्थिर रहें) आमाथी कौं पणु ओक आसन कराय ते (१०)

अगिथारभी प्रतिमा इकत ओक दिवसनी होय छे ओभा योविहार छकू कराय छे अने गामनी णहार काउसग कराय छे (११) गारभी प्रतिमा ओक दिवसनी होय छे ओभा योविहार अकूभ कराय छे अकूभना दिवसे गामनी णहार श्मशान भूमिमा जधने कौं ओक पुद्गल उपर दृष्टि स्थिर करीने कायोत्सर्ग कराय छे ओ बणते थवावाणा देव मनुष्य अने तियंथ सणधी उत्कृष्ट उत्सर्ग जे सहन

हारपरित्यागपूर्वकैकान्तरोंपवाससेन ग्रामाद्वहिः कायोत्सर्गं च कुर्यात्, उत्तान एरुपार्श्वो वा शयीत, पल्यङ्काऽऽसनेन याऽऽसीत। एव नवमी दशम्यात्रपि प्रतिमे सप्तसप्ताहोरात्रसाभ्ये, तयोस्तपश्चरणमष्टमीवदेव केवलमासनभेदः, तत्र नवम्या दण्डासन-लगण्डासनो-त्कुटुकासनरूपाणि त्रीण्यासनानि, तेषु दण्डासनं नाम-पादाग्रादिप्रसारणेन दण्डवत्पत्नरूपम् । लगण्ड=वक्रकाष्ठ, तद्वत् अर्थान्मस्तरूपाण्यर्थादिभागाना भूमिसम्बन्धेन पृष्ठस्य च तदसम्बन्धेन यदासनं तद्वत्लगण्डासनम् । उत्कुटुकासनं नाम-पुतस्य (श्रोणिभागस्य) अलगनेनोपवेशनम् । दशम्या वीरासन-गोदोहिकामना-ऽऽघ्नकुञ्जरुसनानि, तत्र

जाती है ! आठवी प्रतिमा सात अहोरात्र की है, इसमें एकान्तर चउविहार उपवास और गाम से बाहर कायोत्सर्ग किया जाता है । तथा उत्तानासन (चित्त सोना), एकपार्श्वासन (एक पसबाड़े से सोना) और पर्यकासन, इन तीन आसनोंमें से कोई भी एक आसन किया जाता है । इसी प्रकार नवमी और दशवी प्रतिमाएँ आठवी के समान हैं, किन्तु नववी में दण्डासन (दंडके पडने की तरह पग पसार कर सोना), लगण्डासन (मस्तक और ण्डियों को भूमि पर लगा कर पीठ को अधर रखना), उत्कुटुकासन-पूतिभाग-बैठकको जमीन पर नहीं लगा कर ऊकडूँ बैठना यानी दो पैरों के ऊपर ही बैठना । तथा दसवीं में वीरासन (पृथ्वी पर पैर रख कर सिंहासन पर बैठे हुए के समान, घुटने अलग २ रख कर

सात दत्ति पाष्पीनी देवाय छे आठमी प्रतिमा सात अहोरात्रिनी छे अेभा अेकातर चोविहार उपवास, अने गामथी गहार कायोत्सर्ग कराय छे, तथा उत्तानासन (चित्त सुषु), अेकपार्श्वासन (अेक पडणे सुषु), अने पर्यकासन आ त्रषु आसनोमाथी केछ पषु अेक आसन कराय छे अेवी रीते नवमी अने दशमी प्रतिमा आठमीना समान छे परतु नवमीमा दडासन (दड-लाकडी पडेल होय तेग पग पसारने सुषु), लगडासन (माथु अने अेडीअेने भूमि उपर लगाना पीठने अधर राखी), उत्कुटुकासन-पूतिभाग-गैठकने जमीन पर न लगावीने उकडके गेसुषु, अर्थात् गे पग उपरज गेसुषु तथा दशमीमा वीरासन-पृथ्वी पर पग राखीने सिंहासन उपर गेग होय अेवी रीते घुटणु गृदा गृदा राखीने आधार

‘वीरासन’-निरालम्बेऽपि सिंहासनोपविष्टवद्भ्रूयस्तचरण मुक्तजानुरुमुपवेशनम्, ‘गोदोहिकासन’-गोदोहिकावत् = गोदोहनवदासनमर्थात्-यथा गोदोहिका गोदोहनवेलायामास्ते तद्वत्पादाग्रतलाभ्यामवस्थानम्, ‘आम्रकुञ्जकासनम्’-आम्र-वत्कुञ्जकासनम् । आस्त्रष्टम्यादिदशम्यन्तप्रतिमासु प्रतिप्रतिममुक्तानामासनानामन्यतमाऽवलम्बनेनासितव्यमिति तात्पर्यम् । एकादशी प्रतिमा त्वेकाहोरात्रसाध्या, तस्या चतुर्विधाऽऽहारपरित्यागपूर्वक दिनद्वयोपवासो ग्रामाद्द्विर्गत्वा कायोत्सर्गश्च कर्तव्यः ।

अथैकदिनमात्रसाध्या द्वादशी प्रतिमा, तस्या चतुर्विधाऽऽहारपरित्यागपूर्वक दिनत्रयमुपोष्य तृतीयस्मिन् दिने ग्रामाद्बहिः श्मशानस्थान गत्वा पुद्गलस्यैकस्योपरि दृष्टिदानेन कायोत्सर्गः कर्तव्यः, तदानी च तत्र देव-मनुष्य-विना सहारे स्थिर रहना), गोदोहासन (गोदोहनकी तरह पैरो के अग्रभाग और तल भाग के सहारे बैठना) और आम्रकुञ्जकासन (आम्रफलकी तरह कूबडा हो कर स्थिर रहना), इनमें कोई भी एक आसन किया जाता है १० ।

ग्यारहवी प्रतिमा केवल एक दिन की होती है, इसमें चउ-विहार वेला किया जाता है और गाम के बाहर काउसग किया जाता है ११ । बाहरवी प्रतिमा एक दिन की होती है, इसमें चउविहार तेला किया जाता है, तेला के दिन गाम से बाहर श्मशान भूमिमें जा कर किसी एक पुद्गल पर दृष्टि स्थिर करके कायोत्सर्ग किया जाता है । उस समय होने वाले देव-मनुष्य और

विना स्थिर रहेषु, गोदोहासन-गाय होता होयते तेवी रीते पगना आगला बाग अने तल बागना आश्रये भेसु, अने आम्रकुञ्जकासन (आम्रकुञ्जनी जेभ कूणडा धरने स्थिर रहेषु) आभाथी केश पणु अेक आसन कराय ते (१०)

अगियारभी प्रतिमा इकत अेक दिवसनी होय छे अेभा योविहार छहू कराय छे अने गामनी णहार काउसग कराय छे (११) गारभी प्रतिमा अेक निवमनी होय छे अेभा योविहार अहूम कराय छे अहूमना दिवसे गामनी णहार श्मशान भूमिमा जधने केश अेक पुद्गल उपर दृष्टि स्थिर करीने कायोत्सर्ग कराय छे अे वधते यथावाणा देव मनुष्य अने तिय अ सणधी उत्कृष्ट उासर्ग जे सहन



तिर्यकृते घोर उपसर्गे सोढेऽधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानामन्यतमस्यैकस्य कस्य चिज्ज्ञानस्योदयो जायते, अन्यथा तून्मादादिदुष्टरोगसक्रमेण श्रमणस्य केवलप्ररूपितधर्माद्भवति परिभ्रशनम् ॥ सू० ११ ॥

॥ मूलम् ॥

तेरसहि किरियाठाणेहि ॥ सू० १२ ॥

॥ ज्ञाया ॥

त्रयोदशभिः क्रियास्थानैः ॥ सू० १२ ॥

॥ टीका ॥

त्रयोदशभिः क्रियास्थानैर्यो मयाऽतिचारः कृतः इत्यादिसम्बन्धी यथोक्तः । तत्र क्रियास्थानान्युक्तानि, यथा—“(१) अट्टादडे, (२) अणट्टादडे, (३) हिंसादडे, (४) अरुम्हादडे, (५) दिद्विविपरियासियादडे, (६) मोसवत्तिए, (७) अदिन्नादाणवत्तिए, (८) अज्जत्थवत्तिए, (९) माणवत्तिए, (१०) मित्तदोसवत्तिए, (११) मायावत्तिए, (१२) लोभवत्तिए, (१३) इरियावहिए” इति । तत्राऽर्थाय=स्वप्रयोजनाय दण्डोऽर्थदण्डः (१) अनर्थ=प्रयोजनमन्तरेण दण्डो

तिर्यच सम्बन्धी घोर उपसर्ग यदि सहन करले तो अवधि, मनःपर्यय, और केवलज्ञान मे से किसी एक की उत्पत्ति होती है, नहीं तो उन्मत्त (पागल), दीर्घकालिक दाहज्वरादि रोगों से पीडित और केवलप्ररूपित धर्म से च्युत हो जाता है । इन चारह भिक्षु-प्रतिभाओं में न्यूनाधिक श्रद्धा-प्ररूपणा आदि द्वारा जो अतिचार किया हो तो उस से मैं निवृत्त होता हूँ ॥सू० ११॥

क्रियास्थान तेरह है—(१) अर्थदण्ड (स्वप्रयोजन के लिये

करी ले तो अवधि, मन पर्यय अने देवण ज्ञानमाथी कोछ अेकनी उत्पत्ति थाय छे, नहि तो उन्मत्त (पागल), दीर्घकालिक दाहज्वरादि रोगोथी पीडित अने केवलप्ररूपित धर्मोथी पतित थाय छे आ भार भिक्षुप्रतिभाओभा ओधी वधती श्रद्धा प्ररूपणा विगेरे द्वारा ने कोछ अतिचार लाव्या होय तो तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु (सू० ११)

क्रियास्थान तेर छे—(१) अर्थदण्ड (चोताना प्रयोजन भाटे क्रिया करवी) (२) अनर्थदण्ड (काण्यु विना क्रिया करवी), (३) हिंसादण्ड, (४) अकस्मात्तदण्ड

अनर्थदण्डः=सावप्रक्रियाऽनुष्ठानम् (२) हिंसैव दण्डः=हिंसादण्डः=प्राणाति-  
पातस्वरूप. (३)। अकस्मात्=अन्यक्रिययाऽन्यदीयव्यापादनरूपो दण्डः=अक-  
स्मादण्ड. (४)। दृष्टेः=नेत्रस्य विपर्यास-दर्शनविभ्रान्ति =रज्ज्वादिषु सर्पादि-  
बुद्धि'-दृष्टिविपर्यास', स चासौ दण्डश्च दृष्टिविपर्यासदण्ड'-वाणादिना लोष्ठा-  
दिभ्रान्त्या तिचिरिचटकादीना विहिंसनम् (५)। सद्भूतनिह्नवपूर्वका-ऽसद्भू-  
तसमारोपणनिमित्तो मृपात्रादप्रात्ययिकः, 'मोसवत्तिष्' इति पुस्त्व तु  
दण्डविशेषणत्वाभिप्रायेण, एवमेवाग्रेऽपि (६)। अदत्तन्य=स्वाम्यादिभिरवि-  
तीर्णस्य परकीयस्येति यावत् आदान=ग्रहणमदत्तादान=चौर्यप्रकारस्तन्नि-  
मित्तः (७)। आत्मनीत्यभ्यात्म, तत्प्रात्ययिकोऽध्यात्मप्रात्ययिकः=स्वात्मनि-  
मित्तको दण्ड', यतो दुःखभावो जनो निर्हेतुरुमेव क्षतसम्बलपश्चिन्तासन्तान-  
समाक्रान्तस्वान्तो नितान्त 'दूनान्तस्तिष्ठति (८)। जाति-कुल-उलरूपादि-  
मदस्थानाष्टकाऽऽवेष्टितहृदयस्य परनीचत्वावलोकिनो योऽभिमानमूलको दण्ड'  
स मानप्रात्ययिक. (९)। मित्रकर्मकसन्तापजो दोषो मित्रदोषो मातृ-पितृ-  
प्रभृतीनामल्पीयसाऽयपराधेनोग्रतमस्वरूपधारणया महाऽऽधिजनकचेष्टाविशेष-  
रूपस्तन्निमित्तको दण्डो मित्रदोषप्रात्ययिकः (१०)। माया=परप्रतारणीपाय-

क्रिया करना), (२) अनर्थदण्ड (विना प्रयोजन क्रिया करना), (३)  
हिंसादण्ड, (४) अकस्मादण्ड (एकको मारते चीचमें दूसरे का मारा  
जाना), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर समझकर तीतर, चटका  
आदि का मारा जाना), (६) मृपाप्रात्ययिक (असत्य से लगने वाला  
पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अभ्यात्मप्रात्ययिक (जिससे  
मनुष्य स्वयं निष्कारण चिन्ता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०)

(ओकने मारता वयमा थीजनी हिंसा थी), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर  
समझने तेतर अकली आदिनी हिंसा थी), (६) मृपाप्रात्ययिक (असत्यथी  
लागवावाणु पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अभ्यात्मप्रात्ययिक (नेथी  
माणुस पीते नकाभी थिता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०) मित्रदोषप्रात्ययिक  
(माता, पिता आदिने अथ अपराधने वारे दंड देवे), (११) मायाप्रात्य

तिर्यकृते घोर उपसर्गे सोढेऽग्नि-मनःपर्यय-केवलज्ञानामन्यतमस्यैरुस्य कस्य चिज्ज्ञानस्योदयो जायते, अन्यथा तून्मादादिदुष्टरोगसक्रमेण श्रमणस्य केवलप्ररूपितधर्माद्भवति परिभ्रमणम् ॥ सू० ११ ॥

॥ मूलम् ॥

तेरसहिं किरियाठाणेहि ॥ सू० १२ ॥

॥ छाया ॥

त्रयोदशभिः क्रियास्थानैः ॥ सू० १२ ॥

॥ टीका ॥

त्रयोदशभिः क्रियास्थानैर्यो मयाऽत्तिचारः कृतः इत्यादिसम्बन्धो यथोक्तः । तत्र क्रियास्थानान्युक्तानि, यथा—“(१) अद्वादहे, (२) अणद्वादहे, (३) हिंसादहे, (४) अरुम्हादहे, (५) दिष्टिविपरियासियादहे, (६) मोसवत्तिए, (७) अदिन्नादाणवत्तिए, (८) अज्जत्थवत्तिए, (९) माणवत्तिए, (१०) मित्तदोसवत्तिए, (११) मायावत्तिए, (१२) लोभवत्तिए, (१३) इरियावद्दिए” इति । तत्रार्थाय=स्वप्रयोजनाय दण्डोऽर्थदण्डः (१) अनर्थ=प्रयोजनमन्तरेण दण्डो-

तिर्येच सम्बन्धी घोर उपसर्गं यदि सहन करले तो अवधि, मनःपर्यय, और केवलज्ञान मे से किसी एक की उत्पत्ति होती है, नहीं तो उन्मत्त (पागल), दीर्घकालिक दाहज्वरादि रोगो से पीडित और केवलप्ररूपित धर्म से च्युत हो जाता है । इन बारह भिक्षु-प्रतिमाओं मे न्यूनाधिक श्रद्धा-प्ररूपणा आदि द्वारा जो अतिचार किया हो तो उस से मैं निवृत्त होता हूँ ॥सू० ११॥

क्रियास्थान तेरह है—(१) अर्थदण्ड (स्वप्रयोजन के लिये

करी ले तो अवधि, मन पर्यय अने देवण ज्ञानमाथी डेअ ओकनी उत्पत्ति थाय छे, नहि तो उन्मत्त (पागल), दीर्घकालिक दाहज्वरादिक रोगोथी पीडित अने केवलप्ररूपित धर्मोथी पतित थाय छे आ पार भिक्षुप्रतिमाओमा ओधी वधती श्रद्धा प्ररूपणा विगेरे द्वारा ने डेअ अतिचार लाया डेअ तो तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु (सू० ११)

क्रियास्थान तेर छे—(१) अर्थदण्ड ( चोताना प्रयोजन गाटे किया करवी ) (२) अनर्थदण्ड ( काण्णु विना किया करवी ), (३) हिंसादण्ड, (४) अकस्मात्तदण्ड

अनर्थदण्डः=साव्यक्रियाऽनुष्ठानम् (२) हिंसैव दण्डः=हिंसादण्डः=प्राणाति-  
पातस्वरूप. (३)। अकस्मात्=अन्यक्रिययाऽन्यदीयव्यापादनरूपो दण्डः=अक-  
स्मादण्डः (४)। दृष्टेः=नेत्रस्य विपर्यास-दर्शनविभ्रान्तिः=रज्ज्वादिषु सर्पादि-  
बुद्धि-दृष्टिविपर्यास., स चासौ दण्डश्च दृष्टिविपर्यासदण्डः-वाणादिना लोष्ठा-  
दिभ्रान्त्या तित्तिरिचटकादीना विहिंसनम् (५)। सद्भूतनिह्वपूर्वका-ऽसद्भू-  
तसमारोपणनिमित्तो मृपावादप्रात्ययिकः, 'मोसवत्तिष्' इति पुस्त्व तु  
दण्डविशेषणत्वाभिप्रायेण, एवमेवाग्रेऽपि (६)। अदत्तम्य=स्वाम्यादिभिरवि-  
तीर्णस्य परकीयस्येति यावत् आदान=ग्रहणमदत्तादान=चौर्यप्रकारस्तन्नि-  
मित्तः (७)। आत्मनीत्यभ्यात्म, तत्प्रात्ययिकोऽध्यात्मप्रात्ययिकः=स्वात्मनि-  
मित्तको दण्ड, यतो दु खभावो जनो निर्हेतुकमेव क्षतसकल्पश्चिन्तासन्तान-  
समाक्रान्तस्वान्तो नितान्त 'दुःखान्तस्तिष्ठति (८)। जाति-कुल-उलरूपादि-  
मदस्थानाष्टकाऽऽवेष्टितहृदयस्य परनीचत्वावलोकिनो योऽभिमानमूलको दण्डः  
स मानप्रात्ययिक (९)। मित्रकर्मकसन्तापजो दोषो मित्रदोषो मातृ-पितृ-  
प्रभृतीनामलपीयसाऽन्यपराधेनोऽग्रतमस्वरूपधारणया महाऽऽधिजनकचेष्टाविशेष-  
रूपस्तन्निमित्तको दण्डो मित्रदोषप्रात्ययिकः (१०)। माया=परप्रतारणोपाय-

क्रिया करना), (२) अनर्थदण्ड (बिना प्रयोजन क्रिया करना), (३)  
हिंसादण्ड, (४) अकस्मादण्ड (एकको मारते बीचमें दूसरे का मारा  
जाना), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर समझकर तीतर, चटका  
आदि का मारा जाना), (६) मृपाप्रात्ययिक (असत्य से लगने वाला  
पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अध्यात्मप्रात्ययिक (जिससे  
मनुष्य स्वयं निष्कारण चिन्ता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०)

(श्रेकने मारता वयभा भीजनी हिंसा थी), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर  
समझने तीतर थडली आदिनी हिंसा थी), (६) मृपाप्रात्ययिक (असत्यथी  
लागवावाण पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अध्यात्मप्रात्ययिक (नेथी  
भाण्युम पोते नकागी चिन्ता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०) मित्रदोषप्रात्ययिक  
(माता, पिता आदिने अल्प अपराधेनो लारे दंड देवे), (११) मायाप्रात्य

१-'अन्त' शब्दो रेफान्तोऽत करणपर्यायोऽन्यथ ।

तिर्यकृते घोर उपसर्गे सोढेऽधि-मनःपर्यय-केन्द्रज्ञानामन्यतमस्यैकस्य कस्य चिज्ज्ञानस्योदयो जायते, अन्यथा तून्मादादिदृष्टरोगसक्रमेण श्रमणस्य केवलप्ररूपितधर्माद्भवति परिभ्रशनम् ॥ सू० ११ ॥

॥ मूलम् ॥

तेरसहि किरियाठाणेहिं ॥ सू० १२ ॥

॥ छाया ॥

त्रयोदशभिः क्रियास्थानैः ॥ सू० १२ ॥

॥ टीका ॥

त्रयोदशभिः क्रियास्थानैर्यो मयाऽतिचार. कृतः इत्यादिसम्बन्धो यथोक्तः । तत्र क्रियास्थानान्युक्तानि, यथा—“(१) अट्टादडे, (२) अण्टादडे, (३) हिंसादडे, (४) अरुम्हादडे, (५) दिद्विविपरियासियादडे, (६) मोसवत्तिए, (७) अदिन्नादाणवत्तिए, (८) अज्जत्थवत्तिए, (९) माणवत्तिए, (१०) मित्तदोसवत्तिए, (११) मायावत्तिए, (१२) लोभवत्तिए, (१३) इरियावहिए” इति । तत्रार्थाय=स्वप्रयोजनाय दण्डोऽर्थदण्डः (१) अनर्थ=प्रयोजनमन्तरेण दण्डो

तिर्येच सम्बन्धी घोर उपसर्ग यदि सहन करले तो अवधि, मनःपर्यय, और केवलज्ञान मे से किसी एक की उत्पत्ति होती है, नहीं तो उन्मत्त (पागल), दीर्घकालिक दाहज्वरादि रोगो से पीडित और केवलप्ररूपित धर्म से च्युत हो जाता है । इन बारह भिक्षु-प्रतिमाओं में न्यूनाधिक श्रद्धा-प्ररूपणा आदि द्वारा जो अतिचार किया हो तो उस से मैं निवृत्त होता हूँ ॥सू० ११॥

क्रियास्थान तेरह हैं—(१) अर्थदण्ड (स्वप्रयोजन के लिये

दरी ले तो अवधि, मन पर्यय अने देवण ज्ञानमाथी डेअं जेऽनी उत्पत्ति थाय छे, नहिं तो उन्मत्त (पागल), दीर्घकालिक दाहज्वरादिक रोगोथी पीडित अने केवलप्ररूपित धर्मोथी पतित थाय छे आ पार भिक्षुप्रतिमाओमा ओछी वधती श्रद्धा प्ररूपणा विगरे द्वारा जे डेअं अतिचार लाग्या छाय तो तेमाथी हुं निवृत्त थाउ छु (सू० ११)

क्रियास्थान तेर छे—(१) अर्थदंड (पोताना प्रयोजन गाटे क्रिया करवी) (२) अनर्थदंड (कारण्य विना क्रिया करवी), (३) हिंसादंड, (४) अकस्मात्तदंड

अनर्थदण्डः=सावयक्रियाऽनुष्ठानम् (२) हिंसैव दण्डः=हिंसादण्डः=प्राणाति-  
पातस्वरूप. (३)। अकस्मात्=अन्यक्रिययाऽन्यदीयव्यापादनरूपो दण्डः=अक-  
स्माद्दण्डः (४)। दृष्टेः=नेत्रस्य विपर्यास-दर्शनविभ्रान्तिः=रज्ज्वादिषु सर्पादि-  
बुद्धि-दृष्टिविपर्यासः, स चासौ दण्डश्च दृष्टिविपर्यासदण्ड'-वाणादिना लोप्टा-  
दिभ्रान्त्या तिच्चिरिचटकादीना विहिंसनम् (५)। सद्भूतनिहत्रपूर्वका-ऽसद्भू-  
तसमारोपणनिमित्तो मृपावादप्रात्ययिकः, 'मोसवत्तिष्' इति पुस्त्व तु  
दण्डविशेषणत्वाभिप्रायेण, एवमेवाग्रेऽपि (६)। अदत्तस्य=स्वाम्यादिभिरवि-  
तीर्णस्य परकीयस्येति यावत् आदान=ग्रहणमदत्तादान=चौर्यप्रकारस्तन्नि-  
मित्तः (७)। आत्मनीत्यभ्यात्म, तत्प्रात्ययिकोऽध्यात्मप्रात्ययिकः=स्वात्मनि-  
मित्तको दण्ड, यतो दुःखभावो जनो निर्हेतुकमेव क्षतसकल्पश्चिन्तासन्तान-  
समाक्रान्तस्वान्तो नितान्त 'दुःखान्तस्तिष्ठति (८)। जाति-कुल-उलरूपादि-  
मदस्थानाष्टकाऽऽवेष्टितहृदयस्य परनीचत्वावलोकिनो योऽभिमानमूलको दण्ड'  
स मानप्रात्ययिक (९)। मित्रकर्मकसन्तापजो दोषो मित्रदोषो मातृ-पितृ-  
प्रभृतीनामल्पीयसाऽयपराधेनोग्रतमस्वरूपधारणया महाऽऽधिजनकचेष्टाविशेष-  
रूपस्तन्निमित्तको दण्डो मित्रदोषप्रात्ययिकः (१०)। माया=परप्रतारणोपाय-

क्रिया करना), (२) अनर्थदण्ड (विना प्रयोजन क्रिया करना), (३)  
हिंसादण्ड, (४) अकस्माद्दण्ड (एकको मारते वीचमें दूसरे का मारा  
जाना), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर समझकर तीतर, चटका  
आदि का मारा जाना), (६) मृपाप्रात्ययिक (असत्य से लगने वाला  
पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अध्यात्मप्रात्ययिक (जिससे  
मनुष्य स्वयं निष्कारण चिन्ता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०)

(अधिकने मारता वयभा भीजनी हिंसा थी), (५) दृष्टिविपर्यासदण्ड (पत्थर  
समझने तेतर अकली आदिनी हिंसा थी), (६) मृपाप्रात्ययिक (असत्यथी  
लागवावाणु पाप), (७) अदत्तादानप्रात्ययिक, (८) अध्यात्मप्रात्ययिक (नेथी  
भाष्यम पोते नकामी चिन्ता करे), (९) मानप्रात्ययिक, (१०) मित्रदोषप्रात्ययिक  
(माता, पिता आदिने अल्प अपराधेनो लारे दंड देवे), (११) मायाप्रात्य

१-'अन्त' शब्दो रेफान्तोऽन्त करणपर्यायोऽन्यय ।

स्तन्निमित्तको दण्डो मायाप्रात्ययिकः (११) । लोभनिमित्तको दण्डो लोभ  
प्रात्ययिकः (१२) । ईर्यानिमित्तको दण्ड ईर्याप्रात्ययिकः (१३) । व्यपेत  
कपायस्य सर्वत्रोपयुक्तसमितिगुप्तिमतो भगवतो योगेनेर्याप्रात्ययिको जायते ।  
एषु च सर्वत्र प्रात्ययिकपदार्थस्य 'कर्मबन्ध' इति विशेष्यः स्वयमूहनीय ।  
अत्र 'प्रात्ययिक' पदस्थाने 'प्रत्ययक' शब्देन व्याख्यायामौचित्य प्रतिभाति,  
मृषा प्रत्ययो यस्येत्यादिरीत्या बहुव्रीहौ शेषाद्विभाषेति 'कल्पिककृतपत्त', तथा  
सति विवक्षितोऽर्थो विस्पष्ट प्रतीयते । 'प्रत्यय' शब्दश्चात्र हेतुपर्यायः- 'प्रत्ययो  
ऽधीनशपथज्ञानविज्ञासहेतुषु' इत्यमरः । 'प्रात्ययिक' इति पाठे भवाग्रथे ठक्,  
'प्रत्ययिक' इति पाठस्तु यथा न रोचते तथा प्रेक्षावन्त एव प्रमाणम् ॥ सू० १२ ॥

### ॥ मूलम् ॥

चउदसर्हिं भूयग्गामेहि । पन्नरसहि परमाहम्मिएहि । सोल-  
सहि गाहासोलसएहिं । सत्तरसविहे असजमे । अट्टारसविहे अवमे ।  
एगूणवीसाए नायज्जयणेहिं । वीसाए असमाहिट्टाणेहि ॥ सू० १३ ॥

### ॥-छाया ॥

चतुर्दशभिर्भूतग्रामैः । पञ्चदशभिः परमाधार्मिकैः । षोडशभिर्गाथाषोड  
शकैः । सप्तदशविधेऽसयमे । अष्टादशविधेऽन्नह्यणि । एकोनविंशत्या ज्ञाताध्य  
यनैः । विंशत्याऽसमाधिस्थानैः ॥ सू० १३ ॥

मित्रदोषप्रात्ययिक (माता, पिता आदि को अल्प अपराध का भारी  
दण्ड देना), (११) मायाप्रात्ययिक, (१२) लोभप्रात्ययिक (१३)  
ईर्याप्रात्ययिक (कपायरहित, उपयोगसहित, समिति-गुप्ति के  
धारक भगवान को योग से लगने वाला सामान्य कर्मबन्ध), इन  
तेरह क्रियास्थानों द्वारा जो अनिचार लगा हो तो उससे मैं  
निवृत्त होता हूँ ॥ सू० १२ ॥

यिक, (१२) लोभप्रात्ययिक, (१३) ईर्याप्रात्ययिक (कपायरहित उपयोगसहित  
समितिगुप्तिने धारणु करवावाणा भगवानने योगशी लागवावाणा सामान्य कर्म  
बन्ध) आ तेर क्रियास्थानों द्वारा जो कुछ अनिचार लागेल होय तो तेभाथी  
हूँ निवृत्त थाई छ (सू० १२)

॥ टीका ॥

‘चतुर्दशभिः’ चतुर्दशभिः, ‘भूयग्गामेहि’ भूतानि=जीवास्तेषा  
ग्रामाः=समुदायास्तैः, ग्रामैरिति बहुवचनेन सूक्ष्मैकेन्द्रियग्राम-वाटरैके-  
न्द्रियग्राम-द्वीन्द्रियग्राम-त्रीन्द्रियग्राम-सज्जिपञ्चेन्द्रियग्रामा-ऽसज्जिपञ्चेन्द्रियग्रामाणा  
पर्याप्तकाऽपर्याप्तकभेदेन चतुर्दशाना ग्रहणमभिप्रेतम् । एतत्सूत्रस्थाना  
सर्वेषामेव पदाना ‘यो मयाऽतिचार’ कृत ’ इत्यादिभि पूर्वोक्तैः सम्बन्धः ।

‘पञ्चदशभिः’ पञ्चदशभिः, ‘परमाहम्मिहि’ धर्मं चरन्तीति धार्मिका  
न धार्मिकाः=अधार्मिका परमाश्च ते अधार्मिका =परमाधार्मिकाः अतिकल्पित-  
हृदयपरिणामा यम-लोकपालसेवना असुरकुमारदेवविशेषास्तैस्तकृतपापाऽनु-  
मोदनादिभिरित्यर्थः । तन्नामानि प्रोक्तानि यथा—

(१) जवे, (२) अवरिमी, (३) सामे, (४) सबले, (५) रुहे,  
(६) उवरुहे, (७) काले, (८) महाकाले, (९) असिपत्ते, (१०) घणू, (११)  
कुभे, (१२) बालू, (१३) वेयरणी, (१४) खरस्सरे, (१५) महाघोसे ।

‘तत्र ‘अम्भ’ =अम्बनामा परमाधार्मिको, यो हि नारकान् गगनतल

(१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय, (२) वाटर एकेन्द्रिय, (३) द्वीन्द्रिय,  
(४) त्रीन्द्रिय, (५) चतुरिन्द्रिय, (६) अमज्जि पञ्चेन्द्रिय (७) सज्जि  
पञ्चेन्द्रिय, इन सातों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से चौदह  
भूतग्राम (जीवसमूह) होते हैं, इनकी विराधना आदि से जो  
अतिचार लगा हो ‘तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ’

अत्यन्त कल्पित परिणाम चाले होने से परमाधार्मिक  
कहलाने वाले देव (१५) पन्द्रह प्रकार के हैं—

(१) अय—नारकी जीवों को आकाश में ले जाकर नीचे

(१) सूक्ष्म ऐकेन्द्रिय, (२) वाटर ऐकेन्द्रिय (३) द्वीन्द्रिय, (४) त्रीन्द्रिय,  
(५) चतुरिन्द्रिय, (६) असज्जि पञ्चेन्द्रिय, (७) सज्जि पञ्चेन्द्रिय, आ सातेना पर्याप्त  
अने अपर्याप्तना लेइथी थीं भूतग्राम (जीवसमूह) डोय छे ओओनी विराधना  
आइथी ने अतिचार लाग्या डोय ‘तो तेथी हुं निवृत्त थाउ छु’

अत्यन्त कल्पित परिणामवाणा डोवाथी परमाधार्मिक कहेवाता देव पन्द्रह  
प्रकारना छे—



स्तन्निमित्तको दण्डो मायाप्रात्ययिकः (११) । लोभनिमित्तको दण्डो लोभ  
प्रात्ययिकः (१२) । ईर्यानिमित्तको दण्ड ईर्याप्रात्ययिकः (१३) । व्यपेत  
कपायस्य सर्वत्रोपयुक्तसमितिगुप्तिमतो भगवतो योगेनेर्याप्रात्ययिको जायते ।  
एषु च सर्वत्र प्रात्ययिकरूपदार्थस्य 'कर्मबन्ध' इति विशेष्यः स्वयमूहनीय ।  
अत्र 'प्रात्ययिक' पदस्थाने 'प्रत्ययक' शब्देन व्याख्यायामोचित्य प्रतिभाति,  
मृपा प्रत्ययो यस्येत्यादिरीत्या बहुव्रीहौ शेषाद्विभाषेति वैकल्पिककृतुत्पत्तः, तथा  
सति विवक्षितोऽर्थो विस्पष्ट प्रतीयते । 'प्रत्यय' शब्दश्चात्र हेतुपर्यायः— 'प्रत्ययो  
ऽधीनशपथज्ञानत्रिश्वासहेतुपु' इत्यमरः । 'प्रात्ययिकः' इति पाठे भवाग्रथे ठक्,  
'प्रत्ययिकः' इति पाठस्तु यथा न रोचते तथा प्रेक्षावन्त एव प्रमाणम् ॥ सू० १२ ॥

### ॥ मूलम् ॥

चउदसहिं भूयग्गामेहि । पन्नरसहिं परमाहम्मि एहि । सोल-  
सहि गाहासोलस एहि । सेत्तरसविहे असजमे । अट्टारसविहे अवभे ।  
एगूणवीसाए नायज्झयणेहिं । वीसाए असमाहिट्टाणेहि ॥ सू० १३ ॥

### -॥-छाया ॥

चतुर्दशभिर्भूतग्रामैः । पञ्चदशभिः परमाधार्मिकैः । षोडशभिर्गाथाषोड  
शकैः । सप्तदशविधेऽसयमे । अष्टादशविधेऽब्रह्मणि । एकोनविंशत्या ज्ञाताभ्य  
यनैः । विंशत्याऽसमाधिस्थानैः ॥ सू० १३ ॥

मित्रदोषप्रात्ययिक (माता, पिता आदि को अल्प अपराध का भारी  
दण्ड देना), (११) मायाप्रात्ययिक, (१२) लोभप्रात्ययिक (१३)  
ईर्याप्रात्ययिक (कपायरहित, उपयोगसहित, समिति-गुप्ति के  
धारक भगवान को योग से लगनेवाला सामान्य कर्मबन्ध), इन  
तेरह क्रियास्थानों द्वारा जो अनिचार लगा हो तो उससे मैं  
निवृत्त होता हूँ ॥ सू० १२ ॥

यिक, (१२) लोभप्रात्ययिक, (१३) ईर्याप्रात्ययिक (कपायरहित उपयोगसहित  
समितिगुप्तिने धारणु करवावाणा भगवानने योगशी लागवावाणा सामान्य कर्म  
ध) आ तेर क्रियास्थानों द्वारा जो अनिचार लागेल होय तो तेगाशी  
हु निवृत्त थाई छ (सू० १२)

॥ टीका ॥

‘चउद्दसहिं’ चतुर्दशभिः, ‘भृयग्गामेहिं’ भूतानि=जीवास्तेपा  
ग्रामाः=समुदायास्तैः, ग्रामैरिति बहुवचनेन सूक्ष्मैकेन्द्रियग्राम-वाटरैके-  
न्द्रियग्राम-द्वीन्द्रियग्राम-त्रीन्द्रियग्राम-सज्जिपञ्चेन्द्रियग्रामा-ऽसज्जिपञ्चेन्द्रियग्रामाणा  
पर्याप्तकाऽपर्याप्तकभेदेन चतुर्दशाना ग्रहणमभिप्रेतम् । एतत्सूत्रस्थाना  
सर्वेषामेव पदाना ‘यो मयाऽतिचार’ कृत ’ इत्यादिभिः पूर्वोक्तैः सम्बन्धः ।

पन्नरसहिं’ पञ्चदशभिः, ‘परमाहम्मिण्हिं’ धर्मं चरन्तीति धार्मिका  
न धार्मिकाः=अधार्मिका परमाश्च ते अधार्मिका =परमाधार्मिकाः अतिकल्पित  
हृदयपरिणामा यम-लोकपालसेवका असुरकुमारदेवविशेषास्तैस्तकृतपापाऽनु-  
मोदनादिभिरित्यर्थ । तन्नामानि प्रोक्तानि यथा—

(१) अने, (२) अवरिमी, (३) सामे, (४) सवले, (५) रुहे,  
(६) उवरुहे, (७) काले, (८) महाकाले, (९) असिपत्ते, (१०) धणू, (११)  
कुभे, (१२) वालू, (१३) वेयरणी, (१४) खरस्सरे, (१५) महाघोसे ।

‘तत्र ‘अम्यः’=अम्बनामा परमाधार्मिको, यो हि नारकान् गगनतल

(१) सूक्ष्म एकेन्द्रिय, (२) वाटर एकेन्द्रिय, (३) द्वीन्द्रिय,  
(४) त्रीन्द्रिय, (५) चतुरिन्द्रिय, (६) अमज्जि पञ्चेन्द्रिय (७) सज्जि  
पञ्चेन्द्रिय, इन सातों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से चौदह  
भूतग्राम (जीवसमूह) होते हैं, इनकी विराधना आदि से जो  
अतिचार लगा हो ‘तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ’

अत्यन्त कल्पित परिणाम वाले होने से परमाधार्मिक  
कहलाने वाले देव (१५) पन्द्रह प्रकार के हैं —

(१) अय—नारकी जीवों को आकाश में ले जाकर नीचे

(१) सूक्ष्म ऐकेन्द्रिय, (२) वाटर ऐकेन्द्रिय (३) द्वीन्द्रिय, (४) त्रीन्द्रिय,  
(५) चतुरिन्द्रिय, (६) असज्जि पञ्चेन्द्रिय, (७) सज्जि पञ्चेन्द्रिय, आ सातेना पर्याप्त  
अने अपर्याप्तता लेन्धी थोड भूतनाम (जीवसमूह) डोय छे अयेन्नी विराधना  
आदिथी ने अतिचार लाग्या डोय ‘तो तेथी हुं निवृत्त थाउ छु’

अत्यन्त कल्पित परिणामवाला डोवाथी परमाधार्मिक कहेवाता देव पन्द्र  
प्रकारना छे—

नीत्वा ऽधस्ताद्विमुञ्चति, दद्या च गलहस्त गर्णे पातयति, अधोमुखमम्बरतले समुत्क्षिप्य पुनः पुनः पतन्तं शूलादिना वि यति, पाप सस्मार्य सस्मार्य चानेरुधा भूयः कर्दर्ययति । १ ।

‘अम्बरीषो’ नारकान् मुद्गरादिना कुट्टयित्वा ब्रम्बादिभिः खण्डशः कृत्वा भ्राष्ट्राद्गो पचति, हताऽऽहततया मूर्च्छितांश्च तान् कदलीस्तम्भवच्च र्मणामेकैक पुटमुत्पाद्योत्पाद्य च कर्दर्ययति । २ ।

‘श्यामः’ कशाघातादिना शातयति, हस्तपादादीन् दुर्दर्शतया छिनत्ति, शूल-सूच्यादिना विध्यति, उपरितो वज्रशिलाया पातयति, तथा रज्ज्वादिना पटकने वाले, गर्दनिया देकर (गर्दन पकड़ कर) गद्दे में गिराने वाले, उलटे मुँह आकाश में उछाल कर गिरते समय बर्छा आदि भोंकने वाले, और पाप का चारम्बार स्मरण कराकर अनेक प्रकार से पीडा पहुँचाने वाले ।

(२) अबरीष—नेरह्यों को मुद्गर आदि से कूट कर करोंत, कैची आदि से टुकड़े २ कर भाड़ भूजने वाले तथा अधमरे कर के कदली स्तम्भ के समान एक एक चर्मपुट को खीच कर दुःखी करने वाले ।

(३) श्याम कशा (कोडा) आदि से पीटने वाले, हाथ पैर आदि अवयवों को बुरी तरह काटनेवाले, शूल सुई आदि से बीधनेवाले, ऊपर से वज्रशिला पर पटकने वाले, और रस्सी

(१) अण-नारकी लोहोने आकाशमा लघु नधने नीचे पछाडवावाणा, गरदन पकडीने भाडामा डैकवावाणा अवणा मोढे आकाशमा छिछाणीने पडती वधते गरछी विगेरे लोडवावाणा, अने पापनु वारवार स्मरण करवीने अनेक प्रकार्थी पीडा पछेआडवावाणा

(२) अणरीष-नेरह्योने मुगदर आदिथो कूटीने करेत, कैंची (कातर) आदिथी टुकडा टुकडा करीने लठीमा शेकवावाणा तथा अधमुवा करीने डेजना थाभलानी नेम अडेक चर्मपुटने जेचीजेचीने दु भी करवावाणा

(३) श्याम-कशा (कायडा) आदिथी मारवावाणा, हाथ पग आदि अवयोवोने बुरी रीते कापवावाणा, शूल सोय आदिथी बीधवावाणा, उपरथी वज्र शिला उपर

दृढ वद्ध्वा लतादिप्रहारपुरस्सर भीषणयातना नयति, अस्य श्यामाङ्गत्वाच्छ्याम-  
नाम । ३ ।

शबलः=वर्णेन कर्तुरः, अथ मुद्गरादिना नारकिणामस्थिसन्धि चूर्णयति,  
अन्त्रवसादीन्निष्कासयति च । ४ ।

‘रौद्रो’ रुद्रकर्मकरत्वात्, यतोऽय नारकान् भ्रामयित्वा २ व्योम्नि  
सुदूरमुत्क्षिप्य निपततस्तान् शक्तचसितोमरादिषु प्रोतयति । ५ ।

उपरौद्रः=रौद्रकल्पः, एष च करचरणान्यङ्गोपाङ्गानि भनक्ति । ६ ।

‘कालः’ स यो नारकान् नानाविधेषु कुम्भ्यादिपात्रेषु पचति, अथ च  
वर्णतोऽपि काल एव । ७ ।

महाकालः-पूर्वस्मिन् जन्मनि मासाहारिणो नारकाम्तदीयोत्कर्तित पृष्ठा-  
दिस्थ मास रुदर्थनया भक्षयति, अथ च वर्णेन महाश्यामत्वान्महाकाल उच्यते । ८ ।

आदि से मजबूत बाँध कर लना (बँत) आदि के प्रहार से चमडा  
उधेडने वाले ।

(४) शबल—मुद्गर आदि द्वारा नारकियों की हड्डी के जोड़ो  
को चूर चूर करने वाले, तथा आँत और चरबी को निकालने  
वाले । (५) रौद्र—नरकस्थ जीवों को खूब ऊँचे उछाल कर गिरते  
समय, शक्ति, तलवार, भाले आदि में पिरोनेवाले । (६) उपरौद्र-  
नारकीय जीवों के हाथ पैर तोड़ने वाले । (७) काल—कुभी आदिमें  
पचानेवाले । (८) महाकाल—पूर्वजन्म के मासाहारी जीवों को  
उन्ही की पीठ आदिका मास काट काट कर खिलाने वाले । (९)

पछाडवावाणा अने दोरडा आदिथी गाधीने लता (नेतर) विगेशी भारीने  
आमडु उनेडनार

(४) शबल-मुद्गर आदि द्वारा नारकीयोंना हड्डियोंना चूरचूर करवावाणा  
तथा आतनडा अने चरबीने काढवावाणा (५) रौद्र-नरकमा रहला एवोने भूय  
उचे उछालीने पडती वभते शकित, तलवार, भाला विगेशी पशववावाणा (६)  
उपरौद्र-नारकीय एवोना हाथ पग तोडवावाणा (७) काल-कुभी आदिमा  
पकाववावाणा (८) महाकाल पूर्वजन्मना मासाहारी एवोने तेमनीच पीठनु  
मास कापी कापीने भवशववावाणा (९) असिपत्र-तलवार नेवा तीक्ष्ण पाडवावाणा

नीत्वा ऽधस्ताद्धिमृञ्चति, दद्या च गलहस्त गर्णे पातयति, अधोमुखमम्बरतले समुत्क्षिप्य पुनः पुनः पतन्त रूपादिना वि यति, पाप सस्मार्य सस्मार्य चानेकधा भूयः कर्दर्थयति । १ ।

‘अम्यरीपो’ नारकान् मुद्गरादिना कृट्टयित्वा क्रमचादिभिः खण्ड्यः कृत्वा भ्राष्ट्रादीं पचति, इताऽऽहततया मृच्छितांश्च तान् कदलीस्तम्भवच्च र्मणामेकैक पुटमुत्पाद्योत्पाद्य कर्दर्थयति । २ ।

‘श्यामः’ कशाघातादिना शातयति, हस्तपादादीन् दुर्दर्शतया छिनत्ति, शूल-सूच्यादिना विध्यति, उपरितो वज्रशिलाया पातयति, तथा रज्ज्वादिना पटकने वाले, गर्दनिया देकर (गर्दन पकड़ कर) गड़ढे में गिराने वाले, उलटे मुँह आकाश में उछाल कर गिरते समय बर्छा आदि भोंकने वाले, और पाप का चारम्बार स्मरण कराकर अनेक प्रकार से पीडा पहुँचाने वाले ।

(२) अम्यरीप—नेरह्यों को मुद्गर आदि से कूट कर करोंत, कैची आदि से टुकड़े २ कर भाड़ भूँजने वाले तथा अधमरे कर के कदली स्तम्भ के समान एक एक चर्मपुट को खींच कर दुःखी करने वाले ।

(३) श्याम कशा (कोडा) आदि से पीटने वाले, हाथ पैर आदि अवयवों को बुरी तरह काटनेवाले, शूल सुई आदि से धीधनेवाले, ऊपर से वज्रशिला पर पटकने वाले, और रस्सी

(१) अण-नारकी लोहेने आकाशमा लछ बधने नीचे पछाडवावाणा, गरहन पकडीने भाडाभा ड्रे कवावाणा अणणा भेढे आकाशमा छिछाणीने पकती वधते णरधी विगेरे लोकवावाणा, अने पापनु वारवार स्मरण करवावीने अनेक प्रकार्थी पीडा पडोआडवावाणा

(२) अणरीष-नेरधेने भुगहर आदिथो कूटीने कशेत, ईथी (कातर) आदिथी टुकडा टुकडा करीने लकींभा शेकवावाणा तथा अधभुवा करीने डेणना धामलानी नेम अकेक चर्मपुटने जेथीजेथीने दु भी करवावाणा

(३) श्याम-कशा (कापडा) आदिथी भारवावाणा, हाथ पग आदि अवयवोवोने बुरी रीते कापवावाणा, शूल सेतय आदिथी धीधवावाणा, उपरथी वज्र शिला उपर

यिता क्षारोष्णजलभृता भयानका विकृतदर्शना नदीं विकृत्य नारकान्  
क्लिश्नाति । १३ ।

खरस्वरः—सचीत्कारमुच्चैराक्रोशतो नारकान् तीक्ष्णवज्रकण्टकाऽऽ-  
कीर्णेषु शाल्मल्यादिमाशुवृक्षेषु<sup>१</sup> समारोप्याऽऽरुपति, शिरस्सु च क्रकच निधाय  
विदारयति, पशुभिर्वा खण्डयति । १४ ।

‘महाघोषः’—अयं परमपीडोत्पत्तिभीतान् मृगानिवेतस्ततः पलायमा-  
नान् नारकान् घोरगर्जना कुर्वन् वाटक (व्रज) पशुनिव र्नरकाऽऽवास-  
मवरुणद्धि । १५ ।

‘सोलसहिं’ पोडशभिः, ‘गाढासोलसएहि’ गाथानामकं पोडशमध्य-

नरकके जीवों को डाल कर अनेक प्रकार से पीडित करनेवाले ।  
(१४) खरस्वर—तीखे वज्रमय काँटेवाले ऊँचे शाल्मली (सेमल) वृक्षों  
पर चढ़ाकर चिल्लाते हुए नारकी जीवों को खींचनेवाले, मस्तक पर  
करोँत रखकर चीरनेवाले, तथा फरसा से खडर करनेवाले ।

(१५) महाघोष—अत्यन्त वेदना के डरसे मृगोंकी तरह  
हृथर-उधर भागते हुए नारकी जीवों को चाडेमे पशुओंकी तरह  
घोर गर्जना करके रोकनेवाले । इनके द्वारा होनेवाले पापकी अनु-  
मोदना आदि से जो अतिचार लगा हो ‘तो मैं उससे निवृत्त  
होता हूँ ।

सूत्रकृताङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन इस

नरकना एवोने नाभीने अनेक प्रकारवा दुष्प देवावाणा (१४) खरस्वर-तीभा  
वज्र जेवा काटावाणा उवा उवा शैभजना आउ उपर यदावीने पुमे पाउता  
नारकी एवोने पेयवावाणा, माथा उपर कश्वत नाभीने श्रीरवावाणा तथा क्षरसीथी  
टुकडा टुकडा कश्वावाणा (१५) महाघोष-अत्यन्त वेदनाना डरथी डरछोनी जेम  
न्या त्या भागता नारकी एवोने वाडोभा पशुओनी माइक घोर गर्जना करीने  
शेकवावाणा जे परमाधार्मिक देवोथी यता पापनी अनुमोदना आदिथी जे अतियार  
लाग्या डोय तो तेमाथी हु निवृत्त याउ छु

सूत्रकृताङ्गना प्रथम श्रुतस्कन्धना सोलह अध्ययन आ प्रकारे छे

- १ - ‘माशुरुच’ इत्यर्थः ।
- २ - रूपेर्द्विर्मकत्वादिदमकथितं कर्म ‘व्रजमवरुणद्धि गाम्’ इत्यादिवत् ।

‘असिपत्रः’ स देवो योऽसितुल्यपत्राणा वन विरचय्य तच्छायाऽभि-  
छापेण समागतान्नारकिणो मिथुतगतान्दोलनपूर्वमसिपत्रपातनेन स्पष्टश्च  
श्छिनत्ति । ९ ।

धनुः—स यो धनुषो विनिर्मुक्तैरर्द्धचन्द्राकारैर्याणैः कर्णाँछनासादीनवयवा  
न्नारकिणा छिनत्ति । १० ।

कुम्भ-विविधामृष्टिकायाकारासु कुम्भीषु नारकिणो भृश पचति  
हन्ति च । ११ ।

‘वालु’—भ्राष्ट्रस्थतप्तवज्रवालुकासु नारकान् सतडटकार चणकादीनिव  
भर्जयति । १२ ।

वैतरणी=नरकस्थनदी, तदधिष्ठातृत्वेन तद्देवाऽपि तास्स्थ्यात् गृहा दादा  
इतिवत्, स चातिपूतिगन्धिपूरुधिरप्रवाहपरिपूरिता तप्तत्रपुताम्रादिकलकला-

असिपत्र—तलवार जैसे तीखे पत्तों के वनकी विकुर्वणा करके  
उस वनमें छायाकी इच्छा से आये हुए नारकी जीवों को वैक्रिय  
वायुद्वारा पत्ते गिराकर छिन्नभिन्न करनेवाले । (१०) धनु—धनुष से  
छोड़े हुए अर्द्धचन्द्राकार बाणों से आँख नाक आदि अवयवों को  
छेदनेवाले । (११) कुम्भ—ऊँटनी आदि के आकारवाली कुम्भियों में  
पचानेवाले । (१२) वालु—वज्रमय तप्तवालुका में चनों के समान  
तडतडाहट करते हुए नारकी जीवों को भूननेवाले । (१३)  
वैतरणी—अत्यन्त दुर्गन्धवाली राध लोह से भरी हुई, एव तपे  
हुए जस्त और कथीर की उकलती हुई, अत्यन्त क्षार से युक्त  
उष्ण पानी से भरी हुई वैतरणी नदी की विकुर्वणा करके उसमें

वननी विकुर्वणा करीन ते वनमा छायानी धृच्छाथी आवेला नारकी एवोने वैक्रिय  
वायु द्वारा पाहडाओने जेरवीने छिन्नभिन्न करवावाणा । (१०) धनु—धनुष्यथी छेडल  
अर्धचन्द्राकार णालोथी आण नाक अदि अवयवोने छेदवावाणा । (११) कुल उटनी  
(साठणी) आदिना आकारवाणी कुम्भियोमा पकाववाणा । (१२) वालु—वज्रमय तपेदी  
देतीमा अणुनी समान तडतडाहट करता नारकी एवोने शैकवावाणा । (१३) वैतरणी—  
पूण दुर्गन्धवाली राध बोहीथी भरेली, तपेला जस्त अने कथीरथी उकणती,  
अत्यत क्षार युक्त उना पाणीनी भरेली वैतरणी नदीनी विकुर्वणा करीने अभा

१—‘असिपत्र’ इत्यत्राऽर्श आदित्वादच् ।

यिता क्षारोष्णजलभृता भयानका विकृतदर्शना नदीं विकृत्य नारकान्  
क्लिञ्चति । १३ ।

खरस्वरः—सचीत्कारमुच्चैराक्रोशतो नारकान् तीक्ष्णवज्रकण्टकाऽऽ-  
कीर्णेषु शाल्मल्यादिप्राशुवृक्षेषु<sup>१</sup> समारोप्याऽऽकर्षति, शिरस्सु च क्रकच निधाय  
विदारयति, परशुभिर्वा खण्डयति । १४ ।

‘महाघोषः’—अयं परमपीडोत्पत्तिभीतान् मृगानिवेतस्ततः पलायमा-  
नान् नारकान् घोरगर्जना कुर्वन् वाटक (व्रज) पशुनिव र्नरकाऽऽवास-  
मवरुणद्धि । १५ ।

‘सोलसहिं’ पौडशभिः, ‘गाढासोलसएहि’ गाथानामक पौडशमध्य-

नरकके जीवों को डाल कर अनेक प्रकार से पीडित करनेवाले ।  
(१४) खरस्वर-तीखे वज्रमय काँटेवाले ऊँचे र शाल्मली (सेमल) वृक्षों  
पर चढाकर चिल्लाते हुए नारकी जीवों को खींचनेवाले, मस्तक पर  
करोंत रखकर चीरनेवाले, तथा फरसा से खड र करनेवाले ।

(१५) महाघोष—अत्यन्त बेदना के डरसे मृगोंकी तरह  
इधर-उधर भागते हुए नारकी जीवों को वाडेमे पशुओंकी तरह  
घोर गर्जना करके रोकनेवाले । इनके द्वारा होनेवाले पापकी अनु-  
मोदना आदि से जो अतिचार लगा हो ‘तो मैं उससे निवृत्त  
होता हूँ ।

सूत्रकृताङ्ग के प्रथम श्रुतस्कन्ध के सोलह अध्ययन इस

नरकना एवोने नाप्पीने अनेक प्रकारया हुंय देवावाणा (१४) खरस्वर-तीभा  
वज्र नेवा काटावाणा उया उया शेभजना जाड उपर यदावीने युमे पाडता  
नारकी एवोने येयवावाणा, माथा उपर करवत नाप्पीने चीरवावाणा तथा इरसीथी  
दुकडा दुकडा करवावाणा (१५) महु घेप-अत्यत वेदनाना डरथी डरखोनी नेम  
न्या त्या भागता नारकी एवोने वाडोभा पशुओनी माङ्क घोर गर्जना करीने  
देकवावाणा ये परमाधार्मिक देवोथी यता पापनी अनुमोदना आदिथी ने अतित्यार  
लाग्या होय ‘तो तेमाथी हुं निवृत्त थाउ छु

सूत्रकृताङ्गना प्रथम श्रुतस्कन्धना सोलह अध्ययन या प्रकारे छे

१ - ‘प्राशुरुचः’ इत्यर्थः ।

२ - रुपेर्दिर्नमरुत्वादिदमरुथिव रुर्म ‘त्रजमवरुणद्धि गाम्’ इत्यादिवत् ।



‘असिपत्रः’ स देवो योऽसितुल्यपत्राणां न विरचय्य तच्छायाऽभि-  
लापेण समागताभारकिणी विरुतयातान्दोलनपूर्वमसिपत्रपातनेन स्पृष्टञ्च  
छिनत्ति । ९ ।

धनुः—स यो धनुषो विनिर्मुक्तैरर्द्धचन्द्राकारैर्वाणैः कर्णोष्ठनासादीनवयवा  
भारकिणा छिनत्ति । १० ।

कुम्भः—विशिषामृष्टिकायाकारासु कुम्भीषु नारम्भिणो भृशं पचति  
हन्ति च । ११ ।

‘वालुः’—भ्राष्ट्रस्थतप्तवज्रवालुकासु नारकान् सतडत्कारं चणकादीनिव  
भर्जयति । १२ ।

वैतरणी—नरकस्थनदी, तदधिष्ठातृत्वेन तद्देवोऽपि तात्स्थ्यात् गृहा दारा  
इतिवत्, स चातिपूतिगन्धिपूरुधिरप्रवाहपरिपूरिता तप्तपुताम्रादिकलकला

असिपत्र—तलवार जैसे तीखे पत्तों के वनकी विकुर्वणा करके  
उस वनमें छायाकी इच्छा से आये हुए नारकी जीवों को वैक्रिय  
वायुद्वारा पत्ते गिराकर छिन्नभिन्न करनेवाले । (१०) धनु—धनुष से  
छोड़े हुए अर्द्धचन्द्राकार वाणों से आँख नाक आदि अवयवों को  
छेदनेवाले । (११) कुम्भ—ऊँटनी आदि के आकारवाली कुम्भियों में  
पचानेवाले । (१२) वालु—वज्रमय तप्तवालुका में चनों के समान  
तडतडाहट करते हुए नारकी जीवों को भूननेवाले । (१३)  
वैतरणी—अत्यन्त दुर्गन्धवाली राध लोहू से भरी हुई, एव तपे  
हुए जस्त और कथोर की उकलती हुई, अत्यन्त क्षार से युक्त  
उष्ण पानी से भरी हुई वैतरणी नदी की विकुर्वणा करके उसमें

वननी विकुर्वणा करीने ते वनमा छायानी धृच्छाथी आवेला नारकी एवोने वैक्रिय  
वायु द्वारा पादशब्दाने जेरवीने छिन्नभिन्न करवावाणा । (१०) धनु—धनुष्यथी छोडेल  
अर्धचन्द्राकार वाणोथी आण नाक अदि अवयवोने छेदवावाणा । (११) कुम्भ उटनी  
(सादृशी) आदिना आकारवाणी कुम्भियोमा पकाववावणा । (१२) वालु—वज्रमय तपेली  
रेतीमा अष्णानी समान तडतडाट करता नारकी एवोने शेकवावाणा । (१३) वैतरणी—  
पूण दुर्गन्धवाली राध बोहीथी भरेली, तपेला जस्त अने कथीरथी उष्णती,  
अत्यंत क्षार युक्त उना पाणीनी भरेली वैतरणी नदीनी विकुर्वणा करीने अमा

चतुर्थं कूर्मज्ञाताध्ययनम् । पञ्चमं शैलकराजपिज्ञाताध्ययनम् । षष्ठं तुम्बज्ञातम् । सप्तमं रोहिणीज्ञातम् । अष्टमम् मल्लीज्ञातम् । नवमं माकन्दीपुत्रज्ञातम् । दशमं चन्द्रज्ञातम् । एकादशं समुद्रनिरस्थदावद्ववृक्षचरित्रयुक्तवाहावद्वज्ञाताध्ययनम् । द्वादशमुदकज्ञाताध्ययनम्, अत्र नगरपरिखाजलवर्णनम् । त्रयोदशं मण्डूकज्ञाताध्ययनम् । अत्र नन्दनमणिकारश्रेष्ठिजीववृत्तान्तवर्णनम् । चतुर्दशं तेतलीप्रधानज्ञाताध्ययनम् । पञ्चदशं नन्दिफलखयतरुफलवृत्तान्तसम्बन्धान्दिफलज्ञाताध्ययनम् । षोडशममरकज्ञातम्, अमरकका नाम धातुकीखण्ड-भरतक्षेत्रराजधानी तत्सम्बन्धात् । सप्तदशमाकीर्णज्ञातम्-आकीर्णाः=आकीर्णजातीयाः समुद्रमध्यवर्तिनोऽश्वविशेषास्तत्सम्बन्धात् । अष्टादशं सुसुमाज्ञातं नाम । एकोनविंशतितमं पुण्डरीकज्ञातं नामाध्ययनम् ॥

‘बीसाए’ विंशत्या ‘असमाहिद्विगणेहिं’ समाधिश्चित्काग्रता=मोक्षमार्गोऽवस्थान, न समाधिरसमाधि, यत्सेवनेन स्वपरोभयमोक्षसुखविच्छेदो जायते

(५) शैलकराजर्षि, (६) तुम्बलेप, (७) रोहिणी, (८) मल्लिनाथ, (९) माकन्दी, (१०) चन्द्र, (११) दावद्ववृक्ष, (१२) उदकनाम, (१३) मण्डूक, (१४) तेतलीप्रधान, (१५) नन्दीफल, (१६) अमरकका, (१७) आकीर्णजातीय अश्व, (१८) सुसुमा, (१९) पुण्डरीक, इन उन्नीस ज्ञाताध्ययनों की श्रद्धा-प्ररूपणादि में न्यूनाधिकता होने से जो कोई अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ।

चित्तकी एकाग्रतापूर्वक मोक्षमार्ग में स्थित होने को समाधि कहते हैं, और इससे विपरीत को असमाधि कहते हैं, उसके बीस स्थान (ज्ञानादिरहित अप्रशस्तभाव वाले स्थान) हैं-

राजर्षि (६) तुम्बलेप, (७) रोहिणी, (८) मल्लिनाथ, (९) माकन्दी, (१०) चन्द्र, (११) दावद्ववृक्ष, (१२) उदकनाम, (१३) मण्डूक, (१४) तेतलीप्रधान, (१५) नन्दीफल, (१६) अमरकका, (१७) आकीर्णजातीय अश्व, (१८) सुसुमा, (१९) पुण्डरीक आ ओगाणीस अध्ययनोनी श्रद्धा-प्ररूपणादिमा न्यूनाधिकता यवाना कारणे ने कोई अतिचार लाग्या होय ‘तो तेमाधी हुं निवृत्त थाउ छु’

चित्तकी एकाग्रतापूर्वक मोक्षमार्गमा स्थित थवु तेने समाधि कडे छे, अने तेमाधी विपरीत स्थितिने असमाधि कडे छे तेना बीस स्थानके।

कुशलमनुष्ठानं ब्रह्म, न ब्रह्म = अत्रह्य = अर्थान्मैथुन, तस्मिन् अत्रह्यणि, एतद्धि औदारिक  
वैक्रियकशरीराभ्यां करणकारणाऽनुमोदनैर्वाद्मनःकायतोऽष्टादशविधं भवति,  
अर्थादौदारिक मनसा वाचा कायेन च स्वयं न करोतीति त्रिविधम्, मनसा  
वाचा कायेन चाऽन्यद्वारा न कारयतीति त्रिविधमिति षड्विधम् । मनसा वाचा  
कायेन च कुर्वन्तमप्यन्यं न समनुजानातीति च त्रिविधमिति सर्वसङ्कलनयोदारिक  
शरीरसम्बन्धिनो नव भेदाः । एवमेव वैक्रियकशरीरसम्बन्धिनोऽपीति मिलि  
त्वाऽष्टादशविधत्वम् ।

‘एगूणवीसाए’ एकोनविंशत्या ‘नायज्ज्ञयणेहि’ ज्ञातानि = उदाहर  
णानि, तत्प्रतिपादकान्यध्ययनानि = ज्ञाताभ्ययनानि तै, एषु यत्र परमेण कार  
ण्येनाऽऽत्यन्तिकरूपसहनपूर्वकं मेघकुमारकूर्चकं हस्तिभवाधिकरणकं पादौकोत्क्षे  
पणरूपं वृत्तमुपनिबद्धं तदुत्क्षिप्तज्ञातं नाम प्रथममध्ययनम् । अस्य चैव ज्ञातत्वम्-  
दयादिगुणशालिनो दवदाहादिः सहन्ते समुत्क्षिप्तैरुचरण-मेघकुमार-जीव  
हस्तिवदिति १ । यत्र श्रेष्ठि-तस्करयोरेकत्र बन्धनवृत्तान्तं उपनिबद्धस्तत्  
‘सघाटज्ञात’ नाम द्वितीयमध्ययनम् । तृतीयं ‘मयूराण्डज्ञाताभ्ययनम् ।’

अनुमोदना की हो, इसी प्रकार (१०-१८) वैक्रिय शरीर से  
मैथुन मन, वचन और काय से सेवन किया हो, कराया हो और  
अनुमोदन की हो । इस अठारह प्रकार के अब्रह्मचर्य द्वारा जो  
अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ।

ज्ञाताधर्मकथा के उन्नीस अध्ययन-(१) मेघकुमार (उत्क्षिप्त),  
(२) घना सार्थवाह (सघाट), (३) मयूराण्ड, (४) कूर्म (कच्छप)

मन वचन अने कायाधी सेवन कर्तुं होय, करायु होय अने अनुमोदन  
आभ्यु होय, आ प्रकारे (१०-१८) वैक्रिय शरीरधी मैथुन मन वचन अने  
कायाधी सेवन कर्तुं होय, करायु होय अने अनुमोदन आभ्यु होय आ  
अठार प्रकारना अप्रह्वचर्य द्वारा जे अतिचार लाया होय तो तेमाधी हूँ  
निवृत्त थाऊ छु

ज्ञाताधर्मकथाना ओगदीस अध्ययन (१) मेघकुमार (उत्क्षिप्त),  
(२) घना सार्थवाह (सघाट), (३) मयूराण्ड, (४) कूर्म (कच्छप), (५) शैव

१- ज्ञाताभ्ययनेषु ।

चतुर्थं कूर्मज्ञाताध्ययनम् । पञ्चमं शैलकराजपिज्ञाताध्ययनम् । षष्ठं तुम्बज्ञातम् । सप्तमं रोहिणीज्ञातम् । अष्टमम् मल्लीज्ञातम् । नवमं माकन्दीपुत्रज्ञातम् । दशमं चन्द्रज्ञातम् । एकादशं समुद्रनीरस्थदावद्ववृक्षचरित्रयुक्तत्वादावद्वज्ञाताध्ययनम् । द्वादशमुदकज्ञाताध्ययनम्, अत्र नगरपरिखाजलवर्णनम् । त्रयोदशं मण्डूकज्ञाताध्ययनम् । अत्र नन्दनमणिकारश्रेष्ठिजीववृत्तान्तवर्णनम् । चतुर्दशं तैतलीप्रधानज्ञाताध्ययनम् । पञ्चदशं नन्दिवृक्षाख्यतरुफलवृत्तान्तसम्बन्धाच्चन्द्रिफलज्ञाताध्ययनम् । षोडशममरककाज्ञातम्, अमरकका नाम धातुकीखण्ड-भरतक्षेत्रराजधानी तत्सम्बन्धात् । सप्तदशमाकीर्णज्ञातम्-आकीर्णाः=आकीर्णजातीयाः समुद्रमध्यवर्तिनोऽश्वविशेषास्तत्सम्बन्धात् । अष्टादशं सुसुमाज्ञातं नाम । एकोनविंशतितमं पुण्डरीकज्ञातं नामाध्ययनम् ॥

‘वीसाए’ विंशत्या ‘असमाधिद्विजाणेहिं’ समाधिश्चित्तैकाग्रता=मोक्षमार्गोऽवस्थान, न समाधिरसमाधिः, यत्सेवनेन स्वपरोभयमोक्षमुखविच्छेदो जायते

(५) शैलकराजपि, (६) तुम्बलेप, (७) रोहिणी, (८) मल्लिनाथ, (९) माकन्दी, (१०) चन्द्र, (११) दावद्ववृक्ष, (१२) उदकनाम, (१३) मण्डूक, (१४) तैतलीप्रधान, (१५) नन्दीफल, (१६) अमरकका, (१७) आकीर्णजातीय अश्व, (१८) सुसुमा, (१९) पुण्डरीक, इन उन्नीस ज्ञाताध्ययनों की श्रद्धा-प्ररूपणादि में न्यूनाधिकता होने से जो कोई अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ।

चित्तकी एकाग्रतापूर्वक मोक्षमार्ग में स्थित होने को समाधि कहते हैं, और इससे विपरीत को असमाधि कहते हैं, उसके बीस स्थान (ज्ञानादिरहित अप्रशस्तभाव वाले स्थान) हैं-

शार्जि (५) तुम्बलेप, (७) रोहिणी, (८) मल्लिनाथ, (९) माकन्दी, (१०) चन्द्र, (११) दावद्ववृक्ष, (१२) उदकनाम, (१३) मण्डूक, (१४) तैतलीप्रधान, (१५) नन्दीफल, (१६) अमरकका, (१७) आकीर्णजातीय अश्व, (१८) सुसुमा, (१९) पुण्डरीक आ आगेगीस अध्ययनोनी श्रद्धा-प्ररूपणादिमा न्यूनाधिकता यवाना कारणे ने कौई अतिचार लाया होय 'तो तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु'

चित्तकी एकाग्रतापूर्वक मोक्षमार्गमा स्थित थवु तेने समाधि कहे छे, अने तेनाथी विपरीत स्थितिने असमाधि कहे छे तेना बीस स्थानके।

सः, तस्य स्थानानि=पदान्यसमाधिस्थानानि-ज्ञानादिरहिताऽप्रशस्तभाव  
सम्पन्नानि स्थानानीत्यर्थस्तैः । तानि क्रमेण यथा-प्रथम द्रुतद्रुतचरण=सयमविरा  
धनामात्मविराधना चानपेक्ष्य गमनम् । द्वितीयमप्रमार्जितचरणम्=अप्रमार्जिते=  
रजोहरणेनाऽविशुद्धीकृते मार्गादौ गमनम् । तृतीय दृप्पमार्जितचरणम्=असम्यक्  
प्रमार्जिते गमनम् । चतुर्थ मर्यादातिरिक्तशय्यापीठफलकादिसेवनम् । पञ्चम  
रत्नाधिकपरिभ्रम=गुर्याचार्यादीना पराभवरुणम् । षष्ठ स्थविराणा घातचिन्त-  
नम् । सप्तम भूतानामुपघातचिन्तनम् । अष्टम प्रतिक्षण क्रोधरुणम् । नवम पृष्ठ-  
तोऽवर्णवाद.=परोक्ष आक्षेपवचनम् । दशम शङ्कितेऽर्थे पुनः पुनर्निश्चितभाषणम् ।  
एकादशमनुत्पन्ननूतनकलहकरणम् । द्वादश पुरातेनोपशमितकलहोदीरणम् ।

(१) द्रुतद्रुत-जल्दी जल्दी चलना (२) विना पूजे चलना, (३)  
सम्यक् प्रकार पूजे विना चलना (पूजना कही चलना कही), (४)  
मर्यादा से अधिक पाठ पाटला आदि का उपभोग करना, (५) गुरु  
आदि के साथ अविनयपूर्वक बोलना तथा उनका पराभव करना,  
(६) स्थविर (अपने से बड़े) की घात चिन्तन करना, (७)  
भूतों (जीवों) की घात चिन्तन करना, (८) क्षण क्षण में  
क्रोध करना, (९) परोक्ष में अवर्णवाद करना, (१०) शङ्कित  
विषय में बार बार निश्चयपूर्वक बोलना, (११) नवीन  
क्लेश उत्पन्न करना, (१२) उपशान्त क्लेश की उदीरण करना, (१३)

(ज्ञानादि रहित अप्रशस्त भाववाणा स्थान) छे (१) द्रुतद्रुत (जल्दी जल्दी)  
चालु (२) पूज्या विना चालु, (३) सम्यक् प्रकारे पूज्या विना चालु  
(पूजु कथाय अने चालु कथाय), (४) मर्यादाथी वधादे प्रमाथुमा पाठ पाटला  
वगेरेना उपभोग करयो, (५) गुरु वगेरेनी साथे अविनयपूर्वक बोलु तथा  
तेमने पराभव करयो, (६) स्थविर (पोतानाथी मोटा)नी घात करवानु चिन्तन  
करु, (७) भूतो (जुवोनी) घात करवानु चिन्तन करु, (८) क्षणक्षणमा क्रोध  
करु, (९) परोक्षमा अवर्णवाद बोलु, (१०) शङ्का होय तेवा विषयमा बार-  
बार निश्चयपूर्वक बोलु, (११) नवी क्लेश उत्पन्न करु, (१२) उपशान्त  
क्लेशनी उदीरण करु, (१३) अक्लेशे स्वाध्याय करु, (१४) सचित्त रजवाणा

त्रयोदशमकाले स्वाध्यायकरणम् । चतुर्दश सरजस्कृचरणेनाऽऽसनादावुपवेशनम् । पञ्चदश रात्रिषु प्रथमप्रहरोत्तरमुच्चैः सम्भाषणम्, गृहस्थभाषाभाषण वा । षोडश गच्छादिषु भेदोत्पादनम् । सप्तदश झञ्जकरणम्=गणदुःखदभाषाव्यवहरणम् । अष्टादश कलहकरणम्=येन केनचित् सह विरोधाऽऽचरणम् । एकोनविंशतितम सूर्योदयादारभ्याऽस्त यावत्पूर्वः पुन्येनाऽभ्यवहरणम् । विंशतितमनेपणिकाहारादिसेवनम् ॥ सू० १३ ॥

॥ मूलम् ॥

एगवीसाए सवल्लेहि ॥ सू० १४ ॥

॥ छाया ॥

एकविंशत्या शवलैः ॥ सू० १४ ॥

॥ टीका ॥

यद्द्वारा चारित्र शवल=कर्तुर भवति तानि शवलानि, तेषामेकविंशति

अकाल में स्वाध्याय करना, (१४) सचित्त रजयुक्त चरणों से आसन आदि पर बैठना, (१५) प्रहररात्रि व्यतीत होने के बाद जोर से बोलना अथवा गृहस्थ जैसी भाषा बोलना, (१६) गच्छ आदि में छेद-भेद करना, (१७) गण को दुख उत्पन्न हो ऐसी भाषा बोलना, (१८) हरेक के साथ विरोध करना, (१९) सूर्योदय से सूर्यास्त तक खाते रहना, (२०) अनेपणिक आहार आदि का सेवन करना । इनके विषयमें अतिचार किया गया हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ सू० १३ ॥

जिनसे चारित्र शवल (कर्तुर) अर्थात् चारित्र दूषित हो

पग वडे आसन वगेरे पर बेसवु, (१५) प्रहुर रात्रा गया णाह उाया स्वरथी गोलवु-अथवा गृहस्थ जेवी भाषा गोलवी, (१६) गच्छ, मध वगेरमा छेद-बेद पडाववो, (१७) गणुने दुःख उत्पन्न थाय तेवी भाषा गोलवी, (१८) हरेकनी साथे विरोध करवो, (१९) सूर्योदयथी लड सूर्यान्त मभय थाय त्या सुधी लोअन करता रहवु, (२०) अनेपणिक आहार आदितु सेवन करवु, आ विषे ते कोड अतिचार लाग्या होय 'तो तेभाथी हु निवृत्त थाउ छु' (सू० १३)

जेना वडे चारित्र शवल-अर्थात् चारित्र दूषित थाय छे तेने 'शवल'

सः, तस्य स्थानानि=पदान्यसमाधिस्थानानि-ज्ञानादिरहिताऽप्रशस्तभाव सम्पन्नानि स्थानानीत्यर्थस्तैः । तानि क्रमेण यथा-प्रथम द्रुतद्रुतचरण=सयमविराधनामात्मविराधना चानपेक्ष्य गमनम् । द्वितीयमप्रमार्जितचरणम्=अप्रमार्जिते=रजोहरणेनाऽशिशुद्धीकृते मार्गादीं गमनम् । तृतीय दृप्पमार्जितचरणम्=असम्यक् प्रमार्जिते गमनम् । चतुर्थ मर्यादातिरिक्तगत्यापीठफलकादिसेवनम् । पञ्चम रत्नाधिरुपरिभव=गुर्याचार्यादीना पराभवकरणम् । षष्ठ स्थविराणा घातचिन्तनम् । सप्तम भूतानामुपघातचिन्तनम् । अष्टम प्रतिक्षण क्रोधकरणम् । नवम पृष्ठ तोऽवर्णवाद=परोक्ष आक्षेपवचनम् । दशम शङ्कितेऽर्थे पुनः पुनर्निश्चितभाषणम् । एकादशमनुत्पन्ननूतनकलहरणम् । द्वादश पुरातनोपशमितकलहोदीरणम् ।

(१) द्रवद्रव-जल्दी जल्दी चलना (२) विना पूजे चलना, (३) सम्यक् प्रकार पूजे विना चलना (पूजना कही चलना कही), (४) मर्यादा से अधिक पाठ पाटला आदि का उपभोग करना, (५) गुरु आदि के साथ अविनयपूर्वक बोलना तथा उनका पराभव करना, (६) स्थविर (अपने से बड़े) की घात चिन्तन करना, (७) भूतों (जीवों) की घात चिन्तन करना, (८) क्षण क्षण में क्रोध करना, (९) परोक्ष में अवर्णवाद करना, (१०) शङ्कित विषय में बार बार निश्चयपूर्वक बोलना, (११) नवीन क्लेश उत्पन्न करना, (१२) उपशान्त क्लेश की उदीरणा करना, (१३)

(ज्ञानादि रहित अप्रशस्त भाववाणा स्थान) छे (१) द्रवद्रव (जल्दी जल्दी) चलनु (२) पूज्या विना चलनु, (३) सम्यक् प्रकारे पूज्या विना चलनु (पूज्यु कथाय अने चलनु कथाय), (४) मर्यादाही वधादे प्रमाणुभा पाठ पाटला वगेरेना उपभोग करवो, (५) गुरु वगेरेनी साथे अविनयपूर्वक बोलनु तथा तेभनो पराभाव करवो, (६) स्थविर (पोतानाही मोटा)नी घात करवानु चिन्तवन करवु, (७) भूतो (जीवोनी) घात करवानु चिन्तन करवु, (८) क्षणक्षणुभा क्रोध करवो, (९) परोक्षुभा अवर्णवाद बोलनु, (१०) शङ्का होय तेवा विषयुभा बार-बार निश्चयपूर्वक बोलनु, (११) नवो क्लेश उत्पन्न करवो, (१२) उपशान्त क्लेशनी उदीरणा करवी, (१३) अक्लेशे स्वाध्याय करवो, (१४) सचित्त रगवाणा

मम् (१०), मातृस्थानशब्देनात्र कपट (माया) गृह्यते । शय्यातरपिण्डसेवन-  
मेकादशम् (११), ज्ञात्वा प्राणातिपातकरण द्वादशम् (१२), ज्ञात्वा मृपावाद-  
करण त्रयोदशम् (१३), ज्ञात्वाऽदत्ताऽऽदान चतुर्दशम् (१४), ज्ञात्वा सचित्त-  
पृथिव्युपवेशनादि पञ्चदशम् (१५) स्निग्धपृथिव्यामुपवेशन षोडशम् (१६),  
सजीवपीठफलकादिसेवन सप्तदशम् (१७), मूल-<sup>१</sup>कन्द-<sup>२</sup>स्कन्ध-<sup>३</sup>त्वक्-<sup>४</sup>प्रवाल-<sup>५</sup>  
<sup>६</sup>पत्र-<sup>७</sup>पुष्प-<sup>८</sup>फल-<sup>९</sup>बीज-<sup>१०</sup>हरितादीना सेवनमष्टादशम् (१८), सवत्सराभ्यन्तरे  
दशोदकलेपसेवनमेकोनविंशतितमम् (१९) सवत्सराभ्यन्तरे दशमातृस्थानसेवन  
विंशतितमम् (२०), सचित्तोदकरजोव्याप्तहस्तादिना दत्तस्याऽऽहारादेः सेवनमेक-  
विंशतितमम् (२१) ॥ सू० १४ ॥

आदि से उतरना), (१०) एक महीने में तीन मातृस्थान (कपट)  
सेवन करना, (११) शय्यातर पिण्ड का सेवन करना, (१२) जान-  
वृद्ध कर प्राणातिपात करना, (१३) जानवृद्ध कर झूठ बोलना,  
(१४) जानवृद्ध कर चोरी करना, (१५) जानवृद्ध कर सचित्त पृथ्वी  
पर बैठना, (१६) स्निग्ध (गीली) पृथ्वी पर बैठना, (१७) जीव  
सहित पीठ फलक आदि का सेवन करना, (१८) मूल-कन्द-  
स्कन्ध-त्वक्-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीज और हरित, इन दश  
प्रकार की सचित्त घनस्पति आदि का सेवन करना, (१९) एक  
वर्ष में दश उदक लेप लगाना, (२०) एक वर्ष में दश मातृस्थान  
सेवन करना, (२१) सचित्त उदक से भीगे हुए (गीले) हस्तपात्र

त्रयु वार पाणीना लेप लगावो (नदी विगेरे उतरवा), (१०) ओक भासमा  
त्रयु मातृस्थाननु (कपटनु) सेवन करवु, (११) शय्यातरपिड सेवन करवु, (१२)  
नाणी पुडीने प्राणातिपात करवो, (१३) नाणी-समञ्जने असत्य बोलवु, (१४)  
नाणी-समञ्जने चोरी कन्धी, (१५) नाणी-पुडीने सचित्त पृथ्वी उपर बेसवु,  
(१६) पाणीथी लीनअेली नमीन पर बेसवु, (१७) एव सहित पीठकलक वगेरेनु  
सेवन करवु, (१८) मूल, कंद, स्कन्ध, छाल, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज अने  
हरित-लीनी आ दस प्रकारनी सचित्त घनस्पतिनु सेवन करवु, (१९) ओक वर्षमा दस  
पाणीना लेप लगावो, (२०) ओक वर्षमा दस मातृस्थान (कपट) सेवन करवा, (२१)  
सचित्त पाणीथी बीनअेला हाथ-पात्र आदिथी आपेला आहार-आदिनु सेवन



भेदा, तत्र हस्तकर्मकरण प्रथमम् (१) अतिक्रमव्यतिक्रमातिचारैर्मैथुनसेवन  
द्वितीयम्, (२) रात्रिभोजन तृतीयम् (३) आधारमसेवन चतुर्थम् (४),  
राजपिण्ड-(नृपतिपुष्टिद्य निष्पादित) ग्रहण पञ्चमम् (५), द्रव्यादिना सा वर्ष  
क्रीतमुद्गारगृहीतमनिच्छतः पुत्रभृत्यादेर्हस्तादपहृत्याऽन्यसम्बन्धिसाधारणाऽऽहा  
रादिक ताननापृच्छय स्वकीयमपि स्वस्थानादपहृत्य वा साधवे दीयमान-  
मित्येषा पञ्चाना पिण्डाना सेवन षष्ठम् (६), पुनः पुनः प्रत्याख्यानभजन सप्तमम्  
(७), पण्मासाभ्यन्तरे स्वगच्छान्निःसृत्य गच्छान्तरगमनमष्टमम् (८), मासा  
भ्यन्तर उदकरयलेपसेवन नवमम् (९) मासाभ्यन्तरे मातस्थानत्रयसेवन दश

उन्हे 'शबल' कहते हैं, वे इक्कीस (२१) हैं—(१) हस्तकर्म करना (२)  
अतिक्रम व्यतिक्रम और अतिचार से मैथुन सेवन करना, (३)  
रात्रि भोजन करना, (४) आधाकर्मों आहार आदिका सेवन करना,  
(५) राजपिण्ड लेना (६) 'कीय' (क्रीत)-साधु के निमित्त खरीदे हुए,  
'पामिचे' (प्रामित्य)=उधार लिये हुए, 'अच्छिज्ज' (अच्छेद्य)=पुत्र भृत्य  
आदि के हाथ से छीने हुए, 'अणिसिद्ध' (अनिष्टष्ट)=अनेक के हिस्से  
का आहार आदि उनसे विना पूछे दिये हुए, तथा 'आहृद्दिज्जमाण'  
(आहृत्य दीयमान) स्वस्थान से सामने लाकर दिये हुए, आहार  
आदि का सेवन करना, (७) प्रत्याख्यान का बारम्बार भग करना,  
(८) छह महीने से पहले अपना गच्छ छोड़ कर दूसरे गच्छ में  
जाना, (९) एक महीनेमें तीन बार उदक का लेप लगाना (नदी

कडे छे ते अेकवीश प्रकारना छे (१) हस्तकर्म करवु, (२) अतिक्रम, व्यतिक्रम  
अने अतिचारथी मैथुन सेवन करवु (३) रात्रि-भोजन करवु, (४) आधाकर्मों  
आहार वगेरेनु सेवन करवु, (५) राजपिंड अहण करवु (६) 'कीय' (क्रीत)  
साधुना निमित्त खरीद करेला, 'पामिचे' (प्रामित्य) उधार लीधेला, 'अच्छिज्ज'  
(अच्छेद्य) पुत्र-नोकर आदिना हाथमाथी छीनथी लीधेला, 'अणिसिद्ध' (अनिष्टष्ट)  
अनेक भावुसेना बागने आहार वगेरे तेअेने पूछया विना आपेला तथा  
'आहृद्दिज्जमाण' (आहृत्य दीयमानम्) पेटाना स्थानथी सामा आवीने लाथी  
आपेला आहार आदिनु सेवन करवु, (७) प्रत्याख्यानने वाववार भग करवु,  
(८) छ मास पूर्व पेटाने गच्छ त्यछ थीज गच्छमा जवु, (९) अेक महिनामा

मम् (१०), मातृस्थानशब्देनात्र कपट (माया) गृह्यते । शय्यातरपिण्डसेवन-  
मेकादशम् (११), ज्ञात्वा प्राणातिपातकरण द्वादशम् (१२), ज्ञात्वा मृपावाद-  
करण त्रयोदशम् (१३), ज्ञात्वाऽदत्ताऽऽदान चतुर्दशम् (१४), ज्ञात्वा सचित्त-  
पृथिव्युपवेशनादि पञ्चदशम् (१५) स्निग्धपृथिव्यामुपवेशन षोडशम् (१६),  
सजीवपीठफलकादिसेवन सप्तदशम् (१७), मूल-कन्द-स्कन्ध-त्वक्-प्रवाल-  
पत्र-पुष्प-फल-बीज-हरितादीना<sup>१ २ ३ ४ ५</sup> सेवनमष्टादशम् (१८), सवत्सराभ्यन्तरे<sup>६ ७ ८ ९ १०</sup>  
दशोदकलपसेवनमेकोनविंशतितमम् (१९) सवत्सराभ्यन्तरे दशमातृस्थानसेवन  
विंशतितमम् (२०), सचित्तोदकरजोव्याप्तहस्तादिना दत्तस्याऽऽहारादेः सेवनमेक-  
विंशतितमम् (२१) ॥ सू० १४ ॥

आदि से उतरना), (१०) एक महीने में तीन मातृस्थान (कपट)  
सेवन करना, (११) शय्यातर पिण्ड का सेवन करना, (१२) जान-  
बूझ कर प्राणातिपात करना, (१३) जानबूझ कर झूठ बोलना,  
(१४) जानबूझ कर चोरी करना, (१५) जानबूझ कर सचित्त पृथ्वी  
पर बैठना, (१६) स्निग्ध (गीली) पृथ्वी पर बैठना, (१७) जीव  
सहित पीठ फलक आदि का सेवन करना, (१८) मूल-कन्द-  
स्कन्ध-त्वक्-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीज और हरित, इन दश  
प्रकार की सचित्त घनस्पति आदि का सेवन करना, (१९) एक  
वर्ष में दश उदक लेप लगाना, (२०) एक वर्ष में दश मातृस्थान  
सेवन करना, (२१) सचित्त उदक से भीगे हुए (गीले) हस्तपात्र

त्रयु वार पाणीना लेप लगावो (नदी विगेरे उतरवा), (१०) अेक भासभा  
त्रयु मातृस्थाननु (कपटनु) सेवन करवु, (११) शय्यातरपिंड सेवन करवु, (१२)  
नाणी शुडीने प्राणातिपात करवो, (१३) नाणी-सभञ्जेने अमत्य गोवपु, (१४)  
नाणी-सभञ्जेने चोरी कन्वी, (१५) नाणी-शुडीने सचित्त पृथ्वी उपर गेसवु,  
(१६) पाणीथी बीजअेवी जमीन पर गेसवु, (१७) एव महित पीठइलक वगेरेनु  
मेवन करवु, (१८) मूल, कंद, स्कन्ध, छाल, प्रवाल, पत्र, पुष्प, इल, बीज अने  
हरित-लीजी आ दस प्रकारनी सचित्त वनस्पतिनु मेवन करवु, (१९) अेक वर्षभा दस  
पाणीना लेप लगाववा, (२०) अेक वर्षभा दस मातृस्थान (कपट) मेवन करवा, (२१)  
सचित्त पाणीथी बीजअेवा हाथ-पात्र आदिथी आपेला आहार-आदिनु मेवन

भेदाः, तत्र हस्तकर्मकरण प्रथमम् (१) अतिक्रमव्यतिक्रमातिचारैर्मैथुनसेवन  
द्वितीयम्, (२) रात्रिभोजन तृतीयम् (३) आधाकर्मसेवन चतुर्थम् (४),  
राजपिण्ड- (नृपतिमुद्दिश्य निष्पादित) ग्रहण पञ्चमम् (५), द्रव्यादिना सावर्था  
क्रीतमुद्धारगृहीतमनिच्छतः पुत्रभृत्यादेर्हस्तादपहृत्याऽन्यसम्बन्धिसाधारणाऽऽहा-  
रादिक ताननापृच्छय स्वकीयमपि स्वस्थानादपहृत्य या साधवे दीयमान  
मित्येषा पञ्चाना पिण्डाना सेवन षष्ठम् (६), पुनः पुनः प्रत्याख्यानभञ्जन सप्तमम्  
(७), षण्मासाभ्यन्तरे स्वगच्छान्निःसृत्य गच्छान्तरगमनमष्टमम् (८), मासा-  
भ्यन्तर उदकत्रयलेपसेवन नवमम् (९) मासाभ्यन्तरे मातस्थानत्रयसेवन दश

उन्हें 'शबल' कहते हैं, वे इक्कीस (२१) हैं—(१) हस्तकर्म करना (२)  
अतिक्रम व्यतिक्रम और अतिचार से मैथुन सेवन करना, (३)  
रात्रि भोजन करना, (४) आधाकर्मी आहार आदिका सेवन करना,  
(५) राजपिण्ड लेना (६) 'कीय' (क्रीत)—साधु के निमित्त खरीदे हुए,  
'पामिचे' (प्रामित्य)=उधार लिये हुए, 'अच्छिज्ज' (अच्छेद्य)=पुत्र भृत्य  
आदि के हाथ से छीने हुए, 'अणिसिट्ट' (अनिमृष्ट)=अनेक के हिस्से  
का आहार आदि उनसे विना पूछे दिये हुए, तथा 'आहृट्ट दिज्जमाण'  
(आहृत्य दीयमान) स्वस्थान से सामने लाकर दिये हुए, आहार  
आदि का सेवन करना, (७) प्रत्याख्यान का बारम्बार भग करना,  
(८) छह महीने से पहले अपना गच्छ छोड़ कर दूसरे गच्छ में  
जाना, (९) एक महीनेमें तीन बार उदक का लेप लगाना (नदी

छडे छे ते ओकवीथ प्रकारना छे (१) हस्तकर्म करवु, (२) अतिक्रम, व्यतिक्रम  
अने अतिचारथी मैथुन सेवन करवु (३) रात्रि-भोजन करवु, (४) आधाकर्मी  
आहार वगेरेनु सेवन करवु, (५) राजपिंड ग्रहण करवु (६) 'कीय' (क्रीत)  
साधुना निमित्त खरीद करेला, 'पामिचे' (प्रामित्य) उधार लीधेला, 'अच्छिज्ज'  
(अच्छेद्य) पुत्र-नोकर आदिना हाथमाथी छीनवी लीधेला, 'अणिसिट्ट' (अनिमृष्ट)  
अनेक माणुसोना भागने आहार वगेरे तेओने पूछथा विना आपेला तथा  
'आहृट्ट दिज्जमाण' (आहृत्य दीयमानम्) पोताना स्थानथी सामा आपीने लावी  
आपेला आहार आदिनु सेवन करवु, (७) प्रत्याख्यानने बारबार भग करवु,  
(८) छ मास पूर्व पोताने गच्छ त्यथ भीण गच्छमा करवु, (९) ओक महिनामा

परिपहः (१९), प्रज्ञापरिपहः (२०), अज्ञानपरिपहः (२१), दर्शनपरिपहः (२२)  
श्वेति, सम्बन्धस्तु यो मयेत्यादिनैव सर्वत्रेति प्रागुक्तं न विस्मर्त्तव्यम् ॥ सू० १५ ॥

॥ मूलम् ॥

तेवीसाए सूअगडज्जयणेहिं । चउवीसाए देवेहिं । पणवीसाए  
भावणाहिं । छव्वीसाए दसाकप्पववहारारणं उद्देशणकालेहि । सत्ता-  
वीसाए अणगारगुणेहिं ॥ सू० १६ ॥

॥ त्रया ॥

त्रयोविंशत्या सूत्रकृताध्ययनैः । चतुर्विंशत्या देवैः । पञ्चविंशत्या भावनाभिः ।  
षड्विंशत्या दशाकल्पव्यवहाराणामुद्देशनकालैः । सप्तविंशत्याऽनगारगुणैः ॥ सू० १६ ॥

॥ टीका ॥

‘तेवी०’ इति । सूत्रकृताङ्गप्रथमश्रुतस्कन्धस्य षोडशाध्ययनानि प्रागु-  
क्तानि तद्व्यतिरिक्तानि च द्वितीयश्रुतस्कन्धस्य पुण्डरीकाध्ययन-क्रियास्थानाध्य-  
यना-ऽऽहारपरिज्ञाध्ययन-प्रत्याख्यानक्रियाध्ययना-ऽऽचारश्रुताध्ययना-ऽऽर्द्रकुमा-  
र-ध्ययन-नालन्दीयाध्ययनानि सप्तैति मिलित्वा त्रयोविंशतिः । सूत्रकृताध्ययनानि तैः ।

दर्शन । इन परिपहों को सम्यक् प्रकार न सहने से जो अतिचार  
किया गया हो ‘तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ’ ॥ सू० १५ ॥

सूत्रकृताङ्ग के प्रथमश्रुतस्कन्ध के पूर्वोक्त सोलह (१६)  
अध्ययन और द्वितीय श्रुतस्कन्ध के (१) पुण्डरीक, (२) क्रियास्थान, (३)  
आहारपरिज्ञा, (४) प्रत्याख्यानक्रिया, (५) आचारश्रुत, (६) आर्द्रकुमार  
और (७) नालन्दीय, ये सात मिलाकर तेईस अध्ययनोंमें श्रद्धा  
प्ररूपणा आदि की न्यूनाधिकतासे, तथा दस भवनपति, आठ

(२१) अज्ञान, (२२) दर्शन, आ षावीस परिपहोने सम्यक्-इडा प्रकार सहन न  
करवाथी ने काष्ठ अतिचार लाग्या होय तो तेमाथा हु निवृत्त थाउ छु (सू० १५)

सूत्रकृताङ्गना प्रथम श्रुतस्कन्धना पूर्वोक्त १६ (सोल) अध्ययन अने  
षीमा श्रुतस्कन्धना (१), पुण्डरीक (२) क्रियास्थान, (३) आहारपरिज्ञा, (४)  
प्रत्याख्यान क्रिया, (५) आचारश्रुत, (६) आर्द्रकुमार अने (७) नालन्दीय, आ  
सात अध्ययन त्रेणवीने कुल तेवीश (२३) अध्ययनोमा श्रद्धाप्ररूपणा-वगेरेनी  
न्यूनाधिकताथी, तथा दस भवनपति, आठ व्यतर, पाय न्येतिपी अने ओक

॥ મૂલમ્ ॥

વાવોસાણ પરિસહેહિં ॥ સૂ૦ ૧૫ ॥

॥ છાયા ॥

દ્વાવિંશત્યા પરિપદૈઃ ॥ સૂ૦ ૧૫ ॥

॥ ટીકા ॥

‘પરિસહેહિં’ પરિ=સમન્તાત્ સહનતે=ક્ષમ્યન્તે કર્મનિર્જરાર્થ મોક્ષાર્થિ-  
ભિરિતિ પરિપદાસ્તૈઃ, તે યથા ક્ષુધાપરિપદઃ (૧), પિપાસાપરિપદઃ (૨), શીત  
પરિપદઃ (૩), ઉષ્ણપરિપદઃ (૪), દશમશક્રુપરિપદઃ (૫), અચેલપરિપદઃ (૬),  
અરતિપરિપદઃ (૭), સ્ત્રીપરિપદઃ (૮), ચર્યા-(વિહાર) પરિપદ (૯), નૈવેધિ-  
કીપરિપદઃ (૧૦), શય્યાપરિપદઃ (૧૧), આક્રોશપરિપદઃ (૧૨), વધપરિ-  
પદઃ (૧૩), યાચનાપરિપદઃ (૧૪), અલાભપરિપદઃ (૧૫), રોગપરિપદ (૧૬),  
તૃણસ્પર્શપરિપદઃ (૧૭), જલ [મલ]—પરિપદ (૧૮), સત્કારપુરસ્કાર-

આદિ સે દિવે હુણ આહાર આદિ કા સેવન કરના, ઇનસે જો  
અતિચાર હુઆ હો ‘તો ઉસસે મૈં નિવૃત્ત હોતા હું’ ॥ સૂ૦ ૧૪ ॥

મોક્ષાર્થી જિન્હે કર્મોં કી નિર્જરા કે લિયે સહન કરતે હૈં  
ઉન્હે ‘પરિપદ’ કહતે હૈં વે વાઈસ હૈં—

(૧) ક્ષુધા, (૨) પિપાસા, (૩) શીત, (૪) ઉષ્ણ, (૫) દશમશક્ર, (૬)  
અચેલ, (૭) અરતિ, (૮) સ્ત્રી, (૯) ચર્યા (ચલના), (૧૦)  
નૈવેધિકી (બૈઠના), (૧૧) શય્યા, (૧૨) આક્રોશ, (૧૩) વધ,  
(૧૪) યાચના, (૧૫) અલાભ, (૧૬) રોગ, (૧૭) તૃણસ્પર્શ, (૧૮)  
મલ, (૧૯) સત્કારપુરસ્કાર, (૨૦) પ્રજ્ઞા, (૨૧) અજ્ઞાન, (૨૨)

કરવુ, -એ સર્વથી જે કોઈ અતિચાર લાગ્યા હોય તો તેમાંથી હું નિવૃત્ત થાઉ છું’  
( સૂ૦ ૧૪ )

મોક્ષાર્થી જીવો કર્મોની નિર્જરા કરવા માટે જે સહન કરે છે તેને  
‘પરિપદ’ કહે છે અને તે પરિપદ વાવોસ-૨૨ પ્રકારના છે (૧) ક્ષુધા ભૂખ,  
(૨) પિપાસા (તૃષ્ણા), (૩) શીત (કડી), (૪) ઉષ્ણ (તાપ), (૫) દશમશક્ર (ડાસ)  
(મચ્છર), (૬) અચેલ, (૭) અરતિ, (૮) સ્ત્રી, (૯) ચર્યા (ચાલવુ તે), (૧૦) નૈવેધિકી  
(બેસવુ), (૧૧) શય્યા, (૧૨) આક્રોશ, (૧૩) વધ, (૧૪) યાચના (૧૫) અલાભ,  
(૧૬) રોગ, (૧૭) તૃણસ્પર્શ, (૧૮) મલ, (૧૯) સત્કારપુરસ્કાર, (૨૦) પ્રજ્ઞા,

૧- અત્ર સત્કારો વસ્ત્રાદિના, પુરસ્કારશ્વામ્યુત્થાનાદિના ।

मपि वृक्षादीनामच्छेदनं, साधारणपिण्डस्याधिकतो न सेवनं, साधुवैयावृत्यकरणं चेति पञ्च तृतीयमहाव्रतस्य (३)। स्त्री-पशु-पण्डकरहितवसतिसेवनं, स्त्रीकथावर्जनं, स्थ्य-द्रोपाङ्गाऽनवलोकनं, पूर्वकृतसुरतरतेरस्मरणं, प्रतिदिन भोजनपरित्यागश्चेति पञ्च चतुर्थमहाव्रतस्य (४)। प्रशस्ताऽप्रशस्तशब्द-रूप-गन्ध-रस-स्पर्शेषु रागद्वेषवर्जनं, शब्दादिभेदात्पञ्च पञ्चममहाव्रतस्य (५) ति मिलित्वा पञ्चविंशतिर्भावनास्ताभिः। 'दसा रूप व्यवहाराण' दशा-रूप व्यवहाराणां=दशाश्रुतस्कन्ध-वृहत्कल्प व्यवहारसूत्राणां यथाक्रम दश-पद-दशसख्यकाभ्ययनयुक्तानाम् 'उद्देशणकालेहि' उद्देशनकालैः=पठनसमयैः। 'सत्तात्रीसाए' सप्तविंशत्या, 'अणगारगुणेहि' अविद्यमान-

पीठ फलक आदि के लिए भी वृक्षादि को नहीं काटना, (१४) साधारण पिण्डका अधिक सेवन नहीं करना, (१५) साधुकी वैयावृत्य (वैयावच) करना। चौथे महाव्रत की पाँच भावना-(१६) स्त्री-पशु-पण्डक-रहित स्थानका सेवन करना, (१७) स्त्रीकथा वर्जन करना, (१८) स्त्रियों के अगोपागका अवलोकन नहीं करना, (१९) पूर्वकृत काम भोगका स्मरण नहीं करना, (२०) प्रतिदिन सरस भोजन का त्याग करना। पाँचवें महाव्रत की पाँच भावना-(२१) इष्टानिष्ट शब्द, (२२) रूप, (२३) गन्ध, (२४), रस, और (२५) स्पर्शमें राग-द्वेष नहीं करना। इन पचीस भावनाओं के विषयमें तथा दशाश्रुतस्कन्ध के दस, वृहत्कल्पके छह और व्यवहारसूत्र के दस, इन छत्तीस अध्यायनों के पठनकालमें, और जिनके द्रव्यसे-भिन्नी आदिका बना हुआ

तृण-काष्ठादिन् अवश्यं देवु (१३) पीठ फलक आदि भाटे पशु वृक्षने कापय नहि ते, (१४) साधारण पिण्डनु अधिक सेवन करवु नहि ते, (१५) साधुना वैयावृत्य (वैयावच) करवी यथा महाव्रतानी पात्र लावना-(१६) स्त्री-पशु-पण्डक-रहित स्थानकनु सेवन करवु, (१७) स्त्रीकथा वर्जन करवु, (१८) स्त्रीयोना अगोपागनु अवलोकन नहि करवु, (१९) पूर्वकृत कामलोगनु स्मरण नहि करवु, (२०) प्रतिदिन सरस लोचनने त्याग करवो पात्रभा महाव्रतानी पात्र लावना-(२१) इष्टानिष्ट शब्द, (२२) रूप, (२३) गन्ध, (२४) रस अने (२५) स्पर्शभा राग-द्वेष नहि करवो आ पचीस भावनायोना विषयभा तथा दशाश्रुतस्कन्धना दस, वृहत्कल्पना छ अने व्यवहारसूत्रना दस, आ छत्तीस अध्यायनने पठन

‘चउवीसाए देवेहि’ दश भवनपतयः, अष्टौ व्यन्तराः, पञ्च ज्योतिषिकाः, एको वैमानिकः, इति मिलित्वा चतुर्विंशतिर्देवास्तैः, अथवा चतुर्विंशतितीर्थकरैः । ‘पण-  
वीसाए भावणाहि’ भाव्यते=गुणैर्वास्यते आत्मा याभिरिति, भाव्यन्ते=अभ्यस्य-

न्ते कर्ममलक्षालनार्थं मुमुक्षुभिरिति वा भावनाः—ईर्या-<sup>१</sup>मनो-<sup>२</sup>वचनै-<sup>३</sup>पणा-<sup>४</sup>ऽऽदान-

निक्षेपरूपाः पञ्च प्रथममहाव्रतस्य (१) । आलोच्य सभापण क्रोध-<sup>१</sup>लोभ-<sup>२</sup>भय-

हास्येष्वनृतविवर्जनञ्चेति पञ्च द्वितीयमहाव्रतस्य (२) । अष्टादशविधशुद्धवसते-

र्याचनापूर्वकं<sup>१</sup> सेवनं प्रतिदिनमवग्रहं याचित्वा तृणकाष्ठादिग्रहणं, पीठफलकाद्यर्थ-

व्यन्तर, पाँच ज्योतिषी और एक वैमानिक, इन चौबीस प्रकार के देवों की अथवा चौबीस तीर्थकरों की आशातना से जो अतिचार लगा हो तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ।

जिसके द्वारा आत्मा गुणयुक्त होता है अथवा कर्ममल धोने के लिये मोक्षार्थी जिसका अभ्यास करते हैं, उसे भावना कहते हैं । प्रत्येक महाव्रतकी पाँच पाँच भावनाएँ होने से वे सब मिलकर पचीस है । उनमें पहले महाव्रत की पाँच भावना—(१) ईर्या, (२) मन, (३) वचन, (४) एषणा, (५) आदाननिक्षेप । दूसरे महाव्रतकी पाँच भावना—(६) विचार कर बोलना, (७) क्रोध, (८) लोभ, (९) भय, (१०) हास्यवश असत्य नहीं बोलना । तीसरे महाव्रतकी पाँच भावना—(११) अठारह प्रकार के शुद्ध स्थानकी याचना करके सेवन करना, (१२) प्रतिदिन तृण काष्ठादिका अवग्रह लेना, (१३)

वैमानिक, आ शेषीश प्रकारना देवोनी अथवा तो शेषीश तीर्थकरोनी आशातनाथी ने अतिचार लाग्या डाय तो तेभाथी हु निवृत्त थाडि छु

लेना द्वारा आत्मा, गुणयुक्त थाय छे, अथवा कर्ममल धोवा भाटे मोक्षार्थी लुवो लेना अभ्यास करे छे तेने भावना कडे छे, प्रत्येक महाव्रतनी पाय-पाय भावनाओ डोवाथी ते सर्व भदीने कुल पचीस भावना थाय छे तेभा पहिला महाव्रतनी पाय भावना (१) ईर्या, (२) मन, (३) वचन, (४) एषणा, (५) आदाननिक्षेप पीला महाव्रतनी पाय भावना (६) विचारीने बोलवु, (७) क्रोध, (८) लोभ, (९) लय, (१०) हास्यवश असत्य नडि बोलवु ते त्रीला महाव्रतनी पाय भावना— (११) अठार प्रकारना शुद्ध स्थाननी याचना करीने सेवन करवु, (१२) प्रतिदिन

मपि वृक्षादीनामच्छेदनं, साधारणपिण्डस्याधिकतो न सेवनं, साधुवैयावृत्यकरणं चेति पञ्च तृतीयमहाव्रतस्य (३)। स्त्री-पशु-पण्डकरहितवसतिसेवनं, स्त्रीकथावर्जनं, स्त्रिय-द्वोपाङ्गाऽनवलोकनं, पूर्वकृतसुरतरतेरस्मरणं, प्रतिदिनं भोजनपरित्यागश्चेति पञ्च चतुर्थमहाव्रतस्य (४)। प्रशस्ताऽप्रशस्तशब्द-रूप-गन्ध-रस-स्पर्शेषु रागद्वेषवर्जनं, शब्दादिभेदात्पञ्च पञ्चममहाव्रतस्य (५) ति मिलित्वा पञ्चविंशतिर्भावनास्ताभिः। 'दसा रूप व्यवहाराण' दशा कल्प व्यवहाराणां=दशाश्रुतस्कन्ध-वृहत्कल्प व्यवहारसूत्राणां यथाक्रमं दश-पद्-दशसख्यका-व्ययनयुक्तानाम् 'उद्देशणकालेहि' उद्देशनकालैः=पठनसमयैः। 'सत्तावीसाए' सप्तविंशत्या, 'अणगारगुणेहि' अविद्यमान-

पीठ फलक आदि के लिए भी वृक्षादि को नहीं काटना, (१४) साधारण पिण्डका अधिक सेवन नहीं करना, (१५) साधुकी वैयावृत्य (वैयावच) करना। चौथे महाव्रत की पाँच भावना-(१६) स्त्री-पशु-पण्डक-रहित स्थानका सेवन करना, (१७) स्त्रीकथा वर्जन करना, (१८) स्त्रियों के अगोपागका अवलोकन नहीं करना, (१९) पूर्वकृत काम भोगका स्मरण नहीं करना, (२०) प्रतिदिन सरस भोजन का त्याग करना। पाँचवे महाव्रत की पाँच भावना-(२१) इष्टानिष्ट शब्द, (२२) रूप, (२३) गन्ध, (२४), रस, और (२५) स्पर्शमें राग-द्वेष नहीं करना। इन पचीस भावनाओं के विषयमें तथा दशाश्रुतस्कन्ध के दस, वृहत्कल्पके छह और व्यवहारसूत्र के दस, इन छत्तीस अध्ययनों के पठनकालमें, और जिनके द्रव्यसे-मिट्टी आदिका बना हुआ

पृथ-काष्ठादिषु अवयवेषु (१३) पीठ इलक आदि माटे पशु वृक्षने कापु नहि ते, (१४) साधारण पिण्डनु अधिक सेवन करवु नहि ते, (१५) साधुना वैयावृत्य (वैयावच) करवी यथा महाव्रतानी पाच भावना-(१६) स्त्री-पशु-पण्डक रहित स्थानकनु सेवन करवु, (१७) स्त्रीकथा वर्जन करवु, (१८) स्त्रीयोना अगोपागनु अवलोकन नहि करवु, (१९) पूर्वकृत कामभोगनु स्मरण नहि करवु, (२०) प्रतिदिन सरस भोजनना त्याग करवी पाचभा महाव्रतानी पाच भावना-(२१) इष्टानिष्ट शब्द, (२२) रूप, (२३) गन्ध, (२४) रस अने (२५) स्पर्शमा राग-द्वेष नहि करवी आ पचीस भावनायोना विषयभा तथा दशाश्रुतस्कन्धना दश, वृहत्कल्पना छ अने व्यवहारसूत्रना दस, आ छ वीस अध्ययनना पठन



मगार=द्रव्यतो गृह भावतः कषायमोहनीय येषां तेऽनगाराः=साधवस्तेषां गुणाः= पञ्चमहात्रतानि, पञ्चेन्द्रियनिग्रहाः, चत्वारः क्रोधादिविवेकाः, अन्तरात्मशुद्धिसञ्जात भावसत्य, प्रत्युपेक्षणादिक्रियायामुपयुक्तत्वं करणसत्य, योगानां मनआदीनां यथार्थत्वं योगसत्यमिति भाव-करण-योगसत्यानि त्रीणि, क्षमा, विरागितैका प्रमिद्धे इमे, अकुशलानां मनो-वाक्कायानां निरोधास्त्रयः, ज्ञान-दर्शन-चारित्र्य सम्पन्नतास्तिस्रः, शीतादिवेदनासहिष्णुत्वमेव, मारणान्तिकोपसर्गसहनशीलता चैकेति सङ्कलनेन सप्तविंशतिरनगारगुणास्तैः ॥ सू० १६ ॥

॥ मूलम् ॥

अट्टावीसाए आयारप्पकप्पेहिं । एगूणतीसाए

पावसुयप्पसगेहिं ॥ सू० १७ ॥

अगार (घर) और भावसे-कषायमोहनीयरूप अगार नहीं है उन अनगार के (१-५) पाँच महाव्रत, (६-१०) पाँच इन्द्रियनिग्रह, (११-१४) चार कषायजय, (१५) भावसत्य (अन्तरात्मशुद्धि), (१६) करणसत्य (प्रतिलेखनादि क्रिया में उपयोग), (१७) योगसत्य (शुद्धमार्गमें मनयोग आदि की प्रवृत्ति करना), (१८) क्षमा, (१९) विरागिता-वैराग्य, (२०) अप्रशस्त मन (२१) वचन (२२) काय का निरोध, (२३) सम्यग् दर्शन, (२४) ज्ञान, (२५) चारित्र्य से युक्तता, (२६) शीत आदि वेदना का सहना, और (२७) मारणान्तिक उपसर्ग सहना। इन सत्ताईस अनगार गुणों के विषय में जो कोई अतिचार किया गया हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ ॥ सू० १६ ॥

समयमा, अने जेना द्रव्यथी-भाटी आदिनु भनेछु भकान (घर) अने भावथी-कषाय मोहनीय रूप अगार नहीं ते अणुगारना (१-५) पाय महाव्रत (६-१०) पाय इन्द्रियनिग्रह (११-१४) चार कषाय-जय, (१५) भावसत्य (अन्तरात्मशुद्धि), (१६) करणसत्य (प्रतिलेखनादि क्रियामा उपयोग), (१७) योगसत्य (शुद्ध मार्गमा भनेयोग आदिनी प्रवृत्ति करवी), (१८) क्षमा, (१९) वैराग्य, (२०) अप्रशस्त मन, (२१) वचन अने (२२) कायानु निरोध, (२३) सम्यग्दर्शन, (२४) ज्ञान अने (२५) चारित्र्यथी युक्तता, (२६) शीत आदि वेदनाअनु सहन करु अने (२७) मारणान्तिक उपसर्ग सहन करवे आ सत्तावीश अणुगारना गुणाना विषयमा जे कोछ अतियार लाय्या कोय ते तेभाथी हु निवृत्त थाछ छ' (सू० १६)

॥ छाया ॥

अष्टाविंशत्याऽऽचारप्रकल्पैः । एकोनविंशता पापश्रुतमसद्गैः ॥ सू० १७ ॥

॥ टीका ॥

‘अद्वावीसाए’ अष्टाविंशत्या, ‘आयारप्परुप्पेहिं’ आचारः=आचाराङ्ग पञ्चविंशत्यध्ययनात्मक, तत्र (१) शस्त्रपरिज्ञा-(२) लोकविजय-(३)-शीतोष्णीय-(४) सम्यक्त्व-(५) लोकसार-(६) धूत-(७) विमोक्षो-(८) उपधानश्रुत-(९) महापरिज्ञारूपाध्ययननवकः प्रथमश्रुतस्कन्धः, (१-२) पिण्डैपणा-शग्ये-(३) र्ग्या-(४) भाषा-(५) वस्त्रैपणा-(६-७) पात्रैपणाऽवग्रहप्रतिमाः, (८) स्थानसप्तैकिका (९) नैषेधिकीसप्तैकिका (१०) उच्चारप्रस्रवणसप्तैकिका (११) शब्दसप्तैकिका (१२) रूपसप्तैकिका (१३) परक्रियासप्तैकिका (१४)

आचाराङ्ग के दो श्रुतस्कन्ध हैं, उनमें प्रथम के नव अध्ययन हैं-(१) शस्त्रपरिज्ञाध्ययन (२) लोकविजयाध्ययन, (३) शीतोष्णनामाध्ययन, (४) सम्यक्त्वनामाध्ययन, (५) लोकसाराध्ययन, (६) धूताध्ययन, (७) विमोक्षाध्ययन, (८) उपधानश्रुताध्ययन, (९) महापरिज्ञाध्ययन । द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सोलह-(१) पिण्डैपणाध्ययन, (२) शग्याध्ययन, (३) ईर्ग्याध्ययन, (४) भाषाध्ययन, (५) वस्त्रैपणाध्ययन, (६) पात्रैपणाध्ययन, (७) अवग्रहप्रतिमाध्ययन, (८) स्थानसप्तैकिकाध्ययन, (९) नैषेधिकीसप्तैकिकाध्ययन, (१०) उच्चारप्रस्रवणसप्तैकिकाध्ययन, (११) शब्दसप्तैकिकाध्ययन, (१२) रूपसप्तैकिकाध्ययन, (१३) परक्रियासप्तैकिकाध्ययन, (१४) अन्योन्य-

आचाराङ्गना में श्रुतस्कन्ध छे, तेमा प्रथमना नव अध्ययन छे (१) शस्त्रपरिज्ञाध्ययन (२) लोकविजयाध्ययन (३) शीतोष्णनामाध्ययन, (४) सम्यक्त्वनामाध्ययन, (५) लोकसाराध्ययन, (६) धूताध्ययन (७) विमोक्षाध्ययन, (८) उपधानश्रुताध्ययन, (९) महापरिज्ञाध्ययन द्वितीय श्रुतस्कन्धना सोलह अध्ययन छे-(१) पिण्डैपणाध्ययन (२) शग्या, (३) ईर्ग्या, (४) भाषा, (५) वस्त्रैपणा, (६) पात्रैपणा (७) अवग्रहप्रतिमाध्ययन, (८) स्थानसप्तैकिकाध्ययन, (९) नैषेधिकीसप्तैकिकाध्ययन (१०) उच्चारप्रस्रवणसप्तैकिकाध्ययन (११) शब्दसप्तैकिकाध्ययन (१२) रूपसप्तैकिकाध्ययन (१३) परक्रियासप्तैकिकाध्ययन (१४) अन्योन्यक्रिया

अन्योन्यक्रियासप्तैक्रिका, (१५) भायना, (१६) विमुक्तिश्चेति षोडशाध्ययनात्मको द्वितीयश्रुतसन्धः, इति मिलित्वा पञ्चविंशतिरभ्ययनानि, प्रकल्पः=प्रकृष्टः कल्पः स (१-२) चोद्घाताऽनुद्घाताऽऽ-(३) 'रोपणारूपाध्ययनत्रयात्मकनिशीथापर नामक इति सकल' सङ्कलनयाऽष्टाविंशतिरभ्ययनानि, तथा चाऽऽचारपदेन पञ्चविंशतेरध्ययनानां, प्रकल्पपदेन च त्रयाणामव्ययनानां ग्रहणमभिप्रेत्य आचाराश्च प्रकल्पाश्चेति द्वन्द्वेनाऽऽचारप्रकल्पास्तैरिति बहुवचनमुक्तम् ॥

‘एशूपतीसाए’ एकोनत्रिंशता, ‘पावसुयप्पसगेहि’ पातयन्त्यात्मान दुर्गतायिति पापानि, श्रूयन्ते गुरुमुख्यादिति श्रुतानि=शास्त्राणि, पापानि=पापरूपाणि श्रुतानि, पापश्रुतानि तेषां प्रसङ्गाः=तद्विवेचनरूपास्तदभ्यसनरूपा वा पापश्रुत-प्रसङ्गास्तैः, तत्र पापश्रुतानि यथा-भौमोत्पातस्वप्ना-ऽन्तरिक्षाद्ग-स्वर-व्यञ्जन-

क्रियासप्तैक्रिकाध्ययन, (१५) भावनाध्ययन, (१६) विमुक्ताध्ययन, इस प्रकार दोनों मिलाकर पचीस अध्ययन हुए, और निशीथ के तीन—(१) उद्घात, (२) अनुद्घात, (३) आरोपणा, इन अट्ठाईस अध्ययनों की श्रद्धा प्ररूपणा आदिमें जो कोई अतिचार किया गया हो ‘तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ’।

आत्मा को दुर्गति में डालनेवाले को ‘पाप’ कहते हैं, जो गुरुमुख से सुना जाय उसे ‘श्रुत’ कहते हैं, और पापरूप श्रुत को ‘पापश्रुत’ कहते हैं, वह उन्तीस प्रकार का है—(१) भौम-भूकल्प आदि के फल का प्रतिपादक शास्त्र, (२) उत्पात-अपने आप

सप्तैक्रिकाध्ययन (१५) भावनाध्ययन, (१६) विमुक्ताध्ययन के रीते करने भगिने पचीस अध्ययन तथा, अने निशीथना त्रयु (१) उद्घात, (२) अनुद्घात, (३) आदि पद्य के प्रमाणों के अङ्गीकृत अध्ययनोनी श्रद्धा प्ररूपणा आदिमा के कष्ट अतिचार लाग्या होय ‘ तो तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु

आत्माने दुर्गतिमा नाथनार क्रिया तेने ‘पाप’ कहे छे जे शुरुना मुपथी साक्षणवाभा आवे तेने ‘श्रुत’ कहे छे अने पापइय श्रुतने ‘पापश्रुत’ कहे छे ते आगच्छरीश प्रकारना छे (१) भौम-भूकल्प वगेरेना इहने कहेनार शास्त्र (२) उत्पात-पोतानी भेजे-कुदरती रीते थनारी-लोहीनी वृष्टिना इहने अणुपवनार

लक्षणरूपाण्यष्टौ। प्रत्येक सूत्र (मूल)-वृत्ति (टीका) वार्तिक- (आकाङ्क्षिकदेशपरण)  
भेदाच्चतुर्विंशतिः, विरुथानुयोग-विद्यानुयोग-मन्त्रानुयोग-योगानुयोगा-ऽन्य-  
तैर्यत्रप्रवृत्तानुयोगाश्चेति मिलित्वा एकोनत्रिंशत्। तत्र भौम=भूकम्पादिफल-  
प्रतिपादक शास्त्रम्। उत्पात=स्वाभाविकरुधिरवृष्ट्यादिफलप्रतिपादकम्। स्वप्न=  
स्वप्नफलप्रतिपादकम्। अङ्गम्=अङ्गस्फुरणादिफलप्रतिपादकम्। स्वर=जीवाजीव-  
गतस्वरफलप्रतिपादकम्। व्यञ्जयतेऽनेनेति व्यञ्जन=चिह्न, तत्सम्बन्धान्छास्त्रमपि  
व्यञ्जन, तच्च जन्मोत्तरकालजायमानशरीरस्थितिलमपाऽऽदिचिह्नविशेषशुभाशुभ-  
फलसूचकम्। लक्षण=शरीरसदृजातमानोन्मानप्रमाणादिफलमिधायकम्। इत्येव  
चतुर्विंशतिः। तथा विरुथानुयोग =कामोपायप्रतिपादकानि वात्स्यायनप्रणीत-

होनेवाली रुधिर आदि की वृष्टि के फल का कहनेवाला शास्त्र,  
(३) स्वप्न-स्वप्नफलप्रतिपादक शास्त्र, (४) अन्तरिक्ष-आकाश में  
ग्रहयुद्ध आदि के फलका सूचक शास्त्र, (५) अग फडकने के फल  
का सूचक शास्त्र, (६) स्वर-जीव आदि के स्वर के फल का प्रदर्शक  
शास्त्र, (७) व्यञ्जन-शरीर के तिल, मष आदि के फल का बोधक  
शास्त्र, (८) लक्षण-शरीर के साथ होने वाले मान उन्मान और  
प्रमाण के फलका प्रतिपादक शास्त्र ये आठ, सूत्र (मूल), वृत्ति  
(अर्थ) और वार्तिक (आकाङ्क्षित अर्थ की पूर्ति) ऐसे एक एक  
के तीन तीन भेद होने से आठत्रिक चौबीस हुए। (१) विकथानु-  
योग-कामोद्दीपकशास्त्र वात्स्यायन प्रणीत कामसूत्र आदि, (२)

शास्त्र (३) सप्त-स्वप्नफलप्रतिपादन करनारा शास्त्र (४) अन्तरिक्ष-आका  
शमा ग्रहयुद्ध आदिना इलने जलुवनाइ शास्त्र (५) अग इरके तेतु इण जलु  
वनाइ शास्त्र (६) स्वर-जीव आदिना स्वरना इणने जलुवनाइ शास्त्र (७) व्य  
ञ्जन-शरीरमा तिल, मषा आदिना इलने जलुवनाइ शास्त्र (८) लक्षण-शरीरना  
साथे थवावाणा मान उन्मान अने प्रमाणना इलने जलुवनाइ शास्त्र ये आठ  
सूत्र ( मूल ), वृत्ति ( अर्थ ) अने वार्तिक ( आकाङ्क्षित अर्थनी पूर्ति ) ये प्रमाणे  
ओक-ओकना त्रयु-त्रयु भेद होवाथी त्रयु अट्टा चौबीस थाय छे, (१) विकथानु  
योग-कामोद्दीपकशास्त्र-वात्स्यायन रचित कामसूत्रादि, (२) विद्यानुयोग-शैलुषी

१-स्वप्नः=स्वप्नसम्बन्धफलाफलविषयोऽस्मिन्नस्तीति स्वप्नम्, अर्थ आदि-  
स्वान्मत्पर्यायोऽचप्रत्ययस्तेन 'स्वप्' इति जातम्।

अन्योन्यक्रियासप्तैकिका, (१५) भावना, (१६) विमुक्तिश्चेति षोडशाध्ययनात्मको  
द्वितीयश्रुतस्मन्धः, इति मिलित्वा पञ्चविंशतिरध्ययनानि, प्रकल्पः=प्रकृष्टः कल्पः  
स (१-२) चोद्घाताऽनुद्घाताऽऽ-(३) 'रोपणारूपाध्ययनत्रयात्मननिशीथापर  
नामक इति सकल' सङ्कलनयाऽष्टाविंशतिरध्ययनानि, तथा चाऽऽचारपदेन  
पञ्चविंशतेरध्ययनानां, प्रकल्पपदेन च त्रयाणामध्ययनानां ग्रहणमभिप्रेत्य आचाराश्च  
प्रकल्पाश्चेति द्वन्द्वेनाऽऽचारप्रकल्पास्तैरिति बहुवचनमुक्तम् ॥

'एगूणतीसाए' एकोनत्रिंशता, 'पावसुयप्पसगेठिं' पातयन्त्यात्मानं  
दुर्गताविति पापानि, श्रूयन्ते गुरुमुख्यादिति श्रुतानि=शास्त्राणि, पापानि=पापरूपाणि  
श्रुतानि, पापश्रुतानि तेषां प्रसङ्गाः=तद्विवेचनरूपास्तदभ्यसनरूपा वा पापश्रुत-  
प्रसङ्गास्तैः, तत्र पापश्रुतानि यथा-भौमोत्पातस्वप्ना-उन्तरिक्षाङ्ग-स्वर-व्यञ्जन-

क्रियासप्तैकिकाध्ययन, (१५) भावनाध्ययन, (१६) विमुक्ताध्ययन,  
इस प्रकार दोनों मिलाकर पचीस अध्ययन हुए, और निशीथ के  
तीन—(१) उद्घात, (२) अनुद्घात, (३) आरोपणा, इन अष्टाईस  
अध्ययनों की श्रद्धा प्ररूपणा आदिमें जो कोई अतिचार किया गया  
हो 'तो उससे मैं निवृत्त होता हूँ'।

आत्मा को दुर्गति में डालनेवाले को 'पाप' कहते हैं, जो  
गुरुमुख से सुना जाय उसे 'श्रुत' कहते हैं, और पापरूप श्रुत  
को 'पापश्रुत' कहते हैं, वह उन्तीस प्रकार का है—(१) भौम-  
भूकम्प आदि के फल का प्रतिपादक शास्त्र, (२) उत्पात-अपने आप

सप्तैकिक अध्ययन (१५) भावनाध्ययन, (१६) विमुक्ताध्ययन ये होते हैं मणीने  
पचीस अध्ययन तथा, अने निशीथना त्रयु (१) उद्घात, (२) अनुद्घात, (३) आरो-  
पणा ये प्रभावे ये अष्टावीस अध्ययनोनी श्रद्धा प्ररूपणा आदिमा के साथ अतिचार  
लाग्या होय 'तो तेभाथी हूँ निवृत्त थाउं छु

आत्माने दुर्गतिमा नाणानर क्रिया तेने 'पाप' कडे छे के शुरुना सुपथी  
सावणवाभा आवे तेने 'श्रुत' कडे छे अने पापरूप श्रुतने 'पापश्रुत' कडे छे  
ते आगच्छरीश प्रकारना छे (१) भौम-भूकम्प वगेरेना इलने कडेनाना शास्त्र  
(२) उत्पात-पोतानी भेजे-कुदरती रीते थनारी-लोहीनी वृष्टिना इलने जल्लावनार

नीयशब्देन सामान्यतोऽष्टविध कर्म विशेषतश्चाष्टविधकर्मान्तर्गत चतुर्थं कर्म, तस्य स्थानानि=निमित्तानि मोहनीयस्थानानि=मोहनीयकर्मबन्धनजनकानीत्यर्थस्तैः । सम्बन्धस्तु यथापूर्वम् । तत्र त्रिंशत्स्थानानि यथा— (१) जले व्रोडयित्वा स्त्री-पुरुपादि-त्रसजीवानां हननम्, (२) श्वासाग्रवरोधेन हननम्, (३) अग्निधूम-प्रयोगेण हननम्, (४) प्रकृष्टप्रहारपूर्वकमस्तकस्फोटनेन हननम्, (५) आर्द्र-चर्मणा शिरो वेष्टयित्वा हननम्, (६) उन्मत्तादीन् मातुलुहादिफलादिभिः पौनः-पुन्येन हत्वोपहसनम्, यद्वा तस्करमहासाहसिकादिवच्छलेन निर्जने वने नीत्वा हननम्, (७) गूढमायाचारित्व-मायया मायाऽऽच्छादन सूत्रार्थगोपन वा, (८) स्वात्मकृतस्य ऋषिघाताग्रकृत्यस्यान्यस्मिन्नारोपणम्, (९) सदसि मिश्रभाषास-भाषणम्, (१०) भूपस्यार्थाऽऽगमद्वारमवध्क्य तद्द्वारा राज्यादेः स्वायत्तीकरणम्,

मोहनीय कर्म के बन्ध का कारण है, उसे 'महामोहनीयस्थान' कहते हैं, उसके तीस भेद हैं— (१) त्रसजीव स्त्रीपुरुष आदि पञ्चेन्द्रियों को पानी में डुबाकर मारना, (२) श्वास आदि को रोक कर मारना, (३) अग्नि धूम आदि के प्रयोग से मारना, (४) लठ्ट आदि से शिर फोड़ कर मारना, (५) गीले चमड़े से सिर याघ कर मारना, (६) पागल को नीबू आदि से मारकर हँसना, या चोर डाकुओं की तरह छल से निर्जन स्थान में लेजाकर मारना, (७) कपट में कपट करना अथवा सूत्र और अर्थको छिपाना, (८) अपने किये हुए ऋषिघातादि के पापका दूसरे पर आरोप करना, (९) सभा में मिश्र भाषा बोलना, (१०) राजा की आमदनी आदि

बन्धु कारण छे तेने महामोहनीय स्थान कहे छे, तेना त्रीश बेड छे (१) त्रसजिव स्त्री-पुरुष आदि पञ्चेन्द्रिय लवने पाणीमा डुभावी डुभावीने मारवा (२) श्वास वगेरे रोकने मारवा (३) अग्नि, धूमाडा वगेरेना प्रयोगथी मारवा ते (४) लाठी आदिथी माथु कैडीने मारवु (५) लीला आमडाथी माथु भाथीने मारवु (६) गाडा माथुसने लिथुना इण वडे मारने हसवु, अगर यार-डाकुनी प्रभावे छल-कपट करी वगडाभा लठ्ट बन्धने मारवु (७) कपटमा कपट करवु अथवा सूत्र-अर्थने छुपाववु (८) पोते करेला ऋषिघातादि पापने पीला उपर आरोप भूकेवा (९) सभामा मिश्रभाषा बोलवी (१०) राजनी

कामसूत्रादीनि, विद्यानुयोगः=रोहिण्यादिविद्यासाधनोपायप्रदर्शकानि शास्त्राणि ।  
 मन्त्रानुयोगः=भूतपिशाचादिसाधकमन्त्रप्रतिपादकानि शास्त्राणि । योगानुयोग =  
 वशीकरणदिविधिवोधकानि हरमेखलादियोगप्रतिपादकानि शास्त्राणि । अन्यैर्युक्ति  
 कप्रवृत्तानुयोग' = अन्ये च ते तैर्युक्तिकाः = अन्यैर्युक्तिकाः = कपिला (साङ्ख्य) द्यस्तेभ्यः  
 प्रवृत्तः = अन्यैर्युक्तिप्रवृत्तः स चासाधनानुयोग = स्वकीयाऽऽचारवस्तुतत्त्वाना विचार  
 विशेषस्तत्करणार्थं शास्त्रसन्दर्भोऽपि तथा 'गृहा दारा' इतिवदिति । सम्बन्धस्तु  
 'यो मयाऽतिचारः कृतः' इत्यादिना प्रागुक्तवदेवेति बहुश उक्तमस्मामिः ॥ सू० १७ ॥

॥ मूलम् ॥

तीसाए मोहणीयद्वारेहि ॥ सू० १८ ॥

॥ छाया ॥

त्रिंशता मोहनीयस्थानैः ॥ सू० १८ ॥

॥ टीका ॥

'तीसाए' त्रिंशता=त्रिंशत्संख्यकै, 'मोहणीयद्वारेहि' अत्र मोह-

विद्यानुयोग-रोहिणी आदि विद्या के साधन के उपाय का प्रदर्शक  
 शास्त्र, (३) मन्त्रानुयोग-भूतपिशाच आदि के साधक मन्त्रों के  
 शास्त्र, (४) योगानुयोग-वशीकरण आदि का बोधक, तथा हरमेख-  
 लादियोगप्रतिपादक शास्त्र, (५) अन्यैर्युक्तिप्रवृत्तानुयोग-कपिल  
 आदि के बनाये हुए साख्य आदि शास्त्र, इनकी श्रद्धा प्ररूपणा  
 आदि करने से जो अनिचार किया गया हो 'तो उससे मैं  
 निवृत्त होता हूँ' ॥ सू० १७ ॥

जो सामान्य रूप से आठ कर्मोंके और विशेषरूप से

आदि विद्या आदिना साधनाना उपायानु दर्शन करवानाई शास्त्र, (३) मन्त्रानु-  
 योग-भूत पिशाच आदिना साधक मन्त्रानु शास्त्र (४) योगानुयोग-वशीकरण  
 आदिना बोध करवानाई शास्त्र, तथा हर-मेखलादि योग प्रतिपादन करवानाई शास्त्र  
 (५) अन्यैर्युक्तिप्रवृत्तानुयोग-कपिल आदिना बनायेला साङ्ख्यादि शास्त्र, तेनी  
 श्रद्धा-प्ररूपणादि करवाथी ने कोछ अतिथार लाग्या होय 'तो तेभाथी हु  
 निवृत्त थाउ छ' (सू० १७)

ने सामान्य रूपथी आठ कर्मोंना अने विशेषरूपथी मोहनीय कर्मना

नीयशब्देन सामान्यतोऽष्टविध कर्म विशेषतश्चाष्टविधकर्मान्तर्गत चतुर्थं कर्म, तस्य स्थानानि=निमित्तानि मोहनीयस्थानानि=मोहनीयकर्मवन्धनजनकानीत्यर्थस्तैः । सम्बन्धस्तु यथापूर्वम् । तत्र त्रिंशत्स्थानानि यथा— (१) जले ब्रूयित्वा स्त्री-पुरुषादि-त्रसजीवानां हननम्, (२) श्वासाद्यवरोधेन हननम्, (३) अग्निधूम-प्रयोगेण हननम्, (४) प्रकृष्टप्रहारपूर्वकमस्तकस्फोटनेन हननम्, (५) आर्द्र-चर्मणा शिरो वेष्टयित्वा हननम्, (६) उन्मत्तादीन् मातुलुङ्गादिफलादिभिः पौनः-पुन्येन हत्वोपहसनम्, यद्वा तस्करमहासाहसिकादिवच्छलेन निर्जने वने नीत्वा हननम्, (७) गूढमायाचारित्व-मायया मायाऽऽच्छादन सूत्रार्थगोपन वा, (८) स्वात्मकृतस्य ऋषिघाताद्यकृत्यस्यान्यस्मिन्नारोपणम्, (९) सदसि मिश्रभाषास-भाषणम्, (१०) भूपस्यार्थाऽऽगमद्वारमवध्ख्य तद्द्वारा राज्यादेः स्वायत्तीकरणम्,

मोहनीय कर्म के घन्ध का कारण है, उसे 'महामोहनीयस्थान' कहते हैं, उसके तीस भेद हैं— (१) त्रसजीव स्त्रीपुरुष आदि पञ्चेन्द्रियों को पानी में डुबाकर मारना, (२) श्वास आदि को रोक कर मारना, (३) अग्नि धूम आदि के प्रयोग से मारना, (४) लड्ड आदि से शिर फोड़ कर मारना, (५) गीले चमड़े से सिर बाध कर मारना, (६) पागल को नीबू आदि से मारकर हँसना, या चोर डाकुओं की तरह छल से निर्जन स्थान में लेजाकर मारना, (७) कपट में कपट करना अथवा सूत्र और अर्थको छिपाना, (८) अपने किये हुए ऋषिघातादि के पापका दूसरे पर आरोप करना, (९) सभा में मिश्र भाषा बोलना, (१०) राजा की आमदनी आदि

पधत्तु कारण छे तेने महामोहनीय स्थान कहे छे, तेना त्रीश बेद छे (१) त्रसजिव स्त्री-पुरुष आदि पञ्चेन्द्रिय छवेने पाष्ठीभा दुष्वापी दुष्वापीने मारवा (२) श्वास वगेरे शैकीने मारवा (३) अग्नि, धूमाडा वगेरेना प्रयोगथी मारवा ते (४) लाठी आदिथी माथु शैकीने मारवु (५) लीला आभडाथी माथु पाधीने मारवु (६) गाडा माथुसने लिथुना इण वडे मारीने हसवु, अगर ब्यार-डाकुनी प्रभावे छल-कपट करी वगडाभा लर्थ नधने मारवु (७) कपटभा कपट करवु अथवा सूत्र-अर्थने छुपाववु (८) पोते कहेला ऋषिघातादि पापने पील छपर आरोप भूडवे (९) सभाभा मिश्रभाषा बोलवी (१०) राजनी



(११) अकुमारब्रह्मचारिणः सतोऽपि 'अहमस्मि कुमारब्रह्मचारी'-तिभाषणम्, (१२) मैथुनादनिवृत्तस्य सतोऽपि 'ब्रह्मचार्यह'-मिति सभाषणम्, (१३) यद्वलम्बनेन वृद्धिमुपगतस्तस्यैव त्रिभृतिषु श्लोभः, (१४) यैः पौरजनैर्यैः स्वामिपदे समारोपितस्तेन तेषामनिष्टकरणम्, (१५) स्वीयाण्डसमूहस्य नागिन्येव स्वामिनो व्यभिचारिण्या पत्न्येव पोषयितुं राजादेर्दःसचियादिनेत्राऽऽश्रयस्य स्वेन हननम्, (१६) एकदेशाधिपतेर्घातचिन्तन घातो वा, (१७) अनेकदेशाधिपतेर्बहुजननायकस्य, हेयोपादेयवस्तुनिरूपकधार्मिकपुरुषस्य वा घातचिन्तन घातो वा, (१८) प्रव्रज्यादिग्रहणरूपधर्मार्थमुत्तम्य पुरुषस्य धर्मादे-

रोककर उसके राज्य आदि को अपने अधिकार में करना, (११) बालब्रह्मचारी न रहने पर भी अपने को बालब्रह्मचारी कहना, (१२) ब्रह्मचारी नहीं और ब्रह्मचारी नाम धराना, (१३) जिसके आश्रय से उन्नत हुआ हो उसीकी जड़ काटना, (१४) जिस जनसमुदाय से उच्च अधिकार पाया हो उसीका अनिष्ट करना, (१५) जैसे सर्पिणी अपने अण्डेका, व्यभिचारिणी स्त्री अपने पतिका और दुष्ट मन्त्री अपने राजाका सहार करते हैं उसी प्रकार अपने रक्षक का विनाश करना, (१६) एक देशके स्वामी राजा का घातचिन्तन करना, या घात करना, (१७) अनेक देशके स्वामी राजा, या जनसमुदाय के नायक, अथवा धर्मात्मा पुरुष का घातचिन्तन करना या घात करना, (१८) प्रव्रज्या लेने के लिये उद्यत

आमदानी वगैरे शैलीने तेना राज्याने पोताना कण्ठमा लेवु (११) बालब्रह्मचारी न होवा छताय पोताने बालब्रह्मचारी कडेवराववु, (१२) ब्रह्मचारी न होय अने ब्रह्मचारी कडेवराववु (१३) जेना आश्रये पोतानी उन्नत थय होय तेन आश्रयना भूषण काठवा ते (१४) जे आश्रयना समुदायधी उच्च अधिकार भज्यो होय तेनु अन्विष्ट करवु (१५) जेवी रीते सर्पिणी पोताना धडाने, व्यभिचारिणी स्त्री पोताना पतिने अने दुष्ट मन्त्री पोताना राजने सहार करे छे, ते प्रमाद्ये पोताना रक्षकने विनाश करवे (१६) अनेक देशना स्वामी राजने घात चिन्तववे अथवा घात करवे (१७) अनेक देशना स्वामी राज, अथवा जनसमुदायना नायक अथवा धर्मात्मा पुरुषना घातनु चिन्तवव करवु, अगरे तो घात करवे (१८) प्रव्रज्या लेवा तैयार थयेला पुरुषना परिष्ठाभने पाछा

भ्रंशनम्, (१९) वीतरागावर्णवादकरणम्, (२०) मोक्षमार्गस्यापकरणमवर्णवाद-  
करण वा, (२१) येभ्य आचार्योपाध्यायेभ्यः सूत्रविनयादिकं गृहीत तेषामेव  
निन्दनम्, (२२) आचार्योपाध्यायादीना यथाशक्ति वैयावृत्याऽकरणम्, विन-  
यात्रकरण वा, (२३) अगृह्युतस्या ऽपि सतो 'बहुश्रुतोऽस्मी'-ति वचनम्'  
(२४) अतपस्विनः सतोऽपि 'तपस्व्यहमस्मी' ति प्रथनम्, (२५) ग्लानादीना  
वैयावृत्याकरणम्, (२६) हिंसोपदेशदान सघच्छेदभेदादिकरण वा, (२७)  
आत्मश्लाघार्थं मुहुर्मुहुर्धार्मिकवशीकरणादिप्रयोगसाधनम्, (२८) ऐहिक-  
पारलौकिककामभोगाना तीव्राभिलाषाऽऽविष्करणम्, (२९) ऋद्ध्यादिमता

पुरुष के परिणामों को हटाना, (१९) वीतराग का अवर्णवाद  
करना, (२०) मोक्षमार्गका अपकार, अथवा अवर्णवाद करना,  
(२१) जिन आचार्य उपाध्याय आदिकों से सूत्र विनय आदि सीखे  
हैं उन्हीं की निंदा करना, (२२) आचार्य उपाध्याय आदिकों की  
यथाशक्ति वैयावृत्य विनय आदि का नहीं करना, (२३) बहुश्रुत  
नहीं होने पर भी 'मैं बहुश्रुत हूँ' ऐसा कहना, (२४) तपस्वी न  
होने पर भी तपस्वी नाम धराना, (२५) ग्लान आदिकी यथाशक्ति  
वैयावृत्य नहीं करना, (२६) हिंसाका उपदेश देना या सघमें  
छेद-भेद करना, (२७) अपनी बड़ाई के लिये बारबार वशीकरण  
आदि अधार्मिक प्रयोगों का करना, (२८) इसलोक या परलोक  
सम्बन्धी कामभोगों की तीव्र लालसा करना, (२९) ऋद्धियुक्त

हुंसाकी देवा ते (१९) वीतरागना अवर्णवाद करवो (२०) मोक्षमार्गना अपकार,  
अथवा अवर्णवाद करवो (२१) जे आचार्य उपाध्याय आदिथी सूत्र विनय  
आदि सीखा होथ तेनी निन्दा करवी (२२) आचार्य उपाध्याय वगेरेनी यथा-  
शक्ति वेथावय विनय आदि नहिं करवु ते (२३) अगृह्युत नहिं होवा छताय  
पण 'हुं अगृह्युत हूँ' जेअ कहेवु (२४) तपस्वी नहिं होवा छताय तपस्वा  
नाम धराववु (२५) ग्लान आदिनी यथाशक्ति वैयावृत्य नहिं करवी (२६) हिंसानो  
उपदेश आपवो अथवा तो सघमा छेद-भेद पाडवो (२७) पोतानी णडांठ भाटे  
वारवार वशीकरण आदि अधार्मिक प्रयोग करवो (२८) आ लोक अथवा पर-  
लोक सम्बन्धी कामभोगनी तीव्र लालसा करवी, (२९) ऋद्धियुक्त देवेनो अव-

(११) अकुमारब्रह्मचारिणः सतोऽपि 'अहमस्मि कुमारब्रह्मचारी'-तिभाषणम्, (१२) मैथुनादनिवृत्तस्य सतोऽपि 'ब्रह्मचार्यह'-मिति सभाषणम्, (१३) यदवलम्बनेन वृद्धिमुपगतस्तस्यैव त्रिभूतिषु ग्लोभः, (१४) यैः पौरजनैर्यः स्वामिपदे समारोपितस्तेन तेषामनिष्टकरणम्, (१५) स्त्रीयाण्डसमूहस्य नागिन्येव स्वामिनो व्यभिचारिण्या पत्न्येव पोषयित्वा राजादेर्दःसचित्रादिनेवाऽऽश्रयस्य स्वेन हननम्, (१६) एकदेशाधिपतेर्यातचिन्तन घातो वा, (१७) अनेकदेशाधिपतेर्वहुजननायकस्य, हेयोपादेयवस्तुनिरूपधार्मिकपुरुषस्य या घातचिन्तन घातो वा, (१८) प्रज्यादिग्रहणरूपधर्मार्थमुग्रतम्य पुरुषस्य धर्मादे-

रोककर उसके राज्य आदि को अपने अधिकार में करना, (११) बालब्रह्मचारी न रहने पर भी अपने को बालब्रह्मचारी कहना, (१२) ब्रह्मचारी नहीं और ब्रह्मचारी नाम धराना, (१३) जिसके आश्रय से उन्नत हुआ हो उसीकी जड़ काटना, (१४) जिस जनसमुदाय से उच्च अधिकार पाया हो उसीका अनिष्ट करना, (१५) जैसे सर्पिणी अपने अण्डेका, व्यभिचारिणी स्त्री अपने पतिका और दुष्ट मन्त्री अपने राजाका सहार करते हैं उसी प्रकार अपने रक्षक का विनाश करना, (१६) एक देशके स्वामी राजा का घातचिन्तन करना, या घात करना, (१७) अनेक देशके स्वामी राजा, या जनसमुदाय के नायक, अथवा धर्मात्मा पुरुष का घातचिन्तन करना या घात करना, (१८) प्रज्या लेने के लिये उद्यत

आमदानी वगैरे शक्तिने तेना राज्याने पोताना कण्ठमा लेवु (११) बालब्रह्मचारी न होवा छताय पोताने बालब्रह्मचारी कडेवराववु, (१२) ब्रह्मचारी न होय अने ब्रह्मचारी कडेवराववु (१३) तेना आश्रये पोताना उन्नत यद्य होय तेन माणुसना मूण काढवा ते (१४) ते माणुसना समुदायधी उच्च अधिकार भवथी होय तेनुन अनिष्ट करवु (१५) जेवी रीते सर्पिणी पोताना छडाने, व्यभिचारिणी स्त्री पोताना पतिने अने दुष्ट मन्त्री पोताना राजाने सहार करे छे, ते प्रमाणे पोताना रक्षकने विनाश करवो (१६) जेक देशना स्वामी राजाने घात चिन्तवो अथवा घात करवो (१७) अनेक देशना स्वामी राजा, अथवा जनसमुदायना नायक अथवा धर्मात्मा पुरुषना घातनु चिन्तवन् करवु, अगरे तो घात करवो (१८) प्रज्या लेवा तैयार यजेला पुरुषना परिष्ठाभने पाछा

भ्रंशनम्, (१९) वीतरागावर्णवाद्करणम्, (२०) मोक्षमार्गस्यापकरणमवर्णवाद्-  
करण वा, (२१) येभ्य आचार्योपाध्यायेभ्यः सूत्रविनयादिक गृहीत तेषामेव  
निन्दनम्, (२२) आचार्योपाध्यायादीना यथाशक्ति वैयावृत्त्याऽकरणम्, विन-  
यात्रकरण वा, (२३) अवहुश्रुतस्या ऽपि सतो 'बहुश्रुतोऽस्मी'-ति वचनम्'  
(२४) अतपस्विन' सतोऽपि 'तपस्व्यहमस्मी' ति प्रकथनम्, (२५) ग्लानादीना  
वैयावृत्त्याकरणम्, (२६) हिंसोपदेशदान सघच्छेदभेदादिकरण वा, (२७)  
आत्मश्लाघार्थं मुहुर्मुहुर्धार्मिकवशीकरणादिप्रयोगसाधनम्, (२८) ऐहिक-  
पारलौकिककामभोगाना तीव्राभिलाषाऽऽविष्करणम्, (२९) ऋद्ध्यादिमता

पुरुष के परिणामों को हटाना, (१९) वीतराग का अवर्णवाद  
करना, (२०) मोक्षमार्गका अपकार, अथवा अवर्णवाद करना,  
(२१) जिन आचार्य उपाध्याय आदिकों से सूत्र विनय आदि सीखे  
हैं उन्हीं की निंदा करना, (२२) आचार्य उपाध्याय आदिकों की  
यथाशक्ति वैयावृत्त्य विनय आदि का नहीं करना, (२३) बहुश्रुत  
नहीं होने पर भी 'मैं बहुश्रुत हूँ' ऐसा कहना, (२४) तपस्वी न  
होने पर भी तपस्वी नाम धराना, (२५) ग्लान आदिकी यथाशक्ति  
वैयावृत्त्य नहीं करना, (२६) हिंसाका उपदेश देना या सघमें  
छेद-भेद करना, (२७) अपनी बड़ाई के लिये चारवार वशीकरण  
आदि अधार्मिक प्रयोगों का करना, (२८) इसलोक या परलोक  
सम्बन्धी कामभोगों की तीव्र लालसा करना, (२९) ऋद्धियुक्त

हुंसावी देवा ते (१९) वीतरागना अवर्णवाद करवो (२०) मोक्षमार्गना अपकार,  
अथवा अवर्णवाद करवो (२१) जे आचार्य उपाध्याय आदिहीं सूत्र विनय  
आदि सीखा होय तेनी निन्दा करवी (२२) आचार्य उपाध्याय वगेरेनी यथा-  
शक्ति वेधावय विनय आदि नहि करवु ते (२३) बहुश्रुत नहि होवा छताय  
पद्य 'हुं बहुश्रुत हूँ' अथ करवु (२४) तपस्वी नहि होवा छताय तपस्वी  
नाम धरावु (२५) ग्लान आदिनी यथाशक्ति वैयावृत्त्य नहि करवी (२६) हिंसाना  
उपदेश आपवो अथवा तो सघमा छेद-भेद पाडवो (२७) पातानी गडाधं भाटे  
चारवार वशीकरण आदि अधार्मिक प्रयोग करवो (२८) आ लोक अथवा पर  
लोक सम्बन्धी कामभोगनी तीव्र लालसा करवी, (२९) ऋद्धियुक्त देवाना अप-

देवानामवर्णनादः, (३०) अपश्यतोऽपि 'पश्याम्यह देवान्' इत्युक्तिः, अजिन त्वेऽपि 'जिनोऽस्मी' त्युक्तिर्वेति ॥ सू० १८ ॥

॥ मूलम् ॥

एगतीसाए सिद्धाद्गुणेहिं । वतीसाए जोगसगहेहिं ॥ सू० १९ ॥

॥ छाया ॥

एकत्रिंशता सिद्धादिगुणैः । द्वात्रिंशता योगसङ्ग्रहैः ॥ सू० १९ ॥

॥ टीका ॥

'एग०' इति. 'एगतीसाए' एकत्रिंशता=एकत्रिंशत्सङ्ख्यकैः, 'सिद्धाद्गुणेहिं' आदौ=सिद्धावस्थाप्राप्तिवेलायामेव यौगपद्येन स्थायिनो न तु क्रमभाविनो गुणा आदिगुणा, सिद्धानामादिगुणाः=सिद्धादिगुणास्तैः । सम्बन्धस्तूक्त एव । ते गुणा यथा—पञ्चविधज्ञानावरणीयक्षीणत्वानि पञ्च, नवविधदर्शनावरणीयक्षीणत्वानि नव, द्विविधवेदनीयक्षीणत्वे द्वे, द्विविधमोहनीयक्षीणत्वे द्वे, चतुर्विधायुःक्षीणत्वानि चत्वारि, द्विविधनामकर्मक्षीणत्वे द्वे, द्विविधगोत्रकर्मक्षीणत्वे द्वे, पञ्चविधान्तरायक्षीणत्वानि पञ्चेति मिलित्वैकत्रिंशदिति । 'वती-

देवोका अवर्णवाद बोलना, (३०) देवता को नहीं देखते हुए भी 'मैं देवता को देखता हूँ' ऐसा कहना, इन तीस महामोहनीय स्थानों के द्वारा जो कोई अतिचार किया गया हो 'तो मैं उससे निवृत्त होता हूँ' ॥ सू० १८ ॥

सिद्ध अवस्था की प्राप्तिके समय सिद्धों में एक साथ रहनेवाले गुणोंको सिद्धादिगुण कहते हैं, वे पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, दो वेदनीय, दो मोहनीय, चार आयु, दो गोत्र, दो नाम, पाँच अन्तराय, इन इकतीस प्रकृतियों के क्षयरूप इकतीस

र्षुवाह भोलवो (३०) देवताने नहिं जेवा छताय 'हुं देवताने जेउ छु' जे प्रभाजे कडेपु ते आ त्रीश महाभेदनीय स्थानो द्वारा जे छथ अतिचार लाग्या छाय तो तेभाथी हुं निवृत्त थउ छु' (सू० १८)

सिद्ध अवस्थानी प्राप्तिना सभये सिद्धोभा जेक साथे रहेवावाणा शुद्धोने सिद्धादिगुण कडे छे ते पाच ज्ञानावरणीय, नव दर्शनावरणीय, दो वेदनीय, दो भेदनीय, चार आयु, दो गोत्र, दो नाम, पाच अन्तराय, जे जेकत्रीश प्रकृ-

साए' द्वात्रिंशत्ता=द्वात्रिंशत्सख्यकैः 'जोगसगहेर्हि' योगाः=योजनानि=मनोवा-  
 कायव्यापारास्ते च यत्रपि शुभाशुभभेदेन द्विविधास्तथापि प्रसङ्गादत्र शुभा एव  
 विवक्षिता', तेषा सङ्ग्रहास्तैः, सम्बन्धो यथापूर्वमेव, ते च सग्रहा द्वात्रिंशत्तथा-  
 (१) गुरुसमीपगमनपुर'सरपापसमालोचनरूपमालोचनम्, (२) अन्यपुरतो गुरु-  
 णाऽपि शिष्यानालोचनरूपो निरपलाप', (३) आपत्सु धर्मदाढ्यम्, (४) ऐहिक-  
 पारलौकिकसुखानिच्छया क्रियानुष्ठानरूपमनिश्रितोपधानम्, (५) 'ग्रहणाऽऽसेव-  
 नारूपा शिक्षा, (६) शरीरादिसस्कारवर्जनरूपा निष्प्रतिकर्मता, (७) प्रच्छन्नतपः-

गुण हैं, इनके विषयमे जो अतिचार किया गया हो 'तो मैं उस  
 से निवृत्त होता हूँ ।

मन वचन कायके व्यापार को योग कहते हैं, वे यद्यपि  
 शुभ अशुभ के भेद से दो प्रकार के हैं, तथापि यहाँपर प्रकरण  
 वश शुभ योगों का ही ग्रहण-है, उनके सग्रह को योगसग्रह  
 कहते हैं, वे बत्तीस हैं—(१) आलोचन-गुरु के समीप जाकर पापकी  
 आलोचना करना, (२) निरपलाप-दूसरे के सामने शिष्यकी  
 आलोचना का प्रकाशित न किया जाना, (३) आपत्ति आने पर भी  
 धर्ममे दृढ रहना, (४) अनिश्रितोपधान- इहलोक-परलोक सम्बन्धी  
 सुख की इच्छा न रखकर क्रियानुष्ठान करना, (५) शिक्षा-विधि  
 पूर्वक सूत्रादि-ग्रहण-रूप ग्रहणा और समाचारीका सम्यक्पालन-  
 रूप आसेवना (६) निष्प्रतिकर्मता-शरीरसस्कार का परित्याग,

तिष्मोना क्षयइप ओकत्रीश गुणु छे ते विषयभा ने काछ अतिचार लाग्या डाय  
 तो 'तेमाथी हु निवृत्त थाउ छु'

मन, वचन अने कायाना व्यापारने योग कहे छे ते शुभ-अशुभना  
 लेखी ने प्रकारना डोय छे छता पणु आ स्थणे प्रकरण वश शुभयोगानु अहणु  
 करेणु छे तेभाभा सग्रहने योगसग्रह कहे छे ते गत्रीश प्रकारना छे (१)  
 आपोचन गुरुना पासे नधने पापनी आवोचनना करवी, (२) निरपलाप-भीजना  
 पासे शिष्येनी आवोचनना नडेर नहि करवी, (३) आपत्ति आववा छताय धर्मभा  
 दृढ रहेणु, (४) अनिश्रितोपधान-आ लौक-परलौक सम्बन्धी सुखनी धरछा नहि  
 राभना क्रियानुष्ठान करवा, (५) शिक्षा-विधिपूर्वक सूत्रादिअहणु इप अहणु अने समाचारीनु

१-यथाविधिसूत्रादिग्रहणलक्षणा ग्रहणा, सामाचार्या. सम्यक्पालनमासेवना ।

देवानामवर्णवादः, (३०) अपश्यतोऽपि 'पश्याम्यह देवान्' इत्युक्तिः, अजिन-  
त्वेऽपि 'जिनोऽस्मी' त्युक्तिर्वेति ॥ सू० १८ ॥

॥ मूलम् ॥

एगतीसाए सिद्धाइगुणेहिं । वर्तीसाए जोगसगहेहिं ॥ सू० १९ ॥

॥ छाया ॥

एकत्रिंशता सिद्धादिगुणैः । द्वात्रिंशता योगसङ्ग्रहैः ॥ सू० १९ ॥

॥ टीका ॥

'एग०' इति. 'एगतीसाए' एकत्रिंशता=एकत्रिंशत्सङ्ख्यकैः, 'सिद्धा-  
इगुणेहिं' आदौ=सिद्धावस्थामाप्तिवेलायामेव यौगपद्येन स्थायिनो न तु क्रम-  
भाविनो गुणा आदिगुणा, सिद्धानामादिगुणाः=सिद्धादिगुणास्तैः । सम्बन्धस्तू-  
क्त एव । ते गुणा यथा-पञ्चविधज्ञानावरणीयक्षीणत्वानि पञ्च, नवविधदर्शनावर-  
णीयक्षीणत्वानि नव, द्विविधवेदनीयक्षीणत्वे द्वे, द्विविधमोहनीयक्षीणत्वे द्वे,  
चतुर्विधायु'क्षीणत्वानि चत्वारि, द्विविधनामकर्मक्षीणत्वे द्वे, द्विविधगोत्रकर्म-  
क्षीणत्वे द्वे, पञ्चविधान्तरायक्षीणत्वानि पञ्चेति मिलित्वैकत्रिंशदिति । 'वर्ती

देवोका अवर्णवाद बोलना, (३०) देवता को नहीं देखते हुए भी  
'मैं देवता को देखता हूँ' ऐसा कहना, इन तीस महामोहनीय  
स्थानों के द्वारा जो कोई अतिचार किया गया हो 'तो मैं उससे  
निवृत्त होता हूँ' ॥ सू० १८ ॥

सिद्ध अवस्था की प्राप्तिके समय सिद्धों में एक साथ रहने-  
वाले गुणोंको सिद्धादिगुण कहते हैं, वे पाँच ज्ञानावरणीय, नौ  
दर्शनावरणीय, दो वेदनीय, दो मोहनीय, चार आयु, दो गोत्र,  
दो नाम, पाँच अन्तराय, इन इकतीस प्रकृतियों के क्षयरूप इकतीस

एवाह मोलवो, (३०) देवताने नहिं जेवा छताय 'हु देवताने जेठ छ'  
अे प्रभाजे कडेवु ते आ त्रीश महाभोडनाय स्थानो द्वारा जे कथ अतिचार  
साग्या छाय तो 'तेभाथी हु निवृत्त थाठ छ' (सू० १८)

सिद्ध अवस्थानी प्राप्तिना सभये सिद्धोमा अेक साथे रहेवावाणा गुणोने  
सिद्धादिगुण कडे छे ते पाथ ज्ञानावरणीय, नव दर्शनावरणीय, दो वेदनीय,  
दो मोहनीय, चार आयु, दो गोत्र, दो नाम, पाथ अन्तराय, अे अेकत्रीश प्रकृ-

व्युत्सर्गः, (२६) अप्रमादः, (२७) समुचितममयानतिक्रमेण सामाचार्यनुष्ठानरूपो लवालवः, (२८) आर्त्तरौद्रध्यानप्रहाणपूर्वकधर्मशुक्लध्यानसमादरणरूपो ध्यानसवरणयोगः, (२९) मारणान्तिकवेदनोदयेऽपि क्षोभराहित्यम्, (३०) ज्ञ-प्रत्याख्या नपरिज्ञया 'सगपरिज्ञान-सगवर्जनरूपा सद्गपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्ताऽऽचरणम्, (३२) मरणान्ते (मरणसमये)ऽपि ज्ञानागाराधना चेति ॥ सू० १९ ॥

॥ मूलम् ॥

तित्तीसाए आसायणाए ॥ सू० २० ॥

॥ ज्ञया ॥

त्रयस्त्रिंशताऽऽशातनाभिः ॥ सू० २० ॥

॥ टीका ॥

‘तित्तीसाए’ त्रयस्त्रिंशता=त्रयस्त्रिंशत्सरयकाभिः, ‘आसायणाए’

व्युत्सर्गः, (२६) अप्रमादः, (२७) उचित समयमें सामाचारीका अनुष्ठानरूप लवालवः, (२८) आर्त्तरौद्ररूप ध्यान के परित्याग-पूर्वक धर्मशुक्ल ध्यानका आदररूप ध्यान सवरणयोग, (२९) मारणान्तिक उपसर्ग सहन करना, (३०) प्रत्याख्यानपरिज्ञा से सगपरित्यागरूप सगपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्त करना, (३२) मरणपर्यन्त ज्ञानादिकी आराधना करना । इन बत्तीस योगसग्रहों का सम्यग् आराधन नहीं होने से जो कोई अतिचार किया गया हो ‘तो मैं उससे निवृत्त होता हूँ’ ॥ सू० १० ॥

जिससे ज्ञान आदिगुण नष्ट हो जाते हैं, अथवा सम्यग्

(२५) द्रव्य अने भावधी द्योत्सर्गि करवा इप व्युत्सर्गः, (२६) अप्रमादः, (२७) उचित समयमा सामाचारीना-अनुष्ठान इप लवा-लवः, (२८) आर्त्तरौद्र-इप ध्यानना परित्यागपूर्वक-धर्मशुक्ल ध्यानना आदर इप ध्यान सवरणयोगः, (२९) मारणान्तिक उपसर्ग सहन करवा, (३०) प्रत्याख्यानपरिज्ञाधी सग परित्यागइप सगपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्त करवु ते (३२) मरण सुधी ज्ञानादिकनी आराधना करवी, आ प्रमाद्ये धत्रीश योगसग्रहनु सम्यक् प्रकारे आराधन नहि थवाधी ने काष्ठ अतिचार थया डोय तो ‘तेमाधी हु निवृत्त थाडि छु’ (सू० १८)

नेना करवु ज्ञान आदि गुण नाश थु जता डोय, अथवा सम्यग्



करणरूपा अज्ञातता, (८) अलोभः=लोभराहित्यम्, (९) परिपहोपसर्गादिसहन-  
रूपा तितिक्षा, (१०) कौटिल्यत्यागरूपमार्जवम्, (११) समयविषयकातिचार-  
मलवर्जनरूपा शुचिः, (१२) सम्यक्त्वशुद्धरूपा सम्यग्दृष्टिः, (१३) चित्तैका-  
ग्रतारूपः समाधिः, (१४) आचारः=मायाराहित्यम्, (१५) विनयः=मानराहि-  
त्यम्, (१६) धैर्यसहिता या मतिस्तद्रूपा धृतिमतिः (१७) ससाराद्भयस्य मोक्षा  
भिलापस्य च यत्करण तद्रूपः सवेग (१८) मायाशल्यवर्जनरूपः प्रणिधिः, (१९)  
प्रशस्तक्रियापरायणतास्वरूपः सुविधिः, (२०) आश्रवनिरोधरूपः सवरः, (२१)  
आत्मदोषपरिहारः, (२२) कामपरित्यागः, (२३) मूलगुणविषयकप्रत्याख्यानम्,  
(२४) उत्तरगुणविषयकप्रत्याख्यानम्, (२५) द्रव्यभावेन कायोत्सर्गकरणरूपो

(७) अज्ञातता-गुप्त तप करना, (८) अलोभ-लोभ त्यागना, (९)  
नितिक्षा-परिपह-उपसर्गादिका सहन करना, (१०) आर्जव-कुटिल  
भावका त्याग करना, (११) शुचि=अतिचाररहित समय पालना,  
(१२) सम्यग्दृष्टि=समकितकी शुद्धि, (१३) समाधि-चित्तकी  
एकाग्रता, (१४) आचार, (१५) विनय, (१६) धृतिमति-धैर्ययुक्तमति,  
(१७) सवेग-ससार से भय और मोक्ष की इच्छा, (१८) प्रणिधि-  
मायापरित्याग, (१९) सुविधि-उत्तम क्रियामें तल्लीन रहना,  
(२०) सवर-आश्रवनिरोध, (२१) आत्मदोषपरिहार, (२२) कामपरि-  
त्याग, (२३) मूलगुण-सम्बन्धी प्रत्याख्यान, (२४) उत्तरगुण-  
सम्बन्धी प्रत्याख्यान, (२५) द्रव्यभाव से कायोत्सर्गकरणरूप

सम्यक् पालन करवाइय आसेवना (६) निःप्रतिकर्भता-शरीरसंस्कारनेो परित्याग  
(७) अज्ञातता गुप्ततप करवु, (८) अलोभ-लोभनेो त्याग करवो, (९) तितिक्षा  
परिपह-उपसर्गनु सहन करवु, (१०) आर्जव-कुटिलभावनेो त्याग करवो,  
(११) शुचि-अतिचाररहित समयनु पालन करवु, (१२), सम्यग्दृष्टि-समकितनी  
शुद्धि, (१३) समाधि-चित्तनी एकाग्रता, (१४) आचार, (१५) विनय, (१६)  
धृतिमति-धैर्ययुक्त मति, (१७) सवेग-ससारनेो भय अने मोक्षनी इच्छा,  
(१८) प्रणिधि-मायापरित्याग, (१९) सुविधि-उत्तम क्रियाभा तल्लीन रहेवु,  
(२०) सवर आश्रवनिरोध, (२१) आत्मदोषपरिहार, (२२) कामपरित्याग,  
(२३) मूलगुणसम्बन्धी प्रत्याख्यान, (२४) उत्तरगुणसम्बन्धी प्रत्याख्यान,

व्युत्सर्गः, (२६) अप्रमादः, (२७) समुचितसमयानतिक्रमेण सामाचार्यनुष्ठानरूपो लवालवः, (२८) आर्त्तरौद्रध्यानप्रहाणपूर्वकधर्मशुक्लध्यानसमादरणरूपो ध्यानसवरणयोगः, (२९) मारणान्तिकवेदनोदयेऽपि क्षोभराहित्यम्, (३०) ज्ञ-प्रत्याख्या नपरिज्ञया 'सगपरिज्ञान-सगवर्जनरूपा सद्गपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्ताऽऽचरणम्, (३२) मरणान्ते (मरणसमये)ऽपि ज्ञानागाराधना चेति ॥ सू० १९ ॥

॥ मूलम् ॥

तित्तीसाए आसायणाए ॥ सू० २० ॥

॥ ज्ञया ॥

त्रयस्त्रिंशताऽऽशातनाभिः ॥ सू० २० ॥

॥ टीका ॥

'तित्तीसाए' त्रयस्त्रिंशता=त्रयस्त्रिंशत्सख्यकाभिः, 'आसायणाए'

व्युत्सर्ग, (२६) अप्रमाद, (२७) उचित समयमें सामाचारीका अनुष्ठानरूप लवालव, (२८) आर्त्तरौद्ररूप ध्यान के परित्याग-पूर्वक धर्मशुक्ल ध्यानका आदररूप ध्यान सवरणयोग, (२९) मारणान्तिक उपसर्ग सहन करना, (३०) प्रत्याख्यानपरिज्ञा से सगपरित्यागरूप सगपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्त करना, (३२) मरणपर्यन्त ज्ञानादिकी आराधना करना । इन बत्तीस योगसग्रहों का सम्यग् आराधन नहीं होने से जो कोई अतिचार किया गया हो 'तो मैं उससे निवृत्त होता हूँ' ॥ सू० १० ॥

जिससे ज्ञान आदिगुण नष्ट हो जाते हैं, अथवा सम्यग्

(२५) द्रव्य अने भावधी क्षयोत्सर्ग करवा इप व्युत्सर्ग, (२६) अप्रमाद, (२७) उचित समयमा सामाचारीना-अनुष्ठान इप लवा-लव, (२८) आर्त्तरौद्र-इप ध्यानना परित्यागपूर्वक-धर्मशुक्ल ध्यानना आदर इप ध्यान सवरणयोग, (२९) मारणान्तिक उपसर्ग सहन करवे, (३०) प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी सग परित्यागइप सगपरिज्ञा, (३१) प्रायश्चित्त करवु ते (३२) मरण सुधी ज्ञानादिकनी आराधना करवी, आ प्रमाद्ये जत्रीश योगसग्रहनु सम्यक् प्रकारे आराधन नहिं थवाथी जे काष्ठ अतिचार थया छाय तो 'तेमाधी हुं निवृत्त थाउ छु' (सू० १८)

जेना क्षरये ज्ञान आदि गुण नाश थयं जता छाय, अथवा सम्यग्

आ=समन्तात्' शात्यन्ते=अपनीयन्ते ज्ञानादयो गुणा याभिरिति, यद्वा निरुक्त-  
रीत्या आ=आयः सम्यग्ज्ञानादिलाभस्तस्य शातना<sup>१</sup>=खण्डनाः आशातना-  
स्ताभिः । सम्यन्धस्तु पूर्ववदेव, अत्रैकवचन त्वार्पत्वात्, एतास्त्रयस्त्रिंशदाशातनाः  
प्रकरणान्तरोक्ता गुरुसम्यन्धिन्यो त्रोद्धव्याः, ता यथा-(१) रात्निकस्य पुरतो गम-  
नम्, (२) पार्श्वतः समश्रेण्या गमनम्, (३) आसन्नतो गमनम्. एव (४) रात्निक-  
स्य पुरतोऽवस्थानम्, (५) पार्श्वतोऽवस्थानम्, (६) आसन्नावस्थानम्, (७)  
पुरतो निपदनम्, (८) पार्श्वतो निपदनम्, (९) आसन्ननिपदन चेति नव । (१०)  
सज्ञाभूमिं गतवतोर्गुरुशिष्ययोर्गुरुतः पूर्वमाचमनम्, (११) गमनागमनयो. पूर्व-  
मालोचनम्, (१२) गुरुणा सल्पित्तुमागतेन सह गुरुतः पूर्वं सल्पनम्, (१३)  
'को जागर्तीति कः स्वपितीति वा' रात्रौ गुरुणा पृष्टस्य जाग्रतोऽपि शिष्यस्याऽ-

ज्ञानादि-रत्नत्रयका लाभ जिसके द्वारा खण्डित होता है वह गुरु-  
सम्बन्धी 'आशातना' तैंतीस प्रकारकी है—(१) गुरु से आगे चलना,  
(२) बराबर चलना, (३) अत्यन्त नजदीक चलना, (४) गुरुके आगे खडा  
रहना, (५) बराबर खडा रहना, (६) अधिक पासमें खडा रहना, (७)  
गुरुके आगे बैठना, (८) बराबर बैठना, (९) अत्यन्त समीप बैठना,  
(१०) गुरुके साथ सज्ञाभूमि जाने पर गुरुसे पहले शौच करना,  
(११) उपाश्रय में आकर गुरुके पहले हर्षावही-प्रतिक्रमण करना,  
(१२) गुरु से वार्तालाप करने के लिए आये हुए के साथ गुरु के  
पहले बोलना, (१३) 'कौन सोया कौन जागता है?' इस प्रकार

ज्ञानादि-रत्न-त्रयने लाभ लेना द्वारा अडित यतो डाय ते गुरु-सम्बन्धी  
'आशातना' तैंतीस प्रकारनी छे—

(१) गुरुनी आगण आलवु, (२) बराबर आलवु, (३) अत्यन्त नजदीक आलवु,  
(४) गुरुनी आगण उभा रहेवु, (५) बराबर उभा रहेवु, (६) अधिक नजदीक उभा  
रहेवु, (७) गुरुनी आगण भेसवु, (८) बराबर भेसवु, (९) अधिक नजदीक भेसवु,  
(१०) गुरुनी साथे सज्ञाभूमि जाता गुरुनी पहिला शौच करवु, (११) उपा-  
श्रयमा आलीने गुरुना पहिला हर्षावही प्रतिक्रमण करवु, (१२) गुरुनी साथे  
वार्तालाप करवा भाटे आवेलाना साथे गुरु वात करे ते पहिला वात करवी,  
(१३) कौण सुतेला छे? कौण जागता छे? आ प्रभाणे रात्रीमे गुरु पृष्ठे तयारे

भाषणम्, (१४) अशनादिकमानीय पूर्वं लघोः पुरत आलोचनम्, (१५) एव-  
मेवोपदर्शनम्, (१६) निमन्त्रण च, (१७) रात्निकमपट्टां स्वेच्छयैवाहारादि-  
कस्यान्येभ्यः प्रदानम्, (१८) गुरुणा सहाऽभ्यवहरणे अप्रशस्त विहाय प्रशस्तस्य  
वस्तुनो भोजनम्, (१९) सति प्रयोजने व्याहरता रात्निकेनाऽऽहूतस्यापि तूष्णीं-  
भावः, (२०) आसनासीनतयैव रात्निकाय प्रतिवाक्यदानम्, (२१) रात्निका-  
ऽऽहूतेन शिष्येण 'तथेति' इति वक्तव्ये 'किमुच्यते ? न श्रुत पुनरुच्यताम्'-  
इत्यादिप्रलपनम्, (२२) प्रेरयन्त रात्निक प्रति त्वङ्कारशब्दोच्चारणम्, (२३)  
रत्नाधिकस्य पुरतः प्रयोजनादधिक निरर्थक कठोर वा सभाषणम्, (२४) ग्लाना-

रात्रिमे गुरु के पूछने पर जागते हुए भी उत्तर नहीं देना, (१४)  
आहार आदि लाकर प्रथम छोटे के पास आलोचना करना, (१५)  
आहारपानी आदि लाकर प्रथम छोटे को दिखाना, (१६) गुरु को  
पूछे बिना अपनी इच्छा से अन्य छोटे साधुओं की निमन्त्रणा  
करना, (१७) गुरु को पूछे बिना ही अपनी इच्छासे अन्य साधुओं  
को आहार आदि देना, (१८) गुरु के साथ आहार करता हुआ  
मनोज २ स्वयं खाजाना, (१९) कार्यवश गुरु के बोलाने पर चुप  
रह जाना, (२०) आसन पर बैठे हुए ही गुरु को उत्तर देना,  
(२१) गुरु के बोलाने पर 'तद्वत्ति' न बोल कर 'क्या कहते हैं !'  
क्या कहना है !' ऐसा बोलना, (२२) गुरुको 'तृ' शब्द बोलना, (२३)  
गुरु के सामने प्रयोजन से अधिक निरर्थक तथा कठोर बोलना,

जगता होवा छताय उत्तर नहि आपवो, (१४) आहार वगेरे लावीने प्रथम  
नानानी भाने आहोचनता करवी, (१५) आहार-पाणी आदि लावीने प्रथम  
नाना होय तेने देणाडवो, (१६) गुरुछने पूछ्या विना पोतानी छच्छाथीन अन्य  
नाना साधुने निभत्रषु करवु, (१७) गुरुछने पूछ्या विना पोतानी छच्छाथीन अन्य  
साधुओने आहार आदि आपवु, (१८) गुरुनी साथे आहार करता पोताने ने  
साइ लागे ते पोतेन भाछं जवु, (१९) कार्यवश गुरुछ गोलावे तो पक्षु चुप  
रही जवु, (२०) आसन उपर भेडा भेडा उत्तर आपवो, (२१) गुरुछ गोलावे  
त्यारे " तद्वत्ति " नहि छहेता " शु छडो छे ? " शु छडेवु छे ? जे प्रभाछु  
जवाण आपवो, (२२) गुरुछने 'तृ' शण्ठथी गोलाववा, (२३) गुरुनी सामे प्रयो

आ=समन्तात्' शात्यन्ते=अपनीयन्ते ज्ञानादयो गुणा याभिरिति, यद्वा निरुक्त-  
रीत्या आ=आयः सम्यग्ज्ञानादिलाभस्तस्य शातना'=खण्डनाः आशातना  
स्ताभिः । सम्बन्धस्तु पूर्ववदेव, अत्रैकत्रचन त्वार्पत्वात्, एतास्त्रयस्त्रिंशदाशातनाः  
प्रकरणान्तरोक्ता गुरुसम्बन्धिन्यो बोद्धव्याः, ता यथा-(१) रात्रिकस्य पुरतो गम-  
नम्, (२) पार्श्वतः समश्रेण्या गमनम्, (३) आसन्नतो गमनम्, एव (४) रात्रि-  
कस्य पुरतोऽवस्थानम्, (५) पार्श्वतोऽवस्थानम्, (६) आसन्नावस्थानम्, (७)  
पुरतो निपदनम्, (८) पार्श्वतो निपदनम्, (९) आसन्ननिपदन चेति नव । (१०)  
सज्ञाभूमिं गतवतोर्गुरुशिष्ययोर्गुरुतः पूर्वमाचमनम्, (११) गमनागमनयोः पूर्व-  
मालोचनम्, (१२) गुरुणा सलपितुमागतेन सह गुरुतः पूर्वं सलपनम्, (१३)  
'को जागर्तीति कः स्वपितीति वा' रात्रौ गुरुणा पृष्टस्य जाग्रतोऽपि शिष्यस्याऽ-

ज्ञानादि-रत्नत्रयका लाभ जिसके द्वारा खण्डित होता है वह गुरु-  
सम्बन्धी 'आशातना' तेतीस प्रकारकी है—(१) गुरु से आगे चलना,  
(२) बराबर चलना, (३) अत्यन्त नजदीक चलना, (४) गुरुके आगे खडा  
रहना, (५) बराबर खडा रहना, (६) अधिक पासमे खडा रहना, (७)  
गुरुके आगे बैठना, (८) बराबर बैठना, (९) अत्यन्त समीप बैठना,  
(१०) गुरुके साथ सज्ञाभूमि जाने पर गुरुसे पहले शौच करना,  
(११) उपाश्रय में आकर गुरु के पहले इर्थावही-प्रतिक्रमण करना,  
(१२) गुरु से वार्तालाप करने के लिए आये हुए के साथ गुरु के  
पहले घोलना, (१३) 'कौन सोया कौन जागता है?' इस प्रकार

ज्ञानादि-रत्न-त्रयने लाभ लेना द्वारा अर्जित होते होय ते गुरु-सम्बन्धी  
'आशातना' तेतीस प्रकारनी छे—

(१) गुरुनी आगण आलवु, (२) बराबर आलवु, (३) अत्यन्त नजदीक आलवु,  
(४) गुरुनी आगण उभा रहेवु, (५) बराबर उभा रहेवु, (६) अकेकडम नजदीक उभा  
रहेवु, (७) गुरुनी आगण मेसवु, (८) बराबर मेसवु, (९) अकेकडम नजदीक मेसवु,  
(१०) गुरुनी साथे सज्ञाभूमि जाता गुरुनी पहिला शौच करवु, (११) उपा-  
श्रयमा आवीने गुरुना पहिला इर्थावही प्रतिक्रमण करवु, (१२) गुरुनी साथे  
वार्तालाप करवा भाटे आवेलाना साथे गुरु वात करे ते पहिला वात करवी,  
(१३) केषु सुतेला छे ? केषु जागे छे ? आ प्रभाषे रात्रीमे गुरुछे पूछे त्यारे

भाषणम्, (१४) अशनादिकमानीय पूर्वं लघोः पुरत आलोचनम्, (१५) एव-  
मेवोपदर्शनम्, (१६) निमन्त्रण च, (१७) रात्निकमपृष्टां स्वेच्छयैवाहारादि-  
कस्यान्येभ्यः प्रदानम्, (१८) गुरुणा सहाऽभ्यवहरणे अप्रशस्त विहाय प्रशस्तस्य  
वस्तुनो भोजनम्, (१९) सति प्रयोजने व्याहरता रात्निकेनाऽऽहूतस्यापि तूष्णीं-  
भावः, (२०) आसनासीनतयैव रात्निकाय प्रतिवाक्यदानम्, (२१) रात्निका-  
ऽऽहूतेन शिष्येण 'तथेति' इति वक्तव्ये 'किमुच्यते? न श्रुत पुनरुच्यताम्'-  
इत्यादिप्रल्पनम्, (२२) प्रेरयन्त रात्निक प्रति त्वङ्कारशब्दोच्चारणम्, (२३)  
रत्नाधिकस्य पुरत. प्रयोजनादधिक निरर्थक कठोर वा सभाषणम्, (२४) ग्लाना-

रात्रिमे गुरु के पूछने पर जागते हुए भी उत्तर नहीं देना, (१४)  
आहार आदि लाकर प्रथम जड़े के पास आलोचना करना, (१५)  
आहारपानी आदि लाकर प्रथम छोटे को दिखाना, (१६) गुरु को  
पूछे बिना अपनी इच्छा से अन्य छोटे साधुओं की निमन्त्रणा  
करना, (१७) गुरु को पूछे बिना ही अपनी इच्छासे अन्य साधुओं  
को आहार आदि देना, (१८) गुरु के साथ आहार करता हुआ  
मनोज्ञ स्वयं खाजाना, (१९) कार्यवश गुरु के बोलने पर चुप  
रह जाना, (२०) आसन पर बैठे हुए ही गुरु को उत्तर देना,  
(२१) गुरु के बुलाने पर 'तदस्ति' न बोल कर 'क्या कहते हैं!  
क्या कहना है!' ऐसा बोलना, (२२) गुरुको 'तृ' शब्द बोलना, (२३)  
गुरु के सामने प्रयोजन से अधिक निरर्थक तथा कठोर बोलना,

गतता होवा छताय उत्तर नहि आपवो, (१४) आहार वगेरे लावीने प्रथम  
नानानी पास आलोचना करवी, (१५) आहार-पाणी आदि लावीने प्रथम  
नाना होय तेने देखावो, (१६) गुरुछने पूछया बिना पोतानी छच्छाधीन अन्य  
नाना साधुने निमन्त्रण करवु, (१७) गुरुछने पूछया बिना पोतानी छच्छाधीन अन्य  
साधुओने आहार आदि आपवु, (१८) गुरुनी साथे आहार करता पोताने ने  
साइ लागे ते पोतेन भाधे नवु, (१९) कार्यवश गुरुछ बोलावे तो पक्ष चुप  
रही नवु, (२०) आसन उपर मेठा मेठा उत्तर आपवो, (२१) गुरुछ बोलावे  
त्यारे " तदस्ति " नहि कहेता " शु कडो छे? " शु कडेवु छे? अे प्रभाषे  
नवाण आपवो, (२२) गुरुछने 'तृ' शब्दधी बोलाववा, (२३) गुरुनी सामे प्रये

दिपरिचर्यार्थं प्रेरकाय गुरवे 'त्र कथ न सपरिचरसि'—इत्यादिरीत्योदीरणम्, (२५) कथा कथयतो रात्निकस्य 'एव वक्तव्यम्' इति कथनम्, (२६) कथा कथयतो रात्निकस्य 'नो स्मरति भवान्' इति कथनम्, (२७) कर्मकथा श्रावयति रात्निकेऽन्यमनस्कृता, (२८) रात्निककथाया परिपद्धेदनम्, (२९) धर्मकथाया 'गोचरीवेला सम्प्राप्ता'—इत्यादिचिप्रलापः, (३०) अनुत्थिताया परिपदि रात्निकोक्ताया एव कथाया मुहुर्मुहु रुचिररूपेण स्वयभाषणम्, (३१) रात्निकसम्बन्धि शय्यासस्तारकादीना पादादिना सघटनम्, (३२) तस्य शय्यादिषूपवेशनादि, (३३) रात्निकादुच्चासने समुपवेशनमिति ॥ सू० २० ॥

(२४) ग्लान आदि की वैयावृत्य के लिये गुरुद्वारा प्रेरणा करने पर 'आप क्यों नहीं करते हो !' ऐसा उत्तर देना । (२५) धर्मकथा करते हुए गुरु को टोकना अर्थात् 'यह ऐसा नहीं है ऐसा है' इत्यादि कहना, (२६) धर्मकथा कहते हुए गुरु को 'आपको याद नहीं है क्या !' ऐसा कहना, (२७) गुरु की धर्मकथा से प्रसन्न नहीं होना, (२८) गुरु की सभा में छेदभेद करना, (२९) धर्मकथा में 'गोचरी का समय आ गया' इत्यादि बोलना, (३०) उपस्थित (बैठी हुई) सभामें गुरु से कही गई कथा को दोहरा कर सुन्दर रूप से कहना, (३१) गुरुसम्बन्धी शय्या-स्यारे का पैर आदि से सघटा करना, (३२) गुरु की शय्या आदि पर बैठना (३३) गुरु से ऊँचे आसन पर बैठना । इन तीस आशातनाओ

नथी अधिक निरर्थक तथा कठोर मोक्षपु, (२४) ग्लान आदिनी वैयावृत्य कर वानी गुरुद्वारा आज्ञा भणता "तमे केम करता नथी" ? ओवो उत्तर आपवो, (२५) धर्मकथा करता होय त्यारे गुरुने टोकवु, अर्थात् "आ प्रभाछे नथी" 'ओ प्रभाछे छे', इत्यादि कडेवु (२६) धर्मकथा करता गुरुछने 'आपने याद नथी थु' आवी रीते कडेवु, (२७) गुरुनी धर्मकथाथी प्रसन्न नही थवु, (२८) गुरुछनी सभामा छेदभेद करवु (२९) धर्मकथाभा गोचरीने समय थध गयो छे' आ प्रकारे मोक्षपु, (३०) मेठेली सभामा गुरुछमे कडेली कथाने भीछ वणत सुद्धर इपथी कडेवी (३१) गुरुछ सम्बन्धी शय्या सथानने पग वडे करीने स्पर्श करवो. (३२) गुरुछनी शय्या वगेरे उपर मेसवु, (३३) गुरुछना आसन करता उँचा आसन उपर मेसवु. आ तीस आशातनाओ

एव गुरुसम्बन्धिनीस्त्रयस्त्रिंशदाशतना अभिधाय सम्प्रति तदितरा  
अप्याह-‘अरिहताण’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

अरिहताण आसायणाए, सिद्धाण आसायणाए, आयरियाणं  
आसायणाए, उवज्झायाण आसायणाए, साहूण आसायणाए,  
साहुणीण आसायणाए, सावथाण आसायणाए, सावियाण आसा-  
यणाए, देवाण आसायणाए, देवीण आसायणाए, इहलोगस्स  
आसायणाए, परलोगस्स आसायणाए, केवलीण आसायणाए,  
केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए, सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स  
आसायणाए, सब्बपाणभूयजीवसत्ताण आसायणाए, कालस्स  
आसायणाए, सुअस्स आसायणाए, सुयदेवयाए आसायणाए,  
वायणायरियस्स आसायणाए, ज वाइद्ध, वच्चाभेलिय, हीणक्खर,  
अच्चक्खर, पयहीण, विणयहीण, जोगहीण, घोसहीण, सुट्ठुदिन्नं,  
दुट्ठुपडिच्छिय, अकाले कओ सज्झाओ, काले न कओ सज्झाओ,  
असज्झाए सज्झाइय, सज्झाए न सज्झाइय, तस्स मिच्छा मि  
दुक्कड ॥ सू० २१ ॥

॥ जया ॥

अर्हतामाशातनया, सिद्धानामाशातनया, आचार्याणामाशातनया, उपा-  
ध्यायानामाशातनया, साधूनामाशातनया, साध्वीनामाशातनया, श्रावकाणा-  
माशातनया, श्राविकाणामाशातनया, देवानामाशातनया, देवीनामाशातनया,  
इहलोरूपाऽऽशातनया, परलोरूपाऽऽशातनया, केवलिनामाशातनया, केवलि-  
सम्बन्धी कोई अतिचार किया गया हो तो ‘उससे मैं निवृत्त  
होता हूँ ॥ सू० २० ॥

इस प्रकार गुरु सम्बन्धी तैनीस (३३) आशातनाए कह कर  
अथ अरिहन्तादि की आशातनाए कहते हैं—

सम्बन्धी कोई अतिचार लाया होय ‘तो तेभायी हु निवृत्त थाडि छु (सू० २०)

या प्रकारे गुरु सम्बन्धी तैनीस आशातनाया कइया पछी हुवे अरि  
हतादिनी आशातना कइ छे—



दिपरिचर्यार्थं प्रेरकाय गुरवे 'त्व कथ न सपरिचरसि'—इत्यादिरीत्योदीरणम्, (२५) कथा कथयतो रात्निकस्य 'एव वक्तव्यम्' इति कथनम्, (२६) कथा कथयतो रात्निकस्य 'नो स्मरति भवान्' इति कथनम्, (२७) कर्मकथा श्रावयति रात्निकेऽन्यमनस्कता, (२८) रात्निककथाया परिपद्मेदनम्, (२९) धर्मकथाया 'गोचरीवेला सम्प्राप्ता'—इत्यादिविमलापः, (३०) अनुत्थिताया परिपदि रात्निकोक्ताया एव कथाया मुहुर्मुहु रचिररूपेण स्वयभाषणम्, (३१) रात्निकसम्बन्धिशय्यासस्तारकादीना पादादिना सघटनम्, (३२) तस्य शय्यादिषूपवेशनादि, (३३) रात्निकादुच्चासने समुपवेशनमिति ॥ सू० २० ॥

(२४) ग्लान आदि की वैयावृत्य के लिये गुरुद्वारा प्रेरणा करने पर 'आप क्यों नहीं करते हो !' ऐसा उत्तर देना । (२५) धर्मकथा करते हुए गुरु को टोकना अर्थात् 'यह ऐसा नहीं है ऐसा है' इत्यादि कहना, (२६) धर्मकथा करते हुए गुरु को 'आपको याद नहीं है क्या !' ऐसा कहना, (२७) गुरु की धर्मकथा से प्रसन्न नहीं होना, (२८) गुरु की सभा में छेदभेद करना, (२९) धर्मकथा में 'गोचरी का समय आ गया' इत्यादि बोलना, (३०) उपस्थित (बैठी हुई) सभामें गुरु से कही गई कथा को दोहरा कर सुन्दर रूप से कहना, (३१) गुरुसम्बन्धी शय्या-सथारे का पैर आदि से सघटा करना, (३२) गुरु की शय्या आदि पर बैठना (३३) गुरु से ऊँचे आसन पर बैठना । इन तैंतीस आशातनाओं

० नधी अधिक निरर्थक तथा कठोर बोलवु, (२४) ग्लान आदिनी वैयावृत्य कर वानी गुरुद्वारा आज्ञा भणता "तमे केम करता नधी" ? जेवो उत्तर आपवो, (२५) धर्मकथा करता होय त्यारे गुरुने टोकवु, अर्थात् "आ प्रभाजे नधी" 'जे प्रभाजे छे' इत्यादि कहेवु (२६) धर्मकथा करता गुरुने आपने याद नधी शु' आपी रीते कहेवु, (२७) गुरुनी धर्मकथाथी प्रसन्न नहीं थवु, (२८) गुरुनी सभामा छेदभेद करवु (२९) धर्मकथामा गोचरीने समय थथ गयो छे' आ प्रकारे बोलवु, (३०) बैठेली सभामा गुरुजे कहेली कथाने भीजे वषत सुदर इपथी कहेथी (३१) गुरु सम्बन्धी शय्या सथाराने पग वडे करीने स्पर्श करवो (३२) गुरुनी शय्या वगेरे उपर बसवु, (३३) गुरुना आसन करता उँया आसन उपर बसवु. आ तेनीश आशातनाजे

पुण्यप्रकृतिनाहुल्येनाऽन्तःसन्त्यक्तनिखिलाऽऽसक्तितया केवलमौदासीन्येनैव, तदपि च ससारावस्थायामेव, एव केवलज्ञाने सम्प्राप्तेऽपि मोहनीयकर्माभावा-  
दनिच्छाया सत्यामपि समवसरणादिप्राप्तिस्तीर्थररुनामकर्मप्रकृतिफलभोगस्य  
दुर्निवारतया तदुदयेनैव, नह्येतावता वीतरागत्वमाप्त्युत्तर तेषां किञ्चिद्दीयते वीत-  
रागत्वादेव । 'सिद्धाण०' इति, सिद्धानामाशातना यथा-न सन्ति सिद्धाश्चेष्टा-

लोगो की तरह 'आसक्त हो कर नहीं, किन्तु पूर्वोपाजित पुण्य-  
प्रकृति का प्रबल उदय होने के कारण अनिवार्य भोगों को अना-  
सक्त हो कर उदासीन भावसे भोगा है, इसी प्रकार मोहनीय  
कर्म का अभाव होने से सब प्रकार की इच्छा से रहित और  
वीतराग हो जाने पर भी तीर्थङ्करनामकर्म प्रकृति के उदय के  
कारण दुर्निवार देवकृत समवसरणादि से युक्त होते हैं। अतएव  
'अर्हन्त नहीं हैं'-इत्यादि कथन करना आशातना है। सिद्धों की  
आशातना से, यह आशातना इस प्रकार होती है—'सिद्ध नहीं हैं,'  
क्यों कि उनके हलन-चलन आदि किसी प्रकार की चेष्टा का  
अभाव है, और यदि वे हों भी तो रागद्वेषसे मुक्त नहीं हैं, क्यों  
कि राग-द्वेष ध्रुव होने के कारण किसी से नष्ट नहीं किये जा  
सकते, और साथ ही यह भी कह सकते हैं कि जिनको आप  
सिद्ध कहते हैं वे भी असर्वज्ञ ही हैं, सर्वज्ञ नहीं हैं, क्यों कि

नहि, परन्तु पूर्वोपाजित पुण्य प्रकृतिना प्रणय उदय होवाना कारणे अनि-  
वार्ये लोगोने अनासक्त थधने उदासीनभावथी लोगव्या छे, ये प्रभाण्णे मोहनीय  
कर्मना अभाव होवाथी सर्व प्रकारनी धृच्छाथी रहित अने वीतराग थवा  
पछी पण्य तीर्थकर नामकर्म प्रकृतिना उदयना कारण्णे दुर्निवार देवकृत समवसरणादिथी  
युक्त होय छे, ज्येठला भाटे 'अर्हन्त नहीं' इत्यादि कहेवु ते आशातना छे  
सिद्धोनी आशातनाथी, ते आशातना आ प्रभाण्णे छे—'सिद्ध नहीं' कारण्णे डे  
तेने हलन-चलन आदि कौछ प्रकारनी ज्येष्टा करवापण्णु नहीं, अने जे तेज्यो होय  
तो पण्य राग-द्वेषथी ते मुक्त नहीं, कारण्णे डे राग-द्वेष ध्रुव होवाना कारण्णे  
कौछथी नाथ थधं शकते नहीं, अने साथे-साथे ज्ये पण्य कही शक्ये छीजे डे-  
आप जेने सिद्ध कहे छे ते पण्य असर्वज्ञ छे, सर्वज्ञ नहीं, डेभके वस्तुना सामान्य-

प्रज्ञप्तस्य धर्मस्याऽऽशातनया, सदेवमनुजाऽऽसुरस्य लोकस्याऽऽशातनया, सर्वमाण भूतजीवसत्त्वानामाशातनया, कालस्याशातनया, श्रुतस्याशातनया, श्रुतदेवताया आशातनया, वाचनाचार्यस्याऽऽशातनया, यद् व्याघ्रिद्र, व्यत्याम्नेडित, हीनाक्षरम्, अत्यक्षर, पदहीन, विनयहीन, योगहीन घोषहीन, सुष्ठु दत्त दुष्ठु प्रतीच्छ्रितम्, अकाले कृतः स्वाभ्यायः, काले न कृतः स्वाभ्यायः, अस्वाध्याये स्वाभ्यायित, स्वाध्याये न स्वाभ्यायित, तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ सू० २१ ॥

॥ टीका ॥

‘अरिहताण’ अर्हताम्, कर्मणि सम्बन्धसामान्ये वा पष्ठी, तेनाऽर्हत्व-  
मिकयाऽर्हत्सम्बन्धिन्या वेत्यर्थ । एवमग्रेऽपि, आशातना चाऽत्र—‘न सत्यर्हन्त  
स्तत्पदवाचनानामप्यस्मदादिवद्भोगाऽऽसक्तत्वाद्’ इत्याद्युक्त्या जायते । ननु नेय  
माशातना ताच्चिक्त्वात् तथाहि—श्रूयन्त एवाऽर्हन्तोऽपि त्रिपमत्रिपक्वपभोग-  
भोगिनो, देवकृतैः समवसरणस्फटिकादिसिंहासनादिभिरष्टविधमहाप्रातिहार्यैश्च युक्ता,  
इति चेन्न, नहि ते सरागिण इवाऽऽसक्त्या भोगान् भुञ्जते स्म, अपितु पूर्वार्जित-

अरिहतो की आशातना से, यह आशातना इस प्रकार है—‘अर्हन्त नहीं हैं, क्यों कि जिनको हम अर्हन्त कह रहे हैं वे भी कभी भोगों का फल कड़वा समझते हुए भी भोगते ही थे, तथा केवलज्ञान प्राप्त होने पर भी देवकृत समवसरण स्फटिकसिंहासन आदि से युक्त होते ही हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि—‘यह आशातना कैसे? क्यों कि ऐसा उल्लेख तो अर्हन्त भगवान के लिये शास्त्रों में आता ही है।’ इसका उत्तर यह है कि—‘अर्हन्त भगवान ने जो ससार अवस्थामे भोगादि भोगा है वह सरागी

अरिहताणी आशातनाधी, ते आशातना आ प्रभाण्णे छे ‘अर्हन्त नथी’  
कारण्य के जेने अमे अर्हन्त कहीअे छीअे ते पणु केछ वधत ‘भोगानु इल  
कडपु छे’ अेअ समञ्जता छताय भोगवताअ इता, तथा देवलज्ञान प्राप्त यवा  
छताय पणु देवकृत समवसरण्य स्फटिकसिंहासन आदिथी युक्त होयअ छे, अर्हि  
प्रश्न थाय छे के—आ आशातना केवी रीते? कारण्य के अेअे उल्लेख तो अर्हन्त  
भगवान भाटे शास्त्रमा आवे छेअ, तेना उत्तर अे छे के ‘अर्हन्त भगवाने  
ने ससार-अवस्थामा भोगादि भोगव्या छे ते सरागी बोडि प्रभाण्णे आसक्त यधने

पुण्यप्रकृतिमाहुल्येनाऽन्तःसन्त्यक्तनिखिलाऽऽसक्तितया केवलमौदासीन्येनैव,  
तदपि च ससारावस्थायामेव, एव केवलज्ञाने सम्प्राप्तेऽपि मोहनीयकर्माभावा-  
दनिच्छाया सत्यामपि समवसरणादिप्राप्तिस्तीर्थकरनामकर्मप्रकृतिफलभोगस्य  
दुर्निवारतया तदुदयेनैव, नह्येतावता वीतरागत्वमाप्त्युत्तर तेषां किञ्चिद्दीयते वीत-  
रागत्वादेव । 'सिद्धाण०' इति, सिद्धानामाशातना यथा-न सन्ति सिद्धाश्चेष्टा-

लोगो की तरह आसक्त हो कर नहीं, किन्तु पूर्वोपार्जित पुण्य-  
प्रकृति का प्रबल उदय होने के कारण अनिवार्य भोगों को अना-  
सक्त हो कर उदासीन भावसे भोगा है, इसी प्रकार मोहनीय  
कर्म का अभाव होने से सब प्रकार की इच्छा से रहित और  
वीतराग हो जाने पर भी तीर्थङ्करनामकर्म प्रकृति के उदय के  
कारण दुर्निवार देवकृत समवसरणादि से युक्त होते हैं। अतएव  
'अर्हन्त नहीं हैं'-इत्यादि कथन करना आशातना है। सिद्धों की  
आशातना से, यह आशातना इम प्रकार होती है—'सिद्ध नहीं हैं,'  
क्यों कि उनके हलन-चलन आदि किसी प्रकार की चेष्टा का  
अभाव है, और यदि वे हों भी तो रागद्वेषसे मुक्त नहीं हैं, क्यों  
कि राग-द्वेष ध्रुव होने के कारण किसी से नष्ट नहीं किये जा  
सकते, और साथ ही यह भी कह सकते हैं कि जिनको आप  
सिद्ध कहते हैं वे भी असर्वज्ञ ही हैं, सर्वज्ञ नहीं हैं, क्यों कि

नहि, परन्तु पूर्वोपार्जित पुण्य प्रकृतिना प्रणय उदय होवाना कारणे अनि-  
वार्य लोगोने अनासक्त बंधने उदासीनभावधी लोगण्या छे, अे प्रभाछे मोहनीय  
कर्मना अभाव होवाधी सर्व प्रकारनी धर्याधी रहित अने वीतराग थवा  
पछी पण्य तीर्थकर नामकर्म प्रकृतिना उदयना कारणे दुर्निवार देवकृत समवसरणादिधी  
युक्त होय छे, अेटला भाटे 'अर्हन्त नहीं' इत्यादि कहेवु ते आशातना छे  
सिद्धोनी आशातनाधी, ते आशातना आ प्रभाछे छे—'सिद्ध नहीं' कारणे के  
तेने हलन-चलन आदि कौध प्रकारनी चेष्टा करवापण्य नहीं, अने ने तेअो होय  
ते। पण्य राग-द्वेषधी ते युक्त नहीं, कारणे के राग-द्वेष ध्रुव होवाना कारणे  
कौधधी नाथ धर्य शकतो नहीं, अने साथे-साथे अे पण्य कही शक्ये छीअे के-  
आप नेने सिद्ध कहे छे ते पण्य अमर्षज्ञ छे, सर्वज्ञ नहीं, केभडे वस्तुना सामान्य-

પ્રદર્શનાદ્રાગદ્વેપયુક્તવાચ, રાગદ્વેષો હિ ધ્રોવ્યાન્ન કેનાપિ શ્વયિતુ શક્યેતે, કિન્ન ચે સિદ્ધપદવાચ્યાસ્તેઽપિ ત્રયમિત્વાઽસર્વજ્ઞા, યતઃ પદાર્થાના સામાન્યધર્મગ્રાહિ દર્શન, વિશેષધર્મગ્રાહિ ચ જ્ઞાનમિતિ સામાન્યજ્ઞાનોત્તરકાલ એવ વિશેષજ્ઞાનોત્પત્તેઃ સર્વત્ર દૃષ્ટ્વાન્નાસ્તિ દર્શનજ્ઞાનયોર્યોગપથ (મેરુકાલાવચ્છિન્નત્વ) મિતિ જ્ઞાન-દર્શનયોઃ પરસ્પરાઽઽન્તરક્રતયા જ્ઞાનોપયોગે દર્શનોપયોગસ્ય, દર્શનોપયોગે જ્ઞાનો-પયોગસ્ય ચાઽભાવ એવ, ભાવે ચા જ્ઞાનદર્શનયોરેકત્વમાપ્યેત, તસ્માજ્ઞાનત્વ-સામાન્યાવચ્છિન્નયોર્દર્શનજ્ઞાનયોર્યોગપદ્ધેનાઽયોગપથેન વા ભવદમિમતેપુ સિદ્ધપદ-વાચ્યેષ્વસમ્ભવાન્નાસ્તિ તેપુ સર્વજ્ઞતાઽપીતિ । નન્નુ કથમિયમાશાતના ? સિદ્ધાના-

વસ્તુ કા સામાન્યધર્મગ્રાહી દર્શન ઓર વિશેષધર્મગ્રાહી જ્ઞાન હોતા હૈ, તથા પદાર્થો કા સામાન્ય જ્ઞાન હુએ વિના વિશેષ જ્ઞાન હો નહી સકતા, અતઃ એક સમયમેં એક હી ઉપયોગ સિદ્ધ હોતા હૈ, કારણ યહ હૈ કિ દર્શનોપયોગ કે સમયમેં જ્ઞાનોપયોગ નહીં ઓર જ્ઞાનોપયોગ કે સમયમેં દર્શનોપયોગ નહીં, હસલિયે એક સમયમેં સામાન્ય-વિશેષાત્મક ઉભય ધર્મ કા જ્ઞાન અસભવ હૈ, યદિ સભવ કહેં તો જ્ઞાન ઓર દર્શન મેં એકત્વ હો જાયગા, ક્યોં કિ વૈસી અવસ્થા મેં પદાર્થસ્વરૂપ જિતના જ્ઞાનસે પ્રતીત હોગા દર્શન સે ખી ઉતના હી હોગા, હસ કારણ જ્ઞાન દર્શન કા યોગપથ (એક સાથ સ્થિતિ) ન રહને સે 'સિદ્ધ અસર્વજ્ઞ હૈં'—હત્યાદિ ।

ધર્મગ્રાહી દર્શન અને વિશેષધર્મગ્રાહી જ્ઞાન હોય છે, તથા પદાર્થોનું સામાન્ય જ્ઞાન તથા વિના વિશેષ જ્ઞાન થઈ શકતું નથી એટલા કારણથી એક સમયમાં એક જ ઉપયોગ સિદ્ધ થાય છે, કારણ કે દર્શન-ઉપયોગના સમયમાં જ્ઞાન-ઉપયોગ હોય નહિ અને જ્ઞાન-ઉપયોગના સમયે દર્શનોપયોગ હોય નહિ, એટલા માટે એક સમયમાં સામાન્ય-વિશેષાત્મક બંને ધર્મનું જ્ઞાન થવું અસંભવિત છે, બે સંભવ છે એમ કહેશે તો જ્ઞાન અને દર્શનમાં એકત્વ આવી જશે, કારણ કે તેવી અવસ્થામાં પદાર્થસ્વરૂપ એટલા જ્ઞાનથી પ્રતીત થશે તેટલું જ દર્શનથી થશે, એ કારણથી જ્ઞાન-દર્શનનું યોગપથ-એક સાથેની સ્થિતિ નહિ રહેવાથી 'સિદ્ધ અસર્વજ્ઞ છે' ઇત્યાદિ

मुक्ताभ्य एव युक्तिभ्योऽसच्चात्, सत्त्वेऽपि वा तत्तदोपसम्पृक्तत्वादिति चेत्तुच्छ-  
मिदम्, यतः 'सिद्धाः' इति प्राप्तस्यैव हि प्रतिषेधो भवति, सिद्धाः सन्तीत्यत  
एव भवताऽप्युच्यते, 'न सन्ती'—ति, प्रसिद्धप्रतियोगिकस्यैव ह्यभावस्य सर्वत्र  
ग्रहण दृश्यते, गोशृङ्ग नास्तीति वक्तुं शक्यते यतो गोशृङ्गमन्यत्रोपलभ्यते, यच्च  
नोपलभ्यते न तत्प्रतियोगिकाभापो वक्तुं शक्यते—'शशशृङ्ग नास्त्यश्वशृङ्ग  
नास्तीति । यद्यपि पदपार्थक्ये शशादेः शृङ्गादेश्च वाच्याः सन्त्येव घटादेरिव,

यदि कोई कहे कि—यह आशातना कैसे ? क्योंकि ऊपर  
कही हुई युक्तियों से यह बात सत्य ही जान पड़ती है' तो इस  
का उत्तर यह है कि—'तुमने जो कहा है कि—'सिद्ध नहीं हैं'—इसी से  
'सिद्ध हैं'—ऐसा सिद्ध हुआ, क्योंकि सत् (विद्यमान) वस्तु का ही  
निषेध किया जाता है, जो वस्तु विद्यमान नहीं है उसका निषेध  
भी नहीं किया जा सकता है, 'गायके सींग नहीं हैं' ऐसा कहा  
जाता है, इसलिए कि गाय के सींग होते हैं, जो वस्तु त्रिकालमें  
होने की नहीं, जैसे घोड़े या खरगोश के सींग, तो ऐसी वस्तुओं  
का निषेध भी प्रायः बुद्धिमान मनुष्यों के मुख से नहीं किया  
जाता, यों तो शशशृंग आदि पदों को अलग रखने पर प्रत्येक  
का अर्थ प्रसिद्ध ही रहता है, किन्तु इकट्ठा कर देने पर 'शशशृंग'  
'अश्वशृंग' आदि शब्दों का अर्थ होगा 'खरगोश के सींग' 'घोड़े

ने कोश कहे के—'आ आशातना क्वेरी रीते' ? केभके उपर कहेवाभा  
आवेदी युक्तिभ्यो आ वात तदन सत्यं हेभाय छे, तो जेना उत्तर जे छे के—  
तमे जे कहे के 'सिद्ध नहीं,' जे वाक्य उपर सिद्ध छे, तेम निश्चय थयेल छे  
कारण के सत्-विद्यमान-वस्तुनो निषेध यथ शक्य छे, जे वस्तु विद्यमान न होय  
तेना निषेध पथु करी शकतो नथी 'गायने सींग नहीं' जेम कहेवाभा आवे छे ते  
जेटला भाटे के 'गायने सींग होय छे न' जे वस्तु त्रिकालभा होयल नहि, जेभके  
'घोडा अथवा खरगोशना सींग' तो जेवी वस्तुजोना निषेध पथु धरु करी  
युद्धिमान मनुष्यना सुभधी करवाभा आवतो नथी जेभके शशशृंग आदि पदोने  
नूदा—नूदा राभवाधी प्रत्येकनो अर्थ प्रसिद्धल रहे छे परन्तु जेकहा करवाधी  
'शशशृंग' 'अश्वशृंग' आदि शब्दोने अर्थ थये 'खरगोशना सींग' 'घोडाना

પ્રદર્શનાદ્રાગદ્વેપયુક્તવાચ, રાગદ્વેષો હિ ધ્રોવ્યાન્ન કેનાપિ ધ્વવિતુ શક્યેતે, ક્ષિચ્ચ યે સિદ્ધપદવાચ્યાસ્તેऽપિ વ્યમિવાઽસર્વજ્ઞા, યતઃ પદાર્થાના સામાન્યધર્મગ્રાહિ દર્શન, વિશેષધર્મગ્રાહિ ચ જ્ઞાનમિતિ સામાન્યજ્ઞાનોત્તરકાલ એવ વિશેષજ્ઞાનોત્પત્તેઃ સર્વત્ર દૃષ્ટવાન્નાસ્તિ દર્શનજ્ઞાનયોર્યોગપદ્ય (મેકકાલાવચ્ચિઞ્નત્વ) મિતિ જ્ઞાન દશનયોઃ પરસ્પરાઽઽવારકૃતયા જ્ઞાનોપયોગે દર્શનોપયોગસ્ય, દર્શનોપયોગે જ્ઞાનોપયોગસ્ય ચાઽભાવ એવ, ભાવે વા જ્ઞાનદર્શનયોરેકત્વમાપ્યેત, તસ્માજ્ઞાનત્વ-સામાન્યાવચ્ચિઞ્નયોર્દર્શનજ્ઞાનયોર્યોગપદ્યેનાઽર્યોગપદ્યેન વા ભવદભિમતેષુ સિદ્ધપદ-વાચ્યેષ્વસમ્ભવાન્નાસ્તિ તેષુ સર્વજ્ઞતાઽપીતિ । નન્તુ ક્થમિયમાશાતના ? સિદ્ધાના-

વસ્તુ કા સામાન્યધર્મગ્રાહી દર્શન ઓર વિશેષધર્મગ્રાહી જ્ઞાન હોતા હૈ, તથા પદાર્થો કા સામાન્ય જ્ઞાન હુએ વિના વિશેષ જ્ઞાન હો નહીં સકતા, અતઃ એક સમયમેં એક હી ઉપયોગ સિદ્ધ હોતા હૈ, કારણ યહ હૈ કિ દર્શનોપયોગ કે સમયમેં જ્ઞાનોપયોગ નહીં ઓર જ્ઞાનોપયોગ કે સમયમેં દર્શનોપયોગ નહીં, ઇસલિયે એક સમયમેં સામાન્ય-વિશેષાત્મક ઉભય ધર્મ કા જ્ઞાન અસભવ હૈ, યદિ સભવ કહેં તો જ્ઞાન ઓર દર્શન મેં એકત્વ હો જાયગા, ક્યોં કિ વૈસી અવસ્થા મેં પદાર્થસ્વરૂપ જિતના જ્ઞાનસે પ્રતીત હોગા દર્શન સે ખી ઉતના હી હોગા, ઇસ કારણ જ્ઞાન દર્શન કા યોગપદ્ય (એક સાથ સ્થિતિ) ન રહને સે 'સિદ્ધ અસર્વજ્ઞ હૈં'-ઇત્યાદિ ।

ધર્મગ્રાહી દર્શન અને વિશેષધર્મગ્રાહી જ્ઞાન હોય છે, તથા પદાર્થોનું સામાન્ય જ્ઞાન થયા વિના વિશેષ જ્ઞાન થઈ શકતું જ નથી એટલા કારણથી એક સમયમાં એક જ ઉપયોગ સિદ્ધ થાય છે, કારણ કે દર્શન-ઉપયોગના સમયમાં જ્ઞાન-ઉપયોગ હોય નહિ અને જ્ઞાન-ઉપયોગના સમયે દર્શનોપયોગ હોય નહિ, એટલા માટે એક સમયમાં સામાન્ય-વિશેષાત્મક બંને ધર્મોનું જ્ઞાન થવું અસંભવિત છે, જો સંભવ છે એમ કહેશે તો જ્ઞાન અને દર્શનમાં એકત્વ આવી જશે, કારણ કે તેવી અવસ્થામાં પદાર્થસ્વરૂપ એટલા જ્ઞાનથી પ્રતીત થશે તેટલું જ દર્શનથી થશે, એ કારણથી જ્ઞાન-દર્શનનું યોગપદ્ય-એક સાથેની સ્થિતિ નહિ રહેવાથી 'સિદ્ધ અસર્વજ્ઞ છે' ઇત્યાદિ

प्रक्षीणसकलरूपायाणा तेषा सभवतामेव कुतः ? न चोपयोग्यौगपद्यमन्तरेण सर्ववता कथमिति वाच्यम्, यौगपद्येनोपयोगद्वयाभावस्य जीवस्याभाव्यान्नयाभिप्रेतत्वाच्च, तयोरैक्य तु न, विभिन्नाऽऽवरणकृत्वात् । द्रव्यार्थिकनयेन ज्ञानदर्शनयोरेकत्व, ज्ञाननयमाश्रित्य सर्वमेवेद ज्ञानमिति दर्शननयमाश्रित्य च सर्वमेवेद दर्शनमिति नास्त्यसर्वज्ञताशङ्कालेशोऽपीति ।

‘आयरियाण’ आचार्याणाम्, ‘आसायणाए’ आशातनया, आचार्याशातना च—‘बाला अकुलीना अतिमन्दबुद्धयश्चेमे, अन्योपदेशदक्षा न च किञ्चिदाचरन्ति’ इत्यादिविकथनरूपा । एवमुपाध्यायानामप्याशातना रोद्रव्या ।

हैं कि उनके सम्पूर्ण कषाय नष्ट हो गये हैं । एक समय में दो उपयोग नहीं होते हैं, इसका कारण यह है कि जीवका स्वभाव ही ऐसा है । ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग दोनों को एक तो इसलिये नहीं कह सकते हैं कि दोनोंका आवरण भिन्न है । रही बात असर्वज्ञताकी, उसका उत्तर यह है कि द्रव्यार्थिकनय के मतसे ज्ञान और दर्शनमें एकता है क्योंकि ज्ञाननय की अपेक्षा सब ज्ञानमय है और दर्शननय की अपेक्षा सब दर्शनमय, इसलिये सिद्ध सर्वज्ञ है ।

आचार्यकी आशातनासे, वह इस प्रकार—“ये बालक हैं, अकुलीन हैं, अल्प-बुद्धि हैं, औरों को तो उपदेश देते हैं पर खुद कुछ नहीं करते” इत्यादि । इसी प्रकार उपाध्याय की आशातना समझनी चाहिये ।

डे—तेभना कषायो स पूर्ण नाश थया छे अेक समयभा मे उपयोग थाय नहि अेनु कारण अे छे डे - एवनेो स्वभावन अेवो छे ज्ञानोपयोग अने दर्शनोपयोग अे ण-नेने अेटला भाटे अेक कहेता नथी डे ण-नेना आवरण न्यूदा न्यूदा छे डेवे असर्वज्ञतानी बात रही, तेना उत्तर अे छे डे द्रव्यार्थिक नयना मतथी ज्ञान अने दर्शनभा अेकता छे, केम डे ज्ञाननयनी अपेक्षाअे सर्व ज्ञानमय छे अने दर्शननयनी अपेक्षाअे सर्व दर्शनमय छे, अे कारणे सिद्ध सर्वज्ञ छे

आचार्यनी आशातनाथी, ते आ प्रभाणे छे—‘आ बालक छे, अकुलीन छे, अल्पबुद्धि छे, भीनने उपदेश आपे छे पण पोते कार्य करता नथी’-इत्यादि अे प्रभाणे उपाध्यायनी आशातना समझनी अेधअे



तथापि मिथः सम्यद्धाना शशशृङ्गादीनामप्रसिद्धिरेव, अत एव 'एष वन्ध्यासुतो याति, खपुष्पकृतशेखरः । कूर्मक्षीरचये स्नातः, शशशृङ्गयनुर्धरः ॥' इत्यादिषु समुदितार्थाभावेन प्रातिपदिकत्वाभावाऽऽपत्तिमाशङ्क्य वन्ध्यापदार्थ-पुत्रपदार्थादेरेकैकस्य प्रसिद्ध्या बौद्धमर्थमादायाऽथवत्प्रातिपदिकत्वमित्याहु-र्वैयाकरणाः, तस्मात् 'सिद्धा न सन्ती'—ति दुष्प्रतिपादम् । यदुक्तं 'निश्चेष्टत्वमिति' तदत्यन्तमसत्, तेषां सिद्धसकलकार्यत्याग्निःशरीरत्वाच्च, रागद्वेषौ तु

के सीग' इत्यादि, वह अप्रसिद्ध है । यही कारण है कि 'एष वन्ध्यासुतो याति' इत्यादि स्थलों में यद्यपि अलग २ रखने पर वन्ध्या शब्द और सुत शब्द का अर्थ प्रसिद्ध ही है, परन्तु इकट्ठा कर देने पर 'वन्ध्यासुत' 'कूर्मक्षीर' (कछुएका दूध) आदि शब्दों का अर्थ कुछ भी नहीं होता है, अतएव अनर्थक होने से प्रातिपदिक सज्ञाका होना असंभव जानकर वैयाकरणोंने एक एक पदार्थकी प्रसिद्धि रहने के कारण समुदायमें बौद्ध (बुद्धिकृत) अर्थ को मानकर प्रातिपदिक सज्ञा आदि कार्य किये हैं, इस कारण 'सिद्ध नहीं है' ऐसा कहना सर्वथा असंगत है । दूसरी बात यह है कि आपने जो सिद्धों को निश्चेष्ट कहा वह भी ठीक नहीं है, कारण यह कि सिद्धों के कर्तव्य कोई बाकी रहा नहीं और शरीर भी नहीं जिससे वे चेष्टा करे । राग-द्वेष भी उनमें इसलिये नहीं

सीग' इत्यादि, ते प्रसिद्ध नहीं, अतएव कारण 'एष वन्ध्यासुतो याति' इत्यादि स्थलोंमा यद्यपि लुटा लुटा राधवा पर वन्ध्या शब्द अने सुत शब्दोंने अर्थ प्रसिद्ध छे परन्तु अने शब्दों अकेला करवाथी 'वन्ध्यासुत, 'कूर्मक्षीर' (काय भानु दूध) वगैरे शब्दोंने कौछ पणु अर्थ थये नहि, अतएव कारणथी अनर्थक होवाना कारण प्रतिपदिक सज्ञाने असंभव जान्छीने वैयाकरणोंने अके अके पदार्थनी प्रसिद्धि रहेवाना कारण समुदायमा बौद्ध (बुद्धिकृत) अर्थ मान्छीने प्रातिपदिक सज्ञा आदि कार्य करेले छे अतएव कारणथी 'सिद्ध नहीं' अतएव कहेले ते सर्वथा असंगत छे पीछे बात अतएव छे के तने सिद्धोंने निश्चेष्ट कहे छे ते पणु ठीक नहीं, कारण अतएव छे के सिद्धोंने कौछ कर्तव्य बाकी रहेले अतएव नहीं, अने शरीर पणु नहीं के नैनाथी अतएव करे, राग-द्वेष पणु तेभनामा अतएव भाटे नहीं

प्रक्षीणसकलकपायाणा तेषां सभवतामेव कुतः ? न चोपयोग्यौगपद्यमन्तरेण सर्वज्ञता कथमिति वाच्यम्, यौगपद्येनोपयोगद्वयाभावस्य जीवस्वाभाव्यान्नयाभिप्रेतत्वाच्च, तयोरैक्यं तु न, विभिन्नाऽऽवरणकत्वात् । द्रव्यार्थिकनयनेन ज्ञानदर्शनयोरेकत्व, ज्ञाननयमाश्रित्य सर्वमेवेदं ज्ञानमिति दर्शननयमाश्रित्य च सर्वमेवेदं दर्शनमिति नास्त्यसर्वज्ञताशङ्कालेशोऽपीति ।

‘आयरियाण’ आचार्याणाम्, ‘आसायणाए’ आशातनया, आचार्याशातना च-‘बाला अकुलीना अतिमन्दबुद्धयश्चेमे, अन्योपदेशदक्षा न च किञ्चिदाचरति’ इत्यादिविकथनरूपा । एवमुपाध्यायानामप्याशातना बोद्धव्या ।

है कि उनके सम्पूर्ण कपाय नष्ट हो गये हैं । एक समय में दो उपयोग नहीं होते हैं, इसका कारण यह है कि जीवका स्वभाव ही ऐसा है । ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग दोनों को एक तो इसलिये नहीं कह सकते हैं कि दोनोंका आवरण भिन्न है । रही बात असर्वज्ञताकी, उसका उत्तर यह है कि द्रव्यार्थिकनय के मतसे ज्ञान और दर्शनमें एकता है क्यों कि ज्ञाननय की अपेक्षा सब ज्ञानमय है और दर्शननय की अपेक्षा सब दर्शनमय, इसलिये सिद्ध सर्वज्ञ है ।

आचार्यकी आशातनासे, वह इस प्रकार—“ये बालक हैं, अकुलीन हैं, अल्प बुद्धि हैं, औरों को तो उपदेश देते हैं पर खुद कुछ नहीं करते” इत्यादि । इसी प्रकार उपाध्याय की आशातना समझनी चाहिये ।

डे—तेमना कपायो संपूर्ण नाश यथा छे अेक समयमा मे उपयोग थाय नहि अेनु कारणु अे छे डे - एवमे स्वभावश्च अेवो छे ज्ञानोपयोग अने दर्शनोपयोग अे जन्नेने अेटला भाटे अेक कहेता नथी डे जन्नेना आवरणु गूढा गूढा छे हवे असर्वज्ञतानी वात रही, तेना उत्तर अे छे डे द्रव्यार्थिक नयना मतथी ज्ञान अने दर्शनमा अेकता छे, केभ डे ज्ञाननयनी अपेक्षाअे सर्व ज्ञानमय छे अने दर्शननयनी अपेक्षाअे सर्व दर्शनमय छे, अे कारणे सिद्ध सर्वज्ञ छे

आचार्यनी आशातनाथी, ते आ प्रभावे छे-‘आ बालक छे, अकुलीन छे, अल्पबुद्धि छे, जीवने उपदेश आपे छे पणु पोते कार्य करता नथी’-इत्यादि अे प्रभावे उपाध्यायनी आशातना समझनी अेछे

‘साहूण’ साधूनाम्, ‘आमायणाए’ आशातनया, साध्वाशातना चेत्यम्-  
 ‘एते साधवो विरूपनेपथ्या हीनसस्कारा जडा व्यर्थजीवना मुण्डितमुण्डा  
 भिक्षामात्रशरणाः’ इत्यादि । एतमेव साध्वीनामप्याशातना ज्ञातव्या । ‘साव  
 याण’ श्रावकाणाम्, ‘आसायणाए’ आशातनया, श्रावकाऽऽशातना च-  
 ‘अहो इमेऽभिगतजीवाजीवा उपलब्धपुण्यपापा आश्रव-सवर-निर्जराक्रियाधि  
 करणबन्धमोक्षकुशला जिनप्रवचनपरिज्ञानेन यथार्थं मानुष्यक-लब्धाऽपि न  
 विरतिं श्रयन्ते धिग्धिग्’-इत्यादिरूपा । श्राविकाणामप्याशातनेदृश्येव । ‘देवाण’  
 देवानाम्, ‘आसायणाए’ आशातनया, सा च- ‘देवास्तु विषयवासनावासित-

साधु मुनिराजकी आशातना से, वह इस प्रकार ‘ये साधु  
 मैलेकुचैले वस्त्रोंके धारक, सस्कारहीन, जड, मूढ, सिर मुडाकर  
 जीवन को व्यर्थ करने वाले हैं, इत्यादि । इसी प्रकार साध्वीकी  
 आशातना समझनी चाहिये ।

श्रावक की आशातना से, वह जैसे-‘हाय ! जीव अजीव के  
 स्वरूप और पुण्य पापके मर्म को जानने वाले, तथा आश्रव सवर  
 निर्जरा क्रिया अधिकरण बन्ध और मोक्ष, इनमें हेय उपादेय का  
 ज्ञान रखने वाले, एव जिन प्रवचन के यथार्थ ज्ञाता होकर भी ये  
 श्रावक सर्वविरति को धारण नहीं करते हैं ‘धिकार है’ इत्यादि ।  
 श्राविकाओं की भी आशातना इसी प्रकार की है ।

देवों की आशातना से, वह इस प्रकार-“देवता तो विषय

साधु मुनिराजकी आशातनाथी, ते आ प्रभाण्णे छे-‘अये साधु भेवा-गघाता  
 कपडा धारण्ण करे छे, सस्कारहीन, जड, मूढ, शिर मुडावी लवनने व्यर्थ करनार  
 छे इत्यादि आ प्रभाण्णे साध्वीनी आशातना समजवी जेधये

श्रावकनी आशातनाथी, ते आ प्रभाण्णे-हाय ? एव-अलवना स्वरूप अने  
 पुण्य-पापना भर्तने जण्णवावाणा, तथा आश्रव सवर निर्जरा क्रिया अधिकरण्ण,  
 बन्ध अने मोक्ष, तेमा छेय-उपादेयतु ज्ञान राणवावाणा, अये प्रभाण्णे जिन प्रवचनने  
 यथार्थ जण्णनार जेधने पण्ण ते श्रावक सर्वविरतिने धारण्ण करता नथी, धिक्कार छे  
 इत्यादि श्राविकाओंकी आशातना पण्ण आ प्रभाण्णे ज छे

देवानी आशातनाथी, ते आ प्रभाण्णे-देवता तो विषयवासनामा आसक्त,

त्रितृत्तयोऽप्रत्याख्याना अविरताः शक्तिमन्तः सन्तोऽपि शासनसमुन्नतिमकुर्वाणा सन्ति'-इत्येवरूपा । देवीनामप्याशातनैवमेव । 'इहलोगस्स' इहलोको=मनुष्य-लोकस्तस्य 'आसायणाए' आशातनया न्यूनाधिकत्वनिरूपणादिलक्षणया ।

एवमेव परलोकस्याऽऽशातनाऽपि, अत्र परलोकः=स्वर्गनरकादिलक्षणः । 'केवलीण' केवलिनाम्, 'आसायणाए' आशातनया='केवलिनः कैवल्या-त्कवलाहारादिक न कुर्वन्ति'-इत्यादिरूपया । 'केवलिपन्नचस्स' केवलिपन्नच-स्य 'धम्मस्स' धम्मस्य=जीवदया-सत्या-स्तेय-ब्रह्मचर्य-क्षान्ति-पञ्चेन्द्रिय-निग्रहरूपस्य, 'आसायणाए' आशातनया=विपरीतनिरूपणस्वरूपया । 'सदे-वमणुयासुरस्स' सदेवमनुष्यासुरस्य=देव-मनुष्या-ऽसुरसहितस्य, 'लोगस्स' लोकस्य, 'आसायणाए' आशातनया=त्रितथप्ररूपणस्वरूपया । 'सञ्चपाणभू-यजीवसत्ताण' प्राणाः=प्राणिनो व्यक्तेन्द्रिया द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियलक्षणाः, भूता =

वासनामै आसक्त, अप्रत्याख्यानी, अविरती हैं, और शक्तिमान होते हुए भी शासन की उन्नति नहीं करते हैं" इत्यादि । इसी प्रकार देवी की भी आशातना समझना ।

इस लोक की न्यूनाधिकत्व-निरूपणरूप आशातनासे, ऐसेही 'स्वर्ग नरक आदि रूप परलोक की आशातनासे ।'

'केवली कवलाहार आदि नहीं करते हैं' इत्यादि विरुद्ध प्ररूपणारूप केवली की आशातना से । केवलिप्ररूपित गर्मकी विपरीत प्ररूपणारूप आशातना से । देव मनुष्य और असुर सहित लोककी असत्य प्ररूपणारूप आशातना से । द्वीन्द्रियादि प्राणी,

अप्रत्याख्यानी, अविरति छे, अने शक्तिमान होवा छनाय पणु शासननी उन्नति करता नया, इत्यादि अे प्रमाणे देवीनी पणु आशातना समझवी

आ लोकनी न्यूनाधिकत्व निरूपण इय आशातनाथी, अेवीन शीते स्वर्ग-नरक आदि इय परलोकनी आशातनाथी

"देवली कवल आहार आदि करता नथी" वगेरे विरुद्ध प्ररूपणइय देवलीनी आशातनाथी देवली प्ररूपित धर्मनी विपरीत प्ररूपण इय आशातनाथी देव-मनुष्य अने असुर सहित लोकनी असत्य प्ररूपण इय आशातनाथी द्वीन्द्रियादि प्राणी, वनर इतिशायइय भूत, पञ्चेन्द्रियइय छव अने पृथ्वी आदि सरप, अे

‘સાદૂણ’ સાધૂનામ્, ‘આમાયણાઈ’ આશાતનયા, સાધ્યાશાતના ચેત્યમ્-  
 ‘એતે સાધનો વિરૂપનેપથ્યા હીનસસ્કારા જડા વ્યર્થજીવના મુણ્ડિતમુણ્ડા  
 ભિક્ષામાત્રશરણાઃ’ ઇત્યાદિ । એમેવ સાધ્વીનામપ્યાશાતના જ્ઞાતવ્યા । ‘સાવ  
 યાણ’ શ્રાવકાણામ્, ‘આસાયણાઈ’ આશાતનયા, શ્રાવકાઃશાતના ચ-  
 ‘અહો ઇમેઽભિગતજીવાજીવા ઉપલબ્ધપુણ્યપાપા આશ્રવ-સવર-નિર્જરાક્રિયાધિ-  
 કરણગન્ધમોક્ષકુશલા જિનપ્રવચનપરિજ્ઞાનેન યથાર્થ માનુષ્યક લબ્ધાઽપિ ન  
 વિરતિ શ્રયન્તે ધિગ્ધિગ્’-ઇત્યાદિરૂપા । શ્રાવિકાણામપ્યાશાતનેદદ્યેવ । ‘દેવાણ  
 દેવાનામ્, ‘આસાયણાઈ’ આશાતનયા, સા ચ- ‘દેવાસ્તુ વિપયવાસનાત્રાસિત

સાધુ મુનિરાજકી આશાતના સે, વહ્ ઇસ પ્રકાર ‘યે સાધુ  
 મૈલેકુચૈલે વલ્લોકે ધારક, સસ્કારહીન, જડ, મૂઢ, સિર મુઢાકર  
 જીવન કો વ્યર્થ કરને વાલે હૈં, ઇત્યાદિ । ઇસી પ્રકાર સાધ્વીકી  
 આશાતના સમજ્ઞની ચાહિયે ।

શ્રાવક કી આશાતના સે, વહ્ જૈસે-‘હાય ! જીવ અજીવ કે  
 સ્વરૂપ ઓર પુણ્ય પાપકે મર્મ કો જાનને વાલે, તથા આશ્રવ સવર  
 નિર્જરા ક્રિયા અધિકરણ ગન્ધ ઓર મોક્ષ, ઇનમે હેય ઉપાદેય કા  
 જ્ઞાન રચને વાલે, એવ જિન પ્રવચન કે યથાર્થ જ્ઞાતા હોકર ભી યે  
 શ્રાવક સર્વવિરતિ કો ધારણ નહીં કરતે હૈં ‘ધિક્કાર હૈ’ ઇત્યાદિ ।  
 શ્રાવિકાઓં કી ભી આશાતના ઇસી પ્રકાર કી હૈ ।

દેવોં કી આશાતના સે, વહ્ ઇસ પ્રકાર-“દેવતા તો વિષય

સાધુ મુનિરાજની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે છે-‘એ સાધુ મેલા-ગ ધાતા  
 કપડા ધારણ કરે છે, સસ્કારહીન, જડ, મૂઢ, શિર મુઢાવી જીવનને વ્યર્થ કરનાર  
 છે ઇત્યાદિ આ પ્રમાણે સાધ્વીની આશાતના સમજવી જોઈએ

શ્રાવકની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે-હાય ? જીવ-અજીવના સ્વરૂપ અને  
 પુણ્ય-પાપના મર્મને જાણવાવાળા, તથા આશ્રવ સવર નિર્જરા ક્રિયા અધિકરણ,  
 ગન્ધ અને મોક્ષ, તેમા હેય-ઉપાદેયનું જ્ઞાન રાખવાવાળા, એ પ્રમાણે જિન પ્રવચનને  
 યથાર્થ જાણનાર હોઈને પણ તે શ્રાવક સર્વવિરતિને ધારણ કરતા નથી, ધિક્કાર છે  
 ઇત્યાદિ શ્રાવિકાઓની આશાતના પણ આ પ્રમાણે જ છે

દેવોની આશાતનાથી, તે આ પ્રમાણે-દેવતા તો વિષયવાસનામા આસક્ત,

चित्तवृत्तयोऽप्रत्याख्याना अविरताः शक्तिमन्तः सन्तोऽपि शासनसमुन्नतिमकुर्वन्ना सन्ति'-इत्येवरूपा । देवीनामप्याशातनैवमेव । 'इहलोगस्स' इहलोको=मनुष्य-लोकस्तस्य 'आसायणाए' आशातनया न्यूनाधिकत्वनिरूपणादिलक्षणाया ।

एवमेव परलोकस्याऽऽशातनाऽपि, अत्र परलोकः=स्वर्गनरकादिलक्षण' । 'केवलीण' केवलिनाम्, 'आसायणाए' आशातनया='केवलिनः कैवल्या-त्कवलाहारादिक न कुर्वन्ति'-इत्यादिरूपया । 'केवलिप्रज्ञप्त-स्य 'धम्मस्स' धम्मस्य=जीवदया-सत्या-ऽस्तेय-ब्रह्मचर्य-क्षान्ति-पञ्चेन्द्रिय-निग्रहरूपस्य, 'आसायणाए' आशातनया=विपरीतनिरूपणस्वरूपया । 'सदे-वमणुयासुरस्स' सदेवमनुष्यासुरस्य=देव-मनुष्या-ऽसुरसहितस्य, 'लोगस्स' लोकस्य, 'आसायणाए' आशातनया=वितथपरूपणस्वरूपया । 'सव्वपाणभू-यज्जीवसत्ताण' प्राणा'='प्राणिनो व्यक्तेन्द्रिया द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियलक्षणा', भूता =

वासनामै आसक्त, अप्रत्याख्यानी, अविरती हैं, और शक्तिमान होते हुए भी शासन की उन्नति नहीं करते हैं" इत्यादि । इसी प्रकार देवी की भी आशातना समझना ।

इस लोक की न्यूनाधिकत्व-निरूपणरूप आशातनासे, ऐसेही 'स्वर्ग नरक आदि रूप परलोक की आशातनासे ।'

'केवली कवलाहार आदि नहीं करते हैं' इत्यादि विरुद्ध प्ररूपणारूप केवली की आशातना से । केवलिप्ररूपित धर्मकी विपरीत प्ररूपणारूप आशातना से । देव मनुष्य और असुर सहित लोककी असत्य प्ररूपणारूप आशातना से । द्वीन्द्रियादि प्राणी,

अप्रत्याख्यानी, अविरति छे, अने शक्तिमान होवा छताय पद्य शासननी उन्नति करता नथी, इत्यादि अे प्रमाणे देवीनी पद्य आशातना समझयी

आ लोकनी न्यूनाधिकत्व निरूपण इय आशातनाथी, अेवीन शीते स्वर्ग-नरक आदि उप परलोकनी आशातनाथी

"देवकी कवल आहार आदि करता नथी" वगेरे विरुद्ध प्ररूपणारूप देवकीनी आशातनाथी देवकी प्ररूपित धर्मनी विपरीत प्ररूपणारूप इय आशातनाथी देव-मनुष्य अने असुर सहित लोकनी असत्य प्ररूपणारूप इय आशातनाथी द्वीन्द्रियादि प्राणी, वनस शक्तिशायइय भूत, पञ्चेन्द्रियइय एव अने पृथ्वी आदि सर्व, अे

વનસ્પતયઃ, જીવાઃ=પञ્ચેન્દ્રિયા., સત્ત્વાઃ=પૃથિવ્યક્ષેત્રોગાયત્ર ; પ્રાણાશ્ચ ભૂતાશ્ચ  
જીવાશ્ચ સત્ત્વાશ્ચેત્યેતેપામિતરેતરયોગદ્વન્દ્વે પ્રાણ ભૂત-જીવ-સત્ત્વાઃ, સર્વે ચ તે  
પ્રાણ-ભૂત-જીવ-સત્ત્વાશ્ચેતિ સર્વ-પ્રાણ-ભૂત-જીવ-સત્ત્વાઃ, ઉક્ત ચ—

‘પ્રાણા દ્વિ-ત્રિ-ચતુઃ પ્રોક્તા, ભૂતાસ્તુ ત્રયઃ સ્મૃતા’ ।

જીવા’ પञ્ચેન્દ્રિયા જ્ઞેયા’, શેષા. સત્ત્વા ડતીરિતાઃ’ ડતિ ।

તેપામ્ ‘આસાયણા’ આશાતનયા=વિતથપરૂપણાદિરૂપયા, વિતથ  
પરૂપણા યથા—‘અદ્વુષ્ટપર્વમાત્રાત્મવન્તો દ્વીન્દ્રિયાદયઃ, ભૂતસત્ત્વા વનસ્પતિપૃથિ  
વ્યાદિરૂપા અજીવા એવ ચેતનગતસ્પન્દનાદિચેષ્ટારદિતત્વાત્, જીવાસ્તુ ક્ષણિકા’  
ઇત્યાદિ । ‘કાલસ્સ’ કાલસ્ય, ‘આસાયણા’ આશાતનયા, કાલાડ્ડશાતના  
ચ—‘વર્તનાલક્ષણ કાલો નાસ્તિ’ ઇત્યપલાપરૂપા, કાલ એવ કર્તા યથા—‘કાલઃ  
પચતિ ભૂતાનિ, કાલ સહરતે પ્રજાઃ । કાલઃ સુષ્પેષુ જાગર્ત્તિ, કાલો ઢિ દુરતિ  
ક્રમઃ ॥’ ઇત્યેકાન્તકાલર્ષ્ટ્વરૂપયા વા । ‘સુયસ્સ’ શ્રૂયતે ઇતિ શ્રુત=ભગ

વનસ્પતિકાયરૂપ ભૂત, પञ્ચેન્દ્રિયરૂપ જીવ ઓર પૃથિવી આદિ સત્ત્વ,  
ઇન સઘકી અસત્ય પરૂપણારૂપ આશાતના સે, વહ અસત્ય પરૂપણા  
જૈસે—‘દ્વીન્દ્રિય આદિમે આત્મા અગૂટે કે પર્વ (પોર) કે ઘરાવર  
હોતી હૈ, વનસ્પતિ ઓર પૃથિવી આદિ તો હલન ચલન આદિ ચેષ્ટા  
કે ન હોને સે અચેતન હી હૈ ઓર જીવ ઢી ક્ષણિક હી હૈ’  
ઇત્યાદિ । વર્તનાલક્ષણ કાલ નહી હૈ’ ઇસ પ્રકારકી, અથવા ‘કાલ  
હી સઘકુચ કરતા હૈ જીવો કો પચાતા હૈ ડનકા સહાર કરતા  
ઓર સસાર કે સોયે રહને પર જાગતા હૈ અતએવ કાલ ડુર્નિવાર  
હૈ’ ઇસ પ્રકાર કાલ કો એકાન્ત કર્તા માનનેરૂપ આશાતના સે ।  
ભગવાન મહાવીર કે મુખચન્દ્ર સે નિસ્સૃત, ગણધરકે કર્ણમે પહુંષા

સર્વના અસત્ય પ્ર૩પણા૩પ આશાતનાથી, તે અસત્ય પ્ર૩પણા— જેમકે ‘દ્વાન્દ્રિય  
આત્મા આત્મા અગુકાના પર્વ (પોર)ની ધરાધર હોય છે વનસ્પતિ અને પૃથ્વી  
વગેરે હલન-ચલન આદિ ચેષ્ટા કરતા નથી તેથી અચેતનજ છે, અને એવ પશુ  
ક્ષણિક છે’ ઇત્યાદિ વર્તનાલક્ષણ કાલ નથી’ અથવા કાલજ સર્વ કાંઈ  
કરે છે એવોને પચાવે છે તેમનો સહાર કરે છે અને સસાર મુવે છે ત્યારે તે કાલ  
ભાગે છે, એટલા માટે ‘કાલ’ ડુર્નિવાર છે’ એ પ્રમાણે કાલને એકાન્ત કર્તા  
માનવા ૩પ આશાતનાથી, ભગવાન મહાવીરના મુખ૩પચન્દ્રમાથી નિકલી ગણધરના

चन्द्रमुखमुधाशुनिःसृत-गणधरश्रवणपुटप्रविष्ट-विशिष्टार्थप्रदर्शकाऽज्रामरत्वससाधक-  
वाक्पीयूषमात्र, तस्य, 'आसायणाए' आशातनया=वितथप्ररूपणादिलक्षणया ।  
'सुयदेवयाए' श्रुताधिष्ठात्रीदेवता-श्रुतदेवता=जिनवाणी, तस्याः, 'आसायणाए'  
आशातनया, अत्राऽऽशातना च-विपरीतश्रद्धानप्ररूपणादिरूपा । 'वायणायरियस्स'  
वाचनाचार्यः श्रुताध्यापनाचार्यस्तस्य, 'आसायणाए' आशातनया='अयमध्यापको  
विनयवन्दनाग्रथं मुहुर्मुहुर्मा प्रेरयति-इत्येवमादिप्रकथनस्वरूपया । 'ज चाइद्'  
इत्यादिपदव्याख्या 'आगमे तिविहे' इत्यत्र पट्टिकाया गता ॥ सू० २१ ॥

एवमेकविधाऽसयमादारभ्य त्रयस्त्रिंशत्तमपर्यन्तैः स्थानैरर्हदाद्याशातना-

हृत्वा, सामान्य विशेषात्मक पदार्थों के बोधक और भव्य जीवों  
को अजर अमर करनेवाले-वचनानृत स्वरूप श्रुतकी असत्य प्ररूपणा  
आदि आशातना से । श्रुतदेवता की आशातना से । ये विनय  
वन्दना आदि के लिये मुझे चारवार तग करते रहते हैं' इस  
प्रकार की वाचनाचार्य की आशातना से तथा व्याविद्ध-क्रमरहित  
(आगेपीछे बोलना), व्यत्यान्नेडित (अपनी मति से पाठ बनाकर  
बोलना) आदि पूर्वोक्त (पृष्ट) दोषों से जो कोई अतिचार किया  
गया हो तो मैं उससे निवृत्त होता हूँ और उसका 'मिच्छा मि  
दुक्कड' देता हूँ ॥ सू० २१ ॥

इम प्रकार एकविध असयम से लेकर तेतीस (३३) स्थानों,  
तथा अरिहन्त आदिकी आशातनाओं के द्वारा किये गये हुए अति-

कानमा पडोयेला सामान्य-विशेषात्मक पदार्थोना बोधक अने भव्य एवोने अजर-  
अमर करवा वाणा वचनामृतस्वरूप श्रुतनी असत्य प्रउपणा आदि आशातनाधी,  
श्रुत देवनी आशातनाधी, 'अे विनय वदना आदि माटे मने वारवार तग  
कर्या करे छे, अे प्रभाळे वाचनाचार्यनी आशातनाधी तथा व्याविद्ध-क्रमरहित  
(आगल पाछल बोलवु), व्यत्यान्नेडित (पोतानी छ्छाधी पाठ बनानी बोलवु) आदि  
पूर्वे कडेला (पृष्ट) दोषोधी न कांय अतिचार लाया होय तेनाधी निवृत्त थाई छु  
अने तेना 'मिच्छा मि दुक्कड' आयु छु (सू० २१)

आ प्रभाळे अेक सयमधी लधने तेतीस (३३) स्थाने, तथा अरिहन्त  
आदिनी आशातना दान थयेला अतिचारधी निवृत्त थधने क्षरीधी अतिचार नहि



વનસ્પતયઃ, જીવાઃ=પञ્ચેન્દ્રિયાઃ, સત્ત્વાઃ=પૃથિવ્યક્ષેત્રોગાયત્ર ; પ્રાણાશ્ચ ભૂતાશ્ચ  
જીવાશ્ચ સત્ત્વાથેત્યેતેપામિતરેતરયોગદ્વન્દ્વે પ્રાણ ભૂત-જીવ-સત્ત્વાઃ, સર્વે ચ તે  
પ્રાણ-ભૂત-જીવ-સત્ત્વાથેતિ સર્વ-પ્રાણ-ભૂત-જીવ-સત્ત્વાઃ, ઉક્ત ચ—

‘પ્રાણા દ્વિ-ત્રિ-ચતુઃ પ્રોક્તા, ભૂતાસ્તુ તરવ’ સ્મૃતાઃ ।  
જીવા’ પञ્ચેન્દ્રિયા જ્ઞેયાઃ, શેપા. સત્ત્વા ડતીરિતાઃ’ ઇતિ ।

તેપામ્ ‘આસાયણા’ આગાતનયા=વિતથપ્રરૂપણાદિરૂપયા, વિતથ  
પ્રરૂપણા યથા—‘અદ્ભુષ્ટપર્વમાત્રાત્મવ્રન્તો દ્વીન્દ્રિયાદયઃ, ભૂતસત્ત્વા વનસ્પતિપૃથિ  
વ્યાદિરૂપા અજીવા એવ ચેતનગતસ્પન્દનાદિચેષ્ટારહિતત્વાત્, જીવાસ્તુ ક્ષણિકા’  
ઇત્યાદિ । ‘કાલસ્સ’ કાલસ્ય, ‘આસાયણા’ આશાતનયા, કાલાઽઽશાતના  
ચ—‘વર્તનાલક્ષણ. કાલો નાસ્તિ’ ઇત્યપલાપરૂપા, કાલ એવ કર્તા યથા—‘કાલઃ  
પચતિ ભૂતાનિ, કાલ. સહરતે પ્રજાઃ । કાલઃ સુષ્પેષુ જાગર્ત્તિ, કાલો દિ દુરતિ  
ક્રમ’ ॥’ ઇત્યેકાન્તકાલઃકૃત્વરૂપયા વા । ‘સુયસ્સ’ શ્રૂયતે ઇતિ શ્રુત=ભગ

વનસ્પતિકાયરૂપ ભૂત, પञ્ચેન્દ્રિયરૂપ જીવ ઓર પૃથિવી આદિ સત્ત્વ,  
ઇન મચકી અસત્ય પ્રરૂપણારૂપ આશાતના સે, વહ અસત્ય પ્રરૂપણા  
જૈસે—‘દ્વીન્દ્રિય આદિમેં આત્મા અગટે કે પર્વ (પોર) કે ઘરાબર  
હોતી હૈ, વનસ્પતિ ઓર પૃથિવી આદિ તો હલન ચલન આદિ ચેષ્ટા  
કે ન હોને સે અચેતન હી હૈ ઓર જીવ ભી ક્ષણિક હી હૈ’  
ઇત્યાદિ । વર્તનાલક્ષણ કાલ નહી હૈ’ ઇસ પ્રકારકી, અથવા ‘કાલ  
હી સચક્રુહ કરતા હૈ જીવોં કો પચાતા હૈ ઁનકા સહાર કરતા  
ઓર સસાર કે સોયે રહને પર જાગતા હૈ અતએવ કાલ દુર્નિવાર  
હૈ’ ઇસ પ્રકાર કાલ કો એકાન્ત કર્તા માનનેરૂપ આશાતના સે ।  
ભગવાન મહાવીર કે મુખચન્દ્ર સે નિસ્સૃત, ગણધરકે કર્ણમેં પહુંચા

સર્વાના અસત્ય પ્રરૂપણાં આશાતનાથી, તે અસત્ય પ્રરૂપણા— જેમકે ‘દ્વાન્દ્રિય  
આદિમા આત્મા અશુકાના પર્વ (પોર)ની ઘરાબર હોય છે વનસ્પતિ અને પૃથ્વી  
વગેરે હલન-ચલન આદિ ચેષ્ટા કરતા નથી તેથી અચેતનજ છે, અને એવ પણ  
ક્ષણિક છે’ ઇત્યાદિ વર્તનાલક્ષણ કાલ નથી’ ‘આ પ્રકારની’ અથવા કાલજ સર્વ કાઈ  
કરે છે એવાને પચાવે છે તેમને સહાર કરે છે અને સસાર મુવે છે ત્યારે તે કાલ  
ભગે છે, એટલા માટે ‘કાલ’ દુર્નિવાર છે’ એ પ્રમાણે કાલને એકાન્ત કર્તા  
માનવા રૂપ આશાતનાથી, ભગવાન મહાવીરના મુખચન્દ્રમાથી નિકળી જલ્ધરના

गहधारा पंचमहव्यधारा अट्टारससहस्ससीलगधारा अक्खयायार-  
चरित्ता ते सब्बे सिरस्ता मणसा मत्थएण वंदामि

‘खामेमि सब्बजीवे, सब्बे जीवा खमतु मे ।

मिन्ती मे सब्बभूएसु, वेरं मज्झ न केणई ॥१॥

अल्लोडय, निदिअ गरहिअ दुगछिय सम्मं ।

॥ सू० २२ ॥

नै  
सि  
म  
म  
३

भ्यः । इदमेव  
द्व शल्यकर्त्तन  
सर्वदुःखप्रहीण-  
न्त सर्वदुःखाना-  
श्यामि अनुपाल-  
मनुपालयन् तस्य  
विराधनायाम् ।  
।पसम्पद्ये, अकल्प  
, अक्रिया परिजा-  
पद्ये, अबोधि परि-  
यत्स्मरामि यच्च न  
।सिकस्यातिचारस्य  
। अनिदानो दृष्टि-  
र्मभूमिषु ये केऽपि  
व्रतधारा अष्टादश-  
। मनसा मस्तकेन

।।म् ।

मैत्री मे सब्बभूतेषु, वेर मम न कएणाम् १ ॥

एवमहमालोच्य, निन्दिता गर्हयिता जुगुप्सिता सम्यक् ।

त्रिविधेन प्रतिक्रामन्, वन्दे जिनाना चतुर्विंशतिम् ॥ २ ॥ ॥ सू० २२ ॥

મિશ્રાડતિચારેભ્યઃ પ્રતિક્રાન્તઃ પુનરતિચારાકરણાર્થે પ્રતિચિક્રસયાડડૌ નમસ્ક-  
રોતિ-‘નમો ચઠવીસાણ’ ઇત્યાદિના ।

॥ મૃલમ્ ॥

નમો ચઠવીસાણ તિત્થયરાણ ઉસમાઈમહાવીરપજ્જવસાણાણં ।  
ઇણમેવ નિગ્ગથ પાવયણ સચ્ચ અણુત્તર કેવલિય પડિપુત્ત નેયા-  
ઉયં સંસુદ્ધ સલ્લગત્તણ સિદ્ધિમગ્ગ મુત્તિમગ્ગ નિજ્ઞાણમગ્ગ નિદ્વા-  
ણમગ્ગ અવતિહમવિસધિ સવ્વદુલ્લખપ્પહીણમગ્ગ । ઇત્થ ઠિઆ જીવા  
સિજ્જતિ, બુજ્જતિ મુચ્ચતિ પરિનિવ્વાયતિ સ્વવ્વદુલ્લખાણમત કરતિ ।  
ત ધમ્મ સદ્દહામિ પત્તિયામિ રોણમિ ફાસેમિ પાલેમિ અણુપાલેમિ ।  
ત ધમ્મ, સદ્દહતો પત્તિયતો રોઅતો ફાસતો પાલતો અણુપાલતો  
તસ્સ ધમ્મસ્સ, કેવલિપત્તત્તસ્સ અવ્વમુઠિઓમિ આરાહણાણ વીર-  
ઓમિ વિરાહણાણ, અસજમ પરિયાણામિ, સજમ ઉવસપજ્જામિ,  
અવમ્ પરિયાણામિ વમ ઉવસપજ્જામિ । અકપ્પ પરિયાણામિ,  
કેપ્પ ઉવસપેજ્જામિ । અન્નાણ પરિયાણામિ, નાણ ઉવસપજ્જામિ ।  
અકિરિય પરિયાણામિ, કિરિયં ઉવસપજ્જામિ । મિચ્છન્ત પરિ-  
યાણામિ, સમ્મન્ત ઉવસપજ્જામિ । અબોહિં પરિયાણામિ, બોહિં  
ઉવસપજ્જામિ । અમગ્ગ પરિયાણામિ, મગ્ગ ઉવસપજ્જામિ । જ  
સમરામિં જ ચ ન સમરામિ, જ પડિક્કમામિ જ ચ ન પડિ-  
ક્કમામિ તસ્સ સવ્વસ્સ દેવસિયસ્સ અહિયારસ્સ પડિક્કમામિ ।  
સમણોહ સજયવિરયપડિહયપચ્ચક્ખવાયપાવકમ્મો અનિયાણો દિટ્ઠિ-  
સપ્પાનો માયામોસત્તિવજ્જિઓ અઢાહ્જ્જેસુ દીવસમુદ્દેસુ પન્નરસસુ  
કમ્મભૂમીસુ જાવતિ કેહ સાહૂ રયહરણમુહપત્તિયગોચ્છગપડિ-

ચારોં સે નિવૃત્ત હો કર ફિરસે અતિચાર ન કરને કે લિષ પ્રતિ-  
ક્રમણ કરના જરૂરી હૈ, ઇસલિયે પ્રથમ નમસ્કાર કરતે હુણ પ્રતિ-  
ક્રમણ કરતે હૈ—‘નમો ચોવીસાણ’ ઇત્યાદિ ।

કરવા માટે પ્રતિક્રમણ કરવું એ જરૂરની વસ્તુ છે, એટલા માટે નમસ્કાર કરીને  
પ્રતિક્રમણ કરે છે ‘નમો ચોવીસાણ’ ઇત્યાદિ



भिश्चाऽतिचारेभ्यः प्रतिक्रान्तः पुनरतिचाराकरणार्थं प्रतिचिक्रसयाऽऽदौ नमस्करोति - 'नमो चउवीसाए' इत्यादिना ।

॥ मूलम् ॥

नमो चउवीसाए तित्थयराण उसभाइमहावीरपज्जवसाणाण ।  
 इणमेव निग्गथ पावयण सच्च अणुत्तर केवलिय पडिपुन्न नेया-  
 उयं ससुद्ध सल्लगतण सिद्धिमग्ग मुत्तिमग्ग निज्जाणमग्ग निवा-  
 णमग्ग अवतिहमविसधि सव्वदुवखप्पहीणमग्ग । इत्थ ठिआ जीवा  
 सिज्झति बुज्झति मुच्चति परिनिव्वायति सव्वदुक्खाणमत करति ।  
 त धम्म सदहामि पत्तियामि रोएमि फासेमि पालेमि अणुपालेमि ।  
 त धम्म सदहतो पत्तियतो रोअतो फासतो पालतो अणुपालतो  
 तस्स धम्मस्स केवलपन्नत्तस्स अट्ठुठिओमि आराहणाए विर-  
 ओमि विराहणाए, असजम परियाणामि, सजम उवसपज्जामि,  
 अबभ परियाणामि वभ उवसपज्जामि । अकप्प परियाणामि,  
 कप्प उवसपज्जामि । अन्नाण परियाणामि, नाणं उवसंपज्जामि ।  
 अकिरिय परियाणामि, किरिय उवसपज्जामि । मिच्छत्त परि-  
 याणामि, सम्मत्त उवसपज्जामि । अवोहिं परियाणामि, बोहिं  
 उवसपज्जामि । अमग्ग परियाणामि, मग्ग उवसपज्जामि । ज  
 सभराभि ज च न सभरामि, ज पडिक्कमामि ज च न पडि-  
 क्कमामि तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स पडिक्कमामि ।  
 समणोह सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मो अनियाणो दिट्ठि-  
 सपन्नो मायामोसविवज्जिओ अढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पन्नरससु  
 कम्मभूमीसु जावति, केइ साहू रयहरणमुहपत्तियगोच्छगपडि-

चारों से निवृत्त हो कर फिरसे अतिचार न करने के लिए प्रति-  
 क्रमण करना जरूरी है, इसलिये प्रथम नमस्कार करते हुए प्रति-  
 क्रमण करते हैं—'नमो चोवीसाए' इत्यादि ।

३२वा भाटे प्रतिक्रमणु करवुं ओ ४३२नी वस्तु छे, ओटला भाटे नमस्कार करीने  
 प्रतिक्रमणु करे छे 'नमो चोवीसाए' इत्यादि



## ॥ टीका ॥

‘चउवीसाए०’ इति स्पष्टोऽयः । ‘उसमाइ०’ अत्र प्राकृतत्वात्तुर्ध्वयं पष्ठी, व्यक्तमन्यत् । एव नमस्कृत्य तीर्थङ्करप्रणीतप्रवचनमशसनपूर्वकं प्रकृतमाह-  
 ‘इणमेव’ इदमेव नान्यत्, ‘निर्ग्रन्थ’ निर्ग्रन्थ-निर्गता ग्रन्थाः=द्रव्यतः स्वर्णा-  
 दयो, भावतो मिथ्यात्वाऽविरत्यादिलक्षणा येभ्यस्ते, यद्वा ग्रन्थेभ्यो निष्क्रान्ता  
 निर्ग्रन्थाः=मुनयस्तेपामिदम् ‘पात्रयण’ प्ररूपेण=यथार्थत उच्यन्ते पदार्था यत्र  
 तत्प्रवचन तदेव प्रावचनम्-सर्वोत्थिकः प्रज्ञादिपाठादण् । सामायिकप्रभृतिप्रत्या-  
 ख्यानपर्यन्त द्वादशाङ्ग गणिपिटक वा, एतदेव विगिनष्टि-‘सच्च’ इत्यादिना,  
 सन्तः=प्राणिनः पदार्था-मुनयो वा तेभ्यो हित, सत्सु=मुनिजीवादिपदार्थेषु यथा-  
 क्रम मुक्तिप्राप्तत्व-यथावस्थितचिन्तनाभ्यां साधु वा सत्यम्, यद्वा सन्तमर्थ-  
 माययति=अत्यायतीति निरुक्तप्रक्रियया सत्यम् ।

‘अणुत्तर’ न उत्तरम्=उच्चतर (प्रधान) यस्मात्तदनुत्तरम्-अनन्यसदृश  
 मित्यर्थः । ‘केवलिय’ केवलिना प्रोक्त यद्वा केवलमेव कैवलिकम्-अद्वितीयमि-

श्री ऋषभदेव स्वामी से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यन्त  
 चौबीसो तीर्थङ्कर भगवान को मेरा नमस्कार हो । इस प्रकार नम-  
 स्कार करके तीर्थङ्कर प्रणीत प्रवचनकी स्तुति करते हैं-यही निर्ग्रन्थ  
 अर्थात् स्वर्ण रजत आदि द्रव्यरूप और मिथ्यात्व आदि भावरूप  
 ग्रन्थ (गाँठ) से रहित-मुनिसम्बन्धी सामायिक आदि प्रत्याख्यान-  
 पर्यन्त द्वादशाङ्ग गणिपिटकस्वरूप तीर्थङ्करों से उपदिष्ट प्रवचन,  
 सत्य, सर्वोत्तम, अद्वितीय, समस्त गुणों से परिपूर्ण, मोक्षमार्ग

श्री ऋषभदेव स्वामीथी आरक्षीने श्री महावीरस्वामी सुधी चौबीस  
 तीर्थंकरभगवानने मारा नमस्कार छे आ प्रभाणे नमस्कार करीने तीर्थंकर प्रणीत  
 प्रवचनगी स्तुति करे छे आ निर्ग्रन्थ-अर्थात् सोनु-त्यादी आदि द्रव्यरूप अने  
 मिथ्यात्व आदि भावरूप ग्रन्थ-गाँठी रहित-मुनि सणधी सामायिक आदि प्रत्या-  
 ख्यान पर्यन्त मार अग गणिपिटकस्वरूप तीर्थंकराथी उपदेशाब्जेण प्रवचन, सत्य,  
 सर्वोत्तम, अद्वितीय, समस्त गुणोथी परिपूर्ण, मोक्षमार्गप्रदर्शक, अग्निभा

१-‘तस्मै हित’-मिति, ‘तत्र साधु’-रिति वा यत् प्रत्ययः ।

२-बोधयति ।

तिमावः, 'षड्विपुत्र' प्रतिपूर्णं सूत्रतोऽक्षरमात्रादिन्यूनतया, अर्थतोऽध्याहारा-  
ऽऽकाङ्क्षादिभिश्च रहित सर्वप्रमाणोपेतमपवर्गप्रापककृत्स्नगुणसयुत वा । 'नेयाउद'  
न्यायेन चरति न्यायमनुगच्छति न्यायमनतिक्रान्त न्याये भव वा नैयायिक-मोक्ष-  
गमकम् । 'समुद्भ' स=सामस्त्येन शुद्ध=रूपायादिमलरहित निर्वर्चछेद-ताप-  
ताडन-कोटिविशुद्धहेमवन्निर्दोषमिति यावत् । 'सल्लगत्तण' शल्य=मायादि पाप  
वा कृन्तति=छिनत्तीति, कृत्यते=छिद्यतेऽनेनेति वा शल्यकर्त्तनम् । वादिमत  
प्रतिक्षिपति-'सिद्धिमग' सिद्धि.=साध्यनिष्पत्तिः अविचलसुखमाप्तिस्तस्या  
मार्गं=उपायः-सिद्धिमार्गः । 'मुत्तिमग' मुक्ति.=अद्वितार्थकर्मप्रहाण, तस्य मार्गं ।  
विप्रतिपत्तिं निरस्यति-'निज्जाणमग' निर्याण=सकलकर्मभ्य आत्मनो निःस-  
रण, तस्य मार्गो निर्याणमार्गं=विशिष्टनिर्वाणावाप्तिनिदानमित्यर्थः । 'निव्वान-  
मग' निव्वान=निर्वृति.=निखिलकर्मक्षयजन्य परमसुख, यद्वा निर्वायते=अपुनरा-  
वृत्ति गम्यतेऽस्मिन्निति, तस्य मार्गो निर्वाणमार्गः । वस्त्वन्तर पूर्वतः मुस्यमपि  
कालान्तरेण विक्रियते प्रवचन तु न तथा कालत्रयेऽप्यविकृतत्वादिति निगमयन्नाह-  
'अवितह' अवितथ=तथ्यम्, आह- सत्याऽवितथयो, पर्यायत्वात् पौनरुक्त्य  
कथं नेति ? उच्यते-पूर्वं सत्यार्थप्रतिपादकत्वात्सत्यमित्युक्तमिह तु सत्त्वस्वरूपत्वाद-  
वितथमिति 'अविसधि=अन्यत्रच्छिद्यम्, एतच्च विदेहक्षेत्रमपेक्ष्योक्त, भरतक्षेत्रत्राय-

प्रदर्शक, अग्निमें तपाये हुए सोने के समान निर्मल (कषाय मलसे रहित), मायादि शल्यका नाशक, अविचल सुखका साधन मार्ग, कर्मनाशका मार्ग, आत्मा से कर्मको दूर करनेका मार्ग, शीतलीभूत होनेका मार्ग, अवितथ अर्थात् तीनों कालमें भी अविनाशी, महा-विदेह क्षेत्रकी अपेक्षा सदा और भरतक्षेत्र आदिकी अपेक्षा इक्कीस हजार वर्ष रहनेवाला और सब दु खों का नाश करनेवाला मार्ग है।

तपायेला सोना समान निर्मल (कषायमलधी रहित), मायादिशल्यनाशक, अविचल सुखनो साधन-मार्ग, कर्मनाश करवानो मार्ग, आत्माने लागेला कर्मने दूर करवानो मार्ग, शीतलीभूत थवानो मार्ग, अवितथ अर्थात् त्रेशे कालमा अविनाशी, महाविदेह क्षेत्रनी अपेक्षा सदा अने भरतक्षेत्र आदिनी अपेक्षा ऐकवीस हजार वर्ष रहेवावाणे अने सर्व दु खनो नाश करवावाणे मार्ग छे



## ॥ टीका ॥

‘चउवीसाए०’ इति स्पष्टोऽयः । ‘उसभाइ०’ अत्र प्राकृतावतुर्ध्वये पृष्ठी, व्यक्तमन्यत् । एत्र नमस्कृत्य तीर्थङ्करप्रणीतप्रवचनप्रससनपूर्वकं प्रकृतमाह-  
 ‘इणमेव’ इदमेव नान्यत्, ‘निर्ग्रन्थ’ नैर्ग्रन्थ-निर्गता ग्रन्थाः=द्रव्यतः स्वर्णा-  
 दयो, भावतो मिथ्यात्वाऽचिरत्यादिलक्षणा येभ्यस्ते, यद्वा ग्रन्थेभ्यो निष्क्रान्ता  
 निर्ग्रन्थाः=मुनयस्तेपामिदम् ‘पात्रयण’ प्ररूपेण=यथार्थत उच्यन्ते पदार्था यत्र  
 तत्प्रवचन तदेव प्रावचनम्-स्यार्थिकः प्रज्ञादिपाठादण । सामायिकप्रभृतिप्रत्या-  
 ख्यानपर्यन्त द्वादशाङ्ग गणिपिटक वा, एतदेव विगिनष्टि-‘सच्च’ इत्यादिना,  
 सन्तः=प्राणिनः पदार्था-मुनयो वा तेभ्यो हित, सत्सु=मुनिजीवादिपदार्थेषु यथा-  
 क्रम मुक्तिपापकत्व-यथावस्थितचिन्तनाभ्या साधु वा सत्यम्, यद्वा सन्तमर्थ-  
 माययति=प्रत्यायतीति निरुक्तप्रक्रियया सत्यम् ।

‘अणुत्तर’ न उत्तरम्=उच्चतर (प्रधान) यस्मात्तदनुत्तरम्-अनन्यसदृश-  
 मित्यर्थः । ‘केवलिय’ केवलिना प्रोक्त यद्वा केवलमेव कैवलिकम्-अद्वितीयमि-

श्री ऋषभदेव स्वामी से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीसो तीर्थङ्कर भगवान को मेरा नमस्कार हो । इस प्रकार नम-  
 स्कार करके तीर्थङ्कर प्रणीत प्रवचनकी स्तुति करते हैं-यही निर्ग्रन्थ-  
 अर्थात् स्वर्ण रजत आदि द्रव्यरूप-और मिथ्यात्व आदि भावरूप  
 ग्रन्थ (गाँठ) से रहित-मुनिसम्बन्धी सामायिक आदि प्रत्याख्यान-  
 पर्यन्त द्वादशाङ्ग गणिपिटकस्वरूप तीर्थङ्करों से उपदिष्ट प्रवचन,  
 सत्य, सर्वोत्तम, अद्वितीय, समस्त गुणों से परिपूर्ण, मोक्षमार्ग

श्री ऋषभदेव स्वामीसे आरंभिने श्री महावीरस्वामी सुधी चौबीस  
 तीर्थ करेलागवानने मारा नमस्कार छे आ प्रमाणे नमस्कार करीने तीर्थ कर प्रेक्षीत  
 प्रवचनकी स्तुति करे छे आ निर्ग्रन्थ-अर्थात् सोनु-यादी आदि द्रव्यरूप अने  
 मिथ्यात्व आदि भावरूप ग्रन्थ-गाँठी रहित-मुनि सणधी सामायिक आदि प्रत्या-  
 ख्यान पर्यन्त मार अग गणिपिटकस्वरूप तीर्थ करेथी उपदेशाब्जेलु प्रवचन, सत्य,  
 सर्वोत्तम, अद्वितीय, समस्त गुणोथी परिपूर्ण, मोक्षमार्गप्रदर्शक, अग्निभा

१-‘तस्मै हित’-मिति, ‘तत्र साधु’-रिति वा यत् प्रत्यय ।

२-बोधयति ।

तिभावः, 'पडिपुत्र' प्रतिपूर्ण सूत्रतोऽक्षरमात्रादिन्यूनतया, अर्थतोऽध्याहारा-  
 ऽऽकाङ्क्षादिभिश्च रहित सर्वप्रमाणोपेतमपवर्गप्रापककृत्स्नगुणसयुत वा । 'नेयाउद'  
 न्यायेन चरति न्यायमनुगच्छति न्यायमनतिक्रान्त न्याये भव वा नैयायिक-मोक्ष-  
 गमकम् । 'समुद्' स=सामस्त्येन शुद्ध=कृपायादिमलरहित निर्वर्ष=उद्-ताप-  
 ताडन-कोटिविशुद्धहेमवन्निर्दोषमिति यावत् । 'सल्लगतण' शल्य=मायादि पाप  
 वा कृन्तति=छिनत्तीति, कृत्यते=छिद्यतेऽनेनेति वा शल्यकर्त्तनम् । वादिमुत्  
 प्रतिक्षिपति-'सिद्धिमग्' सिद्धिः=साध्यनिष्पत्तिः अविचलसुखमाप्तिस्तस्या  
 मार्गः=उपायः-सिद्धिमार्गः । 'मुत्तिमग्' मुक्तिः=अहितार्थकर्मप्रहाण, तस्य मार्ग ।  
 विप्रतिपत्तिं निरस्यति-'निज्जाणमग्' नियणि=सकलकर्मभ्य आत्मनो निःस-  
 रण, तस्य मार्गो निर्याणमार्गः=विशिष्टनिर्वाणावाप्तिनिदानमित्यर्थः । 'निब्राण-  
 मग्' निर्वाण=निर्वृतिः=निखिलकर्मक्षयजन्य परमसुख, यद्वा निर्वायते=अपुनरा-  
 वृत्ति गम्यतेऽस्मिन्निति, तस्य मार्गो निर्वाणमार्गः । वस्त्वन्तर पूर्वतः सुस्यमपि  
 कालान्तरेण विक्रियते प्रवचन तु न तथा कालत्रयेऽप्यविकृतत्वादिति निगमयन्नाह-  
 'अवितह' अवितथ=तथ्यम्, आह- सत्याऽवितथयो. पर्यायत्वात् पौनरुक्त्य  
 कथं नेति ? उच्यते-पूर्वं सत्यार्थप्रतिपादकत्वात्सत्यमित्युक्तमिह तु सत्त्वस्वरूपत्वाद-  
 वितथमिति 'अविसधि=अव्यवच्छिन्नम्, एतच्च विदेहक्षेत्रमपेक्ष्योक्त, भरतक्षेत्राय-

प्रदर्शक, अग्निमें तपाये हुए सोने के समान निर्मल (कषाय मलसे  
 रहित), मायादि शल्यका नाशक, अविचल सुखका साधन मार्ग,  
 कर्मनाशका मार्ग, आत्मा से कर्मको दूर करनेका मार्ग, शीतलीभूत  
 होनेका मार्ग, अवितथ अर्थात् तीनों कालमें भी अविनाशी, महा-  
 विदेह क्षेत्रकी अपेक्षा सदा और भरतक्षेत्र आदिकी अपेक्षा इक्कीस  
 हजार वर्ष रहनेवाला और सन दु खों का नाश करनेवाला मार्ग है ।

तपायेला सोना समान निर्मल (कषायमलसे रहित), मायादिशल्यनाशक,  
 अविचल सुखको साधन-मार्ग, कर्मनाश करनेवाला मार्ग, आत्माने लागेला कर्मने दूर  
 करवाने मार्ग, शीतलीभूत धवाने मार्ग, अवितथ अर्थात् त्रेशे कालमा अविनाशी,  
 महाविदेह क्षेत्रकी अपेक्षा सदा अने भरतक्षेत्र आदिनी अपेक्षा अेकवीस हजार वर्ष  
 रहेवावाणे अने सर्व दु खने नाश करवावाणे मार्ग छे

पेक्षयैरुविशतिसेहस्रायन्दिन्नरपाण्येव निरपच्छेदमयस्थिते । 'सच्चदुखत्वपहीण-  
मग' सर्वदुःखप्रक्षीण=निःश्रेयस तस्य मार्गः=सर्वदुःखप्रक्षीणमार्गः ।

इत्थं प्रवचनस्य विशेषणमाह्वल्येन यन्निर्गलितं तदाह—'इत्थटिया'  
इत्थमिति 'अत्र' इत्यस्यार्थेऽव्ययम्, इत्थम्=अत्र=पौक्तविशेषणविशिष्टे निर्ग्रन्थ  
प्रवचने स्थिता=वर्तमानाः जीवाः=माणिनः, 'सिञ्जति' सिञ्चन्ति=सिद्धिगतिं  
प्राप्नुवन्ति अणिमात्रसिद्धियुक्ता भवन्ति या । 'बुञ्जति' बुञ्चन्ते=केवलिनो  
भवन्ति, 'मुञ्चति' मुञ्चन्ते=कर्मबन्धात्पृथग् भवन्ति 'परिनिष्वायति' परिनि-  
र्वान्ति=सर्वथा सुखिनो भवन्ति । 'सच्चदुखराणमतं करति' सर्वाणि च तानि  
दुःखानि=सर्वदुःखानि=शारीरमानसादीनि तेषामन्तो नाशस्त कुर्वन्ति । 'इत्थ  
ज्ञात्वा ससारसागर त्रितीर्पुरात्मानमुद्दिश्याऽऽह—'त' तम्=पूर्वोक्तविशेषण-  
विशिष्टम्, 'धम्म' धम्म=निर्ग्रन्थप्रवचनस्वरूपम् 'सद्दामि' श्रद्धे=अयमेव  
केवल ससारपारावारपारोचारक इति भावये । 'पत्तियामि' प्रत्येमि=विश्वा-

इस मार्गमें रहे हुए प्राणी सिद्धगति से, अथवा अणिमा  
आदि आठ सिद्धियों से युक्त होते हैं, केवल पदको प्राप्त होते हैं,  
कर्मबन्ध से मुक्त होते हैं, सर्व सुख को प्राप्त होते हैं और शारी-  
रिक मानसिक सर्व दुःखोंसे निवृत्त होते हैं । उस धर्मकी मैं श्रद्धा  
करता हूँ अर्थात् एक यही ससार समुद्र से तारनेवाला है ऐसी  
भावना करता हूँ, अन्त करण से प्रतीति करता हूँ, उत्साहपूर्वक  
आसेवन करता हूँ, आसेवना द्वारा स्पर्श करता हूँ और प्रवृद्ध परि-

आ मार्गमा रडेला प्राणी सिद्धगतिथी अथवा अणिमादि आठ सिद्धिआथी  
युक्त होय छे, केवलपदने प्राप्त थाय छे, कर्मबन्धथी मुक्त थाय छे, सर्व सुखोने  
प्राप्त करे छे अने शारीरिक मानसिक दुःखोथी निवृत्त थाय छे—ते धर्मनी हुँ—श्रद्धा  
करे छु अर्थात् आ ससार समुद्रथी तारवावाणो ते ओकरे छे ओवी भावना करे  
छु, अन्त करणथी प्रतीति करे छु उत्साहपूर्वक आसेवन करे छु, आसेवना द्वारा  
स्पर्श करे छु, अने प्रवृद्ध परिष्णाम—उत्थ भावथी पालन करे छु, अने सर्वथा निर-  
तर आराधना करे छु ते धर्ममा श्रद्धा करतो थके, प्रतीति करतो थके, रुचि राधतो

१— अणिमादयो यथा—“अणिमा महिमा च व गरिमा लघिमा तथा ।  
प्राप्तिं प्राप्ताम्यमीशित्य, यशित्य चाष्टद्वय ” इति ॥

सभूमिं करोमि, यद्वा प्रतिपत्रे=प्रीत्या प्राप्नोमि । 'रोएमि' रोचयामि=उत्सा  
 हातिरेकेणाऽऽसेवनाभिमुखो भवामि 'फासेमि' सेवनाद्वारेण स्पृशामि । 'पालेमि'  
 प्रवृद्धपरिणामेन पालयामि । 'अणुपालेमि' अनु=अनुकूल पालयामि, यद्वा  
 सर्वतोभावेन करोमि । 'त धम्म' त धर्मम्, 'सद्दहतो' श्रद्धधानः='प्रवचनमिदं  
 सत्यमस्ती'-त्येवमात्मपरिणाम कुर्वाणः, 'पत्तियतो' प्रतियन्=विश्वासभूमिं  
 कुर्वन्, यद्वा प्रतिपत्रमानः=प्रीत्या स्वीकुर्वाणः, 'रोएतो' रोचयमानः=  
 रुचिपिय कुर्वाणः, 'फासतो' स्पृशन्=आसेवमानः, 'पालतो' पालयन्=  
 प्रवृद्धपरिणामेन सेवमानः, 'अणुपालतो' अनुपालयन्=अनुकूल पालयन्, यद्वा  
 सर्वतोभावेन कुर्वन्, 'तस्स' तस्य=पूर्वोक्तस्य 'केवलिपन्नत्तस्स' केवलिपन्नस्य,  
 'धम्मस्स' धर्मस्य, 'अब्भुट्ठिओमि' अभ्युत्थितोऽस्मि=उत्थतो भवामि 'आरा-  
 हणाए' आराधनायामर्थादासेवनाविषये, 'विरओमि' विरतोऽस्मि,=निवृत्तोऽस्मि  
 'विराहणाए' विराधनाया=खण्डनायाम् । एष एवार्यो विभिद्योच्यते-यत्  
 एवमतः- 'असज्जम परियाणामि' असयमः=प्राणातिपातात्कुशलानुष्ठानरूपः  
 सयमाभावस्त परिजानामि=ज्ञपरिज्ञावलेन ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यजामि ।  
 'सज्जम' सम्=शोभनाः यमाः प्राणातिपातादिनिवृत्तिरूपा यस्मिन्, यद्वा  
 सयम्यते=निवर्त्यते सावयानुष्ठानादात्मा येन स सयमस्तम् 'उवसपज्जामि'

गाम (उच्चभाव) से पालता हूँ और सर्वथा निरन्तर आराधना करता हूँ।  
 उस धर्ममें श्रद्धा करता हुआ, प्रतीति करता हुआ, रुचि रखता हुआ,  
 स्पर्श करता हुआ, पालन करता हुआ और सम्यक् पालन करता  
 हुआ उस केवलि प्ररूपित धर्म की आराधना के लिए मैं उद्यत हुआ  
 हूँ, तथा सब प्रकार की विराधना से निवृत्त हुआ हूँ, अतएव  
 असयम (प्राणातिपात आदि अकुशल अनुष्ठान) की जपरिज्ञा से  
 जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से परित्याग कर सावद्य अनुष्ठान-

थडे, स्पर्श करतो थडे, पावन करतो थडे, अने सम्यक् पालन करतो थडे ते  
 केवलि-प्ररूपित धर्मनी आराधना भाटे हु तैयार थये छु, तथा सर्व प्रकारनी  
 विराधनाथी निवृत्त थये छु, अटला भाटे असयम (प्राणातिपात आदि अकुशल  
 अनुष्ठान) ने जपरिज्ञाथी ज्ञानीने अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी परित्याग करीने  
 सावद्य अनुष्ठान निवृत्तिरूप सयमने स्वीकार कर छु अथुनरूप अश्रुत्यने छोडी

उपसम्पद्ये=स्वीकुर्वे । 'अत्रम्' अत्रह्य=मैथुनलक्षणाऽकुशलकर्म' 'परियाणामि' परिजानामि=परित्यजामि । 'यत्र' ब्रह्म=मैथुनपरित्यागलक्षण कुशलकर्म=शीलमित्यर्थः, 'उपसपज्जामि' उपसम्पद्ये=अस्वीकुर्वे । एत्रम्-'अरूप' 'अकल्पम्'=सुसुक्षुभिरनाचरित 'कल्प' कल्पः=करण-चरणस्वरूप आचारस्तम्, 'अन्नाण' जीवादिवस्तुनो यथास्थितस्वरूपानिर्णयलक्षणमज्ञानम्, 'नाण' ज्ञायते=परिच्छिद्यते वस्त्वनेनास्माद्वेति ज्ञानम्=वस्तुयथावत्स्वरूपक, यद्वा ज्ञातिज्ञानं=वस्तुयथावत्स्वरूपानुभवस्तत्, 'अक्रिय' अक्रियाम्, नवोऽत्र दुरर्थकत्वाद्दृष्टा क्रियामिति, यद्वा अपाशस्त्यार्थकोऽत्र नञ्, तेनाप्रशस्ता क्रिया नास्तिक्वादस्वरूपामित्यर्थः, 'क्रिय' क्रिया=सम्यग्ग्यापारः, सम्यग्वादो वा ताम्, 'मिच्छत्त' मिथ्यात्व=तत्त्वार्थाश्रद्धानं=विपर्यस्तश्रद्धानमित्यर्थः, तथा चोक्तम्-'मिच्छत्त जिणधम्म विवरीय' इति । 'सम्मत्त' सम्यक्त्व=सामान्यविशेषाभ्या जिनप्रणीतजीवादि पदार्थसार्थस्य श्रद्धानम् । 'अवोहि' अवोधिः=आत्मनो मिथ्यात्वपरिणामस्तम् । 'वोहि' वोधिः=आत्मनः सकलदुःखक्षयनिदानजिनधर्मप्राप्तिस्तम्, 'अमग्ग'

निवृत्तिरूप सयम को स्वीकार करता हूँ, मैथुनरूप अकृत्य को छोड़ कर ब्रह्मचर्यरूप शुभ अनुष्ठान को स्वीकार करता हूँ, अकल्पनीय को छोड़ कर करणचरणरूप कल्प को स्वीकार करता हूँ, अज्ञान को त्याग कर ज्ञान को अङ्गीकार करता हूँ, नास्तिकवादरूप अक्रिया को छोड़कर आस्तिकवाद रूप क्रिया को ग्रहण करता हूँ, मिथ्यात्व को त्याग कर सम्यक्त्व को स्वीकार करता हूँ, आत्मा के मिथ्यात्व परिणामरूप अबोधि को छोड़ कर सकल दुःखनाशक जिनधर्मप्राप्तिरूप बोधि को ग्रहण करता हूँ और जिनमतसे विरुद्ध पार्श्वस्थ निहव तथा कुतीर्थि-सेवित अमार्ग

ब्रह्मचर्यरूप शुभ अनुष्ठानको स्वीकार करे छु अकल्पनीयको छोड़ने करणचरणरूप कल्पको स्वीकार करे छु अज्ञानको छोड़ने ज्ञानको अङ्गीकार करे छु नास्तिकवादरूप अक्रियको त्याग करीने आस्तिकवादरूप क्रियको अङ्गु करे छु मिथ्यात्वको त्याग करीने सम्यक्त्वको स्वीकार करे छु आत्माना मिथ्यात्वपरिणामरूप अबोधिको छोड़ने सकल दुःखको नाश करनार जिनधर्मनी प्राप्तिरूप बोधिने अङ्गु करे छु, अने जिनमतथी विरुद्ध पार्श्वस्थ निहव तथा कुतीर्थि-

अमार्गः=जिनवचनविरुद्धपार्श्वस्थनिह्वादि कुतीर्थससेवितलक्षणस्तम्, 'मग्ग' मार्गो=ज्ञानादिरत्नत्रयस्वरूपस्तम्, छद्मस्थत्वात्समस्तदोषशुद्धिमाह-'ज सभरामि' यत्स्मरामि=स्मृतिपथमानयामि, 'ज च न सभरामि' यच्च न स्मरामि=छद्मस्थत्वेन विस्मृतिस्वाभाव्यात्स्मृतिपथ नाऽऽनयामि, 'ज पडिकमामि' यत्प्रतिक्रामामि=ज्ञात सत् प्रतिनिवर्त्तयामि परित्यजामि वा, 'ज च न पडिकमामि' यच्चाऽनाभोगादज्ञात मृक्ष्म न प्रतिक्रमितुं शक्नोमि, 'तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स पडिकमामि' निगदव्याख्यातमिदम् ।

इत्थं प्रतिक्रम्य सयतविरतादिविशेषणविशिष्टं स्वात्मानमनुस्मरन् सर्वसाधुवन्दनां करोति-'समणोह' श्राम्यति=तपस्यतीति श्रमणः, तपश्चरणशीलः कश्चिदन्यो वा सम्भवतीत्यत आह-'सजयविरयपडिहयपच्चक्खायपावकम्मो' सयतः=वर्त्तमानकालिकसर्वसाधुव्यानुष्ठाननिवर्त्तकः, विरतः=अतीतकालिकपापाज्जुगुप्सापूर्वकं भविष्यति च सवरपूर्वकं निवृत्तः, अत एव प्रतिहतः=सम्यक्प्रकारेण

को जोड़ कर ज्ञानादि रत्नत्रय रूप मार्ग को स्वीकार करता हूँ । इसी प्रकार जो अतिचार स्मरण में आता है या छद्मस्थ अवस्था के कारण स्मरण में नहीं आता है तथा जिसका प्रतिक्रमण किया हो या अनजानवश जिसका प्रतिक्रमण नहीं किया हो उन सब दैवसिक अतिचारों से निवृत्त होता हूँ ।

इस प्रकार प्रतिक्रमण करके सयत-विरतादिरूप निज आत्मा का स्मरण करता हुआ सब साधुओं का वन्दना करता है ।

सयत ( वर्त्तमान में सकल साधु व्यापारों से निवृत्त )  
विरत (पहले किये हुए पापों की निन्दा और भविष्य काल के

सेवित अमार्गने छोडीने ज्ञानादि-रत्नत्रयइय मार्गने हु स्वीकार करे छु ये प्रमाणे जे अतिचार स्मरणमा आवे छे अथवा छद्मस्थ अवस्थाना कारणे स्मरणमा न आवे तथा जेनु प्रतिक्रमण कथुं छाय अथवा अनजणपण्णथी जेनु प्रतिक्रमण न कथुं छाय ते सर्व दैवसिक अतिचारेथी निवृत्त थाउ छु

आ प्रमाणे प्रतिक्रमण करीने सयत-विरतादिरूप निज आत्मानु स्मरण करतो थके। सर्व साधुओंने वन्दना करे छु

सयत ( वर्त्तमानमा सर्व साधु व्यापारेथी निवृत्त ), विरत ( प्रथम करेला

उपसम्पद्ये=स्वीकुर्वे । 'अप्रम' अवग्रह=मैथुनलक्षणाऽकुशलकर्म' 'परियाणामि' परिजानामि=परित्यजामि । 'वभ' ब्रह्म=मैथुनपरित्यागलक्षण कुशलकर्म=शीलमित्यर्थः, 'उवसपज्जामि' उपसम्पद्ये=अङ्गीकुर्वे । एवम्-'अकल्प' 'अकल्पम्=सुमुक्षुभिरनाचरित 'कल्प' कल्पः=करण-चरणस्वरूप आचारस्तम्, 'अज्ञान' जीवादिवस्तुनो यथावस्थितस्वरूपानिर्णयलक्षणमज्ञानम्, 'नाण' ज्ञायते=परिच्छिद्यते वस्तुवनेनास्माद्वेति ज्ञानम्=वस्तुयथावत्स्वरूपक, यद्वा ज्ञातिर्ज्ञान=वस्तुयथावत्स्वरूपानुभवस्तत्, 'अकिरिय' अक्रियाम्, नवोऽत्र दुरर्थकत्वाद्दृष्टा क्रियामिति, यद्वा अपाशस्त्यार्थकोऽत्र नव, तेनाप्रशस्ता क्रिया नास्तिकवादस्वरूपामित्यर्थः, 'किरिय' क्रिया=सम्यग्व्यापारः, सम्यग्वादो वा ताम्, 'मिच्छत्त' मिथ्यात्व=तत्त्वार्थाश्रद्धान=विपर्यस्तश्रद्धानमित्यर्थः, तथा चोक्तम्-'मिच्छत्त जिणधम्म विवरीय' इति । 'सम्मत्त' सम्यक्त्व=सामान्यविशेषाभ्यां जिनप्रणीतजीवादिपदार्थसार्थस्य श्रद्धानम् । 'अवोहिं' अवोधिः=आत्मनो मिथ्यात्वपरिणामस्तम् । 'वोहिं' बोधिः=आत्मनः सकलदुःखक्षयनिदानजिनधर्मप्राप्तिस्तम्, 'अमग्ग' अमगग

निवृत्तिरूप सयम को स्वीकार करता हूँ, मैथुनरूप अकृत्य को छोड़ कर ब्रह्मचर्यरूप शुभ अनुष्ठान को स्वीकार करता हूँ, अकल्पनीय को छोड़ कर करणचरणरूप कल्प को स्वीकार करता हूँ, अज्ञान को त्याग कर ज्ञान को अङ्गीकार करता हूँ, नास्तिकवादरूप अक्रिया को छोड़कर आस्तिकवाद रूप क्रिया को ग्रहण करता हूँ, मिथ्यात्व को त्याग कर सम्यक्त्व को स्वीकार करता हूँ, आत्मा के मिथ्यात्व परिणामरूप अवोधि को छोड़ कर सकल दुःखनाशक जिनधर्मप्राप्तिरूप बोधि को ग्रहण करता हूँ और जिनमतसे विरुद्ध पार्श्वस्थ निहव तथा कुतीर्थि-सेवित अमार्ग

प्रत्ययार्थरूप शुभ अनुष्ठानको स्वीकार करे छु अकल्पनीयको छोड़ने करणचरणरूप कल्पको स्वीकार करे छु अज्ञानको छोड़ने ज्ञानको अङ्गीकार करे छु नास्तिकवादरूप अक्रियानो त्याग करीने आस्तिकवादरूप क्रियाने ग्रहण करे छु मिथ्यात्वको त्याग करीने सम्यक्त्वको स्वीकार करे छु आत्मानो मिथ्यात्वपरिणामरूप अवोधिने छोड़ने सकल दुःखको नाश करनार जिनधर्मनी प्राप्तिरूप बोधिने ग्रहण करे छु, अने जिनमतथी विरुद्ध पार्श्वस्थ निहव तथा कुतीर्थि-

વાહ્ય=પૃથિવ્યાદિરજઃ, આભ્યન્તર=વધ્યમાનકર્મસ્વરૂપ, કારણે કાર્યોપચારાત્, નન્નુ-રજોહરણસ્પર્શવશાદલ્પકાયાના કુન્થુ-મત્કુળ-પિપીલિકા-મશકાદીના જીવાના વિનાશસ્ય, યથેચ્છગમનમોજ્યાદિવ્યાઘાતસ્ય પ્રમૃટ્ટરજઃપ્રમૃતિભિઃ વદાચિત્ પિપીલિકાદિવિચરાદિસમુદ્રણાદિનોપઘાતસ્ય પ્રાયઃ પ્રત્યક્ષસિદ્ધત્વાદ્રજોહરણ સયમ-યોગાના ન કારણ પ્રત્યુતાડનર્થસ્ય, તસ્માન્ન ધાર્યમિતિ,

હજાર શીલાઙ્ગરથ કે ધારક તથા આઘાકર્મ આદિ ૪૨ દોષોં કો ટાલ કર આહાર લેને વાલે, ૪૭ દોષ ટાલ કર આહાર ભોગને વાલે, અખણ્ડ આચાર ચારિત્ર કો પાલને વાલે એસે સ્થવિરકલ્પી જિનકલ્પી મુનિરાજોં કો 'તિક્કલુતો' કે પાઠ સે વન્દના કરતા હૂં ।

ઘટ્ટા પર રજોહરણ ધારણ કરને કે વિષયમે કોઈ શક્કા કરતા હૈ કિ-રજોહરણ ધારણ કરના એક પ્રકાર કી હિંસા કા કારણ હૈ, ક્યોં કિ રજોહરણ કે સ્પર્શ સે કુન્થુ, પિપીલિકા આદિ છોટે ૨ જીવોં કે ઇચ્છાનુકૂલ ચલને ફિરને મેં વાઘા હો સકતી હૈ, ઓર ઇસકે દ્વારા એકત્રિત કી હુઈ ધૂલી આદિ સે પિપીલિકા આદિ કા વિચર (દર) ઢક જાને પર ઉનકા ઉપઘાત હોના પ્રાયઃ પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ હૈ, ઇસલિયે રજોહરણ સયમ યોગ કા કારણ નહીં હૈ પ્રત્યુત અનર્થ કા કારણ હૈ, અતઃ ઇસકા ધારણ કરના ઉચિત નહીં હૈ ।

૪૨ દોષોને ટાલી આહાર ગ્રહણ કરનારા, ૪૭ દોષ ટાલીને આહાર ભોગવવાવાળા, અખંડ આચાર ચારિત્ર પાલન કરવાવાળા એવા સ્થવિરકલ્પી જિનકલ્પી મુનિરાજોને તિષ્ણુતાના પાઠથી વદના કરે છું

અહીં રજોહરણ ધારણ કરવા વિષે કોઈ શકા કરે છે કે-રજોહરણ ધારણ કરવું એક પ્રકારની હિંસાનું કારણ છે કારણ કે રજોહરણના સ્પર્શથી કુચવા, ક્રીડી આદિ નાના નાના જીવોને સ્વર્ધઆપ્રમાણે હરવા-ફરવામા તકલીફ થઈ શકે છે અને એના વડે એકઠી કરેલી ધૂલ આદિથી ક્રીડી આદિના દર (રહેવાના દર) ઢકાઈ જવાથી તે જીવોને ઉપઘાત થઈ જવું પ્રાય પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ છે એટલા માટે રજોહરણ સયમ યોગોને સાધક નથી પરન્તુ અનર્થનું કારણ છે, માટે એને ધાન્ય કરવું ઉચિત નથી



नाशित प्रत्याख्यात च=पूर्वकृतस्याऽतिचारस्य निन्दया, भविष्यतोऽकरणेन च निराकृत पापकर्म=पापानुष्ठान येन स प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा, सयतश्चासौ विरतश्च सयतविरतः, ( विशेषणयोरपि परस्परविशेष्यविशेषणभावात्समासो गतप्रत्यागतादिवत्) सयतविरतश्चासौ प्रतिहतप्रत्याख्यातपापकर्मा चेति सयतविरतप्रतिह-  
प्रत्याख्यातपापकर्मा, पुनः कीदृशोऽहम् ? 'अणियाणो' अनिदानः=अकृतनिदानः, एतादृशो मिथ्यादृष्टिरपि सम्भवति तस्मादाह-'द्विद्विसपन्नो' दृष्टिसम्पन्नः=सम्यग्दर्शनसहितः, अतएव 'मायामोसविवर्जितो' मायामृपाविवर्जितः=मायामृपावादाभ्या रहितः, एव भूत्वा 'अद्वाइज्जेसु दीपसमुद्देशु' 'अद्भृतीयेषु द्वीप समुद्रेषु=जम्बूद्वीप-धातकीखण्ड-पुष्करार्द्ररूपेषु, 'पन्नरसकम्मभूमिसु' पञ्चदशसु कर्मभूमिषु=कर्म=कृपिवाणिज्यप्रभृति मोक्षानुष्ठान वा तत्प्रधाना भूमयः कर्मभूमयः भरतपञ्चकैरवतपञ्चक-महाविदेहपञ्चक-लक्षणास्तासु स्थिता इति शेषः, 'जावति' यावन्तः, 'केइ' केचित् 'रयहरणमुहपत्तियगोच्छगपडिग्गहधारा' रजः=बाह्याभ्यन्तर रजो द्वियते=अपनीयतेऽनेनेति, 'हरत्यपनयतीति वा रजोहरणम्, तत्र

लिये सवर करके सकल पापों से रहित), अतएव अतीत अनागत वर्तमान कालीन सब पापों से मुक्त, अनिदान-नियानारहित, सम्यग्दर्शनसहित तथा माया मृषा का त्यागी ऐसा मैं श्रमण, अठार द्वीप पन्द्रह क्षेत्र (कर्मभूमियों) में विचरनेवाले, रजोहरण पूजनी पात्र को धारण करने वाले और डोरासहित मुखवस्त्रिका को मुख पर बाधनेवाले, पाच महाव्रत के पालनहार और अठारह

पापोंकी निन्दा अने लविध्य काल भाटे सवर करीने सर्व पापधी रहित), अठार भाटे अतीत, अनागत अने वर्तमान कालना सर्व पापधी मुक्त, अनिदान-नियानारहित, सम्यग्दर्शन सहित तथा मायामृषानो त्यागी अवेदा हु श्रमण, अदी द्वीप समधी पहर क्षेत्र (कर्मभूमि) भा विचरवावाणा, रजोहरण पूजणी पात्रने धारण करवावाणा अने दोरासहित मुखवस्त्रिकाने मुख पर बाधवावाणा, पाच महाव्रतना पालनहार अने अठार ह्वार शीलानगरयना धारण करनार तथा आधाकर्म आदि

१-अर्द्धं तृतीय येषु तेऽद्भृतीयास्तेषु ।

२-अर्थमात्रप्रदर्शनमिदं, व्युत्पत्तिस्तु 'रजसो हरण'-मित्येवेति प्रसवता सूक्ष्मेक्षिका ।

वाह्य=पृथिव्यादिरजः, आभ्यन्तर=वध्यमानकर्मस्वरूप, कारणे कार्योपचारात्, ननु-रजोहरणस्पर्शवशादल्पकायाना कुन्थु मत्कुण पिपीलिका मशकादीना जीवाना विनाशस्य, यथेच्छगमनभोज्यादिव्याघातस्य प्रमृष्टरजःप्रभृतिभिः कदाचित् पिपीलिकादिविवरादिसमुद्रणादिनोपघातस्य प्रायः प्रत्यक्षसिद्धत्वाद्रजोहरण समययोगाना न कारण प्रत्युताऽनर्थस्य, तस्मान्न धार्यमिति,

हजार शीलाङ्गरथ के धारक तथा आधाकर्म आदि ४२ दोषों को टाल कर आहार लेने वाले, ४७ दोष टाल कर आहार भोगने वाले, अखण्ड आचार चारित्र्य को पालने वाले ऐसे स्थविरकल्पी जिनकल्पी मुनिराजों को 'तिक्खुत्तो' के पाठ से वन्दना करता हूँ।

यहा पर रजोहरण धारण करने के विषयमें कोई शङ्का करता है कि-रजोहरण धारण करना एक प्रकार की हिंसा का कारण है, क्यों कि रजोहरण के स्पर्श से कुन्थु, पिपीलिका आदि छोटे २ जीवों के इच्छानुकूल चलने फिरने में बाधा हो सकती है, और इसके द्वारा एकत्रित की हुई धूली आदि से पिपीलिका आदि का विचर (दर) ढक जाने पर उनका उपघात होना प्रायः प्रत्यक्ष सिद्ध है, इसलिये रजोहरण समय योग का कारण नहीं है प्रत्युत अनर्थ का कारण है, अतः इसका धारण करना उचित नहीं है।

४२ दोषोंने टाली आहार अहण्ड करवाना, ४७ दोष टालीने आहार लोगववावाणा, अभड आचार चारित्र्य पालन करवावाणा अवा स्थविरकल्पी जिनकल्पी मुनिराजोंने तिक्खुत्ताना पाठथी वदना करे छु

अर्ही रजोहरण धारण करवा विषे डोअं शका करे छे हे-रजोहरण धारण करवुं अेक प्रकारनी हिंसानुं करणु छे करणु के रजोहरणुना स्पर्शथी कुथवा, डीडी आदि नाना नाना एवोंने स्वधंअप्रभाणुं डरवा-डरवाभा तकलीइ थथं शके छे अने अेना वडे अेकडी करेली धूल आदिथी डीडी आदिना दर (रडेवाना दर) ढकाअं जवाथी ते एवोंने उपघात थथं जवु प्राय प्रत्यक्ष सिद्ध छे अेटला भाटे रजोहरण समय योगोंने साधक नहीं परन्तु अनर्थनुं करणु छे, भाटे अेने धाणुं दरवु उचित नहीं

अत्रोच्यते-अपरिज्ञातरजोहरणग्रहणाऽऽशयत्वाद्भ्रान्तोऽसि, येन नेत्रे  
ऽङ्गुलिदानतो द्विचन्द्रादिप्रतिभानन्दजोहरणधारणस्याऽन्यथात्वमित्थमाशङ्कसे, हन्त  
विकृताङ्ग ! नासौ त्वत्पक्षः क्षोदक्षेमक्षमः, नहि वय धृतरजोहरणा यूयमिव  
गजनिमीलिकया सञ्चरामः पर्यटामोऽयक्षा त्रिचिद्वचवहरामो, येन रजोहरण  
स्पर्शादिना जीवहेश्लेशोऽपि समुत्पद्येत, चक्षुषा समीक्ष्य कुन्धुपिपीलिकादीना  
मनुपलम्भे सति उपलम्भेऽपि वा तद्रक्षणसक्षणतयैव तत्राऽप्यतिकोमलोर्णादिरचितेन  
रजोहरणेन प्रमार्ज्म इति कथमुपघातादिसम्भवः ? न ह्यपथ्याशिनोऽपरिपाकादि-  
कायदोषमद्भावात्पथ्याशन केनापि सद्विवेकजुषा विदुषा परिहीयते, जीवाद्यव-

इस शका (प्रश्न) का उत्तर देते हैं-अरे भ्राता ! रजोहरण  
धारण करने के आशय से अनभिज्ञ होने के कारण आप भ्रान्त  
हैं। इस कारण आपका पक्ष तर्क की कसौटी पर खरा (बराबर)  
नहीं उतरता, क्यों कि बाह्य-पृथ्वी आदि रज और आभ्यन्तर-  
बाधे हुए कर्मरूपी रज जिससे दूर किया जाय उसे रजोहरण  
कहते हैं। उस सुकोमल रजोहरण द्वारा हम उपयोग-सहित  
यत्नायुक्त प्रमार्जन करते हैं, इसलिये प्रमार्जन (पूजने) से जीवो-  
पघात होने की सम्भावना नहीं हो सकती।

यदि किसी को अपथ्य भोजन से अजीर्ण होजाय तो क्या  
पथ्याहारी लोग पथ्य भोजन करना छोड़ देंगे ! कदापि नहीं। इसी  
प्रकार यदि कदाचित् असयमी द्वारा प्रमार्जन करते जीवोपघात

आ शकानो उत्तर आये छे डे-अरे भ्राता ! रजोहरण धारण धरवाना  
आशयथी अनभिज्ञ होवाना कारणे त् भ्रान्त छे तेथी तमादा पक्ष तर्कनी कसौटी  
उपर परेशापर नथी उतरता, डेम डे बाह्य-पृथ्वी आदि रज अने आभ्यन्तर-बाधेला  
कर्मरूपी रज जेनाथी हर करी शकय तेने रजोहरण कडे छे ते सुकोमल रजोहरण  
द्वारा उपयोग सहित यत्नायुक्त प्रमार्जन करीये छीये, ये कारणे प्रमार्जन  
(पूजना)थी एवोपघातक थवानी सम्भावना नथी

ले कदाचित् कौछेने अपथ्य आहारथी अलुछुं यध नय तो शु पथ्य आहार  
करवावाणा भाषुं भाषुं छोडी देये। न न छोडे येन रीते ले कदाचित्  
असयमी द्वारा धाता एवोपघात यध नय तो शु सयमी रजोहरणने

लोकनपूर्वकेऽपि प्रमार्जने त्वत्कल्पितेन सम्भावितोपघातेन तु त्रय नाऽपरा-यामो, न वा शास्त्रसिद्धान्तगन्धोऽपि तथा, यतो रजोहरणधारणतत्प्रमार्जनादिकमस्माभिर्जन्तु-जातत्राणार्थमेव क्रियते नतूपघातधिया, अत एव व्यापिग्रस्ताना प्राणिनामुपकारार्थं चिकित्सता विज्ञेन विहिते चिकित्साप्रयोगे कदाचित्तेषा व्यापत्तौ सत्यामपि नासौ प्रायश्चित्तार्थश्चिकित्सकः । किञ्च यदि सम्मार्जनादिना कदाचित्सम्भावित दोषमपेक्ष्य रजोहरणग्रहणप्रतिषेधाऽऽग्रहग्रहिलोऽसि, तदा मन्ये त्वयाऽशन-पान-

हो जाय तो क्या सयमी रजोहरण का त्याग करदें ! कदापि नहीं ! क्यों कि सयमी द्वारा जीवोपघात होने की सम्भावनाही नहीं है । जीवों को देखकर यत्नापूर्वक प्रमार्जन करने पर भी तुमने जो कल्पना की उस सम्भावित जीवोपघात का अपराध हमें नहीं लग सकता, इस कारण तुम्हारी शङ्का जरा भी शास्त्रानुकूल नहीं है, क्यों कि जीवों की रक्षा के लिये ही सयमी रजोहरण धारण करते हैं एव उसके द्वारा प्रमार्जन करते हैं, उपघात के लिये नहीं । यदि उपकार की दृष्टि से रोगियों की चिकित्सा करने वाले वैद्य की चिकित्सा से किसी रोगी को किसी भी प्रकार की क्षति पहुच भी जाय तो भी वह वैद्य अपराधी नहीं हो सकता, क्यों कि वैद्य रोगी की हितबुद्धि से ही चिकित्सा करता है ।

इस पर भी यदि तुम रजोहरण धारण करने में आपत्ति समझते हो तो मैं मानता हूँ कि तुम्हें अशन, पान, भ्रमण,

त्याग करी दो । न व करे केभके सयमी द्वारा एवोपघात थवानी सम्भवनाव नथी एवोने जेता थका यत्नापूर्वक प्रमार्जन कर्या छता तमे जे कल्पना करी ते सम्भावित एवोपघातने अपराध अमने नथी लागी शकते, जे कारणे तमारी थका वराय शास्त्रानुकूल नथी, केभ के सयमी मुनि एवोनी रक्षा अर्थेव रणेहरण धारण करे छे तेमव तेना वडे प्रमार्जन करे छे, एवोपघात भाटे नही जे उपकारनी दृष्टिथी रोगिओनी चिकित्सा करवावाणा वैधनी चिकित्साथी केछ रोगीने केछ पणु नतनी हानि पड़ेथी पणु नथ तो पणु वैध अपराधी थथ शकते नथी, कारणु के वैध तो रोगीनी हितबुद्धिथीव चिकित्सा करवावाणे छे

ते छता जे तमे रणेहरण धारण करवावा आपत्ति मानथे तो मने मानवु

अत्रोच्यते-अपरिज्ञातरजोहरणग्रहणाऽऽशयत्वाद्भ्रान्तोऽसि, येन नेत्रे-  
ऽङ्गुलिदानतो द्विचन्द्रादिप्रतिभानवद्रजोहरणधारणस्याऽन्यथात्वमित्यमाशङ्कसे, इन्त  
विकृताङ्ग ! नासौ त्वत्पक्षः क्षोदक्षेमक्षमः, नहि वय धृतरजोहरणा यूयमिव  
गजनिमीलिकया सञ्चरामः पर्यटामोऽन्यद्वा रिञ्चिद्वयवहरामो, येन रजोहरण  
स्पर्शादिना जीवहेश्लेशोऽपि समुत्पद्येत, चक्षुषा समीक्ष्य कुन्युपिपीलिकादीना  
मनुपलम्भे सति उपलम्भेऽपि वा तद्रक्षणसक्षणतयैव तत्राऽप्यतिकोमलोर्णादिरचितेन  
रजोहरणेन प्रमाज्म इति कथमुपघातादिसम्भवः ? न ह्यपथ्याशिनोऽपरिपाकादि-  
कायदोषमद्भावात्पथ्याशन केनापि सद्दिवेकजुषा विटुषा परिहीयते, जीवाद्यव

इस शका (प्रश्न) का उत्तर देते हैं-अरे भ्राता ! रजोहरण  
धारण करने के आशय से अनभिज्ञ होने के कारण आप भ्रान्त  
हैं। इस कारण आपका पक्ष तर्क की कसौटी पर खरा (बराबर)  
नहीं उतरता, क्यों कि बाह्य-पृथ्वी आदि रज और आभ्यन्तर-  
बाधे हुए कर्मरूपी रज जिससे दूर किया जाय उसे रजोहरण  
कहते हैं। उस सुकोमल रजोहरण द्वारा हम उपयोग-सहित  
यत्नायुक्त प्रमार्जन करते हैं, इसलिये प्रमार्जन (पूजने) से जीवो-  
पघात होने की संभावना नहीं हो सकती।

यदि किसी को अपथ्य भोजन से अजीर्ण होजाय तो क्या  
पथ्याहारी लोग पथ्य भोजन करना छोड़ देंगे ! कदापि नहीं। इसी  
प्रकार यदि कदाचित् असयमी द्वारा प्रमार्जन करते जीवोपघात

आ शकानो उत्तर आपे छे डे-अरे भ्राता ! रजोहरण धारण करवाना  
आशयथी अनभिज्ञ होवाना कारणे तू भ्रान्त छे तेथी तमादे पक्ष तर्कनी कसौटी  
उपर अशाबर नहीं उतरतो, केम डे बाह्य-पृथ्वी आदि रज अने आभ्यन्तर-बाधेला  
कर्मरूपी रज नेनाथी हर करी शकय तेने रजोहरण कडे छे ते सुकोमल रजोहरण  
द्वारा उपयोग सहित यत्नायुक्त प्रमार्जन करीये छीये, ये कारणे प्रमार्जन  
(पूजना)थी एवोपघातक थवानी संभावना नहीं

जे कदाचित् ठाधने अपथ्य आहारथी अलुर्ण थध नय तो शु पथ्य आहार  
करवावाणा भाषुसे पथ्य पालु छोडी देसे ! न न छोडे येन रीते जे कदाचित्  
असयमी द्वारा प्रमार्जन थाता एवोपघात थध नय तो शु सयमी रजोहरणने

॥ छाया ॥

केऽपि भणन्ति मूढाः, समययोगाना कारण नैवम् ।

रजोहरणमिति प्रमार्जनादिभिरुपघातभावात् ॥ १ ॥

मूङ्गलिकादीना, विनाशसन्तानभोग्यविरहादयः ।

रजोदरिस्थगनससर्जनादिना भवत्युपघातः ॥ २ ॥

प्रत्युपेक्ष्य प्रमार्जन, -मुपघातः कथं नु तत्र भवेत् ।

अप्रमृज्य च दोषा वर्ज्या आदावागाढव्युत्सर्गे ॥ ३ ॥

आत्मपरपरित्यागो द्विधापि शास्त्रस्य (शासितुः) अकौशल नूनम् ।

ससर्जनादिदोषा देहे इव अविधिना नो भवन्ति ॥ ४ ॥

इत्यास्ता विस्तरः, प्रकृतमनुस्त्रियते-मुखवस्त्रिका-वायुकायादियतनार्थं मुखोपरि दवरकेण वन्नीयमष्टपुटमुपकरणम्, गुच्छकः=पात्रादिप्रमार्जनीविशेषः, पूजनी' इति भाषाप्रसिद्धः, प्रतिगृह्णाति=भक्तपानादिक स्वस्मिन्नाधत्त इति प्रतिग्रहः=भक्तपानादिपात्रम्, रजोहरणं च मुखवस्त्रिका च, गुच्छकश्च प्रतिग्रहश्चेति रजोहरणमुखवस्त्रिकागुच्छकप्रतिग्रहास्तान् धरन्ते ये ते रजोहरण-मुखवस्त्रिका-गुच्छक-प्रतिग्रहधारा १ । इत्थं २निहन्नादयोऽपि सभवन्तीति तदपाकरणार्थमाह- 'पचमहव्यधारा' पञ्चमहाव्रतानि=माणातिपाताऽनृतभाषणाऽदत्ताऽऽदाना-ऽब्रह्म-चर्यपरिग्रहव्युपरमलक्षणानि धरन्त इति पञ्चमहाव्रतधारा ३ । न केवलमेत एव किन्तूक्तगुणविशिष्टाः सन्तोऽपि-'अद्वारससहस्ससीलगधारा' अष्टादशसहस्र-शीलाङ्गधारा । अष्टादशशीलाङ्गसहस्राणि तु यथा-यो न करोति मनसाऽऽहार-सञ्ज्ञाविप्रयुत श्रोत्रेन्द्रियसवृत, क्षान्तिसम्पन्न, पृथिवीकायारम्भम् (१), एव-मष्कायारम्भम् (२), तेजस्कायारम्भम् (३), वायुकायारम्भम् (४), वनस्प-तिकायारम्भम् (५), द्वीन्द्रियारम्भम् (६), त्रीन्द्रियारम्भम् (७), चतुरिन्द्रिया-रम्भम् (८), पञ्चेन्द्रियारम्भम् (९), अजीवारम्भं च (१०) । एते क्षान्तिपदेन

१-' धारा.' कर्मण्यण् ।

२-निहनुवत इति निहन्वाः, पचादेराकृतिगणत्वात्कर्त्तर्यच्, यद्वा निहवः= अपलापोऽस्त्येषामिति निहन्वा, निहवशब्दादर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच्, सञ्ज्ञेय तान्त्रिकी ।

३-' धारा.' कर्मण्यण् ।

भ्रमण-भाषणो-त्यान-पार्श्वपरिवर्तन-मलमूत्रत्यागादिकाः क्रिया अपि परिहरणीया एव स्युः, त्वत्सम्भावितस्योक्तदोषस्य कदाचित्ताभ्योऽपि सद्भावनादिति कथं जीवसि ? कथं वा न निगृहीतोऽसीति ब्रूहि, तूष्णीं वाऽऽस्व, त्वत्पक्षे जीवदयास्वरूपमेव गगनकुसुमायत इति विभावय च । तस्मात्मुनीनां सयमनिर्वाहार्थं रजोहरणाद्युपकरणग्रहणं परमावश्यकमिति बोध्यम् ।

अत्र संक्षिप्तपूर्वोचरपक्षसङ्ग्रहगाथा अप्यन्यत्रोक्ता यथा—

‘केईं भणति मूढा, सजमजोगाण कारण नेव ।

रयहरणति पमज्जण,—माईहुवघायभावाओ ॥ १ ॥

मूइगलिआईण, विणाससनाणभोगविरहाई ।

रयदरिथगण—सस,—ज्जणाऽऽइणा होइ उवघाओ ॥ २ ॥

पडिलेहिउ पमज्जण,—मुवघाओ कहणु तत्थ होज्जाउ ? ।

अप्पमज्जिउ च दोमा, वज्जाऽऽदागाढवोसिरणे ॥ ३ ॥

आयपरपरिच्चाओ, दुहावि सत्थस्सऽकोसल नूण ।

ससज्जणाइदोसा, देहेन्वऽविहीए णो हुति ॥ ४ ॥

भाषण, उत्थान (उठना), शयन, पार्श्वपरिवर्तन (करवट बदलना) और मल-मूत्र-परित्याग आदि क्रियाओं को भी छोड़ना होगा, क्योंकि तुम्हारे द्वारा कथित दोष इन क्रियाओं में भी आसकता है तो फिर बताओ कि जीवित ही कैसे रह सकोगे ? तुम्हारे कथनमें जीवदया का स्वरूप आकाशकुसुम के समान हो जायगा, यह भी सोचो । इसलिये ‘किसी भी जीवको किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचने पावे’ इसी हेतु मुनियोंको रजोहरण आदि उपकरण धारण करना समयनिर्वाह के लिये अत्यन्त आवश्यक है !

प३शे के तमोने अशन, पान, भ्रमण, भाषण, उत्थान (उठवु), शयन, पार्श्वपरिवर्तन (प३शु इरववु) अने मलमूत्र परित्याग आदि क्रियाओने छोडी देवी प३शे क३रवु के तमारा तरइथी कथित (कडेव) होव अे सर्व क्रियाओमा पवु आवी शके छे, तो पछी कडेा के एवितन कथं रीते रही शकथे ! तमारा कथनमा एवदयानु स्वइय आकाश-कुसुम समान थथ जये आ माटे ‘कोधपवु एवने कोअ प्रकारनु कष्ट न पडेाये’ अ छेतुथी मुनियोने रनेइरवु आदि उपकरण धारण करवु समयनिर्वाह अर्थे अत्यंत आवश्यक छे

॥ छाया ॥

केऽपि भणन्ति मूढाः, समययोगाना कारण नैवम् ।  
 रजोहरणमिति प्रमार्जनादिभिरुपघातभावात् ॥ १ ॥  
 मूङ्गलिकादीना, विनाशसन्तानभोग्यविरहादयः ।  
 रजोदरिस्थगनससर्जनादिना भवत्युपघातः ॥ २ ॥  
 प्रत्युपेक्ष्य प्रमार्जन, -मुपघातः कथं नु तत्र भवेत् ।  
 अप्रमृज्य च दोषा वर्ज्या आदावागाहव्युत्सर्गे ॥ ३ ॥  
 आत्मपरपरित्यागो द्विधापि शास्त्रस्य (शासितुः) अकौशल नूनम् ।  
 ससर्जनादिदोषा देहे इव अविधिना नो भवन्ति ॥ ४ ॥

इत्यास्ता विस्तरः, प्रकृतमनुस्त्रियते-मुखवस्त्रिका-वायुकायादियतनार्थं  
 मुखोपरि दवरकेण चन्दनीयमष्टपुटमुपकरणम्, गुच्छकः=पात्रादिप्रमार्जनीविशेषः,  
 पूजनी' इति भाषाप्रसिद्धः, प्रतिगृह्णाति=भक्तपानादिक स्वस्मिन्नाद्यत्त इति  
 प्रतिग्रहः=भक्तपानादिपात्रम्, रजोहरणं च मुखवस्त्रिका च, गुच्छकश्च प्रतिग्रहश्चेति  
 रजोहरणमुखवस्त्रिकागुच्छकरुप्रतिग्रहास्तान् धरन्ते ये ते रजोहरण-मुखवस्त्रिका-  
 गुच्छक-प्रतिग्रहधारा १ । इत्थं २निह्वाद्योऽपि सभवन्तीति तदपाकरणार्थमाह-  
 'पचमहव्यधारा' पञ्चमहाव्रतानि=पाणातिपाताऽनृतभाषणाऽदत्ताऽऽदाना-ऽब्रह्म-  
 चर्यपरिग्रहव्युपरमलक्षणानि धरन्त इति पञ्चमहाव्रतधारा ३ । न केवलमेत एव  
 किन्तुक्तगुणविशिष्टा. सन्तोऽपि-' अद्वारससहस्रसीलधारा ' अष्टादशसहस्र-  
 शीलाङ्गधारा । अष्टादशशीलाङ्गसहस्राणि तु यथा-यो न करोति मनसाऽऽहार-  
 सञ्ज्ञाविप्रयुत श्रोत्रेन्द्रियसञ्चत क्षान्तिसम्पन्न. पृथिवीमायारम्भम् (१), एव-  
 मप्कायारम्भम् (२), तेजस्कायारम्भम् (३), वायुकायारम्भम् (४), वनस्प-  
 तिकायारम्भम् (५), द्वीन्द्रियारम्भम् (६), त्रीन्द्रियारम्भम् (७), चतुरिन्द्रिया-  
 रम्भम् (८), पञ्चेन्द्रियारम्भम् (९), अजीवारम्भं च (१०) । एते क्षान्तिपदेन

१-' धाराः' कर्मण्यण् ।

२-निहनुवत इति निह्वाः, पचादेराकृतिगणत्वात्कर्त्तर्यच्, यद्वा निह्व.=  
 अपलापोऽस्त्येपामिति निह्वा., निह्वशब्दादर्श आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच्,  
 सञ्ज्ञेय तान्त्रिकी ।

३-' धारा.' कर्मण्यण् ।



भ्रमण-भाषणो-स्थान-पार्श्वपरिवर्तन-मलमूत्रत्यागादिका. क्रिया अपि परिहरणीया एव स्युः, त्वत्सम्भावितस्योक्तदोषस्य कदाचित्ताभ्योऽपि सद्भावादिति कथं जीवति ? कथं वा न निगृहीतोऽसीति बृद्धि, तूष्णीं वाऽऽस्व, त्वत्पक्षे जीवदयास्वरूपमेव गगनकुसुमायत इति विभावय च । तस्मात्तुनीना समयनिर्वाहार्थं रजोहरणाद्युपकरणग्रहण परमावश्यकमिति बोध्यम् ।

अत्र सक्षिप्तपूर्वोत्तरपक्षसङ्ग्रहगाथा अप्यन्यत्रोक्ता यथा—

‘केई भणति मूढा, सजमजोगाण कारण नेव ।

रयहरणति पमज्जण,—माईहुवघायभावाओ ॥ १ ॥

मूङ्गलिआईण, विणाससताणभोगविरहाई ।

रयदरिथगण—सस,—ज्जणाऽऽइणा होइ उवघाओ ॥ २ ॥

पडिलेहिउ पमज्जण,—मुवघाओ कहणु तत्थ होज्जाउ ? ।

अप्पमज्जिउ च दोमा, वज्जाऽऽदागाढवोसिरणे ॥ ३ ॥

आयपरपरिच्चाओ, दुहावि सत्थस्सऽकोसल नूण ।

ससज्जणाइदोसा, देहेव्वऽविहीए णो हुति ॥ ४ ॥

भाषण, उत्थान (उठना), शयन, पार्श्वपरिवर्तन (करवट बदलना) और मल-मूत्र-परित्याग आदि क्रियाओं को भी छोड़ना होगा, क्योंकि तुम्हारे द्वारा कथित दोष इन क्रियाओं में भी आसकता है तो फिर बताओ कि जीवित ही कैसे रह सकोगे ? तुम्हारे कथनमें जीवदया का स्वरूप आकाशकुसुम के समान हो जायगा, यह भी सोचो । इसलिये ‘किसी भी जीवको किसी प्रकारका कष्ट न पहुँचने पावे’ इसी हेतु मुनियोंको रजोहरण आदि उपकरण धारण करना समयनिर्वाह के लिये अत्यन्त आवश्यक है !

पक्षे के तमोने अशन, पान, भ्रमण, भाषण, उत्थान (उठवु), शयन, पार्श्वपरिवर्तन (पडणु इरेवणु) अने मलमूत्र परित्याग आदि क्रियाओने छोडी देवी पक्षे कारण के तमारा तरुथी कथित (कडेल) दोष अे सर्व क्रियाओभा पणु आवी शके छे, तो पक्षी कडे के अवितन कथं रीते रही शकथे ! तमारा कथनभा एवदयानु स्वइप आकाश-कुसुम समान थथ नथे आ माटे ‘कौपणु एवने कौपं प्रकारनु कष्ट न पडोथे’ अ उतुथी मुनियोने रनेहरणु आदि उपकरणु धारणु करणु समयनिर्वाह अर्थे अत्यत आवश्यक छे

अतएव, 'अक्खयाचारचरित्ता' आचारः=आधार्कमादिदोषपरित्यागः, चारित्र=सामायिकादि, आचारश्च चारित्र चेत्याचारचारित्रे, अक्षते=अखण्डिते आचारचारित्रे येषां ते-अक्षताऽऽचारचारित्राः देशतः सर्वतथाऽविच्छ्रिताऽऽचार-चारित्रा इत्यर्थः । सम्प्रत्युपसञ्जिहीर्षयाऽऽह- 'ते सव्वे' तान् सर्वान्=गण्डगतांस्तन्निर्गतांश्च जिनकल्पिकादीन् साधून् 'सिरसा' शिरसा=रुशिरःसयोगेनेति भावः, अग्रे 'मत्थएण' (मस्तकेन) इत्यस्योपादानात्, 'मणसा' मनसा=हृदयेन, 'मत्थएण' मस्तकेन=शिरसा नतेनेति शेषः, अतएव 'सिरसा' 'मत्थएण' इत्यनयोः पर्यायत्वेऽपि न पौनरुक्त्यम्, यत्तु पौनरुक्त्यभयाद्बहुलिकाप्रवाहेण वा 'मत्थएण वदामि' इति वाचा वदेदिति व्याख्यानं तदत्यन्ताऽसामञ्ज-स्यात्सूत्राक्षराभिप्रायापरिज्ञानाद्वा चिद्वदश्रद्धेयमेवेति सहृदयाः प्रमाणम् । न च 'सिरसा' इत्यनेन कायिकस्य 'मणसा' इत्यनेन मानसिकस्य च वन्दनस्योक्तौ वाचिकस्यापि तस्योपादानमावश्यकमेवेति युक्तमेवेति वाच्यम्, 'तान् सर्वान् शिरसा मनसा मस्तकेन वन्दे' इत्युक्तौ वाचिकवन्दनम्याऽर्थोपत्तिलभ्यत्वात्, नहि वाक्प्रयोग विनैवमुक्तिः 'समस्तीत्यास्ता तावत् । इत्थं सर्वसाधून् भिन्नानि निखिलप्राणिजातक्षमापणपूर्वकं मैत्रीमभिव्यनक्ति- 'सव्वं' इति 'सव्वजीवे' सर्वे च ते जीवाः सर्वजीवास्तान्=क्षुद्रक्षुद्रेतराखिलप्राणिनः, 'खामेमि' क्षमयामि=सर्वेभ्यो जीवेभ्यः क्षमामभिकाङ्क्षामीत्यर्थः, 'सव्वे जीवा' सर्वे जीवाः 'मे' मम अज्ञानादिवशाज्जातमपराधमिति शेषः 'खमतु' क्षमेरन् । 'मे' मम, 'सव्वभूएसु' सर्वभूतेषु, 'मिची' मैत्री=मित्रभावः अस्तीत्यध्याह्रियते, 'यत्र

इस प्रकार सन्त मुनिराजों को वन्दना करके समस्त जीवों की क्षमापनापूर्वकं मित्रभावना प्रकट करते हैं—'मै सब जीवों से अपने अपराध की क्षमा मागता हूँ और वे सभी मेरे अपराध की

ये प्रमाणे सन्त मुनिराजने वदना करीने समस्त जीवोनी क्षमापनापूर्वकं मित्रभावना प्रकट करे छे 'हु सर्व जीवो पासे मारा अपराधनी क्षमा माशु छु, अने

जाता दश । एव मुक्ति (निलोभता) पदेन (१०), आर्जवेन (१०), मार्दवेन (१०), लाघवेन (१०), सत्येन (१०), सयमेन (१०), तपसा (१०), त्यागेन (१०), ब्रह्मचर्येण च (१०); जाताः सर्वे श्रोत्रेन्द्रियपदेन शतमेरुम् (१००) । एव चक्षुषा (१००), घ्राणेन (१००), रसनया (१००), स्पर्शेन च (१००), जाताः सर्वे आहारसञ्ज्ञापदेन शतानि पञ्च (५००) । एव भयसञ्ज्ञापदेन (५००), मैथुनसञ्ज्ञापदेन (५००), परिग्रहसञ्ज्ञापदेन च (५००) । जाताः सर्वे 'न करोति' पदेन सहस्रद्वयम् (२०००), ए 'न कारयति' पदेन (२०००), 'नानुजानाति' पदेन (२०००), जाताः सर्वे: 'मनसा' पदेन षट् सहस्राणि (६०००) । एव वचसा (६०००), कायेन च (६०००), जाताः सर्वेऽष्टादश सहस्राणि शीलाङ्गानि, तानि धरन्ते इत्यष्टादशशीलाङ्गसहस्रधारा इति । उक्त च—  
 जोए<sup>१</sup> करणे सण्णा, इदिय भोम्माइ समणधम्मे य ।  
 अण्णोण्णेहिं अब्भत्था, अट्ठारह सीलसहस्साइ ॥ १ ॥

<sup>३</sup> छाया—योगाः करणानि सज्ञा इन्द्रियाणि भूम्यादयः श्रमणधर्माश्च ।

अन्योन्यैरभ्यस्ता अष्टादशशीलसहस्राणि ॥ १ ॥

अठारह हजार शीलाङ्गरथ ये हैं—१-पृथ्वीकाय आरम्भ, २-अपकाय आरम्भ, ३-तेजस्काय आरम्भ, ४-वायुकाय आरम्भ, ५-वनस्पतिकाय आरम्भ, ६-बेन्द्रिय आरम्भ, ७-तेन्द्रिय आरम्भ, ८-चतुरिन्द्रिय आरम्भ, ९-पचेन्द्रिय आरम्भ, १०-अजीव आरम्भ, ये १० भेद क्षान्ति के हुए, इसी प्रकार मुक्ति के (१०), आर्जव के (१०), मार्दव के (१०), लाघव के (१०), सत्य के (१०), सयम के (१०), तप के (१०), त्याग के (१०), ब्रह्मचर्य के (१०), ये सब श्रोत्रेन्द्रिय के १०० भेद हुए, इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय के १००, घ्राणेन्द्रिय के १००, रसेन्द्रिय के १००, स्पर्शेन्द्रिय के १००, ये सब आहार सज्ञा के ५०० भेद हुए, इसी प्रकार भयसज्ञा के ५००, मैथुनसज्ञा के ५००, और परिग्रहसज्ञा के ५०० हुए, इस प्रकार सब २००० भेद हुए, इन्हें न करने, न कराने और न अनुमोदन करने के द्वारा तिगुना करने पर ६००० भेद हुए, इन्हें फिर मन, वचन, काया से तिगुना करने पर १८००० होते हैं ।

अतएव, 'अखयाचारचरित्ता' आचारः=आधारमादिदोषपरित्यागः, चारित्र्य=सामायिकादि, आचारश्च चारित्र्य चेत्याचारचारित्र्ये, अक्षते=अखण्डिते आचारचारित्र्ये येषां ते-अक्षताऽऽचारचारित्र्याः देशतः सर्वतश्चाऽविप्लुताऽऽचार-चारित्र्या इत्यर्थः । सम्प्रत्युपसञ्जिहीर्षयाऽऽह- 'ते सव्वे' तान् सर्वान्=गच्छगताँ-स्तन्निर्गतौश्च जिनरुत्पिक्कादीन् साधून् 'सिरसा' शिरसा=करशिरःसयोगेनेति भावः, अग्रे 'मत्थएण' (मस्तकेन) इत्यस्योपादानात्, 'मणसा' मनसा=हृदयेन, 'मत्थएण' मस्तकेन=शिरसा नतेनेति शेषः, अतएव 'सिरसा' 'मत्थ-एण' इत्यनयोः पर्यायत्वेऽपि न पौनरुक्त्यम्, यत्तु पौनरुक्त्यभयाद्गुलिकाप्रवा-हेण वा 'मत्थएण वदामि' इति वाचा वदेदिति व्याख्यानं तदत्यन्ताऽसामञ्ज-स्यात्सूत्राक्षराभिप्रायापरिज्ञानाद्वा विद्वदश्रद्धेयमेवेति सहृदयाः प्रमाणम् । न च- 'सिरसा' इत्यनेन कायिकस्य 'मणसा' इत्यनेन मानसिकस्य च वन्दनस्योक्तौ वाचिकस्यापि तस्योपादानमावश्यकमेवेति युक्तमेवेति वाच्यम्, 'तान् सर्वान् शिरसा मनसा मस्तकेन वन्दे' इत्युक्तौ वाचिकवन्दनस्याऽर्थापत्तिलभ्यत्वात्, नहि वाक्प्रयोगं विनैवमुक्तिः 'समस्तीत्यास्ता तावत् । इत्थं सर्वसाधून् भिन्नानि निखिल-प्रमाणजातक्षमापणपूर्वकं मैत्रीमभिव्यनक्ति- 'सव्वं' इति 'सव्वजीवे' सर्वे च ते जीवाः सर्वजीवास्तान्=सुदुद्रुद्रेतराखिलप्रणिनः, 'खामेमि' क्षमयामि=सर्वेभ्यो जीवेभ्यः क्षमामभिनाहृक्षामीत्यर्थः, 'सव्वे जीवा' सर्वे जीवाः 'मे' मम अज्ञानादिवशाज्जातमपराधमितिशेष 'खमतु' क्षमेरन् । 'मे' मम, 'सव्वभूएसु' सर्वभूतेषु, 'मिची' मैत्री=मित्रभावः अस्तीत्यध्याह्रियते, 'यत्र

इस प्रकार सन्त मुनिराजों को वन्दना करके समस्त जीवों की क्षमापनापूर्वक मित्रभावना प्रकट करते हैं—'मै सब जीवों से अपने अपराध की क्षमा मागता हूँ और वे सभी मेरे अपराध की

ये प्रमाणे सन्त मुनिराजनेने वदना करीने समस्त एवोनी क्षमापनापूर्वक मित्रभावना प्रकट करे छे 'हु सर्व एवो पासे मास अपराधनी क्षमा माशु छु, अने

जाता दश । एव मुक्ति (निलोभता) पदेन (१०), आर्जवेन (१०), मार्दवेन (१०), लाघवेन (१०), सत्येन (१०), सयमेन (१०), तपसा (१०), त्यागेन (१०), ब्रह्मचर्येण च (१०); जाताः सर्वे श्रोत्रेन्द्रियपदेन गतमेरुम् (१००) । एव चक्षुषा (१००), घ्राणेन (१००), रसनया (१००), स्पर्शेन च (१००), जाताः सर्वे आहारसञ्ज्ञापदेन शतानि पञ्च (५००) । एव भयसञ्ज्ञापदेन (५००), मैथुनसञ्ज्ञापदेन (५००), परिग्रहसञ्ज्ञापदेन च (५००) । जाताः सर्वे 'न करोति' पदेन सहस्रद्वयम् (२०००), ए 'न कारयति' पदेन (२०००), 'नानुजानाति' पदेन (२०००), जाताः सर्वे: 'मनसा' पदेन पद सहस्राणि (६०००) । एव वचसा (६०००), कायेन च (६०००), जाताः सर्वेऽष्टादश सहस्राणि शीलाङ्गानि, तानि धरन्ते इत्यष्टादशशीलाङ्गसहस्रधारा इति । उक्त च—  
जोए<sup>१</sup> करणे सण्णा, इदिय भोम्माइ समणधम्मो य ।  
अण्णोण्णेहिं अब्भत्था, अट्टारह सीलसहस्साइ ॥ १ ॥

<sup>३</sup> छाया—योगाः करणानि सज्ञा इन्द्रियाणि भूम्यादयः श्रमणधर्माश्च ।

अन्योन्यैरभ्यस्ता अष्टादशशीलसहस्राणि ॥ १ ॥

अठारह हजार शीलाङ्गरथ ये हैं—१-पृथ्वीकाय आरम्भ, २-अपकाय आरम्भ, ३-तेजस्काय आरम्भ, ४-वायुकाय आरम्भ, ५-वनस्पतिकाय आरम्भ, ६-बेन्द्रिय आरम्भ, ७-तेन्द्रिय आरम्भ, ८-चतुरिन्द्रिय आरम्भ, ९-पचेन्द्रिय आरम्भ, १०-अजीव आरम्भ, ये १० भेद क्षान्ति के हुए, इसी प्रकार मुक्ति के (१०), आर्जव के (१०), मार्दव के (१०), लाघव के (१०), सत्य के (१०), सयम के (१०), तप के (१०), त्याग के (१०), ब्रह्मचर्य के (१०), ये सब श्रोत्रेन्द्रिय के १०० भेद हुए, इसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय के १००, घ्राणेन्द्रिय के १००, रसेन्द्रिय के १००, स्पर्शेन्द्रिय के १००, ये सब आहार सज्ञा के ५०० भेद हुए, इसी प्रकार भयसज्ञा के ५००, मैथुनसज्ञा के ५००, और परिग्रहसज्ञा के ५०० हुए, इस प्रकार सब २००० भेद हुए, इन्हें न करने, न कराने और न अनुमोदन करने के द्वारा तिगुना करने पर ६००० भेद हुए, इन्हें फिर मन, वचन, काया से तिगुना करने पर १८००० होते हैं ।

चतुर्विंशतिसख्यकान् 'जिणे' जिनान् रागद्वेषादिकर्मशत्रुजेतून् 'वन्दे' वन्दे= स्तौम्यभिवादादये च। चतुर्विंशतिजिनवन्दनयाऽ ययनसमापनमङ्गलार्थम् ॥ सू० २२ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्बलभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-ललितललित-  
कलापाऽऽलापरु-प्रविशुद्धगन्धपत्रनैकग्रन्थनिर्मापरु-वादिमानमर्दक-श्रीशाहू-  
उत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित-कोल्हापुर-  
राजगुरु-वालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-  
घासीलाल-व्रतिविरचिताया श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनि-  
तोषण्याख्याया व्याख्याया चतुर्थे  
प्रतिक्रमणाख्यमध्ययन समाप्तम् ॥ ५ ॥

इत्यादि रूप) करके तीन करण और तीन योग से निर्मल बना हुआ मैं चौबीसों जिनेश्वरों को नमस्कार करता हूँ ॥ ॥ सू० २२ ॥

॥ इति चतुर्थे अध्ययन सम्पूर्ण ॥

अने त्रणु योगथी निर्मल अनेदो हु चौबीस जिनेश्वराने नमस्कार करे छु (सू० २२)

इति चोथु अध्ययन स पूरु



काचन क्रिया नास्ति तत्रास्तिर्भवन्तीपरः प्रयोक्तव्य—इति वैयाकरणसिद्धान्तात् । 'केणवि' केनापि सह, सहार्थे तृतीया, ननु सहशब्दस्य तदर्थकशब्दान्तरस्य वा प्रयोगाभावेन कथं सहार्थे तृतीयेति चेन्मैत्रम्, 'पृथग्विनानानामिस्त्वृतीयाऽन्यतरस्या'—मित्यादात्रिव 'सहेनाऽप्रधाने' इतिन्यासेनैव योगार्थलाभे सिद्धे 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इत्यत्र युक्तग्रहण 'सहशब्दाभावेऽपि तदर्थमात्रसत्त्वेऽपि तृतीये'—ति बोधनार्थम्, अत एव 'वृद्धो यूने'—त्यादयो निर्देशा अपि सगच्छन्ते, एतेन 'वीरो श्चुभ्यति कर्मभिः' इत्यादिषु तृतीया कथमिति प्रत्युक्तमित्यलमिहातिप्रसङ्गेन, 'मञ्ज' मम, 'वेर' वैर=विरोधः, 'न' नहि अस्तीतीहापि पूर्ववदध्याहृत ज्ञेयम् । उक्तः क्षमापणापूर्वको मैत्रीभावः, सम्प्रति मङ्गलमयमुपसहारमाह—'एवमह' एवम्=उक्तैः प्रकारैः अहमित्यात्मनिर्देशे, 'सम्म' सम्यक्=यथावत् सम्यगित्यस्य सर्वैः क्तान्तैः सह सम्बन्धः, 'आलोइय' आलोच्य=आलोचनाविषयीकृत्य, 'निन्दिय' निन्दित्वा=स्वसाक्षिक सम्यग्विनिन्द्य, 'गरहिय' गर्हित्वा=गुरुसाक्षिक सम्यग्विनिन्द्य, 'दुगुछिय' जुगुप्सित्वा='धिङ्मा पापकर मूढधिय' मित्यादिभर्त्सनापूर्वक निन्दित्वा, 'तिविहेण' त्रयो विधाः=प्रकारा यस्य स त्रिविधस्तेन=त्रिप्रकारेण वाङ्-मन'-काय-लक्षणेन कृत-कारिता-ऽनुमोदित-लक्षणेन चेत्यथ । 'पडिकतो' प्रतिक्रान्तः=क्षालिताखिलातिचारमलतया परमशुचित्वमाप्त, 'चउञ्चीस' चतुर्विंशतिम्=

क्षमा करे, क्यो कि सब जीवों के साथ मेरा मित्रभाव है, किसी के भी साथ वैरभाव नहीं है । इस तरह विधिपूर्वक आलोचना, निन्दा, गर्हा और जुगुप्सा (पापकारी मुझ मूढात्मा को धिक्कार है

ते सर्व लुपो भारा अपराधनी क्षमा करे, कारुषु के सर्व लुपो साथे भारे मित्रभाव छे, केधनी साथे भारे वैरभाव नहीं छे प्रभावे विधिपूर्वक आवेय्यता, निन्दा, गर्हा अने जुगुप्सा (पापकारी भारा मूढात्माने धिक्कार छे धत्यादि इय) करीने त्रयु करुषु

२-भवन्तीपरः=लट्परः भवन्तीति लट् सज्ञा पूर्वाचार्याणाम् ।

३-युध धातोरात्मनेपदित्वाशुभ्यतीति युधमिच्छतीति क्यजिति सिद्धा तर्कामुदी ।

चतुर्विंशतिसख्यकान् 'जिणे' जिनान् रागद्वेषादिकर्मशत्रुजेतृन् 'वन्दे' वन्दे= स्तौम्यभिवाद्ये च । चतुर्विंशतिजिनवन्दनयाऽ ययनसमापनमङ्गलार्थम् ॥ सू० २२ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचरु-पञ्चदशभाषाफलितललित-  
कलापाऽऽलापरु-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापरु-वादिमानमर्दक-श्रीशाहू-  
उत्तपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित-कोल्हापुर-  
राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-  
घासीलाल-व्रतिविरचिताया श्रीश्रमणमूत्रस्य मुनि-  
तोपण्याख्याया व्याख्याया चतुर्थे  
प्रतिक्रमणाख्यमध्ययन समाप्तम् ॥ ५ ॥

इत्यादि रूप) करके तीन करण और तीन योग से निर्मल बना हुआ मैं चौबीसों जिनेश्वरों को नमस्कार करता हूँ ॥ ॥ सू० २२ ॥

॥ इति चतुर्थ अध्ययन सम्पूर्णं ॥

अने त्रुणु योगथी निर्मल णनेदो हु चौबीस जिनेश्वराने नमस्कार करे छु (सू० २२)

इति चोथु अध्ययन स पूर्णं



काचन क्रिया नास्ति तत्रास्तिर्भवन्तीपरः प्रयोक्तव्य—इति वैयाकरणसिद्धान्तात् । 'केणवि' केनापि सद्, सद्दार्थे तृतीया, ननु सहशब्दस्य तदर्थकशब्दान्तरस्य वा प्रयोगाभावेन कथं सद्दार्थे तृतीयेति चेन्मैवम्, 'पृथग्विनानानामिस्त्वतीयाऽन्यतरस्या'—मित्यादावत्र 'सहेनाऽप्रधाने' इतिन्यासेनैव योगार्थलाभे सिद्धे 'सहयुक्तेऽप्रधाने' इत्यत्र युक्तग्रहण 'सहशब्दाभावेऽपि तदर्थमात्रसत्त्वेऽपि तृतीये'—ति बोधनार्थम्, अत एव 'वृद्धो यूने'—त्यादयो निर्देशा अपि सगच्छन्ते, एतेन 'वीरो युभ्यति कर्मभिः' इत्यादिषु तृतीया कथमिति प्रत्युक्तमित्यलमिहातिप्रसङ्गेन, 'मज्झ' मम, 'वेर' वैर=विरोधः, 'न' नहि अस्तीतीहापि पूर्ववदध्याहृत ज्ञेयम् । उक्तः क्षमापणापूर्वको मैत्रीभावः, सम्प्रति मङ्गलमयमुपसहारमाह—'एवमह' एवम्=उक्तैः प्रकारैः अहमित्यात्मनिर्देशे, 'सम्म' सम्यक्=यथावत् सम्यगित्यस्य सर्वैः कान्तैः सद् सम्बन्धः, 'आलोच्य' आलोच्य=आलोचनाविषयीकृत्य, 'निन्दिय' निन्दित्वा=स्वसाक्षिक सम्यग्निन्द्य, 'गरहिय' गरहित्वा=गुरुसाक्षिक सम्यग्निन्द्य, 'दुगुलिय' जुगुप्सित्वा='धिङ्मा पापकर मूढधिय' मित्यादिभर्त्सनापूर्वक निन्दित्वा, 'तिविहेण' त्रयो विधाः=प्रकारा यस्य स त्रिविधस्तेन=त्रिप्रकारेण वाह्—मनः—काय-लक्षणेन कृत-कारिता-ऽनुमोदित-लक्षणेन चेत्यथः । 'पडिकतो' प्रतिक्रान्तः=क्षालिताखिलातिचारमलतया परमशुचित्वमाप्त, 'चउव्वीस' चतुर्विंशतिम्=

क्षमा करे, क्यों कि सब जीवों के साथ मेरा मित्रभाव है, किसी के भी साथ वैरभाव नहीं है । इस तरह विधिपूर्वक आलोचना, निन्दा, गर्हा और जुगुप्सा (पापकारी मुझ मूढात्मा को धिक्कार है

ते सर्वे लोके मारा अपराधनी क्षमा करे, कारणु के सर्वे लोके साथे मारे मित्रभाव छे, केधनी साथे मारे वैरभाव नहीं छे प्रमाणे विधिपूर्वक आलोचना, निन्दा, गर्हा अने जुगुप्सा (पापकारी मारा मूढात्माने धिक्कार छे छत्यादि रूप) करीने त्रयु करणु

२-भवन्तीपरः=लट्परं भवन्तीति लट् सज्ञा पूर्वाचार्याणाम् ।

३-युध धातोरात्मनेपदित्वायुध्यतीति युधमिञ्जतीति क्यजिति सिदान्तराीमुदी ।

सिंहासन, अशोकवृक्ष, कुसुमवृष्टि, देवदुन्दुभि, क्षत्र धराणै, चँवर विजावै, पुरुपाकार पराक्रम के धरणहार, अढाई द्वीप पन्द्रहक्षेत्र मे विचरे, जघन्य दो क्रोड केवली और उत्कृष्ट नव क्रोड केवली केवलज्ञान केवलदर्शन के धरणहार सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव के जाननहार ।

ऐसे श्री अरिहन्त भगवन्त दीनदयाल महाराज आपकी (दिवस सम्पन्धी) अविनय आशातना की हो तो चारम्बार हे अरिहन्त भगवन् ! मेरा अपराध क्षमा करिये । हाथ जोड, मान मोड, शीस नमाकर १००८ वार नमस्कार करता हूँ ।

तिम्बुत्तो आयाहिणं पयाहिण (करेमि) वन्दामि नमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगल देवय चेडय पज्जुवासामि मत्थएण वदामि ।

आप मागलिक हो, उत्तम हो, हे स्वामी ! हे नाथ ! आपका इस भव, पर भव, भव भव में सदा काल शरण हो ।

ऋषभानन स्वामी (८) श्री अनतवीर्य स्वामी, (९) श्री सुरप्रभ स्वामी, (१०) श्री विशालप्रभ स्वामी, (११) श्री वज्रधर स्वामी, (१२) श्री यद्रानन स्वामी, (१३) श्री यद्रणाहु स्वामी, (१४) श्री बुजगदेव स्वामी (१५) श्री धृथर स्वामी, (१६) श्री नेमप्रभ स्वामी, (१७) श्री वीरसेन स्वामी, (१८) श्री महाबाह्र स्वामी, (१९) श्री देवराज स्वामी (२०) श्री अजितसेन स्वामी

ते ज्वन्य तीर्थ कर २० अने उत्कृष्ट होय तो १६० अगर १७० तेभने भारी तभारी समय समयनी वदना होजे ।

ते स्वामीनाथ देवा छे । भाग तभारा मन मननी वात नाली देणी रह्या छे, घटघटनी वात नाली देणी रह्या छे, समय समयनी वात नाली देणी रह्या छे, यदि राबुनोड अजलीजल प्रभावे नाली देणी रह्या छे ते स्वामीने अनत ज्ञान छे, अनत दर्शन छे, अनत आरित्र छे, अनत तप छे, अनत धैर्य छे, अने अनत वीर्य छे, अने पट (छ) शुद्धे करी सद्धित छे योत्रीश अतिशये करी णिराजमान छे, पात्रीज प्रकारनी अत्य पयन वाणीना शुद्धे करी सद्धित छे अके हुन्दरने अष्ट उत्तम लक्षणे करी सद्धित छे, अढार होय रद्धित छे, आर शुद्धे करी सद्धित छे, आर कर्म धनधाति

। अथ पञ्चममध्ययनम् ।

अथ 'इच्छामि खमासमणो' इति पट्टिका द्विः पठित्वा परमेष्ठिना भाव-  
वन्दना विधातव्या, तदनु 'अनन्त चउवीसी जिन नमो' इत्यादि पठेत् । ततश्च

॥ अथ पञ्चम अध्ययन ॥

'नमो चउवीस०' की पट्टी (पाटी) पूरी होने के बाद 'इच्छामि  
खमासमणो' की पट्टी दो बार बोलकर पचपरमेष्ठी की भाववन्दना  
करनी चाहिये ।

पाच पदों की वदना ।

टि० १- पहिले पद श्री अरिहन्तजी जघन्य बीस तीर्थकरजी  
उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सित्तर देवाधिदेवजी उन में  
वर्तमान काल में बीस विहरमानजी महाविदेहक्षेत्र में विचरते हैं एक  
हजार आठ लक्षण के धारणहार, चौतीस अतिशय, पैतीस वाणी  
करके विराजमान, चौसठ इन्द्रों के वन्दनीय, अठारह दोष रहित,  
बारह गुण सहित अनन्त-ज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्त-चारित्र,  
अनन्त-बलवीर्य, अनन्तसुख, दिव्यध्वनि, भामण्डल, स्फटिक-

अथ पचममध्ययन

"नमो चउवीसाए"नी पाटी पूरी तथा पछी "इच्छामि खामासमणो"  
नी पाटी दो बार बोलनी पच परमेष्ठीनी भाववदना करनी लेखये ।

पहिला भामण्डल-श्री अरिहत्त देवने

(गन्ने दीशष नीया दाणी भामण्डल बोलवा)

पहिला भामण्डल श्री पच महाविदेह क्षेत्रने विषे न्यवता तीर्थ कर देव विराजे  
छे, तेभने कइ छु ते स्वामीना शुषुधाम करता न्यन्य रस उपजे तो कर्मनी कोडी  
अपे अने उत्कृष्टे रस उपजे तो आ एव तीर्थकर नाम गोन उपजे छाल  
विराजता वीश तीर्थकराना नाम —

(१) श्री सीमधर स्वामी, (२) श्री लुगधर स्वामी, (३) श्री गालु स्वामी, (४)  
श्री सुगालु स्वामी (५) श्री सुगत स्वामी, (६) श्री स्वयम्भ स्वामी, (७) श्री

સિંહાસન, અશોકવૃક્ષ, કુસુમવૃષ્ટિ, દેવદુન્દુભિ, ક્ષત્ર ધરાયે, ચંવર વિજાવે, પુરુષાકાર પરાક્રમ કે ધરણહાર, અઢાઈ ઢીપ પન્દ્રહક્ષેત્ર મે વિચરે, જઘન્ય દો ક્રોડ કેવલી ઓર ઉત્કૃષ્ટ નવ ક્રોડ કેવલી કેવલજ્ઞાન કેવલદર્શન કે ધરણહાર સર્વ દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાલ ભાવ કે જાનનહાર ।

એસે શ્રી અરિહન્ત ભગવન્ત દીનદયાલ મહારાજ આપકી (દિવસ સમ્પન્ધી) અવિનય આશાતના કી હો તો વારમ્બાર હે અરિહન્ત ભગવન્ । મેરા અપરાધ ક્ષમા કરિયે । હાથ જોડ, માન મોડ, શીસ નમાકર ૧૦૦૮ વાર નમસ્કાર કરતા હૈં ।

તિક્ષુત્તો આયાહિણ પયાહિણ (કરેમિ) વન્દામિ નમસામિ સકારેમિ સમ્માણેમિ કહ્લાણ મગલ દેવય ચેડય પજ્જુવાસામિ મત્થણ વદામિ ।

આપ માગલિક હો, ઉત્તમ હો, હે સ્વામી ! હે નાથ ! આપકા હસ ભવ, પર ભવ, ભવ ભવ મેં સદા કાલ શરણ હો ।

ઋષભાનન સ્વામી (૮) શ્રી અનતવીર્ય સ્વામી, (૯) શ્રી સુરપ્રભ સ્વામી, (૧૦) શ્રી વિશાલપ્રભ સ્વામી, (૧૧) શ્રી વજ્રધર સ્વામી, (૧૨) શ્રી ચદ્રાનન સ્વામી, (૧૩) શ્રી ચદ્રબાહુ સ્વામી, (૧૪) શ્રી ભુજગદેવ સ્વામી (૧૫) શ્રી ઇંધર સ્વામી, (૧૬) શ્રી નેમપ્રભ સ્વામી, (૧૭) શ્રી વીરસેન સ્વામી, (૧૮) શ્રી મહાભદ્ર સ્વામી, (૧૯) શ્રી દેવરાજ સ્વામી (૨૦) શ્રી અગ્નિસેન સ્વામી

તે જ્વન્ય તીર્થ કર ૨૦ અને ઉત્કૃષ્ટ હોય તો ૧૬૦ અગર ૧૭૦ તેમને મારી તમારી સમય સમયની વદના હોજો ।

તે સ્વામીનાથ કેવા છે । માન તમારા મન મનની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, ઘટઘટની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, સમય સમયની વાત જાણી દેખી રહ્યા છે, ચોંદ સબુનોક અજલીજલ પ્રમાણે જાણી દેખી રહ્યા છે તે સ્વામીને અનત જ્ઞાન છે, અનત દર્શન છે, અનત ચારિત્ર છે, અનત તપ છે, અનત વૈર્ય છે, અને અનત વીર્ય છે, એ વટ (છ) શુણે કરી સહિત છે ચોત્રીશ આંતશયે ડરી ણિરાજમાન છે, પાત્રીશ પ્રકારની મત્ય વચન વાણીના શુણે કરી સહિત છે એક હજારને અષ્ટ ઉત્તમ લક્ષણે કરી સહિત છે, અઢાર દોષ રહિત છે, બાર શુણે કરી સહિત છે, ચાર કર્મ ધનઘાતિ

### । अथ पञ्चममध्ययनम् ।

अथ 'इच्छामि खमासमणो' इति पट्टिका द्विः पठित्वा परमेष्ठिना भाववन्दना विधातव्या, तदनु 'अनन्त चउवीसी जिन नमो' इत्यादि पठेत् । तत्पश्च

॥ अथ पञ्चम अध्ययन ॥

'नमो चउवीस०' की पट्टी (पाटी) पूरी होने के बाद 'इच्छामि खमासमणो' की पट्टी दो बार बोलकर पचपरमेष्ठी की भाववन्दना करनी चाहिये ।

पाच पदों की वदना ।

टि० १- पहिले पद श्री अरिहन्तजी जघन्य बीस तीर्थकरजी उत्कृष्ट एक सौ साठ तथा एक सौ सित्तर देवाधिदेवजी उन में वर्तमान काल में बीस विहरमानजी महाविदेहक्षेत्र में विचरते हैं एक हजार आठ लक्षण के धारणहार, चौतीस अतिशय, पैतीस वाणी करके विराजमान, चौसठ इन्द्रों के वन्दनीय, अठारह दोष रहित, बारह गुण सहित अनन्त-ज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्त-चारित्र, अनन्त-बलवीर्य, अनन्तसुख, दिव्यध्वनि, भामण्डल, स्फटिक-

अथ पञ्चममध्ययन

"नमो चउवीसाए"नी पाटी पूरी तथा पछी "इच्छामि खमासमणो"नी पाटी दो बार बोलनी भाववन्दना करनी जेधये ।

पढेला भामणु-श्री अरिहन्त देवने

(जन्ने दीअणु नीया दाणी भामणु बोलवा)

पढेला भामणु श्री पञ्च महाविदेह क्षेत्रने विषे जयवता तीर्थ कर देव भिराजे छे, तेभने कइ छु ते स्वामीना गुणुआम करता जघन्य रस उपजे तो कर्मनी कोडी भये अने उत्कृष्टो रस उपजे तो आ एव तीर्थकर नाम गोत्र उपार्जे छाल भिराजता वीथ तीर्थकरेना नाम —

(१) श्री सीमधर स्वामी, (२) श्री लुगधर स्वामी, (३) श्री भाहु स्वामी, (४) श्री सुभाहु स्वामी (५) श्री सुजत स्वामी, (६) श्री स्वयम्भ स्वामी, (७) श्री

(१२) अन्यलिंगसिद्धा (१३) गृहस्थलिंगसिद्धा (१४) एकसिद्धा (१५) अनेकसिद्धा, जहा जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र्य नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, भूख नहीं, तृषा नहीं, जोत में जोत विराजमान, सकल कार्य सिद्ध करके चवदे प्रकारे पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध भगवन्त हुए। अनन्तसुखों में तल्लीन, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, निरावाध, क्षायिक समकित, अटल अवगाहना, अमूर्ती, अगुरुलघु, अनन्तवीर्य, यह आठ गुण करके सहित हैं।

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्तजी महाराज आपकी अविनय-आशातना की हो तो चारम्बार हे सिद्ध भगवन् ! मेरा अपराध क्षमा करिये, हाथ जोड, मान मोड, शीस नमाकर तिकखुत्ता के पाठ से १००८ चार नमस्कार करता हूँ।

(७) श्री सुपार्थनाथ स्वामी, (८) श्री चद्रप्रल स्वामी, (९) श्री सुविधिनाथ स्वामी, (१०) श्री शीतलनाथ स्वामी, (११) श्री श्रेयासनाथ स्वामी, (१२) श्री वासुपूज्य स्वामी, (१३) श्री विभजनाथ स्वामी, (१४) श्री अनतनाथ स्वामी, (१८) श्री धर्मनाथ स्वामी, (१६) श्री शातिनाथ स्वामी, (१७) श्री कुशुनाथ स्वामी, (१८) श्री अरनाथ स्वामी, (१९) श्री भद्विलनाथ स्वामी, (२०) श्री मुनिमुप्रत स्वामी, (२१) श्री नगिनाथ स्वामी, (२२) श्री नेमीनाथ स्वामी, (२३) श्री पार्थनाथ स्वामी, (२४) श्री (वीर वर्धमान) भडावीर स्वामी

आ अेक बोवीसी अनत बोवीशी पदर बोदे भीजी पुजी, आठ कर्मक्षय करी बोक्ष पधार्या, तेभने भारी तभारी समय सभयनी वदना होजे। आठ कर्मना नाम-ज्ञाना-वरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोडनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र अने अतराय, अे आठे कर्मक्षय करी मुकित शिलाअे पडोअ्या छे, ते मुकितशिला कया छे।

समपृथ्वीथी ७६० नेजन उचपछे तारा भउण आवे त्याथी दश नेजन उचे सूर्यनु विमान छे, त्याथी ८० नेजन उचपछे चद्रमानु विमान छे, त्याथी चार नेजन उचपछे नक्षत्रना विमान छे, त्याथी चार नेजन उचपछे पुधने तारे छे, त्याथी त्रषु नेजन उचपछे शुक्रने तारे छे, त्याथी त्रषु नेजन उचपछे पृथस्पतिने



(१२) अन्यलिंगसिद्धा (१३) गृहस्थलिंगसिद्धा (१४) एकसिद्धा (१५) अनेकसिद्धा, जहां जन्म नहीं, जरा नहीं, मरण नहीं, भय नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्र्य नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, चाकर नहीं, ठाकर नहीं, भूख नहीं, तृषा नहीं, जोत में जोत विराजमान, सकल कार्य सिद्ध करके चवदे प्रकारे पन्द्रह भेदे अनन्त सिद्ध भगवन्त हुए। अनन्तसुखों में तल्लीन, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, निरावाध, क्षायिक समकित, अटल अवगाहना, अमूर्ती, अगुस्त्यु, अनन्तवीर्य, यह आठ गुण करके सहित है।

ऐसे श्री सिद्ध भगवन्तजी महाराज आपकी अविनय-आशातना की हो तो चारम्बार हे सिद्ध भगवन् ! मेरा अपराध क्षमा करिये, हाथ जोड़, मान मोड़, शीस नमाकर तिकखुत्ता के पाठ से १००८ बार नमस्कार करता हूँ।

(७) श्री सुपार्श्वनाथ स्वामी, (८) श्री अद्रप्रल स्वामी, (९) श्री सुविधिनाथ स्वामी, (१०) श्री शीतलनाथ स्वामी, (११) श्री श्रेयासनाथ स्वामी, (१२) श्री वासुपूज्य स्वामी, (१३) श्री विभजननाथ स्वामी, (१४) श्री अनन्तनाथ स्वामी, (१८) श्री धर्मनाथ स्वामी, (१९) श्री शातिनाथ स्वामी, (१७) श्री कुथुनाथ स्वामी, (१८) श्री अरनाथ स्वामी, (१९) श्री महिलनाथ स्वामी, (२०) श्री मुनिमुद्रत स्वामी, (२१) श्री नगिनाथ स्वामी, (२२) श्री नेमीनाथ स्वामी, (२३) श्री पार्श्वनाथ स्वामी, (२४) श्री (वीर वर्धमान) महावीर स्वामी

आ अेक चोवीसी अनन्त चोवीशी पहर लेहे सीजी लुजी, आठ कर्मक्षय करी भोक्ष पधार्या, तेभने भारी तभारी समय समयनी वदना होजे। आठ कर्मना नाम-ज्ञाना-वरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र अने अतराय, जे आठ कर्मक्षय करी मुक्ति शिलाअे पडोअ्या छे, ते मुक्तिगिला क्या छे।

समपृथ्वीथी ७६० नेजन उचपछे तारा भ उण आवे त्याथी दश नेजन उचे सूर्यनु विमान छे, त्याथी ८० नेजन उचपछे अद्रमानु विमान छे, त्याथी बार नेजन उचपछे नक्षत्रना विमान छे, त्याथी बार नेजन उचपछे लुधनेो तारे छे, त्याथी त्रणु नेजन उचपछे शुक्रनेो तारे छे, त्याथी त्रणु नेजन उचपछे भृक्षस्पतिनेो



તીજે પદ શ્રી આચાર્યજી છત્તીસ ગુણ કરકે વિરાજમાન પાચ મહાવ્રત પાલે, પાચ આચાર પાલે, પાચ ઇન્દ્રિય જીતે, ચાર કપાય ઠાલે, નવ-વાહ-સહિત શુદ્ધ વ્રહ્મચર્ય પાલે, પાચ સમિતિ ત્રીન ગુપ્તિ શુદ્ધ આરાધે, યદ્ ૩૬ ગુણ ઓર આઠ સમ્પદા ( ૧ આચારસમ્પદા, ૨ શ્રુતસમ્પદા, ૩ શરીરસમ્પદા, ૪ વચનસમ્પદા, ૫ વાચનાસમ્પદા, ૬ મતિસમ્પદા, ૭ પ્રયોગસમ્પદા, ૮ સગ્રહપરિજ્ઞાસમ્પદા ) સહિત હૈં ।

એસે આચાર્ય મહારાજ ન્યાય પક્ષવાલે, મદ્રિકપરિણામી, પરમ પૂજ્ય, કલ્પનીય અચિત્ત વસ્તુ કે ગ્રહણહાર, સચિત્ત કે ત્યાગી, ચૈરાગી, મહાગુણી, ગુણ કે અનુરાગી, સૌભાગી હૈં । એસે શ્રી આચાર્યજી મહારાજ આપકી (દિવસસમ્બન્ધી) અવિનય-આશાતના કી હો તો વારમ્વાર હે આચાર્યજી મહારાજ ! મેરા અપરાધ ક્ષમા કરિયે, હાથ જોડ માન મોડ, શીસ નમાકર તિવરુત્તા કે પાઠ સે ૧૦૦૮ વાર નમસ્કાર કરતા હૈં ।

તારે છે, ત્યાથી ત્રણ ભેજન ઉચ્ચપણે મગળને તારે છે, ત્યાથી ત્રણ ભેજન ઉચ્ચપણે છેલ્લો શનિસ્વરને તારે છે એમ નવસો ભેજન લગી જ્યોતિષયજ્ઞકે છે

ત્યાથી અસખ્યાતા ભેજન કોરા કોડી ઉચ્ચપણે બાર દેવલોક આવે છે તેના નામ - સુધર્મ, ઈશાન, સનત્કુમાર, મહેન્દ્ર પ્રહ્લવૈક, લાતક, મહાશુક, સહસાર, આણુત, પ્રાણુત, આરણુ અને અચ્યુત, ત્યાથી અસખ્યાતા ભેજનની કોડા કોડી ઉચ્ચપણે ચડીએ ત્યારે નવ ગ્રૈવેયક આવે, તેના નામ - ભદ્રે, સુભદ્ર, સુભદ્રાએ, સુમાણુસે, પ્રિયદસણે, આમોહિ, સુપડિણદ્રે અને જસોધરે, તેમા ત્રણત્રિક છે, પહેલી ત્રિકમા ૧૧૧ વિમાન છે, ખીલમા ૧૦૭ અને ત્રીલમા ૧૦૦ વિમાન છે ત્યાથી અસખ્યાતા ભેજનની કોડાકોડી ઉચ્ચપણેએ ચડીએ ત્યારે પાચ અતુત્તર વિમાન આવે, તેના નામ - વિજય, વિજયત જયત અપરાજિત અને સર્વાર્થસિદ્ધ

આ સર્વાર્થસિદ્ધ મહાવિમાનની ધ્વજથી બાર ભેજન ઉચ્ચપણે મુક્તિશિલા છે તે મુક્તિશિલા કેવી છે ? ખીન્તાલીશ ભેજનની લાખી પહોળી છે, મધ્યે આઠ ભેજનની બાડી છે ઉતરતા છેડે માખીની પાખ કરતા પણ પાતળી છે ગોક્ષીર, શખ, ચદ્ર, અકરલ, રૂપાને પટ, મોતીને હાર અને ક્ષીર સાગરના પાણી થકી પણ અધિક ભજળી છે

चौथे पद श्री उपाध्यायजी, पच्चीस गुण करके सहित (ग्यारह अंग, बारह उपांग, चरणसत्तरी, करणसत्तरी-इन पच्चीस गुण करके सहित), ग्यारह अंग का पाठ अर्थ सहित सम्पूर्ण जानें, १४ पूर्व के पाठक और निम्नोक्त वत्तीस सूत्र के जानकार हैं।

ते सिद्धशिला उपर ओक जेजन, तेना छेला गाठिना छट्टा भागने विषे सिद्ध भगवतल निरजन निराकार भिरालु रह्या छे ते भगवतल केवा छे ? अवष्टे, अगधे, अग्ने, अक्षसे, अमूर्ति, अविनाशी, लूभ नहि, इ भ नहि, शैग नहि, शोक नहि, जन्म नहि, जरा नहि, मरण नहि, काया नहि, कर्म नहि, अनत अनत आत्मिक सुभनी लहेरभा भिरालु रह्या छे धन्य स्वामीनाथ ? आप श्री सिद्धक्षेत्रने विषे भिराले छे, हु अपराधी दीनकिंकर, गुणहीन अर्ही जेठे छु, आपना ज्ञान दर्शनने विषे आजना द्विसम गधी अविनय, अशातना, अलकित अपराध थये होय तो हाथ जेडी, मान भेडी, भस्तक नभावी बुझे बुझे करी भभावु छु (अर्ही तिष्ठतानो पाठ त्रष्टु वभत कहेवो)

### त्रीन भामिणा-केवणी भगवानेने

त्रीन भामिणा पय महाविदेह क्षेत्रने विषे भिराजता जयवता केवणी भगवानेने कइ छु ते स्वामी जधन्य होय तो जे कोड अने उत्कृष्टा होय तो नवकोड केवणी, ते सर्वने भारी तभारी समय समयनी वदना होजे ते स्वामी केवा छे ? भारी तभारा मन मननी वात नाली देणी रह्या छे, घट घटनी वात नाली देणी रह्या छे, समय समयनी वात नाली देणी रह्या छे, यौदराज्य लोक अनलि-नल-प्रभासे नाली देणी रह्या छे, अनतु ज्ञान छे, अनतु दर्शन छे, अनतु चरित्र छे, अनतो तप छे, अनत धैर्य छे, अनत वीर्य छे-जे पटे (छ) शुभे करी सहित छे चार कर्म घनघाती क्षय कर्या छे, पात्रीना चार कर्म पातणा पडया छे मुकित जवाना कामी थका विचरे छे, लव्य श्येना स देह भागे छे सजेगी, सशरीरी, केवणज्ञानी, केवणदर्शनी, यथाभ्यात चरित्रना धरणुहार छे, क्षायिक समकित, शुक्ल ध्यान, शुक्ल देश्या, शुभ ध्यान, शुभ जोग, पडित वीर्य आदि अनत शुभे करी सहित छे

धन्य ते स्वामी गाभगर, नगर, गयडाणी, ज्या ज्या देशना देता थका विचरता ह्ये, त्या त्या राक्षस, तलवर, भाडणी, डेडणी, शैठ, जेनापति, गाथापति आदि स्वामीनी देशना साभणी कर्षु पवित्र करता ह्ये, तेभने धन्य छे ? स्वामीना दर्शन

ગ્યારહ અગ-આચારાગ, સૂયગઢાગ, ઠાણાગ, સમવાયાગ, ભગવતી, જ્ઞાતાધર્મકથા, ઉવાસગદસા, અતગઢદસા, અણુસરોવવાઈ, પ્રશ્નવ્યાકરણ, વિપાકસૂત્ર ।

ઘારહ ઉપાગ-ઉવવાઈ, રાયપ્પસેણી, જીવાભિગમ, પદ્મવળા, જમ્બૂદ્વીવપદ્મત્તી, ચન્દપદ્મત્તી, સૂરપદ્મત્તી, નિરયાવલિયા, કપ્પવહસિયા, પુપ્ફિયા, પુપ્ફચૂલિયા, વપ્પિહદસા ।

ચાર મૂલસૂત્ર-ઉત્તરાધ્યયન, દશવૈકાલિકસૂત્ર, નન્દીસૂત્ર, અનુયોગદ્વાર ।

ચાર હેદ-દશાશ્રુતસ્કન્ધ, વૃહત્કલ્પ, વ્યવહારસૂત્ર, નિશીથ સૂત્ર, ઔર વત્તીસવા આવશ્યક, ઇત્યાદિ અનેક સ્વસમય પરસમય કે જાનકર, સાત નય, નિશ્ચય, વ્યવહાર, ચાર પ્રમાણ આદિ સ્વમત

દેહાર કરી નેત્ર પવિત્ર કરતા હશે તેમને ધન્ય છે સ્વામીને અશતાદિક ચૌદ પ્રકારનું દાન દઈ કર પવિત્ર કરતા હશે, તેમને પણ ધન્ય છે

ધન્ય સ્વામીનાથ ! આપ પચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રને વિષે બિરાલે છે, હું અપરાધી દીનકંકર ગુણહીન અહીં બેઠો છું આજના દિવસ સખધી આપના જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર તપને વિષે અવિનય, આશાતના, અભક્તિ, અપરાધ થયો હોય, તો હાથ ભેડી, માન મોડી, મરતક નમાવી ભુલે ભુલે કરી ખમાવુ છું (અહીં તિપુત્તાના પાઠ ત્રણ વખત કહેવો)

### ચોથા ખામણા

ચોથા ખામણા ગણધરણ, આચાર્યણ, ઉપાધ્યાયણને કરૂ છું ગણધરણ બાવન ગુણે કરી સહિત છે, આચાર્યણ છત્રીશ ગુણે કરી સહિત છે, ઉપાધ્યાયણ પચ્ચીશ ગુણે કરી સહિત છે, માન તમારા ધર્મગુરુ, ધર્માચાર્ય, ધર્મ ઉપદેશના દાતાર, પકિતરાજ, મુનિરાજ મહાપુરુષ, ગીતાર્થ, બહુસૂત્રી, સૂત્રસિદ્ધાંતના પારગામી, તરણ-તારણ, તારણી નાવા સમાન, સફરી જહાજ સમાન, રત્નચિંતામણિ સમાન, જિન શાસનના શણગાર, ધર્મના નાયક, સઘના મુખી, સઘના નાયક આદિ અનેક ઉપમાએ કરી બિરાજમાન હતા ઘણા સાધુ-સાધ્વીએ આલોવી, પરિક્ષમી, નિન્દી, નિ શત્ય યદને પ્રાય દેવલોક પધાર્યા છે તેમનો ઘણો ઘણો ઉપકાર છે

આજ વર્તમાન તારણ, તારણી નાવા સમાન, સફરી જહાજ સમાન, રત્નચિંતામણિ - ના શણગાર, ધર્મના નાયક, સઘના મુખી, સઘના

तथा अन्यमत के जानकार मनुष्य या देवता कोई भी विवाद में जिनको छलने में समर्थ नहीं, जिन नही पण जिन सरीखे, केवली नहीं पण केवली सरीखे हैं।

ऐसे उपाध्यायजी महाराज मिथ्यात्वरूप अधकार के मेटन-हार, समकित रूप उद्द्योत के करनहार, धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करे, सारए, वारए, धारए इत्यादि अनेक गुण करके सहित हैं। ऐसे श्री उपाध्यायजी महाराज आपकी अविनय-आशातना की हो तो हे उपाध्यायजी महाराज ! मेरा अपराध चारम्बार क्षमा करिये, हाथ जोड, मान मोड, जीस नमाकर तिक्खुत्ता के पाठ से १००८ बार नमस्कार करता हूँ।

पाचवें पद "णमो लोए सन्वसाहूण"-अढाईद्वीप पन्द्रह क्षेत्र

नायक आदि अनेक उपमाये करी गिराजमान के के साधु-साध्वी वीतराग देवनी आशाभा गिराजता होय, तेभने भारी तभारी समय समयनी वदना होले

ते च्चामी देवा छे ? पय महाप्रतना पालनहार छे, पाय सभितिये अने त्रष्टु शुभितिये सहित, छकायना पियर, छकायना नाथ, सात कयना टालणहार, आठ भटना गालणहार, नववाठ विशुद्ध प्रह्लथर्थना पालणहार, दशविध यति धर्मना अणवाणक, गार लेहे तपश्चर्याना करणहार, सत्तर लेहे समयना धरणहार, गायीश परिषदना जितणहार, सत्तावीश साधुजना शुष्णे करी सहीत ४२-४७-६६ दोष रहित आहार पाणीन लेनार, पावन अनाचारना टालणहार, सचित्तना त्यागी, अचेतना लोगी, कथन-कामिनीना त्यागी, भाया-भमताना त्यागी, सभताना सागर, दयाना आगर, आदि अनेज शुष्णे करी सहित छे

धन्य महाराज ! आप गाम, नगर, पूर, पाठखुने विषे विचरै छै, अये अपराधी, हीनकिंकर, शुष्णहीन अर्द्धी भेठा छीये आजना द्विवससणधी आपना ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपने विषे अविनय, आशातना, अककित अपराध थयो होय, तो ह्यथ नेडी, मान मोडी, भरतक नभापी बुल्ले बुल्ले करी थभावु छु (अर्द्धी तप्युत्तानो पाठ त्रष्टु वधत कहेवै)

पायभा आभणु।

पायभा आभणु पाय भरत, पाय धरवत पाय महाविदेह ये अदी द्वीप

ગ્યારહ અગ-આચારાંગ, સૂયગઢાગ, ઠાણાગ, સમવાયાગ, ભગવતી, જ્ઞાતાધર્મકથા, ઉવાસગદસા, અતગઢદસા, અણુત્તરોવવાઈ, પ્રશ્નવ્યાકરણ, વિપાકસૂત્ર ।

વારહ ઉપાગ-ઉવવાઈ, રાયપ્પસેણી, જીવાભિગમ, પદ્મવળા, જમ્બૂદ્વીવપદ્મત્તી, ચન્દપદ્મત્તી, સૂરપદ્મત્તી, નિરઘાવલિયા, કપ્પવહસિયા, પુષ્પિઘા, પુષ્પચૂલિયા, વણિહદસા ।

ચાર મૂલસૂત્ર-ઉત્તરાધ્યયન, દશવૈકાલિકસૂત્ર, નન્દીસૂત્ર, અનુયોગદ્વાર ।

ચાર છેદ-દશાશ્રુતસ્કન્ધ, વૃહત્કલ્પ, વ્યવહારસૂત્ર, નિશીથ સૂત્ર, ઔર વત્તીસવા આવશ્યક, ઇત્યાદિ અનેક સ્વસમય પરસમય કે જાનકર, સાત નય, નિશ્ચય, વ્યવહાર, ચાર પ્રમાણ આદિ સ્વમત

દેહાર કરી નેત્ર પવિત્ર કરતા હશે તેમને ધન્ય છે સ્વામીને અશનાદિક ચોદ પ્રકારનું દાન દઈ કર પવિત્ર કરતા હશે, તેમને પણ ધન્ય છે

ધન્ય સ્વામીનાથ ! આપ પચ મહાવિદેહ ક્ષેત્રને વિષે બિરાજે છે, હું અપરાધી દીનકિંકર શુભ્રહીન અહીં બેઠો છું આજના દિવસ સ બધી આપના જ્ઞાન, દર્શન, ચારિત્ર તપને વિષે અવિનય, આશાતના, અભકિત, અપરાધ થયો હોય, તો હાથ બેડી, માન મેડી, મરતક નમાવી બુને બુને કરી ખમાલુ છું (અહીં તિથુત્તાના પાઠ ત્રણ વખત કહેવો)

### ચોથા ખામણ

ચોથા ખામણ ગણધરજી, આચાર્યજી, ઉપાધ્યાયજીને કહું છું ગણધરજી બાવન શુભ્ર કરી સહિત છે, આચાર્યજી છત્રીશ શુભ્ર કરી સહિત છે, ઉપાધ્યાયજી પચ્ચીશ શુભ્ર કરી સહિત છે, મારા તમારા ધર્મશુરુ, ધર્માચાર્ય, ધર્મ ઉપદેશના દાતાર, પડિતરાજ, મુનિરાજ મહાપુરુષ, ગીતાર્થ, બહુસૂત્રી, સૂત્રસિદ્ધાતના પારગામી, તરણ-તારણ, તારણી નાવા સમાન, સફરી જહાજ સમાન, રત્નચિતામણિ સમાન, જિન શાસનના શણગાર, ધર્મના નાયક, સઘના મુખી, સઘના નાયક આદિ અનેક ઉપમાએ કરી બિરાજમાન હતા ઘણા સાધુ-સાધ્વીએ આલોવી, પડિક્કમી, નિન્દી, નિ શક્ય થઈને પ્રાય દેવલોક પધાર્યા છે તેમને ઘણા ઘણા ઉપકાર છે

આજ વર્તમાન કાળે તરણ, તારણ, તારણી નાવા સમાન, સફરી જહાજ સમાન, રત્નચિતામણિ સમાન, જિનશાસનના શણગાર, ધર્મના નાયક, સઘના મુખી, સઘના

ऐसे मुनिराज महाराज आपकी अविनय आशातना की हो तो हे मुनिराज ! मेरा अपराध बारम्बार क्षमा करिये । हाथ जोड़, मान मोड़, शीस नमाकर, तिकखुत्ता के पाठ से १००८ बार नमस्कार करता हूँ ।

॥ दोहा ॥

अनन्त चौबीसी जिन नमू, सिद्ध अनन्ता कोड !  
 केवल ज्ञानी गणधरा, वन्दू वे कर जोड ॥ १ ॥  
 दोग कोडि केवलधरा, विहरमान जिन बीस ।  
 सहस्र युगल कोडी नमू, साधु नमू निशदीस ॥ २ ॥  
 धन साधु धन साधवी, वन धन है जिन धर्म ।  
 ये समया पातक झरे, दूटे आठो कर्म ॥ ३ ॥  
 अरिहत सिद्ध समरुसदा, आचारज उवज्झाय ।  
 साधु सकल के चरण को, वन्दू शीस नमाय ॥ ४ ॥  
 अगूठे अमरित वसे, लब्धि तणा भण्डार ।  
 श्री गुरु गौतम समरिये, वाछित फल दातार ॥ ५ ॥  
 लोभी गुरु तारे नही, तिरे सो तारण हार ।  
 जो तू तिरियो चाह तो, निरलोभी गुरु धार ॥ ६ ॥  
 गुरु दीपक गुरु चादणो, गुरु विन घोर अधार ।  
 पलक न विसरु तुमभणी, गुरुमुझ प्राण अधार ॥ ७ ॥

हाथ जोडी, भस्तक नभावी बुझे बुझे करी भभावु छु (अर्धी तिभुत्तानो पाठ त्रषु वपत कडेवे।)

अने साधु-साध्वील गिराजता होय, ते नीचेनी गाथा बोली त्रषु वपत सविधि वदना करवी

साधु वटे ते सुभीया थाय, लवे लवना तो पातके लथ,  
 लाव धरीने वटे जेड, वहेलो मुकते लशे तेड

छुआ भाभला

(छुआ भाभला अदीदीप भाडे अदीदीप गडार अस ज्याता श्रावक-श्राविकाने कडे छु ते श्रावक केवा छे ?)

रूप लोक के विषे सर्व साधुजी जघन्य दो हजार करोड, उत्कृष्ट नव हजार करोड जयवन्ता चिचरे । पाँच महाव्रत पालें, पाँच इन्द्रिय जीतें, चार कपाय टालें, भावसच्चे, करणसच्चे, जोगसच्चे, क्षमावन्त, वैराग्यवन्त, मनसमाधारणीया, वयसमाधारणीया, कायसमाधारणीया, नाणसम्पन्ना, दसणसम्पन्ना, चारित्तसम्पन्ना, वेदनीयसमाअहियासनीया, मरणातिकसमाअहियासनीया हैं-ऐसे सत्ताईस गुण करके सहित, पाँच आचार पालें, छह काय की रक्षा करे, सात कुव्यसन, आठ मद छोडें, नववाड सहित ब्रह्मचर्य्य पालें, दस प्रकार यतिधर्म धारें, बारह भेदे तपस्या करें, सत्रह भेदे सयम पालें, अठारह पापों को त्यागें, चाईस परिषह जीतें, तीस महामोहनीय कर्म निवारें, तेतीस आशातना टालें, बयालीस दोष टाल के आहारपानी लेवें, सैंतालीस दोष टाल के भोगें, बावन अनाचार टालें, तेडिया (बुलाया) आवे नहीं, नातिया जीमे नही, सचित्त के त्यागी, अचित्त के भोगी, लोच करें, नगे पैर चालें-इत्यादि कायाक्लेश करें और मोह-ममता-रहित हैं ।

क्षेत्रने विषे गिराजता साधु साध्वीछने कइ छु तेयो जघन्य डाय तो वे हुन्तर कोड साधु-सा वी, अने उत्कृष्टा डाय तो नव हुन्तर कोड साधु-साध्वी, तेभने भारी तभारी समय समयनी वटना डोले

ते स्वामी केवा छे ? पाय महाव्रतना पालणुहार छे, पाय सभित्तिये अने त्रणु शुभित्तिये सहित, छ कायना पियर, छ कायना नाथ, सात लयना टालणुहार, आठ भटना गालणुहार, नववाडविशुद्ध प्रकृत्यर्थना पालणुहार, दशविध यतिधर्मना अज्वालक, गार लेहे तपश्चर्याना करणुहार, सत्तर लेहे सयमना धरणुहार, भावीश परिषदना छताणुहार, सतावीश साधुलना शुष्णे करी सहित, ४२-४७-६६ दोष सहित आहार पाणुना लेवणुहार, भावन अनाचारना टालणुहार, सचित्तना त्यागी, अचित्तना लोगी, कचन कामिनीना त्यागी, भाया-भमताना त्यागी, समताना सागर, दयाना आगर, आदि अनेक शुष्णे करी सहित छे

धन्य स्वामीनाथ ! आप गाभ, नगर, पूर, पाटणुने विषे गिराजे छे, हु अपराधी, दीन किंकर, गुणहीन अर्द्धा नेठे छु आजना दिवससभधी आपना ज्ञान, दर्शन, आरित्र, तपने विषे अविनय, आशातना अककित, अपराध द्वीपे डाय तो

चतुर्शीतिलक्षयोनिगतान् जीवान् क्षमाप्य सार्द्धसत्तनत्रतिलक्षार्धिकैकोटि  
कुलकोटिविराधनासम्बन्धि मिथ्यादुष्कृत दत्त्वा पापाष्टादशरूपट्टिकामुच्चार्य  
कायोत्सर्गाभिधस्य पञ्चमावश्यकस्यान्ना गृह्णीयात् । तत्र पूर्वस्मिन्नभ्ययने मूलोत्तर-

अनन्तर 'अनन्तचउवीसी जिन नमो' इत्यादि पढ़े, बाद में  
चौरासी लाख योनि गत जीवों से क्षमापना करके एक करोड़ साठे  
सत्तानवेलाख (१९७०००००) कुल कोटि (कोटी) जीवों की विराधना-  
सम्बन्धी मिथ्यादुष्कृत देकर और अठारह पापभयान की पट्टी बोलकर  
गुरु से कायोत्सर्ग नामक पाँचवें आवश्यक की आज्ञा ग्रहण करे ।

त्यां षाड् 'अनन्त चउवीसी जिन नमो' इत्यादि पढ़े, पछी चौरासी लाख  
योनिगत लुवोनी पाये क्षमापना भागीने अेक करेड साडा भत्तालु लाख  
(१६७५००००) कुल कोटी (कोटी) लुवोनी विराधना सम्बन्धी मिथ्या दुष्कृत आपीने  
अने अडां पाप स्थाननी पाटी कोलीने शुरुपासे कायोत्सर्ग नामना पायभा  
आवश्यकनी अज्ञा ग्रहण करवी

हजार एक सौ बीस (१८२४१२०) प्रकारे "तस्स मिच्छामि दुक्कड" ।

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे ।

मिच्ची मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणइ ॥

एवमह आलोइय, निदिय गरहिय दुगच्छिउ सम्म ।

तिविहेण पडिक्कतो, वदामि जिणे चउव्वीस ॥

छेधा होय, लेवा होय, परितापना-डिक्कामना उपज्जवी होय, तो अरिहन्त अनता  
सिद्ध भगवतनी पाये "तस्स मिच्छामि दुक्कड"

आमेमि सव्वे लुवा  
मव्वे लुवा भमतु मे  
मिच्चीमे सव्वभूएसु  
वेरं मज्झ न केणुइ  
अेवमह आलोइय  
निदियगरहियदुगच्छिउ सम्म,

तिविहेण पडिक्कतो

वदामि लुणे चउव्वीस

भभावु छु सर्व लुवोने,  
सर्व लुवो भने क्षमा आपणे  
सर्व लुवो साथे भारे भित्ता छे  
डोणी साथे भारे वेर नथी  
अे प्रकारे हु आलोचनना करी,  
निदा करी, (शुनी साक्षीअे) विशेषे  
निदा करी, दुगछा करी  
सम्भइ प्रकारे, त्रलु प्रकारे (भन, वचन,  
जयाअे) प्रतिक्रमणु कन्तो थडो  
बोविश लुनेश्वर प्रभुने वडु छु



## ॥ ચૌરાસી લાખ જીવ યોનિ કા પાઠ ॥

સાત લાખ પૃથ્વીકાય, સાત લાખ અપ્કાય, સાત લાખ તેજકાય, સાત લાખ વાયુકાય, દશ લાખ પ્રત્યેક વનસ્પતિકાય, ચૌદ્દ લાખ સાધારણ વનસ્પતિકાય, દો લાખ વેદન્દ્રિય, દો લાખ તેજન્દ્રિય, દો લાખ ચરિન્દ્રિય, ચાર લાખ નારકી, ચાર લાખ દેવતા, ચાર લાખ તિર્યજ્ચ પચેન્દ્રિય, ચૌદ્દ લાખ મનુષ્યકી જાત એસે ચાર ગતિ મેં ચૌરાસી લાખ જીવ-યોનિ કે સૂક્ષ્મ ઘાદર પર્યાસિ અપર્યાસિ જીવોં મેં સે હાલતે ચાલતે ઉઠતે બેઠતે સોતે કિસી જીવ કા હનન કિયા હો, કરાયા હો, હનતા પ્રતિ અનુમોદન કિયા હો, શ્રેદા હો, ભેદા હો, કિલામણા ઉપજાઈ હો, મન વચન કાયા કરકે અઠારહ લાખ ચૌબીસ

હુ થી તમથી, દાને, શીયળે, તપે, ભાવે, શુભે કરી અધિક છે, બે વખત આવશ્યક્ય પ્રતિક્રમણના કરનાર છે, મહિનામા બે, ચાર અને છ પોવાના કરનાર છે, સમકિત સહિત ખાર વ્રતધારી, અગિયાર પડિમાના સેવણહાર છે, ત્રણ મનોરથના ચિંતવનાર છે, દુખળા-પાતળા જીવની દયાના આણનાર છે, જીવ અજીવ આદિ નવ તત્વના બાણનાર છે, એકવીશ શ્રાવકજના શુભે કરી સહિત છે, પરધન પરથર ધનાગર લેખે છે, પરસ્મા માત બેન સમાન લેખે છે, દૃઢધર્મી, પ્રિયધર્મી, દેવતાના ડગાવ્યા ડગે નહિ એવા છે, ધર્મનેા રંગ હાડ હાડની મીઠાએ લાગ્યે છે એવા શ્રાવક, શ્રાવિકા, સવર, પોષા, પ્રતિક્રમણમા ધિરાજતા હશે તેમને આજના દિવસ સખધી અવિનય, આશાતના, અભકિત, અપરાધ કર્યો હોય, તેા હાથ ભેડી, માન મોડી, મસ્તક નમાવી બુજે બુજે કરી ખમાવુ છુ )

સાધુ-સાધ્વીને વાહુ છુ, શ્રાવક-શ્રાવિકાને ખમાવુ છુ, ચોરાશી લાખ જીવાન્નેનિના જીવને ખમાવુ છુ -

૭ લાખ પૃથ્વીકાય, ૭ લાખ અપકાય, ૭ લાખ તેજકાય ૭ લાખ વાયુકાય, ૧૦ લાખ પ્રત્યેક વનસ્પતિકાય, ૧૪ લાખ સાધારણ વનસ્પતિકાય, ૨ લાખ બે ઈન્દ્રિય, ૨ લાખ તેજન્દ્રિય, ૨ લાખ ચૌરેન્દ્રિય, ૪ લાખ નારકી, ૪ લાખ દેવતા, ૪ લાખ તિર્યચ પચેન્દ્રિય, ૧૪ લાખ મનુષ્ય જાતિ, એ ચોરાશી લાખ જીવાન્નેનિના જીવને હાલતા, ચાલતા, ઉઠતા, બેસતા બાણતા, અબાણતા, હણ્યા હોય, હણ્યાવ્યા હોય,

चतुस्त्रीतिलक्षयोनिगतान् जीवान् क्षमाप्य सार्द्धसप्तनवतिलक्षायिकैककोटि  
कुलकोटिविराधनासम्बन्धि मिथ्यादुष्कृत दत्त्वा पापाष्टादशरूपट्टिकामुच्यते  
कायोत्सर्गाभिधस्य पञ्चमावश्यरूपाज्ञा गृह्णीयात् । तत्र पूर्वस्मिन्नभ्ययने मूलोत्तर-

अनन्तर 'अनन्तचउवीसी जिन नमो' इत्यादि पढे, घाट में  
चौरासी लाख योनि गत जीवों से क्षमापना करके एक करोड़ साठे  
सत्तानवेलाख (१९७०००००) कुल कोटि (कोडी) जीवों की विराधना-  
सम्बन्धी मिथ्यादुष्कृत देकर और अठारह पापभयान की पट्टी बोलकर  
गुरु से कायोत्सर्ग नामक पाँचवें आवश्यक की आज्ञा ग्रहण करे ।

त्यार णाह 'अनन्त चउवीसी जिन नमो' इत्यादि पढे, पछी चौरासी लाख  
योनिगत लुवेनी पासे क्षमापना भागीने अेक करेड साठा सत्ताणु लाख  
(१९७५००००) कुल कोटी (कोडी) लुवेनी विराधना सभधी मिथ्या दुष्कृत आपीने  
अने अठाठ पाप स्थाननी पाटी बोलीने शुरुपासे कायोत्सर्ग नामना पायभा  
आवश्यकनी अज्ञा अडलु करवी

हजार एक सौ बीस (१८२४१२०) प्रकारे "तस्स मिच्छामि दुक्कड" ।

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे ।  
मिच्ची मे सव्वभूएसु, वेर मज्झ न केणइ ॥

एवमह आलोइय, निदिय गरहिय दुगछिउ सम्म ।  
तिविहेण पडिक्कतो, वदामि जिणे चउव्वीस ॥

छेधा होय, केधा होय, परितापना-किलामना उपलवी होय, तो अरिहन्त अनता  
सिद्ध भगवतनी साथे "तम्म मिच्छामि दुक्कड"

आमेमि सव्वे लुवा	अभासु लु सर्वा लुवेने,
सव्वे लुवा अमतु मे	सर्वा लुवे अने क्षमा आपणे
मिच्चीमे सव्वभूअेसु	सर्वा लुवे साथे भारे मित्रता छे
वेर मज्झ न केणुठ	कोणी साथे भारे वेर नथी
अेवमह आलोअय	अे प्रकारे हु आलोअना करी,
निदियगरहियदुगछिउ सम्म,	निंदा करी, (शुरुनी साक्षीअे) विशेअे
	निंदा करी, दुगछा करी
तिविहेण पडिक्कतो	सभ्यक्ष प्रकारे, त्रणु प्रणुअे (अन, वयन,
	कायाअे) प्रतिकमणु करतो थोअे
वदामि लुअे अउव्वीस	अेविश लुनेअेअे प्रभुने वडु लु

ગુણેષુ સ્વલિતમ્ય નિન્દાઽભિહિતા, ઇહ ત્યાચારમસ્વલિતસ્ય ચારિત્રપુરુષસ્યાતિચાર  
લક્ષણવ્રણોત્પત્તિસમ્ભવાત્ત્ચિકિત્સારૂપઃ કાયોત્સર્ગ ઉચ્યતે, અથવા પ્રોક્તે પ્રતિ  
ક્રમણાધ્યયને મિધ્યાત્વાપિરત્યાદિપશ્ચવિધપ્રતિક્રમણદ્વારા કર્માઽગમપ્રતિરોધ  
ઉપપાદિતઃ, ઇહ તુ કાયોત્સર્ગવિધિના પૂર્વસશ્ચિતાના કર્મણા પ્રક્ષયો ભવતીતિ  
પ્રતિપાદ્યતે—‘ ઇચ્છામિ ણ ’ ઇત્યાદિ—

॥ મૂલમ્ ॥

इच्छामि ण भते तुव्मेहि अवभणुण्णाए समाणे ।

देवसियपायच्छित्तविसोहणद्व करेमि काउस्सग्ग ॥ १ ॥

॥ છાયા ॥

इच्छामि खलु भगवन् युष्माभिरभ्यनुज्ञात' सन् ।

दैवसिकप्रपायश्चित्तविशोधनार्थं करोमि कायोत्सर्गम् ॥ १ ॥

॥ ટીકા ॥

व्याख्या प्रस्फुटा ॥ १ ॥

પૂર્વ (ચૌથે) અધ્યયન મેં મૂલ ઓર ઉત્તર ગુણો મેં સ્વલિત  
કી નિન્દા કહી હૈ, ઇસ પાંચવેં અધ્યયન મેં આચાર સે, સ્વલિત  
ચારિત્રરૂપ પુરુષ કે અતિચારરૂપ વ્રણ (ઘાવ) હોને કે સંભવ સે ડસ  
કી ચિકિત્સારૂપ કાયોત્સર્ગ કહા જાતા હૈ । અથવા પ્રતિક્રમણ-  
ધ્યયન મેં મિધ્યાત્વ આદિ પાંચ પ્રકાર કે પ્રતિક્રમણ દ્વારા કર્મોં કે  
આગમન કા પ્રતિરોધ ક્રિયા ગઘા હૈ, ઓર યહાં કાયોત્સર્ગ દ્વારા  
પૂર્વસશ્ચિત કર્મોં કા ક્ષય દિશ્વલાયા જાતા હૈ—‘ ઇચ્છામિ ણ ભતે ’  
ઇત્યાદિ ।

પ્રથમ પહેલા (ચોથા) અધ્યયનમા મૂલ અને ઉત્તર ગુણોમા સ્વલિતની  
નિન્દા કહી છે આ પાંચમા અધ્યયનમા આચારથી સ્વલિત ચારિત્રરૂપ પુરુષના  
અતિચાર રૂપ વ્રણ (ઘા) થવાના સંભવથી તેની ચિકિત્સારૂપ કાયોત્સર્ગ કહેવા  
છે, અથવા પ્રતિક્રમણાધ્યયનમા મિધ્યાત્વ આદિ પાંચ પ્રકારના પ્રતિક્રમણ દ્વારા  
કર્મોના આગમન  
પૂર્વ સશિત કરવામા આવે છે, અને અહીં કાયોત્સર્ગ દ્વારા  
વ્યાખ્યા આવેલ છે (इच्छामि ण भते) ઇત્યાદિ

‘करेमि भते ? सामाइय०’ ‘इच्छामि ठामि काउस्सग्ग०’ ‘तस्सो-  
त्तरीकरणेण०’ इत्येताः सर्वाः पट्टिकाः पठित्वा कायोत्सर्गं विदध्यात्, तत्र  
‘लोगस्स उज्जोयगरे०’ इति पट्टिका वारचतुष्टय मनसा सस्मृत्य सनमस्कार  
कायोत्सर्गं समाप्य च पुनरपि ‘लोगस्स उज्जोयगरे०’ इत्यादि पट्टिका पूर्णा-  
मुच्चारयेत्, ततः ‘इच्छामि खमासमणो०’ इति पट्टिका द्विः पठित्वा गुरुसमीपे  
प्रन्याचक्षीत ॥ १ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्बल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाफलितललित-  
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्गमप्रपन्नैरग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहू-  
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त ‘जैनशास्त्राचार्य’-पदभूषित-कोल्हापुर-  
राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-  
घासीलाल-व्रतिविरचिताया श्रीश्रमणसूत्रस्य मुनि-  
तोपण्याख्याया व्याख्याया पञ्चम  
कायोत्सर्गारयम ययन समाप्तम् ॥ ५ ॥

उसमें प्रथम ‘इच्छामि ण भते’ की पट्टी से कायोत्सर्ग की प्रतिज्ञा  
करके ‘करेमि भते ! सामाइय०’ और ‘इच्छामि ठामि काउस्सग्ग०’ तथा  
‘तस्सोत्तरीकरणेण०’ बोलकर कायोत्सर्ग करे’ और कायोत्सर्गमें  
चार ‘लोगस्स०’ मनमे गिन कर नमस्कारपूर्वक कायोत्सर्ग की  
समाप्ति करे, फिर ‘लोगस्स०’ की पट्टी प्रगट धोलें। तदनन्तर  
‘इच्छामि खमासमणो०’ की पट्टी दो बार बोल कर गुरुके निकट  
प्रत्याख्यान करें ॥ १ ॥

॥ इति पञ्चमअध्ययन समाप्त ॥

तेभा प्रथम ‘इच्छामि ण भते,’ नी पाठीथी कायोत्सर्गनी प्रतिज्ञा करीने  
‘करेमि भते सामाइय’ अने ‘इच्छामि ठामि काउस्सग्ग’ तथा ‘तस्सोत्तरीकरणेण’  
बोलीने कायोत्सर्ग करये अने कायोत्सर्गभा थार ‘लोगस्स’ मनभा उन्धारणु वगर  
बोलीने नमस्कारपूर्वक कायोत्सर्गनी समाप्ति करली, अने पछी ‘लोगस्स’नी पाठी  
प्रगट बोली, ते पछी ‘इच्छामि खमामणो’ नी पाठी के वार बोलीने शुरु  
समीपे प्रत्याख्यान करवु (१)

इति पाचम अध्यायन संपूर्णम्.

ગુણેષુ સ્વલિતમ્ય નિન્દાઽમિહિતા, इह त्वाचारमस्स्वलितस्य चारित्रपुरुषस्यातिचार  
 लक्षणत्रणोत्पत्तिसम्भवात्तच्चिकित्सारूपं कायोत्सर्गं उच्यते, अथवा प्रोक्ते प्रति  
 क्रमणा-अध्ययने मिथ्यात्वाविरत्यादिपञ्चविधप्रतिक्रमणद्वारा कर्माऽऽगमप्रतिरोध  
 उपपादितः, इह तु कायोत्सर्गविधिना पूर्वसञ्चिताना कर्मणा प्रक्षयो भवतीति  
 प्रतिपाद्यते-‘इच्छामि ण’ इत्यादि-

॥ मूलम् ॥

इच्छामि ण भते तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे ।  
 देवसियपायच्छित्तविसोहणद्व करेमि काउस्सग्ग ॥ १ ॥

॥ छाया ॥

इच्छामि खलु भगवन् युष्माभिरभ्यनुज्ञात सन् ।  
 दैवसिक्रमायश्चित्तविशोधनार्थं करोमि कायोत्सर्गम् ॥ १ ॥

॥ टीका ॥

व्याख्या प्रस्फुटा ॥ १ ॥

पूर्व (चौથે) અધ્યયન મેં મૂલ ઓર ઉત્તર ગુણો મે સ્વલિત  
 કી નિન્દા કહી છે, હસ પાંચવેં અધ્યયન મેં આચાર સે સ્વલિત  
 ચારિત્રરૂપ પુરુષ કે અતિચારરૂપ વ્રણ (ઘાવ) હોને કે સંભવ સે ડસ  
 કી ચિકિત્સારૂપ કાયોત્સર્ગ કહા જાતા છે । અથવા પ્રતિક્રમણા-  
 ધ્યયન મેં મિથ્યાત્વ આદિ પાંચ પ્રકાર કે પ્રતિક્રમણ દ્વારા કર્મો કે  
 આગમન કા પ્રતિરોધ કિયા ગયા છે, ઓર યહાં કાયોત્સર્ગ દ્વારા  
 પૂર્વસંચિત કર્મો કા ક્ષય દિશ્વલાયા જાતા છે-‘इच्छामि णं भते’  
 इत्यादि ।

પ્રથમ પહેલા (ચોથા) અધ્યયનમાં મૂલ અને ઉત્તર ગુણોમાં સ્વલિતની  
 નિન્દા કહી છે આ પાંચમા અધ્યયનમાં આચારથી સ્વલિત ચારિત્રરૂપ પુરુષના  
 અતિચાર રૂપ વ્રણ (ઘા) થવાના સંભવથી તેની ચિકિત્સારૂપ કાર્યોત્સર્ગ કહેલો  
 છે, અથવા પ્રતિક્રમણાધ્યયનમાં મિથ્યાત્વ આદિ પાંચ પ્રકારના પ્રતિક્રમણ દ્વારા  
 કર્મોના આવવાપણાને પ્રતિરોધ કરવામાં આવે છે, અને અહીં કાયોત્સર્ગ દ્વારા  
 પૂર્વ સંચિત કર્મોના ક્ષય થતાવવામાં આવેલ છે (इच्छामि णं भते) इत्यादि.

(६) परिमाणकृत (७) निरवशेषम् (८) । सङ्केत (९) चैव अद्वायाः  
(१०) प्रत्याख्यान भवति दशधा ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

‘पञ्चवखाणे’ प्रत्याख्यायते=गुरुसाक्षिक तदभावे स्वसाक्षिक वा प्रति-  
पिध्यते हेयवस्तु, अनागतपाप वा येनेति ‘प्रत्याख्यानम् । ‘दसविहे’ दशविध  
‘पण्णत्ते’ प्रज्ञप्त भगवतेत्यर्थात् । ‘तजहा’ तथा-

अविष्यमे ल्गनेवाले पापों से निवृत्त होने के लिये गुरु-  
साक्षी या आत्मसाक्षी से हेय वस्तु के त्याग करने को प्रत्याख्यान  
कहते हैं, वह दस प्रकार का है—

अविष्यमा लागवावाणा पापोधी निवृत्त थवा भाटे गुरुनी साक्षी अथवा  
ते आत्मनी साक्षीथी हेय वस्तुने त्याग करवा तेने प्रत्याख्यान कडे छे, ते दस  
प्रकारना छे-

१-‘प्रत्याख्यानम्’ अत्र करणे, यद्वा भावे प्रत्याह-पूर्वकात् चक्षिड् व्यक्ताया  
वाचि इत्यस्माल्ल्युटि, तस्यार्द्धधातुक्त्वात्तस्मिन् परे चक्षिड् ख्शाब्वादेशे, ख्शाब्ः  
शकारस्य ‘शस्य यो वे’ ति यादेशे प्रत्याख्यानम् । यत्तु ‘ख्या प्रकथने’ इत्यस्य  
प्रत्याहपूर्वकस्य ल्युडन्तस्य प्रत्याख्यान भवती’—ति ‘तथा प्रत्याख्यातीति  
प्रत्याख्याते’—ति च केचिदाहुस्तद्व्याकरणाज्ञानमूलकम्, ‘रया प्रकथने’ इत्यस्य  
सार्धधातुस्मात्त्रिपयक्त्वात्, तदुक्तं ‘सस्थानत्व नम. ख्यात्रे’ इति वार्तिके  
व्याकरणमहाभाष्यकारपतञ्जलिना—‘नमः ख्यात्रे’ इत्यत्र चक्षिड् ख्शाब्वादेशे  
शकारस्य ‘शस्य यो वे’ ति कृतो यादेशः. ‘शर्परे विसर्जनीय’ इति सूत्र प्रत्यसिद्ध  
शर्परस्पर्परत्वाद्विसर्गस्य विसर्ग एव भवति न तु ‘कुप्त्रो × क × पौ चे’—ति सस्थानत्व  
(जिह्वामूलीयत्व) मिति ‘नम. ख्यात्रे’ इत्यत्र सस्थानत्वाभावश्चक्षिड् ख्शाब्वादेशस्य  
प्रयोजनमितरथा जिह्वामूलीयस्य दुर्वारत्वात्, यदि तु ‘ख्या प्रकथने’ इत्यस्य  
तजादौ प्रयोग स्यात्तदास्मात्तुचि ‘नम ख्यात्रे’ इत्यत्र ‘शर्परे०’ इत्यस्यापप्त्या  
जिह्वामूलीयो दुर्वार स्यादिति भाष्यासङ्गति स्पष्टैव । अतएव ‘पुख्यानम्’  
इत्यत्र ‘पुम खग्यम्परे’ इति रु, ‘सौप्रख्ये भव’ इत्यर्थे ‘योपत्राद्गुरु-  
पोत्तमादि’—ति वुञ्, ‘आख्यातम्’ इत्यादौ ‘सयोगादरातो धातोर्ध्वत् ’ इति-  
निष्ठानत्वम्, ‘पर्याख्यानम्, इत्यादौ णत्व च ‘शस्य यो वे’—त्यस्याऽसिद्धत्वेन  
नेति मपञ्चितमन्यत्र विस्तरेण ।

## । અથ પદ્મમધ્યયનમ્ ।

અનન્તરોક્તે પશ્ચમાભ્યયને પૂર્વસશ્ચિતાના કર્મણા પ્રક્ષયઃ પ્રતિપાદિત', સમ્પ્રતીઢ પઘ્ઠાધ્યયને આગન્તૂના કર્મણા નિરોધઃ પ્રોચ્યતે, અથવા પૂર્વત્ર કાયોત્સર્ગદ્વારા વ્રણચિકિત્સા સમ્પ્રોક્તા, ચિકિત્સોત્તર ચ ગુણપ્રતિપત્તિર્ભવતીતીઢ ગુણધારણાપરાઽઽરુચે પ્રત્યાખ્યાનાધ્યયને મૂલોત્તરગુણધારણામાહ—‘દસવિહે’ ઇત્યાદિ ।

## ॥ મૂલમ્ ॥

દસવિહે પચ્ચક્ષ્ણાણે પપ્પણત્તે તજહા—

‘અનાગયમઙ્કત, કોડીસહિય નિયટિય ચેવ ।

સાગારમણાગાર, પરિમાણકહ નિરવસેસ ।

સકેય ચેવ અદ્ધાણ, પચ્ચક્ષ્ણાણ ભવે દસહા ॥સૂ૦ ૧॥

## ॥ છાયા ॥

દશવિધ પ્રત્યાખ્યાન પ્રજ્ઞપ્ત તથા—અનાગતમ્—(૧) અતિક્રાન્તમ્  
(૨) કોટિસદ્ધિ (૩) નિયન્ત્રિત (૪) ચેવ । સાકારમ્ (૫) આનાકાર

## અથ છઠા અધ્યયન

પાંચવે અધ્યયનમે પૂર્વસશ્ચિત કર્મોં કા ક્ષય કહા ગયા હૈ । હસ છટે અધ્યયનમે નવીન બન્ધનેવાલે કર્મોં કા નિરોધ કહા જાતા હૈ । અથવા પાંચવે અધ્યયનમે કાયોત્સર્ગ દ્વારા અતિચારરૂપ વ્રણ કી ચિકિત્સા કા નિરૂપણ કિયા ગયા હૈ । ચિકિત્સાકે અનન્તર ગુણ કી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ, હસલિયે ‘ગુણધારણ’ નામક હસ પ્રત્યાખ્યાન અ યયનમે મૂલોત્તર ગુણ કી ધારણા કહતે હૈ—‘દસવિહે પચ્ચક્ષ્ણાણે’ ઇત્યાદિ ।

## અથ છઠ્ઠું અધ્યયન

પાચમા અધ્યયનમા પૂર્વસશ્ચિત કર્મેના ક્ષય કહેવામા આબ્યુ છે હવે આ છઠા અધ્યયનમા નવીન બન્ધ થવાવાળા કર્મેના નિરોધ કહેવામા આવે છે અથવા પાચમા અધ્યયનમા કાયોત્સર્ગ દ્વારા અતિચાર રૂપ વ્રણ-ધાવની ચિકિત્સાનું નિરૂપણ કરવામા આબ્યુ છે, ચિકિત્સા કર્યા પછી શુભની પ્રાપ્તિ થાય છે, એ માટે “શુભધારણ” નામના આ પ્રત્યાખ્યાન અધ્યયનમા મૂલોત્તર શુભની ધારણા કહે છે ‘દસવિહે પચ્ચક્ષ્ણાણે’ ઇત્યાદિ

(६) परिमाणकृत (७) निरवशेषम् (८) । सङ्केत (९) चैव अद्वायाः  
(१०) प्रत्याख्यान भवति दशधा ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

‘पञ्चवखाणे’ प्रत्याख्यायते=गुरुसाक्षिक तदभावे स्वसाक्षिक वा प्रति-  
विध्यते हेयवस्तु, अनागतपाप वा येनेति ‘प्रत्याख्यानम्’ । ‘दसविहे’ दशविध  
‘पण्णत्ते’ प्रज्ञप्त भगवतेत्यर्थात् । ‘तजहा’ तयथा-

भविष्यमे लगनेवाले पापों से निवृत्त होने के लिये गुरु-  
साक्षी या आत्मसाक्षी से हेय वस्तु के त्याग करने को प्रत्याख्यान  
कहते हैं, वह दस प्रकार का है—

भविष्यमा लागवावाणा पापोधी निवृत्त थवा भाटे गुरुनी साक्षी अथवा  
तो आत्मनी साक्षीथो हेय वस्तुनो त्याग करवो तेने प्रत्याख्यान कडे छे, ते दस  
प्रकारना छे-

१-‘प्रत्याख्यानम्’ अत्र करणे, यद्वा भावे प्रत्याह-पूर्वकात् चक्षिड व्यक्ताया  
वाचि इत्यस्माल्ल्युटि, तस्यार्द्धधातुक्त्वाच्चस्मिन् परे चक्षिड’ ख्शाब्वादेशे, ख्शाब्वाः  
शकारस्य ‘शस्य यो वे’ ति यादेशे प्रत्याख्यानम् । यत्तु ‘रया प्रकथने’ इत्यस्य  
प्रत्याहपूर्वकस्य ल्युडन्तस्य प्रत्याख्यान भवती’—ति ‘तथा प्रत्याख्यातीति  
प्रत्याख्याते’—ति च केचिदाहुस्तद्व्याकरणाज्ञानमूलकम्, ‘रया प्रकथने’ इत्यस्य  
सार्वधातुकरुमात्रविषयत्वात्, तदुक्तं ‘सस्थानत्व नम. ख्यात्रे’ इति वार्तिके  
व्याकरणमहाभाष्यकारपतञ्जलिना—‘नमः ख्यात्रे’ इत्यत्र चक्षिडः ख्शाब्वादेशे  
शकारस्य ‘शस्य यो वे’ ति कृतो यादेश ‘शर्परे विसर्जनीयः’ इति सूत्र प्रत्यसिद्धः  
शर्परखर्परत्वाद्विसर्गस्य विसर्ग एव भवति न तु ‘कुप्त्रो x क x पौ चे’—ति सस्थानत्व  
(जिह्वामूलीयत्व) मिति ‘नम ख्यात्रे’ इत्यत्र सस्थानत्वाभावश्चक्षिडः ख्शाब्वादेशस्य  
प्रयोजनमितरथा जिह्वामूलीयस्य दुर्वारत्वात्, यदि तु ‘रया प्रकथने’ इत्यस्य  
तन्नादौ प्रयोग. स्यात्तदास्मात्तृचि ‘नम ख्यात्रे’ इत्यत्र ‘शर्परे०’ इत्यस्याप्रप्त्या  
जिह्वामूलीयो दुर्वार स्यादिति भाष्यासङ्गतिः स्पष्टैव । अतएव ‘पुख्यानम्’  
इत्यत्र ‘पुमः खग्यम्परे’ इति रु, ‘सौप्रख्ये भवः’ इत्यर्थे ‘योपवाद्गुरु-  
पोत्तमादि’—ति बुञ्, ‘आरयातम्’ इत्यादौ ‘सयोगादरातो धातोर्यण्वतः’ इति-  
निष्ठानत्वम्, ‘पर्याख्यानम्, इत्यादौ णत्व च ‘शस्य यो वे’—त्यस्याऽसिद्धत्वेन  
नेति प्रपञ्चितमन्यत्र विस्तरेण ।



‘અણાગય’ અનાગત=વૈયાટ્યુચ્યાદિકારણવશાન્નિર્દિષ્ટસમયાત્પ્રાગેત્ તપઃ  
 કરણમ્ (૧) ‘અઙ્કત’ અતિક્રાન્ત=નિર્દિષ્ટસમયમતિક્રમ્ય તપોવિધાનમ્ (૨)।  
 ‘કોટીસહિય’ કોટિસહિતમ્=યયા કોટયા તપઃ સમારબ્ધ તયૈવ તસ્ય  
 પરિસમાપનમ્, અર્થાચ્ચતુર્ભક્તાદિના સમારબ્ધ તપશ્ચતુર્ભક્તાદિનૈવ સમાપનીયમ્ ।  
 ‘ણિયટિય’ નિતરા યન્નિત=પ્રતિજ્ઞયા પ્રતિવદ્ધ નિયન્નિતમ્=વૈયાટ્યુચ્યાદિપ્રગાઢ-  
 કારણસદ્ભાવેઽપિ ‘મયાઽવશ્યમેવામુકદિવસે તપઃ કર્તવ્ય’-મિતિ પ્રતિજ્ઞાયા  
 કૃતાયા કારણે સત્યપિ નિયમિતતપશ્ચરણમ્ (૪) । ઇતચ્ચ વજ્રપ્પભનારાચસહન  
 નધારિણાઽનગારેણ ત્રિયતે । ‘સાગાર’ ઉત્સર્ગાઽપવાદહેતુર્ગર્ભેનાઽઽકારેણ સહ  
 ધર્તત્ત્વેત્ત્વેત્ સાકારમ્, ઇદોત્સર્ગપક્ષેઽનાભોગ-સહસાકારાભ્યામવશ્ય ભાવ્યમ્ ;  
 અપવાદપક્ષે ચ મહત્તરાઘાકારૈઃ (૫) । ‘અણાગાર’ અવિદ્યમાના આકારાઃ=

(૧) અનાગત-વૈયાટ્યુચ્ય (વેયાવચ્ચ) આદિ કારણવશ નિયત  
 સમય સે પહેલે તપ કરના, (૨) અતિક્રાન્ત-નિયત સમય કે બાદ તપ  
 કરના, (૩) કોટિસહિત-જિસ કોટિ (ચતુર્ભક્ત આદિ ક્રમ) સે  
 પ્રારમ્ભ કિયા ઉસીસે સમાપ્ત કરના, (૪) નિયન્નિત-વૈયાટ્યુચ્ય (વેયાવચ્ચ)  
 આદિ પ્રગલ કારણોં કે હો જાને પર ભી સકલ્પિત તપ કા પરિત્યાગ  
 ન કરના, યહ પ્રત્યાખ્યાન વજ્રપ્પભનારાચસહનનધારી અનગાર  
 હી કર સકતે હૈ । (૫) સાગાર-જિસમે ઉત્સર્ગ અવશ્ય રત્વને યોગ્ય  
 અણ્ણત્યથાનાભોગ પ્રૌર સહસાગાર રૂપ તથા અપવાદ (મહત્તર આદિ)  
 રૂપ આગાર હો ઉસે સાગાર કહતે હૈ, (૬) અણાગાર-જિસમે ઉક્ત

(૧) અનાગત-વૈયાટ્યુચ્ય (વેયાવચ્ચ) આદિ કારણ વશ નિયત (નિર્ણય  
 કરેલા) સમય પહેલા તપ કરવું, (૨) અતિક્રાન્ત નિયત (નિર્ણય કરેલા) સમય  
 પછી તપ કરવું, (૩) કોટિસહિત-જે કોટિ (ચતુર્ભક્ત આદિ ક્રમ) થી પ્રારમ્ભ  
 કર્યો તેનાથીજ સમાપ્ત કરવું, (૪) નિયન્નિત-વૈયાટ્યુચ્ય આદિ પ્રગલ કારણો  
 બની બાધ તોપણ સકલ્પ કરેલા તપનો પરિત્યાગ ન કરવો, આ પ્રત્યાખ્યાન  
 વજ્રપ્પભનારાચ-સહનન-ધારી અણ્ણગાર કરી શકે છે, (૫) સાગાર-જેમા  
 ઉત્સર્ગ અવશ્ય સખવા યોગ્ય “અણ્ણત્યથાનાભોગ” અને ‘સહસાગાર રૂપ’  
 તથા અપવાદ (મહત્તર આદિ) રૂપ આગાર હોય તેને સાગાર કહે છે  
 (૬) અણ્ણગાર-જેમા રૂપ આગાર (છટ) સખવામા નહિ આવે

अनाभोगसद्वसाकारव्यतिरिक्ता महत्तरादयो यत्र तदनाकारम् (६) । 'परिमाणरूढ' परिमाण=दत्त्यादिरूप कृत=विहित यस्मिस्तत् (७) । 'निरवशेष' निर्गतानि अवशेषाणि=अवशिष्टान्यशनपानादीनि यत्र तत्, सर्वथाऽशनादिपरित्यागरूपमित्यर्थः (८) । 'सकेय' सङ्केतः=अङ्गुल्यादिचालनस्वरूपश्चिह्नविशेषः, सोऽस्मिन्नस्तीति सङ्केतम्<sup>१</sup> -अङ्गुल्यादिसङ्केतावधिक्रमित्यर्थः, मुष्टिमोचनाऽङ्गुल्यादिपरिचालनादिक्रियातः प्रागेव प्रत्याख्यानमिति भावः (९) । 'अद्वाए' अद्वा=कालो=मुहूर्त्तपौरुष्यादिकस्तस्याः (१०) । प्रत्याख्यानमिति दशस्वपि सम्बध्यते । अद्वाप्रत्याख्यान चानेरुपा तदुपदर्श्यते—

(१) नमोक्कारसहियपञ्चक्खाण-

उग्गए सूरे नमुक्कारसहिय पञ्चक्खामि चउव्विहपि आहार असण  
पाण खाइम साइम अन्नत्थणाभोगेण (१) सहसागारेणं  
(२) वोसिरामि ।

अपवाद रूप आगार ( छूट ) न रक्खे जायँ उसे अणागार कहते हैं,  
(७) परिमाणकृत-जिसमें दत्ति (दात) आदिका परिमाण किया जाय ।  
(८) निरवशेष-जिसमें अशनादि का सर्वथा त्याग हो । (९) सकेत-जिसमें मुट्ठी खोलने आदि का सकेत हो, जैसे-'मैं जयतक मुट्ठी नहीं खोलूँगा तबतक मेरे प्रत्याख्यान है' इत्यादि । (१०) अद्वा-प्रत्याख्यान-मुहूर्त्त पौरुषी आदि काल सम्बन्धी प्रत्याख्यान । इसके अनेक भेद हैं, उनमें से मुख्य २ दस भेद कहते हैं जो संस्कृत टीका में स्पष्ट हैं ॥ सू० १ ॥

तेने अणुगार ठडे छे (७) परिमाणकृत-जेभा दत्ति (दात) अदिनु परिमाण करवाभा आवे (८) निरवशेष-जेभा अशनादिनेा सर्वथा त्याग होय (९) सकेत-जेभा मुट्ठी खोलवा आदिनेा सकेत होय, जेथी रीते छे — "हुँ न्या सुधी मुट्ठी नडि खोलु त्या सुधी मारे प्रत्याख्यान छे" इत्यादि । (१०) अद्वाप्रत्याख्यान-मुहूर्त्तपौरुषी आदि काल सम्बन्धी प्रत्याख्यान तेना अनेक भेद छे, तेभा मुख्य २ दस भेद छडे छे जे संस्कृत टीकाभा स्पष्ट छे (सू० १)

१ अर्थ आदित्वान्मत्वर्थीयोऽच् ।

‘अणागय’ अनागत=वैयावृत्त्यादिकारणवशाद्धिर्दिष्टसमयात्प्रागेत्र तपः  
करणम् (१) ‘अइकत’ अतिक्रान्त=निर्दिष्टसमयमतिक्रम्य तपोविधानम् (२)।  
‘कोडीसहित’ कोटिसहितम्=यया कोट्या तपः समारब्ध तयैव तस्य  
परिसमापनम्, अर्थाच्चतुर्भक्तादिना समारब्ध तपश्चतुर्भक्तादिनैव समापनीयम्।  
‘णियटिय’ नितरा यन्त्रित=प्रतिज्ञया प्रतिबद्ध नियन्त्रितम्=वैयावृत्त्यादिप्रगाढ-  
कारणसद्भावेऽपि ‘मयाऽवश्यमेवामुक्तदिवसे तपः कर्तव्य’-मिति प्रतिज्ञाया  
कृताया कारणे सत्यपि नियमिततपश्चरणम् (४)। एतच्च वज्रर्षभनाराचसहन  
नधारिणाऽनगारेणैव त्रियते। ‘सागार’ उत्सर्गाऽपवादहेतुगर्भेणाऽऽकारेण सह  
वर्तत इति साकारम्, इहोत्सर्गपक्षेऽनाभोग-सहस्राकाराभ्यामवश्य भाव्यम्,  
अपवादपक्षे च महत्तराद्याकारैः (५)। ‘अणागार’ अत्रिद्यमाना आकाराः=

(१) अनागत-वैयावृत्त्य (वेयावच्च) आदि कारणवश नियत  
समय से पहले तप करना, (२) अतिक्रान्त-नियत समय के बाद तप  
करना, (३) कोटिसहित-जिस कोटि (चतुर्भक्त आदि क्रम) से  
प्रारम्भ किया उसीसे समाप्त करना, (४) नियन्त्रित-वैयावृत्त्य (वेयावच्च)  
आदि प्रबल कारणों के हो जाने पर भी सकल्पित तप का परित्याग  
न करना, यह प्रत्याख्यान वज्रर्षभनाराचसहननधारी अनगार  
ही कर सकते हैं। (५) सागार-जिसमें उत्सर्ग अवश्य रखने योग्य  
अण्णत्थणाभोग और सहसागार रूप तथा अपवाद (महत्तर आदि)  
रूप आगार हो उसे सागार कहते हैं, (६) अणागार-जिसमें उक्त

(१) अनागत-वैयावृत्त्य (वेयावच्च) आदि कारण वश नियत (निर्णय  
करेला) समय पहले तप करवु, (२) अतिक्रान्त नियत (निर्णय करेला) समय  
पछी तप करवु, (३) कोटिसहित-जे कोटि (चतुर्भक्त आदि क्रम) से प्रारम्भ  
करो तोनाथीज समाप्त करवु, (४) नियन्त्रित-वैयावृत्त्य आदि प्रबल कारणों  
अनी जय तोपणु सकल्प करेला तपने परित्याग न करवो, आ प्रत्याख्यान  
वज्रर्षभनाराच-सहनन-धारी अण्णत्थणा करी शके छे, (५) सागार-जेमा  
उत्सर्ग अवश्य राखवा योग्य “अण्णत्थणाभोग” अने “सहसागार रूप”  
तथा अपवाद (महत्तर-भोटा आदि) रूप आगार होय तेने सागार कहे छे  
(६) अण्णत्थणा-जेमा कहेला अपवाद रूप आगार (छट) राखवाभा नहि आवे

अनाभोगसहसाकारव्यतिरिक्ता महत्तरादयो यत्र तदनाकारम् (६) । 'परिमाणकृड' परिमाण=दत्त्यादिरूप कृत=विहित यस्मिस्तत् (७) । 'निरवशेष' निर्गतानि अवशेषाणि=अवशिष्टान्यशनपानादीनि यत्र तत्, सर्वथाऽशनादिपरित्यागरूपमित्यर्थः (८) । 'सकेय' सङ्केतः=अङ्गुल्यादिचालनस्वरूपश्विहविशेषः, सोऽस्मिन्नस्तीति सङ्केतम्<sup>१</sup> -अङ्गुल्यादिसङ्केतावधिकमित्यर्थः, मुष्टिमोचनाऽङ्गुल्यादिपरिचालनादिक्रियातः प्रागेव प्रत्याख्यानमिति भावः (९) । 'अद्वाए' अद्वा=कालो=मुहूर्त्तपौरुष्यादिकस्तस्याः (१०) । प्रत्याख्यानमिति दशस्वपि सम्बन्धते । अद्वाप्रत्याख्यान चानेकधा तदुपदर्श्यते—

### (१) नमोक्कारसहियपञ्चक्खाण—

उग्गाए सूरे नमुक्कारसहिय पञ्चक्खामि चउव्विहपि आहार असण पाण खाडम साडम अन्नत्थणाभोगेण (१) सहसागारेण (२) वोसिरामि ।

अपवाद रूप आगार ( छूट ) न रक्खे जायँ उसे अणागार कहते हैं, (७) परिमाणकृत-जिसमें दत्ति (दात) आदिका परिमाण किया जाय । (८) निरवशेष-जिसमें अशनादि का सर्वथा त्याग हो । (९) सकेत-जिसमें मुट्ठी खोलने आदि का सकेत हो, जैसे-‘मैं जबतक मुट्ठी नहीं खोलूंगा तबतक मेरे प्रत्याख्यान है’ इत्यादि । (१०) अद्वा-प्रत्याख्यान-मुहूर्त्त पौरुषी आदि काल सम्बन्धी प्रत्याख्यान । इसके अनेक भेद हैं, उनमें से मुख्य २ दस भेद कहते हैं जो संस्कृत टीका में स्पष्ट हैं ॥ सू० १ ॥

तेने अणुगार ऽडे छे (७) परिमाणकृत-जेभा दत्ति ( दात ) आदिनु परिमाण करवाभा आवे (८) निरवशेष-जेभा अशनादिने सर्वाथा त्याग होय (९) सकेत-जेभा मुट्ठी खोलवा आदिने सकेत होय, जेवी रीते छे — “हु न्या सुधी मुट्ठी नहि खोल त्या सुधी मारे प्रत्याख्यान छे” इत्यादि (१०) अद्वाप्रत्याख्यान-मुहूर्त्तपौरुषी आदि काल सम्बन्धी प्रत्याख्यान तेना अनेक वेद छे, तेभा मुख्य मुख्य दस वेद कडे छे जे संस्कृत टीकाभा स्पष्ट छे (सू०१)

(९) अभिग्गहपच्चक्खाणं—

उग्गए सूरे गठिसहियं मुट्टिसहियं पच्चक्खामि-चउव्विहपि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१), सहसागारेणं (२), महत्तरागारेणं (३), सबसमाहिवत्तियागारेणं (४) वोसिरामि ।

(१०) निव्विगयपच्चक्खाणं—

उग्गए सूरे निव्विगइयं पच्चक्खामि-चउव्विहपि आहारं असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं (१), सहसागारेणं (२), लेवालेवेणं (३), गिहत्थससट्ठेणं (४) उक्खित्तविवेगेणं (५), पडुच्चमक्खिणं (६), पारिद्धावणियागारेणं (७), महत्तरागारेणं (८), सबसमाहिवत्तियागारेणं (९) वोसिरामि ॥ सू० १ ॥



प्रत्याख्यानों के आगारों का यन्त्र

आगार	अन्वय	सहसा	पच्छन	दिसा	साहु	सन्व	महत्तरा	सागा	आउ-	गुरु	पारिद्धा-	गिह-	पडुच्च	आगार
सख्या	प्रत्याख्यान	गारेण	कालेण	मोहेण	वयणेण	वत्तिया	गारेण	गारेण	ट्टण	अभुडा	वणिया-	त्थस	मक्स	सख्या
	सोनेण								पसारेण	णेण	गारेण	सट्टेण	एण	
१	नवकारमी	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	२
२	पौरुपी	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	०	०	६
३	पुरिमवढ	१	१	१	१	१	१	०	०	०	०	०	०	७
४	एकाशन	१	१	०	०	१	१	१	१	१	१	०	०	८
५	एकलठाण	१	१	०	०	१	१	१	०	१	१	०	०	७
६	आविल	१	१	०	०	१	१	०	०	०	१	१	०	८
७	चउत्थ भक्त	१	१	०	०	१	१	०	०	०	१	०	०	५
	(उपपास)													
८	दिवसवरिम	१	१	०	०	१	१५०	०	०	०	०	०	०	४
९	अधिग्रह	१	१	०	०	१	१५०	०	०	०	०	०	०	४
१०	नीवी	१	१	०	०	१	१	०	०	०	१	१	१	९



एव यथाशक्ति प्रत्याख्याय गुरोरभिमुखस्तदभावे पूर्वोभिमुख उत्तराभिमुखो वा भूत्वा दक्षिण जानु भूमौ सस्थाप्य वाम चोर्ध्वीकृत्य साञ्जलिपुट 'नमोत्थु ण' इति पठेत्, तथाहि—

॥ मूलम् ॥

नमोत्थुण अरिहताणं भगवताणं आङ्गराण तित्थयराण  
सयसबुद्धाणं पुरिसुत्तमाण पुरिससीहाण पुरिसवरपुंडरीआण  
पुरिसवरगधहत्थीणं लोघुत्तमाण लोघनाहाण लोघहियाण लोघ-  
पईवाण लोघपज्जोअगराण अभयदयाण चक्खुदयाणं मग्गदयाण  
सरणदयाणं जीवदयाण वोहिदयाण धम्मदयाण धम्मदेसयाण  
धम्मनायगाणं धम्मसारहीण धम्मवरचाउरतचक्खवट्टीण दीवो  
ताण सरण गई पडट्टा अप्पडिहियवरनाणदसणधराण विअट्ट-  
छउमाणं जिणाण जावयाण तित्थाणं तारयाणं बुद्धाणं वोहयाणं  
मुत्ताणं मोयगाण सव्वन्नूण सव्वदरिसीण सिवमयलरुमयमणंत-  
मक्खयमव्वावाहमपुणरावित्तिसिद्धिगडनामधेय ठाणं सपत्ताण  
नमो जिणाण जियभयाणं ॥ सू० २ ॥

॥ छाया ॥

नमोऽस्तु अर्हद्भ्यो भगवद्भ्य आदिकरेभ्यस्तीर्थकरेभ्य स्वयसबुद्धेभ्यः  
पुरुषोत्तमेभ्य. पुरुषसिंहेभ्य पुरुषवरपुण्डरीकेभ्य. पुरुषवरगन्धस्तिभ्यो लोको-

इस प्रकार यथाशक्ति प्रत्याख्यान करके गुरुके निकट और उनके न रहने पर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुँह करके बैठे, और दाहिने जानु (घुटने) को जमीनसे अडा कर बायें जानु को ऊँचा रखकर उसके उपर अञ्जलिपुट धरकर 'नमोत्थुण' का पाठ बोले—

आ प्रमाणे यथाशक्ति प्रत्याख्यान करीने गुरुनी पासे अने तेजोनी डाङ्गरी न होय तो पूर्व अथवा उत्तरदिशा तरङ्ग मुथ राणीने जेअवु अने जमण्ण पगना घुटणुने जमीनथी अडावी अर्थात् नीचे राणी तथा डाणा घुटणुने उंचे राणी तेना उपर जे हाथ जेडी "नमोत्थु णं" ने पाठ जेअवे—



क्षमेभ्यो लोकरायेभ्यो लोकहितेभ्यो लोकप्रदीपेभ्यो लोकरप्रयत्नकरेभ्यः, अमय-  
दयेभ्यश्चक्षुर्दयेभ्यो मार्गदयेभ्यः शरणदयेभ्यो जीवदयेभ्यो बोधदयेभ्यो धर्म-  
दयेभ्यो धर्मदेशकेभ्यो धर्मनायकेभ्यो धर्मसारथिभ्यो धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ति-  
भ्यो द्वीपस्त्राण शरण गतिः प्रतिष्ठा अप्रतिहततरज्ञानदर्शनधरेभ्यो व्यावृत्तच्छब्दभ्यो  
जिनेभ्यो जापकेभ्यस्तीर्णेभ्यस्तारकेभ्यो जुद्धेभ्यो बोधकेभ्यो मुक्तेभ्यो मोचके  
भ्यः सर्वज्ञेभ्यः सर्वदर्शिभ्यः शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्याग्राधमपुनरा  
वृत्तिसिद्धिगतिनामधेय स्थान सम्प्राप्तभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभयेभ्यः ॥ सू० २ ॥

### ॥ टीका ॥

‘नमोत्पु ण’ नमोऽस्तु ‘ण’ इति वाङ्मालङ्कारेऽव्ययम् । ‘अरिहताण’  
अरीन्=रागादिरूपान् शत्रून् ग्रन्ति=नाशयन्तीति व्युत्पत्त्याऽत्र सिद्धाऽर्हतोरुभयोररि-  
हन्त्वपदेन ग्रहण बोध्य, तेभ्योऽरिहन्तुभ्यः, एवमग्रेऽपि सर्वत्रेदृशस्थले । ‘भगवताण’  
व्याख्यातो भगवच्छब्दार्थः । ‘आइगराण’ आदौ=पथमतः स्वस्वशासनापेक्षया  
श्रुतचारित्रधर्मलक्षणकार्यकुर्वति तच्छीला आदिकंरास्तेभ्यः ‘तित्थयराण’ तीर्थते=  
पार्यते ससारमोहमहोदधिर्येन यस्मात्प्रस्मिन्वेति तीर्थे=चतुर्विधः सङ्घस्तत्करण-  
शीलत्वात् तीर्थकरास्तेभ्यः । ‘सयसबुद्धाण’ स्वय=परोपदेशमन्तरेण सम्बुद्धाः=  
सम्यक्तया बोध प्राप्ताः-स्वयसम्बुद्धास्तेभ्य । ‘पुरिसुत्तमाण’ पुरुषेषु उत्तमाः  
श्रेष्ठा ज्ञानान्नन्तगुणवच्चात् इति पुरुषोत्तमास्तेभ्य । ‘पुरिससीहाण’ पुरुषेषु सिंहा

कर्म रूप शत्रुको जीतने वाले अरिहन्त और सिद्ध भगवान  
को नमस्कार हो । श्रुतचारित्ररूप धर्मकी आदि करनेवाले, जिससे  
ससार समुद्र तिरा जाय उसे ‘तीर्थ’ कहते हैं, वह तीर्थ चार प्रकार  
का है-साधु साध्वी श्रावक श्राविका ! इस चतुर्विध सघ की  
स्थापना करने वाले, स्वय बोधको पाने वाले, ज्ञानादि अनन्त गुणोंके

कर्मरूप शत्रुने छुतवावाणा अरिहन्त अने सिद्ध भगवानने नमस्कार थाय  
श्रुतचारित्र रूप धर्मनी आदि करवावाणा, जेनाथी ससारसमुद्र तरी शकाय तेने  
“तीर्थ” कहे छे, ते तीर्थ चार प्रकारना छे, साधु-साध्वी, श्रावक अने श्राविका,  
अने चतुर्विध सघनी स्थापना करवावाणा, स्वय बोधने प्राप्त करवावाणा, ज्ञानादि  
अनन्त गुणाना धारक होवाथी पुरुषोत्तमा श्रेष्ठ, रागद्वेष आदि शत्रुअनेना परान्य

१-कृत्वो हेतुताच्छील्येति कर्तरि टः ।

रागद्वेषादिशत्रुपराजये दृष्टाद्भुतपराक्रमत्वादिति, यद्वा पुरुषाः सिंहा इवेति पुरुष-  
सिंहास्तेभ्यः । 'पुरिसवरपुण्डरीयाण' पुण्डरीक=धवलकमल, वर च तत्पुण्डरीकं वर-  
पुण्डरीक=धवलकमलप्रधान, पुरुषो वरपुण्डरीकमिवेत्युपमितसमासे पुरुषवरपुण्डरीक,  
पुरुषवरपुण्डरीक च पुरुषवरपुण्डरीक च पुरुषवरपुण्डरीक चेत्यादिरीत्यैरुशेषे  
पुरुषवरपुण्डरीकाणि, तेभ्यः, भगवतो वरपुण्डरीकोपमा च विनिर्गताऽशुभमलीम-  
सत्वात् सर्वैः शुभानुभावैः परिशुद्धत्वाच्च, यद्वा यथा पुण्डरीकाणि पङ्काज्जाता-  
न्यपि सलिले वर्द्धितान्यपि चोभयसम्बन्धमपहाय निर्लेपानीव जलोपरि रमणी-  
यानि सन्दृश्यन्ते निजानुपमगुणगणत्रलेन सुरासुरनरनिकरशिरोधारणीयतयाऽ-  
तिमहनीयानि परमसुगवास्पदानि च भवन्ति तथेमे भगवन्तः कर्मपङ्काज्जाता  
भोगाम्भोवर्द्धिताः सन्तोऽपि निर्लेपास्तदुभयतिवर्त्तन्ते गुणसम्पदाऽऽस्पदतया  
च केवलादिगुणभावादखिलभव्यजनशिरोधारणीया भवन्तीति, विस्तरस्त्वत्र  
शास्त्रान्तरेभ्योऽवलोकनीयः । 'पुरिसवरगधद्वयीण' गन्धयुक्ता इस्तिनो गन्ध-

धारक होनेसे पुरुषों में श्रेष्ठ, राग छेप आदि शत्रुओंका पराजय  
करनेमें अलौकिक पराक्रम शाली होनेसे पुरुषों में सिंह के समान,  
समस्त अशुभ रूप मलसे रहित होने के कारण विशुद्ध, श्वेतकमल  
के समान निर्मल, अथवा जैसे कीचड़ से उत्पन्न और जलके योग  
से बढा हुआ होकर भी कमल उन दोनों के ससर्ग को छोड़ कर  
सदा निर्लेप रहा करता है और अपने अलौकिक सुगन्धि आदि  
गुणों से देव मनुष्य आदि के शिरोभूषण बनता है, वैसेही भगवान  
कर्मरूप कीचड़ से उत्पन्न और भोगरूप जलसे बढे हुए होकर भी  
उन दोनों के ससर्ग को छोड़कर निर्लेप रहते हैं, और केवलज्ञान  
आदि गुणों से परिपूर्ण रहने के कारण भव्यजनों के शिरोधार्य होते

कर्मरूप अलौकिक पराक्रमशाली होवाथी पुरुषोभा सिंह समान, सर्व प्रकारना अशुभ  
रूप मलथी रहित होवाना कारणे विशुद्ध श्वेत कमलना जेवा निर्मल, अथवा जेव  
काष्ठरूपमाथी उत्पन्न अने जल-पाणीना योगथी वधेद्वे होवा छता कमल जे अन्नेने  
स सर्ग त्ये छु भेसा निर्लेप रहे छे अने पोताना अलौकिक सुगन्ध आदि गुणोथी  
देव मनुष्य आदिना शिरनु आभूषण अने छे तेवी जे वीते भगवान कर्मरूप काष्ठरूप  
उत्पन्न अने भोगरूप जलथी वधीने पण जे अन्नेने स सर्ग त्ये छु निर्लेप रहे  
छे, अने केवल ज्ञान आदि गुणोथी परिपूर्ण रहेवाना कारणे सव्य छेवोने शिरोधार्य

धमेभ्यो लोकरुनाथेभ्यो लोकहितेभ्यो लोकप्रदीपेभ्यो लोकरुप्रद्योतकरेभ्यः, अमय  
दयेभ्यश्चक्षुर्दयेभ्यो मार्गदयेभ्यः शरणदयेभ्यो जीवदयेभ्यो बोधदयेभ्यो धर्म-  
दयेभ्यो धर्मदेशकेभ्यो धर्मनायकेभ्यो धर्मसारथिभ्यो धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्ति-  
भ्यो द्वीपस्त्राण शरण गतिः प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठतररज्ञानदर्शनधरेभ्यो व्यावृत्तच्छद्वभ्यो  
जिनेभ्यो जापकेभ्यस्तीर्णेभ्यस्तारकेभ्यो बुद्धेभ्यो बोधकेभ्यो मुक्तेभ्यो मोचके  
भ्यः सर्वज्ञेभ्यः सर्वदर्शिभ्यः शिवमचलमरुजमनन्तमक्षयमव्यापामधमपुनरा  
वृत्तिसिद्धिगतिनामधेय स्थान सम्प्राप्तभ्यो नमो जिनेभ्यो जितभयेभ्यः ॥ सू० २ ॥

### ॥ टीका ॥

‘नमोत्थु ण’ नमोऽस्तु ‘ण’ इति वाङ्मालङ्कारेऽव्ययम् । ‘अरिहताण’  
अरीन्=रागादिरूपान् शत्रून् घ्नन्ति=नाशयन्तीति व्युत्पत्त्याऽत्र सिद्धाऽर्हतोरुभयोररि-  
हन्तृपदेन ग्रहण बोध, तेभ्योऽरिहन्तृभ्यः, एवमग्रेऽपि सर्वत्रेदृशस्थले । ‘भगवताण’  
व्याख्यातो भगवन्=उद्बोधार्थं । ‘आङ्गराण’ आदौ=पथमतः स्वस्वशासनापेक्षया  
श्रुतचारित्रधर्मलक्षण कार्यकुर्वन्ति तच्छीला आदिकंरास्तेभ्यः । ‘तित्थयराण’ तीर्थते=  
पार्यते ससारमोहमहोदधिर्येन यस्मात्प्रस्मिन्वेति तीर्थं=चतुर्विधं सङ्घस्तत्करण-  
शीलत्वात् तीर्थकरास्तेभ्यः । ‘सयसबुद्धाण’ स्वयं=परोपदेशमन्तरेण सम्बुद्धाः=  
सम्यक्तया बोध प्राप्ताः-स्वयंसम्बुद्धास्तेभ्यः । ‘पुरिसुत्तमाण’ पुरुषेषु उत्तमाः  
श्रेष्ठा ज्ञानाद्यनन्तगुणवत्त्वात् इति पुरुषोत्तमास्तेभ्यः । पुरिससीहाण’ पुरुषेषु सिंहा

कर्म रूप शत्रुको जीवन वाले अरिहन्त और सिद्ध भगवान  
को नमस्कार हो । श्रुतचारित्ररूप धर्मकी आदि करनेवाले, जिससे  
ससार समुद्र तिरा जाय उसे ‘तीर्थ’ कहते हैं, वह तीर्थ चार प्रकार  
का है-साधु साध्वी श्रावक श्राविका ! इस चतुर्विध सघ की  
स्थापना करने वाले, स्वयं बोधको पाने वाले, ज्ञानादि अनन्त गुणोंके

धर्मरूप शत्रुने छुतवावाणा अरिहन्त अने सिद्ध भगवानने नमस्कार थाय  
श्रुतचारित्र रूप धर्मकी आदि करवावाणा, जेनाथी ससारसमुद्र तरी शकाय तेने  
“तीर्थ” कहे छे, ते तीर्थ चार प्रकारना छे, साधु-साध्वी, श्रावक अने श्राविका,  
अने चतुर्विध सधनी स्थापना करवावाणा, स्वयं बोधने प्राप्त करवावाणा, ज्ञानादि  
अनन्त गुणोना धारक होवाथी पुरुषोभा श्रेष्ठ, शगद्वेष आदि शत्रुकोना परान्ध

१-कृवो हेतुताच्छील्येति कर्त्तरि ट् ।

नाहाण' लोकाना=भव्याना नाथाः=नेतारो योग<sup>१-२</sup>क्षेमकरत्वादिति लोमनाथा-  
स्तेभ्यः, 'लोगहियाण' लोकः=एकेन्द्रियादिः सर्वप्राणिगणस्तस्मै हिताः रक्षोपाय-  
पथप्रदर्शकत्वाल्लोकहितास्तेभ्यः । 'लोगपईवाण' लोकस्य=भव्यजनसमुदायस्य  
प्रदीपास्तन्मनोऽभिनिविष्टानादिमिथ्यात्वतम पटलव्यपगमेन विशिष्टात्मतत्त्वप्रकाशक-  
त्वाद्दीपतुल्यास्तेभ्यः, यथा प्रदीपस्य सकलजीवार्थं तुल्यप्रकाशकत्वेऽपि चक्षु-  
ष्मन्त एव तत्प्रकाशसुखभाजो भवन्ति न त्वन्धास्तथा भव्या एव भगवदनु-  
भावसमुद्भूतपरमानन्दसन्दोहभाजो भवन्ति नाभव्या इति प्रतिबोधयितु  
प्रदीपदृष्टान्त', अत एव च लोकरूपेण भव्यानामेव ग्रहणम् । 'लोगपज्जोयगराण'  
लोकशब्देनात्र-लोक्यते=दृश्यते केवलाऽऽलोकेन यथावस्थिततयेति व्युत्पत्त्या

और लब्ध रत्नत्रय के पालनरूप क्षेम के कारण होनेसे भव्य जीवों  
के नायक । एकेन्द्रिय आदि सकल प्राणिगण के हितकारक । जिस  
प्रकार दीपक सबके लिये समान प्रकाशकारी है तो भी नेत्रवाले ही  
उससे लाभ उठा सकते हैं, नेत्रहीन नहीं, उसी प्रकार भगवान का  
उपदेश सबके लिये समान हितकर होने पर भी भव्यजीव ही  
उससे लाभ उठाते हैं, अभव्य नहीं, अतएव भव्यो के हृदय में  
अनादिकालसे रहे हुए मिथ्यात्वरूप अन्धकार को मिटाकर आत्माके  
यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करनेवाले । 'लोक' शब्दसे यहाँ लोक  
और अलोक दोनों का ग्रहण है, अतएव केवलज्ञान रूपी आलोक

अलब्ध रत्नत्रयना लाभाय योग अने लब्ध रत्नत्रयना पालनरूप क्षेमना कारण  
होवाथी लब्ध लोवोना नायक, ऐकेन्द्रिय आदि सकल प्राणिगणना हितकारक  
ने प्रभावे दीपक सर्वने भाटे समान प्रकाश आपनार छे तो पण नेत्रवाणा  
लोवो न तेना लाभ प्राप्त करी शके छे, पण नेत्र हीन प्राप्त करी शकता नथी,  
ते प्रभावे भगवानने उपदेश सोना भाटे समान हितकर होवा छताथ लब्ध  
लोवो न तेना लाभ पायी शके छे, अलब्ध लोवो पायी शकता नथी अटला भाटे  
लब्ध लोवोना हृदयमा अनादि कालधी रहल मिथ्यात्वरूप अन्धकारने निवारण  
करी आत्माना यथार्थ स्वरूपने प्रकाशित करवावाणा लोक शब्धी आ स्थणे

१-२—अलब्धलाभो योग, लब्धपरिरक्षण क्षेम, इह च प्रकरणादलब्ध-  
लब्धपदाभ्या रत्नत्रयस्य ग्रहणम् ।

हस्तिनः, वराश्व, ते गन्धहस्तिनो वरगन्धहस्तिनः, पुरुषा वरगन्धहस्तिनः  
पुरुषवरगन्धहस्तिनस्तेभ्यः । गन्धहस्तिक्षण यथा—

“यस्य गन्ध समाघ्राय, पलायन्ते परे गजाः ।

त गन्धहस्तिन विग्रान्पतेर्विजयाग्रहम्” ॥ इति ।

अत एव यथा गन्धहस्तिगन्धमाघ्राय गजान्तराणीतस्ततो द्रुत पलाय्य  
क्वापि निलिलीपन्ते तद्वदचिन्त्यातिशयप्रभाववशाद्भगवद्विहरणसमीरणगन्ध  
सम्बन्ध<sup>१</sup>गन्धतोऽपीति<sup>२</sup>—डमर—मरकादय उपद्रवा द्राग् दिक्षु मद्रवन्तीति, गन्ध-  
गजाश्रितराजवद्भगवदाश्रितो भव्यगणः सर्वदा विजयवान् भवतीति भवत्युभयो-  
र्युक्त साहस्यम्, <sup>३</sup>एतच्चेह सर्वत्र चन्द्रमुखादिवदेरुदेशिकृतयैव न सर्वव्यापकतयेति  
नात्र कश्चिदपि विपश्चिता केनापि कर्तुं क्षमः क्षोदक्षेमः । ‘लोगुत्तमाण’ लोकेषु=

भव्यसमाजेषु उत्तमाश्चतुर्विंशदतिशय—पञ्चत्रिंशद्वाणीगुणोपेतत्वात् तेभ्यः । ‘लोग-  
हैं । जिसका गन्ध सूँघते ही सब हाथी डर के मारे भग जाते हैं  
उस हाथी को ‘गन्धहस्ती’ कहते हैं, उस गन्धहस्ती के आश्रय  
से जैसे राजा सदा विजयी होता है उसी प्रकार भगवानके अतिशय  
से देशके अतिवृष्टि—अनावृष्टि आदि स्वचक्र—परचक्र—भयपर्यन्त—उह  
प्रकार की ईति, और महामारी आदि सभी उपद्रव तत्काल दूर  
होजाते हैं, और आश्रित भव्यजीव सदा सब प्रकार से विजयी होते  
हैं । चाँतीस अतिशयों और चाणी के पैतीस गुणों से युक्त होने  
के कारण लोगो में उत्तम, अलभ्य रत्नत्रय के लाभरूप योग

थाय छे जेने। गंध सुघताञ्च सर्वं हाथी डरीने लागी जाय छे ते हाथीने “गन्ध  
हस्ती” कहे छे ते गंधहस्तीना आश्रयथी जेम राजा हुमेशा विजयी थाय छे ते  
प्रमाणे भगवानना अतिशयथी देश ॥ अतिवृष्टि अनावृष्टि आदि न्वचक्र परचक्र  
—भय पर्यन्त छ प्रकारनी ईति अने महामारी आदि सर्व उपद्रवो तत्काल दूर थथ  
जाय छे, अने आश्रित भव्य छवो सहाय सर्व प्रकारथी विजयवान् थाय छे चाँतीस  
अतिशयथी अने चाणीना पातीस गुणोथी युक्त होवाना कारणे लोकोभा उत्तम,

१-गन्धत=लेशत इत्यर्थ, “गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सन्धगर्वयो” इति कोशात् ।

२-ईतयो यथा—“अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मृषिका शलभा खगा” । प्रत्यासन्नाश्च  
राजान पश्येता ईतय स्मृता ॥” इति ।

३-साहस्यम् ।

प्रदर्शयति, तथा भगवन्तोऽपि भवाऽरण्ये रागद्वेषलुण्टाकलुण्टिताऽऽत्मगुणधनेभ्यो  
 दुराग्रहपट्टिकाऽऽच्छादितज्ञानचक्षुर्भ्यो मित्यात्वोन्मार्गे पातितेभ्यस्तदपनयन-  
 पूर्वकं ज्ञानचक्षुर्दत्त्वा मोक्षमार्गं प्रदर्शयन्ति । एतदेव भद्रचन्तरेणाऽऽह-‘भग्नदयाण’  
 मार्गः=सम्यग्रत्नत्रयलक्षणः शिवपुरपथः, यद्वा विशिष्टगुणस्थानावापकः क्षयो-  
 पशमभावो मार्गस्तस्य दयाः=दातारस्तेभ्यः । ‘सरणदयाण’ शरण=परित्राण,  
 कर्मरिपुवशीकृततया व्याकुलाना प्राणिना रक्षणस्थान वा तस्य दयास्तेभ्यः ।  
 ‘जीवदयाण’ जीवेषु=एकेन्द्रियादिसमस्तप्राणिषु दया=सङ्कटमोचनलक्षणा  
 येषामिति, यद्वा जीवन्ति मुनयो येन स जीवः=सयमजीवित तस्य दयास्तेभ्यः ।  
 ‘धम्मदयाण’ धर्मः=दुर्गतिप्रपतज्जन्तुसरक्षणलक्षणः श्रुतचारित्रात्मकस्तस्य दया-

(अरण्य) मे राग-द्वेषरूप लुटेरो से ज्ञानादि गुण लुटाये हुए तथा  
 कदाग्रह रूप पट्टे से ज्ञाननेत्र को ढक कर मित्यात्व के गड्ढे में  
 गिराये हुए उन भव्य जीवो के उस कदाग्रह रूप पट्टे को दूर कर  
 उन्हें ज्ञान नेत्र देने वाले, अतएव सम्यक्त्नत्रयस्वरूप मोक्ष  
 मार्ग, अथवा विशिष्ट गुण को प्राप्त कराने वाला क्षयोपशमभाव  
 रूप मार्ग को देनेवाले, कर्मशत्रुओ से दु खित प्राणियों को शरण  
 (आश्रय) देनेवाले, पृथिव्यादि पड्जीवनिकाय में दया रखने वाले,  
 अथवा मुनियों के जीवनाधारस्वरूप सयमजीवित को देनेवाले,  
 सम-सवेग आदि के प्रकाशक, अथवा जिनवचन मे रुचि को  
 देनेवाले, दुर्गति मे पडते हुए प्राणियों के धारक, अथवा श्रुत-चारित्र  
 रूप धर्म को देनेवाले, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक अर्थात्

तथा कदाग्रह इपी पाटा णाधी ज्ञाननेत्रने ढाडीने मित्यात्व इप भाडामा नायेवा  
 ते भव्य एवेना कदाग्रह इप पाटाने ढर करी तेभने ज्ञाननेत्र आपवावाणा, अट्टे  
 डे सभ्यक्ष रत्नत्रयस्वइप मोक्षमार्ग, अथवा विशिष्ट गुण प्राप्त उरावनार क्षयोपशम  
 भाव इप मार्गना आपवावाणा कर्मशत्रुओधी दु खित प्राणीओने शरण-आश्रय  
 हेनारा, पृथ्वी आदि पड्जीवनिकायमा दया राभवावाणा, अथवा मुनियोना एवनाधार  
 स्वइप सयमएवना देवावाणा सम सवेग आदिना प्रकाशक, अथवा जिनवचनमा  
 रुचि आपनारा, दुर्गतिमा पडता एवेने धारण करनार, अथवा श्रुत-आरित्र इप  
 धर्मना देवावाणा धर्म उपदेशक धर्मना नायक अर्थात् प्रवर्तक धर्मना सारथी

लोकालोकयोर्भयोर्ग्रहण, तेन लोकरस्य=लोकालोकलक्षणस्य सकलपदार्थस्य प्रद्योतः-लोकालोकप्रद्योतस्त कर्तुं शील येषा ते लोकालोकप्रद्योतकराः=सर्वलोक-प्रकाशकरणशीलास्तेभ्यः, ताच्छील्ये कर्तरि टः प्रत्ययः । 'अभयदयाण' न भयमभय भयानाम्भावो वा अभयमक्षोभलक्षण आत्मनोऽवस्थाविशेषो मोक्ष-साधनभूतमुत्कृष्टधैर्यमिति यावत्, दयन्ते=ददतीति दयाः<sup>२</sup>, अभयस्याभय<sup>३</sup> वा दयाः अभयदया', यद्वा-अभया=भयविरहिता दया=सर्वजीवसङ्कटप्रतिमोचन-स्वरूपाऽनुकम्पा येषा तेऽभयदयास्तेभ्यः । 'चक्षुदयाण' चक्षुः=ज्ञान निखिल-वस्तुतत्त्वाऽवभासकतया चक्षुःसादृश्यात्, तस्य दयाः=दायकाश्चक्षुर्दयास्तेभ्यः, यथा हरिणादिशरण्येऽरण्ये लुण्टाकलुण्टितेभ्यः पट्टिकादिदानेन चक्षुषि पिधाय हस्तपादादि वद्भवा तैर्गते पातितेभ्यः कश्चित्पट्टिकाद्यपनोदनेन चक्षुर्दत्त्वा मार्गं

(प्रकाश)से समस्त लोकालोक के प्रकाश करने वाले । मोक्ष के साधक, उत्कृष्ट धैर्यरूपी अभय को देनेवाले, अथवा समस्त प्राणियों के सकट को छुड़ानेवाली दया (अनुकम्पा)के धारक । ज्ञान नेत्र के दायक, अर्थात् जैसे किसी गहन वनमें लुटेरों से लूटे गये और आखों पर पट्टी बाधकर तथा हाथ-पैर पकडकर गड्डे में गिराये गये पथिक के सब बन्धनों को तोडकर कोई दयालु नेत्र खोल देता है, इसी प्रकार भगवान भी ससाररूपी अपार कान्ता

लोक अने अलोक अन्नेनु प्रदुष्य करेछु छे, अटला भाटे डेवणज्ञान इपी आलोक (प्रकाश) थी समस्त लोकालोकने प्रकाश करवावाणा मोक्षना साधक, उत्कृष्ट धैर्यइपी अभयना देवावाणा, अथवा समस्त प्राणीअेना सकटने छोडाववावाणी दया (अनुकम्पा)ना धारक ज्ञान नेत्रना आपवावाणा, अर्थात् जेभ डोअं गाढ वनमा लुटाराथी लुटाअेला अने नेत्र उपर पाटा आधीने तथा हाथ पगने पकडीने गहारा आडाभा डेकी दीधा होय तेवा सुमाकरने डोअं दयाणु भाणुस आवीने तेना तमाम बधने तोडीने नेत्रने जोखी आपे छे, अे प्रमाणे भगवान पणु स सार इपी विधम वनमा राग-द्वेष इपी लुटाराअेथी ज्ञानादि शुणु लुटाअेला

१- 'अविघ्न'-मित्यादिवदभावार्थकनवा 'अव्यय विभक्ती'-स्यव्ययीभाव' ।

२- 'दया'-पचादेराकृतिगणत्वादच् ।

३- अव्ययीभावपक्षे पष्ठ्या 'नाव्ययीभावादतोऽम्बपञ्चम्या' इत्यमादेश ।

प्रदर्शयति, तथा भगवन्तोऽपि भवाऽरण्ये रागद्वेषलुण्ठारुलुण्ठिताऽऽत्मगुणधनेभ्यो  
दुराग्रहपट्टिकाऽऽच्छादितज्ञानचक्षुर्भ्यो मिव्यात्वोन्मार्गे पातितेभ्यस्तदपनयन-  
पूर्वकं ज्ञानचक्षुर्दत्त्वा मोक्षमार्गं प्रदर्शयन्ति । एतदेव भङ्गचन्तरेणाऽऽह-‘मग्गदयाण’  
मार्गः=सम्यक्कृतत्रयलक्षणः शिवपुरपथः, यद्वा विशिष्टगुणस्थानावापकः क्षयो-  
पशमभावो मार्गस्तस्य दयाः=दातारस्तेभ्यः । ‘सरणदयाण’ शरण=परित्राण,  
कर्मरिपुवशीकृततया व्याकुलाना प्राणिना रक्षणस्थान वा तस्य दयास्तेभ्यः ।  
‘जीवदयाण’ जीवेषु=एकेन्द्रियादिसमस्तप्राणिषु दया=सङ्कटमोचनलक्षणा  
येषामिति, यद्वा जीवन्ति मुनयो येन स जीवः=सयमजीवित तस्य दयास्तेभ्यः ।  
‘धम्मदयाण’ धर्म=दुर्गतिप्रपतज्जन्तुसरक्षणलक्षण, श्रुतचारित्रात्मरुस्तस्य दया-

(अरण्य) में राग-द्वेषरूप लुटेरो से ज्ञानादि गुण लुटाये हुए तथा  
कदाग्रह रूप पट्टे से ज्ञाननेत्र को ढक कर मिव्यात्व के गड्ढे में  
गिराये हुए उन भव्य जीवों के उस कदाग्रह रूप पट्टे को दूर कर  
उन्हे ज्ञान नेत्र देने वाले, अतएव सम्यक्कृतत्रयस्वरूप मोक्ष  
मार्ग, अथवा विशिष्ट गुण को प्राप्त कराने वाला क्षयोपशमभाव  
रूप मार्ग को देनेवाले, कर्मशत्रुओं से दु खित प्राणियों को शरण  
(आश्रय) देनेवाले, पृथिव्यादि पङ्जीवनिकाय मे दया रखने वाले,  
अथवा मुनियों के जीवनाधारस्वरूप सयमजीवित को देनेवाले,  
सम-सवेग आदि के प्रकाशक, अथवा जिनवचन में रुचि को  
देनेवाले, दुर्गति में पडते हुए प्राणियों के धारक, अथवा श्रुत-चारित्र  
रूप धर्म को देनेवाले, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक अर्थात्

तथा कदाग्रह रूपी पाटा ढाधी ज्ञाननेत्रने ढाडीने मिव्यात्व रूप भाडाभा नापेवा  
ते भव्य एवोना कदाग्रह रूप पाटाने दूर करी तेमने ज्ञाननेत्र आपवावाणा, ओट्टे  
डे सम्भय् रत्नत्रयस्वउप मोक्षमार्ग, अथवा विशिष्ट गुण प्राप्त कशवनार क्षयोपशम  
भाव रूप मार्गना आपवावाणा कर्मशत्रुओथी दु खित प्राणीओने शरण-आश्रय  
देनार, पृथ्वी आदि पङ्जीवनिकायमा दया राभवावाणा, अथवा मुनियोना एवनाधार  
स्वरूप सयमएवना देवावाणा सम सवेग आदिना प्रकाशक, अथवा जिनवचनमा  
रुचि आपनार, दुर्गतिमा पडता एवोने धारण करनार, अथवा श्रुत-चारित्र उप  
धर्मना देवावाणा धर्म उपदेशक धर्मना नायक अर्थात् प्रवर्तक धर्मना सारथी



स्तेभ्यः<sup>१</sup> । 'धम्मदेसयाण' धर्मः प्रारूपतिपादितलक्षणस्तस्य देशकाः=उपदेश-  
कास्तेभ्यः । 'धम्मनायगाण' धमस्य नायकाः=नेतारः प्रभव इति यावत्  
धर्मनायकास्तेभ्यः । 'धम्मसारहीण' धर्मस्य सारथयः धर्मसारथयस्तेभ्यः, भग  
वत्सु सारथित्वाऽऽरोपेण धर्मे रथत्वाऽऽरोपो व्यज्यत इति परम्परितरूपक्रमलङ्कार-  
स्तस्माद् यथा सारथयो रथद्वारा तत्स्थमध्वनीन सुखपूर्वकमभीष्ट स्थान नयन्त्यु-  
न्मार्गगमनादितश्च गतिरुन्धन्ति तथा भगवन्तो धर्मद्वारा मोक्षस्थानमिति भावः ।  
'धम्मवरचाउरतचक्कवट्टीण' दान-शील-तपो-भावैः चतसृणा=नरकादिगतीना  
चतुर्णां वा कपायाणामन्तो=नाशो यस्मात्, अथवा चतस्रो गतीश्चतुरः कपायान्  
वा अन्तयति=नाशयतीति, यद्वा चतुर्भिर्दान-शील-तपो-भावैः कृत्वा अन्तो=  
रम्यः, अथवा चत्वारः=दानादयः अन्ताः=अवयवा यस्य, यद्वा चत्वारि=दाना-  
दीनि अन्तानि=स्वरूपाणि यस्य, 'अन्तोऽवयवे स्वरूपे च' इति हेमचन्द्रः, स

प्रवर्त्तक, धर्म के सारथी अर्थात् जिस प्रकार रथपर चढे हुए को  
सारथी रथके द्वारा सुखपूर्वक उसके अभीष्ट स्थान पर पहुँचाता  
है उसी प्रकार भव्य प्राणियों को धर्मरूपी रथ के द्वारा सुखपूर्वक  
मोक्ष स्थान पर पहुँचाने वाले, दान-शील-तप और भाव से नरक  
आदि चार गतियों का अथवा चार कपायों का अन्त करने वाले,  
अथवा चार दान शील तप और भाव से अन्त-रमणीय, या दान आदि  
चार अन्त - अवयव वाले, अथवा दान आदि चार अन्त - स्वरूप वाले,

अर्थात् जेवी रीते रथ पर बेटेखाने सारथी रथ द्वारा सुखपूर्वक तेना धारेला स्थानके  
पहोचाये छे ते प्रभाण्णे बाण्य प्राणीणोने धर्मरूपी रथ वडे सुखपूर्वक मोक्ष स्थान  
पर पहोचायेवावाणा दान-शील-तप अने भावथी नरक आदि चार गतिओने।  
अथवा चार कपायेने। अन्त करवावाणा, अथवा चार दान-शील-तप अने  
भावथी अन्त-रमणीय, अथवा दान आदि चार अन्त-अवयववाणा, अथवा  
दान आदि चार अन्त-स्वरूपवाणा श्रेष्ठ धर्मने "धर्मवरचाउरन्त" कहे छे, जेज

१-इहोक्तोऽपि सर्वत्र 'त दयन्ते' इत्यप्युक्त्याख्यानाम् 'अधीगर्घदयेशाम्-इति  
कर्मणि पठ्युपपत्तेः, शेषत्वाविवक्षाया द्वितीयाया सरचेऽपि वा 'कर्मण्यण्' (३ ।  
२।१) इत्यणुत्पत्त्या 'अमयदायेभ्य' इत्याग्निरुप्रयोगापत्तेर्दुर्वात्त्वादित्यास्तामिदम् ।

२-अन्तोः=रम्यः—'मृतावसिते रम्ये समाप्तावन्त इत्यते' इति विश्वकोषः ।

चातुरन्तः, स एव चातुरन्तः<sup>१</sup>, स्वार्थिकः प्रज्ञाद्यण, चातुरन्त एव चक्र जन्म-जरा-  
-मरणोच्छेदकत्वेन चक्रतुल्यत्वात्, वर च तत् चातुरन्तचक्र वरचातुरन्तचक्र,  
वरपदेन राजचक्रापेक्षयाऽस्य श्रेष्ठत्व व्यज्यते, लोकद्वयसाधकत्वात्, धर्म एव  
वरचातुरन्तचक्र धर्मवरचातुरन्तचक्र तादृशस्य धर्मातिरिक्तस्यासम्भवात्, अत  
एव सौगतादिधर्माभासनिरासः, तेपा ताच्चिकार्थप्रतिपादकत्वाभावेन श्रेष्ठत्वा-  
भावात्, धर्मवरचातुरन्तचक्रेण वर्त्तितु शील येपामिति धर्मवरचातुरन्तचक्र-  
वर्त्तिनस्तेभ्यः, चक्रवर्तिपदेन पट्खण्डाधिपतिसादृश्य व्यज्यते, तथाहि चत्वारः=  
उत्तरदिशि हिमवान्, शेषदिक्षु चोपाधिभेदेन समुद्राः अन्ताः=सीमानस्तेषु स्वामित्वेन  
भवाश्चातुरन्ताः, चक्रेण=रत्नभूतप्रहरणविशेषेण वर्त्तितु शील येपा ते चक्रवर्त्तिनः,  
चातुरन्ताश्च ते चक्रवर्त्तिनश्चातुरन्तचक्रवर्त्तिनः, धर्मेण=न्यायेन वराः=श्रेष्ठा  
इतरराजापेक्षयेति धर्मवराः 'धर्मा. पुण्य-यम-न्याय-स्वाभावाऽऽचार-सोमपाः'  
इत्यमरः, ते च ते चातुरन्तचक्रवर्त्तिनश्चेति धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्त्तिनः, यद्वा  
चातुरन्त च तच्चक्र-चातुरन्तचक्र वर च तच्चातुरन्तचक्र-वरचातुरन्तचक्र, धर्मो

श्रेष्ठ धर्मको 'धर्मवरचातुरन्त' कहते हैं, यही जन्म जरा मरण के नाशक होने से चक्र के समान है, अतएव धर्मवरचातुरन्त रूप चक्र के धारक । यहां पर 'वर' पद देने से राजचक्र की अपेक्षा धर्मचक्र की उत्कृष्टता सूचित की गयी है, तथा सौगत आदि धर्म का निराकरण किया गया है, क्यों कि राजचक्र केवल इस लोकका साधक है परलोकका नहीं, तथा सौगत आदि धर्म यथार्थ तत्त्वों का निरूपक न होने से वह श्रेष्ठ नहीं है । 'चक्रवर्त्ति' पद देने से तीर्थङ्करों को छह खण्ड के अधिपति राजा की उपमा दी गई है, क्यों कि वह राजा भी चार अर्थात् उत्तर दिशामें हिमवान और पूर्व-दक्षिण-पश्चिम दिशामें

जन्म जरा अने मरणनु नाशक होवाथी अक समान छे अेटवे धर्मवरचातुरन्त रूप अकना धारक अडिआ 'वर' पद आपवाथी राजचक्रनी अपेक्षा धर्मचक्रनी उत्कृष्टता तथा सौगत आदि धर्मनु निराकरण करवाभा आ यु छे कारण के - राजचक्र केवल आ लोकनु साधन छे, परलोकनु नहीं, तथा सौगत आदि धर्म यथार्थ तत्त्वनु निरूपक न होवाथी ते श्रेष्ठ नहीं 'चक्रवर्त्ति' पद आपवाथी तीर्थङ्करने छ भउना अधिपति राजनी उपमा आपी छे कारण के ते राज पणु चार अर्थात् उत्तर दिशाभा हिमवान् अने

वरचातुरन्तचक्रमिव-धर्मरचातुरन्तचक्र तेन वर्चितु वर्तयितु वा शीलमेयामिति ।  
 'दीवो' द्वीपः ससारसमुद्रे निमज्जता द्वीपतुल्यत्वात्, 'त्राण' त्राण=कर्म-  
 कदर्थिताना भव्याना रक्षणसक्षणः, अत एव तेषा 'सरणगई' शरणगतिः=  
 आश्रयस्थानम्, 'पइहाण' प्रतिष्ठान=कालत्रयेऽप्यविनाशित्वेन स्थितः, 'दीवो'-  
 इत्यादीनि 'पइहा' इत्यन्तानि सौत्रत्वाच्चतुर्व्यर्थे प्रथमैकवचनान्तानि, 'त्राण'-  
 मिति नष्टमरत्व 'प्रतिष्ठे'-ति स्त्रीत्व च भगवतः सर्वशक्तिमत्त्वदर्शनाय । 'अप्प-  
 डिहयवरणाणदसणधराण' प्रतिहत=भित्त्याद्यावरणस्वलित, न प्रतिहतमप्रतिहत  
 ज्ञान च दर्शन चेति ज्ञानदर्शने, वरे=श्रेष्ठे च ते ज्ञानदर्शने रज्ञानदर्शने=केवल  
 ज्ञानकेवलदर्शने अप्रतिहते वरज्ञानदर्शने-अप्रतिहतवरज्ञानदर्शने, धरन्तीति धरा  
 अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनयोर्धराः-अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरा =आवरणरहितकेवलज्ञान-  
 केवलदर्शनधारिणस्तेभ्यः । 'प्रिअट्टउमाण' जायते=आप्रियते केवलज्ञानकेवल  
 दर्शनाद्यात्मनोऽनेति छद्म=घातिकर्मवृन्द ज्ञानावरणीयादिरूप वा कर्मजातम्,  
 व्यावृत्त=निवृत्त छद्म येभ्यस्ते व्यावृत्तच्छद्मानस्तेभ्यः । 'जिणाण' जिनेभ्यः=  
 स्वय-राग-द्वेष-शत्रुजेतभ्यः । 'जावयाण' जापयन्ति=जयन्त भव्यजीवगण

लवण समुद्र है सीमा जिसकी ऐसे भरतक्षेत्र पर एकशासन  
 राज्य करता है । ससार समुद्रमे डूबते हुए जीवोंके एक मात्र  
 आश्रय होने से द्वीप समान, कर्मों से सत्रस्त भव्य जीवो की  
 रक्षामे दक्ष होने से त्राणरूप, उनको शरण देने के कारण शरण-  
 गति-आश्रयस्थान । तीनों कालमे अविनाशी स्वरूपवाले होने से  
 प्रतिष्ठानरूप । आवरण रहित केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक ।  
 ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का नाश करने वाले । राग-द्वेषरूप शत्रु

पूर्व-दक्षिण-पश्चिम दिशाभा लवण समुद्र छे सीमा जेनी जेवा भरत क्षेत्र पर एक-  
 शासन राज्य करे छे ससारसमुद्रभा डूबता जेवने एकमात्र आश्रय होवाथी  
 द्वीप समान, कर्मोथी सताप पावेला लव्य जेवनी रक्षामे दक्ष होवाथी (कुशल  
 होवाथी) नाष्टरूप, तेज्जेने शरण देवावाणा होवाथी शरणगति-आश्रयस्थान त्रष्टे  
 क्षयभा अविनाशी स्वरूपवाणा होवाथी प्रतिष्ठान रूप आवरणरहित केवलज्ञान  
 केवल दर्शनना धारक ज्ञानावरणीय आदि कर्मोना नाश करवावाणा राग-द्वेषरूप

धर्मदेशनादिना प्रेरयन्तीति जापकाः<sup>१</sup>, तेभ्यः । 'तिन्नाण' स्वय ससारौघ तीर्णा-  
स्तेभ्यः । 'तारयाण' तारयन्त्यन्यानि तारकास्तेभ्यः । 'बुद्धाण' बुद्धेभ्यः=स्वय  
बोध प्राप्तेभ्यः । 'बोह्याण' बोधयन्त्यन्यानि बोधकास्तेभ्यः । 'मुत्ताण'  
अमोचिपत स्वय कर्मपञ्जरादिति मुक्तास्तेभ्यः । 'मोयगाण' मुच्यमानानन्यान्  
प्रेरयन्तीति मोचकास्तेभ्यः । 'सव्वन्नूण' सर्वे=सङ्गलद्रव्य-गुण-पर्याय-  
लक्षण वस्तुजात याथातथ्येन जानन्तीति सर्वज्ञास्तेभ्यः । 'सव्वदरिसीण' सर्वे=  
समस्तपदार्थस्वरूप सामान्येन द्रष्टु शील येषा ते सर्वदर्शिनस्तेभ्यः । 'सिव'  
शिव निखिलोपद्रवरहितात्तान्छिव (कल्याण) मयम्, स्थानमित्यस्य विशेषण-  
मिदम्, शिवादीना सर्वेषा द्वितीयान्तानामग्रेतनेन 'सम्प्राप्तेभ्य' इत्यनेन  
सम्बन्धः । 'अयल' अचलम्=स्वाभाविकप्रायोगिकचलनक्रियाशून्यम् । 'अरुय'  
अरुजम्-अविद्यमाना रुजा यस्मिंस्तत्, तत्रात्मनामविद्यमानशरीरमनस्कत्वादाधि-  
व्याप्तिरहितमित्यर्थः । 'अणत' अविद्यमानोऽन्तो=नाशो यस्य तत् । अत एव  
'अक्खय' नास्ति लेशतोऽपि क्षयो यस्य तत्-अविनाशीत्यर्थः । 'अव्वावाह'  
न विद्यते व्यावाधा=पीडा द्रव्यतो भावतश्च यत्र तत् । 'अपुणरावित्ति' अवि-  
द्यमाना पुनरावृत्तिः=ससारे पुनरवतरण यस्मात् तत्, यत्र गत्वा न कदाचिद-  
प्यात्मा विनिवर्त्तते, समाम्नातमन्यत्रापि-'न स पुनरावर्त्तते न स पुनरावर्त्तते'  
इति । इत्थमुक्तशिवत्वादिविशेषणविशिष्टम् 'सिद्धिगइनामप्रेय' सिद्धिगतिरिति

को स्वय जीतने वाले और दूसरों को जीताने वाले । भवसमुद्र को  
स्वय तैरने वाले और दूसरों को तिराने वाले । स्वय बोध को प्राप्त  
करने वाले और दूसरों को प्राप्त कराने वाले । स्वय मुक्त होने  
वाले और दूसरे को मुक्त कराने वाले । सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा  
निरुपद्रव, निश्चल, कर्मरोगरहित, अनन्त, अक्षय, बाधारहित,  
पुनरागमनरहित, ऐसे सिद्धिस्थान अर्थात् मोक्ष को प्राप्त सिद्ध

शत्रुओने पोतेण एताववाणा अने भीलओने एताववाणा भवसमुद्रेने  
पोते तारवावाणा अने भीलने तारवावाणा, स्वय बोध प्राप्त करनारा अने  
भीलने बोध प्राप्त करावनारा, स्वय मुक्त थवावाणा अने भीलने मुक्त करनारा  
सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा निरुपद्रव, निश्चल, कर्मरोग रहित, अनन्त, अक्षय,

वरचातुरन्तचक्रमिव-धर्मवरचातुरन्तचक्र तेन वर्तितुं वर्तयितुं वा शीलमेवामिति ।  
 'दीवो' द्वीपः ससारसमुद्रे निमज्जता द्वीपतुल्यत्वात्, 'ताण' त्राण=कर्म-  
 कदर्थिताना भव्याना रक्षणसक्षणः, अत एव तेषा 'सरणगई' शरणगतिः=  
 आश्रयस्थानम्, 'पइट्टाण' प्रतिष्ठान=कालत्रयेऽप्यविनाशित्वेन स्थितः, 'दीवो'-  
 इत्यादीनि 'पइट्टा' इत्यन्तानि सौत्रत्वाच्चतुर्थ्यर्थे प्रथमैकवचनान्तानि, 'त्राण'-  
 मिति नपुमरुत्व 'प्रतिष्ठे'-ति स्त्रीत्व च भगवत्. सर्वशक्तिमत्त्वप्रदर्शनाय । 'अप्प-  
 डिहयवरणाणदसणधराण' प्रतिहत=भित्त्याद्यावरणस्खलित, न प्रतिहतमप्रतिहत  
 ज्ञान च दर्शने चेति ज्ञानदर्शने, वरे=श्रेष्ठे च ते ज्ञानदर्शने वरज्ञानदर्शने=केवल-  
 ज्ञानकेवलदर्शने अप्रतिहते वरज्ञानदर्शने-अप्रतिहतवरज्ञानदर्शने, धरन्तीति धरा'  
 अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनयोर्धरा'-अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरा =आवरणरहितकेवलज्ञान-  
 केवलदर्शनधारिणस्तेभ्यः । 'विअट्टउमाण' जायते=आप्रियते केवलज्ञानकेवल-  
 दर्शनात्मात्मनोऽनेति छद्म=घातिकर्मवृन्द ज्ञानावरणीयादिरूप वा कर्मजातम्,  
 व्यावृत्त=निवृत्त छद्म येभ्यस्ते व्यावृत्तच्छद्मान्स्तेभ्यः । 'जिणाण' जिनेभ्यः=  
 स्वय-राग-द्वेष-शत्रुजेतभ्यः । 'जावयाण' जापयन्ति=जयन्त भव्यजीवगण

लवण समुद्र है सीमा जिसकी ऐसे भरतक्षेत्र पर एकशासन  
 राज्य करता है । ससार समुद्रमे डूबते हुए जीवोंके एक मात्र  
 आश्रय होने से द्वीप समान, कर्मों से सत्रस्त भव्य जीवों की  
 रक्षामे दक्ष होने से त्राणरूप, उनको शरण देने के कारण शरण-  
 गति-आश्रयस्थान । तीनों कालमें अविनाशी स्वरूपवाले होने से  
 प्रतिष्ठानरूप । आवरण रहित केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक ।  
 ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का नाश करने वाले । राग-द्वेषरूप शत्रु

पूर्व-दक्षिण-पश्चिम दिशाभा लवण समुद्र छे सीमा लेनी जेवा भरत क्षेत्र पर ओक-  
 शासन राज्य करे छे ससारसमुद्रभा डूबता एवोने ओकमात्र आश्रय होवाथी  
 द्वीप समान, कर्मोथी सताप पावेला भव्य एवोनी रक्षाभा दक्ष होवाथी (शरण  
 होवाथी) त्राणरूप, तेजोने शत्रु होवावाणा होवाथी शरणगति-आश्रयस्थान त्रष्टे  
 कालभा अविनाशी स्वरूपवाणा होवाथी प्रतिष्ठान रूप आवरणरहित केवलज्ञान  
 केवल दर्शनभा धारक ज्ञानावरणीय आदि कर्मोना नाश करवावाणा राग-द्वेषरूप

धर्मदेशनादिना प्रेरयन्तीति जापकाः<sup>१</sup>, तेभ्यः । 'तिन्नाण' स्वय ससारीय तीर्णा-  
स्तेभ्यः । 'तारयाण' तारयन्त्यन्यानि तारकास्तेभ्यः । 'बुद्धाण' बुद्धेभ्यः=स्वय  
बोध प्राप्तेभ्यः । 'बोहयाण' बोधयन्त्यन्यानि बोधकास्तेभ्यः । 'मुत्ताण'  
अमोचिपत् स्वय कर्मपञ्जरादिति मुक्तास्तेभ्यः । 'मोयगाण' मुच्यमानानन्यान्  
प्रेरयन्तीति मोचकास्तेभ्यः । 'सव्वन्नूण' सर्वे=सकलद्रव्य-गुण-पर्याय-  
लक्षण वस्तुजात याथातथ्येन जानन्तीति सर्वज्ञास्तेभ्यः । 'सव्वदरिसीण' सर्वे=  
समस्तपदार्थस्वरूप सामान्येन द्रष्टु शील येषां ते सर्वदृशिन्स्तेभ्यः । 'सिव'  
शिव निखिलोपद्रवरहितात्त्वान्छिव (कल्याण) मयम्, स्थानमित्यस्य विशेषण-  
मिदम्, शिवादीनां सर्वेषां द्वितीयान्तानामप्रेतनेन 'सम्प्राप्तेभ्य' इत्यनेन  
सम्बन्धः । 'अयल' अचलम्=स्वाभाविकप्रायोगिकरुचलनक्रियाशून्यम् । 'अरुय'  
अरुजम्-अविद्यमाना रजा यस्मिंस्तत्, तनात्मनामविद्यमानशरीरमनस्कत्वादाधि-  
व्याधिरहितमित्यर्थः । 'अणत्' अविद्यमानोऽन्तो=नाशो यस्य तत् । अत एव  
'अक्खय' नास्ति लेशतोऽपि क्षयो यस्य तत्-अविनाशीत्यर्थः । 'अव्वावाह'  
न विद्यते व्यावाधा=पीडा द्रव्यतो भावतश्च यत्र तत् । 'अपुणरावित्ति' अवि-  
द्यमाना पुनरावृत्ति=ससारे पुनरवतरण यस्मात् तत्, यत्र गत्वा न कदाचिद-  
प्यात्मा विनिवर्त्तते, समाप्नातमन्यत्रापि- 'न स पुनरावर्त्तते न स पुनरावर्त्तते'  
इति । इत्यमुक्तशिवत्वादिविशेषणविशिष्टम् 'सिद्धिगइनामप्रेय' सिद्धिगतिरिति

को स्वय जीतने वाले और दूसरों को जीताने वाले । भवसमुद्र को  
स्वय तैरने वाले और दूसरों को तिराने वाले । स्वय बोध को प्राप्त  
करने वाले और दूसरों को प्राप्त कराने वाले । स्वय मुक्त होने  
वाले और दूसरे को मुक्त कराने वाले । सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा  
निरुपद्रव, निश्चल, कर्मरोगरहित, अनन्त, अक्षय, बाधारहित,  
पुनरागमनरहित, ऐसे सिद्धिस्थान अर्थात् मोक्ष को प्राप्त सिद्ध

शत्रुभ्याने पोतेण एतवावाणा अने भीतभ्याने एताववावाणा भवसमुद्रने  
पोते तारवावाणा अने भीतने तारवावाणा, स्वय बोध प्राप्त करानाश अने  
भीतने बोध प्राप्त करानारा, स्वय मुक्त थावावाणा अने भीतने मुक्त करानारा  
सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा निरुपद्रव, निश्चल, कर्मरोग रहित, अनन्त, अक्षय,

नामधेय=नाम यस्य तत् । 'ठाण' स्थीयतेऽस्मिन्निति स्थान लोकाग्रलक्षण 'सपत्ताण' सम्प्राप्तेभ्यः=समाश्रितेभ्यः । 'नमो जिणाण' नमो जिनेभ्यः, कीदृशेभ्य. ? 'जियभयाण' जित भय यैस्तेभ्य इति सिद्धपक्षे, अर्हत्पक्षे तु 'नमोत्थुण जात्र सपाविउममस्स' नमोऽस्तु यापत्तिसिद्धिगतिनामक स्थान सम्प्राप्तुकामाय, 'ण' इतिवाक्यालङ्कारेऽव्ययपदम् ॥ सू० २ ॥

इत्थ नमस्कारान्त प्रत्याख्यानप्रकरण परिसमाप्य सम्प्रति तत्पारण समापनविधिरुच्यते—'फासिय' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

फासिय (१) पालिय (२) सोहिय (३) तीरिय (४) किट्टिय (५) आराहिय (६) अणुपालिय (७) भवइ, ज च न भवइ, तस्स मिच्छा मि-दुक्कड ॥ सू० ३ ॥

॥ छाया ॥

स्पृष्ट (१) पालित (२) शोधित (३) तीरित (४) कीर्तितम् (५) आराधितम् (६) आज्ञयाऽनुपालित (७) भवति, यच्च न भवति, तस्य मिथ्या मयि दुष्कृतम् ॥ सू० ३ ॥

॥ टीका ॥

मया स्वीकृत प्रत्याख्यानमिति शेषः, 'फासिय' स्पृष्ट=कायादिना

भगवान को तथा मोक्ष को प्राप्त होनेवाले अरिहन्त भगवान को नमस्कार हो ॥ सू० २ ॥

इस प्रकार नमस्कारपर्यन्त प्रत्याख्यान की विधि कहकर अब उसके पारण की विधि दिखलाते हैं—'फासिय' इत्यादि ।

मुझ से स्वीकृत प्रत्याख्यान का काय आदि से सेवन, बार बार उपयोग देकर सरक्षण, अतिचार शोधन, समाप्तिका समय हो

आधा रहित, पुनरागमन रहित, अथवा सिद्ध स्थान अर्थात् मोक्षने प्राप्त थयेवा सिद्ध भगवानने तथा मोक्षने पाभवावाणा अरिहन्त भगवानने नमस्कार छे (सू०२)

आ प्रभावे नमस्कारपर्यन्त प्रत्याख्याननी विधि कहीने छे तेने पाणवानी विधि गतावे छे "फासिय" इत्यादि।

भानाधी स्वीकृत प्रत्याख्याननु शरीर आदिथी सम्बन्ध सेवन, बार बार उपयोग

सेवित (१), 'पालिय' पालित=मुहुर्मुहुरूपयोगदानेन सरक्षितम् (२), 'सोद्विय' शोभित=तद्गताऽतिचारपरिमार्जनं कृतम् (३), 'तीरिय' तीरित=प्रत्याख्यानावधौ सम्पूर्णता गतेऽपि ऋञ्चित्कालमवस्थाय तीर नीतमित्यर्थः (४), 'किट्टिय' कीर्त्तित=प्रत्याख्यानेऽस्मिन्निदं च कर्त्तव्यं मया कृतमित्येव तत्तन्नामोपादाय गुरुपुरतो विनिवेदितमित्यर्थः (५), 'आराहिय' आ=समन्तात् राधितमाराधितम्=उत्सर्गापवादादिभिः समर्थादमन्तःकरणेन सेवितम् (६), 'आणाए अणुपालिय' आह्वयाऽणुपालित=श्रीजिनेन्द्रोक्तरीत्याऽणुष्ठितम् (७), 'भवइ' भवति=अस्ति । 'ज च' यत् 'प्रागुक्तेषु स्पृष्टादिषु मन्थे' इत्यर्थात् चकारः

जाने पर भी कुछ देर विश्राम, 'प्रत्याख्यान में अमुक अमुक विधि करनी चाहिये सो मैंने सब करली' इस प्रकार नामग्रहणपूर्वक गुरुके समक्ष निवेदन, मर्त्यादापूर्वक अन्त करण से सेवन तथा भगवान की आज्ञा के अनुसार पालन किया गया है तो भी प्रमादवश उसमें जो कुछ त्रुटि रह गई हो तो 'तस्स मिच्छ मि

राप्पीने सरक्षय, अतिचार शोधन, समाप्ति समय तथा छताय श्रेडीवार विश्राम, 'प्रत्याख्यानमा अमुक अमुक विधि करवी न्नेधये ते मे सर्वं करी वीधी' ये प्रभाण्णे नाम-ग्रहण-पूर्वकं गुरुनी पासे निवेदन, मर्त्यादापूर्वकं अत करण्थी सेवन तथा भगवाननी आज्ञा प्रभाण्णे पालनं कर्तुं छे तो पण्ण प्रमाद रडेवाथी तेमा न्ने क्खं त्रुटी रही गधं डाय तो "तस्स मिच्छ मि दुक्खं" ते सम्भधी भाइ पाप निश्चण



नामधेय=नाम यस्य तत् । 'ठाण' स्थीयतेऽस्मिन्निति स्थान लोकाग्रलक्षण  
 'सपत्ताण' सम्प्राप्तेभ्यः=समाश्रितेभ्यः । 'नमो जिणाण' नमो जिनेभ्यः,  
 कीदृशेभ्यः ? 'जियभयाण' जित भय यैस्तेभ्य इति सिद्धपक्षे, अर्हत्पक्षे तु  
 'नमोत्थुण जात्र सपाविउत्तामस्स' नमोऽस्तु यावत्सिद्धिगतिनामक स्थान  
 सम्प्राप्तुकामाय, 'ण' इतिवाक्यालङ्कारेऽव्ययपदम् ॥ सू० २ ॥

इत्थ नमस्कारान्त प्रत्याख्यानप्रकरण परिसमाप्य सम्प्रति तत्पारण  
 समापनविधिरुच्यते—'फासिय' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

फासिय (१) पालिय (२) सोहिय (३) तीरिय (४)  
 किट्टियं (५) आराहिय (६) अणुपालिय (७) भवइ, ज च न  
 भवइ, तस्स मिच्छा मि-दुक्कड ॥ सू० ३ ॥

॥ छाया ॥

स्पृष्ट (१) पालित (२) शोषित (३) तीरित (४) कीर्तितम् (५)  
 आराधितम् (६) आज्ञयाऽनुपालित (७) भवति, यच्च न भवति, तस्य मिथ्या  
 मयि दुष्कृतम् ॥ सू० ३ ॥

॥ टीका ॥

मया स्वीकृत प्रत्याख्यानमिति शेष, 'फासिय' स्पृष्ट=कायादिना

भगवान को तथा मोक्ष को प्राप्त होनेवाले अरिहन्त भगवान को  
 नमस्कार हो ॥ सू० २ ॥

इस प्रकार नमस्कारपर्यन्त प्रत्याख्यान की विधि कहकर अब  
 उसके पारण की विधि दिखलाते हैं—'फासिय' इत्यादि ।

मुझ से स्वीकृत प्रत्याख्यान का काय आदि से सेवन, बार  
 बार उपयोग देकर सरक्षण, अतिचार शोधन, समाप्तिका समय हो

भाषा रचित, पुनरागमन रचित, जेवा सिद्ध स्थान अर्थात् मोक्षने प्राप्त थयेला  
 सिद्ध भगवानने तथा मोक्षने पाभवावाणा अरिहन्त भगवानने नमस्कार छे (सू०२)

आ प्रभाषे नमस्कारपर्यन्त प्रत्याख्याननी विधि कहीने हवे तेने पाणवानी  
 विधि गतावे छे "फासिय" इत्यादि.

भारतीय स्वीकृत प्रत्याख्याननु शरीर आदिथो सम्भक्ष सेवन, बार बार उपयोग

## हिन्दी-परिशिष्ट

॥ चारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ ॥

पहिला अणुव्रत-यूलाओ पाणाइवायाओ वेरमण, असजीव-वेइदिय तेइदिय चउरिंदिय पचिंदिय जानके पहिचानके सङ्कल्प करके उसमे स्वसम्बन्धी-शरीर के भीतर में पीडाकारी सापराधी को छोड निर-पराधी को आकुटी की बुद्धि (हनने की बुद्धि) से हनने का पच-क्खाण जावज्जीवाए दुविह तिबिहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, ऐसे पहिले स्थूल प्राणातिपात-विरमण-व्रत के पच अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोड वधे वहे उविच्छेए अइभारे भत्तपाणविच्छेए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

दूजा अणुव्रत-यूलाओ मुसावायाओ वेरमण, कन्नालिए, गोवाल्लिए, भोमालिए, णासावहारो (थापणमोसो) कूडसक्खिवज्जे (कूडी साख, ) इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पचक्खाण जावज्जीवाए दुविह तिबिहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा, कायसा, एव दूजा स्थूल मृपावाद विरमणव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोड सहसम्भक्खाणे, रहस्सम्भक्खाणे, सदारमंतभेण, मोसोवएसे, कूडलेहकरणे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

तीजा अणुव्रत-यूलाओ अदिन्नाटाणाओ वेरमणं, खात खनकर, गाठ खोलकर, ताले पर कुजी लगाकर, मार्ग मे चलते को लूट कर, पडी हुई धणियाती मोटी वस्तु जानकर लेना इत्यादि मोटा अद-त्तादान का पचक्खाण, सगे-सम्बन्धी, व्यापार-सवधी तथा पडी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पचक्खाण जावज्जीवाए दुविह तिबिहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, एव तीजा स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोड तेनाहडे तक्करप्पओगे, चिन्टूरज्जा-इक्कमे, कूडतुले, कूडमाणे, तप्पडिरूवगववहारे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

१ 'स्वदारसन्तोप' ऐसा पुरुष को गोलना चाहिये, और स्त्री को स्वपतिसन्तोप ऐसा बोलना चाहिये ।

समुच्चयार्थ', 'न भवइ' न भवति=न जायते, 'तस्स मिच्छा मि दुक्कड'  
व्याख्यातपूर्वमिदमित्यलमाग्नेडितेन ॥ सू० ३ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-  
कलापाऽऽलापक-प्रविशुद्धगन्धपत्रनैऋग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहू-  
छत्रपतिकोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य'-पदभूषित-कोल्हापुर-  
राजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-  
घासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आवश्यकसूत्रस्य मुनि-  
तोषण्याख्याया व्याख्याया पृष्ठ  
प्रत्याख्यानारख्यमभ्ययन समाप्तम् ॥ ६ ॥

॥ सम्पूर्णमिद सूत्रम् ॥



दुक्कड' उस सम्बन्धी मेरा पाप निष्फल हो-इत्यादि अर्थ पहले  
की तरह जान लें ॥ सू० ३ ॥

॥ इति छठा अध्याय सम्पूर्ण ॥

इति आवश्यक सूत्र की  
मुनितोषणी टीका का  
हिन्दी भवार्थ  
सम्पूर्ण.



याग्ये छत्यादि अर्थ प्रथम प्रभाषे बहली देवो (सू०३)

इति छठु अध्यायन सम्पूर्ण

इति आवश्यक सूत्रनी मुनितोषणी टीकानो शुभराती अनुवाद सम्पूर्ण



## हिन्दी-परिशिष्ट

॥ वारह व्रतों के अतिचार सहित पाठ ॥

पहिला अणुव्रत-थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमण, ब्रसजीव-वेडदिय तेडदिय चडरिंदिय पचिंदिय जानके पहिचानके सङ्कल्प करके उसमें स्वसम्बन्धी-शरीर के भीतर में पीडाकारी सापराधी को जेड निर-पराधी को आकुटी की बुद्धि (हनने की बुद्धि) से हनने का पच-क्खाण जावज्जीवाए दुविह तिबिहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, ऐसे पहिले स्थूल प्राणातिपात-विरमण-व्रत के पच अइयारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ वये वहे उबिच्छेए अइभारे भत्तपाणविच्छेए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

दूजा अणुव्रत-थूलाओ मुसावायाओ वेरमण, कन्नालिए, गोवालिए, भोमालिए, णासावहारो (थापणमोसो) कूडसक्खिवज्जे (कूडी साख, ) इत्यादिक मोटा झूठ बोलने का पचक्खाण जावज्जीवाए दुविह तिबिहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा, कायसा, एवं दूजा स्थूल मृपावाद विरमणव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ सहसम्भक्खाणे, रहस्सम्भक्खाणे, सदारमंतभेण, मोसोवएहे, कूडलेहकरणे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

तीजा अणुव्रत-थूलाओ अदिन्नाटाणाओ वेरमण, खात खनकर, गाठ खोलकर, ताले पर कुजी लगाकर, मार्ग में चलते को लूट कर, पडी हुई धणियाती मोटी वस्तु जानकर लेना इत्यादि मोटा अदत्तादान का पचक्खाण, सगे-सम्बन्धी, व्यापार-सवधी तथा पडी निर्भ्रमी वस्तु के उपरान्त अदत्तादान का पचक्खाण जावज्जीवाए दुविह तिबिहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, एवं तीजा स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ तेनाहडे तक्करप्पओगे, विन्दूरज्जा-इक्कमे, कूडतुळे, कूडमाणे, तप्पडिख्वगववहारे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

१ 'स्वदारसन्तोष' ऐसा पुरुष को बोलना चाहिये, और स्त्री को स्वपतिसन्तोष ऐसा बोलना चाहिये ।

चौथा अणुव्रत-थूलओ मेहुणाओ वेरमण, १ सदारसतोसिण, अवसेसमेहुणविहिं पचक्खामि जावज्जीवाए, देवदेवी सम्यन्धी दुविह तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, तथा मनुष्य-तिर्यञ्च-सम्यन्धी एगविह एगविहेण न करेमि कायसा, एव चौथा स्थूल मेहुणवेरमणव्रत के पच अइयारा जाणियन्वा न समायरियन्वा, तजहा ते आलोउ इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अनगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिव्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

पाचवा अणुव्रत-थूलओ परिग्गहाओ वेरमण, खेत्त-वत्थु का यथापरिमाण, हिरणसुवणण का यथापरिमाण, धनधान्य का यथापरिमाण, दुपयचउप्पय का यथापरिमाण, कुवियघातु का यथापरिमाण, जो परिमाण किया है, उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पचक्खण, जावज्जीवाए, एगविह तिविहेण न करेमि मणसा वयसा कायसा, एवं पाचवा स्थूलपरिग्रह परिमाण-व्रत के पच अइयारा जाणियन्वा न समायरियन्वा, तजहा-ते आलोउ खेत्तवत्थुप्पमाणाइक्कमे हिरणसुवणणप्पमाणाइक्कमे धणधन्नप्पमाणाइक्कमे, दुपयचउप्पयप्पमाणाइक्कमे, कुवियप्पमाणाइक्कमे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

२. छठा दिशिव्रत-उद्ददिशि का यथापरिमाण, अहोदिशि का यथापरिमाण किया है, इसके उपरान्त स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाच आस्रव सेचन का पचक्खण जावज्जीवाए<sup>१</sup> दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, एव छठे दिशिव्रत के पच अइयारा जाणियन्वा, न समायरियन्वा, तजहा ते आलोउ उद्ददिसिप्पमाणाइक्कमे, अहोदिसिप्पमाणाइक्कमे, तिरिअदिसिप्पमाणाइक्कमे, गित्तगुद्धी, सहअन्तरद्धा, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

सातवां व्रत-उवभोगपरिभोगविहिं पचक्खायमाणे उल्लणियाविहि १, दतणविहि २, फलविहि ३, अब्भगणविहि ४, उवट्टणविहि. ५, मज्जणविहि ६, वत्थविहि ७, विलेवणविहि ८, पुप्फविहि ९, आभरणविहि १०, धूवविहि, ११, पेज्जविहि १२, भक्खणविहि १३, ओदणविहि १४, सूपविहि १५, विगयविहि १६, सागविहि महुरविहि १८, जीमणविहि १९, पाणीअविहि २०, मुखवासविहि २१, वाहणविहि २२, उवाणहविहि २३, सयणविहि २४, सच्चित्तविहि २५, दव्वविहि २६, इत्यादि का यथापरिमाण किया है, इसके उपरान्त उवभोगपरिभोग वस्तु को भोगनिमित्त से भोगने का पचक्खाण, जावज्जीवाए एगविह तिविहेण, न करेमि मणसा वयसा कायसा, एव सातवा उवभोगपरिभोग दुविहे पन्नत्ते, तजहा-भोयणाओ य, कम्मओ य । भोयणाओ समणोवासएणं पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ सच्चित्ताहारे, सच्चित्तपडियद्दाहारे, अप्पउलिओसहिभक्खणया, दुप्पउलिओसहि-भक्खणया, तुत्तोसहिभक्खणया, कम्मओण समणोवासएण पन्नरस कम्मादाणाइ जाणियव्वाइ न समायरियव्वाइ, तजहा ते आलोउ इगाल कम्मे, वणकम्मे साडीकम्मे भाडीकम्मे, फोडीकम्मे दतवाणिज्जे, लक्ख-वाणिज्जे, केसवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जतपीलणकम्मे, निल्लउणकम्मे, दवग्गिदावणया सरदहतलायसोसणया, असईजण-पोसणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

आठवा अणट्टादण्डविरमणव्रत-चउन्विहे अणट्टादडे पणत्ते, तजहा-अवज्झाणायरिए, पमायायरिए, हिंसप्पयाणे, पावकम्मोवणसे, एव आठवा अणट्टादंड सेवन का पचक्खाण (जिसमें आठ आगार-आए वा, राए वा, नाए वा, परिवारे वा, देवे वा, नागे वा, जक्खे वा, भूए वा, एत्तिएहिं आगारेहिं अन्नत्थ) जावज्जीवाए दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा, एवं आठवा अणट्टदड, विरमणव्रत के पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ कदप्पे, कुक्कुहए, मोहरिए सजुत्ताहिगरणे,

चौथा अणुव्रत-थूलाओ मेहुणाओ वेरमण, 'सदारसतोसिण, अवसेसमेहुणविहिं पचस्खामि जावज्जीवाए, देवदेवी सम्बन्धी दुविह तिविहेण न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, तथा मनुष्य-तिर्यञ्च-सम्बन्धी एगविह एगविहेण न करेमि कायसा, एव चौथा स्थूल मेहुणवेरमणव्रत के पच अइयारा जाणियन्वा न समायरियन्वा, तजहा ते आलोउ इत्तरियपरिग्गहियागमणे, अपरिग्गहियागमणे, अनगकीडा, परविवाहकरणे, कामभोगतिन्वाभिलासे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

पाचवा अणुव्रत-थूलाओ परिग्गहाओ वेरमण, खेत्त-वत्थु का यथापरिमाण, हिरणसुवणण का यथापरिमाण, धनधान्य का यथापरिमाण, दुपयचउप्पय का यथापरिमाण, कुवियधातु का यथापरिमाण, जो परिमाण किया है, उसके उपरान्त अपना करके परिग्रह रखने का पचक्खाण, जावज्जीवाए, एगविह तिविहेण न करेमि मणसा वयसा कायसा, एव पाचवा स्थूलपरिग्रह परिमाण-व्रत के पंच अइयारा जाणियन्वा न समायरियन्वा, तजहा-ते आलोउ खेत्तवत्थुप्पमाणाइकमे हिरणसुवणणप्पमाणाइकमे धणधन्नप्पमाणाइकमे, दुपयचउप्पयप्पमाणाइकमे, कुवियप्पमाणाइकमे, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

छठा दिशिव्रत-उद्धदिशि का यथापरिमाण, अहोदिशि का यथापरिमाण किया है, इसके उपरान्त स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाच आस्रव सेवन का पचक्खाण जावज्जीवाए' दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा, एव छठे दिशिव्रत के पच अइयारा जाणियन्वा, न समायरियन्वा, तजहा ते आलोउ उद्धदिसिप्पमाणाइकमे, अहोदिसिप्पमाणाइकमे, तिरिअदिसिप्पमाणाइकमे, त्वित्तयुद्धी, सइअन्तरद्धा, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

पच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा ते आलोउ अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय - सेज्जासथारए, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-सेज्जासथारए, अप्पडिलेहिय - दुप्पडिलेहिय - उच्चारपासवणभूमि, अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय - उच्चारपासवणभूमि, पोसहस्स सम्म अणणुपालणया, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

वारहवा अतिथिसविभागव्रत-समणे निग्गथे फासुयएसणि-ज्जेणं-असणपाणखाइमसाइमवत्थपडिग्गहकवलपायपुँछणेण पडिहारि-यपीढफलगसेज्जासथारएण ओसहभेसज्जेण पडिलाभेमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सदहणा परूपणा है, साधु साध्वी का योग मिलने पर निर्दोष दान दू तव शुद्ध होउ । एव वारहवें अतिथिसविभागव्रत के पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ-सच्चिन्तनिक्खेवणया, सच्चिन्तपिहणया, कालाइक्कमे, परववएसे, मच्छरिआए, जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

। बडी सलेखना का पाठ ।

अह भते अपच्छिममारणन्तियसलेहणाइसणा आराहणा पोपधशाला पूजे, पूज के उच्चारपासवण भूमिका पडिलेहे, पडिलेह के गमणागमणे पडिकमे, पडिकम के दर्भादिक सथारा सथारे, सथार के दर्भादिक सथारा दुरूहे, दुरूह के पूर्व तथा उत्तरदिशि सन्मुख पल्यकादिक आसन से बैठे, बैठ के करय-लसपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि वट्टु एव वयासी-‘नमोत्थु ण अरि-हन्ताण भगवताण जाव सपत्ताण’ ऐसे अनन्त सिद्धो को नमस्कार करके, ‘नमोत्थुण अरिहन्ताण भगवताण जाव सम्पात्रिउकामाण’ जयवते वर्तमान-काले महाविदेह क्षेत्र में विचरते हुए तीर्थङ्करों को नमस्कार करके अपने धर्माचार्यजी को नमस्कार करता हू । साधु प्रमुख चारो तीर्थ को खमाके, सर्वजीवराशि को खमा के पहिले जो व्रत आदरे हैं उनमें जो अतिचार दोष लगे हो, वे सर्व आलोच के पडिकम करके निंद के निःश्लय हो करके, सब्ब पाणाइवाय पच्चक्खामि, सब्ब मुसावाय पच्चक्खामि, सब्ब अदिन्नादाण पच्चक्खामि, सब्ब मेहुण पच्चक्खामि, सब्ब परिग्गह पच्चक्खामि, सब्ब कोह माण जाव मिच्छा-दसणसत्तु सब्ब अरुरणिज्जजोग पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविह तिविहेण न करेमि



उवभोगपरिभोगाडरित्ते, जो मे देवसिओ अड्यारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

नववा सामायिकव्रत-सव्वसावज्ज जोग पच्चक्खामि जावनियम पज्जुवासामि, दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा, वयसा, कायसा, ऐसी सदहणा परूपणा तो है सामायिक का अवसर आये सामायिक करू तब फरसना करके शुद्ध होऊँ, एव नववें सामायिक व्रत के पच अड्यारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाह यस्स सह अकरणया सामाहयस्स अणवट्टियस्स करणया जो मे देवसिओ अड्यारो कओ तस्स मिच्छा मि दुक्कड ।

दसवां देसावगासिकव्रत-दिन प्रति प्रभात से प्रारंभ करके पूर्वादिक छहों दिशा की जितनी भूमिका की मर्यादा रक्खी हो उसके उपरान्त स्वेच्छा काया से आगे जाकर पाच आश्रव सेवने का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्त दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा, जितनी भूमिका की हद रक्खी उसमे जो द्रव्यादिक की मर्यादा की है उसके उपरान्त उपभोग परिभोग निमित्त से भोगने का पच्चक्खाण जाव अहोरत्त एगविह तिविहेण न करेमि मणसा वयसा कायसा, एव दशवें देसावगासिक व्रत के पच अड्यारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तजहा-ते आलोउ आणवणप्पओगे, पेसवणप्पओगे, सदाणुवाए, रूवाणुवाए, बहिया पुगलपम्खेवे, जो मे देवसिओ अड्यारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कड ।

ग्यारहवा पडिपुत्र पोपधव्रत-असण पाण खाइम साइम का पच्चक्खाण, अवंम सेवन का पच्चक्खाण, अमुक मणि सुवर्ण का पच्चक्खाण, मालावन्नग-विलेवण का पच्चक्खाण, सत्थमुसलादिक सावज्जोग सेवन का पच्चक्खाण, जाव अहोरत्त पज्जुवासामि, दुविह तिविहेण न करेमि न कारवेमि, मणसा, वयसा कायसा ऐसी सदहणा परूपणा तो है पोमह का अवसर आये पोमह करू तब फरसना करके शुद्ध होऊँ, एव ग्यारहवा पडिपुत्र पोपधव्रत का

# બાર વ્રતના અતિચાર સહિત પાઠ

## ગુજરાતી-પરિશિષ્ટ

પહેલું અણુવ્રત થૂલાઓ પાણાઈવાયાઓ વેરમણુ, ત્રમણુવ, બે ઇદ્રિય, તે ઇદ્રિય, ચઉરિદિય, પચેદ્રિય, જીવ, જાણીપીછી, સ્વસળધી, શરીર માહેલા પીડાકારી, સઅપરાધી, વિગલેદ્રિય વિના, આકુટ્ટિ, હણુવાનિમિત્તે, હણુવાના પચ્યક્રખાણુ, તથા સૂક્ષ્મ એકેદ્રિય પણ હણુવાના પચ્યક્રખાણુ, જીવજીવાઓ, દુવિહ, તિવિહેણુ, ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા, એહવા, પહેલા, થલ પ્રાણાતિપાત વેરમણુ વ્રતના પચ અઈયારા, પેયાલા જાણિયંવા, ન સમાયરિયંવા, ત જહા, તે આલોઉ, બધે, વહે, છવિરુએ, અઈભારે, ભત્તપાણુવોરુએ, તસ્સ મિરુછા મિ દુક્કડ

બીજું અણુવ્રત, થૂલાઓ મુસાવાયાઓ વેરમણુ, કન્નાલિક, ગોવાલિક, લોમાલિક, થાપણુમોસો, મોટકી કુડીસાખ

ઈત્યાદિ મોટકુ જૂઠું જોલવાના પચ્યક્રખાણુ જીવજીવાઓ દુવિહ, તિવિહેણુ ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા, એવા બીજા થૂલ મૃધાવાહ વેરમણુ વ્રતના પચ અઈયારા, જાણિયંવા ન સમાયરિયંવા, ત જહા-તે આલોઉ

સહસ્સાભક્રખાણુ, રહસ્સાભક્રખાણુ, સદારમ તલેએ, મોસોવએસે, કૂડલેહકરુએ તસ્સ મિરુછા મિ દુક્કડ

ત્રીજું અણુવ્રત, થૂલાઓ અદિનાદાણુઓ વેરમણુ, ખાતર-ખણી, ગાઠડી છોડી, તાલુ પર કુચી કરી, પડી વસ્તુ ધણીઆતી જાણી,

ઈત્યાદિ મોટકુ અદત્તાદાન લેવાના પચ્યક્રખાણુ, સગાસળધી તથા વ્યાપાર-સળધી નભરમી વસ્તુ ઉપરાત અદત્તાદાન લેવાના પચ્યક્રખાણુ, જીવ જીવાઓ, દુવિહ તિવિહેણુ, ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા એવા ત્રીજા થૂલ અદત્તાદાન વેરમણુ વ્રતના પચ અઈયારા, જાણિયંવા, ન સમાયરિયંવા ત જહા, તે આલોઉ

તેના હરે, તદ્ધરપઓગે, વિરુહ રજ્જઈકરુએ, કૂડતોલે કૂડમાણુ, તપ્પડિરુ વગવહારે, તસ્સ મિરુછા મિ દુક્કડ,

ચોથું અણુવ્રત, થૂલાઓ મેહુણુઓ વેરમણુ, સદારસ તોપિએ, અવસેસ મેહુણુવિહિ ના પચ્યક્રખાણુ

અને જે ત્રીપુરવને મૂળ થકી કાયાએ કરી મેહુણુ સેવવાના પચ્યક્રખાણુ

न कारवेमि करंतपि अन्न न समणुजाणामि, मणसा वयसा कायसा, ऐसे अठारह पापस्थानक पच्चकखके सब्ब असण पाण खाइम साइम चउव्विह पि आहार पच्चकखामि जावज्जीवाए, ऐसे चारो आहार पच्चकख के ज पि य इम सरीर इट्ठ, कठ, पिय मणुण्ण, मणाम, धिज्ज, विमासिय समय, अणुमय, बहुमय, भण्डकरण्डसमाण, रयणकरडगभूय, मा ण सीय, मा ण उण्ह, मा ण खुहा, माण पिवासा, माण वाला, मा ण चोरा, मा ण दसमसगा, मा ण वाहिय, पित्तिय, कप्फिय, समीम सन्निवाइय त्रिविहा रोगायका परिसहा उवसग्गा फासा फुसतु—एव पि य ण चरमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्ठु ऐसे शरीर वोसिरा के, काल अणवकरवमाणे विहरामि, ऐसी मेरी सहइणा परूपणा तो है, फरसना करू तो शुद्ध होऊ ऐसे अपन्डिम—मारणतिय—सलेइणा झमणा—अराहणाए पच अइयारा जाणियव्वा, त जहा—इहलोगाससप्पओगे परलोगाससप्पओगे, जीवियाससप्पओगे, मरणाससप्पओगे कामभोगाससप्पओगे तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

तस्स धम्मस्स का पाठ ।

तस्स धम्मस्स केवल्लिपन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए त्रिविहेण पडिक्कतो वदामि जिणचउव्वीस ।



## બાર વ્રતના અતિચાર સહિત પાઠ.

### ગુજરાતી-પરિશિષ્ટ

પહેલુ અણુવ્રત થૂલાઓ પાણાઈવાયાઓ વેરમણ, ત્રસજીવ, બે ઇન્દ્રિય, તે ઇન્દ્રિય, ચૈત્તરિન્દ્રિય, પચૈન્દ્રિય, જીવ, બાણીપીછી, સ્વસળધી, શરીર માહેલા પીડાકારી, સઅપરાધી, વિગલૈન્દ્રિય વિના, આકુટ્ટિ, હણુવાનિભિત્તે, હણુવાના પચ્યકૃખાણુ, તથા સૂક્ષ્મ એકેન્દ્રિય પણ હણુવાના પચ્યકૃખાણુ, બવજીવવાઓ, દુવિહ, તિવિહેણુ, ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા, એહવા, પહેલા, થલ પ્રાણાતિપાત વેરમણુવ્રતના પચ અર્ધચારા, પેચાલા બણિયંવા, ન સમાચરિયંવા, ત જહા, તે આલોઉ, બધે, વહે, છવિરૂએ, અર્ધભારે, ભત્તપાણુવેરૂએ, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કંડ

બીજુ અણુવ્રત, થૂલાઓ મુસાવાયાઓ વેરમણુ, કન્નાલિક, ગોવાલિક, ભોમાલિક, થાપણુમોસો, મોટકી કુડીસાખ

ઇત્યાદિ મોટકુ બ્હૂહું બોલવાના પચ્યકૃખાણુ બવજીવવાઓ દુવિહ, તિવિહેણુ ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા, એવા બીજા થૂલ મૃષાવાદ વેરમણુ વ્રતના પચ અર્ધચારા, બણિયંવા ન સમાચરિયંવા, ત જહા-તે આલોઉ

સહસ્સાભકૃખાણુ, રહસ્સાભકૃખાણુ, સદારમ તલેએ, મોસોવએસે, કૂડલેહકનણુ તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કંડ

ત્રીજુ અણુવ્રત, થૂલાઓ અદિનાદાણુઓ વેરમણુ, ખાતર-બાણી, ગાઠકી છોડી, તાલુ પર કુચી કરી, પડી વસ્તુ ધણીઆતી બાણી,

ઇત્યાદિ મોટકુ અદત્તાદાન લેવાના પચ્યકૃખાણુ, સગાસળધી તથા બ્યાપાર-સળધી નભરમી વસ્તુ ઉપરાત અદત્તાદાન લેવાના પચ્યકૃખાણુ, બવ જીવવાઓ, દુવિહ તિવિહેણુ, ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણસા, વયસા, કાયસા એવા ત્રીજા થૂલ અદત્તાદાન વેરમણુ વ્રતના પચ અર્ધચારા, બણિયંવા, ન સમાચરિયંવા ત જહા, તે આલોઉ

તેના હડે, તદ્ધરપએગે, વિરુદ્ધ રજ્જાઇકરમે, કૂડતોલે કૂડમાણુ, તપ્પડિરૂ વગવહારે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કંડ,

ચોથુ અણુવ્રત, થૂલાઓ મેહુણુઓ વેરમણુ, સદારમ તોપિએ, અવસેસ મેહુણુવિહિ ના પચ્યકૃખાણુ

અને જે સ્ત્રીપુરુષને મૂળ થકી કાયાએ કરી મેહુણુ એવવાના પચ્યકૃખાણુ

હાય તેને દેવતા, મનુષ્ય, તિર્યચ સળધી મેહુણના પચ્ચક્ષ્ણાણુ, જાવજીવાએ, દેવતા સળધી દુવિહ, તિવિહેણુ ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણુસા, વયસા કાયસા મનુષ્ય તિર્યચ સળધી

એગવિહ, એગવિહેણુ, ન કરેમિ કાયસા

એવા એથા થૂલ મેહુણુવેરમણુ મતના પચ અધ્યારા, જાણિયંવા, ન સમાયરિયંવા, તજહા તે આલોઉ

ઇત્તરિયપરિગ્ગહિયાગમણુ, અપરિગ્ગહિયાગમણુ, અન ગકીડા, પરવિવાહકરણુ, કામલોગેસુ તિંવાલિલાસા, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કંડ

પાચમુ અણુમત થૂલાઓ પરિગ્ગહાઓ વેરમણુ, ખેત્તવત્થુનું યથાપરિમાણુ, હિરણ્યસુવણ્ણુનું યથાપરિમાણુ, ધનધાન્યનું યથાપરિમાણુ, દુપદચઉપદનું યથા-પરિમાણુ, કુવિયનું યથાપરિમાણુ

એ યથાપરિમાણુ કીધુ છે, તે ઉપરાત પોતાનો પરિગ્રહ કરી રાખવાના પચ્ચક્ષ્ણાણુ જાવજીવાએ

એગવિહ, તિવિહેણુ, ન કરેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા એવા પાચમા થૂલ-પરિગ્રહ-પરિમાણુ-વેરમણુ મતના પચ અધ્યારા જાણિયંવા, ન સમાયરિયંવા, ત જહા-તે આલોઉ, ખેત્તવત્થુપમાણુઇકમ્મે, હિરણ્યસુવણ્ણુપમાણુઇકમ્મે, ધનધાન્ય-પમાણુઇકમ્મે, દુપદચઉપદપમાણુઇકમ્મે, કુવિયપમાણુઇકમ્મે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કંડ

છહુ દિશિમન, ઉહ્હદિશિનું યથાપરિમાણુ, અધોદિશિનું યથાપરિમાણુ, તિરિયદિશિનું યથાપરિમાણુ

એ યથાપરિમાણુ કીધુ છે, તે ઉપરાત સમ્મચ્છાએ કાયાએ જઇને પાચ આશ્રવ સેવવાના પચ્ચક્ષ્ણાણુ, જાવજીવાએ, દુવિહ, તિવિહેણુ, ન કરેમિ, ન કારવેમિ, મણુસા, વયસા, કાયસા એવા છઠા દિશિવેરમણુ મતના પચ અધ્યારા, જાણિયંવા, ન સમાયરિયંવા, તજહા તે આલોઉ

ઉહ્હદિસિ પમાણુઇકમ્મે, અધોદિસિ પમાણુઇકમ્મે, તિરિયદિસિ પમાણુઇકમ્મે ખેતવુહ્હી, સમ્મઅતરહા, તસ્સ મિચ્છા મિ દુક્કંડ

સાતમુ મત, ઉવલોગપરિલોગવિહિ પચ્ચક્ષ્ણાયામણુ, ઉલણિયાવિહિ, દતણુવિહિ, ફલવિહિ, અપ્પભગણુવિહિ ઉવટ્ટણુવિહિ મજ્જણુવિહિ, વત્થવિહિ, વિલેવણુવિહિ, પુપ્પવિહિ, આભરણુવિહિ, મૂપવિહિ, પેજ્જવિહિ, ભદ્રખણુવિહિ,

आह्वयविर्द्धि, सूयविर्द्धि, विगयविर्द्धि, सागविर्द्धि, माहुरयविर्द्धि, जेमणुविर्द्धि, पाण्डियविर्द्धि, मुहवासविर्द्धि, वाह्वयविर्द्धि, वाण्डविर्द्धि, सयणुविर्द्धि, सञ्चितविर्द्धि, हवविर्द्धि

धत्यादिकन्तु यथापरिमाणु क्रीडु छे, ते उपरात उवलोगपरिलोग, लोगनिमित्ते लोगववाना पय्यङ्गभाणु नवण्णवाञ्छे जेगविह, तिविहेषु न करेमि, मणुसा, वयसा, कायसा जेवा सातमा उवलोग परिलोग.

हुविह पत्रत्ते, त जडा, लोयणुदिय, कम्भउय, लोयणुवि, समणुवासञ्छेषु पय्य अर्धयारा, नलियुण्वा न सभायरियण्वा, त जडा-ते आलोडि

मञ्चित्ताहारे, सञ्चितपडिण्णहारे, अप्पोलिञ्चोसहिलङ्गभणुया, दुप्पोलि चोसहिलङ्गभणुया, तुञ्जेसहिलङ्गभणुया, कम्भउयु समणुवासञ्छेषु, पत्ररस कम्भादाणुध

नलियुण्वा, न सभायरियण्वा, तजडा-ते आलोडि,

धंगालकम्भे, वणुकम्भे, साडीकम्भे, लाडीकम्भे, देडीकम्भे, दतवाणुण्णे, केसवाणुण्णे, रसवाणुण्णे, लङ्गभवाणुण्णे, विसवाणुण्णे, जतपिटलणु-कम्भे, निदल छणुकम्भे, हवगिण्णवाणुया, सरदहत्तलागपरिसोसणुया, असर्धणु-पोसणुया, तस्स मिञ्छा मि हुककड

आठमु प्रत-अनर्थदंडनु वेरमणु, अउविह अन्त्यादडे पत्रत्ते, त जडा, अण्णवाणुयारिय पभायारिय हिंसपयाणु, पावकम्भेवञ्चम जेवा आठमा अनर्थदंड सेववाना पय्यङ्गभाणु नवण्णवाञ्छे हुविह तिविहेषु न करेमि, न कारवेमि, मणुसा, वयसा, कायसा

जेवा आठमा अनर्थ दंड वेरमणु प्रतना पय्य अर्धयारा नलियुण्वा, न सभायरियण्वा, त जडा-ते आलोडि

कहप्ये, कुङ्कुधञ्छे, मोहरिञ्छे, सणुत्ताहिरण्णे, उवलोगपरिलोगअधरित्ते, तस्स मिञ्छा म हुककड

नवमु सामायिक प्रत, पण्णजेगनु वेरमणु नव नियम पण्णुवासामि, हुविह तिविहेषु, न करेमि न कारवेमि, मणुसा, वयसा, कायसा

जेवी भारी-तभारी नदहणु प्रङ्गणु सामायिकने अवसर आवे अने सामायिक करीञ्छे त्यारे स्पर्शनाञ्छे करी शुद्ध होओ !

એવા નવમા સામાયિક પ્રતના પચ અર્ધયારા જાણિયંવા, ન સમાયરિ  
યંવા, ત જહા તે આલોઉ મણુદુપ્પણિહાણે, વચદુપ્પણિહાણે, કાયદુપ્પણિહાણે,  
સામાઈયસ્સ સઈ અકરણ્યાએ, સામાઈયસ્સ અણુવટ્ટિયસ્સ કરણ્યાએ, તસ્સ  
મિચ્છા મિ દુકકંડ

દશમુ દેશાવગાસિક પ્રત

દિન પ્રત્યે પ્રભાત થકી પ્રારભીને પૂર્વાદિક્ષ છ દિશિ જેટલી ભૂમિકા મોકળી  
રાખી છે, તે ઉપરાત સઈચ્છાએ કાયાએ જઈને પાચ આશ્રવ સેવવાના પચ્ચક્રખાણુ  
જાવઅહોરત્ત

દુવિહં તિવિહેણુ, ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણુસા વચસા કાયસા, જેટલી  
ભૂમિકા મોકળી રાખી છે, તે માહિ જે દ્રવ્યાદિકની મર્યાદા કીધી છે તે ઉપરાત  
ઉવભોગ, પરિભોગ, ભોગ નિમિત્તે ભોગવવાના પચ્ચક્રખાણુ જાવ અહોરત્ત, એગવિહં  
તિવિહેણુ ન કરેમિ મણુસા વચસા કાયસા એવા દશમે દેશાવગસિક વેરમણુ પ્રતના  
પચ અર્ધયારા જાણિયંવા ન સમાયરિયંવા, ત જહા-તે આલોઉ

આણુવણુપ્પઓગે, પેસવણુપ્પઓગે, સદ્દાણુવાએ, રૂવાણુવાએ, ખહિઆ પોગ્ગલ  
પક્રખેવે, તસ્સ મિચ્છા મિ દુકકંડ

અગિયારમુ પરિપૂર્ણ પોષધ પ્રત, 'અસણુ' પાણુ, ખાઈમ, સાઈમ'ના  
પચ્ચક્રખાણુ અખભના પચ્ચક્રખાણુ, મણિસોવનના પચ્ચક્રખાણુ, માલાવજગવિલેવણુના  
પચ્ચક્રખાણુ, સ્તથમુસલાદિક સાવજજ ભોગના પચ્ચક્રખાણુ, જાવ અહોરત્ત  
પચ્ચુવાસામિ

દુવિહં તિવિહેણુ ન કરેમિ ન કારવેમિ, મણુસા વચસા કાયસા એવી મારી  
સદ્દહણા પ્રરૂપણા પોવાનો અવસર આવે અને પોપો કરીએ, તે વારે સ્પર્શનાએ  
કરી શુદ્ધ હોને, એવા અગિયારમા પરિપૂર્ણ પોષધ પ્રતના પચ અર્ધયારા જાણિય  
ંવા નસમાયરિયંવા ત જહા તે આલોઉ

અપ્પડિલેહિય-દુપ્પડિલેહિય-સેજ્જસ ધારએ, અપ્પમન્જિય-દુપ્પમન્જિય-  
સેજ્જસ ધારએ, અપ્પડિલેહિય-દુપ્પડિલેહિય-ઉચ્ચારપાસવણુભૂમિ, અપ્પમન્જિય-  
દુપ્પમન્જિય-ઉચ્ચાર-પાસવણુભૂમિ, પોસહસ્સ સરમ અણુપાલણ્યા, તસ્સ  
મિચ્છા મિ દુકકંડ

ગારમુ અતિયિસ વિભાગ પ્રત, સમણે નિગ્ગથે કામુએણુ એસણિજ્જેણુ

असृष्ट पाण्डु भाधम साधम वत्थपडिग्गडकमलपायपुम्भेषु, पाठियाइ पीठ-  
इल्लग-सेत्त-सथारयेणु, उल्लसेसन्नेणु, पडिल्लेभाणु, विहरिस्सामि

अेवी मारी सहडण्णा प्ररुपण्णाम्हे करी सुपात्र साधु-साध्वील्लनी नेगवाध  
भणे अने निर्दोष आहार पाण्णी वडोरायु, ते वारे स्पर्शनाम्हे करी शुद्ध होन्ने !

अेवा णारमा अतिथि सविभाग व्रतना पथ अर्थयारा न्णियुव्वा न  
समायरियव्वा, तज्जडा-ते आलोठि

सच्चित्तनिक्खेवण्णया सच्चित्तपेडण्णया कालाधकम्हे परोवम्हेसे मन्धरियाम्हे  
तस्स भिच्छा मि हुक्कडं

नमो अरिहताय, नमो सिद्धाय, नमो आयरियाणु, नमो उवन्नायाणु,  
नमो लोअ्हे सवसाइणु

### संधारा (अणुसणु-अनशन) ने। पाठ

अपन्धम भारण्णित्तय सलेडण्णा, पोषधशाणा पोण्णे, उच्चार पासवण्णु  
भूमिका पडिल्लोहीने, गमण्णुगमण्णु पडिक्कमीने, सथारे हुइहीने, पूर्व तथा  
उत्तर दिशि पत्थकाट्टिक आसने वेसीने, करयल सपरिग्गडिय सिरसावत्तय मत्थये  
अज्जलि कट्टु अेव वयासी, नमोत्थुण्णु अरिहताय भगवताय नव सपत्ताय

अेम अनता सिद्धने नमस्कार करीने, वर्तमान पोताना धर्मशुरु-धर्मा  
यार्थने नमस्कार करीने पूर्व जे व्रत आदर्या छे, ते

आलोवी, पडिक्कमि, निर्दी, निशद्य थधने, सव पाण्णुधवाय पच्च्यइभामि,  
सव मुसावाय पच्च्यइभामि, सव अहिन्नादाणु पच्च्यइभामि, सव भेहुण्णु  
पच्च्यइभामि, सव परिग्गड पच्च्यइभामि, सव डोड पच्च्यइभामि नव  
भिच्छा दसणु सटल, अकरण्णिन्ने नेग पच्च्यइभामि नवण्णुवाअ्हे, तिविड,  
तिविडेणु, न करेमि, न कारवेमि, करतपि अन्न न समण्णुण्णुमि, मण्णुसा वयसा  
कायसा, अेम अठारे पाप थानक पच्च्यइभीने, सव असणु पाणु भाधम-  
साधम अठविड आहार पच्च्यइभीने, नवण्णुवाअ्हे, अेम थारे आहार  
पच्च्यइभीने, जपिय धम सररी धंहु कत पिय मण्णुन मण्णुम धिन्ने  
विसासिय समय अणुमय गहुमय लठकरडगसमाणु रथण्णुकरडगभूय माणु सीय  
माणु उण्ड, माणु पुडा, माणु पीवासा, माणु णाला, माणु थोरा, माणु दसा,  
माणु वाडिय पित्तिय सलिम सन्निवाधय विविडा देगायका परिसडोवसग्गा



ज्ञासा कुसति, ज्येयपि षु अरभेहि उरसासनरसासेहि वोसिरामि त्ति कट्टु, ज्येम शरीर वोसिरापीने, काल अणुवक षभाणु विहरिरसाभि,

ज्येवी सदहणुा प्रइपणुाज्ये करी, अणुसणुनो अवसर आण्ये, अणुसणु कइ ते वारे स्पर्शनाज्ये करी शुद्ध होणे

ज्येवा अपच्छिम भारणुनिय सलेहणुा जुसणुा आराहणुना पय अर्धयारा णणुियण्वा न सभायरियण्वा त णडा ते आलोड

हहलोगास सप्यज्योगे, परलोगास सप्यज्योगे, लुवियास सप्यज्योगे, भरणा स सप्यज्योगे, कामलोगास सप्यज्योगे, तरस भिन्धा मि डुककड

ज्येम समकितपूर्वक णार म्रत सलेणुणुा सहित तथा नवाणु अतिथार ज्येने विषे ने केरु अतिकम, व्यतिकम, अतिथार, अणुथार, णणुता अणुता मन, वयन, कायाज्ये करी सेण्वा होय, सेवराण्वा होय, सेवता प्रत्ये अनुभोधा होय, ते अरिहत, अनत सिद्ध लगवाननी साणे तरस भिन्धा मि डुककड

१ प्राणुातिपात, २ मृषावाह, ३ अहत्ताहान, ४ मैयुन, ५ परिअह, ६ कोष ७ मान, ८ माया, ९ लोभ, १० राग, ११ द्वेष, १२ कलह, १३ अक्याण्थान, १४ पैशुन्य, १५ परपरिवाह, १६ रधअरध, १७ मायामोसो, १८ भिन्धा हसणुसल, तरस भिन्धा मि डुककड

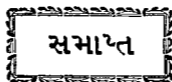
## २५ प्रकारना भिथ्यात्व

१ अबिअहिक भिथ्यात्व, २ अणुाबिअहिक भिथ्यात्व, ३ अबिनिवेशिक भिथ्यात्व, ४ साशयिक भिथ्यात्व ५ अणुालोग भिथ्यात्व, ६ लौकिक भिथ्यात्व, ७ लोकोत्तर भिथ्यात्व, ८ कुप्रावयन भिथ्यात्व, ९ लुवने अलुव सरधे ते भिथ्यात्व १० अलुवने लुव सरधे ते भिथ्यात्व, ११ साधुने कुसाधु सरधे ते भिथ्यात्व, १२ कुसाधुने साधु सरधे ते भिथ्यात्व, १३ आठ कर्मथी भूकाणुा, तेने नथी भूकाणुा सरधे ते भिथ्यात्व, १४ आठ कर्मथी नथी भूकाणुा, तेने भूकाणुा सरधे ते भिथ्यात्व, १५ धर्मने अधर्म सरधे ते भिथ्यात्व, १६ अधर्मने धर्म सरधे ते भिथ्यात्व, १७ जिनमार्गने अन्य मार्ग सरधे ते भिथ्यात्व, १८ अन्य मार्गने जिनमार्ग सरधे ते भिथ्यात्व, १९ जिन मार्गथी ज्योषु प्रइपे ते भिथ्यात्व, २० जिन मार्गथी अधिषु प्रइपे ते भिथ्यात्व, २१ जिनमार्गथी विपरीत प्रइपे ते भिथ्यात्व, २२ अविनयभिथ्यात्व, २३ अकिरियाभिथ्यात्व, २४ अज्ञानभिथ्यात्व, २५ आशातना-भिथ्यात्व, तरस भिन्धा मि डुककड

शौच प्रकारना सम्बन्धितम्

उच्यतेसु पासवेषु जेदेसु सिंघाणेषु व तेसु पित्तसु पूष्यसु शोषिण्यसु  
सुककेशु सुककपोगदपत्रिसाडिण्यसु विगयलवकलेवरेसु, धृतीपुरिसस जेगेसु, नगर  
निद्धमणेषु, सन्वेसु येव असुधंठाणेषु वा तस्स भिच्छा मि हुककड

आ ठेकाणु 'धृच्छामि ठामि आलोउ जे मे देवसिण्यो अण्णारो कण्यो'थी  
'न षडिय न विराडिय तस्स भिच्छामि हुककड' सुधीनो पाठ कडेवो पछी नवकार  
मत्र अने 'करेमि लते सामाधय'थी 'अप्पाणु वोसिरामि' सुधी पाठ कडेवो



ज्ञाना कुसति, ज्येष्ठपिण्डे चरमेहिं उरसासनिस्सासेहिं वेसिरामि त्ति कट्टु, ज्येष्ठ शरीर वेसिरावीने, काल अणुवक भभाणु विहरिस्सामि,

ज्येष्ठी सदृश्या प्रज्ञपण्ये करी, अणुसणुने अवसर आण्ये, अणुसणु कइ ते वारे च्चर्शनाये करी शुद्ध होणे

ज्येष्ठा अपचिष्ठम भारणुनिय सलेहणु जुसणु आराहणुना पय अर्धधारा जणियण्वा न समायरियण्वा त जडा ते आलोठ

धुंढोगास संप्यजोगे, परलोगास संप्यजोगे, लुवियास संप्यजोगे, भरणु स संप्यजोगे, कामलोगास संप्यजोगे, तस्स भिच्छा मि हुककड

ज्येष्ठ समकितपूर्वकं षार प्रत सलेषणु सहित तथा नवाणु अतिथार ज्येष्ठे विषे जे कौष्ठ अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिथार, अणुथार, जणुता अजणुता मन, वचन, कायाये करी सेव्या होय, सेवराण्या होय, सेवता प्रत्ये अनुमोधा होय, ते अरिद्धत, अनत सिद्ध लगवानगी साजे तस्स भिच्छा मि हुककड

१ प्राणुतिपात, २ मृधावाह, ३ अहत्तादान, ४ मैयुन, ५ परिग्रह, ६ कौध ७ मान, ८ माया, ९ लोभा, १० राग, ११ द्वेष, १२ कलह, १३ अहयाज्यान, १४ पैशुन्य, १५ परपरिवाह, १६ रथभरथ, १७ भायाभोसो, १८ भिच्छा हसणुसत्तल, तस्स भिच्छा मि हुककड

## २५ प्रकारना भिच्छात्व

१ अभिग्रहिक भिच्छात्व, २ अणुभिग्रहिक भिच्छात्व, ३ अभिनिवेशिक भिच्छात्व, ४ साशयिक भिच्छात्व ५ अणुलोग भिच्छात्व, ६ लौकिक भिच्छात्व, ७ लोकोत्तर भिच्छात्व, ८ कुआवचन भिच्छात्व, ९ लुवने अणुव सरधे ते भिच्छात्व १० अणुवने लुव सरधे ते भिच्छात्व, ११ साधुने कुसाधु सरधे ते भिच्छात्व, १२ कुसाधुने साधु सरधे ते भिच्छात्व, १३ आठ कर्मथी भूडाणु, तेने नथी भूडाणु सरधे ते भिच्छात्व, १४ आठ कर्मथी नथी भूडाणु, तेने भूडाणु सरधे ते भिच्छात्व, १५ धर्मने अधर्म सरधे ते भिच्छात्व, १६ अधर्मने धर्म सरधे ते भिच्छात्व, १७ जिनमार्गने अन्य मार्ग सरधे ते भिच्छात्व, १८ अन्य मार्गने जिनमार्ग सरधे ते भिच्छात्व, १९ जिन मार्गथी ज्योष्ठ प्रज्ञे ते भिच्छात्व, २० जिन मार्गथी अधिष्ठ प्रज्ञे ते भिच्छात्व, २१ जिनमार्गथी विपरीत प्रज्ञे ते भिच्छात्व, २२ अविनयभिच्छात्व, २३ अकिरियाभिच्छात्व, २४ अज्ञानभिच्छात्व, २५ आशातना-भिच्छात्व, तस्स भिच्छा मि हुककड

# દાતાઓની નામાવલી

આદ્ય સુરબીશ્રી, સુરબીશ્રી, મહાયક મેખરો  
તથા મેખરોની યાદી



ગામવાર કક્કાવાડી લીટ



તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી તા ૨૮-૨-૫૮ સુધીના  
દાખલ થએલ મેખરો,

\*

( રૂા ૨૫૦ થી ઝોછી રકમો આ યાદીના સામેલ કડી નથી )

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી  
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

ગરેડીઆ કુવા રોડ - ત્રીન લોજ પાસે

રાજકોટ

# શાસ્ત્રોની માહિતી.

૧	શ્રી ઉપાસક દશાગ સૂત્ર		પહેલી	આવૃત્તિ	ખલાસ	
	"		બીજી	"	તૈયાર છે	૮-૮-૦
૨	" દશ વૈકલ્પિક	" ભાગ ૧	પહેલી	"	ખલાસ	
	"		બીજી	"	તૈયાર છે	૧૦-૦-૦
૩	" દશવૈકલ્પિક	" ભાગ ૨	પહેલી	"		૭-૮-૦
૪	" નિર્યાવલિકા	" ભાગ ૧ થી ૫	પહેલી	"		૭-૮-૦
૫	" આચારાગ	" ભાગ ૧	પહેલી	"	ખલાસ	
	"		બીજી	"	તૈયાર છે	૧૦-૦-૦
૬	" આચારાગ	" ભાગ ૨	પહેલી	"		૧૦-૦-૦
૭	" આચારાગ	" ભાગ ૩	પહેલી	"		૧૦-૦-૦
૮	" આવશ્યક	"	પહેલી	"	ખલાસ	
	"		બીજી	"	તૈયાર છે	૭-૮-૦
૯	" વિષાક	"	પહેલી	"	ખલાસ	
	"		બીજી	"	છપાય છે	૧૦-૦-૦
૧૦	" દશાશ્રુત સ્કંધ	"	પહેલી	"	ખલાસ	
	"		બીજી	"	છપાય છે	૭-૦-૦
૧૧	" અન્તકૃત દશાગ	"	પહેલી	"	ખલાસ	
	"		બીજી	"	છપાય છે	૫-૦-૦
૧૨	" અનુત્તરોપપાતિક	"	પહેલી	"	ખલાસ	
	"		બીજી	"	છપાય છે	૩-૮-૦
૧૩	" નદી	"	પહેલી	"	છપાય છે	
૧૪	" ઉવવાઈ	"	પહેલી	"	છપાય છે	
૧૫	" ઉત્તરાધ્યયન	"	પહેલી	"	છપાય છે	
૧૬	" કટપ	"	પહેલી	"	છપાય છે	૩૫-૦-૦

(પત્રાકારે)

(અગાઉથી ગ્રાહક થનારને માટે રૂા ૨૫-૦-૦)

૨૧૪૧૦૧૨ તા ૧૫-૩-૫૮



# दाताओनी नामावली

आद्य सुरभीश्री, सुरभीश्री, सदायक भेम्भरो  
तथा भेम्भरोनी यादी



गामवार कक्कावाठी लीष्ट



ता. १८-१०-४४ थी ता २८-२-५८ सुधीमा  
दाण्ड थयेल भेम्भरो,

\*

( इ २५० थी ओछी रकमे आ यादीमा सामेल करी नथी )

श्री अण्डिल भारत श्वेताम्भर स्थानकवासी  
नैन शाखोद्धार समिति

गरेडीआ कुवा रोड - तीन दोण पासे

राजकेट

# શાસ્ત્રોની માહિતી.

૧	શ્રી ઉપાસક દશાગ સૂત્ર		પહેલી આવૃત્તિ	ખલાસ	
	"		બીજી	" તૈયાર છે	૮-૮-૦
૨	" દશ વૈકલિક	" ભાગ ૧	પહેલી	" ખલાસ	
	"		બીજી	" તૈયાર છે	૧૦-૦-૦
૩	" દશવૈકલિક	" ભાગ ૨	પહેલી	"	૭-૮-૦
૪	" નિરયાવલિકા	" ભાગ ૧ થી ૫	પહેલી	"	૭-૮-૦
૫	" આચારાગ	" ભાગ ૧	પહેલી	" ખલાસ	
	"		બીજી	" તૈયાર છે	૧૦-૦-૦
૬	" આચારાગ	" ભાગ ૨	પહેલી	"	૧૦-૦-૦
૭	" આચારાગ	" ભાગ ૩	પહેલી	"	૧૦-૦-૦
૮	" આવશ્યક	"	પહેલી	" ખલાસ	
	"		બીજી	" તૈયાર છે	૭-૮-૦
૯	" વિપાક	"	પહેલી	" ખલાસ	
	"		બીજી	" છપાય છે	૧૦-૦-૦
૧૦	" દશાશ્રુત સ્કંધ	"	પહેલી	" ખલાસ	
	"		બીજી	" છપાય છે	૭-૦-૦
૧૧	" અન્તકૃત દશાગ	"	પહેલી	" ખલાસ	
	"		બીજી	" છપાય છે	૫-૦-૦
૧૨	" અનુત્તરોપમાતિક	"	પહેલી	" ખલાસ	
	"		બીજી	" છપાય છે	૩-૮-૦
૧૩	" નદી	"	પહેલી	" છપાય છે	
૧૪	" ઉવવાઈ	"	પહેલી	" છપાય છે	
૧૫	" ઉત્તરાધ્યયન	"	પહેલી	" છપાય છે	
૧૬	" ઠકપ	"	પહેલી	" છપાય છે	૩૫-૦-૦

(પત્રાકારે)

(અગાઉથી ગ્રાહક યનારને માટે રૂા ૨૫-૦-૦)

નાજકોટ તા ૧૫-૩-૫૮



૧૬	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૧૦૦૧
૧૭	શેઠ માણેકલાલ લાણુભાઈ	પોરબંદર	૧૦૦૧
૧૮	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મહેતા (રિલવે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા	૧૦૦૧
૧૯	મહેતા સોમચંદ નેણુસીભાઈ (કરાચીવાલા)	મોગળી	૧૦૦૧
૨૦	શાહ હરીલાલ અનોપચંદભાઈ	ખભાત	૧૦૦૧
૨૧	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદભાઈ	મુબઈ	૧૦૦૦
૨૨	કોઠારી રંગીલદાસ હરખચંદભાઈ	શિહોર	૧૦૦૦

### સહાયક મેમ્બરો-૩૬

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	શાહ રંગભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ	૭૫૧
૨	મોદી કેશવલાલ હરીચંદ્ર	સાબરમતી	૭૫૦
૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસઘ હા શેઠ જુઝાભાઈ વેલસીભાઈ વઢવાણુ શહેર		૭૫૦
૪	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓઘડભાઈ	જોરાવરનગર	૭૦૦
૫	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા ગોરધનદાસભાઈ	જામજોધપુર	૫૫૫
૬	ખાટવીયા ગીરધર પ્રમાણુદ હા અમીચંદભાઈ	ખાખીજાળીઆ	૫૨૭
૭	મોરળીવાળા સઘવી દેવચંદ નેણુસીભાઈ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ સૌ મણીભાઈ તરફથી હા મુળચંદ દેવચંદ (કરાચીવાલા) મલાડ		૫૧૧
૮	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ	૫૦૨
૯	ગોસલીયા હરીલાલ લાલચંદ તથા અ સૌ ચ પાળેન ગોસલીયા અમદાવાદ		૫૦૨
૧૦	પ્રેમચંદ માણેકચંદ તથા અ સૌ સમરતળેન (રાજસીતાપુરવાળા) અમદાવાદ		૫૦૨
૧૧	શેઠ ઈશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૨	શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૩	શાહ શાન્તીલાલ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૪	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ (કરાચીવાળા)	લીબડી	૫૦૧
૧૫	કામદાર તાગચંદ પોપટલાલ ધોરાજીવાળા	રાજકોટ	૫૦૦
૧૬	મહેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૭	શેઠ ગોર્વાદજી પોપટભાઈ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૮	શેઠ રામજી શામજી વીરાણી	રાજકોટ	૫૦૧
૧૯	સ્વ પિતાશ્રી નદાજીના સ્મરણાર્થે હા વેણુચંદ શાન્તીલાલ (જામુઆવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસઘ હા શેઠ ઠાકરશી કરસનજી	થાનગઢ	૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઔરગાણાદ	૫૦૦



## આધિમુરખીશ્રીઓ-૪

(ઝોછામા ઝોછી રૂા ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મગજદાસભાઈ જાણીતા મીલમુલકીક	અમદાવાદ	૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચદ કાલીદાસભાઈ વારીયા હા શેઠ લાલચદભાઈ, જેચદભાઈ, નગીનભાઈ, વૃંજલાલભાઈ તથા વલ્લભદાસભાઈ	ભાણુવડ	૬૦૦૦
૩	કોઠારી જેચદભાઈ અજરામર હા હરગોવિંદભાઈ જેચદભાઈ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર	૫૦૦૧

## મુરખીશ્રીઓ-૨૨

(ઝોછામા ઝોછી રૂા ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	વકીલ જીવરાજભાઈ વર્ધમાન કોઠારી હ કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મહેતા જીલાખચદ પાનાચદ	રાજકોટ	૩૨૮૬૧૧૧
૪	સ્વ પિતાશ્રી છગનલાલ શામજદાસના સ્મરણાર્થે હ ભાવસાર ભોતીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મહેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સઘવી પીતામ્બરદાસ જીલાખચદ	જામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ શામજીભાઈ વેલજીભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહજી બહાદુર	મોરબી	૨૦૦૦
૯	શેઠ હરેચંદ કુવરજી હા શેઠ ન્યાલચદ હરેચંદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ છગનલાલ હેમચદ વસા હા મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુબઇ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	મોરબી	૧૬૬૩
૧૨	મહેતા સોમચદ જીવસીદાસ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ. સી મણીગોરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજેધપુર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કપુરચદ અમરશી હા દવપતરામભાઈ	જામજેધપુર	૧૦૦૨
૧૫	ભાગડીઆ જગજીવનદાસ રતનગી	જામનગર	૧૦૦૨

૧૬	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૧૦૦૧
૧૭	શેઠ માણેકલાલ લાણુભાઈ	પોરબંદર	૧૦૦૧
૧૮	શ્રીમાન ચ દ્રસિંહજી મહેતા (રિલ્વે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા	૧૦૦૧
૧૯	મહેતા સોમચંદ નેણુમીભાઈ (કરાચીવાલા)	મોરબી	૧૦૦૧
૨૦	શાહ હરીલાલ અનોપચંદભાઈ	ખભાત	૧૦૦૧
૨૧	કેઠારી છબીલદાસ હરખચંદભાઈ	સુબઈ	૧૦૦૦
૨૨	કેઠારી રગીલદાસ હરખચંદભાઈ	શિહોર	૧૦૦૦

### સહાયક મેમ્બરો-૩૬

(ઓછામાં ઓછી રૂ ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	શાહ રગજીભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ	૭૫૧
૨	મોદી કેશવલાલ હરીચંદ્ર	સાબરમતી	૭૫૦
૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા શેઠ ઝુઝાભાઈ વેલસીભાઈ વઠવાણ શહેર	વઠવાણ શહેર	૭૫૦
૪	શેઠ નરોત્તમદાસ ઓઘડભાઈ	જોરાવરનગર	૭૦૦
૫	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા ગોરધનદાસભાઈ	જામજોધપુર	૫૫૫
૬	ખાટવીયા ગીરધર પ્રમાણુદ હા અમીચંદભાઈ	ખાખીજાળીયા	૫૨૭
૭	મોરબીવાળા સંઘવી દેવચંદ નેણુશીભાઈ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ સૌ મણીભાઈ તરફથી હા સુબચંદ દેવચંદ (કરાચીવાલા) મલાડ		૫૧૧
૮	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ	૫૦૨
૯	ગોસલીયા હરીલાલ લાલચંદ તથા અ સૌ ચ પાળેન ગોસલીયા અમદાવાદ		૫૦૨
૧૦	પ્રેમચંદ માણેકચંદ તથા અ સૌ સમરતળેન (રાજસીતાપુરવાળા) અમદાવાદ		૫૦૨
૧૧	શેઠ ઈશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૨	શેઠ ચંદુલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૩	શાહ શાન્તીલાલ માણેકલાલ	અમદાવાદ	૫૦૧
૧૪	શેઠ શીવલાલ ડમરભાઈ (કરાચીવાળા)	લીબડી	૫૦૧
૧૫	કામદાર તારાચંદ પોપટલાલ ધૌરાજીવાળા	રાજકોટ	૫૦૦
૧૬	મહેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૭	શેઠ ગોર્વાંદજી પોપટભાઈ	રાજકોટ	૫૦૦
૧૮	શેઠ રામજી શામજી વીરાણી	રાજકોટ	૫૦૧
૧૯	સ્વ પિતાશ્રી નદાજીના સ્મરણાર્થે હા વેણીચંદ શાન્તીલાલ (જામુઆવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ હા શેઠ ઠાકરશી કરસનજી	થાનગઢ	૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઓરગાખાદ	૫૦૦

## આધુનિકીકૃતિઓ-૪

( ઓછામાં ઓછી રૂા ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર )

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મગજદારસભાઈ જાણીતા-મીલમાલીક	અમદાવાદ	૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચદ કાલીદાસભાઈ વારીયા હા શેઠ લાલચદભાઈ, જેચદભાઈ, નગીનભાઈ, વૃજલાલભાઈ તથા વલ્લભદાસભાઈ	ભાણવડ	૬૦૦૦
૩	કોઠારી જેચદભાઈ અજરમર હા હરગોવિંદભાઈ જેચદભાઈ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર	૫૦૦૧

## મુરખીકૃતિઓ-૨૨

( ઓછામાં ઓછી રૂા ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર )

૧	વકીલ જીવરાજભાઈ વર્ધમાન કોઠારી હ કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલોલભાઈ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મહેતા જીલાખચદ પાનાચદ	રાજકોટ	૩૨૮૯
૪	સ્વ પિતાશ્રી જીગનલાલ શામજીદાસના સ્મરણાર્થે હ ભાવસાર ભોતીલાલ જીગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મહેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સઘવી પીતામજીદાસ જીલાખચદ	જામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ શામજીભાઈ વેલજીભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહજી બહાદુર	મોરબી	૨૦૦૦
૯	શેઠ દહેરચદ કેવરજી હા શેઠ ન્યાલચદ ઢેરચદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ જીગનલાલ હેમચદ વસા હા મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુબઇ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	મોરબી	૧૬૬૩
૧૨	મહેતા સોમચદ જીવસીદાસ તથા તેમના ધર્મપત્ની અ. સો. મણીગોરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજીપુર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કપુરચદ અમરશી હા દવપતરામભાઈ	જામજીપુર	૧૦૦૨
૧૫	ભગીઆ જગજીવનદામ રતનગી	જામનગર	૧૦૦૨

૬	શેઠ પ્રેમચંદ સાકરચંદ	૨૫૦
૭	શાહ રતીલાલ વાડીલાલ	૨૫૧
૮	શેઠ લાલભાઈ મગળદાસ	૨૫૧
૯	સ્વ અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે હા કાનજીભાઈ અમૃતલાલ દેશાઈ	૨૫૧
૧૦	ભાવસાર ભોગીલાલ જ્ઞાનાદાસ (પાટણવાળા)	૨૫૧
૧૧	શાહ નટવરલાલ ચંદુલાલ	૨૫૧
૧૨	શાહ નરસિંહદાસ ત્રીલોવનદાસ	૨૫૧
૧૩	શ્રી શાહપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા જૈન ઉપાશ્રય હા વહીવટ કર્તા શેઠ ઈશ્વરલાલ પુરૂષોત્તમદાસ	૨૫૧
૧૪	શ્રી છીપાપોળ દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા જૈનસંઘ હા ચંદુલાલ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૫	શાહ ચીનુભાઈ ખાલાભાઈ C/o શાહ ખાલાભાઈ મહાસુખરામ	૨૫૧
૧૬	શાહ ભાઈલાલ ઉજ્જવશી	૨૫૧
૧૭	શ્રી સુખલાલ ડી શેઠ હા ડો કુ સરસ્વતીબહેન શેઠ	૨૫૧
૧૮	શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા જૈનસંઘ હા શાહ કાન્તીલાલ જીવણલાલ	૨૫૧
૧૯	મોદી નાથલાલ મહાદેવદાસ	૨૫૧
૨૦	શાહ મોહનલાલ ત્રીકમદાસ	૨૫૧
૨૧	શ્રી છકોટી સ્થા જૈનસંઘ હા શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨૨	શેઠ પોપટલાલ હસરાજના સ્મરણાર્થે હા શેઠ ખાણુલાલ પોપટલાલ	૨૫૧
૨૩	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા ભાઈલાલ અમૃતલાલ દેશાઈ	૨૫૧
૨૪	શાહ નવનીતલાલ અમુલખરાય	૨૫૧
૨૫	શાહ મણીલાલ આશારામ	૨૫૧
૨૬	શાહ ચીનુભાઈ સાકરચંદ	૨૫૧
૨૭	શાહ વરજીવનદાસ ઉમેદચંદ	૨૫૧
૨૮	શાહ રજનીકાન્ત કસ્તુરચંદ	૨૫૧
૨૯	મધવી જીવણલાલ છગનલાલ (સ્થા જૈન)	૨૫૧
૩૦	શાહ શાંતિલાલ મોહનલાલ ધાગધાવાળા	૨૫૧
૩૧	અ સો જૈન રતનબાઈ નાદેચા હા શાહ ધુલાજી ચપાલાલજી	૨૫૧
૩૨	શાહ હરિલાલ જેઠાલાલ ભાડલાવાળા	૨૫૧
૩૩	શ્રી સરસપુર દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા જૈન ઉપાશ્રય હા ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	૨૫૧
૩૪	શેઠ પુખરાજજી સમતીરામજી સાદડીવાળા	૨૫૧
૩૫	શેઠ લાલચંદ મીશ્રીલાલ	૨૫૧

૨૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસઘ	ઓર ગાખાદ	૫૦૦
	૧૫૦ શેઠ શેષમલજી જીવરાજજી		
	૧૨૫ શેઠ અનરાજજી લાલચ દજી		
	૧૨૫ ધુકડચ દજી રૂપચ દજી		
	૧૦૦ દગડુમલજી આદમલજી		
	<u>૫૦૦</u>		
૨૩	મહેતા મૂળચ દ રાઘવજી હા મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભજીભાઈ ધાકા		૫૦૦
૨૪	શેઠ હરખચ દ પુરૂષોત્તમ હા ઈન્દુકુમાર	ચોરવાડ	૫૦૧
૨૫	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી શુગલીયા	રાણાવાસ	૫૦૧
૨૬	સ્થા જૈનસઘ હા ખાટવીઆ અમીચ દ ગીરધરભાઈ ખાખીજાળીઆ		૫૦૧
૨૭	શેઠ ખીમજીભાઈ ખાવાભાઈ હા કુલચ દભાઈ, નાગરદાસભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ	સુખઈ	૫૦૧
૨૮	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા મુજળભાઈ મણીલાલ	સુખઈ	૫૦૧
૨૯	સ્વ કાતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હા, શેઠ ખાલચ દ સાકરચ દ	સુખઈ	૫૦૧
૩૦	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી (જેતપુરવાળા)	સુખઈ	૫૦૧
૩૧	શાહ જય તીલાલ અમૃતલાલ	શીવ	૫૦૧
૩૨	વોરા મણીલાલ લક્ષ્મીચ દ	શીવ	૫૦૧
૩૩	શેઠ શુભાળચ દ ભુદરભાઈ	ખારોડ	૫૦૧
૩૪	મહાન ત્યાગી જેન ધીરજકુવર ચુનીલાલ મહેતા	ભાણુવડ	૫૦૧
૩૫	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસઘ	ધાકા	૫૦૧
૩૬	શ્રી મગનલાલ જગનલાલ શેઠ	રાજકોટ	૫૦૧



### ૩૧૬ મેમ્બરોનુ ગામ વાર લીસ્ટ

#### અમદાવાદ તથા પરાઓ

૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચ દ	૨૫૧
૨	શેઠ છોટાલાલ વખતચ દ હા કૃષીચ દભાઈ	૨૫૧
૩	શાહ કાન્તીલાલ ત્રીલોવનદાસ	૨૫૧
૪	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૫	શાહ પોપટલાલ મેહનલાલ	૨૫૧

୬ ପୂଜ୍ୟ ପିତାଶ୍ରୀ ମୋତୀલાଲଞ୍ଜ ଉଡ଼ିତାନା ସ୍ମରଣାର୍ଥେ  
 ଛା ସ୍ଵଞ୍ଜତଲାଲଞ୍ଜ ମୋତୀଲାଲଞ୍ଜ ଉଡ଼ିତା ୨୫୧

୭ ଶେଠ ଛଗନଲାଲ ଖାଗରିଆ ୨୫୧  
 ଉତ୍ତରଗାବରେଠ

୧ ଶାଢ଼ି ମୋହନଲାଲ ପୋପଟଲାଲ ଧାନେଶୀବାଣା ୨୫୧

ଉପଲେଟା

୧ ଶେଠ ଜେଠାଲାଲ ଗୋବିନ୍ଦନାଥ ୨୫୧

୨ ସ୍ଵ ଗେନ ସତୋକଗେନ କ୍ୟରା ଛା, ଐତମୟ ଢଲାର୍ଥ,  
 ଛୋଟାଲାଲଭାର୍ଥ ତଥା ଅମୃତଲାଲଭାର୍ଥ ବାଲଞ୍ଜ (କନ୍ୟାଶୁବାଣା) ୨୫୧

୩ ଶେଠ ପୁଷାଲକ୍ୟ ଢ କାନଞ୍ଜଭାର୍ଥ ଛା ଶେଠ ପ୍ରତାପଭାର୍ଥ ୨୫୧

୪ ମଘାଣୀ ମୂଖଶକର ଛରଞ୍ଜବନଭାର୍ଥନା ସ୍ମରଣାର୍ଥେ  
 ଛା ତେମନା ପୁତ୍ରୋ ଋଷୀଲାଲଭାର୍ଥ ତଥା ରମଣୀକିଲାଲ ୨୫୧

ଐଠନ କେମ୍ପ

୧ ଶାଢ଼ି ଗୋକ୍ତନାଥ ଶାମଞ୍ଜ ଉତ୍ତରୀ ୨୫୧

ଠିକାଲ

୧ ଶେଠ ମୋହନଲାଲ ଜେଠାଭାର୍ଥନା ଅମରଣାର୍ଥେ ଛା ଶେଠ ଆତ୍ମାରାମ ମୋହନଲାଲ ୨୫୧

୨ ଠୋ ମାଧ୍ୟାୟ ଢ ଗଗନଲାଲ ଶେଠ ଛା ଠୋ ରତନକ୍ୟ ଢ ମଧ୍ୟାୟ ଢ ୨୫୧

୩ ସ୍ଵ ନାଥାଲାଲ ଉତ୍ତରକ୍ୟ ଢନା ସ୍ମରଣାର୍ଥେ ଛା ଶାଢ଼ି ରତୀଲାଲ ନାଥାଲାଲ ୨୫୧

୪ ଶାଢ଼ି ମଞ୍ଜୁଲାଲ ତରକ୍ୟ ଢନା ଅମରଣାର୍ଥେ ଛା ମାରକ୍ତୀୟା ଅହୁଲାଲ ମଞ୍ଜୁଲାଲ ୨୫୧

ଠିକା

୧ ଶ୍ରୀ ସ୍ଵା ଢରିଆପୁରୀ ଜେନ ସଘ ଛା ଡାବଗାର ଢାମୋହରନାଥ ଢଧରଭାର୍ଥ ୨୫୧

ଠିକାଠି

୧ ପଟେଲ ଗୋବିନ୍ଦଲାଲ ଡଗବାନଞ୍ଜ ୨୫୧

୨ ପଟେଲ ଧୀମଞ୍ଜ ଜେଠାଭାର୍ଥ ବାଘଣୀ (ତେମନା ସ୍ଵ ସୁପୁତ୍ର ରାମଞ୍ଜଭାର୍ଥନା ସ୍ମରଣାର୍ଥେ) ୩୦୨

ଧୀସନ

୧ ଶେଠ କିଶନଲାଲ ପୃଥ୍ଵୀରାଞ୍ଜ ୨୫୧

ଧିଲାତ

୧ ଶେଠ ଡାଣ୍ଡେକିଲାଲ ଡଗବାନନାଥ ୨୫୧

୨ ଶ୍ରୀ ସ୍ଵା ଜେନ ସଘ ଛା ପଟେଲ କାନ୍ତୀଲାଲ ଅଖାଲାଲ ୨୫୧

୩ ଶାଢ଼ି ସାକରକ୍ୟ ଢ ମୋହନଲାଲ ୨୫୧

୪ ଶାଢ଼ି ଅହୁଲାଲ ଢରିଲାଲ ୨୫୧

୩୬	स्व पिताश्री जवाहीरलाल तथा पूज्य यायालु हुजारीमलल गरडीधाना स्मरण्यार्थे डा मूण्यद जवाहरलाल	२५१
୩୭	स्व लावसार गणाबाध (भगणदास) पानायदना स्मरण्यार्थे डा तेमना धर्मपत्नी पुरीगेन	२५१
୩୮	स्व पिताश्री रवणुबाध तथा स्व मातुश्री भूषीबाधना स्मरण्यार्थे डा ककलबाध डोंठारी	३०१
୩୯	लावसार केशवलाल भगनलाल	२५१
୪०	शाह केशवलाल नानयद लभुडावाणा डा पार्वतीगेन	२५१
୪१	शाह लतेन्द्रकुमार वाडीलाल माणुक्यद राजसीतापुरवाणा (सागरभती)	२५१
୪२	श्री स्था जैन सघ (सागरभती)	२५०
୪३	षीपीनयद्र तथा उभाकात युनीलाल गोपाष्ठी (राष्ट्रपुरवाणा)	३०१

### अभलनेर

१	शाह नागरदास वाघलुबाध	२५१
२	श्री स्था जैनसघ डा शाह गाडावाल लीभावाल	२५१

### आणु द

१	शेठ रमणीकलाल जे कपासी ड मनसुभलालबाद	२५१
---	-------------------------------------	-----

### आसनसोद

१	गावीसी भणीलाल अत्रलुजना स्मरण्यार्थे तेमना धर्मपत्नी भणीबाध तरङ्गी डा रमणीकलाल, अनीलकात, विनोदराय	२५१
---	--	-----

### आटकोट

१	शाह युनीलाल नारणुल	३०१
---	--------------------	-----

### उदेपुर

१	शेठ मोतीलालल रणुलतलालल डीगड	२५१
२	शेठ भगनलालल भागरेया	२५१
३	अ सौ जडेन यद्रावती ते श्रीमान जडोतल लल नाहरना धर्मपत्नी डा शेठ रणुलतलालल डीगड	२५१
४	स्व शेठ कणुवालल लोढाना स्मरण्यार्थे डा शेठ डोलतसिडलु लोढा	२५१
५	स्व शेठ प्रतापमलल साभलाना स्मरण्यार्थे डा प्राणुवाल डीरालाल साभला	२५१

જુનાગઢ

૧ શાહ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા હેરીલાલભાઈ (હાટીના માળીઆવાળા) ૨૫૧

જુનારદેન (મધ્ય પ્રાત)

૧ વેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ ૨૫૧

જેતપુર

૧ શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ હા નરભોરામભાઈ (જસાપુરવાળા) ૨૫૧

૨ દોશી ઇટાલાલ વનેચદ ૨૫૧

૩ કોઠારી ડોલરકુમાર વેણીલાલ ૨૫૧

જેતલસ

૧ શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ ૨૫૧

૨ કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ જળકબેન તરફથી  
હા શાન્તીલાલભાઈ ગોડલવાળા ૨૫૧

ડભાસ

૧ સ્વ તુરખીઆ હાલેચંદ માણેકચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ  
જીવતીબાઈ તરફથી હા જયતીબાઈ ૨૫૧

ડાડાઈચા

૧ શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા શેઠ ચપાલાલજી મારવે ૨૫૦

થાનગઢ

૧ શાહ ઠાકરશીભાઈ કરશનજી ૨૫૧

૨ શેઠ જોઠાલાલ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧

૩ શાહ ધારશી પાશવીર હા સુખલાલભાઈ ૨૫૧

દહાપ રોડ (યાણા)

૧ શાહ હરજીવનદાસ ઝોઘડ અધાર (કરાચીવાળા) ૨૫૧

દિલ્હી

૧ લાલા પૂર્ણચંદ જૈન (સેન્ટ્રલ બેંકવાળા) ૩૫૧

વાગ (મધ્યપ્રાત)

૧ શેઠ તાગરમલજી પનાલાલજી ૨૫૧



## ગુદા

- ૧ સ્વ મહેતા પુનમચ દ ભવાનભાઈનાં સ્મરણાર્થે  
હા તેમના ધર્મપત્નિ દીવાળીબેન લીલાધર ૨૫૧

## ગોઠલ

- ૧ સ્વ બાખડા વચ્છરાજ તુલસીદાસના ધર્મપત્નિ કમળબાઈ તરફથી  
હા માણેકચ દભાઈ તથા કપુરચ દભાઈ ૨૫૧
- ૨ ખીપળીઆ લીલાધર દામોદર તરફથી તેમના ધર્મપત્ની અ સો  
લીલાવતી સાકરચ દ કોઠારીના ખીબ વરસીતપની ખુશાલીમા ૩૦૧
- ૩ કામદાર જુઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા હરીલાલ જુઠાભાઈ ૩૦૧

## ગોધરા

- ૧ શાહ ત્રીલોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧

## ઘટકેજી

- ૧ શાહ ચકુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

## ઘોલવાડ (ધાણા)

- ૧ મહેતા શુભાજય દજી ગભીરલાલજી ૩૦૦

## ચુડા (બાલાવાડ)

- ૧ શ્રી સ્થા જૈનસઘ હા રતીલાલ ગાધી પ્રમુખ ૨૫૧

## જલેસર (બાલાસોર)

- ૧ સઘવી નાનચ દ પોપટભાઈ યાનગઢવાળા ૨૫૧

## જામજેઘપુર

- ૧ શ્રી સ્થા જૈનસઘ ૩૮૭
- ૨ શાહ ત્રીલોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા ૨૫૧

## જામનગર

- ૧- શેઠ છોટાલાલ કેશવજી ૨૫૧
- ૨ શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી ૨૫૧
- ૩ વોરા ચીમનલાલ દેવજીભાઈ ૨૫૧

## જામખ ભાળીઆ

- ૧ શેઠ વસનજી નારજી ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થા, જૈનસઘ હા મહેતા રણછોડદાસ પરમાજી ૨૫૧
- ૩ સઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ ૨૫૧

## જુનાગઢ

૧ શાહ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા હરીલાલભાઈ (હાટીના માળીઆવાળા) ૨૫૧

## જુનારદેન (મધ્ય પ્રાત)

૧ વેલાણી ત્રીકમજી લાધાભાઈ ૨૫૧

## જેતપુર

૧ શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ હા નરભોરામભાઈ (જસાપુરવાળા) ૨૫૧

૨ દોગી છોટાલાલ વનેચદ ૨૫૧

૩ કોઠારી ડાલરકુમાર વેણીલાલ ૨૫૧

## ૧ જેતલસન

૧ શાહ લક્ષ્મીચંદ કપુરચંદ ૨૫૧

૨ કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપતિ જળકળેન તરફથી  
હા શાન્તીલાલભાઈ ગોડલવાળા ૨૫૧

## ડભાસ

૧ સ્વ તુરખીઆ લહેરચંદ માણેકચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપતિ  
જીવતીભાઈ તરફથી હા જ્યતીભાઈ ૨૫૧

## ડાડાઈઆ

૧ શ્રી સ્વા જૈન સઘ હા શેઠ ચપાલાલજી મારવે ૨૫૦

## થાનગઢ

૧ શાહ ઠાકરશીભાઈ કરશનજી ૨૫૧

૨ શેઠ જેઠાલાલ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧

૩ શાહ ધારશી પાશવીર હા મુખલાલભાઈ ૨૫૧

## દહાડ રોડ (થાણા)

૧ શાહ હરજીવનદાસ ઓઘડ ખધાર (કરાચીવાળા) ૨૫૧

## દિલ્હી

૧ લાલા પૂર્ણચંદજી જૈન (સેન્ડ્રલ બેંકવાળા) ૩૫૧

## વાર (મધ્યપ્રાત)

૧ શેઠ માગરમલજી પનાલાલજી ૩૫૧

## ગુદા

- ૧ સ્વ મહેતા પુનમચદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે  
હા તેમના ધર્મપત્નિ દીવાળીબેન લીલાધર ૨૫૧

## ગોડલ

- ૧ સ્વ બાખડા વરછરાજ તુલસીદાસના ધર્મપત્નિ કમળબાઈ તરફથી  
હા માણેકચદલાઈ તથા કપુરચદલાઈ ૨૫૧
- ૨ ખીપળીઆ લીલાધર દામોદર તરફથી તેમના ધર્મપત્ની અ સૌ  
લીલાવતી સાકરચદ કોઠારીના ખીજા વરસીતપની ખુશાલીમા ૩૦૧
- ૩ કામદાર જુઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા હરીલાલ જુઠાભાઈ ૩૦૧

## ગોધરા

- ૧ શાહ ત્રીલોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧

## ઘટકેજી

- ૧ શાહ ચદલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

## ઘોલવાડ (થાણા)

- ૧ મહેતા શુલાભચદજી ગભીરલાલજી ૩૦૦

## ચુડા (ઝાલાવાડ)

- ૧ શ્રી સ્થા જૈનસઘ હા રતીલાલ ગાધી પ્રમુખ ૨૫૧

## જલેસર (બાલાસોર)

- ૧ સઘવી નાનચદ પોપટભાઈ યાનગઢવાળા ૨૫૧

## જામજેઘપુર

- ૧ શ્રી સ્થા જૈનસઘ ૩૮૭

- ૨ શાહ ત્રીલોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા ૨૫૧

## જામનગર

- ૧- શેઠ છોટાલાલ કેશવજી ૨૫૧

- ૨ શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી ૨૫૧

- ૩ વેરા ચીમનલાલ દેવજીભાઈ ૨૫૧

## જામખ ભાળીઆ

- ૧ શેઠ વસનજી નારજી ૨૫૧

- ૨ શ્રી સ્થા જૈનસઘ હા મહેતા રણછોડદાસ પરમાજી ૨૫૧

- ૩ સઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ ૨૫૧

## બુગસરા (ભાયાણી)

- ૧ સ્વ પૂજ્ય માતૃશ્રી જકલબાઈના સ્મરણાર્થે  
હા દેશાઈ વ્રજલાલ કાળીદાસ ૨૫૧
- ૨ શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાયડીવાળા હા શેઠ માનસંગ પ્રેમચંદ ૨૫૧

## બેરાળ (કચ્છ)

- ૧ શેઠ ગાગજી કેશવજી (જ્ઞાનભંડાર માટે) ૨૫૧

## બોટાદ

- ૧ સ્વ વસાણી હરગોવિંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે  
હા તેમના ધર્મપત્નિ છબલબેન ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ (૨૫૦ બાકી) ૨૫૧

## બોડેલી

- ૧ શાહ પ્રવીણચંદ્ર નરસીદાસ (સાણુદવાળા) ૨૫૧
- ૨ શાહ ગીરધરલાલ સાકરચંદ ૨૫૧

## ભાણુવડ

- ૧ શેઠ જ્યેષ્ઠભાઈ માણેકચંદ ૩૦૧
- ૨ સઘવી માણેકચંદ માધવજી ૨૫૧
- ૩ શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા) ૨૫૧
- ૪ શેઠ રામજી જીણાભાઈ ૨૫૧
- ૫ શેઠ પદમશી બીમજી ફેફરીઆ ૨૫૧
- ૬ ફેફરીઆ ગાડાલાલ કાનજીભાઈ હા અ સૌ શાતાબેન વસનજી ૨૫૧

## મંદ્રાસ

- ૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી ૨૫૧

## મનોર (થાણા)

- ૧ શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવ તગઢવાળા  
હા પૂનમચંદજી શેરમલજી બોટયા ૨૫૧

## માનકુના (કચ્છ)

- ૧ સ્વ મહેતા કુવરજી નાથાલાલના સ્મરણાર્થે  
હા તેમના ધર્મપત્નિ કુવરબાઈ હરખચંદ  
(માનકુવા સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ માટે) ૨૫૧

## ધાગમ્ના

૧	શ્રી સ્થા જૈન મોટા સઘ હા શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ	૨૫૧
૨	સઘવી નારણદાસ વખતચદ	૩૦૧
૩	ઠકકર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ	૨૫૧

## ધોરાજી

૧	મહેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	૩૫૧
૨	સ્વ પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈના સ્મરણાર્થે	
	હા પટેલ દલીચદ ભગવાનજી	૨૫૧
૩	અ સૌ ખચીબેન જાણુભાઈ	૨૫૧
૪	ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર જોઈલ મીલ પ્રા લીમીટેડ	૨૫૧
૫	સ્વ રાયચદ પાનાચદ શાહના સ્મરણાર્થે-હા ચીમનલાલ રાયચદ	૩૦૧
૬	ગાધી પોપટલાલ જેચદ	૨૫૦

## ધ ધુડા

૧	ભાવસાર જોડીદાસ ગણેશભાઈ	૨૫૧
૨	શેઠ પોપટલાલ ધારશી	૨૫૧
૩	સ્વ ગુલાબચદભાઈના સ્મરણાર્થે હા વેરા પોપટલાલ નાનચદ	૨૫૧
૪	વસાણી ચત્રજીજી વાઘજીભાઈ	૨૫૧

## ન દુરખાર

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ હા શેઠ પ્રેમચદ ભગવાનલાલ	૨૫૦
---	--	-----

## પાણસણા

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	૨૫૧
---	------------------------	-----

## પાલજીપુર

૧	લક્ષ્મીબેન હા મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થાનકવાસી જૈન પુસ્તકાલય	૨૫૧

## પાલેજ

૧	સ્વ મનસુખલાલ મોહનલાલ સઘવીના સ્મરણાર્થે	
	હા ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ	૩૦૧

## ખરવાળા (વિલાશા)

૧	સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે	
	હા તેમના ધર્મપત્નિ સુરજબેન મોરારજી	૨૫૧

## બંગસરા (ભાયાણી)

- ૧ સ્વ પૂજ્ય માતૃશ્રી જકલબાઈના સ્મરણાર્થે  
હા દેશાઈ વજલાલ કાળીદાસ ૨૫૧
- ૨ શેઠ પોપટલાલ રાઘવજી રાયડીવાળા હા શેઠ માનસગ પ્રેમચંદ ૨૫૧

## બેરાળ (કચ્છ)

- ૧ શેઠ ગાગજી કેશવજી (જ્ઞાનભંડાર માટે) ૨૫૧

## બોટાદ

- ૧ સ્વ વસાણી હરગોવિંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે  
હા તેમના ધર્મપત્નિ છળલબેન ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ (૨૫૦ બાકી) ૨૫૧

## બોરલી

- ૧ શાહ પ્રવીણચંદ્ર નરસીદાસ (સાણુદવાળા) ૨૫૧
- ૨ શાહ ગીરધરલાલ સાકરચંદ ૨૫૧

## ભાણુવડ

- ૧ શેઠ જ્યેષ્ઠભાઈ માણેકચંદ ૩૦૧
- ૨ સંઘવી માણેકચંદ માધવજી ૨૫૧
- ૩ શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચંદ (લાલપુરવાળા) ૨૫૧
- ૪ શેઠ રામજી જીણુભાઈ ૨૫૧
- ૫ શેઠ પદમશી બીમજી ફેફરીઆ ૨૫૧
- ૬ ફેફરીઆ ગાડાલાલ કાનજીભાઈ હા અ સૌ શાતાબેન વસનજી ૨૫૧

## મદ્રાસ

- ૧ શેઠ મેઘરાજજી દેવીચંદજી ૨૫૧

## મનોર (થાણા)

- ૧ શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવતગઢવાળા  
હા પૂનમચંદજી શેરમલજી બોલ્યા ૨૫૧

## માનકુવા (કચ્છ)

- ૧ સ્વ મહેતા કુવરજી નાથાલાલના સ્મરણાર્થે  
હા તેમના ધર્મપત્નિ કુવરબાઈ હરખચંદ  
(માનકુવા સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ માટે) ૨૫૧

## ધાગામા

- ૧ શ્રી સ્થા નૈન મોટા, સઘ હા શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ ૨૫૧  
 ૨ સઘવી નારજીદાસ વખતચદ ૩૦૧  
 ૩ ઠકકર નારજીદાસ હરગોવિંદદાસ ૨૫૧

## ધોરાજી

- ૧ મહેતા પ્રજીદાસ મૂળજીભાઈ ૩૫૧  
 ૨ સ્વ પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈના સ્મરણાર્થે  
 હા પટેલ દલીચદ ભગવાનજી ૨૫૧  
 ૩ અ સૌ બચીબેન બાણુભાઈ ૨૫૧  
 ૪ ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર બોઈલ મીલ પ્રા લીમીટેડ ૨૫૧  
 ૫ સ્વ રાયચદ પાનાચદ શાહના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ રાયચદ ૩૦૧  
 ૬ ગાધી પોપટલાલ જેચદ ૨૫૦

## ધ ધુકા

- ૧ ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ ૨૫૧  
 ૨ શેઠ પોપટલાલ ધારશી ૨૫૧  
 ૩ સ્વ ગુલાબચદભાઈના સ્મરણાર્થે હા વોરા પોપટલાલ નાનચદ ૨૫૧  
 ૪ વસાણી ચત્રજી વાઘજીભાઈ ૨૫૧

## ન દુરખાર

- ૧ શ્રી સ્થાનકવાસી નૈન સઘ હા શેઠ પ્રેમચદ ભગવાનલાલ ૨૫૦

## પાણસણા

- ૧ શ્રી સ્થાનકવાસી નૈન સઘ ૨૫૧

## પાલણપુર

- ૧ લક્ષ્મીબેન હા મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ ૨૫૧  
 ૨ શ્રી લોકાગચ્છ સ્થાનકવાસી નૈન પુસ્તકાલય ૨૫૧

## પાલેજ

- ૧ સ્વ મનમુખલાલ મોહનલાલ સઘવીના સ્મરણાર્થે  
 હા ભાઈ ધીરજલાલ મનમુખલાલ ૩૦૧

## બરવાળા (ઘિલાશા)

- ૧ સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે  
 હા તેમના ધર્મપત્નિ મુરજીબેન મોરારજી ૨૫૧

- ૨૬ સ્વ કાનજી મૂળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતૃશ્રી દિવાળીગાર્ધના ૧૬ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા જ્ય તીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા (મલાડ) ૨૫૧
- ૨૭ શેઠ ખુશાલભાઈ જેગારબાઈ ૨૫૦
- ૨૮ શાહ પ્રેમજી માલશી ગગર (મલાડ) ૨૫૧
- ૨૯ સ્વ પિતાશ્રી પતુભાઈ મોનાભાઈના સ્મરણાર્થે હા કાનજી પતુભાઈ મલાડ ૨૫૧
- ૩૦ શાહ વેલજી જેશીંગભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ સ્વ નાનગાર્ધના સ્મરણાર્થે ૩૦૧
- ૩૧ સ્વ પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે હા શાહ દામજી રામશી (મલાડ) ૩૦૧
- ૩૨ શેઠ ત્રણકલાલ કસ્તુરચંદ લીંગડીવાળા તરફથી શ્રી અન્નરામર શાસ્ત્રલકાર લીંગડી માટે (માટુગા) ૨૫૧
- ૩૩ સ્વ પિતાશ્રી લીમજી ડેરશી તથા માતૃશ્રી પાલાળાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ ઉમરશીભાઈ લીમશી કચ્છપતરીવાળા (મલાડ) ૩૦૧
- ૩૪ શેઠ ચુનીલાલ નરભેરામ વેકરીવાળા ૨૫૧
- ૩૫ શાહ વૃજગભાઈ શીવજી (મલાડ) ૨૫૧
- ૩૬ રતીલાલ ભાઈચંદ મહેતા ૨૫૧
- ૩૭ શાહ ખીમજી મૂળજી પૂજા (મલાડ) ૨૫૧
- ૩૮ મેસર્સ સવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ ડ પની હા શેઠ માણુકલાલ વાડીલાલ ૨૫૧
- ૩૯ ઘેલાણી વલભજી નરભેરામ હા નરસીભાઈ વલભજી ૨૫૧
- ૪૦ અ સૌ સમતાબેન શાન્તીલાલ C/o શાન્તીલાલ ઉન્નમશી શાહ (મલાડ) ૨૫૧
- ૪૧ તેજાણી કુબેરદાસ પાનાચંદ ૨૫૧
- ૪૨ કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ ૨૫૧
- ૪૩ સ્વ પિતાશ્રી ઢેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે સુરજબેન તરફથી હા તનસુખલાલભાઈ (મલાડ) ૨૫૧
- ૪૪ દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૪૫ શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા (સાદડીવાળા) ૨૫૧
- ૪૬ દોશી ચત્રભુજ સુદરજી (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૪૭ દોશી ભુગલકીશોર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર) ૫૨૧
- ૪૮ દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રભુજ (ઘાટકોપર) ૨૫૧
- ૪૯ શાહ ત્રીભોવનદાસ માનસિંગ દોડીવાળાના સ્મરણાર્થે હા શાહ હરખચંદ ત્રીભોવનદાસ ૨૫૧
- ૫૦ શાહ જેઠાલાલ ઠામરશી ધાગધાવાળા હા શાહ વાડીલાલ જેઠાલાલ ૨૫૦
- ૫૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧



ସୁଖ ଓ ତଥା ପରାଞ୍ଚୋ

୧	ଶେଠ ଛଗନଲାଲ ନାନଞ୍ଚୋ	୨୫୧
୨	ଶାଢ଼ ଛରଞ୍ଚୋବନ କେଶବଞ୍ଚୋ	୨୫୧
୩	ଦେଲାଣ୍ଡୀ ପ୍ରଭୁଲାଲ ଟ୍ରିକମଞ୍ଚୋ (ଘୋରୀବଢ଼ୀ)	୨୫୨
୪	ଶେଠ ଛୋଟୁଞ୍ଚୋ ଛରଗୋବିଢ଼ଢ଼ାସ କଟୋରୀବାଢ଼ା	୨୫୧
୫	ଶ୍ରୀ ବର୍ଧମାନ ସ୍ଥା ଲୈନସଘଢ଼ା ଡେକ୍ଟରୀମଢ଼ାଞ୍ଚୋ ଅନୋପସଢ଼ଞ୍ଚୋ ଶୁଗଞ୍ଚୋ(ମଢ଼ାଢ଼)	୨୫୧
୬	ଶେଠ ଡୁଗରଶୀ ଛସରାଞ୍ଚୋ ବୀସରୀୟା	୨୫୧
୭	ଶାଢ଼ ରମଞ୍ଚୋକିଲାଲ କାଞ୍ଚୋଢ଼ାସ ତଥା ଅ ଚାଁ କାନ୍ତାଞ୍ଚୋ ରମଞ୍ଚୋକିଲାଲ	୨୫୧
୮	ଶାଢ଼ ଛିଞ୍ଚୋମତଲାଲ ଛରଞ୍ଚୋବନଢ଼ାସ	୨୫୧
୯	ଶାଢ଼ ରତନଶୀ ଗୋଞ୍ଚୋଶୀନୀ କୁପନୀ	୨୫୧
୧୦	ଶାଢ଼ ଶୀବଞ୍ଚୋ ଗୋଞ୍ଚୋକ (କଞ୍ଚୋ ଗୋରାଞ୍ଚୋବାଞ୍ଚୋ)	୨୫୧
୧୧	ଶାଢ଼ ପାନାସଢ଼ ସଘଞ୍ଚୋ ଢ଼ା ଶାଢ଼ ଟ୍ରାଞ୍ଚୋକିଲାଲ ରତୀଲାଲ	୨୫୧
୧୨	ସ୍ବ ପୁ ପିତାଶ୍ରୀ ବୀଞ୍ଚୋସଢ଼ ଗୋଞ୍ଚୋଶୀଗଞ୍ଚୋ ଲଞ୍ଚୋତରବାଞ୍ଚୋଗାନା ସ୍ବରଞ୍ଚୋସଢ଼ି ଢ଼ା କେଶବଲାଲ ବୀରସଢ଼ ଶେଠ	୨୫୧
୧୩	ଶା କୁବରଞ୍ଚୋ ଛସରାଞ୍ଚୋ	୨୫୧
୧୪	ସ୍ବ ମାତୁଶ୍ରୀ ଗୋଞ୍ଚୋକିଞ୍ଚୋଗୋରାଞ୍ଚୋ ସ୍ବରଞ୍ଚୋସଢ଼ି ଢ଼ା ଶେଠ ବଳଞ୍ଚୋଢ଼ାସ ନାନଞ୍ଚୋ (ପୋରଞ୍ଚୋଢ଼ରବାଞ୍ଚୋ)	୩୦୧
୧୫	ଶେଠ ଢ଼େବରାଞ୍ଚୋଞ୍ଚୋ ଞ୍ଚୋତମଲାଲ ପୁନଞ୍ଚୋଶୀୟା ଶାଢ଼ଢ଼ୀବାଞ୍ଚୋ	୨୫୧
୧୬	ଞ୍ଚୋକ ସଢ଼ଞ୍ଚୋକଢ଼ସ୍ଥ ଢ଼ା ଶେଠ ସୁଢ଼ରଲାଲ ଗୋଞ୍ଚୋକସଢ଼	୨୫୧
୧୭	ଅ ଚାଁ ପାନଞ୍ଚୋଶୀ ଢ଼ା ଶେଠ ପଢ଼ଞ୍ଚୋଶୀ ନରଞ୍ଚୋସିଞ୍ଚୋଶୀ (ମଢ଼ାଢ଼)	୨୫୧
୧୮	ଶ୍ରୀସୁତ ଅଞ୍ଚୋତଲାଲ ବର୍ଧମାନ ଗୋଞ୍ଚୋପୋଢ଼ରବାଞ୍ଚୋ ଢ଼ା ଢ଼ଢ଼ୀସଢ଼ ଅଞ୍ଚୋତଲାଲ	୨୫୧
୧୯	ସ୍ବ ଶାଢ଼ ନାଗାଶୀ ଶେଞ୍ଚୋପାଞ୍ଚୋ ଶୁଢ଼ାଞ୍ଚୋବାଞ୍ଚୋଗାନା ସ୍ବରଞ୍ଚୋସଢ଼ି ଢ଼ା ରାମଞ୍ଚୋ ନାଗଶୀ (ମଢ଼ାଢ଼)	୩୦୧
୨୦	ଶାଢ଼ ରାମଞ୍ଚୋ କରଶନଞ୍ଚୋ ଧାନଗଢ଼ବାଞ୍ଚୋ	୨୫୧
୨୧	ଶାଢ଼ ନଗୀନଢ଼ାସ କଢ଼୍ୟାଞ୍ଚୋଞ୍ଚୋ ବୋରାଞ୍ଚୋବାଞ୍ଚୋ	୨୫୧
୨୨	ଶୀବଲାଲ ଶୁଢ଼ାଞ୍ଚୋସଢ଼ ଶେଠ ଗୋରାଞ୍ଚୋବାଞ୍ଚୋ	୨୫୧
୨୩	ସ୍ବ ଗଢ଼ାସଢ଼ କର ଢ଼େବଞ୍ଚୋ ଢ଼ୋଶୀନା ସ୍ବରଞ୍ଚୋସଢ଼ି ଢ଼ା ସଞ୍ଚୋକୋଢ଼ଢ଼ାସ (ଗାଞ୍ଚୋପୁଲାଲ) ଗଢ଼ାସଢ଼ କର ଢ଼ୋଶୀ	୩୦୧
୨୪	ସ୍ବ ଗୋଢ଼ା ବଞ୍ଚୋରଶୀ ଟ୍ରିଞ୍ଚୋବନ ସରସଢ଼ିବାଞ୍ଚୋଗାନା ସ୍ବରଞ୍ଚୋସଢ଼ି ଢ଼ା ଗଞ୍ଚୋଞ୍ଚୋବନ ବଞ୍ଚୋରଶୀ ଗୋଢ଼ା (ମଢ଼ାଢ଼)	୨୫୧
୨୫	ସ୍ବ ଟ୍ରିଞ୍ଚୋବନଢ଼ାସ ଗଞ୍ଚୋପାଞ୍ଚୋ ବୀଞ୍ଚୋଶୀବାଞ୍ଚୋଗାନା ସ୍ବରଞ୍ଚୋସଢ଼ି ଢ଼ା ଛରଗୋବିଢ଼ଢ଼ାସ ଟ୍ରିଞ୍ଚୋବନଢ଼ାସ ଅଞ୍ଚୋଗୋରା	୨୫୧

૨૬	સ્વ કાનજી મૂળજીના સ્મરણાર્થે તથા માતૃશ્રી દિવાળીબાઈના ૧૬ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે હા જયતીલાલ કાનજી કાળાવડવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૨૭	શેઠ ખુશાલભાઈ ખેગારભાઈ	૨૫૦
૨૮	શાહ પ્રેમજી માલશી ગગર (મલાડ)	૨૫૧
૨૯	સ્વ પિતાશ્રી પતુભાઈ મોનાભાઈના સ્મરણાર્થે હા કાનજી પતુભાઈ મલાડ	૨૫૧
૩૦	શાહ વેલજી જેર્શીંગભાઈ છાસરાવાળા તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ સ્વ નાનબાઈના સ્મરણાર્થે	૩૦૧
૩૧	સ્વ પિતાશ્રી રામશી વેલજીના સ્મરણાર્થે હા શાહ દામજી રામશી (મલાડ)	૩૦૧
૩૨	શેઠ ત્રણકલાલ કસ્તુરચંદ લીંબડીવાળા તરફથી શ્રી અન્નરામર શાસ્ત્રલકાર લીંબડી માટે (માટુગા)	૨૫૧
૩૩	સ્વ પિતાશ્રી ભીમજી ડોરશી તથા માતૃશ્રી પાલાબાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ ઉમરશીભાઈ ભીમશી કચ્છપતરીવાળા (મલાડ)	૩૦૧
૩૪	શેઠ ચુનીલાલ નરસેરામ વેકરીવાળા	૨૫૧
૩૫	શાહ વૃન્નગભાઈ શીવજી (મલાડ)	૨૫૧
૩૬	સ્તીલાલ ભાઈચંદ મહેતા	૨૫૧
૩૭	શાહ ખીમજી મૂળજી પૂજા (મલાડ)	૨૫૧
૩૮	મેસર્સ મવાણી ટ્રાન્સપોર્ટ ડપની હા શેઠ માણુકલાલ વાડીલાલ	૨૫૧
૩૯	ઘેલાણી વલભજી નરસેરામ હા નરસીભાઈ વલભજી	૨૫૧
૪૦	અ સૌ સમતાબેન શાન્તીલાલ C/o શાન્તીલાલ ઉન્નમશી શાહ (મલાડ)	૨૫૧
૪૧	તેન્નણી કુબેરદામ પાનાચંદ	૨૫૧
૪૨	કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ	૨૫૧
૪૩	સ્વ પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે સુરજબેન તરફથી હા તનસુખલાલભાઈ (મલાડ)	૨૫૧
૪૪	દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૫	શેઠ મરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા (સાદડીવાળા)	૨૫૧
૪૬	દોશી અત્રભુજ સુદરજી (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૭	દોશી જુગલકીશોર અત્રભુજ (ઘાટકોપર)	૫૨૧
૪૮	દોશી પ્રવીણચંદ્ર અત્રભુજ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૪૯	શાહ ત્રીલોવનદાસ માનસિંગ દોઢીવાળાના સ્મરણાર્થે હા શાહ હરખચંદ ત્રીલોવનદાસ	૨૫૧
૫૦	શહ જેઠાલાલ ડામરશી ધાગધાવાળા હા શાહ વાડીલાલ જેઠાલાલ	૨૫૦
૫૧	શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ	૨૫૧

૫૨	સ્વ પિતાશ્રી શામળજી કલ્યાણજી ગોડલવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા વૃજલાલ શામળજી ખાવીશી	૩૦૧
૫૩	શાહ પ્રેમજી હીરજી ગાલા	૨૫૧
૫૪	સ્વ પિતાશ્રી ભગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે હા લક્ષ્મીચંદ તથા કેશવલાલભાઈ	૩૦૧
૫૫	સ્વ પિતાશ્રી હંસરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે હા દેવશી હંસરાજ કન્હ બીડાલાવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૫૬	સ્વ માતૃશ્રી ગોમતીબાઈના સ્મરણાર્થે હા શાહ પોપટલાલ પાનાચંદ	૨૫૧
૫૭	શેઠ નેમચંદ સ્વરૂપચંદ ખભાતવાળા હા ભાઈ જેઠાલાલ નેમચંદ	૨૫૧
૫૮	સ્વ પિતાશ્રી શાહ અળાલાલ પરસોતમ પાણુચણાવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા આપાલાલભાઈ	૨૫૧
૫૯	બેન કેશરબાઈ ચંદુલાલ જેસીંગલાલ શાહ	૨૫૧
૬૦	દડીયા જેસીંગલાલ ત્રીકમજી	૨૫૧
૬૧	શાહ કાન્તીલાલ મગનલાલ (ઘાટકોપર)	૨૫૧
૬૨	કોઠારી સુખલાલજી પૂનમચંદજી (ખાર)	૨૫૧
૬૩	સ્વ માતૃશ્રી કડવીબાઈના સ્મરણાર્થે હા તેમના પૌત્ર હંકમીચંદ તારાચંદ દોશી (કાદીવલી)	૨૫૧
૬૪	શેઠ સારાભાઈ ચીમનલાલ	૨૫૧
૬૫	શાહ કૌરશીભાઈ હીમજીભાઈ	૩૦૧
૬૬	પિતાશ્રી કુદનમલજી મોતીલાલજીના સ્મરણાર્થે હા મોતીલાલ જીબરમલ (અહમદનગરવાળા)	૨૫૧
૬૭	શ્રી વર્ધમાન ચેતામ્બર સ્થા જૈન સઘ હા શેઠ રૂપચંદ શીવલાલ કામદાર (અ ધેરી)	૨૫૧
૬૮	અ સૌ કમળાબેન કામદાર હા રૂપચંદ શીવલાલ (અ ધેરી)	૨૫૧
૬૯	ધી મરીના મોડર્ન હાઈસ્કુલ ટ્રસ્ટ ફંડ હા શાહ મણીલાલ ઠાકરશી	૨૫૧
૭૦	સ્વ માતૃશ્રી જીવીબાઈના સ્મરણાર્થે હા શામજી શીવજી કન્હ ગુદાળાવાળા (ગોરેગાવ)	૨૫૧
૭૧	શાહ રવજીભાઈ તથા બાઈલાલભાઈની કંપની (કાદીવલી)	૨૫૧
૭૨	અ સૌ. લાકુબેન હા રવજી શામજી (કાદીવલી)	૨૫૧
૭૩	અ સૌ. બેન કુદનગૌરી મનહરલાલ સઘવી (ખારસેડ)	૨૫૧
૭૪	શાહ કરચન લધુભાઈ (દાદર)	૩૦૧
૭૫	અ સૌ. રજનગૌરી ચંદુલાલ શાહ C/o ચંદુલાલ લક્ષ્મીચંદ (માટુંગા)	૨૫૧
૭૬	મ્હેતા મોટર સ્ટોર્સ હા અનોપચંદ ડી મ્હેતા (ગુબઈ)	૨૫૧

માડવી (કન્હ)

૧ શ્રી સ્થા છ કોટી જૈન સઘ હા મહેતા ચુનીલાલ વેલજી ૨૭૭

મેસાણા

૧ શાહ પદમશી સુરચ દત્તા સ્મરણાર્થે હા શીવલાલ પદમશી વીરમગામવાળા ૨૫૧

મોખ્યાસા

૧ શાહ દેવરાજ પેથરાજ ૨૫૦

૨ શ્રીચુત નાથલાલ ડી મહેતા ૨૫૧

યાદગીરી

૧ શેઠ બાદરમલજી સૂરજમલજી બેન્કર્સ ૨૫૦

રાણપુર (જાલાવાડ)

૧ શ્રીમતી માતુશ્રી અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે હા ડા નરોત્તમદાસ ચુનીલાલ ૨૫૧

રાણાવાસ (મારવાડ)

૧ શેઠ જ્વાનમલજી નેમીચદજી હા બાણુરીખણચદજી ૩૦૧

રાજકોટ

૧ ધી વાડીલાલ કાઈંગ એન્ડ પ્રિન્ટીંગ વર્ક્સ ૪૦૦

૨ શેઠ રતીલાલ ન્યાલચદ ૨૫૧

૩ બાણુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા) ૨૫૦

૪ શેઠ મનુભાઈ મુળચદ (એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

૫ શેઠ શાન્તીલાલ પ્રેમચદ તેમના ધર્મપતિના વરસીતપ પ્રસ જે ૨૫૧

૬ ઉદાણી ન્યાલચદ હાકેમચદ વકીલ ૨૫૧

૭ શેઠ પ્રજ્ઞારામ વીઠ્ઠલજી ૨૫૧

૮ શેઠ હકમીચદ દ્વીપચદ (ગોડલવાળા) સ્ટેશનમાસ્તર ૨૫૧

૯ ખડેન સર્ચુબાળા નોત્તમલાલ જસાણી (વરસીતપની ખુશાલી) ૨૫૧

૧૦ મોદી સૌભાગ્યચદ મોતીચદ ૨૫૧

૧૧ બદાણી ભીમજી વેલજી તરકશી તેમના ધર્મપતિ ૨૫૧

અ સૌ સમરતબેનના વરસીતપની ખુશાલી

૧૨ દોશી મોતીચદ ધારશીભાઈ (રીટાયર્ડ એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

૧૩ કામદાર ચદુલાલ જીવરાજ ૨૫૦

૧૪ હેમાણી ઘેલુભાઈ સવચદ ૨૫૧

રગુન

૧ કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલના ધર્મપતિન અ સૌ કમળાબેન ૨૫૧

લખતર

૧ શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા શાહ શાન્તીલાલ રાયચંદ ૨૫૧

૨ ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે  
હા ભાઈ ત્રીભોવનદાસ હરજીવનદાસ ૨૫૧

૩ શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી ૨૫૧

૪ શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ ૨૫૧

૫ શાહ બદવજી ઐઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા ભાઈ શાન્તીલાલ બદવજી ૨૫૧

૬ દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપતિન સમરતબેન  
વૃજલાલ તરફથી હા જયતીલાલ ઠાકરશી ૨૫૧

લાવપુર

૧ શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી હા મગનલાલભાઈ ૨૫૧

૨ શેઠ મુળચંદ પોપટલાલ હા મણીવાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઈ ૨૫૧

લાખેરી (રાજસ્થાન)

૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા મહેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ  
(સીવીલ એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

લોમડી (પચમહાલ)

૧ શાહ કુવરજી ગુલાબચંદ ૨૫૧

૨ છાનેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ ૨૫૧

લોનાવવા

૧ શેઠ ધનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા ૨૫૧

વઢનાપ શહેર

૧ શાહ દીલીપકુમાર સવાઈલાલ હા સવાઈલાલ ત્રબકલાલ શાહ ૨૫૧

૨ શાહ મગનલાલ ગોકગદામ હા રતીલાલ મગનલાલ કામદાર ૨૫૧

૩ સઘની મુગચંદ ભેચરભાઈ હા ભાઈ જીવણલાલ ગફલદાસ ૨૫૧

૪ શેઠ વૃજલાલ સુખવાલ ૨૫૧

૫ શેઠ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૨૫૧

૬	વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	૨૫૧
૭	સઘવી શીવલાલ હીમજીભાઈ	૨૫૧
૮	શાહ દેવશી દેવકરણુ	૨૫૧
૯	વોરા ડોસાભાઈ લાલચંદ સ્થા જૈન સઘ હા વોરા નાનચંદ શીવલાલ	૨૫૧
૧૦	વોરા ધનજીભાઈ લાલચંદ મ્થા જૈન સઘ હા વોરા પાનાચંદ ગોળગદામ	૨૫૧
૧૧	દોશી વીરચંદ સુરચંદ હા દોશી નાનચંદ ઉજ્જમશી	૨૫૧
૧૨	સ્વ વોરા મણીલાલ મગનલાલ હા વોરા ચત્રભુજ મગનલાલ	૨૫૧

વટામણુ

૧	શ્રી વટામણુ સ્થા જૈનસઘ હા શ્રી ડાહ્યાભાઈ હલુભાઈ પટેલ	૨૫૧
---	--	-----

વલસાડ

૧	ગાહ ખીમચંદ મૂળજીભાઈ	૨૫૧
---	---------------------	-----

વણી

૧	મહેતા નાનાલાલ છગનલાલના ધર્મપતિ સ્વ ચચળબેન તથા પુરીબેનના મમગ્ણાર્થે હા ભાઈ મનહરલાલ નાનાલાલ	૨૫૧
---	---	-----

વડોદરા

૧	કામદાર કેશવલાલ હિમતરામ પ્રોફેસર સાહેબ (ગોડલવાળા)	૨૫૧
૨	વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ	૨૫૧
૩	સ્વ પિતાશ્રી શાહ ફકીરચંદ પુલ્લભાઈના સ્મરણુાર્થે હા શાહ રમણુલાલ ફકીરચંદ	૨૫૧

વડીયા

૧	પચમીયા ભવાનભાઈ કાળાભાઈ (જેતપુરવાળ)	૨૫૧
---	------------------------------------	-----

વાઝાનેર

૧	માસ્તર કાન્તીલાલ ત્રણકલાવ ખ ઢેરીના	૨૫૧
૨	શ્રી સ્થા જૈન સઘ (રૂા ૨૫૦ ગાકી)	૨૫૧
૩	દફતરી ચુનીલ લ પોપટભાઈ મોરખીવાળા હા ભાઈ પ્રાણુલાલ ચુનીલાલ	૨૫૧

વીંછીયા

૧	શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા અજમેરા રાયચંદ વૃન્ધપાળ	૨૫૧
---	--	-----

રુન

૧ કામદાર ગોરધનદાસ મગનલોલના ધર્મપતિ અ સૌ કમળાબેન ૨૫૧

લખતર

૧ શાહ રાયચંદ ઠાકેરશીના સ્મરણાર્થે હા શાહ શાન્તીલાલ રાયચંદ ૨૫૧

૨ ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે  
હા ભાઈ ત્રીભોવનદાસ હરજીવનદાસ ૨૫૧

૩ શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી ૨૫૧

૪ શાહ યુનીલાલ માણેકચંદ ૨૫૧

૫ શાહ જાદવજી ઓઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા ભાઈ શાન્તીલાલ જાદવજી ૨૫૧

૬ દોશી ઠાકેરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપતિ સમરતબેન  
વૃજલાલ તરફથી હા જ્યતીલાલ ઠાકેરશી ૨૫૧

લાવપુર

૧ શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી હા મગનલાલભાઈ ૨૫૧

૨ શેઠ મુળચંદ પોપટલાલ હા મણીલાલભાઈ તથા જેસીંગલાલભાઈ ૨૫૧

લાખેરી (રાજસ્થાન)

૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા મહેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ  
(સીવીલ એન્જનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

લોમડી (પચમહાલ)

૧ શાહ કુવરજી ગુલાબચંદ ૨૫૧

૨ છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ ૨૫૧

લોનાવલા

૧ શેઠ ધનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા ૨૫૧

વઠનાપુ શહેર

૧ શાહ દીલીપકુમાર સવર્ધલાલ હા સવર્ધલાલ ત્રબકલાલ શાહ ૨૫૧

૨ શાહ મગનલાલ ગોકળદાસ હા રતીલાલ મગનલાલ કામદાર ૨૫૧

૩ સઘવી મુળચંદ ભેચરભાઈ હા ભાઈ જીવણલાલ ગફલદાસ ૨૫૧

૪ શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ ૨૫૧

૫ શેઠ માન્તીલાલ નાગરદાસ ૨૫૧

## સતારા

- ૧ સ્વ મદનલાલજી કુંદનમલજી કોઠારીના સ્મરણાર્થે  
હા તેમના ધર્મપત્નિ રાજકુવરબાઈ મદનલાલજી ૨૫૧

## સાલબની (બ ગાળ)

- ૧ દોશી ચુનીલાલ કુલચંદ મોરખીવાળા ૨૫૦

## સાણુદ

- ૧ શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ ૩૦૧  
૨ અ સૌ ચ પાળેન હા દોશી જીવરાજ લાલચંદ ૨૫૧  
૩ પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ ૨૫૧  
૪ શાહ સાકરચંદ કાનજીભાઈ ૨૫૧  
૫ પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સઘવી લીંબડીવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી ૨૫૧  
૬ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા પારેખ ભીખાલાલ નેમચંદ ૨૫૧  
૭ સઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ જયતીલાલ નારણદાસ ૨૫૧

## સુરત

- ૧ શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા શાહ છોટુભાઈ અલેચંદ ૨૫૧

## સુવર્ધ (કચ્છ)

- ૧ સાવળા શામજી હીરજી તરકશી સદાનદી જૈન મુનીશ્રી છોટાલાલ  
મહારાજના ઉપદેશથી સુવર્ધ સ્થા જૈન સઘ જ્ઞાનભાડારને લેટ ૨૫૧

## સુરેન્દ્રનગર

- ૧ શેઠ ચાપશીભાઈ સુખલાલ ૨૫૧  
૨ ભાવસાર ચુનીલાલ ત્રેમચંદ ૨૫૧  
૩ સ્વ કેશવલાલ મૂળજીભાઈના ધર્મપત્નિ અમૃતગાઈના સ્મરણાર્થે  
હા શાહ ભાઈલાલ કેશવલાલ (યાનગઢવાળા) ૨૫૧  
૪ શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ ૨૫૧



ਦੀਰਭਗਾਮ

੧	ਸ਼ਾਹ ਵਾਈਲਾਲ ਨੇਮਯਦ ਵਕੀਲ	੨੫੦
੨	ਸ਼ਾਹ ਵੀਠਲਭਾਓ ਮੋਢੀ ਮਾਸ਼ਟਰ	੨੫੧
੩	ਸ਼ਾਹ ਨਾਗਰਦਾਸ ਮਾਯੋਕਯਦ	੨੫੧
੪	ਸ਼ਾਹ ਮਘੀਲਾਲ ਭੁਵਘੁਲਾਲ (ਸ਼ਾਹਪੁਰਵਾਯਾ)	੨੫੧
੫	ਸ਼ਾਹ ਅਮੁਲਘ (ਯਯੁਭਾਓ) ਨਾਗਰਦਾਸਨਾ ਧਰਮਪਲਿ ਅ ਸੌ ਯੋਨ ਵੀਲਾਵ ਤੀਨਾ ਵਰਸੀਤਪਨਾ ਪਾਰਘੁਨੀ ਘੁਸ਼ਾਲੀਮਾ ਡਾ ਭਾਓ ਕਾਨ੍ਤੀਲਾਲ ਨਾਗਰਦਾਸ	੩੦੦
੬	ਸਵ ਸ਼ੇਠ ਓਞਮਸ਼ੀ ਨਾਨਯਦਨਾ ਸਮਰਘੁਯੋ ਤੇਮਨਾ ਘੁਤੋ ਤਰਫ਼ਥੀ ਡਾ ਸ਼ੇਠ ਯੁਨੀਲਾਲ ਨਾਨਯਦ	੨੫੧
੭	ਸਵ ਸ਼ੇਠ ਮਘੀਲਾਲ ਲਕਸ਼ਮੀਯਦਨਾ ਸਮਰਘੁਯੋ ਤੇਮਨਾ ਘੁਤੋ ਤਰਫ਼ਥੀ ਡਾ ਘੀਮਯਦਭਾਓ (ਘਾਰਾਯੋਡਾਵਾਯਾ)	੨੫੧
੮	ਸਵ ਸ਼ੇਠ ਡੁਰੀਲਾਲ ਪਰਭੁਦਾਸਨਾ ਸਮਰਘੁਯੋ ਡਾ ਸ਼ੇਠ ਅਨੁਭਾਓ ਡੁਰੀਲਾਲ	੨੫੧
੯	ਸ ਧਵੀ ਨੇਯਦਭਾਓ ਨਾਰਘੁਦਾਸ	੨੫੧
੧੦	ਸਵ ਸ਼ਾਹ ਵੇਲਸ਼ੀਭਾਓ ਸਾਕਰਯਦਭਾਓਨਾ ਸਮਰਘੁਯੋ ਡਾ ਯੀਮਨਲਾਲ ਵੇਲਸ਼ੀ (ਕਨਾਸਵਾਯਾ)	੨੫੧
੧੧	ਪਾਰੇਘ ਮਘੀਲਾਲ ਟੋਕਰਸ਼ੀ ਲਾਤੀਵਾਯਾ ਤਰਫ਼ਥੀ (ਮੋਟੀ ਯੋਨਨਾ ਸਮਰਘੁਯੋ)	੨੫੧
੧੨	ਸ਼ਾਹ ਨਾਰਘੁਦਾਸ ਨਾਨਭੁਭਾਓਨਾ ਸੁਘੁਤ ਵਾਈਲਾਲਭਾਓਨਾ ਧਰਮਪਲਿ ਅ ਸੌ ਨਾਰਘੀਯੋਨਨਾ ਵਰਸੀਤਪ ਨਿਮੀਤੇ ਡਾ ਸ਼ਾਨ੍ਤੀਭਾਓ	੨੫੧
੧੩	ਸਵ ਓਘੀਲਦਾਸ ਗੋਕਯਦਾਸਨਾ ਸਮਰਘੁਯੋ ਤੇਮਨਾ ਧਰਮਪਲਿ ਅ ਸੌ ਕਮਯਾਯੋਨ ਤਰਫ਼ਥੀ ਡਾ ਮਘੁਲਾਕੁਮਾਰੀ	੨੫੧
੧੪	ਸ਼ੀ ਸਥਾ ਯੋਨ ਆਵਿਕਾਸਧ ਡਾ ਪਰਘੁਘ ਅ ਸੌ ਰਭਾਯੋਨ ਵਾਈਲਾਲ	੨੫੧
੧੫	ਸਵ ਤੀਯੋਵਨਦਾਸ ਫੇਵਯਦ ਤਥਾ ਸਵ ਅ ਸੌ ਯਯਘਯੋਨਨਾ ਸਮਰਘੁਯੋ ਡਾ ਡਾ ਡਿਮਤਲਾਲ ਸੁਘਲਾਲ	੨੫੧
੧੬	ਸ਼ਾਹ ਮਘਯਦ ਕਾਨਭੁਭਾਓ ਤਰਫ਼ਥੀ ਡਾ ਸ਼ਾਹ ਨਾਗਰਦਾਸ ਘੋਧਠਭਾਓ	੨੫੧
੧੭	ਸ਼ੇਠ ਮੋਢਨਲਾਲ ਪੀਤਾਯਦਾਸ ਡਾ ਭਾਓ ਡੇਸ਼ਵਲਾਲ ਤਥਾ ਮਨਸੁਘਲਾਲਭਾਓ	੨੫੧
੧੮	ਸ਼ੀਮਤੀ ਡੀਰਯੋਨ ਨਯੁਭਾਓਨਾ ਵਰਸੀਤਪ ਨਿਮੀਤੇ ਡਾ ਨਯੁਭਾਓ ਨਾਨਯਦ ਸ਼ਾਹ	੩੦੧
੧੯	ਸਵ ਮਘੀਯਾਰ ਪਰਸੋਤਮਦਾਸ ਸੁਫਰਯੋਨਾ ਸਮਰਘੁਯੋ ਡਾ ਸ਼ੇਠ ਮਾਕਰਯਦ ਪਰਸੋਤਮਦਾਸ	੨੫੧
੨੦	ਸ਼ੇਠ ਮਘੀਲਾਲ ਸ਼ੀਵਲਾਲ	੨੫੧

ਵੇਰਾਵਯ

੧	ਸ਼ਾਹ ਕੇਸ਼ਵਲਾਲ ਨੇਯਦਭਾਓ	੨੫੧
੨	ਸ਼ਾਹ ਘੀਮਯਦ ਸੌਭਾਯਯਦ ਵਸਨਭ	੨੫੧

## સતારા

- ૧ સ્વ મદનલાલજી કુદનમલજી કોઠારીના સ્મરણાર્થે  
હા તેમના ધર્મપત્નિ રાજકુવરબાઈ મદનલાલજી ૨૫૧

## સાલબની (બગાળ)

- ૧ દોશી ચુનીલાલ કુલચંદ મોરખીવાળા ૨૫૦

## સાણુદ

- ૧ શાહ હીરાચંદ છગનલાલ હા શાહ ચીમનલાલ હીરાચંદ ૩૦૧  
૨ અ સૌ ચ પાબેન હા દોશી જીવરાજ લાલચંદ ૨૫૧  
૩ પટેલ મહાસુખલાલ ડોસાભાઈ ૨૫૧  
૪ શાહ સાકરચંદ કાનજીભાઈ ૨૫૧  
૫ પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સઘવી લીંબડીવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી ૨૫૧  
૬ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે  
હા પારેખ ભીખાલાલ નેમચંદ ૨૫૧  
૭ સઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે હા ભાઈ જયતીલાલ નારણદાસ ૨૫૧

## મુરત

- ૧ શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા શાહ છોટુભાઈ અભેચંદ ૨૫૧

## સુવર્ધ (કચ્છ)

- ૧ સાવળા શામજી હીરજી તરકૂથી સદાનદી જૈન મુનીશ્રી છોટાલાલ  
મહારાજના ઉપદેશથી સુવર્ધ સ્થા જૈન સઘ જ્ઞાનભડારને લેટ ૨૫૧

## મુરેન્દ્રનગર

- ૧ શેઠ ચાપશીભાઈ સુખલાલ ૨૫૧  
૨ ભાવસાર ચુનીલાલ ત્રેમચંદ ૨૫૧  
૩ સ્વ કેશવલાલ મૂળજીભાઈના ધર્મપત્નિ અમૃતબાઈના સ્મરણાર્થે  
હા શાહ ભાઈલાલ કેશવલાલ (ધાનગઢવાળા) ૨૫૧  
૪ શાહ ન્યાલચંદ હરખચંદ ૨૫૧



